भारतीय अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था

[INDIAN ECONOMY]

[राजस्थान विश्वविद्यालय की प्रथम वर्ष वाणिज्य की सन् १९७३ की परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार]

लेखक

आर. एस. कुलश्रेष्ठ, एम ए., एम कॉम,
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

तथा

ओमप्रकाश शर्मा, एम कॉम,
वाणिज्य विभाग,
पोद्दार कालेज, नवलगढ़

द्वितीय पूर्णतः संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण

१९७२

साहित्य भवन : आगरा-३

प्रस्तावना

पुस्तक का द्वितीय संस्करण छात्र समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष है। पुस्तक मूलतः राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष वाणिज्य के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गयी है, तथा प्रस्तुत संस्करण में अगली परीक्षा के लिए इस ग्रन्थ में किये गये संशोधनों एवं परिवर्तनों का समावेश कर दिया गया है। उदाहरण के लिए, उद्योगों के सन्दर्भ में उनके विकास के इतिहास का अनावश्यक पृष्ठपोषण करने के बजाय विभिन्न उद्योगों की वर्तमान स्थिति योजनाकाल में उनकी प्रगति तथा समस्याओं के विवेचन को विशेष प्रमुखता दी गयी है। नये पाठ्यक्रम के अनुरूप ही नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत भाखरा नांगल योजना, दामोदर नदी घाटी योजना और तुंगभद्रा योजना की विशेष समीक्षा की गयी है। इसी प्रकार प्रमुख औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों के अन्तर्गत इन नगरों का वर्णन विशेष विस्तार से किया गया है जिन्हें इस सत्र के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। साथ ही भारत की अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध कतिपय ज्वलन्त समस्याओं को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है जैसे देश की खाद्य स्थिति एवं हरित क्रान्ति तथा बेरोजगारी की समस्या। जनसंख्या के विवेचन में भी मार्च सन् १९७१ में की गयी जनगणना के अब तक प्रकाशित प्रारम्भिक तथ्यों एवं आँकड़ों को समाविष्ट करने का भरसक प्रयास किया गया है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पुस्तक को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में प्राकृतिक एवं आर्थिक भूगोल के मूलभूत सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। द्वितीय भाग में राजस्थान की अर्थव्यवस्था और तीसरे भाग में भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों का विवरण किया गया है। पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में अनेक अधिकृत सूत्रों से संकलित नवीनतम तथ्यों और आँकड़ों का समावेश किया गया है। इसके लिए अनेक पत्र पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों, पुस्तिकाओं एवं प्रकाशनों का सहारा लिया गया है जैसे भारत, १९७०, रिजर्व बैंक की करेन्सी एण्ड फाइनेन्स की रिपोर्ट, चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, उद्योग व्यापार पत्रिका, भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदन एवं अन्य प्रकाशन आदि। इसके लिए लेखक इन सबके विशेष आभारी हैं।

छात्रों के मार्गदर्शन के लिए प्रत्येक अध्याय के अन्त में पिछली परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्नों को दे दिया गया है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक प्रथम वर्ष वाणिज्य के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक के आगे और सुधार की दिशा में दिये जाने वाले सुझावों का साभार स्वागत किया जायगा।

—लेखक द्वय

विषय-सूची

प्रथम भाग

भारत का आर्थिक भूगोल

द्वितीय भाग

राजस्थान की अर्थव्यवस्था

तृतीय भाग

भारत की अर्थव्यवस्था

अध्याय १

मानव तथा वातावरण
(MAN AND ENVIRONMENT)

प्राय. यह कहा जाता है कि 'मानव अपने वातावरण की उपज है।' यह कथन आदि युग मे जितना सत्य था, लगभग आज भी मौलिक रूप मे मानव पर उतना ही लागू होता है। पिछड़ी हुई अव्यवस्था मे मानव बहुत अश तक 'प्रकृति का दास' होता है, किन्तु जैसे-जैसे उसका विकास होता जाता है प्रकृति पर उसकी दासता की सीमा कुछ कम होती चली जाती है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अपनी पूर्ण विकसित अवस्था मे मानव जीवन प्राकृतिक वातावरण के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। जैसी भौगोलिक अथवा प्राकृतिक दशाएँ होती हैं, उन्ही के अनुसार मानव जीवन का ढाँचा एक विशेष प्रकार का बन जाता है। भूतल पर सर्वत्र प्राकृतिक दशाएँ समान नहीं हैं। कहीं वातावरण बहुत अधिक ठण्डा है तो कही बहुत अधिक उष्ण है। कही वायु मे आर्द्रता बहुत कम है और इसलिए वातावरण अत्यन्त शुष्क है, तो कही बहुत अधिक वर्षा के कारण वातावरण अत्यन्त नम रहता है। इसी प्रकार कही धरातल पर महीना तक बर्फ जमी रहती है, तो कही वह दलदलो अथवा रेतीले टीलो से ढका होता है। वातावरण की इन विभिन्नताओ के कारण धरातल की बनावट, प्राकृतिक वनस्पति एव पशु सम्पत्ति आदि में भी स्थान-स्थान पर *असमानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यही कारण है कि विश्व के विभिन्न* भागो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राकृतिक दशाएँ पायी जाती हैं और उन्ही के अनुसार उन प्रदेशो का मानव जीवन ऐसी विशिष्टताओ से परिपूर्ण होता है जो अन्य प्रदेशों *के जीवन मे नहीं दिखायी देती हैं। उत्तरी ध्रुव के निकट 'टुण्ड्रा-प्रदेशों' एवं उष्णमरु-*स्थलीय 'सहारा प्रदेशों' के निवासियो के जीवन की तुलना की जाय तो वातावरण की भिन्नता और उसके मानव जीवन पर प्रभाव की यथार्थता हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाती है। *इसी प्रकार विषुवत रेखीय प्रदेशो, मानसूनी प्रदेशो, भूमध्यसागरीय प्रदेशो* आदि मे हमे प्राकृतिक वातावरण की असमानताओं के कारण वहाँ के निवासियों के जीवन मे भिन्नताएँ स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं।

मानव जीवन एव प्राकृतिक वातावरण *का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है।* भौगोलिक दशाओ के अनुरूप एव उनके अन्तर्गत ही मानव की आर्थिक गतिविधियाँ निर्धारित और नियन्त्रित होती हैं। प्राकृतिक वातावरण के अनुसार ही मानव का

आर्थिक जीवन एक विशेष प्रकार के ढाँचे मे ढल जाता है। मानव, प्रकृति से लगातार संघर्ष करता रहा है, और करता रहेगा। इस संघर्ष की कहानी वास्तव मे मानव सभ्यता के विकास की गाथा है। बुद्धिबल एवं बाहुबल के द्वारा मानव ने सदैव प्रतिकूल प्राकृतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। आज के वैज्ञानिक युग मे वह अपने इस प्रयत्न मे बहुत कुछ सफल भी हुआ है। जलमार्गो एवं वायुमार्गों द्वारा दूर-दूर तक शीघ्रगामी यात्राएँ, भारी मात्रा मे एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल का परिवहन, नदी घाटी योजनाओं के द्वारा सूखे मरुस्थलो का हरे-भरे उपजाऊ मैदानो के रूप मे परिवर्तन, मानव द्वारा वाह्य अन्तरिक्ष मे उपग्रहो की यात्राएँ आदि ऐसे उदाहरण हैं जिनके आधार पर हम प्रकृति पर मानव की विजय सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु फिर भी मानव और प्रकृति के इस संघर्ष मे प्राकृतिक वातावरण के निर्धारक प्रभाव से इन्कार नही किया जा सकता है। मानव अपनी आर्थिक उन्नति प्राकृतिक साधनों के सहयोग से ही करता है तथा प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर होती है। प्राकृतिक वातावरण का प्रभाव मानव के आर्थिक जीवन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह वातावरण मानव के रंग-रूप, स्वभाव, विचार एवं रहन-सहन आदि को भी प्रभावित करता है।

यदि आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो हमे ज्ञात होगा कि कुछ देश औद्योगिक रूप से उन्नत हैं, कुछ देश कृषि प्रधान हैं और कुछ राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा में हैं। वातावरण का जिन भागों मे अधिक सहयोग मिला है, वहाँ विकास की सम्भावनाओं मे निश्चय ही वृद्धि हुई है। प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि की सरलता एवं सीमा पर ही किसी प्रदेश विशेष का आर्थिक विकास निर्भर रहा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि प्राकृतिक वातावरण की अनुकूलता एवं सम्पन्नता मात्र से ही मानव जीवन विकसित नहीं हो जाता है। इसके लिए उन्नत एवं अनुकूल 'सामाजिक वातावरण' की भी आवश्यक्ता होती है। अतः वातावरण को प्राकृतिक एवं सामाजिक दो प्रकार के वातावरणो मे विभाजित किया जाता है।

वातावरण के प्रकार

मानव जिन दो प्रकार के वातावरणों में अपना जीवन व्यतीत करता है वे हैं—'प्राकृतिक वातावरण' और 'सामाजिक वातावरण'। प्राकृतिक वातावरण मनुष्य को प्रकृति से प्राप्त होता है। इसे नैसर्गिक, भौगोलिक एवं भौतिक वातावरण भी कह सकते हैं। इस वातावरण के निर्माण मे मानव का कोई योग नहीं होता है और यह मानव के लिए प्रकृति की 'देन' अथवा भेंट के समान होता है। मानव अपने आस-पास के प्राकृतिक वातारण मे कोई आमूल परिवर्तन भी नहीं कर सकता है—वह अपने बुद्धिबल एवं बाहुबल के द्वारा उसमें थोड़ी सीमा तक छोटे-मोटे परिवर्तन अवश्य कर सकता है।

इसके विपरीत सामाजिक वातावरण पूर्ण रूप से मानव की कृति होती है जिसका निर्माण स्वयं उसके द्वारा अथवा उसके पूर्वजों के द्वारा दीर्घकाल में किया गया होता है। प्रत्येक राष्ट्र को उसका सामाजिक वातावरण उसके पूर्वजों से विरासत या उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होता है और देश की वर्तमान पीढ़ी अपने और अन्य देशों के अनुभव के आधार पर उसमें आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार अवश्य कर सकती है और इस प्रकार उसे भावी विकास के लिए अधिक अनुकूल बना सकती है। सामाजिक वातावरण को कृत्रिम वातावरण भी कहा जाता है।

वातावरण

प्राकृतिक या भौतिक	सामाजिक एवं कृत्रिम
१ स्थिति	१ धार्मिक विचारधाराएँ
२ धरातल (पर्वत, पठार मैदान मिट्टी नदियाँ)	२ सामाजिक प्रथाएँ परम्पराएँ एवं संस्थाएँ
३ जलवायु	३ शासन प्रणाली
४ समुद्रतट	४ शिक्षा प्रणाली
५ खनिज एवं शक्ति के साधन	५ जनसंख्या
६ वनस्पति	
७ पशुधन	
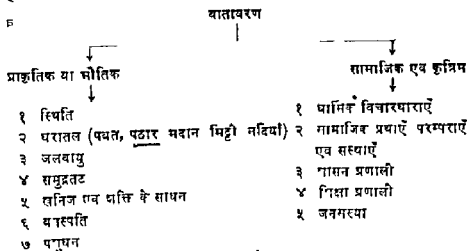
प्राकृतिक अथवा भौतिक वातावरण

भौतिक वातावरण में वे सभी दशाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो मनुष्य को प्राकृतिक रूप से प्राप्त होती हैं। इसमें थल जल एवं नभ से सम्बन्ध रखने वाले वे सभी तत्त्व आ जाते हैं जो मानव के जीवन को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। मानव इस प्राकृतिक वातावरण में ही अपना जीवन व्यतीत करता है और भौतिक साधनों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उपयोग में लाता है। वह प्रतिकूल भौतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने का भी प्रयत्न करता है। भौतिक वातावरण के विभिन्न तत्त्वों और मानव जीवन के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभाव का निरूपण रेखा चित्र के द्वारा पृष्ठ ४ पर किया गया है। निम्न पंक्तियों में प्राकृतिक वातावरण के विभिन्न तत्त्वों का प्रभाव वर्णन उपयुक्त उदाहरण के साथ किया गया है

(१) स्थिति (Location)

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव उस प्रदेश की जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति एवं कृषि उपज पर सबसे अधिक पड़ता है। ध्रुव प्रदेशों के निकट स्थित भागों में अत्यन्त शीत के कारण धरातल प्रायः हिमाच्छादित रहता है। इसके विपरीत विषुवत रेखा के समीपवर्ती प्रदेशों में अधिक ताप एवं नमी के कारण सघन प्राकृतिक

वनस्पति देखने में आती है। भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से समशीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) में स्थित प्रदेश सर्वोत्तम माने जाते हैं, क्योंकि ऐसे भागों की जलवायु गर्मी-सर्दी की विषमता से मुक्त होती है और ऐसी सामान्य जलवायु में बौद्धिक तथा शारीरिक गतिविधियों के विकास के लिए पर्याप्त अनुकूल दशाएँ प्राप्त होती हैं।
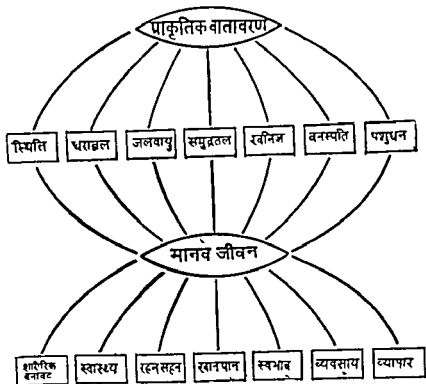
उष्ण कटिबन्धों में स्थित प्रदेशों के निवासियों के खानपान एवं उनकी वेष भूषा पर उष्णता का स्पष्ट प्रभाव होगा जो शीत कटिबन्धीय प्रदेशों से भिन्न होगा।

महासागरीय (Oceanic) स्थिति किसी देश के लिए अनेक प्रकार से अनुकूल सिद्ध हो सकती है। समुद्र के निकट अथवा समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में नौकावहन का पर्याप्त विकास हो जाता है। इस अनुकूल स्थिति से विदेशी व्यापार में सुविधा रहती है। दक्षिण भारत की स्थिति प्रायद्वीपीय (Peninsular) है, जो इस प्रदेश की जलवायु पर स्पष्ट प्रभाव डालती है। इसके विपरीत जिन प्रदेशों की स्थिति समुद्र से दूर होती है, वह महाद्वीपीय (Continental) स्थिति कहलाती है। सामान्यत ऐसे प्रदेशों में गर्मी में अधिक गर्मी तथा शीत ऋतु में अधिक सर्दी पड़ती है। जिन प्रदेशों के चारों ओर समुद्र होता है ऐसी स्थिति द्वीपवर्तीय कहलाती है। द्वीपवर्तीय स्थिति वाले राष्ट्रों को विदेशी व्यापार की सबसे अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। विदेशी व्यापार का प्रभाव देश के आर्थिक विकास पर पड़ता है। आर्थिक विकास वहाँ के

निवासियों के जीवन स्तर को प्रभावित करता है। चारों ओर खुला समुद्र ऐसे प्रदेशों को अन्य देशों से व्यापारिक एवं आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने का उत्तम अवसर प्रदान करता है।

देश के आर्थिक विकास के लिए विकसित राष्ट्रों के निकट की स्थिति होनी चाहिए। ऐसी स्थिति को केन्द्रवर्ती (Central) स्थिति कहते हैं। इससे विदेशी व्यापार बढ़ता है, पारस्परिक सम्बन्धों में वृद्धि हो सकती है और देश आर्थिक रूप से समृद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह देश व्यापारिक मार्गों पर अथवा उनके समीप स्थित हो। इसके विपरीत यदि कोई प्रदेश अन्य देशों से अलग-अलग एक कोने में स्थित है तो ऐसी स्थिति को 'एकाकी स्थिति' (Isolated location) कहा जायगा जैसे न्यूजीलैण्ड, आइसलैण्ड या ग्रीनलैण्ड की स्थिति।

भौगोलिक स्थिति देश की विदेशी आक्रमण से रक्षा भी कर सकती है। देश की सीमान्त रेखा पर यदि पर्वत, नदियाँ, समुद्र अथवा घने जंगल हैं तो उनसे विदेशी आक्रमण से रक्षा होती है। उदाहरण के लिए, इंगलैण्ड के चारों तरफ समुद्र होने के कारण बाहरी आक्रमणों से उसकी सुरक्षा में सरलता रहती है। तात्पर्य यह है कि यदि दो देशों के मध्य 'प्राकृतिक सीमाएँ' हैं, तो इससे दोनों देशों को प्रतिरक्षा में सुविधा रहती है। इसके विपरीत 'कृत्रिम सीमाएँ' दो देशों के पारस्परिक सम्बन्धों में बिगाड़ उत्पन्न कर सकती हैं। ऐसी सीमाएँ निरन्तर संघर्ष का कारण बन जाती हैं। भारत और पाकिस्तान का इस सम्बन्ध में उदाहरण दिया जा सकता है जिन्हें सीमा चौकियों के रख-रखाव और सीमा-चिह्नों के निर्माण पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता है।

भौगोलिक स्थिति के साथ विस्तार का भी प्रभाव पड़ता है। यदि देश का क्षेत्रफल अधिक है तो वहाँ पर प्राकृतिक साधनों की अधिक उपलब्धि सम्भव हो सकेगी। कृषि के लिए अधिक भूमि उपलब्ध हो सकेगी। इसके अतिरिक्त विस्तृत देशों की सीमान्त रेखाएँ भी कई देशों के साथ होंगी। इससे विभिन्न देशों की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान और चल व्यापार का प्रभाव उन देशों पर पड़ेगा। विस्तार की दृष्टि से सोवियत रूस, संयुक्तराज्य अमरीका, भारत, चीन आदि देशों की स्थिति उत्तम है। इसके विपरीत इंगलैण्ड, जापान आदि देशों का आकार अत्यन्त संकुचित है तथा उनके सीमित प्राकृतिक साधन उनके बढ़े हुए आर्थिक विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त हैं। फलतः ऐसे देशों को खाद्य पदार्थों एवं औद्योगिक कच्चे माल के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(२) धरातल (Surface Structure)

पृथ्वी का धरातल सर्वत्र समान नहीं होता। कहीं ऊँची पर्वत श्रेणियाँ होती हैं तो कहीं समतल मैदान पाये जाते हैं। कहीं ऊबड़-खाबड़ पठार होता है तो कहीं ऊँचे-नीचे रेत के टीलों से बनी मरुस्थलीय भूमि होती है। एक ही क्षेत्र के विभिन्न

भागों में धरातलीय असमानताएँ पर्याप्त सीमा तक हो सकती हैं। यदि देश बड़ा एवं विस्तृत है तो ऐसी असमानताएँ और अधिक हो सकती हैं। धरातल की बनावट एवं रचना किसी प्रदेश के आर्थिक जीवन और आर्थिक विकास के स्वरूप एवं उसकी सीमा को निर्देशित एवं निर्धारित करती है। धरातल की बनावट को पर्वत, पठार, मैदान, नदियाँ, मिट्टी तथा रेगिस्तान आदि भागों में विभक्त किया जा सकता है। इनका प्रभाव व्यवसाय तथा व्यापार पर स्पष्टतः पड़ता है। मानव जीवन पर विभिन्न धरातलीय बनावटों के प्रभाव की विवेचना निम्नलिखित पंक्तियों में की गयी है :

(क) **पर्वतों का प्रभाव (Mountains)**—पर्वतीय भागों में संघर्षमय जीवन होने के कारण मानव स्वभावतः कठोर एवं परिश्रमी हो जाता है। इन क्षेत्रों के लोग अधिक कर्मठ तथा चुस्त हो सकते हैं। लोग स्वच्छन्द रहना चाहते हैं। आवागमन के साधनों के अभाव में इनका स्वभाव एकान्तप्रिय हो जाता है तथा ये अधिक रूढ़िवादी होते हैं। इन क्षेत्रों में अधिक विकास नहीं हो पाता है। पर्वतीय धरातल यहाँ के निवासियों को कठोर एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते रहने का अभ्यस्त बना देता है। अतः ऐसे लोग स्वभावतः अच्छे सैनिक सिद्ध होते हैं। नेपाल एवं गढ़वाल के सैनिक स्थल युद्ध में अपनी सानी नहीं रखते। इनका खान-पान तथा रहन-सहन भी अन्य भागों के लोगों से भिन्न होता है। खाद्य पदार्थों के अभाव में लोग प्रायः फलों एवं जीव-जन्तुओं पर भी निर्वाह कर सकते हैं।

पर्वतीय भागों में कृषि तथा उद्योग दोनों के लिए ही उपयुक्त स्थिति नहीं होती है। अधिकतर भागों में वन पाये जाते हैं। इन जंगलों से लकड़ियाँ काटकर, लकड़ियों के कोयले बनाकर तथा पशु-पालन व्यवसाय से लोग अपनी जीविका चलाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पर खेती हो सकती है, कुछ फसलें भी उत्पन्न की जाती हैं। घाटियों में एवं पर्वतीय ढालों पर चावल की खेती भी की जाती है जो यहाँ के लोगों का प्रधान भोजन होता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में आवागमन के साधनों का अभाव पाया जाता है अतः व्यापारिक उन्नति नहीं हो पाती है। इन साधनों के अभाव में वहाँ के लोगों में गतिशीलता का अभाव रहता है तथा यदि ये लोग जीविका की खोज में अन्य विकसित प्रदेशों में नहीं जाते, तो घोर निर्धनता में अपने दिन व्यतीत करते रहते हैं। भारत में उत्तरी सीमावर्ती पर्वतीय स्थलों के निवासियों की गरीबी देश के लिए एक समस्या बनी हुई है। इन भागों में सीमावर्ती सड़कों के विकास तथा छोटे-मोटे उद्योग धन्धों के विकास की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि यह प्रश्न देश की प्रतिरक्षा से जुड़ा हुआ है।

पर्वत तापमान तथा वर्षा पर भी प्रभाव डालते हैं। ऊँचे पर्वतों के सहारे जलयुक्त मेघ ऊँचे चढ़कर ठण्डक पाते हैं और उनकी वाष्प द्रवीभूत होकर वर्षा के रूप में परिणित हो जाती है। यही कारण है कि हिमालय पर्वत के दक्षिणी ढालों

पर एवं तराई प्रदेश में पर्याप्त वर्षा होती है। ऊँचे पर्वत अतिशीतल हवाओं के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार फसलों की जाड़े से रक्षा करते हैं। हिमालय पर्वतमालाओं की स्थिति एवं उसके विस्तार का भारत की जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह पर्वत उत्तर भारत को वर्षा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है तथा सर्दियों में उत्तर की ठण्डी हवाओं को रोककर भारत की जलवायु को नियन्त्रित करता है।

पर्वत और प्राकृतिक वनस्पति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्वतीय भागों में अधिक वर्षा होती है जिसमें वनों का विकास होता है। इन भागों में कृषि के अभाव में भूमि पर जंगलों का विस्तार होता है। भारत के उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में अनेक प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। हिमालय पर्वत के निचले ढालों पर घास के चरागाह पाये जाते हैं जहाँ पशु-पालन होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पर्वतों का मनुष्य के स्वभाव, स्वास्थ्य, व्यवसाय, खान-पान तथा आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इनमें हमें अनेक बहुमूल्य पदार्थ भी प्राप्त होते हैं, जो अनेक उद्योगों में कच्चे माल की तरह काम में लाये जाते हैं। पर्वतों से नदियाँ भी निकलती हैं जो उनकी मिट्टी को काट कर मैदानों में बिछाती हैं और इस प्रकार मैदानी मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाती रहती हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि नदियाँ पर्वतों की देन हैं। नदियों के विषय में आगे विस्तार से वर्णन किया गया है।

(ख) पठार (Plateaus)—पठारी भागों में भूमि पथरीली तथा धरातल कठोर और ऊँचा-नीचा होता है जो कृषि उपज के लिए अनुकूल नहीं हो सकता। इन भागों की मिट्टी चट्टानों से बनी होती है किन्तु घाटियों में यह मिट्टी कुछ उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में कृषि को उन्नत किया जा सकता है। पठारी भागों में नहरें बनाना कठिन होता है अतः सिंचाई का अभाव रहता है। जिन भागों में वर्षा पर्याप्त होती है वहाँ तालाब बनाकर उनसे सिंचाई करके कृषि उपज बढ़ायी जा सकती है। पठारों में नदियाँ बहुत तेज गति से बहती हैं, अतः उनके पानी को काम में लाना कठिन होता है। बाँध बनाकर इन नदियों का पानी जलाशयों में इकट्ठा करके जल विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। भारत के दक्षिणी पठार में अनेक स्थानों पर तेज बहने वाली नदियों का पानी इकट्ठा करके जलविद्युत उत्पन्न की जाती है। चूंकि इन पठारों की चट्टानें अति प्राचीन होती हैं अतः इनमें खनिज सम्पदा के भण्डार पाये जाते हैं। ये चट्टानें अनेक प्रकार की लौह एवं अलौह कच्ची धातुओं से भरी पड़ी हैं और धातुजन्य खनिजों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य खनिज भी इनमें पाये जाते हैं जैसे अभ्रक, चूना आदि। जल विद्युत की उपलब्धि एवं धातु तथा अन्य खनिजों की सुविधा इन भागों में भारी औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं में वृद्धि कर देती है। साधारणतया इन भागों में आवागमन की कठिनाई होती है। मानव अपने संघर्षमय जीवन में इन पठारों से अपनी आय बढ़ाने का प्रयास करता है। भारत के

दक्षिणी पठार के उत्तरी-पश्चिमी भाग में जहाँ काली मिट्टी पायी जाती है, अनेक व्यापारिक फसलें की जाती हैं जैसे कपास, मूँगफली, तिल, अफीम आदि।

जिन पठारी भागों में खेती नहीं हो सकती है, वहाँ पशु पालन होता है। पशुओं पर आधारित छोटे उद्योगों का भी विकास होने लगता है। पर्वतों की भाँति पठारी भागों में भी जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत कम होता है।

(ग) मैदान (Plains)—आर्थिक विकास के लिए मैदान सबसे अधिक अनुकूल होते हैं। ये समतल तथा उपजाऊ होते हैं अतः यहाँ कृषि उन्नति अधिक हो सकती है। सिंचाई व्यवस्था में कठिनाई नहीं होती। कृषि में नवीन यन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है। मैदान उद्योगों के लिए कच्चा माल प्रदान करते हैं। यातायात का विकास बिना अधिक कठिनाई के किया जा सकता है, अतः इनका कृषि, उद्योग तथा व्यापार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मानव विकास पर इन सब बातों का प्रभाव पड़ता है। मैदानों में प्रायः अधिक जनसंख्या होती है। संसार की जनसंख्या का ६०% मैदानी भागों में निवास करता है। सभ्यता के विकास तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिए मैदान अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। जिन मैदानों में उर्वरा मिट्टी और अनुकूल जलवायु होती है, वहाँ मानव अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से कर सकता है, क्योंकि उदार प्राकृतिक दशाएँ थोड़े से प्रयत्न से ही उसे आशातीत उत्पादन प्रदान कर देती हैं। अतः मैदान के निवासियों को प्रतिकूल परिस्थितियों में संघर्ष कम करना पड़ता है और उन्हें सोच-विचार करने व आराम करने के लिए अधिक अवकाश मिल सकता है। यही कारण है कि ऐसे लोग अधिक शान्तिप्रिय, विचारक और दार्शनिक हो सकते हैं।

मैदानों की सम्पन्नता से आकर्षित होकर अन्य प्रदेशों के कठोर निवासियों द्वारा प्रायः इन प्रदेशों पर आक्रमण किये जाते रहे हैं। गंगा सतलज का मैदान इसका ज्वलन्त उदाहरण है। शुष्क मैदानों में अधिक उन्नति नहीं हो सकती है क्योंकि पानी के अभाव में कृषि विकास सम्भव नहीं होता। कच्चे माल और नमी के अभाव में उद्योगों का भी विकास नहीं हो सकता है। शुष्क मैदानों और पर्याप्त पानी वाले मैदानों की जनसंख्या, रहन सहन खान-पान और व्यवसाय भिन्न होते हैं। सहारा, अरब एवं भारत के उत्तर पश्चिमी राजस्थान का 'थार-मरुस्थल' (Thar Desert) शुष्क मैदानों के उदाहरण हैं। अतः मरुस्थलीय धरातल प्रायः समतल होते हुए भी कृषि, सिंचाई एवं औद्योगिक विकास की दिशा में अनेक कठिन समस्याएँ उत्पन्न करता है, जिनसे राजस्थान के लोग भलीभाँति परिचित हैं।

(घ) मिट्टियाँ (Soils)—प्राकृतिक साधनों में उपजाऊ मिट्टी महत्त्वपूर्ण होती है। मानव के भोजन, वस्त्र और अन्य उपयोग की अधिकतर वस्तुएँ मिट्टी से प्राप्त की जाती हैं। उपजाऊ मिट्टी वाले भागों में अधिकतर लोग खेती करते हैं। कृषि उन्नति के साथ व्यापार धन्धों का भी विकास होता है। कम उपजाऊ मिट्टी वाले भागों में उपज कम होगी तथा जनसंख्या का घनत्व भी कम होगा। उत्तरी भारत

की कछारी अथवा तलछटी मिट्टियों की उर्वरा शक्ति उत्तम है। नदियाँ निरन्तर इस मिट्टी पर नयी उपजाऊ मिट्टी की परतें जमा करती रहती हैं। अत इस मिट्टी में देश की अनेक बहुमूल्य फसलें होती हैं। इसके विपरीत दक्षिणी प्रायद्वीप की मिट्टी लाल अथवा हल्की लाल है। इसमें कक्ड मिले हुए हैं, अत उपज की दृष्टि से ये मिट्टियाँ उत्तम नही हैं। यही बात पहाडी, दलदली एव रेतीली मिट्टियो पर लागू होती है। अत. प्राकृतिक वनस्पति एव कृषि उपज का मिट्टी की प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यदि किसी प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है, तो वह उस प्रदेश की बहुमूल्य सम्पत्ति मानी जाती है। उदाहरण के लिए, आप सब इस कहावत से भलीभाँति परिचित होगे कि 'उर्वरा मिट्टी सोना उगलती है।' इस दृष्टि से गगा एव सतलज नदी के मैदानो की मिट्टी अत्यन्त उत्तम है।

(इ) नदियाँ (Rivers)—मानव विकास मे नदियो का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल मे मानव सभ्यताओं का विकास प्राय. नदियो की घाटियों मे ही हुआ है। इसका कारण यह था कि नदियाँ प्राचीन काल मे मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी जैसे पेयजल, सिंचाई सुविधा एव यातायात आदि। प्राचीन नदी घाटी सभ्यताएँ इसका प्रमाण हैं। आधुनिक काल मे भी नदी घाटी योजनाएँ मानव के आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण भाग अदा कर रही हैं। सिंचाई जो कि कृषि के लिए अत्यन्त आवश्यक है नदियो द्वारा नहरें निकालकर की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जल विद्युत उत्पादन नदियो द्वारा ही सम्भव हो सका है। विद्युत से कृषि और उद्योगो का विकास होता है। नदियों की घाटियो मे मिट्टी अधिक उपजाऊ होने के कारण विभिन्न खाद्यान्न और व्यापारिक फसलें होती हैं। नदियाँ पहाडो से अच्छी मिट्टी बहाकर मैदानो म बिछा देती हैं जिससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है। उवरा मिट्टी की नयी परत प्रतिवर्ष मिट्टी के ऊपर जमा होती रहती है और कृषि उपज मे वृद्धि करती है। नदियाँ वर्ष भर बहने वाली अथवा वर्षा काल मे बहने वाली होती हैं। वर्ष भर बहने वाली नदियो से लगातार लाभ उठाया जा सकता है। वर्षा ऋतु मे बहने वाली नदियो से बहुत कम लाभ हो पाता है। प्राचीन काल मे नदियो का उपयोग पेयजल, सिंचाई एव आवागमन के साधन के रूप मे किया जाता था। यही कारण था कि अनेक बस्तियाँ नदियो के किनारो पर बसी होती थी। इस प्रकार अनेक प्राचीन मानव सभ्यताओ का विकास नदियों की घाटियो मे ही हुआ और इसीलिये नदियो को 'मानव सभ्यता की देन' कहा जाता है (*Rivers are the cradles of human civilisation*)। इस दृष्टि मे नील, गगा-जमुना, सिन्धु दजला फरात, यॉगटी सीक्यांग, डेन्यूब, पो तथा टेम्स नदियों के उदाहरण दिय जा सकते हैं, जहाँ अनेक सभ्यताओं का उदय हुआ।

अर्वाचीन अथवा आधुनिककाल मे नदियो की उपयोगिता मानव समाज के लिए और भी बढ़ गयी है। अब बहुद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओं (Multipurpose River Valley Projects) का युग है जिनके आधार पर नदियो पर बाँध और

जलाशये बनाकर सिंचाई एव शक्ति के साधनों का विकास करके समस्त नदी घाटी के जीवन को समुन्नत करने का प्रयास किया जाता है। राजस्थान की चम्बल नदी घाटी योजना का उदाहरण हमारे सामने है। भारत की अन्य नदियो पर भी ऐसी परियोजनाओ का निर्माण हुआ है जिनसे कृषि एव उद्योग दोनो को लाभ हुआ है।

मानव जहाँ नदियो से अनेक लाभ उठाता है वहाँ ये मानव को नुकसान भी पहुँचाती हैं। नदियो मे बाढ आने पर अपार जनधन की हानि होती है। आर्थिक विकास मे कठिनाई आती है। बाढ पर नियन्त्रण करने के लिए नदियो पर बाँध बनाये जाते हैं तथा बहुमुखी योजनाएँ चालू की जाती हैं। भारत मे दामोदर नदी की भयानकता को कम करने के उद्देश्य से दामोदर घाटी निगम के अन्तर्गत अनेक बाँधो और जलाशयों का निर्माण किया गया है। इससे नदी का विनाशकारी प्रभाव कम हुआ है तथा रचनात्मक कार्यों म नदी का योगदान बढा है।

(३) जलवायु (Climate)

मानव पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न तत्वो म जलवायु का प्रभाव सर्वाधिक है। यह प्राकृतिक वातावरण का सबसे शक्तिशाली तत्व माना जाता है। मानव अनुकूल जलवायु मे रहना अधिक पसन्द करता है। बर्फीले भागों अथवा मरुस्थलों मे रहने की बजाय मानव उन भागो मे रहना अधिक पसन्द करेगा जहाँ न अधिक गर्मी हो और न अधिक सर्दी हो, अर्थात जलवायु सामान्य या सम-शीतोष्ण हो। जो लोग विषम जलवायु मे रहते हैं वे अपने आप को उन्ही परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं। जलवायु मानव के खान-पान, रहन-सहन आदि को ही निर्धारित नही करती, बल्कि कृषि, उद्योग एव व्यापार की प्रकृति और सीमाओं को भी निर्देशित करती है। मानव एव उसके क्रिया कलापों पर पडने वाले जलवायु के प्रभाव का वर्णन नीचे विस्तार से किया गया है :

(क) जलवायु एवं शारीरिक बनावट व विकास—मानव के शरीर की बनावट और रग जलवायु के आधार पर होते हैं। जलवायु की अधिक उष्णता मे मानव त्वचा के रग को काला बनाने की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार जो जातियाँ अति प्राचीन काल से शीत प्रदेशों मे निवास करती रहीं, वे श्वेताग बन गयीं। विभिन्न कटिबन्धो मे पाये जाने वाले मनुष्यो के शरीर की बनावट म कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। शीत जलवायु मे व्यक्ति अधिक चुस्त पाये जाते हैं जबकि गर्म जलवायु के लोग स्वभावत. अपेक्षाकृत अधिक आराम पसन्द एव आलसी होते हैं। इस प्रकार श्रम की कुशलता पर भी जलवायु का प्रभाव पडता है।

(ख) जलवायु एव स्वास्थ्य—मानव के स्वास्थ्य पर जलवायु का प्रभाव पडता है। मनुष्य जहाँ अधिक स्वस्थ रह सकता है वहाँ कार्य क्षमता भी अधिक होती है। जलवायु के कारण ही विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं जैसे मलेरिया उन भागो म अधिक फैलता है जहाँ वर्षा अधिक होती है तथा नम जलवायु होता है।

अधिक गर्मी एवं नमी अनेक प्रकार के कीड़े मकोड़ों की उत्पत्ति को प्रोत्साहित करती है जैसे मच्छर, मक्खी आदि जो अनेक व्याधियों का कारण बनकर स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा जो क्षेत्र गर्म हैं वहाँ पर भी मनुष्य अधिक स्वस्थ नहीं रह सकता। ठण्डे प्रदेशों में प्रायः स्वास्थ्य उत्तम पाया जाता है जैसे इंगलैण्ड के लोग गर्म प्रदेशों के लोगों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होते हैं तथा उनकी कार्यक्षमता भी अधिक होती है। वास्तव में स्वास्थ्य की दृष्टि से समशीतोष्ण प्रदेश (Temperate regions) सर्वोत्तम होते हैं, क्योंकि वहाँ न अधिक गर्मी पड़ती है और न बहुत अधिक सर्दी। दूसरे शब्दों में, ऐसे प्रदेश गर्मी सर्दी की चरम अवस्थाओं (extreme conditions) से मुक्त होते हैं और वहाँ के निवासियों की बौद्धिक तथा शारीरिक कार्यक्षमता इस प्रकार बढ़ जाती है।

(ग) जलवायु एवं रहन-सहन तथा खान-पान—मनुष्य के मकान, वस्त्र तथा भोजन जलवायु पर निर्भर करते हैं। मनुष्य को ताप व वर्षा से बचने के लिए वस्त्रों व मकानों की आवश्यकता होती है। अधिक गर्म प्रदेशों में मकानों की बनावट ठण्डे प्रदेशों से भिन्न होगी। ठण्डे प्रदेशों में लोग अधिक चुस्त और गर्म कपड़े पहनते हैं जबकि गर्म प्रदेशों के लोग ठण्डे व ढीले-ढाले वस्त्र पहनते हैं। जलवायु का खान-पान पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। शीत प्रदेशों में भोज्य पदार्थों को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके विपरीत उष्ण जलवायु के कारण गर्म प्रदेशों में भोजन जल्दी ही सड़ने लगता है। उत्तर भारत में भी शीत-ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु में हमें अपने खान-पान में जलवायु के अनुसार अनुकूल परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

(घ) जलवायु एवं जनसंख्या—जलवायु के ऊपर जनसंख्या का वितरण निर्भर करता है। अधिक गर्म तथा अधिक ठण्डे प्रदेशों में कम जनसंख्या पायी जाती है। जनसंख्या का अधिक घनत्व प्रायः समशीतोष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। इंगलैण्ड, हालैण्ड, जापान, पश्चिमी जर्मनी आदि इसके उदाहरण हैं। किन्तु जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि की दर का प्रश्न है, वह प्रायः गर्म प्रदेशों में ही अधिक है। कुछ लोगों का विश्वास है कि गर्म जलवायु मानव प्रजनन शक्ति में वृद्धि कर देती है। जिन भागों में अनुकूल जलवायु तथा पर्याप्त प्राकृतिक सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है। कुछ ऐसे प्रदेश भी पाये जाते हैं जहाँ प्राकृतिक संसाधन होते हुए भी जनसंख्या का घनत्व कम होता है क्योंकि वहाँ जलवायु खराब होने के कारण व्यक्ति बसना नहीं चाहते हैं। अतः मानव को बसने के लिए ऐसे प्रदेश अनुकूल होते हैं जहाँ जलवायु एवं अन्य प्राकृतिक दशाएँ दोनों अनुकूल हों।

(ङ) जलवायु एवं कृषि—कृषि विकास जलवायु पर आधारित होता है। कृषि उत्पादन के लिए निश्चित मात्रा में तापक्रम एवं नमी की आवश्यकता पड़ती है। जिन भागों में वर्षा अच्छी होती है वहाँ यदि अन्य दशाएँ अनुकूल हों तो कृषि

उपज अधिक होती है। कम वर्षा वाले भागो मे सिचाई करके फसलें तैयार की जाती हैं। बहुत अधिक ठण्डे प्रदेशो मे अधिक कृषि विकास नहीं हो पाता है जैसे टुण्ड्रा प्रदेशो मे तापक्रम बहुत कम होने के कारण फसलें नही हो पाती हैं। अनेक फसलें केवल विशेष ताप और अधिक नमी उपलब्ध होन पर ही उत्पन्न हो सकती हैं जैसे चावल, जूट, गन्ना आदि। इसके विपरीत कुछ फसलें सामान्य ताप और साधारण नमी चाहती हैं जैसे गेहूँ, बाजरा, ज्वार, कपास आदि। जलवायु के कारण ही उत्तरी अक्षाशो म बसन्तकालीन गेहूँ (Spring wheat) उत्पन्न होता है क्योंकि वहाँ शीत काल मे धरातल हिमाच्छादित हो जाता है। भारत शीतकालीन गेहूँ (Winter wheat) उत्पन्न करता है क्योंकि गर्मी में तापक्रम इतना अधिक हो जाता है कि गेहूँ नही उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न प्रदेशो की फसलों का ढांचा (Crop pattern) बहुत कुछ जलवायु पर निर्भर होता है।

(च) जलवायु एव उद्योग—औद्योगिक विकास म जलवायु का महत्वपूर्ण योगदान है। शुष्क जलवायु प्रदेशो मे औद्योगिक प्रगति अधिक नहीं हो पाती है। साधारणतया समशीतोष्ण प्रदेश औद्योगिक विकास के लिए अधिक अनुकूल समझे जाते हैं। कुछ इस प्रकार के उद्योग होते हैं जो कि नम जलवायु के बिना स्थापित नही किये जा सकते जैसे सूती वस्त्र उद्योग आदि। भारत म बम्बई तथा अहमदाबाद म सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण का जलवायु भी एक प्रमुख कारण है। यद्यपि अब वातानुकूलित कारखानों की स्थापना करके कहीं भी महीन वस्त्रो का उत्पादन किया जा सकता है किन्तु ऐसा करना अधिक व्यय साध्य होता है। जलवायु उद्योगों मे कार्य करने वाले श्रम की कार्यक्षमता को भी प्रभावित करता है। गर्म प्रदेशों में श्रमिक स्वभावत आलसी होते हैं तथा उनकी कार्यक्षमता ठण्डे प्रदेशो की अपेक्षा कम होती है। अत्यधिक ताप शरीर के विभिन्न अवयवो को शिथिल बना देता है, जिससे काम करते समय आवश्यक चुस्ती या फुर्ती मे कमी आ जाती है।

(छ) जलवायु एव परिवहन—जलवायु का प्रभाव आवागमन के साधनों पर भी पडता है। जिन भागो मे कृषि और उद्योगों का अधिक विकास होगा वहाँ जन-सख्या भी अधिक होगी तथा परिवहन के साधनो का भी अधिक विकास होगा। ये सभी जलवायु पर आधारित हैं, अतः परोक्ष रूप से जलवायु यातायात को प्रभावित करती है। आवागमन के मार्गों पर भी जलवायु का प्रभाव पडता है। जिन क्षेत्रों मे वर्फ जमी होती है वहाँ बिना पहिये वाली तथा वर्फ पर फिसलने वाली स्लेज (Sledge) गाडियाँ चलायी जाती हैं। कई प्रदेशो मे अधिक वर्फ होन से आवागमन के मार्ग बन्द हो जाते हैं। इन सबसे यातायात पर काफी प्रभाव पडता है। हम सभी जानते हैं कि वायु परिवहन जलवायु सम्बन्धी दशाओ से कितना अधिक प्रभावित होता है ? मरुस्थलो मे धूल भरी आँधियाँ चलती हैं जिससे सडक तथा रेल की पटरियो पर रेत जमा हो जाती है और आवागमन मे बाधा उत्पन्न हो जाती है।

मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर जलवायु के अत्यधिक प्रभाव के कारण मानव के आर्थिक विकास में जलवायु एक निर्धारक तत्त्व माना जाता है। मानव के मानसिक, बौद्धिक विकास एवं व्यापार पर भी इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। व्यापार कुशलता जलवायु की देन है जैसे अरब तथा राजस्थान के प्रवासी अधिक व्यापार कुशल होते हैं। इसका कारण जलवायु रहा है। जो वस्तुएँ प्रकृति ने उन्हें नहीं दी, उनका अभाव मनुष्य ने अन्य क्षेत्रों से उन्हें लाकर पूरा किया। इन प्रदेशों के निवासियों की व्यापारिक प्रवृत्ति के मूल में यही भावना निहित रही है। कालान्तर में उनकी यह प्रवृत्ति व्यापार कुशलता के रूप में विकसित हो गयी। उनके कठोर परिश्रम ने राजस्थानी प्रवासियों को अधिक कुशल बना दिया। धीरे-धीरे ये व्यापारी भारत के अन्य भागों में फैल गये तथा आज देश के प्रसिद्ध व्यापारियों में गिने जाते हैं। अब तो देश के बड़े-बड़े उद्योगों से भी राजस्थानी प्रवासियों का गहरा सम्बन्ध है।

(४) समुद्रतट (Sea Coast)

समुद्री व्यापार के लिए समुद्रतट रचना महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कटा-फटा समुद्र-तट अच्छा माना जाता है क्योंकि यह अनेक सुरक्षित एवं प्राकृतिक बन्दरगाह प्रदान करता है। इस प्रकार के तटों पर अच्छे बन्दरगाह स्थापित हो जाते हैं जहाँ व्यापारिक जहाज सरलता से माल उतार और चढ़ा सकते हैं। इससे व्यापारिक उन्नति होती है। कटे-फटे तट होने से जहाज बन्दरगाह के निकट तक आ सकते हैं। इंगलैण्ड तथा जापान की व्यापारिक उन्नति का प्रमुख कारण उनका कटा-फटा समुद्र तट है। इस व्यावसायिक उन्नति से आर्थिक स्तर ऊँचा उठता है। अच्छे समुद्रतट होने से निवासियों में नवीन प्रदेशों की खोज करने की प्रवृत्ति बढ़ती है जो उन्हें उत्तम नाविक बनाने में सहायक होती है। इंगलैण्ड की व्यापारिक उन्नति का कारण भी समुद्रतट का उत्तम होना है। कटा-फटा समुद्रतट एवं समीपवर्ती उथले समुद्र मत्स्य व्यवसाय के विकास के लिए अनुकूल होते हैं।

(५) खनिज एवं शक्ति के साधन

देश की आर्थिक उन्नति में खनिज सम्पदा काफी प्रभाव डालती है। लोहा, कोयला, खनिज, तेल, मैंगनीज तथा अभ्रक आदि की उपलब्धि भूगर्भिक चट्टानों की रचना पर निर्भर करती है। प्राचीन चट्टानों में खनिज सम्पदा का भण्डार पाया जाता है। इनका विदोहन करके आर्थिक विकास किया जाता है। खनिज पदार्थों पर उद्योग-धन्धे आधारित होते हैं। खनिज पदार्थों के निकालने के सिलसिले में अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। फलस्वरूप राष्ट्रीय आय बढ़ती है। भारत में "छोटा नागपुर का पठार" औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रदेश है क्योंकि यहाँ पर अनेक मूल-भूत खनिज पदार्थ उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में भारी औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उत्तम दशाएँ मौजूद हैं। देश के समस्त बड़े लौह एवं इस्पात के कारखाने इसी प्रदेश में स्थित हैं। औद्योगिक विकास के लिए शक्ति के साधनों की

उपलब्धि भी आवश्यक है। 'कोयला एव खनिज तेल' भूगर्भ से खनिज के रूप में ही मिलते हैं। अणुशक्ति के लिए आवश्यक यूरेनियम, थोरियम आदि भी खनिज के रूप मे प्राप्त होनी है। जल विद्युत का विकास नदियो के जल प्रवाह बांधो एव जलाशयो के निर्माण आदि पर निर्भर होता है। जिस प्रदेश म शक्ति के उपर्युक्त साधनो की प्रचुरता होगी, विकास की दृष्टि से वह प्रदेश उतना ही अधिक अनुकूल होगा।

(६) प्राकृतिक वनस्पति (Natural Vegetation)

प्राकृतिक वनस्पति पर जलवायु का प्रभाव अधिक पडता है। मनुष्य का भोजन प्राकृतिक वनस्पति से ही मिलता है। वनस्पति से विभिन्न प्रकार की मुख्य तथा गौण उपजें मिलती हैं जिनका काफी आर्थिक महत्त्व है। देश के जिन भागो में कृषि नही हो पाती है वहाँ जगल तथा घास के मैदान पाये जाते हैं। इन चरागाहो मे पशुपालन किया जाता है। कृषि के अभाव वाले क्षेत्रो मे मनुष्य का सम्पूर्ण भोजन वनस्पति तथा जीव जन्तुओ पर आधारित होता है। जीव-जन्तु भी मुख्यत. प्राकृतिक वनस्पति पर ही आधारित होते हैं। अत यह कहना उचित होगा कि मानव अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वनस्पति पर निर्भर होना है। अनेक प्रकार का व्यापारिक एव औद्योगिक कच्चा माल भी वनो से प्राप्त होता है। इमारती लकडी और ईंधन के अतिरिक्त अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ वनो से प्राप्त होती हैं जैसे जडी बूटियाँ, औषधियाँ, फल, गोंद, तारपीन का तल इत्यादि। इन पर अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योग आधारित होते हैं।

वनो का प्रभाव दियासलाई, कागज, रबर आदि उद्योगो पर पडता है। इन उद्योगो को कच्चा माल वनस्पति से मिलता है। अत प्राकृतिक वनस्पति का प्रभाव मानव के खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवसाय पर पडता है।

(७) पशु सम्पदा (Animal Wealth)

पशुओ तथा जीवो से मनुष्य को भोजन प्राप्त होता है। पशुओ से दूध तथा माँस मिलता है और वस्त्रो के लिए ऊन प्राप्त होती है। पशुओ के बाल तथा खालो को वस्त्र आदि के उपयोग मे लिया जाता है। इनसे चमडा प्राप्त किया जाता है जिस पर चमडा उद्योग आधारित है।

कृषि कार्यों मे बैल तथा ऊँट को हल चलाने के काम मे लाते हैं। कुओं से पानी खीचने के काम मे भी पशुओ को लिया जाता है। यातायात म इनका बहुत महत्त्व है। बैल, ऊँट, घोडे आदि गाडियो के चलाने के काम आते हैं। इसके अलावा पशु बोझा ढोने के काम भी आते हैं। मानव के आर्थिक विकास मे पशु सम्पदा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अनेक देशो म पशुओ की अच्छी नस्ल के कारण दुग्ध व्यवसाय (dairy farming) का विकास हो गया है, जैस न्यूजीलैण्ड, हालैण्ड, डेनमार्क, कनाडा आदि। इसी प्रकार माँस व्यवसाय भी उन प्रदेशो म पनपा है जहाँ पशु पर्याप्त सख्या मे पाये जाते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मानव जीवन पर विभिन्न प्राकृतिक तत्वों का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की प्रत्येक आर्थिक क्रिया इन तत्वों पर आधारित है। किन्तु यह समझना भूल होगी कि इस सक्रिय प्राकृतिक वातावरण में मानव एक निष्क्रिय दर्शक मात्र है। अपने बाहुबल एवं बुद्धिबल के द्वारा वह प्रतिकूल वातावरण को अपने अनुकूल बनाने का निरन्तर प्रयास करता रहता है। अपने प्रारम्भिक विकास के युग में निश्चय ही मानव प्रकृति का दास (slave of nature) था, किन्तु आज यह कहना उचित नहीं होगा। अपने वातावरण में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन की प्रतिक्रिया मानव पर होती है, किन्तु यदि प्रकृति सक्रिय है तो आज मानव भी मूक दर्शक मात्र न होकर सक्रिय पक्ष बन गया है। अपने कौशल के द्वारा वह प्राकृतिक वातावरण को यथासम्भव अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है, यद्यपि उसमें आमूल परिवर्तन कर सकना आज भी मानव की शक्ति से परे है। प्रकृति यद्यपि अत्यन्त प्रबल है फिर भी विज्ञान के इस युग में मानव की प्रकृति पर विजय के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। यह कहना भी कठिन है कि केवल प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। सामाजिक परिस्थितियाँ भी मानव जीवन को बहुत सीमा तक प्रभावित करती हैं।

सामाजिक वातावरण
(Social Environment)

सामाजिक परिस्थितियाँ मनुष्य द्वारा बनायी गयी हैं। मानव के युगों-युगों के संघर्षों का परिणाम सामाजिक वातावरण है। प्रकृति से निरन्तर संघर्ष के लिए मनुष्य ने कुछ सामाजिक संगठन बनाये हैं जिनके द्वारा अनेक सामाजिक प्रथाओं एवं संस्थाओं में समाज विभाजित होता है। केवल प्राकृतिक वातावरण की सम्पन्नता के बल पर ही कोई देश तब तक आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता जब तक कि उसका सामाजिक वातावरण भी उन्नत न हो जाय। सामाजिक वातावरण जाति-व्यवस्था तथा धार्मिक विचारधाराओं से बना हुआ होता है। सामाजिक परिस्थितियों में निम्न तत्त्व पाये जाते हैं :

(१) धार्मिक विचारधाराएँ (Religious Outlook)

धर्म एवं जीवन दर्शन में भाग्यवाद, पलायनवाद, अहिंसा आदि बातों पर जोर दिया जाता है तथा इनका प्रभाव मानव के जीवन पर पड़ता है। मनुष्य अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर धन्धे करता है। वह किसी धर्म विशेष को मानने के कारण उस धर्म में वर्जित धन्धे नहीं करता। कुछ धर्मों में शराब को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है अतः उसको मानने वालों द्वारा इस व्यवसाय को प्रायः नहीं अपनाया जाता। अतः धार्मिक विचारधाराओं का प्रभाव खान-पान, रहन-सहन, तथा व्यापार पर पड़ता है। वैसे अपने शास्त्रीय रूप में कोई भी धर्म आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक नहीं होता। किन्तु धर्म के नाम पर समाज पर लगाये जाने वाले बन्धन प्रायः आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। प्रायः यह माना जाता

है कि एक औसत भारतवासी जन्म से ही भाग्यवादी होता है। यह धार्मिक परम्पराओं का ही प्रभाव है जो कि कुछ अंशों में आज भी एक औसत भारतीय पर लागू हो सकता है।

(२) सामाजिक रीति-रिवाज—परम्पराएँ तथा संस्थाएँ (Social Customs—Traditions and Institutions)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः सामाजिक बन्धनों का पालन करना उसके लिए आवश्यक हो जाता है। मनुष्य जिस समाज में रहता है उसके कुछ बन्धन होते हैं और उन्हीं बन्धनों के अन्तर्गत उसके सदस्यों का कार्यक्षेत्र सीमित हो जाता है। अगर इन बन्धनों से बाहर कोई कार्य किया जाता है तो सामाजिक शक्तियाँ अपना प्रभाव दिखाती हैं। मनुष्य किसी जाति विशेष में होने के कारण जाति के बन्धनों से भी निर्वाह करने के लिए बाध्य होता है। कट्टर एवं रूढ़िवादी सामाजिक बन्धन विकास के मार्ग में बाधक होते हैं। इसके विपरीत उदार एवं प्रगतिशील समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सकता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार प्रथा का भी मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है। संयुक्त परिवार में जितने सदस्य होते हैं उनका खान-पान, रहन-सहन और व्यवसाय साधारणतया समान होता है। आजकल शिक्षा के प्रसार से जाति प्रथा तथा संयुक्त परिवार प्रथाओं का प्रभाव कम हो रहा है। जातिप्रथा, छूआछूत, पर्दा-प्रथा, बाल एवं वृद्ध विवाह आदि भारतीय सामाजिक वातावरण के दोष रहे हैं और कुछ अंशों में आज भी विद्यमान हैं। इनके कारण भारतीय समाज अनेक बन्धनों और रूढ़ियों में जकड़ा रहा है और इस कारण देश के विकास में बाधाएँ उत्पन्न हुई हैं। स्वतन्त्रता के बाद से भारतीय सामाजिक वातावरण के इन दोषों एवं सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने की दिशा में निरन्तर प्रयास किया जाता रहा है तथा कुछ अंशों में इसमें सफलता भी मिली है।

(३) शासन प्रणाली (Political System)

देश का आर्थिक विकास शासन व्यवस्था पर आधारित होता है। शासन प्रणाली विकास की परिस्थितियाँ पैदा करती है। शासन प्रणाली पूँजीवादी, समाजवादी अथवा साम्यवादी किसी भी प्रकार की हो, मानव की आर्थिक क्रियाएँ शासन प्रणाली द्वारा निर्धारित की जाती हैं। कृषि, उद्योग व व्यापार का विकास सरकारी नीति के आधार पर होता है। मनुष्य के आर्थिक कल्याण तथा उसकी गरीबी को दूर करने का सरकार प्रयत्न करती है। सरकार की नीति जिस क्षेत्र के लिए सहानुभूति पूर्ण होगी, उसका विकास अधिक हो सकेगा। अतः जनता की समृद्धि शासन प्रणाली पर आधारित होती है।

शासन प्रणाली साधारणतया राजनैतिक विचारधाराओं से प्रभावित होती है अतः राजनैतिक विचारों का प्रभाव भी आर्थिक क्रियाओं पर पड़ता है। राजनैतिक

दृष्टिकोण से जिन बातों को अधिक प्रोत्साहन दिया जायगा उनका विकास भी अधिक हो सकेगा ।

आर्थिक विकास देश की सुरक्षा व्यवस्था पर भी आधारित रहता है । सुरक्षा व्यवस्था के लिए सरकार कानून बनाती है और शान्ति बनाये रखने के प्रयत्न करती है । बाहरी आक्रमण से सरकार देश की रक्षा करती है । अत शासन व्यवस्था का आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है । राजनीतिक पराधीनता अथवा गुलामी की दशा में कोई भी देश अपने आर्थिक विकास के लिए स्वतन्त्र नीतियों का निर्माण नहीं कर सकता । अत विदेशी शासक पराधीन देश का आर्थिक शोषण करते हैं ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में जो सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए हैं उसमें सरकार का प्रमुख योग रहा है । नियोजित अर्थ व्यवस्था में कृषि, उद्योग तथा व्यापार का सन्तुलित विकास करने का प्रयत्न किया गया है । शिक्षा का प्रसार, रोजगार में वृद्धि, श्रमिक की उत्पादकता में वृद्धि तथा उद्योगों के विनियोजन में काफी वृद्धि हुई है । सन १८६८ के पश्चात् मेजी युग (Meigi-Era) में जापान के आर्थिक विकास में भी सरकार का प्रमुख योगदान रहा । सन् १६१७ के बाद रूस के आर्थिक नियोजन में भी शासन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

(४) शिक्षा प्रणाली (Educational System)

मनुष्य का विकास शिक्षा प्रणाली पर भी आधारित रहता है । सामान्य शिक्षा तथा तकनीकी ज्ञान दोनों का आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है । जिन देशों में तकनीकी ज्ञान की अधिक वृद्धि हुई है उनका आर्थिक विकास अधिक हुआ है । कुछ देशों में तकनीकी ज्ञान का अभाव पाया जाता है, इस वजह से आर्थिक उन्नति नहीं हो पायी है । विकासशील राष्ट्रों में शिक्षा का विस्तार हो रहा है । शिक्षा का प्रभाव कृषि, उद्योग तथा व्यापार की उन्नति पर पड़ता है । इंगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति में तकनीकी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा । शिक्षा से मनुष्य का मानसिक विकास होता है । यह अधिक सोचने की शक्ति प्रदान करती है और कार्य-कुशलता में वृद्धि करती है । अत. देश की समृद्धि शिक्षा के विस्तार पर आधारित है ।

(५) जनसंख्या (Population)

जनसंख्या की अधिकता अथवा न्यूनता सामाजिक वातावरण को प्रभावित करती है । जनसंख्या और आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है । जनसंख्या के अधिक घनत्व वाले स्थानों का रहन-सहन, खान पान तथा व्यवसाय कम घनत्व वाले स्थानों से भिन्न होगा । जहाँ अधिक श्रमिक उपलब्ध होते हैं वहाँ औद्योगिक उन्नति अधिक होती है । अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों में यातायात तथा संदेशवाहन के साधनों का अधिक विकास होता है । जनाधिक्य से बेरोजगारी तथा खाद्य समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका प्रभाव राष्ट्रीय आय पर पड़ता है । जनाधिक्य से देश के लोगों का जीवनस्तर भी निम्न होगा । उदाहरणार्थ, भारत में जनसंख्या अधिक है अतः खाद्य

तथा बेरोजगारी की समस्याएँ बढ़ रही हैं। विकास में बाधाएँ आ रही हैं। अभावपूर्ण सामाजिक वातावरण, राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक हो रहा है। जनसंख्या नियन्त्रण के उचित तरीकों का प्रयोग करके ही इसमें सुधार सम्भव है। किन्तु ऐसा करना तत्काल सम्भव नहीं होता। यह एक दीर्घकालीन उपचार है।

जिन भागों में जनसंख्या बहुत कम होती है वहाँ भी आर्थिक विकास पूर्णरूप में नहीं हो पाता है। इन भागों में यातायात के साधनों का अभाव रहता है और उद्योग-धन्धों का विकास सम्भव नहीं हो पाता है।

उक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों पर प्राकृतिक तथा सामाजिक दोनों ही परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ विकास की सम्भावनाओं की सीमाएँ निर्धारित करती हैं और सामाजिक परिस्थितियाँ उन सीमाओं तक विकास स्तर को प्राप्त करने में मनुष्य को उत्साहित करती हैं। जो प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं उनका उपयोग किस प्रकार किया जायगा। यह सब सामाजिक वातावरण निर्धारित करता है। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है "मानव अपने वातावरण की उपज है।"

प्रश्न

१. भारत के आर्थिक विकास पर भौगोलिक वातावरण के प्रभाव की विवेचना करिए। (राजस्थान, १९६८)

२. "किसी भी देश के मनुष्यों का रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा संयोग की बात नहीं वरन् भौगोलिक परिस्थितियों का परिणाम है।" इस कथन की पुष्टि भारत का उदाहरण देकर कीजिए। (राजस्थान, १९६७)

३. "मनुष्य के आर्थिक जीवन पर जलवायु का बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।" यह कथन भारत के सम्बन्ध में कहाँ तक सत्य है? (राजस्थान, १९६६)

४. "मनुष्य अपने वातावरण की उपज है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? भारत के उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

५. क्या आप भारत की स्थिति और जलवायु को आर्थिक विकास के अनुकूल समझते हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर समझाइए। (राजस्थान, १९६६)

६. प्राकृतिक वातावरण से मनुष्य किस प्रकार सम्बन्धित है? अपना दृष्टिकोण समझाने के लिए कुछ भारतीय उदाहरण प्रस्तुत कीजिए। (राजस्थान, १९७०)

अध्याय २

भारत की भौगोलिक स्थिति

(GEOGRAPHICAL SITUATION OF INDIA)

पर्वतों एवं समुद्र से घिरा हुआ भारत एक विशाल राष्ट्र है। आकार की दृष्टि से इसका विश्व में सातवाँ स्थान है। देश की सांस्कृतिक तथा सामाजिक विभिन्नताओं के होते हुए भी समस्त राष्ट्र एकता के सूत्र में बँधा हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से भारत की स्थिति अत्यन्त उपयुक्त है। इसके उत्तर में हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं जो कि भारत को एशिया के अन्य देशों से अलग करती हैं। तीन ओर समुद्रतट होने के कारण अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने की सुविधा भारत को प्राप्त है। वायु मार्गों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति महत्त्वपूर्ण है। कुछ विद्वानों ने भारत को महाद्वीप तथा कुछ ने उप-महाद्वीप कहा है। देश की भौगोलिक विभिन्नताओं ने वस्तुतः ऐसी विचारधारा को जन्म दिया और भारत को एक उप-महाद्वीप कहकर कुछ निहित स्वार्थों को, देश का विभाजन करवा देने में सफलता भी मिली। किन्तु यदि भली प्रकार विचार किया जाय तो हमें प्रतीत होगा कि भारत न तो एक महाद्वीप है और न ही एक उप-महाद्वीप है, बल्कि एक ऐसा महादेश है जो अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी पूर्ण एकता के सूत्र में बँधा हुआ है। देश की सीमा अधिकांशतः प्राकृतिक है, क्षेत्रफल विस्तृत है तथा प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों की प्रचुरता है। अतः भारत एक महान देश है।

विश्व में स्थिति

(Location on the Globe)

उत्तरी गोलार्ध के पूर्व में स्थित भारत चतुष्कोणी आकार का है। भारत के सबसे अधिक दक्षिणी स्थान से विषुवत रेखा ६४० कि० मी० दक्षिण में है। विषुवत रेखा के उत्तर में यह दक्षिण से उत्तर ८° ४′ से ३७° ६′ उत्तरी अक्षांशों (Latitudes) और पश्चिम से पूरब ६८° ७′ से ९७° २५′ पूर्वी देशान्तरों (Longitudes) के बीच फैला हुआ है। भारत को कर्क रेखा (२३½ उत्तरी अक्षांश) दो भागों में बाँटती है। उत्तरी भाग गर्म समशीतोष्ण तथा दक्षिणी भाग उष्ण कटिबन्ध में सम्मिलित किये जाते हैं। ८२½° पूर्वी देशान्तर भारत को पश्चिमी तथा पूर्वी दो भागों में विभक्त करता है तथा इस देशान्तर के आधार पर ही भारतीय प्रामाणिक समय (Indian Standard Time) का हिसाब लगाया जाता है अर्थात जब सूर्य

इस देशान्तर के ठीक शीर्ष पर होता है तब समस्त भारत मे मध्याह्न का समय माना जाता है और तदनुरूप सभी घडियो मे समय निर्धारित किया जाता है।

भारत की स्थिति अन्य देशो के साथ सम्पर्क रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों पर स्थित होने के कारण भारत अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

विश्व मे भारत की स्थिति

का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यूरोप से पूर्वी देशो की ओर जाने वाले प्राय. सभी जलपोत भारतीय बन्दरगाहो पर रुकते हैं। इसी प्रकार भारत वायुमार्गों का भी प्रमुख केन्द्र बन गया है। यह सब देश की अनुकूल भौगोलिक स्थिति के कारण ही सम्भव हो सका है।

यह पश्चिम मे अरब, अफ्रीका तथा यूरोप, पूर्व में बर्मा, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया, थाइलैण्ड, जापान आदि देशो से समुद्री मार्गों द्वारा जुडा हुआ है। हिमालय पर्वत भारत के लिए एक सुरक्षात्मक दीवार का कार्य करता है। दक्षिण मे समुद्र इसको सुरक्षा प्रदान करता है और इसकी जलवायु पर भी प्रभाव डालता है।

स्थिति का प्रभाव

भारत की स्थिति का देश के व्यापार, सुरक्षा तथा जलवायु पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। यह प्रभाव निम्न प्रकार है :

(१) व्यापार—भारत की स्थिति व्यापार के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इसकी भौगोलिक स्थिति मध्यवर्ती (Central) है अर्थात् विश्व के महत्त्वपूर्ण प्रदेश इसके आसपास स्थित हैं। अतः इसका व्यापारिक सम्बन्ध, विदेशो से प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। पूर्वी राष्ट्रों तथा पश्चिमी यूरोपीय देशो के मध्य मे स्थित होने के कारण इसे विदेशी व्यापार की सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं। यह विभिन्न

अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों पर स्थित है अत व्यापारिक उन्नति होने की अधिक सम्भावनाएँ हैं। भारत की स्थिति का महत्त्व स्वेज मार्ग के खुल जाने से और भी अधिक हो गया। फिलहाल अरब-इजरायल संघर्ष के कारण यह नहर मार्ग बन्द पड़ा है। इस कारण भारत को ही नहीं, पश्चिमी राष्ट्रों को भी भारी आर्थिक हानि तथा असुविधा उठानी पड़ रही है। यूरोप से आने वाले यात्री एवं मालवाहक जहाजों को अफ्रीका का पूरा चक्कर लगाकर केपटाउन (Capetown) होकर आना पड़ता है जिससे अधिक समय और व्यय लगता है। इस नहर मार्ग को पुन: चालू करवाने के लिए राजनीतिक स्तर पर प्रयत्न हो रहे हैं और आशा है कि निकट भविष्य में ये प्रयास सफल हो सकेंगे। भारत के दक्षिण में तीन ओर समुद्र तट होने के कारण तटीय व्यापार के लिए भी देश को पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त हैं।

(२) सुरक्षा—देश की भौगोलिक स्थिति का राष्ट्र की सुरक्षा पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत एक वृहत दीवार का कार्य करता है। दक्षिण में हिन्द महासागर, पश्चिम में अरब सागर और पूर्व में बगाल की खाड़ी होने के कारण भारत एक सुरक्षित गढ़ की तरह है। इस प्रकार की स्थिति देश को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित बनाती है। किन्तु आधुनिक युद्ध, स्थल और समुद्र से कम, तथा वायु से अधिक लड़ा जाता है। अत. देश की प्राकृतिक सीमाओं का सामरिक या सैनिक महत्त्व अब उतना नहीं रहा जितना कि पहले था।

(३) जलवायु—भारत के जलवायु पर भी स्थिति का महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। विषुवत रेखा के निकट होने के कारण यहाँ उष्ण जलवायु पायी जाती है। हिमालय तथा अन्य पर्वत श्रेणियाँ अरब सागर तथा बगाल की खाड़ी से आने वाली वाष्प युक्त हवाओं को रोककर देश के विभिन्न भागों को वर्षा प्रदान करने में सहायक है। उत्तर की ठण्डी हवाओं को रोककर हिमालय शीत ऋतु में भारत की जलवायु को सामान्य बनाता है, जिससे भारत बर्फीली ठण्डी हवाओं से बचा रहता है तथा इस मौसम में होने वाली रबी की फसल पर विशेष प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। प्राकृतिक बनावट की भिन्नता के कारण जहाँ एक ओर विश्व की सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र भारत में है वहाँ दूसरी तरफ सबसे कम वर्षा वाला क्षेत्र भी यहीं स्थित है। भारत की भौगोलिक स्थिति का यहाँ की जलवायु पर जो प्रभाव पड़ा है, उसके कारण देश की जलवायु अनेक दृष्टि से अनुकूल सिद्ध हुई है। गर्म देश होते हुए भी और सीमित तथा अनिश्चित वर्षा-ऋतु के बावजूद राष्ट्र के अधिकांश भाग में फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं तथा अन्य आर्थिक गतिविधियाँ सुविधापूर्वक सम्पन्न हो सकती हैं। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि देश की भौगोलिक स्थिति ने यहाँ की जलवायु में जहाँ कुछ गुणों का समावेश किया है, तो दूसरी ओर इसमें कतिपय दोष भी उत्पन्न किये हैं। अतः जलवायु पर भौगोलिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन

करते समय हम इसके उत्तम एवं विपरीत दोनों प्रकार के प्रभावों का विश्लेषण करना चाहिए।[1]

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सुरक्षा तथा जलवायु पर देश की स्थिति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। भारत की भौगोलिक स्थिति वास्तव में कृषि, उद्योग एवं अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के लिए उत्तम है। प्राय यह कहा जाता है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर मानसूनी जलवायु का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और मानसूनी जलवायु हमारी भौगोलिक स्थिति से प्रभावित है। अत दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि परोक्ष रूप में भारत की भौगोलिक स्थिति देश के आर्थिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करती है।

क्षेत्र व विस्तार

भारत का क्षेत्रफल ३२,६८ ०६० वर्ग किलोमीटर है।[2] भारत का फैलाव उत्तर से दक्षिण ३,२१६ किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम २,६७७ किलोमीटर है। भारत की स्थल रेखा १५,१६८ किलोमीटर लम्बी है। क्षेत्रफल या आकार की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है। आकार में रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया और चीन भारत से बड़े हैं। उदाहरण के लिए, भारत से संयुक्त राज्य अमरीका लगभग तीन गुना और रूस लगभग छह गुना आकार में बड़ा है। किन्तु अनेक ऐसे देश भी हैं जो आकार में भारत से बहुत छोटे होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से भारत से अधिक विकसित हैं। ब्रिटेन और जापान इसके उदाहरण हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत इंगलैण्ड से १२ गुना तथा जापान से ८ गुना बड़ा है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारत का क्षेत्र अन्य देशों की तुलना में मानव के लिए अधिक उपयोगी है। यहाँ के धरातल का ४२% मैदानी भाग है जो कि कृषि आदि के लिए हमें उपलब्ध है, जबकि विश्व के सम्पूर्ण धरातल का मैदानी भाग ४०% से अधिक नहीं है। इसके अलावा पठारी भाग और कुछ पहाड़ी भाग भी मनुष्य के लिए अनेक प्रकार से उपयोगी हैं। क्षेत्र एवं विस्तार का भी भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा है। मैदानी भागों में कृषि की जाती है और पठारी तथा पहाड़ी भागों में पशुपालन का व्यवसाय अपनाया जाता है। विश्व की तुलना में भारत में क्षेत्रफल के अनुपात में जनसंख्या का अनुपात कहीं अधिक है। अत. इसका भी अर्थ-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। भारत विश्व के कुल स्थल क्षेत्र के केवल २ २ प्रतिशत भाग का ही प्रतिनिधित्व करता है, जबकि विश्व की कुल जनसंख्या का १५ प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है। क्षेत्रफल एवं जनसंख्या

---

[1] जलवायु पर देश की भौगोलिक स्थिति के प्रभाव के विस्तृत वर्णन के लिए अध्याय ४ का अध्ययन कीजिए।

[2] *India*, 1970

का यह विषम अनुपात विश्व में भारत की भौगोलिक स्थिति का एक प्रमुख पहलू है जो हमारे समक्ष अनेक आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न करता है।

समुद्रतट रेखा

भारत के समुद्रतट की लम्बाई ५,६८६ किलोमीटर है। यह बहुत कम कटा-फटा है। समुद्रतट, जो अधिक कटा-फटा होता है, वह अच्छा माना जाता है, क्योंकि वहाँ प्राकृतिक पोताश्रय बनाये जा सकते हैं। भारत में समुद्रतट की यह विशेषता है कि वह अधिक कटा-फटा नहीं है अतः यहाँ प्राकृतिक तथा बड़े पोताश्रयों का अभाव पाया जाता है।

भारत के समुद्र तट को पश्चिमी व पूर्वी तट, दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी तट के उत्तरी भाग को कोंकण तट और दक्षिणी भाग को मलाबार-तट कहा जाता है। कांदला, बम्बई तथा कोचीन पश्चिम तट के प्रमुख प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। पूर्वीतट को कोरोमण्डल-तट तथा कर्नाटक-तट आदि दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पूर्वी तट पर कलकत्ता, विशाखापट्टनम तथा मद्रास प्रमुख बन्दरगाह हैं।

भारत के समुद्र तट का हमारी अर्थ-व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। समुद्र तट पर कई बड़े-बड़े बन्दरगाह हैं जो कि अन्तरराष्ट्रीय समुद्री मार्गों पर अथवा उनके निकट पड़ते हैं। इनसे व्यापार की सुविधा उपलब्ध है। इसके अलावा तटीय व्यापार भी होता है। समुद्र तटीय भागों में मछली उद्योग अधिक उन्नति कर रहा है। बन्दरगाहों की स्थापना हो रही है। तटीय भागों में कहीं-कहीं झीलें तथा खाड़ियाँ भी पायी जाती हैं। इनका भी आर्थिक महत्त्व है। इनसे खनिज पदार्थ तथा कई प्रकार के रासायनिक उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध हो सकता है। अनुमान है कि खम्भात की खाड़ी के उथले सागर-तल के नीचे खनिज तेल का प्रचुर भण्डार संचित है जिसे समुद्र में तेल-कूपों का निर्माण करके उपलब्ध किया जा सकता है। मार्च सन् १९७१ में खम्भात की खाड़ी में अलियाबेट के निकट उथले समुद्र में भारत का प्रथम तेल-कूप खोदा गया है तथा इसमें आगे इस दिशा में और प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया है। हिन्द महासागर में कई प्रकार के खनिज पदार्थों की सम्भावना है जैसे नमक, सोडियम, पोटेशियम, क्लोरीन और मैग्नेशियम। परन्तु अभी तक इस खनिज सम्पदा का समुचित विदोहन नहीं हो पाया है।

स्थल रेखा

भारत की स्थल रेखा लगभग १५,१६८ किलोमीटर है। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत प्राकृतिक सीमा बनाता है। यह एशिया के अन्य देशों से भारत को अलग करता है। उत्तर में चीन, नेपाल और भूटान तथा पश्चिम की तरफ पाकिस्तान है। भारत व पाकिस्तान के मध्य अनेक स्थानों में कृत्रिम सीमाएँ हैं। थोड़ी

दूर तक रावी तथा सतलज नदियाँ सीमा बनाती हैं और शेष भाग में शुष्क मैदान हैं। ऐसी सीमा अनेक राजनीतिक समस्याओं को उत्पन्न कर सकती है। भारत के पूर्व में ब्रह्मा तथा पूर्वी पाकिस्तान हैं। पूर्वी पाकिस्तान तथा भारत के मध्य भी प्राकृतिक सीमा नहीं है। पूर्व पाकिस्तान की सीमा एक ओर बिहार और पश्चिम बंगाल से मिलती है और दूसरी ओर त्रिपुरा, मेघालय और असम से मिलती है। ब्रह्मा तथा भारत के बीच छोटी पर्वत श्रेणियाँ और घने जंगल पाये जाते हैं, अतः इनसे होकर आना-जाना अत्यन्त ही कठिन है।

भारत की स्थल सीमा का स्थल व्यापार पर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि एशिया के देशों से हिमालय पर्वत ने भारत को अलग कर रखा है। इन देशों से स्थल व्यापार नगण्य है। परन्तु देश की सुरक्षा में भारत की स्थल सीमा अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। उत्तर के बाहरी आक्रमण को हिमालय पर्वत रोकता है तथा भारत की रक्षा करता है, यद्यपि आधुनिक युद्ध के सन्दर्भ में ऐसी सीमाओं का सामरिक महत्व अब धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहा है। फिर भी प्राकृतिक सीमा रण कौशल एवं बाहरी आक्रमण से सुरक्षा की दृष्टि से आज भी उपयुक्त मानी जाती है।

भारतीय द्वीप

भारत के समुद्रतट के पास द्वीपों की बहुलता नहीं है। पश्चिमी तट के उत्तरी भागों में कच्छ तथा खम्भात की खाड़ी है। कच्छ की खाड़ी के पास कुछ छोटे-छोटे द्वीप हैं। खम्भात की खाड़ी में भी परिम तथा दयाल तथा अन्य बहुत से छोटे-छोटे द्वीप हैं। इस खाड़ी के पास द्यू द्वीप भी स्थित है। कच्छ तथा खम्भात की खाड़ी के इन छोटे-छोटे द्वीपों में मछली व्यवसाय होता है। बम्बई के पास एलीफैन्टा द्वीप है और साल्सेट द्वीप पर बम्बई स्थित है जो कि वास्तव में द्वीप न होकर प्रायद्वीप ही है। पश्चिमी तट से थोड़ी दूर मिनीकाय, अमीन द्वीप तथा लक द्वीप हैं। ये मूँगे के द्वीप कहलाते हैं। भारत तथा लंका के मध्य पाम्बन द्वीप है। इसके अतिरिक्त समुद्र तट के निकट हरिकोटा द्वीप तथा अन्य छोटे-छोटे द्वीप स्थित हैं।

कलकत्ता से लगभग १,२५० किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह स्थित हैं। अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह में कुल मिलाकर २२३ द्वीप समूह हैं जिनमें से २०४ द्वीप अण्डमान तथा १९ द्वीप निकोबार द्वीप समूह में सम्मिलित हैं।

भारत के समुद्र तट के बहुत ही निकट स्थित द्वीप समूहों का कोई विशेष आर्थिक महत्व नहीं है। मछली व्यवसाय के लिए कुछ सुविधाएँ अवश्य प्राप्त हैं। किन्तु सामरिक दृष्टि से इन द्वीपों की भविष्य में उज्ज्वल सम्भावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता है।

विभिन्नताओं में एकता (*Unity in Diversity*)

भारत में राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं परन्तु फिर भी समस्त राष्ट्र एक अक्षुण इकाई के रूप में सघीकृत है। भारतीय संस्कृति इन विभिन्नताओं को अपने अन्दर इस प्रकार सजोए हुए है जिससे राष्ट्र के समक्ष इन विभिन्नताओं मे कोई सार नहीं रह जाता है। भारत को कई राजनैतिक भागों मे विभक्त किया जाता है जो कि एक सूत्र में बँधे हुए हैं। सामाजिक रीति-रिवाजों मे तथा धार्मिक विचारधाराओं म भी काफी विभिन्नताएँ हैं फिर भी उनमें मौलिक एकता दृष्टिगोचर होती है। देश की एकता को सुदृढ बनाने वाले नदियों के जल-प्रवाह और पवित्र धार्मिक स्थान हैं जो कि उत्तर-दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारो भागो में स्थित हैं।

भारत की स्थिति की प्रमुख विशेषताएँ

भारत की स्थिति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) भारत विषुवत रेखा के उत्तर मे स्थित है। इसके कारण यहाँ का जलवायु उष्ण जलवायु है। यह मानसूनी हवाओं के मार्ग में स्थित है। इन हवाओं का देश की अर्थ व्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कर्क रेखा के देश के मध्य में से गुजरने के कारण उत्तरी भारत गरम समशीतोष्ण तथा दक्षिणी भारत उष्ण कटिबन्ध मे सम्मिलित किया जाता है। फिर भी उत्तर में हिमालय पर्वत एवं दक्षिण में समुद्र का फैलाव कुछ इस प्रकार का है कि वह उत्तरी भाग की जलवायु को अधिक विषम होने से रोकता है तथा दक्षिणी भाग की जलवायु को पर्याप्त समता प्रदान करता है।

(२) विश्व म भारत की स्थिति मध्यवर्ती है। एशिया, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया से व्यापार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। स्वेज नहर के द्वारा यूरोपीय देशों से भी व्यापार की कठिनाई दूर हो गयी है। भारत की मध्यवर्ती स्थिति होने के कारण देश का अनेक अन्तरराष्ट्रीय जल एवं वायु मार्गों से सम्बन्ध स्थापित हो सका है अतः व्यापारिक दृष्टि से भारत की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त उत्तम मानी जाती है।

(३) भारत की सीमा अधिकतर प्राकृतिक है। उत्तर में हिमालय पर्वत प्राकृतिक सीमा बनाता है। दक्षिण में तीन ओर समुद्र तट रेखा है। प्राकृतिक सीमा से देश की सुरक्षा में मदद मिलती है, किन्तु देश के विभाजन के पश्चात् पश्चिमी एवं पूर्वी-पाकिस्तान के साथ भारत की सैकड़ों किलोमीटर की सीमा कृत्रिम है जिस पर सीमांकन करना तथा सुरक्षा चौकियों की स्थापना करना एक दुरूह कार्य बन गया है। सीमाओं की यह कृत्रिम प्रकृति भारत और पाकिस्तान म अनेक प्रकार के विवादों को जन्म देती है जो कभी-कभी संघर्ष का रूप भी ले लेते हैं।

(४) भारत के तीन तरफ समुद्र है। अतः तटीय व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार दोनों को सुविधाएँ प्राप्त हैं। भारत के समुद्र तट की विशेषता है कि वह अधिक कटा-फटा नहीं है। सीधी सपाट तट रेखा उत्तम प्राकृतिक बन्दरगाहों के अभाव के लिए उत्तरदायी है।

(५) भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल २.२ प्रतिशत है। इसके विपरीत विश्व की कुल जनसंख्या का १५ प्रतिशत भाग भारत में बसा हुआ है। अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल में विश्व की अधिक जनसंख्या का निर्वाह करने के लिए भारत विवश है। यह स्थिति हमारी अनेक आर्थिक समस्याओं की जननी है। राष्ट्रीय क्षेत्रफल को बढ़ाना न तो सम्भव ही है, और न उचित ही, किन्तु जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी करके भारत इस विषम स्थिति से छुटकारा अवश्य पा सकता है।

(६) विदेशी व्यापार के लिए यह आवश्यक है कि देश की स्थिति विश्व के बाजारों के समीप हो। भारत की स्थिति बहुत से अर्द्ध-विकसित देशों के निकट है। अतः निर्यात बढ़ाने में काफी सहायता मिल सकती है। इधर कुछ वर्षों में मध्यपूर्व एवं सुदूर पूर्व के देशों से भारत के व्यापारिक सम्बन्धों में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

(७) भारत में राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विभिन्नताओं के होते हुए भी यहाँ पर एकता पायी जाती है। यहाँ कई जातियों, धर्मों तथा प्रथाओं के लोग रहते हैं। परन्तु वे सब एक इकाई के अन्तर्गत रहते हैं। इतनी अधिक जातियों, बोलियों एवं धर्मों के होते हुए भी राष्ट्रीय एकता वस्तुतः भारत की सहनशीलता एवं सह अस्तित्व की प्रतीक है। भारत की सीमाओं पर सन् १९६२ में चीन द्वारा तथा सन् १९६५ में पाकिस्तान द्वारा आक्रमण किये जाने पर भारत में विद्यमान भावनात्मक एकता का प्रमाण विश्व को मिल चुका है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी राष्ट्रीय संकट का सामना इस एकता के बल पर सरलता से किया जा सकता है।

भारत की स्थिति उसकी सुरक्षा, व्यापार तथा जलवायु के लिए उपयुक्त है। आर्थिक प्रगति में स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। मध्यवर्ती स्थिति होने के कारण देश को दुनिया से सम्पर्क की सबसे बड़ी सुविधा है।

भारत के राजनैतिक विभाग

देश के विभाजन के फलस्वरूप भारत दो भागों में विभक्त हुआ। भारत के हिस्से में ७६ प्रतिशत क्षेत्र तथा ८०% जनसंख्या आयी। सिन्ध, पंजाब तथा बंगाल के उपजाऊ क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। अधिकांश जूट तथा सूती कपड़े की मिलें भारत में रह गयीं। इनके कच्चे माल उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये।

विभाजन के पश्चात् भारत २६ जनवरी, १९५० को गणतन्त्र राज्य घोषित हुआ। सन् १९५६ में १४ राज्य तथा ६ केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश बनाये गये। सन् १९६०, १९६१ तथा १९६६ में पुन कुछ परिवर्तन हुए। इस समय भारत में १८ राज्य[1] तथा ९ केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश हैं।

विभिन्न राज्य जम्मू काश्मीर, पजाब, हरियाना उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, नागालैण्ड, पश्चिमी बगाल, उडीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, तमिलनाडु, केरल तथा हिमाचल प्रदेश हैं।
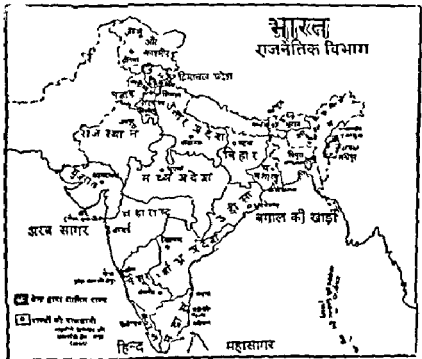
केन्द्र द्वारा प्रशासित प्रदेशों में अण्डमान और निकोबार, दिल्ली, गोआ-दमन-दयू, दादरा एव नागर हवेली, लक्षद्वीप, मिनीकोय एव अमनद्वीप, मनीपुर, पाण्डीचेरी, त्रिपुरा एव चण्डीगढ़ हैं।

---

1 मार्च १९७१ में हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान कर दिये जाने के बाद अब राज्यों की सख्या १८ हो गयी है। उससे पहले यह केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश था।

भारत के राज्यों का क्षेत्रफल, जनसंख्या एवं घनत्व

राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	जनसंख्या (हजारों में) सन् १९६९ के अनुमानों पर आधारित	जनसंख्या का घनत्व (प्रतिवर्ग किमी)
(A) राज्य			
१ आन्ध्र प्रदेश	२ ७५,२४४	४२,१३०	१५३
२. असम[1]	१,२१,९७३	१५,०४७	१२३
३ बिहार	१,७४,००८	५५,९८५	३२२
४ गुजरात	१,८७,०९१	२५,६५३	१३७
५. हरियाणा	४४,०५६	९,६९६	२२०
६ जम्मू काश्मीर	२,२२,८७०	३,९७६	—
७ केरल	३८,८६९	२०,६३८	५३१
८ मध्य प्रदेश	४,४३,४५९	२९,४७३	८९
९. महाराष्ट्र	३,०७,२६९	४८,४८४	१५८
१०. मैसूर	१,९१,७५७	२८,४३५	१४८
११ नागालैण्ड	१६,४८८	४२३	२६
१२ उडीसा	१ ५५,८६०	२०,९९५	१३५
१३. पंजाब	५०,३७६	१४,२२१	२८२
१४ राजस्थान	३,४२,२६७	२५,३४४	७४
१५ तामिलनाडु	१,२९,९६६	३८,६२७	२९७
१६ उत्तर प्रदेश	२,९४,३६६	८८,२२७	३००
१७ पश्चिमी बंगाल	८७,६७६	४३,३७२	४९५
१८. हिमाचल प्रदेश	५५,६५८	३,४९५	६३
(B) केन्द्र शासित प्रदेश			
१. अण्डमान निकोबार द्वीप	८,२९३	८९	११
२. चण्डीगढ	११५	१५३	१,३३०
३. दादरा तथा नागर हवेली	४८९	७०	१४३
४. दिल्ली	१,४८३	३,९७५	२,६८०
५ गोआ दमन दीव	३,७३३	६७९	१८२
६ लक्षद्वीप मिनीकोय अमनद्वीप	२८	२७	९६४
७. मणीपुर	२२,३४६	१,०६३	४८
८. नेफा NEFA	८१,४२६	३८६	५
९ पाण्डीचेरी	४७३	४३६	९२२
१० त्रिपुरा	१०,४५१	१,४५३	१३९

उपरोक्त तालिका[2] से स्पष्ट है कि क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रथम स्थान मध्य

[1] मेघालय को सम्मिलित करते हुए। २ अप्रेल, १९७० को असम राज्य के अन्तर्गत ही मेघालय नामक एक स्वशासित राज्य का निर्माण किया गया।

[2] *India*, 1970.

प्रदेश का और द्वितीय स्थान राजस्थान का है। किन्तु जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश प्रथम और बिहार द्वितीय है। क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों को देखते हुए भारत का सबसे छोटा राज्य नागालैण्ड है। नवम्बर १९६६ में हरियाणा राज्य पंजाब से अलग कर दिया गया तथा मार्च १९७१ से हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया।

केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे अधिक क्षेत्रफल मनीपुर का है तथा सबसे अधिक जनसंख्या दिल्ली क्षेत्र की है। सबसे कम क्षेत्रफल लकदिव, मिनिकोय, अमनदिव द्वीप का है एवं सबसे कम संख्या भी इसी प्रदेश की है। नवम्बर १९६६ से चण्डीगढ़ भी केन्द्रशासित प्रदेशों में है जिसका क्षेत्रफल ११५ वर्ग कि० मी० है तथा जनसंख्या एक लाख त्रेपन हजार है।

प्राकृतिक एवं आर्थिक साधनों की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति अत्यन्त उपयुक्त है। चाय, जूट, गन्ना की उपज में भारत का विश्व में प्रमुख स्थान है। चावल, कपास, जूट एवं मसालों के उत्पादन में भी विश्व में भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक अनेक खनिजों का प्रचुर भण्डार देश में उपलब्ध है जैसे खनिज, लोहा, अभ्रक, मैंगनीज, चूना, बाक्साइट आदि। आणविक ईंधन के रूप में काम आने वाले कुछ खनिज भी यहाँ उपलब्ध हैं जैसे थोरियम एवं यूरेनियम आदि। शक्ति के साधनों का पर्याप्त विकास किया जा रहा है, जिसमें जल विद्युत, खनिज तेल, कोयला तथा अणुशक्ति आदि सभी साधन सम्मिलित हैं। वन एवं पशु सम्पदा का भी उपयोग विकास के लिए किया जा रहा है। इन सभी साधनों का यदि पर्याप्त विदोहन कर लिया जाय तो देश विश्व के कतिपय विकसित देशों की श्रेणी में आ सकता है।

अतः आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति पाँच बड़े देशों में की जा सकती है।

भारत ने स्वतन्त्रता के बाद से विश्व में अपनी राजनैतिक स्थिति को भी सुदृढ़ किया है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्त्वपूर्ण सदस्य है तथा उसके प्रायः सभी संगठनों में भारत का प्रतिनिधित्व है। पिछले बीस वर्षों में भारत ने विश्व के विभिन्न देशों से राजनयिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। प्राकृतिक सम्पत्ति की दृष्टि से भारत की विश्व के ऐसे देशों में गिनती की जाती है जिसमें साधनों का अभी पर्याप्त विदोहन नहीं हो सका है किन्तु साथ ही उपयुक्त साधनों को गतिशील बनाकर भविष्य में बहुत अधिक विकास करने की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। भावी विकास की आशा राष्ट्र के लिए एक बड़ा सम्बल है तथा इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है कि कुछ दशकों में ही यह देश विश्व में अपनी अत्यन्त विशिष्ट स्थिति प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।

प्रश्न

१. क्या आप भारत की स्थिति और जलवायु को आर्थिक विकास के अनुकूल समझते हैं ? उपयुक्त उदाहरणों सहित समझाइए। (राजस्थान, १९६६)

२. भारत की भौगोलिक स्थिति का विवरण दीजिए और उक्त स्थिति के कारण होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए। (राजस्थान, १९६०)

३. भारत की भौगोलिक स्थिति की विशेषताएँ लिखिए। भारत की स्थिति के प्रभाव को संक्षेप में समझाओ।

४. "भारतीय गणराज्य की भौगोलिक स्थिति उसके जलवायु तथा व्यापार के प्रति विशेष महत्त्वपूर्ण है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? भारत की स्थिति के पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

अध्याय ३

भारत के प्राकृतिक विभाग

(NATURAL REGIONS OF INDIA)

भारत का धरातल विभिन्न प्रकार का है। कहीं पर पर्वतमालाएँ हैं, कहीं लहलहाते हरे-भरे मैदान हैं, तो कहीं पठार पाये जाते हैं। हिमालय पर्वत उत्तर में एक वृहत दीवार के रूप में है जिसमें संसार की सबसे ऊँची चोटियाँ हैं। गंगा-जमुना तथा ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान संसार के सबसे अधिक उपजाऊ मैदानों में गिना जाता है। थार के रेगिस्तान में दूर-दूर तक बालू के टीले दिखायी देते हैं। धरातल की बनावट की ये विभिन्नताएँ भौतिक दृष्टि से भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भारत के क्षेत्रफल का सबसे अधिक भाग मैदान है। यह कुल क्षेत्र का ४३ प्रतिशत है। यहाँ पठारी भाग २७.७ प्रतिशत, पहाड़ी भाग १८.६ प्रतिशत तथा उच्च पर्वतीय क्षेत्र १०.७ प्रतिशत है। विश्व के धरातल से यदि तुलना की जाये, तो भारत में मैदानी भाग व पहाड़ियों का क्षेत्र अधिक है परन्तु पठारी एवं उच्च पर्वतीय क्षेत्र अपेक्षाकृत कम हैं। इन भौतिक आकृतियों को ध्यान में रखते हुए कुछ विद्वानों ने भारत को तीन प्राकृतिक भागों में विभक्त किया है तथा कुछ विद्वानों ने इसको चार प्राकृतिक विभागों में विभक्त किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए भारत को पाँच प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश,
(२) गंगा-सतलज का मैदान,
(३) दक्षिणी पठार,
(४) समुद्रतटीय मैदान,
(५) थार का मरुस्थल।

उक्त विभागों में धरातल की बनावट में बहुत विभिन्नताएँ हैं, जिनमें पठार, मैदान, नदियाँ और रेतीले भाग आदि हैं। इन प्राकृतिक विभागों में जलवायु, वनस्पति, कृषि उपज, व्यवसाय एवं जनसंख्या का घनत्व आदि समान नहीं है। प्राकृतिक विभागों का विस्तृत वर्णन अग्र प्रकार है।

(१) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश
(The Mountainous Regions of the North)

उत्तर का पर्वतीय प्रदेश काश्मीर से लेकर आसाम तक फैला हुआ है। हिमालय पर्वत की औसत ऊँचाई लगभग १७ ००० फीट है तथा इन पर्वत-माला में लगभग ४० चोटियाँ ऐसी हैं जो कि २४,००० फीट से भी ऊँची हैं। ससार का सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट, जो कि २९ हजार फीट से भी ऊँचा है, इसी भाग में है। इस क्षेत्र मे तीन समान्तर श्रेणियां हैं। ऊँची-नीची चोटियो पर बर्फ जमी रहती है। पर्वतीय प्रदेश मे सुन्दर झीलें भी हैं।

हिमालय के निर्माण के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। 'भूगर्भ' के अनुसार यह भाग प्राचीन काल मे समुद्र था, जिसे टैथिस सागर कहा जाता है। इस सागर की तलहटी मे लम्बे समय तक भूगर्भिक परिवर्तन होते रहे, जिनके कारण भूगर्भिक चट्टानों मे मोड आया एव दरारें उत्पन्न हो गयी। इस प्रक्रिया मे चट्टानों मे उभार होता रहा तथा ये परतदार चट्टानें सागर तल से ऊपर उठती चली गयी और इन प्रकार सागर के स्थान पर ससार की सर्वोच्च पर्वत श्रेणियाँ स्थल के ऊपर उभर आयीं। यह पर्वत प्राचीन नही है। ससार के नवीन पर्वतों मे इसकी गणना की जाती है। भूगर्भ-शास्त्रियो का यह भी मत है कि पामीर पठार से, जो कि एशिया के मध्य में स्थित है, पर्वत मालाएँ सभी दिशाओ मे फैली हुई हैं। हिमालय पर्वत भी इसी की एक शृ खला है जो उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूरब दिशा मे फैली हुई है। हिमालय पर्वत श्रेणियाँ पश्चिम म काश्मीर की सीमा से लेकर पूर्व में असम तक लगभग २,४१४ किलोमीटर की लम्बाई मे फैला हुआ है तथा इसकी चौड़ाई २४० से ३२० किलोमीटर तक है।

अध्ययन की सुविधा के लिए पर्वतीय क्षेत्र को निम्नलिखित उप-खण्डो में विभक्त किया जा सकता है :

(i) मध्य हिमालय,
(ii) उत्तरी-पश्चिमी शाखा,
(iii) दक्षिणी पूर्वी शाखा।

इन तीनों उप-खण्डो का विस्तृत वर्णन नीचे किया गया है :

(i) मध्य हिमालय (The Central Himalayas)

मध्य हिमालय, उत्तर के पर्वतीय प्रदेश का मध्य भाग है। इसकी लम्बाई लगभग २,४०० किलोमीटर है तथा एक टेढी रेखा के रूप मे फैला हुआ है। इस भाग मे ऊँची-ऊँची श्रेणियां हैं। यह भाग पश्चिम मे सिन्धु नदी के मोड से पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड तक विस्तृत है। मध्य भाग तीन समान्तर श्रेणियों से बना हुआ है। मध्य हिमालय मे तीन अन्य खण्ड किये जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं :

(क) मुख्य हिमालय—मध्य हिमालय के उत्तरी भाग में मुख्य हिमालय स्थित है जो कि सबसे ऊँची श्रेणी के रूप मे है। ससार की सबसे ऊँची चोटियों मे यहाँ की

चोटियाँ गिनी जाती हैं। एवरेस्ट जो कि संसार का सबसे ऊँचा शिखर है इसी भाग में स्थित है। इसकी ऊंचाई २९ ०२८ फीट है। इसके अलावा नन्दा देवी किंचिन जंगा नंगा पर्वत तथा धवलगिरि आदि ऊँची ऊँची पर्वत श्रणियाँ भी मुख्य हिमालय में स्थित हैं। इस क्षेत्र की औसत ऊंचाई २० ००० फीट है।

(ख) लघु हिमालय (Lesser Himalayas)—मुख्य हिमालय की श्रेणी के समानान्तर दक्षिण की तरफ लघु हिमालय स्थित है। इस भाग की श्रेणियाँ साढ़े चार हजार मीटर से अधिक ऊँची नहीं हैं। लघु हिमालय ८० से १०० किलोमीटर चौड़ा है। इस हिमालय के निचले भाग में दार्जिलिंग नैनीताल शिमला मसूरी आदि आकर्षक पर्वतीय केन्द्र स्थित हैं। यहाँ की अनेक श्रेणियों के ढालों पर सुन्दर कोणधारी वन आच्छादित हैं।
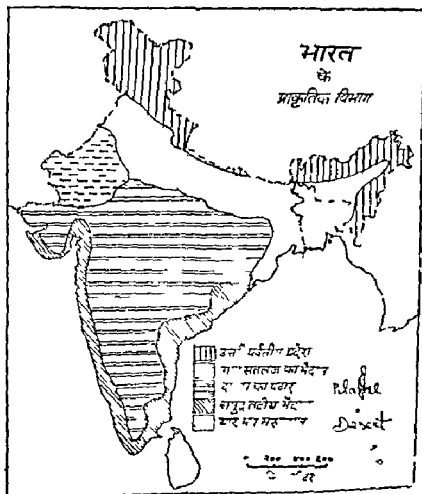
(ग) उप हिमालय (Sub Himalayas)—उप हिमालय तृतीय श्रेणी है जो कि लघु हिमालय के दक्षिण में उसके समानान्तर है। यह श्रेणी ८ किलोमीटर से ४०

किलोमीटर चौडी है । लघु हिमालय एव उप हिमालय के बीच मे घाटियां हैं जिन्हें अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है, जैसे दून घाटी (Doon valley), कागडा एव द्वार की घाटियाँ आदि । इस भाग को शिवालिक श्रेणी भी कहा जाता है । इस भाग म मिट्टी, कक्ड तथा बालू हैं अत वन पाये जाते हैं । अधिकतर भाग दलदली है, जिसम चौडी पत्ती वाले मदा बहार वनों की प्रचुरता है ।

उपरोक्त तीनो श्रेणियो को मध्य हिमालय कहा जाता है । इस क्षेत्र में १४० ऐसी चोटियाँ हैं जो कि दक्षिणी अमरीका के एण्डीज पर्वत की सबसे ऊँची चोटी माउण्ट ब्लैक (Mt Blank) स भी ऊँची हैं । मुख्य हिमालय के अधिकतर भाग मे बर्फ जमी रहती है । हिमालय पर्वत पर औसतन ५,००० मीटर की ऊँचाई पर हिम रेखा (Snow Line) है जो कि ग्रीष्म ऋतु म कुछ ऊपर तथा शीत ऋतु मे कुछ नीचे आ जाती है । मध्य हिमालय के दक्षिणी भाग म जहाँ पर मिट्टी उपलब्ध है खेती की जाती है । जहाँ कही थोडी बहुत जगह है सीढीदार खेत बनाकर चावल, आलू आदि फसलें उत्पन्न की जाती हैं । जगल अधिक होने के कारण यहाँ पर लकडी काटने का धन्धा भी प्रमुख है । कुछ भागो मे चरागाह पाये जात हैं अत पशु पालन का व्यवसाय किया जाता है । आबादी दक्षिण से उत्तर की तरफ कम होती जाती है । व्यक्ति समूहो मे रहते हैं । दक्षिणी भाग म आजकल कुछ उद्योग धन्धे भी पनपने लगे हैं जैसे लकडी चीरन फर्नीचर बनाने, तरन बनाने आदि के उद्योग । ऊन व्यवसाय भी यहाँ उन्नति कर रहा है । खेती भी आजकल अधिक की जाने लगी है । पहाडी ढाला पर सीढीनुमा खेत बनाये जात हैं तथा उनम फसलें उगायी जाती हैं । कुछ निचले भागा मे गहूँ, जौ, राई, सरसो, चाय तथा आलू पैदा किये जाते हैं । खनिज सम्पदा मे ताँबा, जस्ता, स्लेट तथा चूना पाये जाते हैं ।

(ii) उत्तरी पश्चिमी शाखा

मध्य हिमालय के उत्तर पश्चिम की तरफ यह भाग स्थित है । इस शाखा की मुख्य श्रेणियाँ कराकोरम, जन्सकर और पीर पजाब पर्वत हैं । कराकोरम पर्वत श्रेणी मे हिमालय की दूसरी सबसे ऊँची चोटी गोडविन ऑस्टिन अथवा Mount k_2 स्थित है । इस पर्वत के पूर्वोत्तर मे लद्दाख का ठण्डा पठारी एव शुष्क भाग स्थित है । प्रसिद्ध कराकोरम का दर्रा भी यहीं है जो उत्तरी भारत को मध्य एशिया से जोडता है । इस भाग म जम्मू, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा पजाब का कागडा क्षेत्र सम्मिलित है । उत्तरी पश्चिमी शाखा का अधिकतर भाग घाटियो तथा नदियो से घिरा हुआ है ।

उत्तरी पश्चिमी शाखा के क्षेत्र म वर्षा कम होती है । उत्तर की तरफ जहाँ ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं वर्ष के कुछ महीनो म बर्फ जमी रहती है । सर्दियों में बर्फ पडती है । वार्षिक वर्षा इस भाग मे ५० से० मी० होती है । ऊपरी क्षेत्रो तथा भीतरी भागो में चीड, सनोवर तथा अन्य वृक्ष पाये जाते हैं । बाहरी भागो मे झाडियाँ पायी जाती हैं ।

काश्मीर की घाटी इस क्षेत्र मे महत्वपूर्ण है। काश्मीर की झेलम घाटी मे वर्षा का औसत अधिक है अतः यहाँ की उपत्यकाओं एवं पहाड़ी ढालों पर फलों के वृक्ष लगाये जाते हैं। अंगूर, नासपाती, सेब, शहतूत, अखरोट आदि फल पैदा किये जाते हैं। जिन भागों मे मिट्टी अधिक उपजाऊ है वहाँ पर चावल की फसल होती है। निचले भागों मे गेहूँ, जौ तथा अन्य साधारण फसलें होती हैं। यहाँ के निवासियों का प्रमुख धन्धा पशु पालन तथा रेशम के कीड़े पालना है। इस भाग मे कुछ कुटीर उद्योग भी प्रसिद्ध हैं जैसे ऊन का कपड़ा बुनना, लकड़ी पर खुदाई का काम, शाल-दुशाले तथा कसीदा आदि। केशर की खेती भी काश्मीर घाटी में की जाती है। मुलायम बाल वाले जानवरों का शिकार करके उनकी खाल से टोपियाँ, दस्ताने, जर्सी आदि बनाने का काम भी होता है।

उत्तरी पश्चिमी शाखा के निवासी चुस्त तथा हृष्ट-पुष्ट होते हैं। यातायात की सुविधा कम है क्योंकि अधिकतर भाग पहाड़ी है। जनसंख्या बिखरी हुई है। छोटी-छोटी बस्तियों के रूप मे गाँव हैं। जिन भागों मे विभिन्न सुविधाएँ हैं वहाँ २०० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तक रहते हैं तथा जिन भागों मे सुविधाएँ कम हैं वहाँ आबादी का घनत्व १० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी कम है। अति ऊँचे भागों मे जहाँ बर्फ जमी रहती है जनसंख्या नगण्य है।

(iii) दक्षिणी पूर्वी शाखा

इस शाखा के अन्तर्गत अधिकतर भाग असम तथा नागालैण्ड का है। मुख्य हिमालय के पूर्वी भाग मे जहाँ ब्रह्मपुत्र नदी अपना रुख परिवर्तित करती है वहाँ से पर्वतमालाएँ आसाम मे चली जाती हैं। इस भाग में शिलांग का पठारी भाग, पटकोई, नागा, लुशाई, गारो, खासी, जयन्तिया आदि दक्षिणी पूर्वी पहाड़ियाँ हैं। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई लगभग १,५०० मीटर है। उत्तर के नेफा प्रदेश में मुख्य हिमालय की श्रेणियों का सिलसिला चला गया है जिनकी ऊँचाई ५,००० मीटर से भी अधिक है। प्रसिद्ध नाथूला का दर्रा इसी भाग में स्थित है।

बंगाल की खाड़ी से आने वाली मानसून हवाओं को ये पहाड़ियाँ रोकती हैं और मेघों की अधिकांश जलराशि वर्षा के रूप यहाँ बरस जाती है। चेरापूंजी, जिसमे कि विश्व की सबसे अधिक वर्षा होती है, इसी भाग में स्थित है। २ अप्रैल, १९७० को असम राज्य के अन्तर्गत ही जिस प्रथम राज्य का निर्माण किया गया उसका नामकरण मेघालय (Meghalaya) इसी आधार पर किया गया। मेघालय का आशय मेघों के आलय अथवा घर से है। इस भाग मे सर्दियों में तापक्रम १०° सेन्टीग्रेड तक हो जाता है तथा गर्मियों का औसत तापक्रम २५° से० ग्रे० हो जाता है। अधिक वर्षा होने के कारण यहाँ सदाबहार वन पाये जाते हैं। इन भयंकर जंगलों मे जंगली जीव-जन्तुओं की अधिकता के कारण आवागमन कठिन होता है। ये ब्रह्मा तथा भारत के बीच प्राकृतिक दीवार का काम करते हैं। इन पहाड़ियों में नागा जाति के लोग रहते हैं जो कि काफी पिछड़े हुए हैं। पहाड़ी ढालों पर चाय

की खेती की जाती है। केला, अनन्नास एवं सन्तरों की उपज भी यहाँ होती है। वन जाति के लोग अधिकतर घटिवादी होते हैं। यहाँ की औसत जनसंख्या कुछ भागों में लगभग ७० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। पूर्वी भागों में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है। नागालैण्ड में जनसंख्या का घनत्व २६ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, जबकि नेफा (Nefa) में यह केवल ५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर ही है। खनिज सम्पदा में यहाँ खनिज तेल प्रमुख है। यहाँ पट्रोलियम के भण्डार हैं। खनिज तेल की वजह से इस भाग का आर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्तरी पर्वतीय प्रदेश भारत के उत्तर में पश्चिम से लेकर दक्षिण पूर्वी दिशाओं में फैले हुए हैं। इस क्षेत्र के विभिन्न भागों में कहीं पर ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं, कहीं पहाड़ियाँ हैं, कहीं झीलें हैं, तो कहीं नदियाँ हैं। पूर्व में ज्यों-ज्यों पश्चिम की तरफ जाते हैं, वर्षा क्रमशः कम होती जाती है और इस कारण प्राकृतिक वनस्पति की सघनता में भी क्रमशः कमी होती जाती है।

हिमालय की नदियाँ तथा झीलें

हिमालय पर्वत से निकलने वाली तीन बड़ी नदियाँ ब्रह्मपुत्र, गंगा तथा सिन्धु नदी हैं। इन नदियों की सहायक नदियाँ भी हैं। सिन्धु नदी की सहायक नदियाँ झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज हैं। गंगा नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ यमुना, गोमती, घाघरा, गण्डक एवं कोसी हैं। पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र नदी हिमालय पर्वत को असम की पहाड़ियों एवं बर्मा के पहाड़ों से अलग करती है। ब्रह्मपुत्र की घाटी में भी अनेक छोटी नदियाँ हैं जैसे लोहित, स्वर्ण श्री (सुबानसिरी), तिस्ता आदि। हिमालय क्षेत्र में अनेक झीलें भी हैं जैसे मानसरोवर, गौरीकुण्ड, सूर्यकुण्ड, वूलर, डल आदि। कुमाऊँ क्षेत्र में भी अनेक झीलें हैं जिन्हें 'ताल' कहते हैं जैसे नैनीताल, भीमताल, सतताल, पूनाताल, मालवताल, खुरपाताल आदि।

हिमालय पर्वतीय प्रदेश का आर्थिक महत्त्व

उत्तर के पर्वत भारत के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये यहाँ की जलवायु को प्रभावित करते हैं, मैदानों को पानी प्रदान करते हैं तथा कीमती वनस्पति व पशु सम्पदा प्रदान करते हैं। भारतीय अर्थ व्यवस्था पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है। भारत की जलवायु को हिमालय प्रभावित करता है। जलवायु का कृषि उद्योग तथा व्यापार पर प्रभाव पड़ता है। इन पर्वतों के कारण ही मैदानी भागों को वर्षा उपलब्ध होती है जिससे कृषि को जीवन प्राप्त होता है। हिमालय से भारत को निम्न लाभ प्राप्त हैं :

(१) **प्राकृतिक सुरक्षात्मक दीवार**—हिमालय पर्वत भारत के उत्तर में प्राकृतिक दीवार के रूप में है। यह बाहरी आक्रमणों से रक्षा करता है। बाहरी आक्रमणों का अर्थ व्यवस्था पर पूरा प्रभाव पड़ता है, जनधन की हानि होती है जिससे यह बचाता है। अब तक प्राय. यह समझा जाता रहा है कि इस प्राकृतिक सीमा के कारण अधिक धन सीमा-व्यवस्था पर नहीं लगाना पड़ता है, अतः इसका आर्थिक

प्रभाव है । यद्यपि, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में तिब्बत की समाप्ति के बाद चीन की सेनाओं का हमारी उत्तरी सीमाओं के निकट जमाव भारत के सैनिक आर्थिक दायित्वो में वृद्धि का कारण बन गया है। अतः अब उत्तर की सीमाओं की सुरक्षा के लिए भारत को बहुत अधिक धन व्यय करना होता है । आधुनिक युद्ध के सन्दर्भ मे अब सुरक्षात्मक दीवार की उपयोगिता कम हो रही है क्योंकि सब पहाडी ऊँचाइयाँ शत्रु सेनाओं के लिए उतनी बाधक नही रह गयी हैं जितनी कि पहले थीं । आधुनिक लडाई थल, जल के साथ साथ नभ से अधिक लडी जाती है ।

(२) *देश मे वर्षा*—वर्षा कृषि को जीवन प्रदान करती है । हिमालय पर्वत मानसून हवाओ को रोककर देश मे वर्षा प्रदान करता है । पश्चिम से पूर्व तक फैली हुई पर्वत श्रेणियाँ, अरब सागर तथा बगाल की खाडी से आने वाली वाष्पयुक्त हवाओ को आगे बढने से रोकती हैं और इस प्रकार इन हवाओं की अधिकतर जल-राशि भारत को प्राप्त हो जाती है । बगाल की खाडी से जो हवाएँ उठती हैं वे पूर्वी हिमालय के सहारे सहारे ऊपर चढती हैं, जहाँ ठण्डक पाकर उनकी वाष्प जल कणो में बदल जाती है । पूर्व से यदि पश्चिम की तरफ चला जाय तो वर्षा क्रमश कम होती जायगी । उत्तरी मैदानो को इन्हीं मानसूनो से वर्षा प्राप्त होती है । हिमालय के अभाव मे उत्तरी भारत का अधिकाश भाग प्रचुर वर्षा से वचित रह जाता ।

(३) *नदियाँ*—हिमालय पर्वत सिन्धु, गगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियो का उद्गम स्थान है । इन नदियो की सहायक नदियाँ भी इसी से निकलती हैं । ये उत्तर के मैदानी भागो को सीचती हैं तथा वर्षा की कमी की पूर्ति करती हैं । अत इनका बहुत आर्थिक महत्व है । नदियो का वेगपूर्ण प्रवाह पहाडी चट्टानो को निरन्तर काटता रहता है और इस प्रकार इनके जल के प्रवाह के साथ मिट्टी की एक नयी पर्त मैदानी धरातल पर निरन्तर जमा होती रहती है । पहाडो से बहाकर लायी गयी यह मिट्टी मैदानी भाग की उर्वरा शक्ति म वृद्धि करती है । इन मिट्टियो म विभिन्न प्रकार की खाद्य तथा व्यापारिक फसलें उत्पन्न की जाती हैं । नदियो स नहरें भी निकाली गयी हैं, उत्तरी भारत तथा पजाब म नहरो का जाल सा बिछा हुआ है । इन नहरों को हिमालय पानी प्रदान करता है । इस प्रकार कृषि उन्नति म इसका प्रमुख योगदान है । नदियो से जल विद्युत भी उत्पन्न की जाती है । इस विद्युत का औद्योगिक तथा कृषि विकास पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा है । इस प्रकार हिमालय पर्वत नदियो द्वारा भारत के विकास तथा सिचाई कार्यक्रमो में सहायता करता है ।

(४) *उत्तर की ठण्डी हवाओं पर रोक*—सर्दियो म मध्य एशिया स ठण्डी हवाएँ भारत की तरफ चलती हैं । ये शीत कालीन मानसून हवाएँ उत्तर पूरब से अक्तूबर से मार्च तक चलती हैं । हिमालय पर्वत इन हवाओ से भारत की रक्षा

करता है। यदि ये ठण्डी हवाएँ भारत में आती तो भारत की शीतकालीन फसलों को बहुत नुकसान पहुँचता ऐसी स्थिति में उत्तरी भारत, सर्दियों में बहुत अधिक ठण्डा होता, जिससे इस क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा आती। इन हवाओं को रोककर हिमालय भारत के जलवायु को नियन्त्रित करता है।

(५) वन सम्पदा—लघु हिमालय और उप हिमालय के अधिकांश भागों में वन पाये जाते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। ऊँचे ढालों पर कोणधारी वन पाये जाते हैं जिनमें चीड, देवदार, फर, बर्च आदि के मुलायम लकड़ी वाले वृक्ष बहुतायत से होते हैं। इस लकड़ी का औद्योगिक महत्त्व है। कागज, लुग्दी, दियासलाई आदि उद्योगों में यह लकड़ी काम आती है। निचले ढालों एवं तराई क्षेत्रों में चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वन पाये जाते हैं। इन वृक्षों की लकड़ी काटकर विभिन्न वस्तुएँ बनायी जाती हैं। हिमालय के निचले भागों में वनों पर आधारित उद्योग धीरे-धीरे पनप रहे हैं। इसके अलावा यहाँ चरागाह भी पाये जाते हैं जिनमें पशु पालन व्यवसाय किया जाता है। विभिन्न प्रकार के फल भी यहाँ पैदा किये जाते हैं। हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियाँ प्राप्त की जाती हैं जिससे औषधियाँ बनायी जाती हैं।

(६) पशु सम्पदा—हिमालय पर्वत के निचले ढालों पर जहाँ वन पाये जाते हैं उनमें विभिन्न प्रकार के पशु पाये जाते हैं। यहाँ के निवासी इन पशुओं का शिकार करके चमड़ा आदि प्राप्त करते हैं। वे, कृषि के अभाव में शिकार, पशु पालन आदि धन्धों पर निर्भर होते हैं। इसके अलावा ऊँचे ढालों पर पाये जाने वाले मुलायम बाल वाले जानवरों का शिकार करके अनेक व्यक्ति जीविका कमाते हैं।

(७) खनिज सम्पदा—मध्य हिमालय तथा पश्चिमी हिमालय में ताँबा, जस्ता, स्लेट तथा चूना उपलब्ध हैं। पूर्वी हिमालय में खनिज तेल पाया जाता है। आसाम के पूर्वी भागों में यह तेल पाया जाता है जिसका देश के आर्थिक विकास में काफी महत्त्व है। इसके अलावा पर्वतीय प्रदेशों में अन्य खनिज पदार्थों की भी सम्भावना है जिनके लिए सर्वेक्षण किये जा रहे हैं।

(८) विस्तृत चाय के बागान—हिमालय पर्वत के निचले ढालों में बढ़िया किस्म की चाय पैदा की जाती है। चाय, जिससे हम विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं, अधिकतर इसी भाग में पैदा की जाती है। पंजाब से लगाकर असम तक हिमालय के ढालों पर चाय के पौधे सरलता से पनप सकते हैं। पश्चिमी बंगाल का दार्जिलिंग जिला तथा असम के ढालों पर बहुत से चाय के बागान हैं। पूर्व से पश्चिम की तरफ चाय के बागान कम होते जाते हैं परन्तु आजकल पश्चिमी भागों में भी चाय पैदा की जाने लगी है। उदाहरण के लिए, दून घाटी, कांगड़ा घाटी एवं काश्मीर घाटी में पर्वतीय ढालों पर चाय उत्पन्न की जाती है।

(९) उत्तम दृश्य—हिमालय के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के कारण यह प्रदेश पर्यटकों के लिए काफी आकर्षक है। यात्री काफी संख्या में भ्रमण के लिए आते हैं

अतः यहाँ पर होटल उद्योग पर्वतीय केन्द्रों पर पनप रहे हैं। नैनीताल, शिमला, दार्जिलिंग, मसूरी, गुलमर्ग, अलमोड़ा आदि भागों में गर्मियों में यात्री आते हैं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाते हैं। फिल्म उद्योग के लिए भी यह स्थल महत्त्वपूर्ण होते हैं। यहाँ कई धार्मिक स्थान भी हैं जैसे अमरनाथ, कैलाश, बद्रीनाथ, विष्णु प्रयाग, गंगोत्री, जमुनोत्री, केदारनाथ आदि।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में, हिमालय भारत के लिए वरदान है। उत्तरी मैदान, जो कि विश्व के सबसे अधिक उपजाऊ मैदानों में से एक है, हिमालय पर्वत की ही देन है। यह मैदान पहाड़ों की मिट्टी से ही बना है। हिमालय इसे सींचता है तथा इसकी रक्षा करता है। हिमालय के अभाव में मैदान अधिक उन्नत नहीं हो पाता, क्योंकि उत्तर की ठण्डी हवाओं के कारण शीतकालीन फसलों को नुकसान पहुँचता और वर्षा का अभाव होता। इस प्रकार भारत के आर्थिक जीवन में हिमालय की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है किन्तु लाभों के साथ साथ हिमालय हमारे लिए अनेक कठिन दायित्वों तथा महान चुनौतियों को भी उत्पन्न करता है। हिमालय की ऊँची पर्वत शृंखलाओं, हिम मण्डित शिखरों, दर्रों, घाटियों एवं वनाच्छादित पर्वतीय ढालों के कारण आवागमन के साधनों का निर्माण और इन प्रदेशों की सुरक्षा के कार्य अत्यन्त कठिन एवं व्यय साध्य हैं। यहाँ के निवासियों की निर्धनता और बेकारी को दूर करने के लिए इन प्रदेशों का समुचित आर्थिक विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(२) गंगा सतलज का मैदान

उत्तर के पर्वतीय प्रदेशों के दक्षिण में सतलज, यमुना, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों का वृहत उपजाऊ मैदान है। यह पहाड़ों की कछारी या तलछटी मिट्टी से बना हुआ है, जो कि गंगा सिन्धु तथा ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लायी हुई है। इसका क्षेत्रफल लगभग ७.७ लाख वर्ग किलोमीटर है। पूर्व से पश्चिम तक इस मैदान की लम्बाई २,४१४ किलोमीटर, तथा चौड़ाई २४१ से ३२१ किलोमीटर तक है।[1] समुद्रतट से इस मैदान की ऊँचाई लगभग १५० मीटर से अधिक नहीं है। काफी गहराई तक इसकी मिट्टी में समानता पायी जाती है। विभाजन से पूर्व यह मैदान सिन्धु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान कहलाता था जिसमें सिन्धु का वह भाग जो पश्चिमी पाकिस्तान में है, पंजाब, उत्तरी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल और आसाम का कुछ क्षेत्र सम्मिलित था। विभाजन के फलस्वरूप सिन्धु नदी घाटी का अधिकांश भाग और ब्रह्मपुत्र नदी के निचले क्षेत्र पाकिस्तान में

---

1 "The Indo Gangotri Plain, 2414 km long and 241 to 321 km broad, is formed by the basins of three distinct river systems, the Indus, the Ganga and the Brahmaputra It is one of the world's greatest stretch of flat alluvium and also one of the most densely populated areas on Earth" —*India*, 1970

चले गये। शेष क्षेत्र भारत में रहे जिनमें सतलज गंगा एवं उनकी सहायक नदियों के मैदान सम्मिलित हैं।

इस मैदान का पश्चिमी भाग तेज हवाओं द्वारा बिछायी गयी मिट्टी तथा नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टियों के मिलने से बना है। दिल्ली से कलकत्ता तक का भाग पश्चिम से पूर्व की तरफ क्रमशः ढालू है। इसके पश्चिम में सतलज नदी के मैदान का ढाल उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की तरफ है। मैदान की गहराई पृथ्वी की अपनी सतह से ३०० मीटर से ३,००० मीटर तक है। सम्पूर्ण मैदान सतलज, गंगा, यमुना तथा ब्रह्मपुत्र नदियों और उनकी सहायक नदियों से बना है।

गंगा-सतलज के मैदान के उप विभाग

अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण मैदान को निम्नलिखित उप-विभागों में विभक्त किया जा सकता है:

(१) सतलज नदी का मैदान

यह मैदान, उत्तरी मैदान के पश्चिम में स्थित है जिसमें सतलज, व्यास, रावी आदि नदियाँ बहती हैं। साधारणतः इसको पंजाब का मैदान कहा जाता है जिसमें पंजाब व हरियाणा राज्य आते हैं। इस मैदान के पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान है, दक्षिण में थार का मरुस्थल, उत्तर में हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ तथा पूर्व में गंगा-यमुना का मैदान है।

प्राकृतिक दशाएँ—यह मैदान दक्षिण पश्चिम की तरफ ढालू है। समुद्रतट से इस मैदान की ऊँचाई १८० मीटर से ४३० मीटर तक है। सतलज, व्यास, रावी नदियों के द्वारा इस मैदान का निर्माण हुआ है। इस मैदान के दक्षिणी भाग की मिट्टी कम उपजाऊ है क्योंकि मिट्टी में बालू रेत का मिश्रण है जो वायु द्वारा पश्चिमी मरु-प्रदेशों से लाकर यहाँ के धरातल की ऊपरी परतों में जमा होती रही है। मैदान के उत्तरी भाग में मिट्टी उपजाऊ है।

जलवायु—इस मैदान में गर्मियों में औसत तापक्रम ४३° से० ग्रे० हो जाता है तथा सर्दियों में औसत तापक्रम १५° से० ग्रे० से भी कम हो जाता है। शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित होने तथा समुद्र से काफी दूर होने के कारण यहाँ गर्मियों में अधिक गर्मी एवं सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ती है। इस मैदान के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में वर्षा कम होती है तथा पूर्व की तरफ क्रमशः वर्षा बढ़ती जाती है। उत्तरी मैदान के अन्य भागों की तुलना में सतलज के मैदान में कम वर्षा होती है। अधिकांश वर्षा गर्मियों में मानसूनी हवाओं से होती है। कभी-कभी सर्दियों में उत्तर-पूर्वी चक्र-वातीय हवाओं से भी कुछ वर्षा हो जाती है। वर्षा औसत रूप से ४५ से ७० सेमी० तक होती है।

मानवीय दशाएँ—मैदानी भाग होने के कारण यहाँ विभिन्न सुविधाएँ उप-लब्ध हैं अतः औसत जनसंख्या का घनत्व २०२ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। कहीं-

यहीं जनसंख्या का घनत्व काफी ऊँचा है तथा यहाँ बहुत कम है। अधिकतर जन-संख्या गाँवों में रहती है। यहाँ के व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ होते हैं।

आर्थिक दशाएँ—आर्थिक दशाओं में कृषि, खनिज सम्पदा, पशुधन उद्योग, व्यावसायिक नगर आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। इस मैदान के ७० % भाग में कृषि की जाती है। सिंचाई के लिए इस क्षेत्र में अधिकतर भाग में नहरों का जाल सा बिछा हुआ है। मुख्य नहरें सरहिन्द नहरों पश्चिमी यमुना नहर, आगरा नहर, ऊपरी बारी दोआब नहर तथा भाखरा की नहरें हैं। कुँओं द्वारा भी सिंचाई होती है। इस क्षेत्र की मुख्य फसलें गेहूँ, गन्ना, कपास, मक्का, बाजरा जौ, चना, दालें तथा सरसों आदि हैं।

खनिज सम्पदा का इस क्षेत्र में अभाव है। मैदान के दक्षिणी भाग में पशु-पालन लोगों का महत्वपूर्ण धन्धा है। पशुओं में गाय, बैल, भेड़, बकरी आदि प्रमुख हैं। हरियाणा की गायें प्रसिद्ध हैं। हरियाणा और पंजाब में सूती कपड़े की मिलें भिवानी, अमृतसर तथा लुधियाना में हैं। अमृतसर में ऊनी मिल भी है। इसके अलावा साईकिल, सिलाई की मशीन एवं अन्य कल पुर्जे बनाने के कारखाने कई जगहों पर स्थित हैं। चीनी मिलें फागवाड़ा, हमीरा तथा कुछ अन्य भागों में स्थित हैं। काँच तथा कागज उद्योग भी विकसित हो रहे हैं। यहाँ के प्रमुख नगर अमृतसर, चण्डीगढ़, अम्बाला, पटियाला, जालन्धर, हिसार, पानीपत रोहतक आदि हैं।

(२) गंगा यमुना का मैदान

सतलज नदी तथा ब्रह्मपुत्र नदी के मैदान के मध्य गंगा-यमुना का मैदान स्थित है। अधिक विस्तृत होने के कारण इस मैदान का अध्ययन कुछ उपखण्डों में विभक्त करके किया जा सकता है जो निम्न प्रकार है

(क) ऊपरी मैदानी भाग,

(ख) मध्य मैदानी भाग, और

(ग) निचला मैदान।

इन तीनों उपखण्डों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है

(क) ऊपरी मैदान

यह मैदान यमुना तथा गंगा का ऊपरी मैदान है जो कि मध्य मैदानी प्रदेश तथा सतलज के मैदान के मध्य स्थित है। इसके उत्तर में उत्तर हिमालय तथा दक्षिण में पठार है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश का अधिकतर पश्चिमी भाग है।

प्राकृतिक दशाएँ—यह मैदान गंगा नदी तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी से बना है। मिट्टी अधिकतर कछारी है तथा बहुत उपजाऊ है। इस मैदान का ढाल क्रमशः उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की तरफ है। भूमि समतल है। ढलाव बहुत ही धीमा है। प्रमुख नदियाँ गंगा यमुना गोमती, घाघरा तथा शारदा है।

जलवायु—इस भाग में गर्मियों में अधिक गर्मी तथा सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ती है। गर्मियों में तापक्रम ४५° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है तथा सर्दियों में १०° सेण्टीग्रेड तक गिर जाता है। तापान्तर अधिक होने के कारण यहाँ की जलवायु विषम है। वर्षा पूर्वी भागों में १२५ सेण्टीमीटर तक होती है परन्तु पश्चिमी भागों में कम होती है। पश्चिम से पूर्व की तरफ वर्षा क्रमशः अधिक होती जाती है। प्रायः समस्त वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसूनों से होती है। पश्चिम में वर्षा का वार्षिक औसत ५० से ६० सेण्टीमीटर तक तथा पूर्व में १०० सेण्टीमीटर से अधिक है।

मानवीय दशाएँ—इस क्षेत्र की आबादी चार करोड़ के लगभग है। जनसंख्या का घनत्व लगभग २८० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। मध्यवर्ती भागों में आबादी का घनत्व अधिक है। उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में जनसंख्या का घनत्व कम है। अधिकतर जनसंख्या ग्रामों में है। इस क्षेत्र में छोटे-छोटे शहर भी काफी मात्रा में हैं।

आर्थिक दशाएँ—मुख्य व्यवसाय यहाँ खेती है जो कि कुल क्षेत्र के लगभग तीन-चौथाई भाग में की जाती है। पूर्वी भागों में अधिक वर्षा होती है। अतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पश्चिमी भागों में नहरों तथा कुँओं द्वारा सिंचाई करके वर्षा की कमी को पूरा किया जाता है। मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, चना, सरसों, दालें, बाजरा तथा गन्ना हैं। कहीं-कहीं कपास और तम्बाकू भी उत्पन्न की जाती है।

खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह भाग भी निर्धन है। कहीं-कहीं चूने के पत्थर उपलब्ध हैं। वन सम्पदा के अन्तर्गत उत्तरी भागों में जो कि हिमालय के निकट है वन पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त नदियों एवं नहरों के किनारे अनेक प्रकार के पेड़ पाये जाते हैं। पशु सम्पदा उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में मुख्य रूप से पायी जाती है। इस क्षेत्र में सूती वस्त्र, चमड़ा, ऊन, चीनी, काँच, कागज तथा अन्य उद्योग विकसित हैं। अधिकतर उद्योग कृषि पर आधारित हैं जिनको आसानी से कच्चा माल मिल जाता है। जल विद्युत भी उपलब्ध है। यहाँ प्रमुख नगर कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, अलीगढ़, बरेली, इलाहाबाद, मेरठ, सहारनपुर, इटावा आदि हैं।

(ख) मध्य मैदानी भाग

यह भाग ऊपरी क्षेत्र तथा निचले क्षेत्र के बीच में इलाहाबाद से लगाकर बिहार-बंगाल की सीमा तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश सम्मिलित हैं। दक्षिण में पठारी भाग है तथा उत्तर में उप-हिमालय की श्रेणियाँ हैं।

प्राकृतिक दशा—यह क्षेत्र भी पश्चिम से पूर्व की तरफ क्रमशः ढालू है। इस मैदान में गंगा, गोमती, घाघरा, गण्डक, सोन तथा कोसी मुख्य नदियाँ हैं। नदियाँ मिट्टी लाकर इस भाग के ऊपरी धरातल पर बिछा देती हैं। यह मिट्टी दुमट मिट्टी (loam) के नाम से सम्बोधित की जाती है और इसमें ऊपरी भाग की मिट्टी से

अधिक उर्वरा शक्ति है। इस मिट्टी में रेतीली एवं चिकनी दोनों प्रकार की मिट्टियों का सम्मिश्रण होता है।

जलवायु—यहाँ की जलवायु अधिक विषम (extreme) नहीं है। गर्मियों में तापक्रम ३५° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। सर्दियों में यह १५° सेण्टीग्रेड तक गिर जाता है। कभी-कभी अधिक सर्दी पड़ने पर तापक्रम और अधिक गिर जाता है। पश्चिमी भागों में वर्षा का औसत १०० सेण्टीमीटर तथा पूर्वी भागों में औसत वर्षा १५० सेण्टीमीटर है। वर्षा यहाँ ग्रीष्म कालीन मानसूनों से होती है जो कि बंगाल की खाड़ी से आती हैं। पश्चिम से पूर्व की तरफ वर्षा क्रमशः अधिक होती जाती है।

मानवीय दशाएँ—इस भाग की जनसंख्या लगभग नौ करोड़ के आसपास है। जनसंख्या का घनत्व लगभग २६५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तराई भागों में जनसंख्या का घनत्व कम है क्योंकि वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है। अधिकतर जनसंख्या ग्रामों में रहती है। ग्राम प्रायः बहुत छोटे होते हैं और आस-पास बसे होते हैं। किसी ग्राम में तो सौ-डेढ़ सौ परिवार ही निवास करते हैं। किन्तु कुछ ग्रामों का आकार बड़ा होता है। जनसंख्या की सघनता (density) यहाँ के निवासियों की निर्धनता का प्रमुख कारण है, यद्यपि प्राकृतिक दशाएँ यहाँ कृषि उपज के लिए अत्यन्त अनुकूल हैं।

आर्थिक दशाएँ—मध्य मैदानी भाग की लगभग ७५ प्रतिशत भूमि कृषि योग्य है जिसमें अधिकतर भाग में कृषि होती है। चावल की फसल सबसे अधिक इसी भाग में होती है। पश्चिमी भागों में गेहूँ की खेती भी की जाती है। औद्योगिक फसलों में गन्ना अधिक होता है तथा जूट भी पूर्वी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पैदा किया जाता है। इसके अलावा तम्बाकू, अफीम एवं तिलहन की खेती भी होती है। वर्षा जिन भागों में कम रह जाती है वहाँ सिंचाई करके फसलें की जाती हैं।

खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह क्षेत्र भी अधिक धनी नहीं है। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अभ्रक, चीनी मिट्टी तथा शोरा पाया जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में चीनी, रेशम तथा सूती वस्त्र उद्योग की मिलें हैं। मुंगेर में सिगरेट बनाने का कारखाना है और डालमिया नगर में सीमेण्ट का कारखाना भी है। गोरखपुर में रासायनिक खाद बनाने का तथा वाराणसी में रेलों के डीजल इंजिन बनाने का उद्योग चालू किया गया है। नदियों एवं तालाबों में मत्स्य पालन भी होता है तथा अनेक व्यक्ति इस धन्धे से जीविका प्राप्त करते हैं। आवागमन की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यन्त उत्तम स्थिति में है। रेलों और सड़कों का जाल सा बिछा हुआ है, नदियों में जल परिवहन की सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं।

(ग) निचला मैदान

यह गंगा नदी का निचला मैदान है। यह बंगाल की खाड़ी तथा उपहिमालय के मध्य स्थित है। इसमें बिहार का शेष भाग तथा पश्चिमी बंगाल सम्मिलित

है। पूर्व में पूर्वी पाकिस्तान है। यह प्रदेश गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदी के डेल्टे हैं। इस मैदान का क्षेत्रफल लगभग १ लाख वर्ग किलोमीटर है।

प्राकृतिक दशा—यह मैदान भी ऊपरी एवं मध्यवर्ती मैदान का ही एक अगला क्रम है। अन्तर केवल यही है कि इसके धरातल की मिट्टी चिकनी (Clay) है जो अत्यन्त उपजाऊ है। इस मिट्टी में ऐसी सभी फसलें हो सकती हैं जिन्हें जल की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यह समुद्र के निकट है तथा समुद्रतट से ऊँचाई भी अन्य भागों की तुलना में कम है। इस भाग की अधिकतम ऊँचाई ४५ मीटर है तथा कुछ भाग जो कि समुद्र के अधिक निकट हैं, १५ मीटर से भी कम ऊँचे हैं। इसमें दलदली भाग पाये जाते हैं। मुख्य नदियाँ गंगा, हुगली एवं भागीरथ तथा उनकी शाखाएँ और प्रशाखाएँ इस भाग में फैली हुई हैं। दामोदर एवं मयूराक्षी नदियों के निचले भाग भी इस क्षेत्र में आते हैं।

जलवायु—समुद्र के निकट होने के कारण इस भाग की जलवायु इससे प्रभावित है। सामान्यतः यहाँ की जलवायु गर्म और नम है, किन्तु गर्मी उतनी नहीं पड़ती जितनी कि उत्तर पश्चिमी भागों में पड़ती है। गर्मियों का औसत तापक्रम ३०° से० ग्रे० तथा सर्दियों का औसत तापक्रम १८° से० ग्रे० होता है। वर्षा बंगाल की खाड़ी से आने वाली मानसूनों से होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १५० से० मी० है। कुछ स्थानों पर वर्षा ३०० से० मी० से भी अधिक होती है।
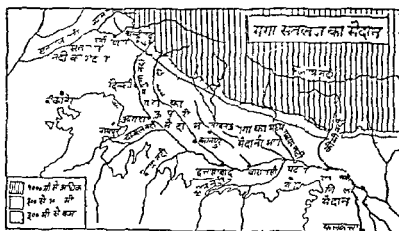
मानवीय दशाएँ—ऐसे भागों को छोड़कर जहाँ दलदल एवं वन हैं, अन्य भागों में जनसंख्या अत्यन्त घनी है। इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या लगभग ४ करोड़ है। जनसंख्या का घनत्व कहीं कहीं पर ४७० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है तथा कहीं-कहीं ३२० व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि कुल जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग शहरों में निवास करता है। यह इस प्रदेश के औद्योगिक नेतृत्व का परिचायक है।

आर्थिक दशाएँ—गंगा के निचले मैदान म अपक्षाकृत कम भूमि पर कृषि होती है। डेल्टा क्षेत्रों म सुन्दर वन हैं, यहाँ जूट तथा चावल की खेती मुख्यत होती है। इसके अलावा नारियल, केला, आम आदि फल यहाँ बहुतायत से होते हैं। वर्षा अधिक होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता यहाँ नहीं होती। नदियों, तालाबों एव समुद्रतट के निकट मछली पालन व्यवसाय भी किया जाता है।

इस क्षेत्र म दामोदर घाटी म खनिज सम्पदा के काफी भण्डार हैं। कोयला, ताँबा, अभ्रक, क्रोमाइट, चीनी मिट्टी आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। उद्योगों म यहाँ जूट उद्योग का बहुत अधिक विकास हुआ है। हुगली औद्योगिक क्षेत्र में १०० से भी अधिक जूट मिलें हैं। इसके अलावा सूती वस्त्र, कागज तथा रेशमी कपडे की मिलें भी हैं। रानीगज कोयला क्षेत्र मे इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का इस्पात बनाने का कारखाना है। दुर्गापुर म इस्पात निर्माण एव चितरजन मे रेल के इजिन बनाने के कारखाने हैं। सिन्दरी म रासायनिक खाद बनाने का एक बडा कारखाना है। बोकारो म एक विशाल इस्पात के कारखान की स्थापना भी की जा रही है। इसके अतिरिक्त चीनी मिट्टी के बर्तन, काँच, इजीनियरिंग का सामान तथा अन्य रासायनिक पदार्थ बनाने के कारखाने है। इस मैदान मे आसनसोल, हावडा, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, श्रीरामपुर आदि प्रसिद्ध नगर हैं। कृषि एव औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश अत्यन्त सम्पन्न प्रदेशो म है। किन्तु जनसख्या वृद्धि की दर यहाँ इतनी अधिक रही है कि पिछले दस वर्षों स इस प्रदेश म शिक्षित एव गैर-शिक्षित बेरोजगारी की समस्याएँ भयकर रूप धारण करती जा रही हैं। भूमि की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्रो मे भी यहाँ नक्सलवाद पनप रहा है जिसे रोकने के लिए रचनात्मक उपायो की आवश्यकता है।

(३) ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी

इस मैदान को उत्तरी पूर्वी मैदान भी कहा जाता है। मैदान के उत्तर पूर्व तथा दक्षिण मे पहाडियाँ हैं तथा पश्चिमी भाग गगा के डेल्टा से मिल जाता है। यह मैदान आसाम राज्य मे है। ब्रह्मपुत्र की घाटी की लम्बाई लगभग ८०० किलोमीटर तथा चौडाई ६५ किलोमीटर से ६५ किलोमीटर है।

प्राकृतिक दशाएँ एव जलवायु—इस घाटी का निर्माण ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियो द्वारा हुआ है। ये नदियाँ अपने साथ हिमालय की चट्टानों को काट कर लाती हैं तथा यहाँ मिट्टी के रूप म बिछा देती हैं। बाढ़ अधिक आने के कारण निचले भाग मे नदी कई शाखाओं में बँट जाती है। नदी की इन शाखाओं तथा प्रशाखाओ के दोनो ओर समतल मैदान है जिसकी मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है। नदी का निचला भाग गगा के डेल्टे से मिल कर पूर्वी पाकिस्तान मे फैला हुआ है।

इस क्षेत्र म गर्मियों म तापक्रम ३०° सेण्टीग्रेड तक हो जाता है तथा सर्दियों का तापक्रम १६° सेण्टीग्रेड तक हो जाता है। बगाल की खाडी से आने वाली ग्रीष्म

कालीन मानसूनी हवाओं से वर्षा होती है। वर्षा अधिकतर भागो मे २०० सेण्टीमीटर से भी अधिक होती है।

मानवीय एव आर्थिक दशाएँ—ब्रह्मपुत्र घाटी के इस भाग मे जनसख्या का घनत्व अधिक नही है। चाय के बगीचो में काम करने वाले लोग पश्चिमी बगाल, बिहार तथा अन्य राज्यो से आते हैं। कुछ जिलो में जनसख्या का घनत्व ३५० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर भी है। जनसख्या का बहुत कम भाग शहरों में रहता है।

इस मैदान के लगभग एक चौथाई भाग म कृषि की जाती है। चावल, तिलहन तथा आलू इस क्षेत्र की मुख्य उपजें हैं। ढालो पर चाय के बागान हैं। फलो मे सन्तरा, अनन्नास आदि पर्याप्त मात्रा मे होते हैं। खनिज सम्पदा के अन्तर्गत इस भाग मे खनिज तेल प्रमुख है। भारत का अधिकतर खनिज तेल इसी क्षेत्र मे निकाला जाता है। वृहत उद्योगो का यहाँ अभाव है तथा कुटीर उद्योगों मे रेशमी तथा सूती कपडे बुने जात हैं। यहाँ वनो की प्रचुरता है, क्योकि इस क्षेत्र म वर्षा काफी होती है। नहरकटिया क्षेत्र से कच्चे तेल की एक पाइप लाइन गोहाटी होती हुई बिहार के बरौनी क्षेत्र तक बिछी हुई है जो गोहाटी और बरौनी के तेल शोधक कारखानों को तेल की पूर्ति करती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सतलज एव गगा नदी का मैदान विशाल मैदान है तथा पश्चिम से लगाकर पूर्व तक विस्तृत है। सम्पूर्ण मैदान नदियो द्वारा लायी हुई मिट्टी से बना हुआ है जो कि बहुत उपजाऊ है। यह मैदान संसार के अधिकतम उपजाऊ मैदानों मे से एक है। भारत म घनी जनसख्या वाले क्षेत्र इसी भाग मे हैं। नदियो का यहाँ जाल सा बिछा हुआ है। भारत की अर्थ व्यवस्था मे इस मैदान का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उत्तरी मैदान का आर्थिक महत्त्व

आर्थिक दृष्टि से इस मैदान का बहुत अधिक महत्त्व है। कृषि व्यवसाय के लिए विभिन्न सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण इस भाग मे कृषि बहुत उन्नत है। उद्योगो का भी विकास हो रहा है। यातायात तथा सन्देशवाहन के साधनों में कठिनाइयाँ नही हैं अतः इस भाग का अधिक विकास हो पाया है। इस मैदान के निम्नलिखित लाभ प्राप्त हैं :

(१) **समतल भूमि**—कृषि के विकास के लिए समतल भूमि की आवश्यकता पडती है। इस मैदान का अधिकतर भाग समतल है। ऊँची-नीची भूमि म कृषि मे बाधाएँ आती हैं एव कृषि के नवीन तरीको को काम में लाना कठिन होता है। इस मैदान मे इस प्रकार की कोई प्राकृतिक बाधा नही है अत. कृषि के क्षेत्र में काफी उन्नति हो रही है। इस समतल मैदान का ढाल भी बहुत कम है अत. आवागमन के साधनों और नहर योजनाओं के निर्माण के लिए उपयुक्त है।

(२) **उपजाऊ मिट्टी**—इस मैदान की मिट्टी कछारी तथा तलछटी है जो कि नदियो के द्वारा लायी गयी है। लगभग सम्पूर्ण मैदान की मिट्टी उपजाऊ है अतः

कृषि उत्पादन अधिक हो सकता है। इस मिट्टी में गेहूँ, गन्ना, जूट तथा चावल जैसी प्रमुख फसलें आसानी से पैदा की जाती हैं। इस मैदान की नदियाँ लगातार भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती रहती हैं।

(३) सिंचाई एवं जल-विद्युत शक्ति—इस मैदान की नदियाँ सतत वाहिनी हैं अतः सिंचाई की बहुत सुविधा है। नदियों से नहरें निकाल कर सिंचाई की जाती है। मिट्टी मुलायम होने के कारण नहरें खोदने में कठिनाई नहीं होती। इसके अतिरिक्त कुँओं द्वारा भी सिंचाई होती है। नदियों से जल विद्युत उत्पन्न की जाती है जो कि कृषि एवं उद्योगों के विकास में महत्त्वपूर्ण है। इन सुविधाओं के कारण भारत में नवीन कृषि कार्यक्रम जैसे गहन कृषि आदि आसानी से कार्यान्वित किये जा रहे हैं।

(४) कृषि उन्नति—उपजाऊ मिट्टी तथा सिंचाई के साधनों की पर्याप्तता के कारण कृषि विकास अधिक हो रहा है। इस मैदान में गेहूँ, जौ, ज्वार, मक्का, बाजरा, चना, चावल आदि खाद्य फसलें तथा गन्ना, कपास, जूट, तिलहन आदि व्यापारिक फसलें बहुत मात्रा में होती हैं जिनसे औद्योगिक विकास में सहायता होती है। भारत का अधिकतर गन्ना तथा जूट इसी भाग में होता है।

(५) परिवहन एवं सन्देशवाहन के साधन—मैदान समतल तथा भूमि कठोर न होने के कारण यातायात तथा सन्देशवाहन के साधनों का काफी विकास हुआ है। विभिन्न क्षेत्र सड़कों तथा रेलों द्वारा जुड़े हुए हैं। आवागमन के साधनों की कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि भूमि ऊँची-नीची नहीं है। वायु मार्गों के विकास एवं हवाई अड्डों के निर्माण की भी यहाँ अधिक सुविधाएँ हैं। मैदान के पूर्वी भाग में जल परिवहन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

(६) औद्योगिक प्रगति—इस मैदानी भाग में उद्योगों के विकास के लिए भी उपयुक्त स्थिति है। कृषि पर आधारित उद्योग अधिकतर इसी भाग में स्थापित हैं, क्योंकि कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो जाता है। इस मैदान में चीनी, सूती-वस्त्र, जूट, चमड़ा तथा कागज उद्योग प्रमुख हैं। औद्योगिक नगरों का भी विकास हुआ है। पूर्वी भागों में लोह एवं इस्पात उद्योग अधिक विकसित है। अतः इस मैदान ने औद्योगिक प्रगति के लिए उत्तम पृष्ठ भूमि प्रस्तुत की है।

(७) पशु सम्पदा—विशाल मैदान के कुछ भागों में पशु सम्पदा काफी उपलब्ध है। सतलज के मैदान के दक्षिणी भाग में विभिन्न प्रकार के पशु पाये जाते हैं। गंगा के मैदान के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में जहाँ चरागाह हैं, पशु पालन होता है। पशु पालन व्यवसाय के कारण काफी लोगों को रोजगार उपलब्ध है। कृषि व्यवसाय के साथ-साथ सहायक व्यवसाय के रूप में पशु पालन किया जाता है।

(८) वनस्पति—गंगा के मैदान के उत्तरी भागों में जो कि हिमालय की तराई के निकट हैं काफी वन पाये जाते हैं। इन वनों से लकड़ी काटी जाती है। लकड़ी उद्योग तथा कागज उद्योगों को कच्चा माल यहीं से उपलब्ध होता है। जिन

भागो मे कृषि नही होती वहां चरागाह हैं जिनमे पशु पालन किया जाता है। वनो से बहुमूल्य लकडी भी उपलब्ध की जाती है।

(६) मनुष्य शक्ति—यह एक स्वाभाविक नियम है कि जिन क्षेत्रो मे मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं, ऐसे क्षेत्र अधिक व्यक्तियो को वहां बसाने के लिए आकर्षण प्रदान करते हैं। अत. मानव शक्ति, जो कि कृषि, उद्योगो तथा व्यापार के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इस भाग म काफी उपलब्ध है। उद्योगो के लिए कुशल श्रमिक हैं। विभिन्न व्यवसायो के लिए श्रम की किसी भी प्रकार की कमी नही है। भारत की सबसे अधिक जनसख्या इसी प्रदेश मे निवास करती है। किन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है। आवश्यकता से अधिक जनसख्या अनेक आर्थिक एव सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। इस मैदान के पूर्वी भागो मे जनसख्या का घनत्व बढ रहा है जिससे खेतों के विभाजन, रोजगार एव आवास की अनेक कठिनाइयां अब प्रतीत हो रही हैं। कैसा विरोधाभास है कि एक ओर तो ये मैदान विश्व के सबसे उर्वरा एव सम्पन्न मैदानो मे गिने जाते हैं, किन्तु दूसरी ओर इसके निवासी घोर दरिद्रता मे दिन काट रहे हैं। विकास की धीमी गति एव जनसख्या की अधिकता के कारण मैदान के पूर्वी एव निचले भागों म प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है।

74 (३) दक्षिणी पठार

दक्षिणी पठार उष्ण कटिबन्धीय भारत मे स्थित है। यह उत्तरी मैदान के दक्षिण मे पहाडो तथा पठारो द्वारा बना हुआ है, जिसका आकार त्रिभुजाकार है। उत्तरी भाग मे अरावली तथा विन्ध्याचल पर्वत हैं और दक्षिण मे नीलगिरि पहाड है। गगा-यमुना के मैदान को अरावली एव विन्ध्याचली पर्वत श्रेणियां इस पठार से अलग करती हैं जिनकी औसत ऊँचाई लगभग ४६० मीटर है। इन पर्वतमालाओ मे मुख्य अरावली, विन्ध्याचल, सतपुडा, मैकाल, महादेव तथा कैमूर आदि प्रमुख हैं। पठार के पश्चिम भाग मे पश्चिमी घाट पर्वत है जो कि पश्चिमी समुद्र तट के समानान्तर उत्तर से दक्षिण फैला हुआ है। इसकी ऊँचाई १,२०० से १,६५० मीटर तक है। पूर्वी भाग मे पूर्वी घाट है जो लगभग ६१५ से १,२२० मीटर तक ऊँचा है। इस पठार का दक्षिणी बिन्दु नीलगिरि पर्वत द्वारा एव 'अन्नामलाईह' और 'इलायची की पहाडियों' द्वारा मिला हुआ है जहां पश्चिमी तथा पूर्वी घाट मिलते हैं।

दक्षिणी पठार विश्व के प्राचीनतम क्षेत्रो मे सम्मिलित किया गया है। अनुमान है कि प्राचीन काल मे यह पठार १,५०० मीटर से अधिक ऊँचे पर्वतो के रूप मे था। परन्तु प्राकृतिक घर्षण एव विघटन की क्रियाओ के कारण कालान्तर मे इसकी ऊँचाई लगभग ४६० मीटर ही रह गयी है। इस पठार की चट्टानें अत्यन्त कठोर हैं। यह दक्षिणी पूर्वी राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उडीसा, आन्ध्रप्रदेश, मैसूर, केरल, तामिलनाडू आदि राज्यो मे फैला हुआ है।

दक्षिणी पठार के उपखण्ड

दक्षिणी पठार को निम्नलिखित उपखण्डों में विभक्त किया जा सकता है
(क) पठार का ऊपरी भाग,
(ख) दक्कन का मुख्य पठार ।
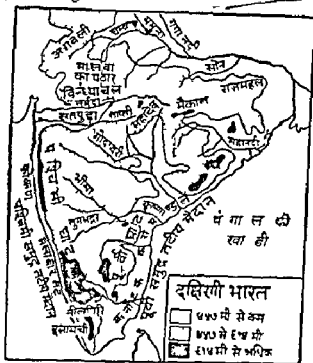
इन दोनों खण्डों को अन्य उपखण्डों में विभक्त किया जा सकता है जिनका वर्णन निम्नलिखित है :

(क) पठार का ऊपरी भाग

इस भाग में अरावली की पहाड़ियाँ, मालवा का पठार बुंदेलखण्ड का पठार तथा छोटा नागपुर का पठारी भाग सम्मिलित हैं। इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है :

(१) *अरावली पहाड़ियाँ (Aravali Hills)*—इस प्रदेश के उत्तरी पश्चिमी भाग में अरावली की पहाड़ियाँ हैं। ये लगभग ६९० किलोमीटर लम्बी है, इनकी औसत ऊँचाई ९१४ मीटर है। सबसे ऊँची चोटी गुरु शिखर है जो कि १,७२२ मीटर ऊँची है। ये पहाड़ियाँ सबसे प्राचीन मानी जाती हैं। अरावली की पर्वत मालाएँ उदयपुर, सिरोही, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, जयपुर, बूंदी, बाड़मेर तथा झालावाड़ जिलों में फैली हुई हैं। चम्बल, कालीसिन्ध, उटाड़, बनास आदि नदियाँ इस भाग में बहती हैं किन्तु चम्बल को छोड़कर अन्य नदियाँ प्रायः बरसाती ही हैं। चम्बल नदी का पूर्वी भाग हाड़ौती का पठार कहलाता है। इस भाग में गेहूँ, कपास, तिलहन,

मूँगफली, तम्बाकू, अफीम आदि की खेती की जाती है। चम्बल योजना के कारण सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो रहा है और औद्योगिक विकास के लिए जल विद्युत भी अब उपलब्ध है। राणा प्रताप सागर बाँध के निकट एक अणुशक्ति गृह (Atomic Power Station) भी बन कर लगभग पूरा हो चुका है।

(ii) **मालवा पठार** (Malwa Plateau)—इस क्षेत्र मे ग्वालियर की पहाड़ियाँ तथा विन्ध्याचल पर्वत आते हैं। इस क्षेत्र की मिट्टी काली है। मालवा पठार के पूर्वी भाग मे राजमहल की पहाड़ियाँ हैं। पठार का ढाल उत्तरी मैदान की तरफ है और इसकी ऊँचाई ४५० मीटर से ६०० मीटर तक है। य भाग मानसूनी वनों से ढके हुए हैं। कठोर लकड़ी वाले इन वनों म अनेक व्यापारिक महत्व की वस्तुएँ मिल जाती हैं जैसे कत्था, बीड़ी बनाने के पत्ते, चिरोंजी, आवला, गोंद आदि। अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ भी यहाँ की चट्टानों म मिलते हैं, जैसे मैंगनीज, लोहा तथा चूना आदि।

(iii) **बुन्देलखण्ड का पठार** (Bundelkhand Plateau)—यह मालवा पठार के पूर्वी भाग मे है। इसकी औसत ऊँचाई ३०० मीटर से ६०० मीटर तक है। मध्यप्रदेश का अधिकतर भाग तथा उत्तर प्रदेश का कुछ भाग इस क्षेत्र मे आता है। नर्मदा, बेतवा, सोन, टोंस आदि नदियाँ इसी प्रदेश की हैं। इसके पूर्व मे नागपुर का पठार है। इस पठार का पश्चिमी भाग बुन्देलखण्ड और पूर्वी भाग बघेलखण्ड नाम से विख्यात है। यह प्रदेश ऊबड़ खाबड़ है। आवागमन के साधनों का अभाव है। कृषि व्यवसाय पिछड़ा हुआ है।

(iv) **छोटा नागपुर का पठार** (Chhota Nagpur Plateau)—छोटा नागपुर का पठार दक्षिणी पठार का उत्तरी पूर्वी क्षेत्र है। इसके पश्चिम मे बघेलखण्ड उत्तर पूर्व मे गंगा का मैदान स्थित है। इन पठारी प्रदेशों मे उत्तर प्रदेश का कुछ भाग, दक्षिण बिहार का पर्याप्त भाग, उड़ीसा का कुछ भाग एव मध्यप्रदेश का उत्तर पूर्वी भाग सम्मिलित है। पठार की औसत ऊँचाई ७६० मीटर है। पारसनाथ जो कि इस पठार का सबसे ऊँचा भाग है, १,३६५ मीटर ऊँचा है। दामोदर, महानदी, सोननदी, सुवर्ण रेखा आदि नदियाँ इस भाग मे हैं। खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह भाग भारत का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सिद्ध हुआ है। भारी औद्योगीकरण के लिए आवश्यक प्राय सभी मूलभूत खनिज यहाँ पाये जाते हैं जैसे लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, तांबा, चूना, टंगस्टन, बाक्साइट आदि। भारत के सभी बड़े इस्पात के कारखाने इसी भाग मे स्थित हैं।

(ख) **दक्खन का मुख्य पठार** (Deccan Tableland)

दक्न के पठार की चट्टानें बहुत कठोर तथा प्राचीन हैं। इसकी लम्बाई एव चौड़ाई क्रमश १,६०० तथा १,४०० किलोमीटर के लगभग हैं। किन्तु दक्षिण की ओर चौड़ाई क्रमश कम होती चली जाती है। इस भाग मे पूर्वी घाट, पश्चिमी

घाट तथा नीलगिरि पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। मुख्य पठार को निम्नलिखित दो उप भागों में विभक्त किया जा सकता है

(i) दक्कन का लावा प्रदेश—यह दक्कन के मुख्य पठार का उत्तरी पश्चिमी भाग है। इसके दक्षिण-पूर्व में मुख्य पठार है तथा उत्तर में उत्तरी पठारी प्रदेश के भाग हैं। सतपुड़ा पर्वत इसी भाग में है। इसकी औसत ऊँचाई ६०० मीटर है। इस भाग की मिट्टी काली है अतः इसे काली मिट्टी का प्रदेश भी कहते हैं। यह मिट्टी प्राचीन काल में ज्वाला मुखी पर्वतों से निकले लावा से बनी है अतः इसे 'लावा' अथवा 'ट्रेप' मिट्टी भी कहा जाता है। पूर्वी भागों में गोदावरी तथा कृष्णा नदियों की घाटियाँ हैं और पश्चिम में पश्चिमी घाट है।

(ii) मुख्य दक्खन प्रदेश (Deccan Region)—इस प्रदेश के उत्तर-पश्चिम में लावा प्रदेश, पश्चिम में समुद्रतट है। मैसूर राज्य तथा तेलंगाना भाग इसमें सम्मिलित हैं। इसकी औसत ऊँचाई ६०० मीटर है। नीलगिरि पर्वत ऊँचा पर्वत है। पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट आदि भी ऊँचे हैं। सम्पूर्ण दक्कन प्रदेश अत्यन्त ही प्राचीन चट्टानों से बना हुआ है। पश्चिमी घाट को सह्याद्री कहा जाता है। यह घाट दक्षिण की तरफ ६० से ८० किलोमीटर तक चौड़ा है। अन्य भागों में ५० किलो-मीटर तक चौड़ा है। इसमें कुछ प्रमुख दर्रे हैं जिनमें थाल घाट, भोर घाट आदि प्रमुख हैं। दक्षिण में यह नीलगिरि पर्वत से मिला हुआ है। अन्नामलाई पहाड़ियाँ नीलगिरि पर्वत के दक्षिण में हैं। पूर्वी घाट महानदी घाटी से लगातार दक्षिण में नीलगिरि तक फैला हुआ है। इसकी औसत ऊँचाई ७६० मीटर है।

उक्त विवरण में दक्षिण के पठार की बनावट तथा विस्तार के विषय में वर्णन किया गया है। इनके अलावा जलवायु, मिट्टियाँ, खनिज सम्पदा तथा अन्य आर्थिक दशाएँ निम्नलिखित हैं

जलवायु—दक्षिण का पठार उष्ण कटिबन्ध में स्थित है क्योंकि विषुवत रेखा के निकट है। सम्पूर्ण प्रदेश में गर्मियों में पर्याप्त गर्मी पड़ती है, परन्तु सर्दियों में अधिक सर्दी नहीं पड़ती। औसत तापक्रम २५° से० ग्रे० रहता है। इस पठार के पश्चिमी घाट पर अधिक वर्षा होती है जो कि अरब सागर से आने वाली मानसूनों से होती है। इस पठार के कुछ भाग वृष्टि छाया के अन्तर्गत आ जाते हैं। अतः वहाँ कम वर्षा होती है। परन्तु पूर्वी घाट और नागपुर के पठार में तथा उड़ीसा में पर्याप्त वर्षा हो जाती है।

मिट्टियाँ—दक्षिण के पठार में लाल, काली, हल्की-लाल मिट्टियाँ पायी जाती हैं। उत्तरी पश्चिमी भाग में काली मिट्टी पायी जाती है। यह मिट्टी उपजाऊ है तथा कपास की फसल के लिए बहुत उपयुक्त है। अन्य भागों में लाल तथा हल्की लाल मिट्टी पायी जाती है। यह अधिक उपजाऊ नहीं होती है।

नदियाँ—दक्षिण के पठार में नदियाँ अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियाँ तीव्रगामी होती हैं। जब गर्मियों में तेज वर्षा होती है तब

नदियाँ बहुत तेज गति से बहती हैं। नर्मदा तथा ताप्ती नदियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर बहकर अरब सागर में गिरती हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि पूर्व की तरफ बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। इन नदियों पर बाँध बना कर जल विद्युत पैदा की जाती है। पश्चिमी घाट में नदियों पर अनेक स्थानों पर बाँध बनाकर जलविद्युत गृहों की स्थापना की गयी है।

खनिज सम्पदा—अरावली पहाड़ियों में अभ्रक, जस्ता, सीसा, लोहा, तांबा, मैंगनीज, संगमरमर तथा चूने के पत्थर पाये जाते हैं। बुन्देलखण्ड के पठार में उमरिया तथा सोहागपुर में कोयले की खानें हैं। हीरा की खानें भी हैं। छोटा नागपुर के पठार में कोयला, अभ्रक, लोहा तथा चूने-पत्थर बहुत पाये जाते हैं। इसके अलावा मुख्य दक्कन प्रदेश में लोह, मैंगनीज व सोना पाया जाता है। इस प्रकार यह प्रदेश खनिज सम्पदा में बहुत धनी है। बुन्देलखण्ड में पन्ना आदि मूल्यवान पत्थर मिलते हैं।

कृषि उपज—काली मिट्टी के भाग को छोड़कर अन्य क्षेत्र उपजाऊ नहीं हैं अतः कृषि उपज के लिए उपयुक्त प्रदेश नहीं हैं। काली मिट्टी के प्रदेश में कपास पैदा होती है। दक्षिणी पठारी भाग में अच्छी किस्म का गन्ना भी आजकल पैदा किया जाता है। लाल मिट्टी में मूँगफली की खेती की जाती है। इसके अलावा काली मिर्च, लौंग तथा अन्य मसाले इस भाग में उत्पन्न किये जाते हैं। दक्षिणी भागों में चाय व कॉफी भी पैदा की जाती है।

उद्योग—दक्षिण के पठार में खनिज सम्पदा बहुतायत से मिलने के कारण इन पर आधारित उद्योगों का विकास हुआ है। भद्रावती में लोहे का कारखाना है। हैदराबाद में सूतीवस्त्र, सिगरेट, दियासलाई तथा कुर्नूल में वनस्पति घी बनाने के कारखाने हैं। बंगलौर में सूती व ऊनी वस्त्र, रेल के डिब्बे, हवाई जहाज आदि बनाने के कारखाने हैं। कुछ भागों में अन्य सुविधाओं के अभाव में औद्योगिक विकास नहीं हो पाया है। भिलाई, राउरकेला, नासिक भोपाल, इन्दौर, उज्जैन, ग्वालियर, नागपुर आदि प्रमुख औद्योगिक केन्द्र इसी भाग में स्थित हैं।

वन सम्पदा—दक्षिण के पठार का अधिकतर भू भाग कृषि योग्य नहीं है। इस पठार में मानसूनी वन, शुष्क तथा उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान पाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार की लकड़ी उपलब्ध होने के कारण यहाँ लकड़ी एवं कागज उद्योग विकसित हो रहे हैं। नीलगिरि पर्वत पर सागौन, चन्दन तथा सिनकोना आदि के पेड़ पाये जाते हैं। चाय, रबड़, कहवा, इलाइची, कालीमिर्च, काजू, सुपारी आदि की उपज यहाँ बहुतायत से होती है।

दक्षिण के पठार का आर्थिक विकास में काफी महत्त्व है। इस पठार पर विभिन्न प्राकृतिक साधन जैसे खनिज तथा वन सम्पदा उपलब्ध हैं जो कि औद्योगिक प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इस प्रदेश से नदियाँ निकलती हैं जिनसे जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। खनिज पदार्थों की प्रचुरता एवं विविधता एवं शक्ति के

साधनों की बहुलता ने दक्षिण के पठार को औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त प्रदेश बना दिया है। भविष्य में इस प्रदेश में भारी उद्योगों के विकास की उज्ज्वल सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

(८) समुद्रतटीय मैदान
(Coastal Plains)

दक्षिणी पठार के दोनों ओर समुद्रतटीय मैदान हैं। पश्चिमी घाट और अरब सागर के मध्य पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान हैं तथा पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के मध्य पूर्वी समुद्रतटीय मैदान हैं। पश्चिमी तट, पूर्वी तट की अपेक्षा कम चौड़ा है।

(i) पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान

यह मैदान खम्भात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक लगभग २,४०० किलोमीटर लम्बा तथा औसत रूप में १० किलोमीटर चौड़ी पट्टी के रूप में फैला हुआ है। उत्तर के कुछ भागों में इस मैदान की लम्बाई ८० किलोमीटर तक है। इस मैदान में छोटी तथा तेज बहने वाली अनेक नदियाँ हैं। ताप्ती तथा नर्मदा मुख्य नदियाँ हैं। यह मैदान उप भागों में भी बाँटा जा सकता है जिनका वर्णन नीचे दिया गया है:

(क) कच्छ, काठियावाड़ और गुजरात का मैदानी भाग—इस मैदान में गुजरात राज्य का भाग है। यहाँ कई छोटी-छोटी पहाड़ियाँ भी हैं। अधिकांश भाग १८० किलोमीटर से नीचा है। यह क्षेत्र कृषि योग्य नहीं है क्योंकि नमकीन प्रदेश है। वर्षा भी यहाँ कम होती है।

काठियावाड़ प्रदेश तीन तरफ से समुद्र से घिरा हुआ है इसके उत्तर में कच्छ की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर तथा पूरब में खम्भात की खाड़ी है। यह प्रदेश लावा निर्मित चट्टानों से बना हुआ है। मध्य का भाग गुजरात का मैदान है। इसके पूर्वी भागों में पहाड़ियाँ हैं। दक्षिण में नर्मदा तथा ताप्ती नदियाँ हैं। गुजरात के मैदान की मुख्य नदी साबरमती है। यहाँ वर्षा ५० से० मी० से ७० से० मी० तक होती है। मिट्टी उपजाऊ है। मूँगफली यहाँ की प्रधान उपज है।

(ख) कोंकण प्रदेश (Konkan Region)—कोंकण प्रदेश गुजरात के मैदान के दक्षिण में दमन से गोआ तक फैला हुआ है। इसके दक्षिण में मालाबार तट है। इस भाग में दलदली भूमि भी पायी जाती है। कुछ भागों में समुद्र तट पर बालू मिट्टी होने के कारण यह अधिक उपजाऊ नहीं है। इस तट पर नारियल के पेड़ काफी पाये जाते हैं। यहाँ वर्षा बहुत होती है। वार्षिक तापान्तर ४° सेन्टीग्रेड ही रहता है। वार्षिक वर्षा का औसत २०० से० मी० से भी अधिक है। यहाँ मछली पकड़ने का व्यवसाय होता है।

(ग) मालाबार तट (Malabar Region)—मालाबार तट गोआ से लेकर कुमारी अन्तरीप तक है जो कि एक पतली पट्टी के रूप में है। यह तट नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टियों से बना है। यहाँ वर्षा बहुत होती है जिसका औसत २५० से० मी०

है। वार्षिक तापान्तर लगभग ४° से० ग्रे० तक रहता है। वर्षा अधिक होने के कारण घने वन भी पाये जाते हैं।

इस प्रकार पश्चिमी समुद्र तट का मैदान उत्तर से दक्षिण तक विभिन्न भागों मे विभक्त किया जा सकता है। इस मैदान मे जलवायु, मानवीय दशाएँ तथा आर्थिक दशाएँ नीचे दी गयी हैं.

जलवायु—समुद्रतट के निकट होने के कारण यहाँ नम जलवायु पाया जाता है। वार्षिक तापान्तर बहुत कम है। पश्चिमी तटीय मैदान मे २०० सेण्टी मीटर वार्षिक वर्षा होती है। अरब सागर से आने वाली मानसून हवाओं से वर्षा होती है। उत्तरी भाग मे कम वर्षा होती है, परन्तु ज्यो-ज्यों दक्षिण की तरफ बढते जाते हैं वर्षा अधिक होती जाती है।

मानवीय एवं आर्थिक दशाएँ—उत्तरी भाग में कच्छ प्रदेश मे कम जनसंख्या है परन्तु गुजरात के मध्य भाग मे जनसंख्या का घनत्व लगभग १७५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। कोंकण प्रदेश मे घनी जनसंख्या है। मालाबार प्रदेश, पश्चिम समुद्रतटीय मैदान मे सबसे अधिक जनसंख्या के घनत्व वाला प्रदेश है। यह प्रदेश भारत के अधिक जनसंख्या के घनत्व वाले प्रदेशों मे गिना जाता है। यहाँ कुछ भागों मे ५०० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक जनसंख्या का घनत्व है।

मालाबार प्रदेश कृषि प्रधान है। यहाँ की उपजाऊ मिट्टी में नारियल, सुपारी, कालीमिर्च, सोंठ एव रबर, कहवा, काजू, काफी आदि उत्पन्न किये जाते हैं। कोंकण प्रदेश मे चावल उत्पन्न किया जाता है। इसके अलावा आम, नारियल, सुपारी और काजू पैदा किये जाते हैं। चावल यहाँ की मुख्य उपज है। इस मैदान के उत्तरी भाग मे मोटे अनाज, ज्वार बाजरा, गहूँ, कपास आदि की फसलें भी होती हैं।

औद्योगिक दृष्टि से मालाबार तट पर अधिक विकास हो रहा है। यहाँ सूती कपडे की मिलें, नारियल का तेल, रसायनिक पदार्थ, कागज तथा साबुन बनाने के कारखाने स्थापित हो रहे हैं। कुटीर उद्योगों की भी उन्नति हो रही है। कोंकण तट पर मछली व्यवसाय भी किया जाता है। सूती वस्त्र उद्योग इस तट पर सबसे अधिक विकसित है। कोंकण तट पर सूती वस्त्र के अलावा रेशम तथा ऊनी कपडे की मिलें भी हैं। इनके अतिरिक्त कागज, रसायन, वनस्पति घी, मोटर, कांच तथा साइकिल बनाने के कारखाने काफी उन्नति कर रहे हैं। गुजरात क्षेत्र मे सूती वस्त्र उद्योग बहुत विकसित है। इसके अतिरिक्त रेशमी, ऊनी कपडा, तथा दियासलाई बनाने के कारखाने पाये जाते हैं। खम्भात की खाडी के क्षेत्र मे खनिज तेल भी निकाला जाता है। अंकलेश्वर के समीप अनेक तेल कूप हैं यहाँ कोयली मे एक बडा तेल शोधक कारखाना भी है। ट्रॉम्बे में भी दो तेल शोधक कारखाने हैं। अहमदाबाद मे पेट्रो रसायन उद्योग एव कोचीन मे रासायनिक उर्वरक कारखाने भी उल्लेखनीय हैं।

खनिज सम्पदा मे गुजरात क्षेत्र मे खनिज तेल मिलने की सम्भावना बढ रही

है। कोंकण क्षेत्र में थोड़ी मात्रा में बाक्साइट तथा क्रोमाइट पाया जाता है। मलाबार तट पर आणविक-खनिज चीनी मिट्टी तथा चूना पाये जाते हैं।

(ii) पूर्वी समुद्रतटीय मैदान (Eastern Coastal Plain)

पूर्वी समुद्रतटीय मैदान बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण के पठार के मध्य स्थित है। पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान की अपेक्षा यह अधिक चौड़ा है। यह उत्तर में गंगा नदी के डेल्टा से लेकर कुमारी अन्तरीप तक है। इस भाग में महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी मुख्य नदियाँ हैं। पूर्वी मैदान को निम्नलिखित उप-भागों में बाँटा जा सकता है :

(क) कारोमण्डल तट अथवा उत्तरी सरकार (Coromandal or Northern Circar)—इसे गोलकुण्डा तट के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यह मैदान महानदी, गोदावरी तथा कृष्णा नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टियों से बना है। इसकी औसत चौड़ाई लगभग ११५ किलोमीटर है। उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के मैदानी भाग इसी में सम्मिलित हैं। समुद्रतट के पास दलदली भूमि है तथा नदियों के डेल्टे हैं।

(ख) कर्नाटक तट (Karnatak Coast)—पूर्वी मैदान का दक्षिणी भाग कर्नाटक अथवा तामिलनाड प्रदेश कहलाता है। यह समुद्रतट से लगभग ६० मीटर ऊँचा है। कहीं-कहीं पर चट्टानें हैं। यह प्रदेश नदियों द्वारा लायी गयी काँप मिट्टियों से बना है। पेरियर, कावेरी तथा पेनार मुख्य नदियाँ हैं। कर्नाटक तट लगभग ६७० किलोमीटर लम्बा है तथा इसकी औसत चौड़ाई १०० किलोमीटर है।

पूर्वी समुद्रतटीय मैदान का जलवायु—कर्नाटक तट का तापक्रम कुछ ऊँचा रहता है वर्षा इस प्रदेश में पश्चिम की अपेक्षा कम होती है। वार्षिक औसत वर्षा १०० से० मी० होती है। पूर्वी मैदान के बिलकुल उत्तरी भाग में १५० से० मी० से भी अधिक वर्षा होती है। परन्तु दक्षिण की तरफ कम वर्षा होती जाती है। कुछ भागों में ६० से० मी० से भी कम वर्षा होती है। उत्तरी भाग में तापान्तर ५° से० ग्रे० तक रहता है। दक्षिणी भाग में सर्दियों में भी वर्षा होती है। भारत का यह समुद्रतट ग्रीष्म एवं शीत दोनों ऋतुओं में वर्षा प्राप्त करता है।

मानवीय एवं आर्थिक दशाएँ—उत्तरी भाग में जनसंख्या का घनत्व लगभग १५३ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। दक्षिणी भागों में घनत्व २६७ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। कावेरी नदी के क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

मिट्टी उपजाऊ होने के कारण चावल, गन्ना, कपास, तम्बाकू आदि मुख्य फसलें हैं। वर्षा वाले भागों में सिंचाई की जाती है कुछ अन्य फसलें, जैसे मसाले, ज्वार, तिलहन तथा मूँगफली भी होती हैं। जल विद्युत के विकास के साथ औद्योगिक विकास भी हुआ है। सूती कपड़े, चीनी तथा सीमेण्ट के कारखाने आदि मुख्य हैं तथा इनके अतिरिक्त सिगरेट, मोटर, साइकिलें, रेल के डिब्बे, चमड़े का सामान तथा

रासायनिक पदार्थ तैयार करने के भी कारखाने हैं। मत्स्य व्यवसाय के द्वारा भी अनेक व्यक्ति जीविकोपार्जन करते हैं।

(५) थार का मरुस्थल
(Thar Desert)

अरावली पहाड़ के उत्तर-पश्चिमी भाग म थार का मरुस्थल है। यह पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा के साथ-साथ फैला हुआ है। राजस्थान का ६०% क्षेत्र रेगिस्तान मे है। औसतन इसकी लम्बाई ६५० किलोमीटर है और चौड़ाई ३२५ किलोमीटर है। बाड़मेर, बीकानेर तथा जैसलमेर क्षेत्रों मे बालू मिट्टी के टील हैं। बालू रेत के टीले १०० मीटर से भी ऊँचे ऊँच हैं। नमकीन झीलें साम्भर, लूनकरनसर, पचमद्रा, बालोतरा तथा डीडवाना मे हैं। लूनी नदी मुख्य नदी है जो कि अरावली पर्वत से निकलती है। अन्य नदियां जोजरी, सूकडी, जवाई, बाडी आदि हैं, किन्तु ये सभी बरसाती नदियाँ हैं और वर्ष के अधिकांश भाग मे सूखी पडी रहती हैं।

(i) जलवायु—गर्मियों के दिनों मे यहाँ आँधियां आती हैं, तथा बहुत गर्मी पडती है। इन दिनो रातें कुछ शीतल हो जाती हैं। शीत ऋतु में सर्दी अधिक पड़ती है। वर्षा यहां बहुत कम होती है। दिन-रात तथा गर्मी-सर्दी का तापान्तर बहुत अधिक है। पूर्व से उत्तर-पश्चिम की तरफ वर्षा कम होती जाती है। पीने के पानी का भी अभाव पाया जाता है।

(ii) मानवीय साधन—राजस्थान की ३०% जनसंख्या थार के मरुस्थल मे पायी जाती है। जनसंख्या का घनत्व १० व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। कुछ जिलो मे घनत्व इससे अधिक है। अधिकतर जनसंख्या गाँवों में रहती है। बीकानेर, जैसलमेर तथा जोधपुर मुख्य शहर हैं। जैसलमेर में जनसंख्या का घनत्व सबसे कम है।

(iii) खनिज सम्पदा—बीकानेर, जोधपुर तथा जैसलमेर क्षेत्रों मे कई प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। लिगनाइट कोयला, मुल्तानी मिट्टी तथा जिप्सम बीकानेर क्षेत्र में पाये जाते हैं। जोधपुर क्षेत्र में संगमरमर, जिप्सम, चूना आदि की खानें हैं। साभर, डीडवाना तथा लूनकरनसर में नमक का उत्पादन भी किया जाता है।

(iv) वनस्पति व पशु सम्पदा—वर्षा के अभाव में यहाँ वनो का अभाव है। कहीं-कहीं कांटेदार झाड़ियां हैं। दूर-दूर तक बबूल तथा खेजड़ा के वृक्ष पाये जाते हैं। सरकण्डे के पौधे तथा अन्य प्रकार की घास वर्षा ऋतु में पायी जाती है। पशु सम्पदा में इस भाग में ऊँट, भेड़-बकरियां, नागौरी बैल, साचोरी गाय, भैंसे, घोड़े आदि पाये जाते हैं। ऊँट, सवारी, खेती तथा बोझ ढोने के काम आता है जिसे रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। भेड़-बकरियों से अच्छे किस्म की ऊन तैयार की जाती है। बैल इस भाग के प्रसिद्ध हैं जिनको नागौरी कहा जाता है।

(v) कृषि उपज एवं उद्योग धन्धे—वर्षा तथा सिंचाई के साधनों के अभाव में कृषि अधिक उन्नत नहीं है। यहाँ शुष्क फसलें (Dry Crops) उत्पन्न की जाती हैं।

यहाँ की मुख्य फसलें बाजरा, मूंग, मोठ, दालें, तिल आदि हैं। ये फसलें प्राय: वर्षा काल मे उत्पन्न की जाती हैं। अधिकतर भागो मे साल मे एक ही फसल होती है जहाँ सिंचाई की सुविधाएं है वहां रबी की फसल भी की जाती है। मरुस्थल के उत्तरी-पूर्वी भागो म चना तथा गेहूँ की खेती की जाती है। औद्योगिक दृष्टि से यह भाग पिछड़ा हुआ है। कुटीर उद्योग का विकास हो रहा है। इन वर्षों मे डीडवाना, चूरू, बीकानेर तथा अन्य भागो मे उद्योगो का विकास किया जा रहा है। बीकानेर, चूरू तथा नागौर मे ऊनी कताई मिलें हैं। सोडियम सल्फेट फैक्टरी डीडवाना मे स्थापित की गयी है। परिवहन की दृष्टि से भी यहां सड़को एव रेलो का विकास करना अधिक कठिन एव व्ययसाध्य है।

थार के मरुस्थल का आर्थिक विकास जल की उपलब्धि पर आधारित है। राजस्थान नहर के पूर्ण हो जाने पर इस क्षेत्र का विकास सम्भव हो सकेगा। अप्रैल १९७१ मे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने इस परियोजना को 'केन्द्रीय दायित्व' मे ले लिया है और अब पूंजी की कमी के कारण रुकी हुई यह योजना द्रुतगति से पूरी की जा सकेगी। जैसलमेर क्षेत्र मे खनिज तेल के भण्डार भी पाये गये हैं जिनका विकास इस क्षेत्र को शक्ति के साधन उपलब्ध करा सकेगा। सिंचाई के साधनो के अभाव म कृषि की उन्नति नही हो पा रही है। पानी उपलब्ध होने पर यहाँ की मिट्टी मे विभिन्न प्रकार की फसलें उगायी जा सकती हैं। औद्योगिक क्षेत्र मे इस क्षेत्र के प्रवासी व्यवसाय कुशल हैं परन्तु विभिन्न सुविधाओं के अभाव मे भारत के अन्य भागो म फैले हुए हैं। आशा है निकट भविष्य मे इस क्षेत्र मे काफी उन्नति होगी।

प्रश्न

१ हिमालय के उद्भव के विषय म आप क्या जानते हैं? इस पर्वत न देश की अर्थ-व्यवस्था पर क्या प्रभाव डाला है? (टी० डी० सी०, पूरक परीक्षा, १९६६)

२ हिमालय पर्वतो के निर्माण के बारे मे आप क्या जानते हैं? इन्होंने किस प्रकार देश की आर्थिक-व्यवस्था को प्रभावित किया है।
(राज०, बी० कॉम०, पूरक परीक्षा, १९६४)

३ भारत को भौतिक विभागो मे बांटते हुए सतलज गगा के मैदान का वर्णन प्राकृतिक बनावट, जलवायु और उपज आदि शीर्षकों पर कीजिए।
(राज०, बी० कॉम०, १९६४)

४. भारत को प्राकृतिक भागों मे विभक्त कीजिए तथा किसी एक विभाग के जलवायु, आर्थिक दशाओं तथा मानवीय दशाओं का वर्णन कीजिए।

५ भारत के किसी एक बड़े प्राकृतिक भाग का निम्न शीर्षकों के विशेष सन्दर्भ मे विवेचन कीजिए -
(क) विस्तार, (ख) मिट्टी, (ग) जलवायु, (घ) फसलें, और (ङ) जनसंख्या।
(राजस्थान, १९७०)

६ उत्तर और दक्षिण भारत की प्राकृतिक बनावट के अन्तर का स्पष्टीकरण कीजिए। 73

अध्याय ४

भारत की जलवायु
(CLIMATE OF INDIA)

जलवायु के अनुसार विश्व के प्राकृतिक प्रदेशों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि भारत की गणना ऐसे प्रदेशों में की जाती है जिनका जलवायु मानसूनी प्रकार का है। इन प्रदेशों को मानसूनी प्रदेशों की संज्ञा प्रदान की जाती है। 'मानसून' अरबी शब्द मौसिम (Mausim) का अपभ्रंश है जिसका अर्थ मौसमी हवाओं से है। मानसूनी प्रदेश १०° अक्षांशों से ३०° अक्षांशों के बीच भूमध्य रेखा के दोनों ओर महाद्वीपों के पूर्वी भागों में मिलते हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया विश्व के मानसूनी प्रदेशों में सबसे विस्तृत प्रदेश माना जाता है तथा भारत इस प्रदेश का एक प्रमुख राष्ट्र है। मानसूनी जलवायु ग्रीष्म ऋतु में गर्म एवं आर्द्र होती है और शीत ऋतु में सामान्यतः कुछ कम उष्ण तथा शुष्क होती है। इन प्रदेशों की जलवायु पर मानसूनी हवाओं का बहुत अधिक प्रभाव होता है। भारत का जलवायु भी ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन मानसूनी हवाओं से बहुत अधिक प्रभावित है जो अप्रैल से सितम्बर तक दक्षिण पश्चिम की ओर से तथा अक्टूबर से मार्च तक उत्तर पूर्व की ओर से प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार ये मानसूनी हवाएँ भारत में छः माह एक दिशा से तथा शेष छः माह विपरीत दिशा से चलकर हमारे वर्ष को ग्रीष्म एवं शीत ऋतुओं में विभाजित कर देती हैं। ग्रीष्म ऋतु के उत्तरार्ध में देश अधिकतर वर्षा प्राप्त करता है, अतः इस काल को वर्षा-ऋतु के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

किसी देश की जलवायु पर विचार करते समय उन सभी तत्वों पर विचार करना आवश्यक होता है जो उस देश की जलवायु पर प्रभाव डालते हैं। जलवायु के इन तत्वों में हवाओं के दबाव एवं उनकी दिशा तथा गति के अतिरिक्त ताप सम्बन्धी दशाएँ, आर्द्रता एवं वर्षा तथा वायुमण्डल में समय-समय पर होने वाले अन्य परिवर्तन सम्मिलित किये जाते हैं। ये तत्व एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा उनका सम्मिलित प्रभाव ही किसी प्रदेश विशेष की जलवायु का निर्माण करता है। इन समस्त तत्वों पर उस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है जिसका विस्तार से वर्णन आगे किया गया है।

भारत की भौगोलिक स्थिति का जलवायु पर प्रभाव

भारत की जलवायु में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं, जिनका कि किसी भी बड़े देश की जलवायु में पाया जाना स्वाभाविक है। जलवायु में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ देश की भौगोलिक स्थिति के कारण दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न स्थानों के तापक्रम, वायु सचार तथा वर्षा के समय एवं परिमाण में असमानताएँ मिलती हैं। कुछ क्षेत्र अधिक शुष्क है, तो कुछ अत्यधिक नम हैं। इसी प्रकार कुछ प्रदेशों में गर्मियों में तापक्रम बहुत अधिक हो जाते हैं तथा शीत ऋतु में अपेक्षाकृत बहुत कम। इसी प्रकार कुछ भागों में ग्रीष्म एवं शीत ऋतु के तापक्रमों में इतनी विषमता नहीं होती है। यह सब भारत की भौगोलिक स्थिति के कारण है। भारत की जलवायु पर हमारी भौगोलिक स्थिति के निम्नलिखित तत्व प्रभाव डालते हैं :

(१) भूमध्यरेखा से निकटता—भारत का दक्षिणी छोर लगभग ८° उत्तरी अक्षांश पर है जो कि भूमध्यरेखा से केवल ६४० किलोमीटर की दूरी पर है। भूमध्यरेखा की निकटता के कारण भारत का जलवायु गर्म है। भूमध्यरेखा अथवा विषुवत रेखा से ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है, उष्णता कम होती जाती है।

(२) कर्करेखा की स्थिति—कर्करेखा भारत को लगभग दो समान भागों में विभक्त करती है। उत्तरी भारत जो कि कर्क रेखा के उत्तर में स्थित है शीतोष्ण जलवायु वाला प्रदेश है। इसके विपरीत कर्क रेखा के दक्षिण में स्थित दक्षिणी भारत उष्ण कटिबन्ध में सम्मिलित किया जाता है। फलतः उत्तरी भारत में गर्मी में अधिक गर्मी एवं सर्दी में अधिक सर्दी पड़ती है, जबकि दक्षिण भारत में गर्मी सर्दी का वार्षिक तापान्तर (Annual Range of Temperature) बहुत कम होता है।

(३) समुद्र से दूरी—समुद्र की निकटता जलवायु की विषमता को कम करके जलवायु को सामान्य बनाती है, अर्थात् समुद्र तट के निकट वाले भागों में ग्रीष्म में अधिक गर्मी एवं शीत ऋतु में अधिक सर्दी नहीं पड़ती है। दक्षिणी प्रायद्वीप तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है और इस कारण समुद्रतटवर्ती मैदानों एव पठारी भाग में गर्मी-सर्दी का वार्षिक तापान्तर बहुत कम होता है। समुद्र की निकटता उस प्रदेश की आर्द्रता अथवा नमी में भी वृद्धि करती है।

(४) समुद्र तल से ऊँचाई—ऊँचाई समुद्र तल से जितनी ही अधिक होती जायगी, तापक्रम उतना ही कम होता जायगा। यही कारण है कि हिमालय की ऊँची चोटियों पर वर्फ जमी रहती है जबकि निचले भागों में तापक्रम अधिक होता है। दक्षिणी भारत में भी पश्चिमी घाट तथा नीलगिरि पर्वतमालाओं के ऊँचे भागों में तापक्रम बहुत कम रहता है।

(५) हवाओं का रुख—तापक्रम की भिन्नता के कारण वायु भार में अधिकता अथवा कमी उत्पन्न होती है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर वायु सचार का कारण बन जाती है। वायु भार में जितना ही अधिक अन्तर होगा उतनी ही अधिक वेग से

वायु अधिक वायु भार वाले भाग मे कम वायु-भार वाले केन्द्रो की ओर प्रवाहित होगी । यदि वायु-प्रवाह के मार्ग मे समुद्र अथवा पहाडी प्रदेश स्थित हैं तो इस स्थिति का उन प्रदेशो की वर्षा पर गहरा प्रभाव होगा । भारत मे ग्रीष्म काल मे उत्तर की ओर वायु-भार कम हो जाता है । अत. दक्षिण पश्चिम से ग्रीष्मकालीन मानसूनी हवाएँ उत्तर पूर्व की ओर चलने लगती हैं । दक्षिण में समुद्र होने से इन हवाओं म नमी अधिक होती है जो पर्वतो के मार्ग मे आ जाने स अधिकाश वर्षा भारत को प्रदान कर देती है । इसके विपरीत शीतकाल मे वायु उत्तर पूर्व स चलती है जिसमे आर्द्रता की मात्रा बहुत कम होती है ।

(६) धरातल की बनावट—धरातल की बनावट म भिन्नता के कारण भी जलवायु म भिन्नता पायी जाती है । मरुस्थली भागो म भूमि अति शीघ्रता से गर्म एवं ठण्डी हो जाती है । अत: दिन-रात के तापक्रम मे अधिक अन्तर होता है । इसी प्रकार पर्वतो, पठारो, दलदलो, नदियो, झीलो आदि का भी विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु पर निश्चित प्रभाव पडता है ।

उपर्युक्त सभी तत्त्व हमारी जलवायु को प्रभावित करते हैं और इस कारण हमे भारत की जलवायु मे क्षेत्रीय विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । फलस्वरूप कहीं अधिक तापक्रम रहता है तो कही बहुत कम, कही वायुमण्डल मे अधिक आर्द्रता होती है, तो कही वायुमण्डल शुष्क रहता है । उदाहरण के लिए, यदि राजस्थान एव पश्चिमी बगाल को ही लिया जाय तो इन दोनो राज्यों की जलवायु मे हमे पर्याप्त अन्तर मिलता है; यद्यपि दोनो ही भूमध्य रेखा स लगभग समान दूरी पर स्थित हैं । पश्चिमी बगाल समुद्र के निकट है और समुद्रतल से उसकी ऊँचाई बहुत अधिक नहीं है । नदियों के डेल्टा के कारण वहाँ उत्तम चिकनी मिट्टी है और वाष्पयुक्त हवाओं के मार्ग मे होने के कारण वहाँ उत्तम वर्षा हो जाती है । अत: सब प्रकार की वनस्पति की अधिकता है । इसके विपरीत राजस्थान समुद्र से दूर है और ग्रीष्मकालीन मानसून राजस्थान तक पहुँचते-पहुँचते अपनी अधिकाश आर्द्रता से मुक्त हो जाते हैं । वर्षा की कमी एव रेतीली भूमि के कारण राजस्थान मे विशेषत: उत्तर पश्चिमी राजस्थान म वनस्पति का अभाव है । अत. राजस्थान अत्यन्त गर्म एव शुष्क प्रदेश है किन्तु शीतऋतु मे यहाँ तापक्रम प्राय. कम रहते हैं । दिन की अपेक्षा रात्रि को भी यहाँ तापक्रम कम रहते हैं क्योकि सूर्यास्त के बाद रेत शीघ्रता से ठण्डी होने लगती है और दिन मे सूर्य की गर्मी से जल्दी गर्म हो जाती है ।

भारत मे ऋतुएँ

भारत मानसूनी प्रदेश है । अत: यहाँ की ऋतुएँ उष्ण कटिबन्धीय जलवायु से प्रभावित हैं; यद्यपि शीतकालीन मानसूनी हवाओ के काल मे उत्तर भारत मे शीतोष्ण कटिबन्ध की दशाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं । भारत मे प्राय· तीन ऋतुएँ

मानी जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु एवं शीत ऋतु। इनके उपविभाग भी किये जा सकते हैं। भारतीय पद्धति के अनुसार छः ऋतुएँ[1] मानी गयी हैं।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (The Indian Meteorological Deptt.) की मान्यता के आधार पर भारत की ऋतुओं को चार भागों में विभक्त किया गया है

(१) शीत ऋतु (दिसम्बर से मार्च तक)
(२) ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से मई तक)
(३) वर्षा ऋतु (जून से सितम्बर तक)
(४) लौटती हुई दक्षिण पश्चिमी मानसूनी हवाओं की ऋतु (The Season of Retreating Monsoons) (अक्टूबर से नवम्बर तक)

ऋतुओं का जो निश्चित काल ऊपर बतलाया गया है वह एक वर्ष से दूसरे वर्ष तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होता है। दक्षिण में एवं सुदूर उत्तर में जम्मू काश्मीर प्रदेश में उपरोक्त ऋतु क्रम में कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। वर्ष प्रतिवर्ष भी इसमें कुछ परिवर्तन हो सकता है, क्योंकि मानसून के आगमन तथा गमन के समय में परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन कुछ सप्ताह तक का हो सकता है। एक स्थान से दूसरे स्थान में ऋतुओं के काल में भिन्नता का कारण यह है कि वर्षा ऋतु कुछ स्थानों पर शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है तथा देर तक रहती है। भारत के उत्तरी भागों में वर्षा ऋतु का काल अपेक्षाकृत कुछ सीमित होता है। यहाँ मानसून देर से पहुँचती है और पहले ही समाप्त हो जाती है। अतः इतने विशाल देश में ऋतुओं के काल में स्थानीय भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होना कोई असामान्य बात नहीं है।

प्रोफेसर डडले स्टाम्प (Dudley Stamp) ने भारतीय वर्ष को निम्न तीन प्रमुख ऋतुओं में विभाजित किया है।

(१) शीत ऋतु (अक्टूबर से फरवरी तक)
(२) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से जून के मध्य तक)
(३) वर्षा ऋतु (मध्य जून से सितम्बर तक)

मोटे रूप में यही तीन प्रधान ऋतुएँ भारत में सर्वमान्य हैं। इनका विस्तृत विवरण नीचे किया गया है।

(१) शीत ऋतु

यह ऋतु भारत में वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर आरम्भ होती है। प्रारम्भ

---

[1] ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु, श्रावण-भादों में वर्षा ऋतु, क्वार-कार्तिक में शरद ऋतु, अगहन-पौष में शीत अथवा शिशिर ऋतु, माघ-फाल्गुन में हेमन्त ऋतु और चैत-बैसाख में बसन्त-ऋतु मानी जाती है। विभिन्न प्रदेशों में स्थान भेद के अनुसार इन ऋतुओं के कालक्रम में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु समस्त भारत में न्यूनाधिक रूप में इन छः ऋतुओं के लक्षण अवश्य प्रतीत होते हैं।

मे तापक्रम धीरे-धीरे नीचे गिरने लगते हैं तथा दिन छोटे एव रात्रियां लम्बी होने लगती हैं। दिसम्बर के अन्त तक तापक्रमो म पर्याप्त कमी हो जाती है और दिन दस घण्टे का तथा रात्रि चौदीस घण्टे की हो जाती है।

(1) शीतकालीन मानसूनी हवाएँ (Winter Monsoons)—इस समय हवाएँ उत्तर पूर्व दिशा मे प्रवाहित होती हैं जिन्हें शीतकालीन मानसून के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन दिनों दक्षिणी गोलार्ध सूर्य के ठीक सम्मुख होता है और मकर रेखा पर सूर्य लम्बरूप होता है। अत भारत के दक्षिण म निम्न वायु भार वाले केन्द्रों (Low Pressure Belts) का निर्माण हो जाता है, जबकि भारत के उत्तर मे एशिया भूखण्ड मे अतिशीत के कारण उच्च वायु भार वाले केन्द्रों (High Pressure Belts) का निर्माण हो जाता है। अत हवाएँ उत्तरी भागो से दक्षिण की ओर चलती हैं, किन्तु फैरल के नियम[1] (Ferrel's Law) के अनुसार ये हवाएँ उत्तरी गोलार्ध मे अपने दाहिनी ओर मुड जाती हैं। इस प्रकार इनकी दिशा ठीक उत्तर से दक्षिण न होकर उत्तर पूरब से दक्षिण-पश्चिम हो जाती है। ठण्डे प्रदेशों से आने के कारण ये हवाएँ ठण्डी होती हैं। इस मौसम मे वायु की गति प्रायः धीमी रहती है। आकाश मेघ-रहित और स्वच्छ रहता है।

(ii) तापक्रम (Temperature)—शीत ऋतु मे उत्तरी गोलार्ध मे सूर्य की किरणें तिरछी पडती हैं। अत इस काल मे तापक्रम न्यून बिन्दु पर रहता है। उत्तर से दक्षिण की ओर जाने पर तापक्रम म वृद्धि प्रतीत होने लगती है। उत्तरी भारत मे और विशेषतः उत्तर पश्चिमी भारत मे तापक्रम अपेक्षाकृत कम रहता है। यहाँ औसत तापक्रम १८° से० ग्रेड रहता है किन्तु कभी-कभी शीतलहर आने पर तापक्रम ४° से० ग्रेड से भी कम हो जाता है और रात्रि को कुछ स्थानो पर यह हिम-बिन्दु (Freezing Point) तक भी गिर जाता है। कुछ ऊँचे पहाडी स्थलों को छोडकर मैदानी भागो म हिमपात नही होता है यद्यपि यदा-कदा ओलावृष्टि हो सकती है जो उपज के लिए हानिकारक होती है फिर भी कुल मिलाकर मैदानी भागो मे तापक्रम इतने नीचे नही जाते हैं कि फसलें उत्पन्न न की जा सकें। दक्षिण भारत मे इस ऋतु मे तापक्रम औसतन २५° से ३०° से० ग्रेड तक रहता है।

शीतकाल प्राय. शुष्क एव वर्षा-रहित होता है। केवल मद्रास और केरल मे पूर्वीतट पर कुछ वर्षा हो जाती है, क्योंकि उत्तर-पूर्वी शीतकालीन मानसूनी हवाएँ जब बगाल की खाडी पर से गुजरती हैं तो वे वाष्पयुक्त हो जाती हैं तथा पूर्वी घाट के सम्पर्क मे आकर ऊँची उठती हैं। इस प्रकार ठण्डक पाकर उनका द्रवीकरण हो जाता है। इस तट पर इस काल मे दस-पन्द्रह से० मी० वर्षा हो जाती है।

---

[1] फैरल के नियम (Ferrel's Law) के अनुसार हवाएँ पृथ्वी की दैनिक गति के कारण उत्तरी गोलार्ध मे अपनी दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध मे अपनी बायीं ओर मुड जाती हैं।

इस ऋतु में उत्तर-पश्चिमी भारत में भी कुछ वर्षा होती है। यह वर्षा जनवरी के अन्त में अथवा फरवरी में चक्रवातीय हवाओं (Cyclones) के द्वारा होती है। इस वर्षा की मात्रा ३ से ५ से० मी० तक हो सकती है जो गेहूँ, जौ, चन की उपज में वृद्धि कर देती है।

(२) ग्रीष्म ऋतु
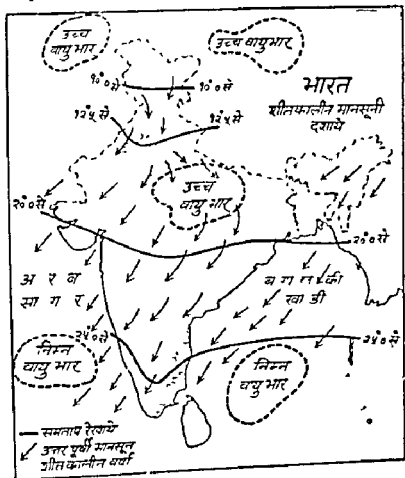
भारत में ग्रीष्म ऋतु मार्च से जून तक मानी जाती है। वैसे जून से सितम्बर तक के चार महीने भी ग्रीष्म ऋतु के ही महीने हैं, किन्तु चूँकि इन महीनों में वर्षा होती है अतः इसे वर्षा ऋतु के विशिष्ट नाम से सम्बोधित किया जाता है। मार्च के बाद उत्तरी गोलार्ध सूर्य के सम्मुख आने लगता है और २२ जून तक कर्क रेखा सूर्य के ठीक सम्मुख आ जाती है, अर्थात् सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लम्बरूप पड़ने लगती हैं। इस कारण उत्तरी गोलार्ध में अधिक गर्मी पड़ती है और वायु भार केन्द्रों में परिवर्तन आ जाता है।

(i) वायु प्रवाह—उत्तरी गोलार्ध सूर्य के सम्मुख आ जाने के कारण एशिया के विस्तृत भूभाग शीघ्र तपने लगते हैं। हवा गर्म होकर हल्की हो जाती है और ऊपर को उठने लगती है जिससे उत्तर की ओर निम्न वायु-भार वाले क्षेत्र बन जाते हैं, जबकि दक्षिणी भागों में वायु का दबाव अधिक होता है। अतः वायु दक्षिण से उत्तर की ओर चलने लगती है और 'फेरल के नियम' के अनुसार अपने दाहिनी ओर मुड़ जाती है जिससे इनकी दिशा ठीक दक्षिण से उत्तर न होकर दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूरब हो जाती है। ग्रीष्म के प्रारम्भ में ये हवाएँ उत्तरी भारत में पश्चिम की ओर से चलती हैं। इन हवाओं की गति तेज होती है तथा मरुप्रदेशों से आने के कारण ये हवाएँ रेत भरी होती हैं। कभी-कभी इन आँधियों की प्रचण्डता बहुत अधिक होती है। ऐसी आँधियों की समाप्ति कुछ बूंदा-बांदी के साथ होती है। वायु द्वारा कटाव भी इन हवाओं से बहुत अधिक होता है। दक्षिणी भारत में समुद्र की समीपता के कारण हवाओं में नमी अथवा आर्द्रता की मात्रा बढ़ने लगती है।

(ii) तापक्रम—ग्रीष्म ऋतु में भारत के धरातल पर सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ने के कारण तापक्रम अधिक हो जाता है। समुद्र के निकट जो भाग हैं, वहाँ नमी के कारण गर्मी कुछ कम पड़ती है। अप्रैल मई और जून में वैसे तो सम्पूर्ण भारत में तापक्रम बढ़ जाता है किन्तु उत्तरी भारत में यह अधिक तीव्रता से बढ़ने लगता है। औसत तापक्रम ३०° से ३५° से० ग्रे० तक हो जाता है किन्तु कुछ भागों में अधिकतम तापक्रम ४८° से० ग्रे० से भी अधिक हो जाता है। ऐसी दशा में वह असहनीय हो जाता है। उत्तर-पश्चिमी भारत में दिन बहुत अधिक गर्म एवं रातें अपेक्षाकृत कुछ ठण्डी होती हैं। किन्तु दक्षिणी प्रायद्वीप में दिन और रात्रि के तापक्रमों में विशेष अन्तर नहीं होता है।

(iii) आर्द्रता (Humidity)—भारत के अधिकांश भागों में ग्रीष्म ऋतु का पूर्वार्ध सामान्यतः वर्षा रहित होता है। दक्षिण भारत और असम में इसके कुछ अपवाद हो सकते हैं। उत्तर भारत के शुष्कप्रदेशों में वायु की सापेक्ष आर्द्रता (Relative Humidity) कम रहती है। अप्रैल के अन्त में तथा मई के प्रारम्भ में समुद्रतट पर वाष्पयुक्त हवाएँ चलने लगती हैं इससे मलाबार तट पर कुछ वर्षा हो जाती है जिसे आम्र वर्षा (Mango showers) कहा जाता है क्योंकि इससे यहाँ आम की उपज शीघ्रता से तैयार हो जाती है। असम एवं बंगाल में भी नम हवाओं में स्थलीय गर्म एवं शुष्क हवाएँ मिलती हैं, जिनकी परिणति तेज आँधियाँ तथा कभी कभी प्रचण्ड तूफानों के रूप में होती है और कुछ वर्षा भी हो जाती है। मई के अन्त तक हिमालय के दक्षिणी ढालों पर भी वर्षा होने लगती है। शेष भाग प्रायः शुष्क रहते हैं।

(३) वर्षा ऋतु

जून से सितम्बर तक का समय वर्षा ऋतु का समय माना जाता है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि २२ मार्च के बाद एशिया एवं भारत के आन्तरिक

स्थलीय भागों में अधिक गर्मी के कारण निम्न वायु भार स्थलों का निर्माण हो जाता है। अतः दक्षिण के उच्च वायु भार वाले स्थलों से हवाएँ उत्तर की ओर चलने लगती हैं जिनकी दिशा वस्तुतः दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व होती है। दक्षिण में समुद्र होने के कारण ये हवाएँ वाष्पयुक्त होती हैं। ये हवाएँ अप्रैल से सितम्बर तक चलती हैं और इन्हें ग्रीष्मकालीन मानसून (Summer Monsoons) कहा जाता है। देश के लिए ये हवाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि जून तक ये हवाएँ इतनी अधिक आर्द्र हो जाती हैं कि देश की ९५ प्रतिशत वर्षा इन्हीं हवाओं के द्वारा होती है। अतः वर्षा ऋतु और दक्षिण पश्चिमी मानसूनों का देश के आर्थिक जीवन से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है।

(i) वायु प्रवाह—जून के अन्त तक कर्क रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ने लगती हैं। अतः एशिया महाद्वीप का स्थल भाग जिसमें भारत भी सम्मिलित है अधिक गर्म हो जाता है जिससे वायु हल्की होकर ऊपर की ओर फैलती है। इस प्रकार उत्तर में निम्न वायु भार वाले केन्द्र बन जाते हैं। दूसरी ओर दक्षिण में उच्च वायु भार की स्थिति होती है। दक्षिणी गोलार्ध में ये हवाएँ पहले भूमध्यरेखीय क्षेत्रों की ओर चलती हैं। भूमध्यरेखा को पार करके ये हवाएँ अपनी दाहिनी ओर मुड़ जाती हैं और निम्न वायु भार वाले स्थलों की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। जून के प्रथम सप्ताह में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में चक्रवात आने लगते हैं। इस प्रकार मानसून का प्रारम्भ तूफानों से होता है और ज्यों ही ये हवाएँ स्थलीय भाग में प्रवेश करती हैं, इनसे वर्षा आरम्भ हो जाती है। ये मानसून निरन्तर सितम्बर अक्तूबर तक चलते रहते हैं।

(ii) तापक्रम—वर्षा से पूर्व गर्मी अपनी चरम सीमा पर होती है। वर्षा के विस्तार के साथ साथ तापक्रमों में कुछ कमी हो जाती है। जिन भागों में वर्षा नहीं होती है अथवा यदि कुछ समय के लिए वर्षा बन्द हो जाती है, तो ऐसी दशाओं में तापक्रम पुनः उच्च बिन्दुओं पर पहुँच जाता है। उदाहरण के लिए, राजस्थान के पश्चिमी भागों में तापक्रम ऊँचे रहते हैं क्योंकि वर्षा यहाँ बहुत कम एवं विलम्ब से होती है। जुलाई में अधिकतम तापक्रम राजस्थान में लगभग ३१° से० ग्रे० रहता है।

वर्षा एवं मानसूनी हवाएँ

भारत में वर्ष में दो विपरीत दिशाओं में हवाएँ चलती हैं। प्रथम, उत्तर-पूर्वी मानसून और द्वितीय दक्षिण पश्चिमी मानसून। उत्तर पूर्वी मानसून शीत ऋतु में चलती हैं जिन्हें 'शीतकालीन मानसून' (Winter Monsoons) कहा जाता है। स्थल की ओर से चलने के कारण ये प्रायः शुष्क होती हैं और ठण्डी होती हैं। इसके विपरीत दक्षिण पश्चिमी मानसून ग्रीष्म ऋतु में चलती हैं जिन्हें 'ग्रीष्मकालीन मानसून' (Summer Monsoons) की संज्ञा दी जाती है। चूँकि ये समुद्र की ओर से चलती हैं अतः ये ग्रीष्म ऋतु के उत्तरार्द्ध में वर्षा करती हैं। चूँकि ये हवाएँ नियमित रूप से वर्ष के निश्चित मौसम में आरम्भ तथा समाप्त होती हैं, अतः इनको 'मानसूनी'

अथवा 'मौसमी' हवाएँ कहा जाता है। उत्तर पूर्वी मानसूनी हवाओं अथवा शीत-कालीन मानसूनों का वर्णन विस्तार से शीत ऋतु शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका
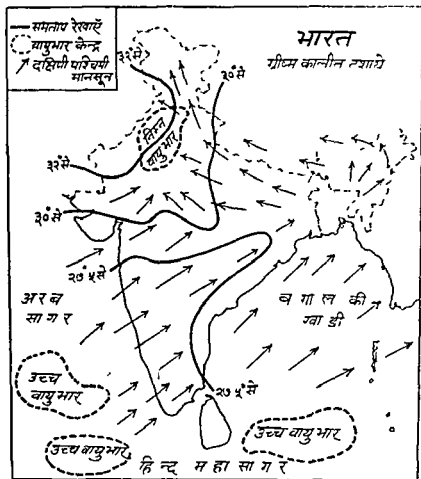
है। नीचे 'दक्षिण पश्चिमी मानसूनों' (South-West Monsoons) का वर्णन विस्तार से किया गया है

दक्षिण-पश्चिमी मानसून

यह पहले ही कहा जा चुका है कि २२ मार्च के पश्चात् सूर्य उत्तरायण होने लगता है—अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध धीरे-धीरे सूर्य के सामने आ जाता है तथा २२ जून को सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ती हैं। यह परिवर्तन वायु-भार के केन्द्रों एवं वायु प्रवाह की दिशाओं में भी परिवर्तन का कारण बनता है। हवाएँ दक्षिण-पश्चिमी दिशा में चलने लगती हैं। समुद्र की ओर से आने के कारण मई जून तक ये हवाएँ वाष्प से इतनी घनीभूत हो जाती हैं कि धीरे-धीरे मेघों के रूप में देश के

अधिकांश भाग में छा जाती हैं, और देश की ८५ प्रतिशत वर्षा इन्हीं हवाओं से प्राप्त होती है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून की दो शाखाएँ होती हैं :

१ अरब सागर शाखा (Arabian Sea Branch),

२ बंगाल की खाड़ी की शाखा (Bay of Bengal Branch)।

(१) अरब सागर की शाखा (Arabian Sea Branch)—दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी हवाएँ जो अरब सागर से भारत में प्रवेश करती हैं, उन्हें अरब सागर शाखा कहा जाता है। इनका प्रवेश वेगपूर्ण होता है। पश्चिमी घाट पर्वत के सम्पर्क में आकर ये हवाएँ ऊपर उठने लगती हैं। अधिक ऊँचाई पाकर ये वाष्पयुक्त हवाएँ ठण्डी होकर द्रवीभूत हो जाती हैं। अतः पश्चिमी तट पर पर्वत के पश्चिमी ढालों पर बहुत अधिक वर्षा हो जाती है। इस प्रकार इस स्थान से गुजरने के बाद इन हवाओं की नमी में कुछ कमी हो जाना स्वाभाविक है। अरब सागर से आने वाली शाखा को तीन उप-शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है।

(क) प्रथम उपशाखा—यह उपशाखा पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढालों पर वर्षा करती है। अरब सागर से शक्तिशाली हवाएँ सर्वप्रथम मलाबार तट पर नीलगिरि, पश्चिमी घाट के दक्षिण-पश्चिमी ढालों तथा समुद्रतटीय मैदानी भाग में वर्षा करती हैं।

(ख) द्वितीय उपशाखा—इसी मानसून की एक शाखा कोंकण तट पर वर्षा करने के बाद विन्ध्याचल एवं सतपुड़ा पर्वतों के मध्य घाटों से गुजरने के बाद छोटा नागपुर के पठार की ओर चली जाती है। यह उपशाखा नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटियों से वर्षा करती हुई आगे बढ़ती है। छोटे नागपुर के पठार के पास यह शाखा बंगाल की खाड़ी की मानसून से मिल जाती है। इस भाग में पर्वतमालाओं एवं वनों के कारण पर्याप्त वर्षा हो जाती है।

(ग) तृतीय उपशाखा—यह उपशाखा गुजरात से होकर राजस्थान की ओर चली जाती है। यहाँ यह अरावली एवं आबू पर्वत के दक्षिणी ढालों पर वर्षा करती है। मालवा पठार में भी इस शाखा से वर्षा होती है। अरावली पर्वत पार करके ये हवाएँ पश्चिमी राजस्थान की ओर चली जाती हैं। उत्तर-पश्चिमी राजस्थान के रेतीले भाग में इनसे बहुत कम वर्षा होती है।

(२) बंगाल की खाड़ी की शाखा (Bay of Bengal Branch)—दक्षिण-पश्चिमी मानसून की यह दूसरी महत्त्वपूर्ण शाखा है। भारत के अधिकांश भागों में इस शाखा से वर्षा होती है। बंगाल की खाड़ी से भारत में प्रवेश करने के कारण इस शाखा को बंगाल की खाड़ी की शाखा कहा जाता है। ये हवाएँ गंगा नदी के डेल्टा पर से गुजरती हुई सर्वप्रथम असम की पहाड़ियों तक पहुँचती हैं। गारो, खासी, जयन्तिया, लुशाई पटकोई आदि पहाड़ियों के क्षेत्र में इनसे बहुत अधिक वर्षा होती है। संसार का सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र चेरापूँजी भी यहीं स्थित है, जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत १,२०० सेण्टीमीटर से भी अधिक रहता है। यहाँ वर्षा करने के

बाद में हवाएँ ऊँचे पूर्वी हिमालय के साथ-साथ ऊपर उठती हैं। अधिक ऊँचाई के कारण ये पहाड़ों को पार न करके हिमालय के सहारे-सहारे पश्चिमोत्तर दिशा की ओर मुड़ जाती हैं। इनसे तराई प्रदेश, मध्य हिमालय तथा पश्चिमी हिमालय प्रदेशों में पर्याप्त वर्षा प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार असम से लेकर काश्मीर तक हिमालय के समानान्तर ये हवाएँ वर्षा करती चली जाती हैं। इन्हीं की एक शाखा असम से बंगाल होती हुई बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और पूर्वी राजस्थान में वर्षा करती है।

अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी की शाखाओं की तुलना

उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में बंगाल की खाड़ी की शाखा से ही वर्षा होती है यद्यपि जैसे जैसे ये हवाएँ पश्चिम की ओर बढ़ती हैं, इनमें नमी की मात्रा कम होती चली जाती है और इसके साथ-साथ पश्चिम की ओर वर्षा का औसत कम होता जाता है। अरब शाखा के मानसून यद्यपि बंगाल की खाड़ी में उठने वाले मानसूनों से अधिक शक्तिशाली होते हैं किन्तु इनकी अधिकतर नमी पश्चिमी घाट एवं पश्चिमी समुद्रतटीय मैदानों में ही समाप्त हो जाती है। बंगाल की खाड़ी के मानसून अधिक व्यापक होते हैं और इनकी नमी अपेक्षाकृत अधिक दूर की यात्रा के पश्चात् समाप्त होती है।

आर्थिक दृष्टि से बंगाल की खाड़ी के मानसूनों का महत्त्व अधिक है, क्योंकि उत्तरी भारत के उपजाऊ मैदानों को इन्हीं से वर्षा प्राप्त होती है। अरब सागर के मानसून तटवर्ती क्षेत्रों एवं काली मिट्टी वाले भागों में वर्षा करके वहाँ की कृषि उपज में वृद्धि करते हैं। सिंचाई योजनाओं की दृष्टि से भी बंगाल की खाड़ी के मानसूनों से होने वाली वर्षा का महत्त्व अधिक है। किन्तु विद्युत योजनाओं की दृष्टि में अरब सागर की मानसूनों से होने वाली वर्षा का महत्त्व कम नहीं है। पश्चिमी घाट से पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली नदियों में होने वाला जल प्रवाह इसी वर्षा का फल है। इन नदियों पर अनेक विद्युत योजनाओं का निर्माण किया गया है।

बंगाल की खाड़ी की शाखा पूर्व से पश्चिम की ओर क्रमशः कम वर्षा करती है, क्योंकि उसकी नमी में कमी होती चली जाती है। अरब सागर की शाखा का क्रम इसके विपरीत है। इस शाखा से पश्चिम में अधिक वर्षा तथा पूर्व में कम वर्षा होती है फिर भी कुल मिलाकर दोनों शाखाओं से उपलब्ध होने वाली वर्षा देश के लिए एक वरदान है। देश का समस्त जीवन इन मानसूनों पर ही निर्भर होता है।

वर्षा का वितरण

भारत में वर्षा का वितरण समान नहीं है। एक ओर यहाँ विश्व का सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र (चेरापूंजी) है तथा दूसरी ओर थार का मरुस्थल है जोकि सबसे कम वर्षा वाला क्षेत्र माना जाता है। मुख्य रूप से भारत की वर्षा का वितरण अनिश्चित वर्षा वाले और निश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) अनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्र—इनमे राजस्थान, पंजाब, हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश गुजरात, मध्य प्रदेश, मैसूर, आन्ध्र प्रदेश, उडीसा तथा बिहार के कुछ क्षेत्र सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रो म वर्षा अनिश्चित होती है। विशेष रूप से राजस्थान के उत्तर पश्चिमी भाग मे वर्षा की अनिश्चितता बहुत अधिक रहती है। यहाँ कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ कई वर्षों तक बारिश नही होती है।

(२) निश्चित वर्षा वाले क्षेत्र—असम, पश्चिमी बगाल, हिमालय का तराई प्रदेश, उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी मध्य प्रदेश, पश्चिमी घाट, कोकण एव मलाबार तट आदि प्रदेशों मे निश्चित रूप से प्रतिवर्ष वर्षा होती है। निश्चित वर्षा वाले भाग प्राय अधिक वर्षा वाले भाग भी हैं।

उपरोक्त वितरण के अतिरिक्त भारत मे वर्षा के वितरण के अन्य आधार भी अपनाये जाते हैं जो मुख्य रूप से वर्षा की मात्रा पर आधारित हैं। इनका वर्णन निम्न पक्तियो मे किया गया है

(१) सबसे अधिक वर्षा वाले क्षेत्र (Areas of Very High Rainfall)—सबमे अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे २०० सेन्टी मीटर से अधिक वर्षा होती है। ऐसे क्षेत्र पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान, असम, पूर्वी हिमालय और हिमालय के तराई क्षेत्र हैं। इन्हे दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है

(i) पश्चिमी समुद्र तट के कुछ भागो मे ३७५ सेण्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है। इसमे मालाबार तट प्रमुख है। मालाबार तट के कुछ भागो मे ५०० सेण्टी मीटर तक की वर्षा हो जाती है। इसके अतिरिक्त कोकण तट पर भी २५० सेण्टी मीटर से अधिक वर्षा होती है। यहाँ वर्षा काल भी अधिक लम्बा होता है—लगभग पाँच माह तक वर्षा होती रहती है। मालाबार तट पर भी वर्ष के अधिकाश महीनो मे वर्षा होती है।

(ii) उत्तर पूर्वी भारत दूसरा क्षेत्र है। यहां सबसे अधिक वर्षा होती है। असम के अधिकतर भाग, पश्चिमी बगाल का दार्जिलिंग क्षेत्र तथा मध्य एव पश्चिमी हिमालय मे भी बहुत अधिक वर्षा होती है। यहाँ वर्षा अप्रैल मई मे प्रारम्भ होकर अक्टूबर के अन्त तक चलती रहती है।

(२) अधिक वर्षा वाले क्षेत्र (Areas of Heavy Rainfall)—अधिक वर्षा वाले भागो म १०० सेण्टी मीटर से २०० सेण्टी मीटर तक वर्षा हो जाती है। पश्चिम बगाल तथा बिहार के शेष भागो को इसमे सम्मिलित किया जाता है। यहाँ वर्षा लगभग साढ़े चार माह तक होती है। गगा नदी का निचला मैदान इस क्षेत्र मे आता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी घाट के कुछ क्षेत्र नीलगिरी पर्वत, हिमालय के तराई प्रदेश आदि इसमे आते हैं।

(३) मध्यम वर्षा वाले क्षेत्र (Areas of Moderate Rainfall)—इन क्षेत्रो मे ७५ सेण्टी मीटर से १०० सेण्टी मीटर तक वर्षा होती है। गगा के मैदान का मध्यवर्ती भाग, उडीसा पूर्वी मध्य प्रदेश तथा पूर्वी घाट और दक्षिणी पठार के

कुछ भाग इसमें आते हैं। इन भागों में लगभग चार माह तक वर्षा होती है, अर्थात् मध्य जून से प्रारम्भ होकर मध्य अक्टूबर तक चलती रहती है। पूर्वी तट पर ग्रीष्म एवं शीत दोनों ऋतुओं में वर्षा होती है।

(४) कम वर्षा वाले भाग (Areas of Low Rainfall)--इन क्षेत्रों में ५० से ७५ सेण्टी मीटर तक वर्षा होती है। इनमें उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग, पूर्वी पंजाब, राजस्थान का दक्षिणी पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश तथा दक्षिणी पठार के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इन भागों में वर्षा कम तो होती ही है, साथ ही वह अनिश्चित भी होती है।

(५) बहुत कम वर्षा वाले भाग (Areas of Scanty Rainfall)—इन
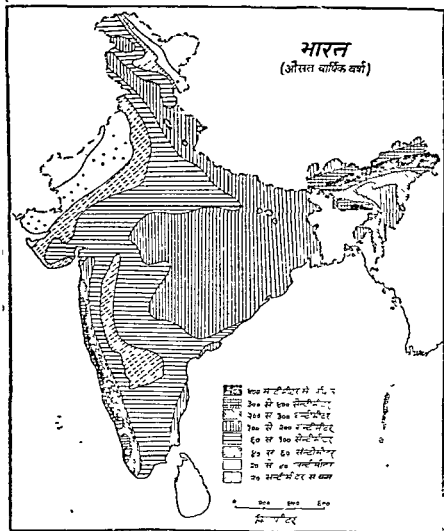
भागों म उत्तर पश्चिमी राजस्थान, पंजाब, हरियाना के कुछ भाग, गुजरात तथा महाराष्ट्र, मैसूर और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा ५० सण्टी मीटर से कम होती है। राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर के क्षेत्रों में २५ सेण्टी मीटर से भी कम वर्षा होती है। कभी-कभी वर्षा का सर्वथा अभाव रहता है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में वर्षा का वितरण असमान है। वर्षा की इस असमानता म बहुत अधिक अन्तर है और इसका प्रभाव विभिन्न क्षेत्रो की आर्थिक दशा पर स्पष्टत पड़ता है। इस असमानता से विभिन्न प्रदेशों की कृषि बहुत अधिक प्रभावित होती है।

भारतीय वर्षा एव जलवायु की विशेषताएँ

भारतीय जलवायु की विशेषताओं का वर्णन करते समय हमें वर्षा एवं जलवायु की अन्य विशेषताओं, दोनों का ध्यान रखना होता है। वस्तुत वर्षा जलवायु का ही एक अंग है और वर्षा की विशेषताएँ जलवायु की विशेषताओं में अन्तर्गत ही आ जाती हैं। जलवायु एक व्यापक शब्द है और इसमें वर्षा के अतिरिक्त तापक्रम, वायु भार तथा वायु प्रवाह सम्बन्धी अन्य दशाएँ भी सम्मिलित की जाती हैं। यहाँ हम अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पहले वर्षा की विशेषताओं का और फिर भारतीय जलवायु की अन्य विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

(क) वर्षा की विशेषताएँ

(i) असमान वितरण—भारतीय वर्षा का वितरण विभिन्न भागों में असमान है। देश के कुछ भागो में विश्व के सबसे अधिक वर्षा वाले भाग हैं। दूसरी ओर सबसे कम वर्षा वाले भाग भी यहीं हैं। राजस्थान के कुछ भागों में १० सेण्टी मीटर से भी कम वर्षा होती है जबकि चेरापूँजी में १,२७० सेण्टी मीटर वर्षा औसतन प्रति-वर्ष होती है। इसी प्रकार लद्दाख में एक वर्ष म ५ सेण्टी मीटर ही वर्षा हो पाती है, जबकि पश्चिमी समुद्र तट पर २५० सेण्टी मीटर से भी अधिक वर्षा होती है।

(ii) अनियमितता—मानसून प्रारम्भ होने का कोई नियमित समय नहीं है। कभी मानसूनी हवाएँ जल्दी चलना प्रारम्भ हो जाती हैं, तो कभी वे बहुत विलम्ब से आरम्भ होती हैं। इसी प्रकार किसी वर्ष अक्टूबर तक वर्षा होती रहती है तो किसी वर्ष देश के अधिकांश भागों में सितम्बर के मध्य में ही मानसून समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता है कि वर्षा आरम्भ हो जाती है, उपज बोने लग जाते हैं, किन्तु फिर इसके बाद कई हफ्ते तक वर्षा नहीं होती है। इससे कृषि उपज सूखने लगती है।

(iii) अनिश्चितता—यह पहले ही कहा जा चुका है कि देश के अनेक भाग अनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्र कहे जाते हैं। इन भागों में कभी भी निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्षा होगी भी अथवा नहीं। कभी-कभी कुछ भागों में

वर्षा बिलकुल भी नही होती है। यदि विभिन्न वर्षों की वार्षिक वर्षा की तुलना की जाय तो उसमे भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

(iv) वर्षा की सीमित अवधि एव लम्बा शुष्क मौसम—भारत म अधिकतर वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसूनी हवाओं से होती है। कुल वर्षा का लगभग ६५ प्रतिशत इन्ही से उपलब्ध होता है। उत्तरी पूर्वी मानसून, जोकि शीतकाल म स्थल की ओर से चलती हैं प्राय वर्षा नही करती हैं। केवल मद्रास के तट पर इनसे कुछ वर्षा हो जाती है। इस प्रकार हमारे देश मे वर्ष का सात-आठ महीने का लम्बा समय प्राय सूखा रहता है। यह स्थिति सिंचाई के साधनो की आवश्यकता को अनिवार्य बना देती है।

(v) वर्षा का स्वरूप—भारत के अधिकाश भागो मे जब भी पानी बरसता है, तो वह मूसलाधार वर्षा के रूप मे बरसता है। असम, पश्चिमी समुद्र तट, नागपुर का पठार आदि मे घनघोर वर्षा होती है। ऐसी वर्षा के कारण नदियों मे बाढ़ आती हैं और भूमि का कटाव भी अधिक होता है। यदि वर्षा धीरे-धीरे बौछार के रूप मे बरसे, तो वह कृषि फसलो और चारे आदि की उपज के लिए अत्यन्त लाभदायक हो सकती है। ऐसी वर्षा से मिट्टी का कटाव भी कम होता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारतीय वर्षा दक्षिण पश्चिमी मानसून पर आधारित होती है। जिस वर्ष ये मानसून शक्तिशाली होते हैं वर्षा भी अच्छी होती है और जिस वर्ष मानसून सामान्य होते हैं, वर्षा भी कम होती है। मानसून किसी वर्ष अधिक वेगपूर्ण तथा किसी वर्ष कम वेगपूर्ण क्यों होते हैं, इस विषय मे अभी कोई निश्चित उत्तर देना सम्भव नहीं है। भारत का मौसम विज्ञान विभाग इस दिशा मे अनुसन्धानशील है।

(ख) जलवायु की अन्य विशेषताएँ

ऊपर वर्षा की विशेषताओ का वर्णन किया गया है किन्तु जलवायु मे वर्षा के अतिरिक्त कई अन्य दशाएँ भी सम्मिलित की जाती हैं जैसे गर्मी सर्दी की दशाएँ, वायुभार एव वायुप्रवाह की स्थिति आदि। इनका वर्णन नीचे किया गया है

(i) भारतीय जलवायु ग्रीष्म मे गर्म एव नम तथा शीतकाल मे साधारणत सर्द और शुष्क होती है।

(ii) वर्ष के विभिन्न महीनों म दो विपरीत दिशाओ से वायु प्रवाह होता है। ग्रीष्म मे दक्षिण पश्चिम से और शीत ऋतु मे उत्तर पूरब से हवाएँ नियमित रूप से चलती हैं, क्योंकि ग्रीष्म एव शीत मे तापक्रम और वायुभार की स्थितियों मे परिवर्तन आ जाता है।

(iii) ग्रीष्म ऋतु उत्तरी भारत म अधिक गर्म होती है जबकि शीत ऋतु अपेक्षाकृत अधिक सर्द होती है। उत्तर भारत मे गर्मी तथा सर्दी के तापक्रमों म भी पर्याप्त अन्तर रहता है। इसी प्रकार दिन और रात्रि के तापक्रमों में भी अन्तर अधिक रहता है।

(iv) इसके विपरीत दक्षिण भारत में समुद्र की निकटता के कारण गर्मी में बहुत अधिक तापक्रम नहीं होता है। सर्दियों में भी उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में तापक्रम ऊँचे रहते हैं। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि दक्षिण भारत में ग्रीष्म और शीत ऋतुओं के औसत तापक्रमों में अन्तर अपेक्षाकृत कम होता है।

(v) ग्रीष्म के प्रारम्भ में धूल भरी तेज आंधियों अथवा प्रचण्ड तूफानों की प्रधानता उत्तरी भारत में रहती है। उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में गर्मी के कारण वायुभार हल्का हो जाता है जिसमें पश्चिम की ओर से रेतीली हवाएँ इधर आती हैं। कभी कभी इन तूफानों की गति बहुत तेज होती है और ये धन-जन की बहुत हानि करती हैं।

(vi) शीत ऋतु में कभी-कभी शीत लहर उत्तरी भारत में ओला वृष्टि कर देती है। जनवरी फरवरी में उत्तर पश्चिमी भारत में चक्रवातीय वर्षा भी थोड़ी मात्रा में हो जाती है। इसे 'महावट' कहा जाता है और वर्षा की यह हल्की बौछार गेहूँ, जौ, चना, सरसों आदि की उपज को बढ़ा देती है।

जलवायु के अनुसार भारत के भाग

जलवायु के अनुसार भारत के विभागों का विवरण विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से किया गया है। प्रोफेसर डडले स्टाम्प के आधार पर भारत को जलवायु के अनुसार निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है

(१) *हिमालय प्रदेश*—*यह प्रदेश भारत के उत्तर में उत्तर पश्चिम से पूर्व दक्षिण तक काफी विस्तृत है। समुद्र तल से विभिन्न ऊँचाइयों पर इस प्रदेश की पर्वत श्रेणियाँ एवं चोटियाँ स्थित हैं। ऊँचे भागों में तापक्रम बहुत ही कम रहता है अधिक ऊँचाई पर तापक्रम हिम बिन्दु पर रहता है। वर्षा पूर्वी भागों में अधिक तथा* पश्चिमी भागों में कम होती है।

(२) गंगा सतलज का ऊपरी मैदान—यह क्षेत्र उत्तरी मैदान का ऊपरी भाग है जिसमें राजस्थान का उत्तर पूर्वी भाग, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा एवं पंजाब के कुछ भाग सम्मिलित हैं। यहाँ गर्मियों में अधिक गर्मी तथा सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ती है। गर्मियों में अधिकतम तापक्रम ३७° से ४५° सेण्टी ग्रेड तक तथा सर्दियों में १०° सेण्टी ग्रेड से १८° सेण्टी ग्रेड तक रहता है। वर्षा इस भाग में कम होती है।

(३) उत्तर पश्चिमी मरुस्थली प्रदेश—यह प्रदेश शुष्क जलवायु का प्रदेश है। इसमें राजस्थान का उत्तर पश्चिमी भाग तथा गुजरात एवं हरियाणा के कुछ भाग सम्मिलित किये जाते हैं। यहाँ की जलवायु और भी अधिक विषम है—अर्थात् गर्मियों में अधिक गर्मी और सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ती है। दैनिक तापान्तर में भी भिन्नता पायी जाती है। सर्दियों में अधिकतम तापक्रम २४° सेण्टी ग्रेड रहता है यद्यपि कभी-कभी यह १०° सेण्टी ग्रेड से भी नीचे चला जाता है। गर्मियों में न्यून

मे ४५° सेण्टी ग्रेड तक तापक्रम बढ जाता है। वर्षा इस भाग मे बहुत ही कम होती है। जलाभाव यहाँ की प्रमुख समस्या है जिसे हल किये बिना इस प्रदेश का आर्थिक विकास सम्भव नही है।

(४) गंगा के मैदान का मध्य भाग—इसमे उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ भाग सम्मिलित हैं। औसत वर्षा १०० सेण्टीमीटर से १५० सेण्टीमीटर तक होती है। पूर्वी भागो मे अधिक वर्षा तथा पश्चिमी भागो मे अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। यहाँ भी गर्मियो मे अधिक गर्मी पडती है किन्तु सर्दियाँ उतनी सर्द नही होती जितनी कि उत्तर पश्चिमी भाग मे होती हैं।

(५) पूर्वी हिमालय तथा ब्रह्मपुत्र की घाटी का निचला प्रदेश—पूर्वी हिमालय की दक्षिणी पहाड़ियाँ तथा ब्रह्मपुत्र का निचला प्रदेश इसमे सम्मिलित किया जाता है। यह भारत मे सर्वाधिक वर्षा वाले भागो मे से एक है। यहाँ वायुमण्डल मे आर्द्रता अधिक रहती है। वर्ष के सात-आठ महीने यहाँ वर्षा होती रहती है।

(६) गंगा नदी का निचला मैदान तथा उत्तर पूर्वीय समुद्रतटीय भाग—इस प्रदेश मे गगा नदी का डेल्टा भाग तथा दक्षिणी प्रायद्वीप का उत्तर पूर्वी भाग सम्मिलित किया जाता है। इसमे पश्चिम बगाल, मध्य प्रदेश एव उडीसा के कुछ भाग आते है। यहाँ वर्षा का औसत अधिक रहता है। गर्मी सर्दी के तापक्रमो का अन्तर भी यहाँ कुछ कम रहता है।

(७) दक्षिण के पठार का मध्य भाग—दक्षिण के पठार का अधिकाश भाग इसमे सम्मिलित है। वृष्टि-छाया प्रदेश (Rain Shadow Area) होने के कारण यहाँ वर्षा कम ही होती है। यहाँ का जलवायु उष्ण है। गर्मियो मे अधिक गर्मी पडती है किन्तु सर्दियो मे उतनी सर्दी नही पडती है जितनी कि उत्तर भारत मे पडती है।

(८) कर्नाटक तट—इसमे मद्रास का समुद्र तट प्रमुख है। समुद्र के निकट होने के कारण वार्षिक तापान्तर बहुत कम रहता है। शीत ऋतु मे उत्तर पूर्वी मानसूनो से इस तट पर वर्षा होती है। वर्षा ऋतु मे दक्षिण पश्चिमी मानसूनो मे भी यहाँ वर्षा होती है। इस प्रकार यह तट भारत का ऐसा प्रदेश है जहाँ गर्मी और सर्दी दोनो मे वर्षा प्राप्त होती है।

(९) कोंकण तट—इस प्रदेश मे पश्चिमी समुद्र तट का उत्तरी एव मध्य भाग सम्मिलित है। इस भाग मे २५० सेण्टी मीटर तक वर्षा हो जाती है यद्यपि गुजरात के निकट वर्षा कुछ कम होती है। जलवायु मे आर्द्रता अधिक रहती है क्योकि गर्मी एव वर्षा ऋतु मे समुद्र की ओर से निरन्तर हवाएँ चलती रहती हैं। गर्मी और सर्दियो के तापक्रम मे अधिक अन्तर नही होता है।

(१०) मालाबार तट—पश्चिमी तट के दक्षिणी भाग को मालाबार तट कहा जाता है। यहाँ और भी अधिक वर्षा होती है जो २५० से ३५० सेण्टी मीटर तक हो सकती है।

उपर्युक्त विभागों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में जलवायु के आधार पर बहुत अधिक क्षेत्रीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। भारत की जलवायु के विषय में श्री मार्सडेन का कथन है कि यहाँ विश्व की समस्त प्रकार की जलवायु पायी जाती है। एक तरफ राजस्थान में सहारा प्रकार की जलवायु के दर्शन

सूची
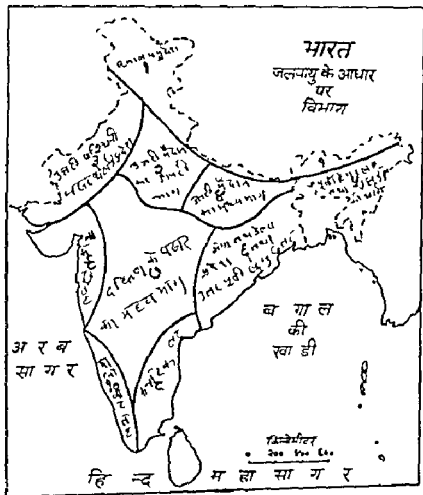
१ हिमालय प्रदेश।
२ उत्तरी मैदान का ऊपरी भाग।
३ उत्तर पश्चिमी मरुस्थली प्रदेश।
४ उत्तरी मैदान का मध्य भाग।
५. पूर्वी हिमालय तथा ब्रह्मपुत्र की घाटी।
६ गंगा का डेल्टा प्रदेश और उत्तर पूर्वी समुद्र तट।
७ दक्षिण के पठार का मध्य भाग।
८ कर्नाटक तट।
९. कोंकण तट।
१० मालाबार तट।

होते हैं तो दूसरी ओर हिमालय के ऊँचे शिखरों पर टुण्ड्रा प्रकार की जलवायु दृष्टिगोचर होती है। यह भी कहा जाता है कि यद्यपि भारत में वर्षा चार-पांच महीने ही होती है किन्तु वर्ष का कोई भी महीना ऐसा नहीं होता जब भारत के किसी न किसी प्रदेश में थोड़ी बहुत वर्षा न होती हो।

भारतीय जलवायु का आर्थिक जीवन पर प्रभाव

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि हमारी जलवायु हमारी अर्थ व्यवस्था पर कैसा प्रभाव डालती है। वस्तुतः भारत की मानसूनी जलवायु का बहुत अधिक आर्थिक महत्त्व है। जलवायु एवं अर्थ व्यवस्था का सम्बन्ध इतना गहरा है कि प्रायः भारतीय अर्थ व्यवस्था को मानसूनी जुआ कहा जाता है। भारतीय अर्थ व्यवस्था के सभी अंग जलवायु से प्रभावित होते हैं। कृषि वर्षा पर आधारित है। उद्योग प्रायः कृषि पर आधारित होते हैं तथा व्यापार वाणिज्य आदि इन दोनों के आधार पर विकास करते हैं। इन सबका सम्मिलित प्रभाव रोजगार एवं राष्ट्रीय आय पर पड़ता है। इस प्रकार भारतीय अर्थ व्यवस्था पर मानसून का गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि देश में मानसून अच्छे आते हैं, तो वर्षा भी उत्तम हो जाती है। परिणामस्वरूप कृषि उद्योग एवं वाणिज्य का विकास होता है जिससे अधिक आय एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। कदाचित इसीलिए भारतीय अर्थ व्यवस्था को मानसूनी जुआ कहा जाता है। अर्थ व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर जलवायु का प्रभाव निम्न प्रकार से पड़ता है

(१) कृषि—भारतीय कृषि पर मानसून का जितना अधिक प्रभाव पड़ता है उतना कदाचित अन्य किसी व्यवसाय पर नहीं पड़ता। जिस वर्ष देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि उपज सन्तोषजनक होती है। इसके विपरीत यदि वर्षा कम होती है, तो फसलें नष्ट हो जाती हैं जिससे कृषि आय में कमी हो जाती है। भारत में अनावृष्टि (draught) एवं दुर्भिक्ष पर्यायवाची शब्द बन चुके हैं। यहाँ सिंचाई के साधन इतने सन्तोषजनक नहीं हैं कि जिससे वर्षा के अभाव को पूरा किया जा सके। यदि भारत में सिंचाई के साधनों का पूर्ण विकास एवं विस्तार कर दिया जाय, तो भारतीय कृषि की वर्षा पर निर्भरता कुछ कम हो जायगी। ऐसी दशा में भारतीय अर्थ व्यवस्था 'मानसूनी जुआ' न रह जायगी।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। सामान्य रूप से देश की जलवायु कृषि के लिए प्रतिकूल नहीं है। यदि वर्षा की अनिश्चित एवं अनियमित प्रवृत्ति का कोई विकल्प निकाला जा सके, तो जलवायु की अन्य दशाएँ कृषि में बाधक नहीं सिद्ध होंगी। जिन प्रदेशों में उपजाऊ मिट्टी है और वर्षा उत्तम हो जाती है, वहाँ कृषि उपज काफी अच्छी हो जाती है। शीतऋतु में शीतोष्ण कटिबन्ध की फसलें बोयी जाती हैं क्योंकि यहाँ सर्दी में तापक्रम बहुत नीचे नहीं गिरते हैं। एक फसल वर्षा ऋतु में भी हो जाती है। जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ शुष्क फसलें (dry crops) उगाई जाती हैं जैसे बाजरा मूंग, मोठ, तिल आदि। ग्रीष्म ऋतु में जलाभाव एवं

अत्यधिक ताप के कारण फसलों को बोना और काटना कठिन होता है। केवल नहरी इलाकों में ही गर्मी में उपज होती है, अथवा उन मैदानी भागों में भी ग्रीष्म में कृषि भूमि बोते हैं यहाँ वर्षा का औसत बहुत अधिक होता है।

जलवायु में विभिन्नता के कारण ही भारतीय फसलों में विविधता पायी जाती है। एक ओर चावल, जूट एवं गन्ना जैसी फसलें उत्पन्न की जाती हैं जिन्हें बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास जैसी फसलें उत्पन्न की जाती हैं जिन्हें पानी की कम आवश्यकता होती है। मार्च में तापक्रम एकाएक इतने ऊँचे चले जाते हैं कि जिससे खड़ी फसल के दाने शीघ्रता से पक जाते हैं और उन्हें विकास का पूरा अवसर नहीं मिलता है। इससे कृषि उत्पादन की किस्म की उत्तमता प्रभावित हो जाती है। मूसलाधार वर्षा के कारण मिट्टी के कटाव से भी कृषि प्रभावित होती है।

(२) सिंचाई के साधनों पर प्रभाव—भारत में वर्षा काल अत्यन्त सीमित होने के कारण वर्ष का एक लम्बा समय वर्षा से प्राय वंचित रहता है। इस सात-आठ महीने की सूखी अवधि में कृषि के लिए सिंचाई के साधनों की आवश्यकता होती है। भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण रबी की फसल ऐसी अवधि में होती है जबकि देश में वर्षा नहीं होती है। इस फसल में उत्तम उपज केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जबकि कुँओं, नलकूपों, तालाबों अथवा नहरों से सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो।

इसके अतिरिक्त भारत में सिंचाई के साधनों के निर्माण में भी अधिक व्यय होता है क्योंकि वर्षा केवल चार-पाँच महीने ही होती है। इस पानी को शेष महीनों में उपयोग के लिए इकट्ठा करने के लिए नदियों पर ऊँचे बाँध एवं बड़े-बड़े जलाशय बनाने पड़ते हैं जो बहुत व्ययसाध्य होते हैं। भाखरा नांगल, चम्बल, कोसी आदि नदी घाटी योजनाओं में से प्रत्येक पर करोड़ों रुपये व्यय करने पड़े हैं। यदि वर्ष के अधिकतर भाग में देश को वर्षा की सुविधा प्रकृति उपलब्ध कर देती तो देश को इतनी खर्चीली सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण की आवश्यकता न होती।

(३) उद्योग—औद्योगिक विकास मुख्यतः कृषि पर आधारित रहा है। अनेक उद्योगों के लिए कच्चा माल खेती से प्राप्त होता है। सूती वस्त्र, चीनी, जूट, तम्बाकू, वनस्पति तेल आदि उद्योग कृषि से ही कच्चा माल प्राप्त करते हैं। औद्योगिक फसलों की उपज बहुत सीमा तक जलवायु पर निर्भर होती है। इसके अतिरिक्त जलवायु सम्बन्धी दिशाएँ अनेक उद्योगों पर प्रत्यक्ष प्रभाव भी डालती हैं। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्र उद्योग ऐसे स्थानों पर अधिक विकसित होता है जहाँ वायुमण्डल में नमी की मात्रा अधिक होती है। गुजरात और महाराष्ट्र के तटवर्ती प्रदेशों में उत्तमकोटि के सूती वस्त्र बनाने के कारखाने हैं। अधिक आर्द्रता महीन सूत कातने और उत्तम वस्त्र बुनने में सहायक होती है।

अधिक गर्मी की स्थिति भी उद्योगों को प्रभावित करती है क्योंकि बहुत ऊँचे

तापक्रमो मे श्रम की कुशलता मे कमी हो जाती है। कारखानो को वातानुकूलित बनाना आवश्यक हो जाता है जो खर्चीला होता है।

(४) वाणिज्य—कृषि एव उद्योगो का प्रभाव वाणिज्य व्यापार पर पड़ता है। कृषि एव उद्योगो मे अधिक उत्पादन होने से देशी और विदेशी व्यापार मे वृद्धि होती है। भारत खाद्यान्न एव कई प्रकार का औद्योगिक कच्चा माल आयात करता है। यदि मानसून अच्छे होते हैं तो पर्याप्त मात्रा में इनकी आन्तरिक उपलब्धि सुलभ हो जाती है और आयातो की मात्रा कम करके किसी दुर्लभ विदेशी मुद्रा मे बचत की जा सकती है। इससे विदेशी व्यापार सन्तुलन बढता है। दूसरी ओर भारत के कुल निर्यात का तीन चौथाई कृषि उत्पादन पर आधारित है। चाय, जूट, तम्बाकू, तिलहन, कपास, सूती वस्त्र आदि हमारे निर्यात की सूची मे प्रमुख हैं। यदि मानसून अच्छे नहीं होते तो इन पदार्थों के निर्यात गिर जाते हैं और हमारे विदेशी विनिमय की स्थिति बिगड़ जाती है। सन् १९६५ ६६ और १९६६-६७ मे सूखे की स्थिति का हमारे आयात एव निर्यात दोनो पर प्रभाव पडा। अतः विदेशी व्यापार का सन्तुलन बहुत कुछ हमारी जलवायु की अनुकूलता पर पडता है।

(५) परिवहन—अधिक वर्षा एव बाढ की स्थिति परिवहन के साधनों पर कुछ विपरीत प्रभाव डालती है। बाढ के कारण सडक एव रेल मार्गों में बाधाएँ आ जाती हैं। वर्षा ऋतु मे ग्रामीण मार्ग भी प्राय बन्द हो जाते हैं। वर्षा का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से भी परिवहन से होने वाली आय को प्रभावित कर सकता है, क्योंकि जब माल की उपज ही कम होगी तो रेलो एव सडको द्वारा माल का यातायात कम हो जायगा और उनकी आय कम होगी। जलवायु की दशाएँ वायु यातायात को भी बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। वायुयानो की अनेक दुर्घटनाएँ शीत ऋतु मे होती हैं जब कभी भारत मे कुहरा अधिक छा जाता है।

(६) राष्ट्रीय आय—भारत मे राष्ट्रीय आय के प्रमुख स्रोत कृषि, उद्योग, वाणिज्य एव परिवहन हैं। मानसून अच्छी होने से तीनों क्षेत्रो मे प्रगति होती है और राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि हो जाती है। वैसे भी राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान लगभग आधा है। मानसून अनुकूल होने पर कृषि उत्पादन बढता है। इससे औद्योगिक उन्नति होती है तथा व्यापार बढता है। सर्वविदित है कि सन् १९६५ ६६ मे सूखे की स्थिति के कारण कृषि उपज गिर गयी और इससे हमारी राष्ट्रीय आय में उस वर्ष कुछ कमी हो गयी। प्रति व्यक्ति आय मे भी इससे कुछ गिरावट आ गयी।

(७) रोजगार—उपर्युक्त सभी बातों का प्रभाव देश के रोजगार पर भी पडता है। देश के लगभग ७० प्रतिशत व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से कृषि व्यवसाय मे सलग्न हैं। किसी वर्ष यदि वर्षा के अभाव मे कृषि चौपट हो जाती है, तो अनेक कृषि श्रमिक रोजगार की तलाश मे इधर-उधर भटकने लगते हैं। ग्रामीण बेकारी को दूर करने के लिए दुर्भिक्ष के दिनों मे राज्य सरकारो को राहत कार्य प्रारम्भ करने पडते हैं।

(८) स्वास्थ्य एवं श्रम की कुशलता—ग्रीष्म काल में अधिक ताप शारीरिक अवयवों में शिथिलता उत्पन्न करता है। इससे बौद्धिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार की कार्य कुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जलवायु में अधिक गर्मी एवं नमी स्वभावतः यहाँ के निवासियों को आरामतलब बनने की प्रेरणा देती है। वर्षा के दिनों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं, क्योंकि मक्खी, मच्छर, पिस्सू, खटमल आदि हानिकारक कीट पतंगों की बाढ़ सी बनाती है जो अनेक प्रकार के कीटाणुओं को प्रसारित करते हैं। मलेरिया, हैजा, प्लेग आदि आम बीमारियों की रोकथाम के लिए चिकित्सा विभाग को कठोर प्रयत्न करना पड़ता है। वैसे उत्तर-पश्चिम भारत और गुजरात की जलवायु मानव स्वास्थ्य के लिए उत्तम मानी गयी है।

(९) वन-सम्पदा—जलवायु का भारतीय वनों पर स्पष्ट प्रभाव है। यदि हम वनों के वर्गीकरण को ध्यान से देखें तो हमें यह ज्ञात होगा कि यह वर्षा की मात्रा पर आधारित हैं। सदाबहार वन उन क्षेत्रों में होते हैं जहाँ वर्षा अधिक होती है। इसके विपरीत उत्तर पश्चिमी भारत में वर्षा के अभाव तथा अधिक ताप के कारण शुष्क वन ही मिलते हैं जिनमें केवल काँटेदार झाड़ियाँ एवं जड़ें होती हैं। घास के मैदान एवं पर्वतीय ऊँचाइयों पर कोणधारी वनों पर भी जलवायु का प्रभाव है। इसी प्रकार जलवायु के अनुसार पशुओं की नस्ल में भी विभिन्नता पायी जाती है।

(१०) मिट्टी—जलवायु की प्रतिक्रिया मिट्टी पर अनेक प्रकार से हो सकती है। जलवायु मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ा भी सकती है और मिट्टी के कटाव के रूप में वह उसे घटा भी सकती है। गंगा सतलज के मैदान की उपजाऊ मिट्टी कछार या कछारी मिट्टी कहलाती है क्योंकि यह जल प्रवाह के साथ पहाड़ों से आकर मैदान में बिछा दी जाती है। नदियों की बाढ़ एक स्थान की उपजाऊ मिट्टी को बहाकर किसी अन्य स्थान पर उसे जमा कर देती है। इस प्रकार जलवायु एक स्थान को उर्वरा मिट्टी से वंचित करके उसका लाभ दूसरे स्थान को प्रदान करती है। इसी प्रकार मरुस्थल की मिट्टी के तेज वायु प्रवाह के साथ उड़कर उपजाऊ मैदानी मिट्टी ऊपर सतह के रूप में जमा हो जाती है।

(११) जनसंख्या—भारतीय जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व पर भी जलवायु का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गंगा सतलज के मैदान में यदि पश्चिमी बंगाल से राजस्थान तक यात्रा करें तो हमें ज्ञात होगा कि उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ने के साथ-साथ जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है। इसका कारण यह है कि उत्तर पश्चिम में वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। उत्तर-पश्चिमी राजस्थान की शुष्क जलवायु में जहाँ वनस्पति का अभाव है, प्रति वर्ग किलोमीटर बहुत कम व्यक्ति निवास करते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मानसूनी जलवायु का प्रभाव अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर पड़ता है। केवल आर्थिक गतिविधियों पर ही नहीं, बल्कि मानव जीवन के प्रत्येक अंग पर इसकी प्रतिक्रिया होती है। मानव का स्वभाव, उसका रह-

रूप, उसके विचार, रहन-सहन आदि सभी बातों को जलवायु प्रभावित करती है जैसा कि हम पुस्तक के प्रथम अध्याय में पढ चुके हैं। जलवायु एव हमारी अर्थ व्यवस्था के इतने घनिष्ट सम्बन्ध को देखते हुए ही प्राय यह कहा जाता है कि "मानसून भारत का सबसे बडा मित्र और एक भयानक शत्रु है।"[1] जलवायु की अनुकूलता हमारे लिए वरदान है किन्तु इसकी प्रतिकूलता हमारे लिए भयकर अभिशाप सिद्ध होती है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि जिस वर्ष जलवायु अनुकूल होती है तो हमारी अर्थ-व्यवस्था पर इसकी प्रतिक्रिया निर्माणकारी होती है और जिस वर्ष यह प्रतिकूल होती है तो यह विनाशकारी होती है।

प्रश्न

१. क्या आप भारत की स्थिति और जलवायु को आर्थिक विकास के अनुकूल समझते हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर समझाइए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६६)

२ मानसूनी जलवायु की क्या विशेषताएँ हैं ? उन तथ्यों पर प्रकाश डालिए जिनके कारण राजस्थान और पश्चिम बगाल की जलवायु मे भिन्नता दिखायी देती है। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६७)

३. भारतीय वर्षा की विशेषताएँ बतलाइए तथा भारतीय कृषि पर पडने वाले इसके प्रभावो का वर्णन कीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६४)

४. *भारतीय जलवायु की क्षेत्रीय विषमताओं के होने के कारणो का सविस्तार वर्णन* कीजिए। (प्रथम वर्ष, १९६४)

५. मानसून का राजस्थान के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पडा है ? उदाहरण देकर समझाइए। (प्रथम वर्ष, १९६५)

६ वर्षा के वितरण के आधार पर भारत को विभिन्न भागो मे विभक्त कीजिए।

७ "मानसून भारत का सबसे बडा मित्र एव एक भयानक शत्रु है"—*इस कथन की* व्याख्या कीजिए।

८. *"भारतीय कृषि मानसून का जुआ है"—इस कथन मे आप कहाँ तक सहमत हैं ? सक्षेप मे, लिखिए और बतलाइए कि हमारी जलवायु का हमारे आर्थिक जीवन* पर क्या प्रभाव पडता है ?

---

1 The Monsoon is our greatest friend and a formidable foe.

अध्याय ५

मिट्टी तथा उसकी समस्याएँ
(SOIL AND ITS PROBLEMS)

भूतल की सबसे ऊपरी परत जो कि बिखरे हुए लघु कणों से निर्मित होती है, मिट्टी कहलाती है। यह ऊपरी परत चट्टानों तथा वनस्पति के अंश के मिश्रण से बनती है। चट्टानों के घिसने, टूटने तथा सिकुड़ने से मिट्टी का निर्माण होता है। मिट्टी असंगठित पदार्थों की परत होती है जो कि आठ इंच से दस इंच तक गहरी होती है और ऐसी अनेक परतें धरातल पर बिछी हो सकती हैं। भूगोल वेत्ता बेनेट ने भूतल पर प्राप्त असंगठित पदार्थ की ऊपरी परत को मिट्टी कहा है जो कि मूल चट्टानों तथा वनस्पति के अंश के योग से बनी है। कुछ विद्वानों ने मिट्टियों का निर्माण जलवायु द्वारा चट्टानों के अनावृतीकरण (denudation) के कारण बताया है। इन मिट्टियों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्त्व पाये जाते हैं। अन्य विद्वानों ने मिट्टी की रचना में जलवायु को मुख्य माना है।

विभिन्न प्रकार की चट्टानों से बनी हुई मिट्टियों की उत्पादन शक्ति में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। प्राकृतिक प्रतिक्रियाओं के कारण चट्टानें घिस-घिसकर छोटे-छोटे कणों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इन कणों पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है तथा ये कण जलांश एवं जीवाणुओं से मिलकर उर्वरा मिट्टी के रूप में धरातल के ऊपर जमा होते चले जाते हैं। इनकी उर्वरता उन चट्टानों के प्रकार पर, जिनसे ये बनते हैं, तथा इनमें मिले हुए ह्यूमस (Humus) की मात्रा पर निर्भर होती है।

महत्त्व

किसी भी देश की सम्पन्नता मिट्टी पर निर्भर होती है। कृषि पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्यों का धन्धा तथा उनका जीवन स्तर मिट्टी पर आधारित होता है। विलकॉक्स (Wilcox) के अनुसार, "सभ्यता का इतिहास मिट्टी का इतिहास है। मानव अपनी शिक्षा का आरम्भ मिट्टी से ही करता है।" मिट्टी की उपजाऊ शक्ति पर कृषि उत्पादन आधारित है। कृषि फसलों के लिए उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है। अच्छी मिट्टी में अधिक खाद्य पदार्थ तथा व्यावसायिक पदार्थ पैदा किये जाते हैं। उद्योग भी अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी पर अवलम्बित हैं।

इनके लिए कच्चा माल मिट्टी से पैदा किया जाता है। अत मिट्टी का देश के आर्थिक विकास मे बहुत अधिक महत्व है। मानव की मूलभूत आवश्यकताओ भोजन, वस्त्र एव आवास की पूर्ति मे भी मिट्टी का पूरा योगदान होता है। मिट्टी से मानव जीवन की अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति होती है और मिट्टी के अस्तित्व के बिना सम्पन्न मानव जीवन की कल्पना करना भी कठिन है।

मिट्टियो का वर्गीकरण
(Classification of Soils)

मिट्टियो का वर्गीकरण अनक आधारो पर किया जा सकता है। वैसे तो भारत जैसे विस्तृत देश के विभिन्न भागो में पायी जाने वाली मिट्टियों के इतने अधिक वर्ग एव उप वर्ग हो सकते हैं कि उन सबकी बनावट एव विशेषताओ के आधार पर उनका समुचित वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कुछ मिट्टियों के कण इतने बारीक और हल्के होते हैं कि वे वायु के वेग अथवा जल के प्रवाह के द्वारा अपना स्थान शीघ्रता से परिवर्तित करती रहती हैं। उत्तरी मैदान की कछारी मिट्टियां एव मरुस्थल की बालू इसी वर्ग मे आती हैं। इसके विपरीत कुछ मिट्टियो के रवे भारी एव मोटे होते हैं और वे वायु एव जल के प्रवाह के कारण अपना स्थान इतनी शीघ्रता से परिवर्तित नही कर पाती हैं अतः वे अपेक्षाकृत अधिक स्थिर रहती हैं जैसे दक्षिण की काली एव लाल मिट्टियां। वैसे वायु के साथ उडकर तथा जल में घुलकर और उसके साथ बहकर प्राय. सभी मिट्टियो का रूपान्तर एव स्थान परिवर्तित होता रहता है।

इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय स्थिति के आधार पर भी मिट्टियों का वर्गीकरण किया जाता है जैसे उत्तरी भारत की मिट्टियां, दक्षिण प्रायद्वीप की मिट्टियां अथवा हिमालय प्रदेश की मिट्टियां आदि। किन्तु इस प्रकार के परम्परागत वर्गीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, क्योंकि एक ही प्रदेश अथवा क्षेत्र मे अनेक प्रकार की मिट्टियां हो सकती हैं अत. इस प्रकार के वर्गीकरण को अधिक मान्यता नही दी जा सकती है। वर्गीकरण की तीसरी रीति—मिट्टी की बनावट एव उनके गुणों पर आधारित हो सकती है। वस्तुत. इसी प्रकार के वर्गीकरण की उपयोगिता अधिक मानी जाती है। इसके भूगर्भिक वर्गीकरण एव मिट्टी के रासायनिक विश्लेषण के आधार पर किये गये वर्ग सम्मिलित किये जा सकते हैं।

भूगर्भिक वर्गीकरण (Geological Classification)—भूगर्भशास्त्रियों द्वारा मिट्टियो का वर्गीकरण उन चट्टानों के आधार पर किया जाता है जिनसे उन मिट्टियो का निर्माण हुआ है। इसके अन्तर्गत मिट्टी की बनावट के मूल तत्वों को ध्यान में रखा जाता है। सभी मिटि्टयां किसी न किसी चट्टान से बनी होती है। मूल रूप में उन चट्टानो की विशेषताएँ उनमें बनी हुई मिट्टियों मे विद्यमान रहती हैं, यद्यपि कालान्तर म ऐसी मिट्टियो मे जीवाश तथा जलांश के मिश्रण के फलस्वरूप अनेक परिवर्तन हो

जाते हैं । आदि युग की रवेदार प्रारम्भिक चट्टानों (Primary Rocks) से निर्मित मिट्टियों में लोह, ग्रेनाइट एवं अन्य धातुओं की प्रधानता होती है तथा इनका रवा बड़ा होता है । गोंडवाना काल की चट्टानों से बनी हुई मिट्टी भी रवेदार एवं कम उपजाऊ होती है । इसी प्रकार कडप्पा तथा विन्ध्या की चट्टानों से बनी मिट्टी कंकरीली तथा कम उपजाऊ होती है । दक्षिणी प्रायद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग में प्राचीनकाल में ज्वालामुखी क्रियाओं के फलस्वरूप निकले गर्म एवं तरल लावा से जिन मिट्टियों का निर्माण हुआ है वे रंग में काली अथवा स्लेटी तथा बनावट में मजबूत हैं, तथा अधिक उर्वरा भी है । नवीन चट्टानों से निर्मित मिट्टियाँ पहाड़ियों के ऊपरी भागों तथा नदियों की घाटियों एवं मैदानों में पायी जाती हैं जिनमें चूना एवं पोटाश का अंश पर्याप्त होता है । उत्तरी भारत में हमें ऐसी ही मिट्टियाँ मिलती हैं तथा नदियों के मध्यवर्ती एवं निचले मैदानों में ये अधिक बारीक एवं चिकनी हो जाती हैं और इसलिए इनकी उर्वरा शक्ति बहुत अधिक है ।

भारतीय कृषि अनुसन्धानशाला (Indian Agricultural Research Institute) के श्री राय चौधरी तथा श्री मुखर्जी द्वारा भारत की विभिन्न मिट्टियों की बनावट एवं विशेषताओं का विश्लेषण करके उन्हें उन्नीस वर्गों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं

(१) जलोढ़[1] अथवा नदियों के जल द्वारा लायी गयी मिट्टी, (२) ऐसी जलोढ़ मिट्टी जो कम या अधिक मात्रा में आवश्यक हो, (३) डेल्टा प्रदेश की क्षारयुक्त मिट्टी, (४) तटवर्ती बलुही-जलोढ़ मिट्टी, (५) पुरानी जलोढ़ मिट्टी, (६) चूना युक्त मिट्टी, (७) गहरी काली मिट्टी, (८) साधारण काली मिट्टी, (९) उथली चिकनी दोमट मिट्टी, (१०) लाल एवं काली मिश्रित मिट्टी, (११) लाल दुमट मिट्टी, (१२) लाल बलुही मिट्टी, (१३) लाल दुमट एवं लाल बलुही मिट्टी, (१४) कंकरीली मिट्टी, (१५) पहाड़ी मिट्टी, (१६) तराई प्रदेशों की मिट्टी, (१७) दलदली मिट्टी, (१८) पीट अथवा लकड़ी के अंशों से बनी मिट्टी, (१९) मरुस्थली मिट्टी ।

उपर्युक्त वर्गीकरण में एक प्रकार की मिट्टी के अनेक उप-विभाग कर दिये गये हैं जो अनेक प्रदेशों में फैले हुए हैं । अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से एवं हाल के विशेषज्ञों द्वारा किये गये वर्गीकरणों के अनुसार भारत की मिट्टियों को सामान्यतः निम्नलिखित आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(१) जलोढ़ अथवा कछारी मिट्टी (Alluvial Soil) ।

(२) काली मिट्टी (Black Soil) ।

(३) लाल मिट्टी (Red Soil) ।

---

1 जलोढ़ का तात्पर्य 'एल्यूवियन' अथवा नदियों द्वारा लाकर बिछायी गयी मिट्टी से है ।

(४) लैटेराइट मिट्टी (Laterite Soil)।
(५) पर्वतीय मिट्टी (Mountain Soil)।
(६) मरुस्थली मिट्टी (Desert Soil)।
(७) दलदली एव पीट मिट्टी (Marshy & Peat Soil)।
(८) क्षार युक्त मिट्टी (Alkaline Soil)।

नीचे इनमे से प्रत्येक वर्ग का विस्तार से वर्णन किया गया है

(१) 'जलोढ' अथवा 'कछारी' मिट्टी (Alluvial Soil)—इस मिट्टी को 'तलछटी' मिट्टी भी कहते हैं क्योंकि यह पर्वतीय चट्टानी तलो को काट-छाँट कर लायी गयी होती है। जलोढ मिट्टी इसे इसलिए कहा जाता है कि वह नदियों के जल द्वारा बहाकर लायी जाती है और नदियो तथा उनकी सहायक नदियों के कछारो के आसपास लाकर बिछा दी जाती है। कृषि के लिए यह मिट्टी सबसे अधिक उप-जाऊ मानी जाती है। इसलिए यह भारत की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मिट्टियों मे गिनी जाती है। गगा के सतलज के समस्त मैदान मे इसी प्रकार की मिट्टी मिलती है किन्तु इसमे भी बनावट एव गुणो की दृष्टि से सर्वत्र समानता नही है। मैदान के ऊपरी भागो मे जहाँ चट्टानो के कटाव (Erosion) की क्रिया अधिक होती है यह मिट्टी बलुई (Sandy) है। मध्यवर्ती भागो म जहाँ बहाव (Transportation) की क्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण है यह मिट्टी दुमट (Loam) है अर्थात् इसमे बालू एव चिकनी मिट्टी का मिश्रण है। मैदान के निचले भागो में जहाँ जमाव (deposition) अधिक होता है यह मिट्टी अत्यन्त चिकनी या काँप (Clay) है। इस प्रकार जल द्वारा कटाव, बहाव एव जमाव की प्रतिक्रियाओ के फलस्वरूप मैदान के ऊपर मध्यवर्ती एव निचले भागो की मिट्टियो की बनावट एव उनके गुणों मे विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

बलुई मिट्टी (Sandy Soil) गगा एव सतलज के ऊपरी मैदानो मे पायी जाती है। यह छिद्रयुक्त (Porons) होती है तथा इसके कण या रवे सघन नही होते हैं। इसमे पानी को सोखने की अधिक क्षमता होती है अत. इसमें ऐसी फसलें उत्पन्न की जाती हैं जिनकी जड़ों को अधिक पानी की आवश्यकता नही होती है जैसे गेहूँ, जौ, चना, बाजरा, दालें इत्यादि। इसके विपरीत मैदान के निचले प्रदेशों मे चिकनी काँप मिट्टी होती है जिसमे पानी सोखने की क्षमता बहुत कम होती है तथा जिसके रवे अथवा कण अत्यन्त सघन होते हैं। इसी मिट्टी म ऐसी फसलें सरलता से हो सकती हैं जिनकी जड़ें यदि पानी में रहें तो उसम उन्हे हानि नहीं होती जैसे चावल, जूट आदि। इन दोनों के बीच मे दुमट मिट्टी (Loam Soil) पायी जाती है जो वस्तुतः बलुई एव चिकनी मिट्टियो का मिश्रण है और इसमे दोनो की विशेषताएँ न्यूनाधिरूप म विद्यमान होती हैं।

बलुई एव दुमट मिट्टियो मे सिचाई के द्वारा अन्य फसलें भी उत्पन्न की जा सकती हैं। कछारी या जलोढ मिट्टी, पजाब, हरियाणा, उत्तर पूर्वी राजस्थान, उत्तर

प्रदेश, बिहार एवं पश्चिमी बंगाल राज्यों में फैली हुई है। इसमें भारत की अनेक महत्त्वपूर्ण फसलें उत्पन्न की जाती हैं जैसे चावल, जूट, गेहूँ, जौ, चना, बाजरा, दालें, तम्बाकू, तिलहन, गन्ना, कपास आदि। इस मिट्टी में पोटाश एवं चूने की पर्याप्त मात्रा होती है किन्तु नाइट्रोजन की कमी पायी जाती है जिसे पूरा करने के लिए प्राचीन काल से ही गोबर की खाद इस मिट्टी में देने की परम्परा रही है।

(२) काली मिट्टी (Black Soil)—इस मिट्टी का रंग काला होने के कारण इसे काली मिट्टी कहा जाता है। इसको अन्य नामों से भी पुकारा जाता है जैसे रेगर मिट्टी, लावा मिट्टी अथवा ट्रैप मिट्टी आदि। इस मिट्टी की गहराई सामान्यतः कम होती है। इस मिट्टी का प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप का उत्तर पश्चिमी क्षेत्र है। यह मिट्टी महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग, मध्य
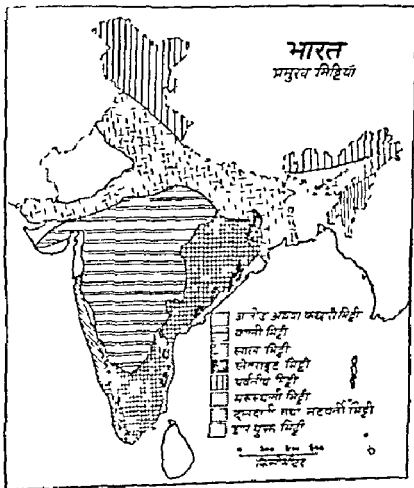
प्रदेश के पश्चिमी भाग, आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी भाग तथा राजस्थान के दक्षिण पूर्वी भाग मे मुख्यतः पायी जाती है।

काली मिट्टी लावा से बनी हुई चट्टानो से बनी हुई है। ये चट्टानें प्राचीन-काल मे दक्षिण प्रायद्वीप मे ज्वाला मुखी पर्वतो से निकले लावा से बनी थी। इसमे बोक्साइट की मात्रा अधिक होने के कारण इसका रग स्लेटी अथवा हल्का काला हो गया है जिसमे चूना तथा पोटाश की उचित मात्रा पायी जाती है किन्तु नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। इस मिट्टी की यह भी विशेपता है कि इसमे नमी अधिक समय तक रह सकती है। काली मिट्टी की किस्म मे विभिन्न स्थानों पर विभिन्नता पायी जाती है। पहाडी ढाल तथा दक्षिण के ऊपरी भागो मे यह मिट्टी कम उपजाऊ तथा हल्के रग की होती है। निचले भागो मे गहरे और काले रग की मिट्टी पायी जाती है जिसमे कपास तथा गेहूँ की फसल होती है। सबसे महत्त्वपूर्ण मिट्टी नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी तथा कृष्णा नदियो की घाटियो मे पायी जाती है जो कि काली, कपास की मिट्टी अथवा रेगर कहलाती है। इस मिट्टी मे कपास, ज्वार तथा गेहूँ की मुख्य फसलें हैं। वैसे तम्बाकू तिल, मूँगफली, अफीम आदि उपज भी इसमे की जाती हैं।

(३) लाल मिट्टी (Red Soil)—लाल मिट्टी रवेदार चट्टानो और परिवर्तित चट्टानो से बनी हुई है। इस मिट्टी मे लोहे की मात्रा मिली होने के कारण इसका रग लाल होता है क्योकि लोहांश पर जल की प्रतिक्रिया उसके रग को लाल बना देती है। कुछ स्थानो पर इस मिट्टी का रग पीला और भूरा भी पाया जाता है। मिट्टी की गहराई और उर्वरता मे स्थान-स्थान पर काफी भिन्नता पायी जाती है। कमजोर, रेतीली तथा हल्के रग की मिट्टी मे बाजरे की फसल होती है जबकि गहरी और घनी मिट्टी मे अन्य बहुत अच्छी फसलें तैयार की जाती हैं।

लाल मिट्टी मे पोटाश और चूना साधारणत काफी मात्रा मे होता है। नाइट्रोजन, फासफोरिक एसिड तथा वनस्पति की मात्रा की कमी पायी जाती है। यह मिट्टी दक्षिणी प्रायद्वीप के पठारी भाग मे फैली हुई है। यह मद्रास, मैसूर, दक्षिणी पूर्वी महाराष्ट्र, आन्ध्र, मध्यप्रदेश उडीसा आदि के अधिकांश भागो मे पायी जाती है। यह मिट्टी अधिक उपजाऊ नही है तथा इनमे कंकड, पत्थर मिले हुए होते हैं।

(४) लेटराइट मिट्टी (Laterite Soil)—यह मिट्टी लेटराइट नामक चट्टान मे टूटकर बनी है। इसलिए इसे लेटराइट मिट्टी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह मिट्टी गहरी लाल, सफेद, भूगर्भवती जल वाली आदि तीन प्रकार की होती है। गहरी लाल मिट्टी मे पोटाश तथा लोह की मात्रा अधिक होती है। यह कम उपजाऊ है। सफेद लेटराइट बहुत कम उपजाऊ होती है।

साधारणत लेटराइट मिट्टी मे पोटाश, चूना तथा फासफोरस की मात्रा कम पायी जाती है। ये मिट्टियाँ ऊपरी भागो मे कमजोर तथा मैदानी भागों मे चिकनी होती हैं और उपजाऊ होती हैं।

लेटराइट मिट्टी मध्यप्रदेश, मैसूर, दक्षिणी महाराष्ट्र, पूर्वी तथा पश्चिमी घाट, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम के कुछ भागों में पायी जाती है। इस मिट्टी में निचले भागों में चावल और ऊपरी भागों में चाय, कहवा, रबर, सिंकोना आदि पैदा किये जाते हैं। इस मिट्टी में अम्लता अधिक होने के कारण चाय की पैदावार अच्छी होती है।

(५) पर्वतीय मिट्टी (Mountain Soil)—यह हिमालय पर्वतीय प्रदेश की मिट्टी है। हिमालय पर्वत में कई प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। पहाड़ी ढालों के निचले भागों की मिट्टी में वनस्पति का अंश कम होता है। यह हल्की, छिद्रमय तथा बलुई होती है। मध्य हिमालय की मिट्टी अधिक उपजाऊ है क्योंकि इसमें वनस्पति का कुछ अंश मिला होता है।

हिमालय पर्वत के दक्षिणी भाग में पथरीली मिट्टी पायी जाती है। इसके कण बड़े होते हैं और वनस्पति-अंश का योग कम होता है अतः कम उपजाऊ है। डोलोमाइट तथा चूने की चट्टानों से बनी हुई मिट्टी विशेषकर नैनीताल, मसूरी आदि स्थानों पर पायी जाती है।

(६) मरुस्थली मिट्टी (Desert Soil)—मरुस्थली मिट्टी पश्चिम के थार के रेगिस्तान में पायी जाती है। इसको बालू मिट्टी भी कहा जाता है। पूर्वी पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान राज्य इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। इसके कण मोटे तथा अलग-अलग होते हैं। इसमें घुलनशील लवण भी पाये जाते हैं। इस मिट्टी में नमी को अधिक समय तक रोके रखने की क्षमता नहीं होती। रेगिस्तानी मिट्टी में सिंचाई करके कृषि उपज की जा सकती है। इसमें बाजरा, ज्वार, मूंग, मोठ तिल आदि की फसलें वर्षा ऋतु में पैदा की जाती हैं। जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध है, वहाँ रबी की फसल में गेहूँ, चना, जौ आदि भी होते हैं।

(७) दलदली एवं पीट मिट्टी (Marshy & Peat Soil)—यह मिट्टी नम व दलदली भागों में पायी जाती है। समुद्रतट, झीलों के नजदीक तथा कछारी मिट्टी के क्षेत्रों में यह मिट्टी पायी जाती है। पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, उड़ीसा के समुद्रतटीय भाग और इनके अलावा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, बिहार के कुछ भाग इस मिट्टी के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। केरल में पायी जाने वाली इस प्रकार की मिट्टी को कारी मिट्टी कहा जाता है।

(८) क्षारीय मिट्टी (Alkaline Soil)—हिमालय पर्वत की चट्टानों से नदियों के पानी में क्षार घुल कर आ जाता है और जब नदियाँ मैदान में आती हैं तो यही क्षार मिट्टी में मिल जाता है। गर्मी की ऋतु में क्षार, मिट्टी की ऊपरी परत पर आ जाता है। इसके अतिरिक्त सिंचाई करने से भी क्षार भूमि पर फैल जाता है। यह मिट्टी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी बंगाल, आदि भागों में कहीं-कहीं पायी जाती है। यह बहुत कम उपजाऊ होती है। इसे उपजाऊ बनाने के लिए इसमें जिप्सम एवं चूने की निश्चित मात्रा मिलायी जाती है।

भारत की मिट्टी की समस्याएँ
(Problems of Indian Soils)

भारत की मिट्टी की निम्नलिखित समस्याएँ हैं :

(i) मिट्टी के कटाव की समस्या,
(ii) लवणता की समस्या,
(iii) जलाधिक्य की समस्या,
(iv) गिरती उत्पादन क्षमता की समस्या ।

(i) मिट्टी के कटाव की समस्या (Problem of Soil Erosion)—भारत में कृषि विकास के लिए मिट्टी की उत्पादन क्षमता को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है । हम सब भली-भाँति इस तथ्य से परिचित हैं कि निरन्तर फसलों को उत्पन्न करने से उसकी उर्वरा शक्ति कम होती जाती है । इसके अतिरिक्त धरातल की ऊपरी मिट्टी को अनेक प्राकृतिक शक्तियों के निरन्तर प्रहार का भी सामना करना पड़ता है । ताप, वर्षा जल-प्रवाह वायु, बर्फ, कुहरा, ओस आदि सभी शक्तियों की न्यूनाधिक प्रतिक्रिया मिट्टी पर होती रहती है । यही नहीं पशु, पक्षी एवं पेड़-पौधों की जड़ें भी मिट्टी के स्वरूप के परिवर्तन के कारण बनते हैं । मनुष्य भी अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मिट्टी को खोदता है अथवा इधर से उधर उठाता रहता है । सड़कों, रेलों और मकानों के निर्माण तथा खनन उद्योग में भी मिट्टी कट-छट जाती है । इन्हीं सब कारणों से मिट्टी का कटाव होता है । किसी स्थान की मिट्टी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर बह जाने, उसमें गड्ढे पड़ जाने अथवा उसके दूसरे स्थान पर हवा के साथ उड़ जाने को ही मिट्टी का कटाव कहा जाता है । प्राकृतिक शक्तियाँ विशेषतः जल एवं वायु कटाव के सबसे प्रबल कारण माने जाते हैं । इनके द्वारा कभी-कभी उपजाऊ मैदानी प्रदेशों की बहुमूल्य मिट्टी का कुछ ही वर्षों में सत्यानाश हो जाता है । यदि मिट्टी के इस प्राकृतिक कटाव को न रोका जाये तो धीरे-धीरे हरे-भरे मैदान बंजर भूमि में बदल जाते हैं ।

मिट्टी के कटाव के प्रकार

मिट्टी का कटाव तीन प्रकार का होता है—धरातली कटाव, नालीदार कटाव तथा वायु द्वारा कटाव । इनका विवरण निम्नलिखित है :

(१) धरातली कटाव (Sheet Erosion)—भूमि की ऊपरी तह पर वर्षा के पानी से कटाव होता है । इसे 'चादरदार कटाव' भी कहते हैं । ढालों में से मिट्टी को वर्षा का पानी बहाकर ले जाता है और एक विस्तृत क्षेत्र की मिट्टी की ऊपरी सतह समान रूप से पानी के साथ बहकर निचले भागों में बह जाती है । आसाम के पहाड़ी भागों, उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश के कुमायूँ क्षेत्र में धीरे-धीरे मिट्टी का कटाव होता है । धरातली कटाव या परत क्षरण इतनी धीमी गति से होता है कि साधारणतः दिखायी नहीं देता । गंगा की मध्यवर्ती घाटी में भी नदियों में आने वाली

बाढ़ के साथ ऊपरी सतह की मिट्टी पानी में घुलकर बह जाती है। धरातली कटाव को घास लगाकर रोका जा सकता है। वृक्षारोपण भी इसमें सहायक होता है, क्योंकि पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी को जमाए रखती हैं।

(२) **नालीदार कटाव** (Gully Erosion)—अधिक वर्षा होने से मिट्टी में नालियाँ तथा गड्ढे बन जाया करते हैं। नालीदार कटाव के अन्तर्गत भूमि की ऊपरी परत के साथ-साथ नीचे की परत भी नालों में बहकर चली जाती है। नालीदार कटाव ऐसे प्रदेशों में अधिक होते हैं जहाँ धरातल पर नरम एवं कठोर मिट्टी की साथ-साथ परतें भी होती हैं। नरम मिट्टी पानी के साथ शीघ्रता से घुलकर बह जाती है और इस प्रकार सतह पर गड्ढे बन जाते हैं और नालियाँ बन जाती हैं। नालीदार कटाव बिहार, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रों में वर्षा के कारण होता है। वर्षा से धरातल पर नाले बनने लगते हैं। अतः मिट्टी नालों द्वारा बहकर चली जाती है। इससे मैदान का समतल धरातल ऊबड़-खाबड़ हो जाता है। ऐसी भूमि में कृषि करना अत्यन्त कठिन होता है। खेतों को बोने, सिंचाई करने, फसल काटने आदि कार्यों में असुविधा होती है तथा ऊँच-नीच खेतों में उपज भी गिर जाती है। चम्बल एवं यमुना नदियों के खादर तथा नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटियों में नालीदार कटाव अधिक होता है।

(३) **वायु द्वारा कटाव** (Wind Erosion)—तेज हवा बहने से भी मिट्टी कटकर उड़ने लगती है। आँधियाँ अपने साथ मिट्टी के कणों को उड़ा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। जिन भागों में वर्षा कम होती है वहाँ गर्मियों में तेज हवाएँ चलती है और मिट्टी के ऊपरी कण उड़ने लगते हैं। पश्चिमी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात आदि भागों में मिट्टी का कटाव हवा द्वारा अधिक होता है। वायु का कटाव तेज गति में होता है। राजस्थान में बालू रेत के टीलों से हवा के साथ मिट्टी उड़कर उड़ती है और दूसरे भागों में जमा हो जाती है। इस प्रकार नये टीलों का निर्माण हो जाता है। यह कटाव थोड़े से समय में ही भूमि को कृषि के अयोग्य बना देता है। वायु द्वारा कटाव कृषि के अतिरिक्त रेलों एवं सड़कों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर देता है। पिछले अनेक वर्षों में पश्चिमी मरुस्थलों से वायु का प्रचण्ड वेग निरन्तर बालू कणों को उड़ा-उड़ा कर उत्तर पूर्वी राजस्थान, हरियाणा, और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में बिछाता रहा है। इससे ये प्रदेश, अर्ध-मरुस्थल (Semi deserts) बनते जा रहे हैं क्योंकि इनकी मिट्टी की ऊपरी सतह में बालू रेत के कणों का प्रतिशत बढ़ता रहा है। स्थिति की इस भयंकरता से जागरूक होकर अब इसके उपचार के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इस प्रकार भारत की लगभग सम्पूर्ण मिट्टी किसी न किसी रूप में मिट्टी के कटाव की समस्या से प्रभावित है। कुछ भागों में वर्षा द्वारा कटाव होता है तथा कुछ भागों में तेज हवा द्वारा। भारत की मिट्टी की लगातार इस समस्या से उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत का ६० करोड़ एकड़ क्षेत्र मिट्टी के कटाव से ग्रसित है जिसमें से ५ करोड़ एकड़ भूमि में वायु द्वारा

कटाव होता है। देश के हित में समय रहते इसे रोकना आवश्यक है। हमारी असावधानी और उदासीनता के कारण पहले ही बहुत अधिक हानि हो चुकी है। अत देश को यथाशक्ति इसका उपचार करना होगा। इसके पूर्व कि इसकी रोकथाम के उपायों पर विचार करें यह आवश्यक है कि मिट्टी के कटाव के कारणों और परिणामों पर विचार कर लिया जाये।

मिट्टी के कटाव के कारण
(Causes of Soil Erosion)

मिट्टी का कटाव जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रकृति तथा मनुष्य दोनों ही के द्वारा हो सकता है। प्राकृतिक शक्तियों, जैसे वायु, जल तथा हिम द्वारा और मानव व्यवहार द्वारा मिट्टियों का कटाव होता है। मिट्टी के कटाव के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(१) तेज हवा—भारत में ग्रीष्म ऋतु में तेज हवा तथा आँधियाँ चलती हैं। आँधियों में भूमि के ऊपरी सतह के बारीक कण उड़कर दूसरे स्थान पर जमा हो जाते हैं। थार के मरुस्थल म अधिकतर मिट्टी का कटाव इसी प्रकार का होता है। राजस्थान की मिट्टी हवा के वेग से उड़ती है और उपजाऊ भागों की ऊपरी सतह पर बिछ जाती है और धीरे-धीरे उसको ढक लेती है। अतः उपजाऊ मिट्टी नीचे रह जाती है जिससे फसलों को नुकसान होता है। उत्तर पूर्वी राजस्थान एव हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश क कुछ जिलों मे वायु द्वारा कटाव के कारण पश्चिम से लायी गयी बालू मिट्टी की उपजाऊ सतह पर जमा होती रही है जिससे प्राकृतिक वनस्पति, वर्षा के औसत एव कृषि उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

(२) मूसलाधार या तेज वर्षा—भारत के कुछ भागों मे मूसलाधार वर्षा होती है जिससे मिट्टी कटती है। अधिक तेज वर्षा होने से पानी नालियों के रूप मे बहता है जिससे भूमि मे गड्ढे हो जाते हैं और जगह-जगह नालियाँ हो जाती हैं। अधिक तेज वर्षा होने से बाढ़ भी आती है। इससे भी भूमि का कटाव होता है। यह कटाव नालीदार कटाव और धरातली कटाव, दो प्रकार का हो सकता है। चम्बल एव यमुना नदियों के खादरों मे तथा नर्मदा ताप्ती नदियों की ऊपरी घाटियों मे नालीदार कटाव प्राय देखने मे आता है।

(३) नदियों द्वारा मार्ग परिवर्तन—कई बार नदियाँ किन्हीं कारणों से अपना मार्ग-परिवर्तन कर लेती हैं जिससे भूमि का कटाव होने लगता है। नवीन मार्ग में होकर बहने से वहाँ की मिट्टी पानी के साथ बह जाती है।

(४) समुद्री तूफान—समुद्र में तूफान और ज्वार भाटे आने से समुद्र तट की भूमि कटने लगती है। जब तूफान आते हैं तो पानी तट पर फैलने लगता है बाद में पानी वापिस जाने लगता है जिससे मिट्टी भी कट कर पानी के साथ बह जाती है।

(५) हिमपात से कटाव—भारत में हिमालय पर्वत के कुछ भागों में हिमपात होता है। इसमें हिम खण्ड ऊपर से नीचे की तरफ खिसकने लगते हैं। ये हिमनद

तथा हिमखण्ड लुढ़कते हुए अपने साथ बहुत भारी चट्टानें मिट्टी भी बहा लाते हैं। भारतीय कृषि को इस प्रकार का कटाव अधिक नुकसान नहीं पहुँचाता क्योंकि यह कटाव हिमालय के पहाड़ी भागों में होता है जहाँ कृषि अधिक नहीं हो पाती है।

(६) वनों का नाश—वन काटने के कारण भी मिट्टी का कटाव होता है। वन घरेलू कार्यों और ईंधन के लिए काटे जाते हैं। वनों के कारण पानी के बहाव में रुकावट आती है, जल का तेज प्रवाह कम हो जाता है और मिट्टी का कटाव कम होता है। पेड़ पौधों की जड़ों के विस्तार से कटाव रुकता है। जब इनको काट दिया जाता है तो भूमि का ऊपरी धरातल हरे आवरण से वंचित हो जाता है। वन वायु द्वारा होने वाले मिट्टी के कटाव में बाधा उपस्थित करते हैं, क्योंकि पेड़ पौधे मिट्टी के कणों को जमाये रखते हैं और उड़ने से रोकते हैं।

(७) पशुओं द्वारा वनस्पति का विनाश—यह पहले ही कहा जा चुका है कि पशु वनस्पति पर निर्भर होते हैं। ये भूमि के ऊपर जो वनस्पति होती है उसे चर जाते हैं। भूमि पर छाई हुई वनस्पति कटाव को रोकती है और जब यह वनस्पति समाप्त हो जाती है तो भूमि का कटाव आरम्भ हो जाता है। गाय, बैल, भेड़, बकरी, ऊँट आदि के द्वारा वनस्पति का नाश होता है। चरागाहों में पशुओं की अनियन्त्रित एवं निर्बाध चराई कुछ ही वर्षों में चरागाह के पेड़ पौधों का नाश कर देती है इसीलिए सुरक्षित वनों में पशुओं की चराई वर्जित कर दी जाती है।

(८) झूमिंग कृषि एवं स्थानांतरित कृषि प्रणाली—भारत में हिमालय के निचले ढालों, आसाम, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली से खेती की जाती है इसमें आग लगाकर वनों का नाश कर दिया जाता है और इस प्रकार उस क्षेत्र पर दाने बिखेर कर चावल आदि की उपज की जाती है। ये आदिवासी लोग स्थान बदल बदल कर खेती करते हैं जिसमें पहली भूमि को छोड़कर फिर नयी भूमि के वनों का नाश करके उस पर कृषि करते हैं। लगातार इस क्रिया से नयी नयी भूमि पर खेती करने में वनों का नाश होता है और मिट्टी का कटाव होने लगता है।

(९) लगातार खेती—किसी भूमि के टुकड़े पर लगातार खेती करने से उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। भारत में बहुत प्राचीन समय से ही लगातार खेती की जा रही है। गंगा यमुना एवं सतलज के मैदानों में पिछले पाँच हजार वर्षों से निरन्तर खेती होती रही है। यदि प्रतिरोधक उपाय न अपनाये जाएँ तो लगातार खेती मिट्टी को कमजोर बना देती है। ऐसी भूमि पर धीरे धीरे वनस्पति एवं उपज कम होती चली जाती है जिससे मिट्टी के कटाव को प्रोत्साहन मिलता है।

(१०) कृषि के तरीके—कृषि के अवैज्ञानिक तरीके अपनाने के कारण भी भूमि का कटाव होता है। हर किसान के अवैज्ञानिक तरीकों को काम में लेने से भी भूमि का कटाव होने लगता है। किसान यदि अपने खेत की मिट्टी को ऊपर से

बचाना चाहता है तो उसे वायु विरुद्ध दिशा (Anti wind direction) म अपने खेत को जोतना चाहिए ।

(११) मिट्टी का उपयोग—मिट्टी का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है जैसे सडकों, रेल मार्गों, मकानों का निर्माण आदि । इन कार्यों के लिए मिट्टी खोदनी पडती है जिससे गड्डे हो जाते हैं और वह भूमि कृषि के योग्य नहीं रहती है । खनिज पदार्थों के निकालने आदि के कारण भी मिट्टी का कटाव बडे पैमाने पर होता है । शहरो के आस-पास ईंटो के निर्माण के लिए भी मिट्टी काट कर गड्ढे बना दिये जाते हैं ।

उपरोक्त कारणों से मिट्टी का कटाव होता है । इनम कुछ कारण मनुष्य के व्यवहार पर आधारित हैं और कुछ प्रकृति के व्यवहार पर । भारत के लगभग सभी भागो म किसी न किसी कारण स मिट्टी का कटाव होता है ।

मिट्टी के कटाव के परिणाम

पिछले हजारो वर्षो से मिट्टी का कटाव होता रहा है । वैस तो सभी भागो मे थोडा बहुत मिट्टी का कटाव होता है, किन्तु जब उपजाऊ मैदानो मे मिट्टी का कटाव होने लगता है तो इसके दुष्परिणाम कृषि के लिए अत्यन्त भयकर होते हैं । मिट्टी के कटाव के परिणामो का विस्तार से नीचे वर्णन किया गया है .

(१) उर्वरा शक्ति मे कमी—मिट्टी का कटाव होने से उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है । इस शक्ति क नष्ट हो जाने से कृषि उत्पत्ति मे कमी आती है । विभिन्न कारणों से भूमि का कटाव होता है जिससे उसका उपजाऊपन समाप्त हो जाता है, जैस हवा से भूमि के कटाव होने पर दो प्रकार से नुकसान होता है । जिस जगह से मिट्टी कटती है वहाँ की ऊपरी परत उडने लगती है जोकि निचली परत से कुछ अधिक उपजाऊ है । दूसरी ओर जहाँ यह मिट्टी जमा होती है वहाँ यदि पहले ही अधिक उपजाऊ मिट्टी है तो वह नीचे दब जाती है । अत दोनों स्थानों पर नुकसान होता है ।

(२) बाढ में वृद्धि—मिट्टी के कटाव के कारण भूमि कट कर पानी के साथ बहती है जोकि नदियों, तालाबों और बांधो मे इकट्ठी होने लगती है जिससे बाढ आने की सम्भावना हो जाती है । डेल्टा प्रदेशो मे प्रतिवर्ष करोडो टन मिट्टी बाढ द्वारा लाकर जमा कर दी जाती है जिससे नदियो का उथलापन बढ जाता है ।

(३) कृषि फार्मों मे कठिनाई—मिट्टी के कटाव के कारण नाले, गड्ढे और टीले बढते जाते हैं जिससे कृषि कार्यों मे कठिनाई होती है । भू-तल पर गड्डे हो जाने से, जगह जगह नालियाँ हो जाने से और टीलों का विस्तार हो जाने से खेती कठिन हो जाती है । ऊबड-खाबड जमीन पर कृषि उतनी सरलता से नहीं की जा सकती है जितनी कि समतल भूमि पर ।

(४) यातायात मे कठिनाई—मिट्टी का अधिक कटाव होने से रेलो की पटरियों पर मिट्टी जमा हो जाती है सडकें रेत मे दब जाती हैं और मार्ग खराब हो

जाते हैं जिससे यातायात में कठिनाई उपस्थित हो जाती है। जल यातायात में भी कठिनाई होती है, क्योंकि नदियों के किनारे मिट्टी जमा हो जाती है जिससे जहाजों के आने-जाने में कठिनाई हो सकती है।

(५) हरियाली नष्ट हो जाना—मिट्टी का कटाव होने से हरियाली नष्ट हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वर्षा पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वर्षा को हरियाली आकर्षित करती है। जब इसका अभाव होता है तो औसत वर्षा धीरे-धीरे कम होती चली जाती है। हरियाली और वर्षा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् हरियाली वर्षा को आकर्षित करती है तथा वर्षा हरियाली में वृद्धि करती है। अतः यदि कटाव के कारण वनों एवं हरियाली में कमी हो जायगी तो वर्षा पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

वास्तव में, भूमि के कटाव के कारण कृषि योग्य भूमि बुरी तरह प्रभावित होती है। मिट्टी के कटाव को 'रेंगती हुई मृत्यु' (Creeping Death) कहा जाता है, क्योंकि धीरे-धीरे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम होती जाती है जिसके भयंकर परिणाम निकलते हैं। कृषि उत्पादन में कमी आती है जिससे राष्ट्रीय आय प्रभावित होती है। अतः इस समस्या को हल करना नितान्त आवश्यक है।

मिट्टी के कटाव को रोकने के उपाय

मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए निम्न सुझाव हैं

(१) वन रक्षा—भारत में जो वन पाये जाते हैं उनकी रक्षा करने से मिट्टी का कटाव रोका जा सकता है। विभिन्न कार्यों के लिए वनों को नष्ट न करके वैकल्पिक उपायों पर विचार करना चाहिए। मनुष्य खेती, चरागाह आदि के लिए वनों का नाश करता है। वनों रक्षा के लिए सरकार को पूर्ण नियन्त्रण लगा देना चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि जो प्रदेश वनों से ढके रहते हैं, उनमें मिट्टी सुरक्षित रहती है, क्योंकि पेड़, पौधों की जड़ें मिट्टी को बाँधे रखती हैं। वनों का नाश होते ही उस प्रदेश की मिट्टी बिखर कर उड़ने अथवा पानी के साथ बहने लगती है।

(२) वृक्षारोपण—नदियों के किनारे, ऊसर भूमि तथा ढालों पर वन लगाने चाहिए। इसके अलावा जिन भागों में अधिक कटाव हो रहा है वहाँ जगह-जगह पर वन लगाये जायें। इसके कारण हवा और पानी के वेग में कमी आयगी और मिट्टी का कम कटाव होगा। रेगिस्तान धीरे धीरे बढ़ रहा है अतः इसे रोकने का सबसे अच्छा तरीका नये वृक्ष लगाना है। जोधपुर में स्थित शुष्क प्रदेश अनुसन्धान केन्द्र (Arid Zone Research Centre) मरुभागों में सुरक्षा वन लगाने का उत्तम प्रयास कर रहा है। इससे बालू रेत का जमाव होगा और वह हवा के साथ कम उड़ेगी।

(३) बाढ़ नियन्त्रण—बाढ़ पर नियन्त्रण करने के लिए नदियों पर बाँध बनाये जाते हैं। इन बाँधों से जल प्रवाह धीमा हो जाता है जिससे मिट्टी का कटाव कम हो जाता है। भारत के कुछ भागों में वर्षा के दिनों में अधिक तेज वर्षा के

कारण बाढ आती हैं जिससे भूमि का कटाव होता है। इसके लिए नदियों पर अधिक बांध बना कर पानी के वेग को कम किया जा सकता है। दामोदर नदी घाटी योजना इसका उत्तम उदाहरण है। राजस्थान में भी चम्बल नदी पर अनेक बांध बनाये गये हैं जिससे प्रति वर्ष आने वाली भयकर बाढो म कमी हो गयी है और इसके साथ ही चम्बल नदी घाटी की उर्वरा मिट्टी का कटाव भी कम हो गया है।

(४) **पानी बहने के मार्गों का निर्माण करना**—अधिक वर्षा होने से पानी अनेक छोटे-छोटे नालों मे बहने लगता है जिससे अधिक भूमि बेकार हो जाती है। इसको रोकने के लिए पानी के बहने के लिए उचित मार्गों का निर्माण कर देना चाहिए जिससे पानी आसानी से बहकर बिना नुकसान पहुँचाय चला जाये। इसके लिए पक्की नालियां भी बनायी जा सकती हैं।

(५) **खेतों की मेड बन्दी**—खेतों की मेड बन्दी करने से भी मिट्टी का कटाव कम होता है। इसके कारण पानी का वेग कम हो जाता है। अगर आंधी से कटाव होता है तो रेत मेड के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को कम उडती है।

(६) **भूमि को समतल बनाना**—भूमि कही ऊँची तथा कही नीची पायी जाती है इससे भी भूमि का कटाव होता है। इसको रोकने के लिए ऊँची-नीची भूमि को समतल बनाना चाहिए। भूमि के समतल होने से पानी का वेग कम हो जाता है। समतल करके यदि भूमि मे जल निष्कासन के लिए पक्की नालियां बना दी जायें तो फिर कटाव की समस्या कम हो जाती है।

(७) **भूमि के ढालों पर खेती**—जिन भागो मे भूमि ढालू अधिक है वहाँ जल प्रवाह तेज होता है। इन भागों मे खेती करनी चाहिए जिससे जल वेग मे कमी आ जाये। इसके अतिरिक्त ढालू भागा मे खाइयां खोद कर जल प्रवाह कम करना चाहिए।

(८) **वैज्ञानिक कृषि**—कृषि के वैज्ञानिक तरीके अपनाने से कटाव कम होता है। वैज्ञानिक कृषि के अन्तर्गत नवीन औजार जैसे ट्रैक्टर आदि और खादो को काम मे लाया जाता है। इससे मिट्टी की उत्पादन क्षमता बढ जाती है।

(९) **सीढीदार खेत बनाना**—पहाडी भागो मे कृषि योग्य भूमि में सीढीदार खेत बनाने चाहिए। ये खेत घुमावदार सीढीनुमा होने चाहिए। इन खेतों से जल प्रवाह मे धीमी गति हो जायगी। सीढीदार खेतो मे हल इस प्रकार चलाये जाने चाहिए ताकि पानी का वेग कम हो सके। खेतों का घुमावदार होना भी प्रवाह को रोकता है।

(१०) **बहते हुए जल की मात्रा कम करना**—बहते हुए जल की मात्रा तालाब बना कर भी कम की जा सकती है। पहाडी ढालो मे बडे बडे तालाब बनाकर पानी इकट्ठा किया जा सकता है। दक्षिणी भारत मे वर्षा के दिनो मे नदियां बहुत तेज बहती हैं उनके वेग को बांधों और तालाबो द्वारा ही कम किया जा सकता है। इस प्रकार जल की मात्रा कम करके मिट्टी के कटाव को रोका जा सकता है।

उपरोक्त सुझावो के आधार पर जिन भागो मे जो सुझाव उपयुक्त है उनको कार्य रूप मे परिणित करना चाहिए, जिससे मिट्टी के कटाव की समस्या को सुलझाया जा सके ।

भारत मे मिट्टी के कटाव के क्षेत्र

भारत मे मिट्टी के कटाव के निम्नलिखित क्षेत्र है :

(१) उत्तर प्रदेश क्षेत्र के अन्तर्गत मिट्टी का कटाव सर्वाधिक खतरनाक है। इस प्रदेश की मिट्टी बहुत उपजाऊ थी जो कि आज बजर के रूप मे परिवर्तित हो रही है। लगभग ३५ लाख एकड भूमि उबड-खाबड हो गयी है। लगातार कृषि करने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी कम हो गयी है। उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पश्चिमी जिलो की भूमि रेगिस्तानी मिट्टी से ढक रही है। इटावा, आगरा तथा मथुरा जिलो मे बजर भूमि का विस्तार हो रहा है।

(२) गगा नदी अपनी सहायक नदियो के साथ मिट्टी को धीरे-धीरे बहा कर बगाल की खाडी मे डाल देती है। गगा की निचली घाटी मे मिट्टी के कटाव से अधिक नुकसान हो रहा है। इस क्षेत्र मे बहुत सी भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी है।

(३) मध्य प्रदेश क्षेत्र के अन्तर्गत चम्बल नदी से वर्षा के दिनो म मिट्टी का कटाव होता है। चम्बल नदी क्षेत्र मे अधिकतर नाले और गड्ढे हो गये है। इससे काफी भूमि कृषि के योग्य नहीं रही। चम्बल नदी तथा उस प्रदेश की अन्य नदियो मे बाढ आती है जिससे मिट्टी का कटाव होता है।

(४) महाराष्ट्र क्षेत्र के अन्तर्गत काली मिट्टी पायी जाती है जिसमे कपास की खेती होती है। वर्षा के दिनो मे यह मिट्टी नदियो और नालो मे बहकर चली जाती है जिससे भूमि बेकार हो जाती है।

(५) हिमालय पर्वत के दक्षिणी ढालो और तराई भागो मे पानी द्वारा मिट्टी का कटाव होता है। इन पहाडी भाग मे बहुत गहरे नाले और गड्ढे बन गये है। इस कारण भूमि कृषि योग्य नहीं रहती है।

(६) वायु द्वारा मिट्टी का कटाव अधिकतर राजस्थान, पजाब और हरियाणा, मे होता है। पश्चिमी थार के रेगिस्तान से ग्रीष्म ऋतु मे आँधियों द्वारा मिट्टी उड़ा कर गगा-यमुना के मैदान मे डाल दी जाती है। पजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के उपजाऊ भाग धीरे-धीरे रेगिस्तान मे परिवर्तित हो रहे है। राजस्थान म मिट्टी के कटाव के कारण उड़ती हुई फसल रेत मे दब जाती है। रेल की पटरियों तथा सड़कों पर मिट्टी जमा हो जाती है और जगह जगह प्रति वर्ष नये टीले बन जाते है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत मे परतदार, नालीदार तथा वायु द्वारा, तीनो प्रकार से मिट्टी का कटाव होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार भारत मे २० करोड एकड भूमि की मिट्टी कटाव के कारण क्षतिग्रस्त हो रही है।

भूसंरक्षण के लिए सरकारी प्रयास

मिट्टी के कटाव की समस्या को हल करने के लिए भारत सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं में भूसरक्षण (Soil Conservation) कार्यक्रम चालू किये हैं। केन्द्रीय खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय के अन्तर्गत एक बोर्ड की स्थापना १९५३ में हुई है जिसे 'केन्द्रीय भूसरक्षण बोर्ड' कहा जाता है। इस बोर्ड के प्रमुख कार्य भूमि के सम्बन्ध में सर्वेक्षण कार्य करना, सरक्षण सम्बन्धी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना और मिट्टी के सरक्षण कार्यों में सहायता प्रदान करना है। पचवर्षीय योजना में सरकार ने निम्नलिखित प्रयत्न किये हैं

(क) प्रथम पचवर्षीय योजना—प्रथम पचवर्षीय योजना में भू-सरक्षण कार्य के लिए १.६ करोड रुपये व्यय किये गये। सरक्षण कार्य के लिए ८ क्षेत्रीय गवेषण व सर्वेक्षण केन्द्र स्थापित हुए जो कि देहरादून, जोधपुर, कोटा, हजारीबाग, बेलारी, साहिब नगर, उटकमण्ड तथा चण्डीगढ जगह पर हैं। प्रथम योजना में भूमि की रक्षा के प्रयत्न ७ लाख एकड भूमि पर किये गये। जोधपुर में मरुस्थल क्षेत्र अनुसन्धान केन्द्र मरुस्थलीय पौधों का विस्तार करता है तथा अन्य अनुसन्धान कार्य करता है।

(ख) द्वितीय पचवर्षीय योजना—द्वितीय योजना में १७.६१ करोड रुपये व्यय किये गये। इस काल में लगभग २० लाख एकड भूमि में मेड बन्दी की गयी। १ करोड २० लाख एकड भूमि में सर्वेक्षण कार्य किया गया। राजस्थान में चरागाह कार्यक्रम के अन्तर्गत बाडे स्थापित करने का कार्य शुरू किया गया। इस योजना में प्रथम योजना की अपेक्षा अधिक सर्वेक्षण और प्रशिक्षण कार्य किया गया। इसके लिए केन्द्र ने राज्यों को अधिक वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान की।

(ग) तृतीय पचवर्षीय योजना—तृतीय पचवर्षीय योजना में ७८ करोड रुपया व्यय किया गया। इस काल में १२० लाख एकड भूमि में मेड बन्दी का लक्ष्य रखा गया। नमकीन मिट्टी म सुधार के अन्तर्गत २ लाख एकड भूमि पर कार्य आरम्भ करने का प्रस्ताव रखा गया था। तीसरी योजना में १५० लाख एकड भूमि में सर्वेक्षण तथा २२० लाख एकड भूमि में शुष्क खेती प्रणाली अपनाने के प्रयत्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

तृतीय योजना में लगभग ४४ लाख हेक्टर भूमि को भूसरक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत लाया गया। इसमें से ३७.२ लाख हेक्टर भूमि कृषि योग्य भूमि में से थी ३.२ लाख हेक्टर भूमि नदियों की घाटियों तथा पानी के गड्ढों की भूमि थी और शेष भूमि जलाधिक्य, मरुस्थली एव अन्य प्रकार की थी। शुष्क कृषि कार्यक्रम इस योजना में ७० लाख हेक्टेयर भूमि में किये गये।

(घ) सन् १९६६ से १९६९ तक की तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि में भूसरक्षण कार्यक्रमों पर लगभग ८७.९ करोड रुपये व्यय किये गये।

(ङ) चतुर्थ योजना में भूसरक्षण के लिए १५९.४ करोड रुपये का प्रावधान रखा गया है। इस योजना काल में ५६ लाख हेक्टर कृषि भूमि में भूसरक्षण के कार्य

सम्पन्न किये जाएँगे तथा लगभग १० लाख हैक्टर बंजर भूमि को कृषि-योग्य बनाया जायगा।

अखिल भारतीय मिट्टी एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष १९६७-६८ में ६.०७ लाख हैक्टेयर भूमि का सर्वेक्षण किया गया। अब तक २६ सर्वेक्षण रिपोर्ट जिनमें ५.५७ लाख हैक्टेयर भूमि सम्मिलित है, सम्बन्धित राज्यों को योजना के लिए भेज दी गयी है। अक्टूबर १९६७ से सभी भू-संरक्षण, रिसर्च और प्रशिक्षण केन्द्र इण्डियन कौन्सिल ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च' (Indian Council of Agricultural Research) में हस्तान्तरित कर दिये हैं।

तीसवर्षीय योजना—मिट्टी में कटाव की समस्या को दूर करने का ३० वर्ष का कार्यक्रम बनाया गया है जो कि १९५६ में आरम्भ किया गया है और १९८६ तक पूर्ण हो जायगा। इस योजना का लक्ष्य ७ करोड़ एकड़ भूमि के संरक्षण का है। इस योजना के अन्तर्गत १९७१ तक २ करोड़ एकड़ भूमि, १९७६ तक ४ करोड़ एकड़ भूमि, १९८१ तक ६ करोड़ एकड़ भूमि और १९८६ तक ७ करोड़ एकड़ भूमि को भू-संरक्षण में लाया जायगा।

(i) मिट्टी की लवणता की समस्या—मिट्टी के कटाव के अलावा भूमि की लवणता की समस्या है। इसके अन्तर्गत मिट्टी की ऊपरी तह पर लवणता की रेत जम जाती है जो कि उत्पादन क्षमता को कम कर देती है। लवणता की समस्या जल से उत्पन्न होती है। पानी में लवण घुल जाते हैं। जब यह पानी मिट्टी पर फैलता है तो नमक भी उसके ऊपरी तह पर जमा हो जाता है। जब पानी सूखता है तो मिट्टी पर सफेद रेह या क्षार जम जाता है जो कि भूमि को कृषि योग्य नहीं छोड़ता।

इस समस्या के समाधान के लिए पंजाब का पूरा काम में लिया जाता है। जिप्सम को पानी में घोलकर भी उत्पादन क्षमता फिर प्राप्त की जाती है। इस समस्या के समाधान के लिए पानी को मिट्टी पर इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

(ii) जलाधिक्य की समस्या—भारत के जिन भागों में वर्षा अधिक होती है वहाँ पानी भूमि पर फैल जाता है। कभी कभी बाढ़ आने से पानी खेतों में फैल जाता है जिससे भूमि कृषि योग्य नहीं रहती है। पौधे अधिक नमी के कारण सड़ जाते हैं। इसे सम की समस्या भी कहते हैं। पंजाब एवं हरियाणा के नहर प्रधान क्षेत्रों में यह समस्या अधिक प्रबल है। राजस्थान में भी चम्बल नहरी क्षेत्र में आस-पास की भूमि सेम की समस्या से अब ग्रसित होती जा रही है।

इस समस्या के समाधान के लिए पानी के प्रवाह की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अलावा नदियों और वर्षा के अतिरिक्त जल को सिंचाई के काम में लाने का प्रयास करना चाहिए।

(iii) गिरती उत्पादन क्षमता की समस्या—लगातार कृषि करने से मिट्टी

की उत्पादन क्षमता कम होती जाती है। इसमे मिट्टी के तीन तत्वों का क्षय होता है, जो कि नाइट्रोजन, फासफोरिक एसिड तथा पोटाश हैं।

मिट्टी की उत्पादन क्षमता को वापस लाने के लिए भूमि को बजर या परती छोडना, फसलो का हेर-फेर करना तथा खेतो म खाद देना आवश्यक होता है।

मिट्टी, उर्वरक व खादें—मिट्टी की समस्या के समाधान के लिए उर्वरक तथा खादो की आवश्यकता पडती है। अधिक जनसख्या होने के कारण भूमि पर भार बढ जाता है और खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसके लिए गहन कृषि कार्यक्रम अपनाये जाते हैं। इन कार्यक्रमों मे उर्वरक तथा खाद देकर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढाया जाता है।

मिट्टी की उत्पादन क्षमता को वापस प्राप्त करने के लिए भूमि पडती या बजर छोडना भारत जैसे देश म मुश्किल है। अत फसलों का हेर-फेर करके तथा खादें देकर उर्वरा शक्ति बढायी जाती है। फसल की अदला-बदली प्रणाली, या हेर फेर की पद्धति प्राचीन समय से चली आ रही है। खादें दो प्रकार की काम मे लायी जाती हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है.

(अ) प्राकृतिक खादे

प्राकृतिक खादें प्रकृति द्वारा प्रदान की जाती हैं। इसमें निम्नलिखित खादें सम्मिलित हैं:

(१) कम्पोस्ट खाद—कम्पोस्ट खाद कूडा-करकट, गोबर, मूत्र, सडी-गली घास, राख आदि स बनती है। इनको गड्ढो म डालकर तैयार किया जाता है। गोबर आदि को भारत मे जलाने के काम में लेने के कारण खाद कम तैयार की जाती है। परन्तु आजकल इससे कम्पोस्ट तैयार करने मे प्रगति हो रही है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत मे **'गोबर का वार्षिक उत्पादन'** लगभग ८० करोड टन का है। इसमें से ३२ करोड टन गोबर गांवो म जलाने के काम मे ले लिया जाता है। लगभग १६ करोड टन व्यर्थ नष्ट हो जाता है और शेष ३२ करोड टन ही खाद के रूप मे प्रयुक्त होता है। इस सबका कम्पोस्ट बना कर खाद तैयार किया जाय तो कृषि उपज मे बहुत वृद्धि हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रो म तृतीय योजना के अन्त में लगभग १२ करोड टन कम्पोस्ट की खाद बनायी गयी। पिछले वर्षों मे इसमे वृद्धि हुई और १९७० मे कम्पोस्ट की खाद का उत्पादन १५ करोड टन था। इसके अतिरिक्त शहरो मे भी लगभग ४२ लाख टन कम्पोस्ट बनाया गया।

(२) मछली की खाद—यह खाद कीमती होने के कारण भारत में कम प्रयोग की जाती है। मछली की खाद चाय व चावल की फसल के लिए अच्छी समझी जाती है। मछलियो का तेल निकालने तथा उनको अन्य कार्यों म लेने के पश्चात् जो भाग बचता है उसे खाद के काम मे लाया जा सकता है।

(३) खली की खाद—भारत मे तिलहन, मूंगफली, सरसों आदि की फसलें तैयार की जाती हैं। इनसे तेल निकालने के बाद जो भाग बचता है उससे खली की

खाद तैयार की जाती है। भारत में खली की खाद अधिक काम में लाने की समस्या है, क्योंकि खली की खाद महँगी पड़ती है। भारत में तेल निकालने के उद्योग के विकास के साथ-साथ यह खाद अधिक प्राप्त की जा सकती है, किन्तु खली की खाद के प्रयोग में एक अन्य बाधा यह है कि यदि खाद के रूप में खली का अधिक उपयोग किया जायगा तो देश के दुधारू पशु इस पौष्टिक आहार से वंचित रह जायेंगे।

(४) हरी खाद—हरी खाद पौधों की पत्तियों और डालियों से तैयार होती है। मूंगफली, ग्वार, चना, मटर और अरहर की खेती करके उनकी पत्तियों को काम में ले लिया जाता है। शेष भाग खेत की मिट्टी में मिल जाने दिया जाता है। इससे उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में हरी खाद का प्रयोग करने वाला क्षेत्र ८५ लाख हेक्टर से कुछ कम था। बाद के वर्षों में इसमें निरन्तर वृद्धि हुई और मार्च सन् १९७१ को समाप्त होने वाले वर्ष में यह क्षेत्र ११० लाख हेक्टर से भी कुछ अधिक हो गया।

(५) हड्डी की खाद—हड्डी की खाद में कैल्शियम तथा फास्फोरस दोनों की मात्रा पायी जाती है। भारत में पशुओं की प्रतिवर्ष काफी मृत्यु होती है अतः उनकी हड्डी से खाद बनायी जा सकती है। भारत में छोटी-मोटी लगभग १०० मिलें ऐसी हैं जो कि १.४५ लाख टन हड्डियाँ प्रतिवर्ष पीसकर तैयार करती हैं। धीरे-धीरे इस खाद का प्रयोग बढ़ रहा है। राजस्थान में जोधपुर एवं जयपुर में हड्डी का चूरा बनाने के कारखाने कार्यशील हैं।

(६) खून की खाद—खून की खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। यह रसदार फलों के वृक्षों में अधिक काम आती है। खून की खाद बहुत कीमती होती है अतः इसको बहुत ही कम काम में लाया जाता है। खून से मिट्टी की उत्पादन शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि होती है। रक्त की खाद देश में फैले हुए अनेक बूचड़खानों से प्राप्त होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत के पशुवधालयों (Slaughter houses) से लगभग १२,००० टन रक्त की खाद प्राप्त की जा सकती है।

(ब) रासायनिक खादें

रासायनिक खादों में सभी कृत्रिम खादें सम्मिलित की जाती हैं। ये कारखानों में तैयार की जाती हैं। रासायनिक खाद का सर्वप्रथम कारखाना सिंदरी (बिहार) में खुला जिसमें १९५१ में उत्पादन प्रारम्भ किया गया। इस कारखाने में १,००० टन अमोनियम सल्फेट (Ammonium Sulphate) प्रतिदिन बनता है।

यह कारखाना एक सरकारी कारपोरेशन (फर्टीलाइजर कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड) के अन्तर्गत है। इस निगम की अधिकृत पूंजी २०० करोड़ रुपये तथा चुकता पूंजी ७२.७५ करोड़ रुपये है। सिन्दरी को सम्मिलित करते हुए इस समय इस निगम के अधीन पाँच कारखाने उर्वरकों का उत्पादन कर रहे हैं जिनके नाम

हैं सिन्दरी (बिहार), नांगल (पंजाब), ट्रॉम्बे (महाराष्ट्र), गोरखपुर (उत्तरप्रदेश) तथा नामरूप (असम)।

सिन्दरी का कारखाना २८ करोड़ की लागत से सन १९५१ में बना तथा इसमें ३.६५ लाख टन उर्वरक उत्पादन करने की क्षमता है जिनमें अमोनियम सल्फेट, यूरिया तथा डबल साल्ट प्रमुख हैं। नांगल फैक्ट्री ने सन् १९६१ में उत्पादन शुरू किया। इसकी लागत ३० करोड़ रुपये थी तथा उत्पादन क्षमता ३.२० टन है। इसमें मुख्यतः कैलसियम, अमोनियम नाइट्रेट उत्पादित होता है। ट्रॉम्बे के कारखाने ने सन् १९६५ में कार्य प्रारम्भ किया तथा इसकी उत्पादन क्षमता ९०,००० टन नाइट्रोजन फास्फेट उत्पादन की है। गोरखपुर एवं नामरूप के कारखानों ने सन् १९६८ में उत्पादन शुरू किया। गोरखपुर में सन् १९७० में १.५ लाख टन यूरिया (Urea) का उत्पादन किया तथा इसी वर्ष में नामरूप में ६५,८०० टन अमोनियम सल्फेट तथा २६,१०० टन यूरिया बनाया गया। इन पाँच चालू कारखानों के अतिरिक्त फर्टीलाइजर कार्पोरेशन चार और कारखाने स्थापित कर रहा है जो इस प्रकार हैं—दुर्गापुर (प० बंगाल), बरौनी (बिहार), नामरूप विस्तार (असम) तथा सिन्दरी नेशनलाइजेशन योजना (बिहार)। राउरकेला इस्पात कारखाने के समीप भी सन् १९६२ में कैलसियम अमोनिया नाइट्रेट बन रहा है।

दक्षिण भारत में नवेल्ली और अलवाय में उर्वरकों का उत्पादन हो रहा है तथा कोचीन और मद्रास में कारखानों का निर्माण हो रहा है जो सन् १९७१ के अन्त तक उत्पादन आरम्भ कर देंगे।

इनके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में अनेक कारखाने हैं जो वाराणसी, बड़ौदा, विशाखापटनम, कोटा, कानपुर में स्थित हैं। गोवा और कान्दला में भी उर्वरक कारखाने बन रहे हैं।

सन् १९७० में देश में लगभग २१ लाख टन रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया गया जिसमें १५ लाख टन नाइट्रोजन, ४ लाख टन फोस्फेटिक तथा २ लाख टन पोटाश उर्वरक थे। यह आवश्यकता राष्ट्र में उत्पादित एवं विदेशों से आयातित उर्वरकों से पूरी की गयी। चतुर्थ योजना के अन्त तक देश में ५५ लाख टन रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग होने लगेगा जिसमें ३२ लाख टन नाइट्रोजनस, १४ लाख टन फास्फेटिक तथा ९ लाख टन पोटाश उर्वरक होंगे। इसके लिए देश में उर्वरकों की उत्पादन क्षमता २७ लाख टन हो जायगी तथा शेष भाग की पूर्ति विदेशों से आयात करके करनी होगी। इनके लिए चौथी योजना में २६२ करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है तथा बारह नये कारखानों के निर्माण की स्वीकृति दी जा चुकी है जिनकी उत्पादन क्षमता २१.५ लाख टन की होगी। इनकी स्थापना जिन स्थानों पर होगी उनके नाम हैं—काम्पटी, कोरबा, मथुरा, मंगलौर, मिर्जापुर, रामगुन्दम, शिवनोवा, तालचर, ट्रॉम्बे, तूतीकोरन, विशाखापट्टनम तथा इसी के समीप एक अन्य कारखाना। इस समय इस उद्योग में ४५० करोड़ रुपये की 'पूँजी' लगी हुई

है तथा आशा है कि चतुर्थ योजना के अन्त तक इस योजना में १,२०० करोड़ रुपए की पूँजी लगायी जा चुकेगी तथा भारत के प्रत्येक राज्य में रासायनिक उर्वरक उत्पादन के कारखाने हो जायेंगे।

प्रश्न

१ भारतीय मिट्टी की क्या समस्याएँ हैं ? भारतवर्ष में मिट्टी के कटाव की समस्या का वर्णन कीजिए। भारत सरकार ने इस समस्या को हल करने के लिए क्या कार्य किया है ? (राजस्थान, प्रथम वर्ष, १९६५)

२ भारत में कितने प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं ? संक्षिप्त परिचय दीजिए। उत्तरी मैदान में तथा दक्षिणी भारत में पायी जाने वाली मिट्टियों की विशेषता बताइए। (राजस्थान, पूरक परीक्षा, १९६६)

३ मिट्टी के कटाव के क्या कारण हैं ? इसके परिणामों की विवेचना कीजिए। मिट्टी के कटाव को रोकने के उपाय बताइए।

४ भारत में सन् १९५० के बाद से भूमि-क्षरण (Soil erosion) को रोकने के लिए क्या उपाय किये गये हैं ? (राजस्थान, १९६६)

अध्याय ६

भारतीय वन

(FORESTS IN INDIA)

वनों का प्रकृति के उपहारों में विशिष्ट स्थान है। ये राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। इनसे अनेक मुख्य तथा गौण वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। मकान, वस्त्र तथा भोजन सम्बन्धी आवश्यकताएँ वन वस्तुओं से पूरी की जा सकती हैं। उद्योगों के लिए इनसे कच्चा माल प्राप्त होता है। ये लकड़ी के विशाल भण्डार होते हैं जिनसे इमारती लकड़ी तथा अन्य वस्तुएँ बनाने के लिए लकड़ी प्राप्त की जाती है। देश की समृद्धि के लिए वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्राचीन काल से ही मानव और वनों का साथ रहा है। आज की आर्थिक प्रगति में वन आवश्यक हैं। इतना होते हुए भी वनों का शोषण बहुत अविवेकपूर्ण ढंग से किया गया है। वन लगातार विनष्ट हो रहे हैं। आरम्भ में पृथ्वी के एक चौथाई भाग में वन थे परन्तु अब केवल १५ प्रतिशत भाग में ही वन रह गये हैं। वनों का ह्रास प्राकृतिक शक्तियों, मानव तथा जीवधारियों द्वारा होता है।

प्राकृतिक वनस्पति को तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है— (१) घास, (२) वन, (३) झाड़ियाँ। इन तीनों में वन अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रचलित अर्थ में वन, प्राकृतिक वनस्पति का वह भाग है जिसमें वृक्षों तथा पौधों का समूह होता है। जिन भागों में घास एवं झाड़ियों की अपेक्षा पेड़ पौधों की प्रधानता होती है उस वन क्षेत्र कहा जाता है। यद्यपि वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से घास एवं झाड़ियाँ भी वनों के ही विभिन्न रूप माने गये हैं। भारत में प्राकृतिक वनस्पति के उपरोक्त तीन भाग उपलब्ध हैं। घास तथा झाड़ियाँ तो साधारणतः सभी भागों में पाये जाते हैं परन्तु वन सभी भागों में नहीं पाये जाते। वनों की सघनता तापक्रम, वर्षा, वायु, धरातल की बनावट, मिट्टी आदि विभिन्न तत्त्वों पर निर्भर करती है।

दक्षिणी भारत उष्ण कटिबन्ध में स्थित है तथा उत्तरी भारत गरम समशीतोष्ण कटिबन्ध के अन्तर्गत आता है। हिमालय पर्वत के कुछ भाग शीत कटिबन्ध के अन्तर्गत आते हैं। कुछ भाग शुष्क हैं तो कुछ भाग अधिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं।

जिन भागों में तापक्रम अधिक है तथा वर्षा भी अधिक होती है वहाँ घने जंगल पाये जाते हैं। भारत में वनस्पति में काफी विषमता है क्योंकि विभिन्न भागों के धरातल की बनावट तथा जलवायु भिन्न है। इस भिन्नता के आधार पर भारत में कुल वन प्रदेशों का ९३ प्रतिशत उष्ण कटिबन्धीय वनों के अन्तर्गत तथा शेष ७ प्रतिशत शीतोष्ण वनों में आता है।

वनों का आर्थिक महत्त्व

नदियों, मिट्टी तथा खनिज की भाँति वन देश की अमूल्य सम्पत्ति हैं। आवागमन के साधनों तथा कृषि में काम में आने वाले अनेक औजार वनों की लकड़ी से बनाये जाते हैं। कुछ उद्योगों के लिए इनसे कच्चा माल उपलब्ध होता है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वनों से होने वाले लाभों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो भागों में विभक्त किया जा सकता है

(क) प्रत्यक्ष लाभ

(१) उत्तम लकड़ी की प्राप्ति—वनों से कठोर तथा कोमल दो प्रकार की लकड़ी प्राप्त होती है। कठोर लकड़ियों में ऐसी अनेक लकड़ियाँ हैं जो बहुमूल्य होती हैं। बहुमूल्य लकड़ियों में सागवान, शीशम, चीड़ तथा देवदार आदि भारत में उपलब्ध हैं। भारत में कोमल लकड़ी के स्रोत कोणधारी वन हैं। इस लकड़ी का भी काफी महत्त्व है। लकड़ी बक्सों, खोखे आदि के लिए कोमल लकड़ी उत्तम होती है। भारत में सागवान और साल मानसूनी वनों के वृक्ष हैं जिनकी लकड़ी इमारती कामों और फर्नीचर बनाने में प्रयोग की जाती है। साल की लकड़ी का प्रयोग रेल विभाग द्वारा स्लीपरों के रूप में किया जाता है। चीड़ की लकड़ी को दियासलाई के काम में लेते हैं तथा पैकिंग के लिए प्लाईवुड, तख्ते, बक्स आदि भी इससे बनाये जाते हैं।

(२) चरागाह—भारत में वन चरागाह के भी काम आते हैं। पशुओं को इनसे भोजन प्राप्त होता है। वन, ये लगभग ३ करोड़ पशुओं को चराने की सुविधा प्रदान करते हैं। भारत में जिन भागों में घास के चरागाहों का अभाव है वहाँ जंगलों में पशुओं को चराया जाता है। जिन भागों में घास के मैदान हैं वहाँ पर पशु पालन व्यवसाय बहुत उन्नत होता है।

(३) वन उपज—वनों से मनुष्य को अनेक मुख्य तथा गौण वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। भारत में वनों से लगभग ६० करोड़ रुपये के प्रमुख उत्पादन और लगभग ११ करोड़ रुपये के गौण उत्पादन प्रतिवर्ष प्राप्त होते हैं। प्रमुख उत्पादन में इमारती लकड़ी एवं जलाने की लकड़ी सम्मिलित है तथा गौण उत्पादनों में अनेक उत्पादन आते हैं जैसे लाख, कत्था, गोंद, रेशम, चमड़ा रंगने के पदार्थ आदि अनेक उपयोगी पदार्थ।

(४) जड़ी बूटियाँ—भारत में अनेक वृक्ष, झाड़ियों तथा घासों से जड़ी बूटियाँ मिलती हैं जिनको औषधियों के काम में लेते हैं। यहाँ आयुर्वेदिक औषधियाँ इन्हीं से तैयार की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप मलेरिया ज्वर [illegible] काम में [illegible]

कुनेन काफी अच्छी औषधि है। यह औषधि, सिनकोना नामक वृक्ष की छाल से बनायी जाती है। इसके अलावा अनेक प्रकार की औषधियाँ वनो से प्राप्त होती है। अनुमान लगाया गया है कि भारत मे लगभग ५०० प्रकार के विभिन्न वृक्षो से औषधि निर्माण उद्योगो को कच्चा माल प्राप्त होता है। भारतीय वनो म पायी जाने वाली सर्पगन्धा से रक्त चाप एव हृदय व्याधियो का उपचार किया जाता है। आयुर्वेद मे काम आने वाली जडी-बूटियाँ हिमालय पर्वतीय प्रदेश मे पायी जाती है। इनमे से अनेक जडी-बूटियो का निर्यात भी होता है तथा अनुसन्धान के बाद एलोपैथी चिकित्सा मे भी इनकी उपयोगिता सिद्ध हो रही है। अनेक प्रकार की सुगन्धित घासें, जडें, पत्ते आदि से सुगन्धित तेलो का निर्माण हो रहा है जो प्रसाधन सामग्री बनाने वाले कारखानो मे कच्चे माल के रूप म प्रयुक्त होता है तथा विदेशों मे निर्यात भी होता है। पामरोजा तथा खस इसके दो प्रमुख उदाहरण है।

(५) उत्तम खाद—वनो मे वृक्षो की पत्तियाँ गिरकर मिट्टी को उपजाऊ बनाती हैं। मिट्टी मे जो वनस्पति अश मिला होता है वह पेड और पौधो की पत्तियो का सडा-गला रूप होता है। जिन भागो मे कृषि होती है और वहाँ वृक्ष हैं तो उनकी पत्तियो तथा डालियो से खाद बनती है जिनमे मिट्टी की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि होती है।

(६) सरकारी आय—सरकार को वनो से काफी आय होती है। वर्ष १९७० मे भारत सरकार को ४० करोड रुपये की आय वनो से हुई। इस आय मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। केन्द्रीय सरकार वनो को टेके पर देती है तथा आय प्राप्त करती है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें भी वनो से प्रत्यक्ष आय प्राप्त करती हैं।

(७) जीविका के साधन—वनो से विभिन्न प्रकार के मुख्य तथा गौण उपजो को प्राप्त करने के लिए श्रमिको की आवश्यकता पडती है। लकडी काटने, चीरने तथा ढोने के लिए श्रमिक कार्य करते हैं। इसके अलावा गौण उपजो को इकट्ठा करने के लिए भी मजदूरो की आवश्यकता पडती है। भारत मे वनो मे लगभग ४ लाख व्यक्तियो को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त है।

(८) राष्ट्रीय आय में योगदान—देश की राष्ट्रीय आय मे भी वनों का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्ष १९६८-६९ के अनुमानो के आधार पर वनो का राष्ट्रीय आय म प्रत्यक्ष योगदान १.५ प्रतिशत है।[1] इस वर्ष वनो से राष्ट्रीय आय म ४४९ करोड रुपये का योगदान मिला।

(ख) अप्रत्यक्ष लाभ

भारत म वनो के अप्रत्यक्ष लाभ निम्न प्रकार हैं:

(१) वर्षा—वनो से जलवायु मे कुछ परिवर्तन हो जाता है जो कि वर्षा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वनो मे नमी निकलती है जो कि वायुमण्डल मे फैल

1 *India*, 1970, p 169.

जाती है। इस नमी के कारण तापमान गिर जाता है और जब वाष्पयुक्त बादल वनों के ऊपर से होकर गुजरते हैं तो ठण्ड पाने लगते हैं और वर्षा करने लगते हैं। अत वन वर्षा को आकर्षित करते हैं।

(२) बाढ़ पर नियन्त्रण—वन बाढ़ पर नियन्त्रण दो प्रकार से करते हैं। प्रथम, जब पानी बहता है तो उसे वृक्षों की जड़ें सोख लेती हैं। दूसरे, पेड़ पौधों की जड़ें पानी के बहाव की गति को कम कर देती हैं जिससे बाढ़ पर नियन्त्रण होता है। बाढ़ पर नियन्त्रण होने से जन तथा धन की हानि नहीं होती है अत इस क्षेत्र में भी वनों का काफी महत्त्व है।

(३) मिट्टी के कटाव पर रोक—मिट्टी का कटाव तेज आंधियों तथा पानी के वेग से होता है। तेज आंधियों से मिट्टी का कटाव होता है। प्रथम, पेड़ों की वजह से वायु तथा पानी का वेग कम हो जाता है तथा दूसरे, मिट्टी के बहने पर भी पेड़ पौधे रुकावट डालते हैं। पेड़ों और पौधों की डालियों और जड़ों द्वारा मिट्टी को रोक लिया जाता है। पेड़ पौधों के आवरण से रहित मिट्टी वायु के साथ उड़ने एवं पानी के साथ बहने लगती है।

(४) पशु सम्पदा—पशु वनस्पति पर आधारित होते हैं। वनों में कई प्रकार के जंगली जानवर पाये जाते हैं जिनको मारकर मांस तथा चमड़ा प्राप्त किया जाता है। इसके अलावा प्राकृतिक वनस्पति से पालतू पशु भी अपना भोजन प्राप्त करते हैं जिनका कि आर्थिक महत्त्व है।

(५) सुन्दर दृश्य एवं पर्यटन का विकास—वन प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ाते हैं। पेड़ों और पौधों की सुन्दर पत्तियां मनमोहक लगती हैं। ग्रीष्म ऋतु में वन प्रदेशों की सैर बहुत आनन्ददायक होती है। नम और छायादार वातावरण में मनुष्य टोली बनाकर या जोड़ों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द उठाते हैं। उत्तर प्रदेश का 'कोर्बेट नेशनल पार्क' विदेशी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त काश्मीर एवं हिमालय के वनाच्छादित प्रदेशों एवं मैसूर और केरल के वनों में भी विदेशी पर्यटक शिकार के लिए जाना पसन्द करते हैं।

(६) प्राकृतिक सीमा—वन दो पर्वतीय देशों के बीच ऐसी सीमा बनाते हैं जिसको पार करना कठिन होता है। इससे सुरक्षा में मदद मिलती है। भारत और बर्मा के मध्य भारत की सीमा वनों द्वारा बनायी गयी है। इस प्रकार के वनों से स्थल व्यापार में बाधाएँ आती हैं परन्तु सुरक्षा व्यवस्था में अधिक धन व्यय नहीं करना पड़ता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वन मानव को भोजन, वस्त्र, निवासगृह तथा सुरक्षा प्रदान करते हैं। वनों के वृक्षों से लकड़ी प्राप्त करके मनुष्य उसको कई रूपों में परिवर्तित करता है। मनुष्य अपनी सुविधा की सामग्री इन्हीं लकड़ियों से बनाता है जैसे कुर्सी, मेज, सन्दूक, अलमारी आदि। कुछ उद्योगों को वनों से कच्चा माल प्राप्त होता है। अत: वनों का आर्थिक महत्त्व है। कागज, दियासलाई, प्लाईवुड,

औषधियां, तारपीन तेल से लेकर वस्त्रो के लिए कृत्रिम रेशे के निर्माण मे वन सहयोग देत हैं।

भारत मे वनो के प्रकार

वनो की सघनता निम्न तत्वों पर आधारित है—(१) तापक्रम, (२) वर्षा, (३) वायु, (४) प्रकाश, (५) धरातल की बनावट, (६) मिट्टी आदि। भारत के जिन क्षेत्रो मे उपरोक्त तत्व अनुकूलतम अवस्था मे हैं उन क्षेत्रो म वनस्पति सघन हैं। यहाँ जलवायु, मिट्टी तथा धरातल की विभिन्नता के कारण वनस्पति के प्रकार मे भी काफी भिन्नता है। जिन भागों मे वर्षा अधिक होती है तथा तापमान भी बहुत ऊँचा है वहाँ वनस्पति स्थूल और सघन है। इन स्थानो पर लम्बे, मोटे तथा बहुत पास-पास वृक्ष होत हैं। भारत के कुछ भागो म वर्षा का अभाव है अत. शुष्क वन पाये जाते हैं।

वनो के वर्गीकरण के कई आधार हैं जैसे स्थिति, पत्तियों का आकार तथा हरे-भरे रहन की अवधि। स्थिति के आकार पर वनो को उष्ण कटिबन्धीय वन तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय वनो मे विभक्त किया जाता है। उष्ण कटिबन्धीय वन कर्क एव मकर रेखा के बीच के क्षेत्रो मे पाये जाते हैं। इन वनो की लकडियां प्रायः कठोर होती हैं तथा जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ प्राय. अत्यन्त घने वन पाये जाते हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह होती है कि इनम पेड पौधो की किस्मो म बहुत अधिक विविधता होती है। एक वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र मे कभी-कभी ६० विभिन्न प्रकार के पड पौधे पाये जाते हैं। वनो की सघनता और पडो की किस्मो की विविधता के कारण ऐसे वनो के विकास एव उपयोग मे अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। भारत के सदाबहार वन एव मानसूनी वन उष्ण कटिबन्धीय वनो के उत्तम उदाहरण हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय वन प्राय ३०° से ६०° अक्षांश के बीच के क्षेत्रों मे पाये जाते हैं। इनकी लकडी मुलायम होती है जिनमे औद्योगिक उपयोग के लिए इस लकडी की लुग्दी सरलता से बनायी जा सकती है। इन वनों मे वृक्षो की किस्मो (Species) मे बहुत अधिक विविधता नही होती है, इसलिए इन्हें काटने और लान ले जाने मे सरलता रहती है। कोणधारी वन इन्हीं क्षेत्रो में पाये जाते हैं। वृक्षो की पत्तियो के आधार पर भी वनो को विभाजित किया जाता है जैसे चौडी पत्ती वाले वन (Deciduous Forests) तथा नुकीली पत्ती वाले या कोणधारी (Coniferous) वन।

उपरोक्त वर्गीकरणो मे किसी एक आधार को ध्यान मे रखकर वनो का वर्गीकरण किया है। भारत म जो विभिन्न प्रकार की वनस्पति पायी जाती है उसे हम उपरोक्त सभी तथ्यो के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। भारतीय वनो का वर्गीकरण प्रमुखत वर्षा के मात्रा की न्यूनता तथा अधिकता से बहुत प्रभावित हुआ है। यद्यपि वनो के प्रकारो पर समुद्रतल से ऊँचाई का प्रभाव भी पडता है। नीचे भारतीय वनो के प्रमुख प्रकारों का विस्तार मे वर्णन किया गया है

(१) सदाबहार वन (Evergreen Forests)

सदाबहार के वन अधिक वर्षा तथा ऊँचे तापक्रम वाले भागों में पाये जाते
हैं। भारत में जिन भागों में वार्षिक २०० सेमी० वर्षा तथा औसत वार्षिक तापमान
लगभग २५° सें० ग्रे० होता है वहाँ यह वनस्पति पायी जाती है। ताप और नमी की
प्रचुरता के कारण इन वनों के वृक्ष वर्ष भर हरे-भरे रहते हैं। वृक्षों की पत्तियाँ चौड़ी
होती हैं और लकड़ी बहुत कठोर होती है। वृक्ष बहुत पास-पास उगते हैं और उनके
बीच में घास तथा विभिन्न प्रकार की लताएँ वृक्षों पर चढ़ जाती हैं। इन वृक्षों की
ऊँचाई ४० मीटर से भी अधिक होती है। इन वनों में रबड़, सिनकोना, महोगिनी,
एबोनी, ताड़, बाँस तथा हलमा के वृक्ष पाये जाते हैं। ये वन दक्षिणी भारत में
महाराष्ट्र, केरल, मैसूर आदि राज्यों के कुछ भागों में विस्तृत हैं। उत्तरी पूर्वी भारत
के गारो, खासी, लुशाई तथा जयन्तिया पहाड़ियों में यह वनस्पति पायी जाती है।
हिमालय पर्वत के तराई भागों में भी कहीं-कहीं इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।
इन वनों को उष्ण कटिबन्धीय पर्वतीय वन कहा जाता है। इन वनों के वृक्ष सदाबहार
वनों से कम ऊँचे होते हैं तथा अधिक पास पास नहीं होते अतः अधिक घने नहीं
होते। ये वन दक्षिण के पठारी भाग में ६०० मीटर से १,५०० मीटर तक की ऊँचाई
तक मिलते हैं। निचले भागों में वृक्ष कुछ ऊँचे होते हैं परन्तु ऊँचे भागों में वृक्षों की
लम्बाई कुछ कम होती है। ये वन अधिकतर नीलगिरि, अन्नामलाई, इलायची की
पहाड़ियों तथा पश्चिमी घाट क्षेत्रों में मिलते हैं। ये महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश के
कुछ क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में हिमालय के पूर्वी भागों में ६००
मीटर से १,८०० मीटर की ऊँचाई तक इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।

(२) पतझड़ी या मानसूनी वन (Deciduous or Monsoon Forests)

उष्ण कटिबन्ध में मानसूनी वन उन भागों में मिलते हैं जहाँ १०० सेमी
से २०० सेमी तक वार्षिक वर्षा होती है। मानसूनी वन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु में
वर्षा होती है और शीतकाल शुष्क रहता है अतः ये वन वर्ष भर हरे भरे नहीं रहते।
ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ होते ही इन वनों के वृक्ष अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं इसीलिए
इनको पतझड़ी कहा जाता है। जिन दिनों में वृक्ष पत्ते गिराते हैं उन दिनों को पतझड़
भी कहा जाता है। पतझड़ के पश्चात् पुनः इन वृक्षों पर नयी पत्तियाँ निकलती हैं
और हरियाली होने लगती है। वर्षा की बहुत अधिकता न होने के कारण वृक्ष अधिक
पास-पास नहीं होते और घने वन नहीं होते। वृक्षों के नीचे विभिन्न प्रकार की घास
पायी जाती है। भारत में इन वनों का काफी विस्तार है। पंजाब के पूर्वी भाग से
लेकर उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर,
केरल तथा मद्रास (तामिलनाडु) आदि भागों में फैले हुये हैं। इन वनों में साल,
सागवान, आम, शीशम, पीपल, बरगद, नीम, साखू, कुसुम, हल्दू, पलाश, बेंत, बाँस,
चन्दन, जामुन, बाँस, कत्था तथा महुआ आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इन वृक्षों में अनेक
वृक्ष ३० मीटर से ऊँचे होते हैं। ये बड़े मूल्यवान होते हैं और व्यापार में अधिक

वनो को सुरक्षित कर रखा है। इन वृक्षो की लकड़ी रेल के स्लीपर, डिब्बे, जहाज, मकानो आदि मे काम मे आती है।

(३) शुष्क या मरुस्थली वन (Dry Forests)

कांटेदार वन कम वर्षा वाले क्षेत्रो मे पाये जाते हैं। इन वनों के वृक्षो के कांटे पाये जाते हैं अत उन्हें कांटेदार वन कहा जाता है। वर्षा के अभाव मे वृक्ष पास-पास न होकर दूर-दूर होते हैं तथा कम ऊँचे होते हैं। पानी के अभाव के कारण वृक्षों की जड़ें काफी लम्बी होती हैं जो पृथ्वी के अन्दर से जल लेकर इनको जीवित
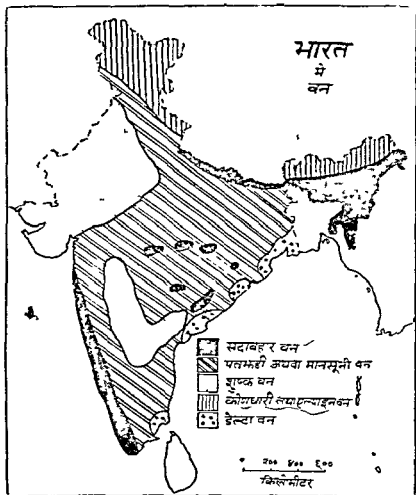
रखती हैं। जल की कमी सहन करने के लिए अधिकतर पेड़ और झाड़ियाँ कटीली होती हैं। जिन भागों में ५० सेण्टी मीटर मे कम वर्षा होती है वहाँ झाड़ियों की अधिकता होती है। शुष्क भागो मे दूर-दूर तक झाड़ियाँ पायी जाती हैं। इसके

अतिरिक्त जिन भागों में ५० सेन्टी मीटर से १०० सेन्टी मीटर तक वर्षा होती है वहाँ उष्ण घास के क्षेत्र पाये जाते हैं। इन भागों में लम्बी घासें तथा बड़ी बड़ी घने पेड़ पाये जाते हैं। इन प्रदेशों की वनस्पति अफ्रीका के सवाना प्रदेश की वनस्पति से काफी मिलती-जुलती है।

इन वनों में घास में सरकण्डा, सवाई घास, कास, आदि तथा वृक्षों में सेजडा, बबूल, कीकर, नागफनी, और रीठा, नीम, पीपल, आम तथा खजूर आदि पाये जाते हैं। उष्ण घास उत्तर में पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण में प्रायद्वीप के शुष्क भागों में ये वन पाये जाते हैं।

(४) कोणधारी एवं एल्पाइन वन (Coniferous of Alpine Forests)

कोणधारी वन शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। इस प्रकार के वनों के वृक्षों की पत्तियाँ सुईनुमा होती हैं और चिकनी होती हैं। चिकनी पत्तियों पर वर्षा का कम प्रभाव पड़ता है। वृक्षों के शिखर भी नुकीले होते हैं और उनका आकार कोण जैसा होता है। वृक्षों तथा पत्तों के नुकीले होने के कारण इन वनों को कोणधारी वन कहा जाता है। वन प्रदेशों में न तो तापमान ऊँचा होता है और न ही अधिक वर्षा होती है। वृक्ष नुकीले होने के कारण तथा पत्तियों के नुकीले और चिकने होने के कारण शीत का वृक्षों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। ये वन सघन नहीं होते हैं। वृक्षों की लकड़ियाँ कोमल होती हैं अतः इनको "शीतोष्ण कोमल लकड़ी के वन" भी कहा जाता है। इन वनों के मुख्य वृक्ष चीड़, स्प्रूस, फर, वर्च, देवदार आदि हैं। ये वन उत्तरी भारत में हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में पश्चिम में १,५०० मीटर से ३,६०० मीटर तक पाये जाते हैं। पूर्वी हिमालय में २,४०० मीटर से ३,६०० मीटर की ऊँचाई तक कोणधारी वन पाये जाते हैं।

हिमालय पर्वत पर विभिन्न ऊँचाइयों पर जिस प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। इसे एल्पाइन वनों (Elpine Forests) के नाम से सम्बोधित किया जाता है क्योंकि इसी प्रकार की वनस्पति यूरोप के आल्पस (Alps) पर्वत पर भी पायी जाती है और आल्पस पर्वत के नाम पर ही इस प्रकार के वनों का नाम पड़ गया है। यह शीतोष्ण कटिबन्ध की वनस्पति है और ऊँचाई के साथ-साथ इसमें भिन्नता दिखायी देती है। डेढ़ हजार मीटर के नीचे के ढालों पर प्रायः चौड़ी पत्ती वाले वन मिलते हैं। इससे ऊपर १,५०० से ३,६०० मीटर ऊँचे पर्वतीय ढालों पर कोणधारी वन (Coniferous Forests) मिलते हैं जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। ३,६०० मीटर से लगभग ५,००० मीटर की ऊँचाई तक केवल झाड़ियों एवं पुष्पों के पौधे मिलते हैं और उससे ऊपर 'हिम रेखा' (Snow line) आ जाती है। उससे ऊपर पेड़ पौधे नहीं उग सकते हैं और ये चोटियाँ सदैव हिमाच्छादित रहती हैं। इतना अवश्य है कि शीत ऋतु में हिम रेखा कुछ नीचे आ जाती है तथा ग्रीष्म ऋतु में यह कुछ ऊपर चली जाती है।

इन शीतोष्ण वनो का व्यापारिक एव औद्योगिक महत्त्व बहुत अधिक है। इनकी लकडी नर्म होती है जो लुग्दी (Pulp) बनाने के काम आती है और अनेक उद्योगो मे उपयोग की जाती है। ऊँचाई के कारण भारत मे इन वनों को काटकर लकडी को कारखानो तक लाना एक कठिन काय है। इन वनो में आवागमन के साधनों की कठिनाई प्रमुख है जो इनके विकास में बाधक है। प्राय ऊँचाई पर इन पेडो के तनो को काटकर तेज बहने वाल नदी नालों मे डाल दिया जाता है। इन बहते हुए लट्ठों को निकाल कर तराई क्षेत्र मे स्थित लकडी चीरने के कारखानों में काम मे लाया जाता है।

(५) डेल्टा वन या ज्वार प्रदेश (Delta or Tidal Forests)

य वन समुद्रतटीय भागा म पाय जाते हैं जहाँ मिट्टी दलदली होती है तथा समुद्र मे ज्वार भाट के कारण समुद्र तट पर पानी आ जाता है। भारत में ये वन गगा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के डेल्टा प्रदेशो में पाये जाते हैं। ये वन पश्चिमी बगाल, उडीसा, आन्ध्र तथा मद्रास राज्यो में पाये जाते हैं। वृक्षों की जडें यहाँ नमकीन पानी म डूबी रहती हैं इनकी ऊँचाई २५ से ३० मीटर तक होती है। डेल्टा प्रदेश मे सुन्दर वन भी पाये जाते हैं। मुख्य वृक्ष ताड, नारियल, पाम, बाँस, बेंत आदि हैं।

इनके अतिरिक्त नदियों के किनारों पर पानी उपलब्ध हो जाने के कारण वृक्ष पाये जाते हैं। यहाँ वृक्ष ऊँचे तथा कहीं-कहीं घने होते हैं। इन्हें नदी तट के वन (Riverine forests) कह सकते हैं। नदियों के किनारे शीशम, जामुन, खैर, बबूल, इमली आदि वृक्ष पाये जाते हैं। उत्तर के मैदानी भाग में नदियो के किनारे इस प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। ये वन वस्तुतः सदाबहार अथवा मानसूनी वनों की श्रेणी में ही आ सकते हैं।

कुछ विद्वानो ने वनो के प्रकारों का वर्णन करते हुए कृषि योग्य भूमि को पृथक रूप से दिखाया है। वस्तुत मानवीय आवश्यकताओं के दबाव के कारण अनेक स्थानों पर वनों को काट-काट कर खेत बना लिए गये हैं यह प्रक्रिया अब भी जारी है। उडीसा की दण्डकारण्य योजना एव उत्तर प्रदेश की तराई खादर योजना इसके उत्तम उदाहरण हैं। मानसूनी वनों के क्षेत्रों में तो कुछ हजार वर्ष पूर्व बहुत वन थे किन्तु धीरे-धीरे मानव उन्हें काट-काट कर कृषि भूमि में परिणित करता गया। यही दशा सदाबहार के वनों के कुछ क्षेत्रों में है जैसे पश्चिमी बगाल में। यदि इन क्षेत्रों में कृषि बन्द कर दी जाय तो कुछ ही वर्षों में पुनः यहाँ वन उग आयेंगे किन्तु अब इन क्षेत्रों में वन केवल वहीं रह गये हैं जो क्षेत्र मानव उपयोग के अयोग्य है अथवा अभी किसी कारण से कटने से वचित रह गये हैं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर वनो के प्रकार को स्पष्ट किया गया है। कुछ क्षेत्रो में मिश्रित वन भी पाय जाते हैं। दो प्रकार या इससे भी अधिक वनस्पति इन क्षेत्रों में पायी जाती है।

वनों का प्रशासनिक वर्गीकरण

ब्रिटिश कालीन वन नीति के आधार पर भारतीय वनों को निम्न भागों में विभक्त किया गया :

(१) सुरक्षित वन (Reserved Forests)

ये वन सरकार द्वारा सुरक्षित हैं। इनमें बहुमूल्य इमारती लकड़ी पायी जाती है। इन वनों में लकड़ी काटना तथा पशु चराना पूर्णतः वर्जित होता है। सरकार के नियन्त्रण में सूखे वृक्षों को काटा जा सकता है। सरकार इन वनों की रक्षा भी करती है। लगभग ४५ प्रतिशत वन क्षेत्र सुरक्षित वनों के अन्तर्गत आता है।

(२) संरक्षित वन (Protected Forests)

इन वनों का संरक्षण सरकार द्वारा होता है। इमारती तथा अन्य प्रकार की बहुमूल्य लकड़ी के कारण इन वनों का भी काफी आर्थिक महत्व है। इन वनों में सरकार की आज्ञा से लकड़ी काटी तथा पशु चराये जा सकते हैं। कुल वनों का ३४ प्रतिशत क्षेत्र संरक्षित वनों के अन्तर्गत आता है।

(३) अवर्गीकृत वन (*Unclassified Forests*)

ये वन स्वतन्त्र वन हैं। सरकार इन वनों को ठेके पर दे देती है और ठेके पर लेने वाले वनों का उपयोग अपनी इच्छानुसार करते हैं। इन वनों का क्षेत्र कुल वनों का लगभग २१ प्रतिशत है। ग्रामीण जनता को कृषि कार्यों के लिए ऐसे वनों से लकड़ी काटने की छूट होती है।

भारत सरकार ने १९५२ की नवीन वन नीति के अन्तर्गत भारतीय वनों को निम्न भागों में बाँटा है :

(१) राष्ट्रीय वन (National Forests)—देश की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये वन आवश्यक होते हैं। सुरक्षा, उद्योग, यातायात आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति इन वनों से की जाती है। सरकार वर्तमान स्थिर क्षेत्रों को संरक्षण प्रदान करती है। इन वनों की लकड़ी को उचित काम में लाने का भी सरकार प्रयत्न करती है।

(२) संरक्षित वन (Protected Forests)—इन वनों को सरकार संरक्षण प्रदान करती है। देश की जलवायु अथवा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए इन वनों को संरक्षण दिया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों, नदियों के किनारों, घाटियों तथा अन्य कृषि अयोग्य भूमि में वन लगाये जाते हैं और वर्तमान वनों की रक्षा की जाती है।

(३) ग्राम्य वन (*Village Forests*)—ग्राम्य क्षेत्रों के वनों को इनमें सम्मिलित किया जाता है। शहरों के निकट भी वनस्पति पायी जाती है इसको भी इन्हीं वनों के अन्तर्गत लिया जाता है।

(४) वृक्ष निकुन्ज (Tree Lands)—वृक्ष निकुन्जो को भी देश की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आवश्यक समझा जाता है।

भारत मे वन उपजें

वनो से अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जिनको दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है :

(क) मुख्य उपजें, (ख) गौण उपजें।

(क) मुख्य उपजें (Major Products)

वनो से विभिन्न प्रकार की लकडियां प्राप्त होती हैं। इन लकडियों को मुख्य उपजो के अन्तर्गत रखा जाता है जो निम्न प्रकार हैं :

(१) सागवान (Teak)—सागवान की लकडी मानसूनी वनों के वृक्षों से प्राप्त होती है। यह मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, उडीसा, पश्चिमी घाट तथा नीलगिरि पहाडियो आदि में सागवान के वृक्ष पाये जाते हैं। हिमालय के निचले ढालों पर भी सागवान के वृक्ष पाये जाते हैं। यह बहुत मजबूत और टिकाऊ होती है अतः इसे फर्नीचर, जहाज तथा रेल के डिब्बे बनाने के काम मे लेते हैं। सागवान की लकडी ४७ हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल मे उपलब्ध है।

(२) शीशम—मानसूनी वनो की द्वितीय महत्वपूर्ण लकडी शीशम की है। यह भी मजबूत और कठोर होती है। इसे रेल के डिब्बे, नाव, फर्नीचर, मकान, फर्श तथा सन्दूक बनाने के काम मे लेते हैं। शीशम की लकडी का रग भूरा होता है। यह पश्चिमी बगाल, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पूर्वी पजाब तथा कहीं-कहीं आसाम में भी पायी जाती है।

(३) साल (Sall)—साल भी मानसूनी वनों का महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह कठोर तथा भूरे रग की होती है। इसका प्रयोग रेलवे के स्लीपरों, रेल के डिब्बों, लकडी की पेटियो, पुल बनाने आदि मे किया जाता है। साल के वृक्ष उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, मध्य प्रदेश, मद्रास तथा उडीसा मे पाये जाते हैं। हिमालय प्रदेश के निचले भागो मे ये वृक्ष उत्तर प्रदेश से आसाम तक पाये जाते हैं। इस लकडी के वनो का क्षेत्रफल एक लाख वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है।

(४) देवदार (Deodar)—देवदार कोणधारी वनो का वृक्ष है। इसकी लकडी मजबूत तथा मूल्यवान होती है जो कि तेल युक्त और सुगन्धित होती है। यह हिमालय प्रदेश के लगभग ५ हजार वर्ग किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र मे पाया जाता है। देवदार वृक्ष जम्मू व काश्मीर, पजाब की पहाडियां तथा हिमाचल प्रदेश के पहाडी भागों में पाया जाता है। इसकी लकडी रेलवे स्लीपर बनाने के काम आती है।

(५) सनोवर—सनोवर भी कोणधारी वन का वृक्ष है। इसकी पत्तियां भी नुकीली होती हैं। यह हिमालय प्रदेश मे २,१०० से ३,००० मीटर तक पाया जाता

है। इस वृक्ष की लकड़ी मुलायम होती है जो कि दियासलाई, कागज की लुग्दी हल्की पेटियाँ, तख्ती आदि के काम आती है।

(६) चीड़ (Pine)—चीड़ का वृक्ष कोणधारी वनों में पाया जाता है। यह काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के १,००० मीटर से २००० मीटर की ऊँचाई तक यह वृक्ष पाया जाता है। चीड़ की लकड़ी से चाय व साबुन की पेटियाँ बनायी जाती हैं। इसमें कुछ गौण उपजें भी प्राप्त होती हैं।

(७) महुआ (Mahua)—यह लकड़ी मजबूत होती है जिसे काटने में कठिनाई होती है। यह मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भागों में पायी जाती है। छोटे नागपुर के पठार में इसके काफी वृक्ष पाये जाते हैं।

(८) चन्दन—चन्दन की लकड़ी बहुत मूल्यवान होती है। इसके वृक्ष अधिकतर दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं। इस लकड़ी को धार्मिक कामों तथा कलात्मक वस्तुएँ बनाने के काम में लाया जाता है इसके अतिरिक्त तेल भी निकाला जाता है।

(९) बबूल—बबूल उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन का वृक्ष है। यह राजस्थान के अधिकतर भागों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। इसको जलाने के काम में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान हलों आदि के काम में भी लाते हैं। इसकी छाल चमड़ा रंगने के काम आती है।

(१०) हल्दू—हल्दू भारत के अधिकतर भागों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी फर्नीचर आदि बनाने के काम में आती है।

उपरोक्त सभी प्रकार की लकड़ियों को विभिन्न कामों में लिया जाता है। भारत में इमारती लकड़ी ईंधन तथा अन्य प्रकार की लकड़ी का उत्पादन किया जाता है। वर्ष १९६४-६५ में लगभग ५९ करोड़ रुपये का उत्पादन हुआ। भारत में मुख्य उपजों का वितरण निम्न प्रकार है:

इमारती लकड़ी और ईंधन का उत्पादन

(हजार घन मीटर)

वर्ष	इमारती लकड़ी	गोल लकड़ी	लुग्दी और दियासलाई की लकड़ी	ईंधन	कोयले की लकड़ी	कुल योग	कुल मूल्य (हजार रुपए)
१९५०–५१	२,९९२	८२७	१३	११,११६	७८१	१५,७८९	१,६०,८०७
१९५५–५६	३,३६४	७२०	४२	९,२३३	१,५७६	१४,९६५	२,३६,८८२
१९६०–६१	४,५९४	७५४	८०	११,३२१	२९३	१७,०४१	४,६८,५०८
१९६३–६४	६,५४३	५६६	१४	१२,२९९	२२७	१९,६३९	५,९४,५०२
१९६४–६५	५,९३६	५११	१२	१२,५७४	१८६	१९,२११	५,८५,६१०

(*Source—India, 1970*)

उपरोक्त तालिका के आधार पर स्पष्ट है कि सन् १९५०-५१ की तुलना मे १९६४-६५ मे तीन गुने से भी अधिक मूल्य की उपज हुई। चतुर्थ पचवर्षीय योजना प्रारम्भिक रूप रेखा के आधार पर औद्योगिक लकडी का वर्तमान उत्पादन ८० लाख क्यूबिक मीटर है। वर्ष १९७३-७४ तक इस लकडी की मांग १७० लाख क्यूबिक मीटर हो जायगी। इसे पूरा करने के लिए चतुर्थ योजनाएँ में वन विकास के कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए विशेष प्रयत्न करना होगा।

गौण उपजें

विभिन्न प्रकार की लकडियों के अतिरिक्त भारतीय वनो से अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इनमे प्रमुख विभिन्न प्रकार के रेशे, बिरोजा, गोद, लाख, रबड राल तथा चमडा रगने की छालें हैं। भारत मे विभिन्न प्रकार के वनो से लगभग ३,००० से भी अधिक प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं। मुख्य गौण उपजें निम्नलिखित हैं.

(१) लाख—लाख लेसीफर लक्का' (Leccifer lacca) नामक कीडे से निकले हुए रस को जमा कर तैयार किया जाता है। यह कीडा जिसे लाख का कीडा भी कहा जाता है कुसुम, गूलर, बरगद, खैर, मीखू, फालसा, बर, घोट तथा पलाश इत्यादि पेडों की डालियो मे रहता है। वनो मे रहने वाली जगली जातियाँ इन वृक्षो की डालियो से लाख इकट्ठा करती हैं। इस कच्चे माल को फैक्टरियों मे साफ किया जाता है जिसे शुद्ध लाख (Shellac or Seed Lac or Button Lac) कहा जाता है। शुद्ध लाख चपडी, विद्युत कुचालक (Insulators), फ्रेम आदि मे काम आता है।

भारतीय मानसूनी वनो मे इसके कीडे के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। यहाँ विश्व का तीन-चौथाई लाख पैदा किया जाता है। अधिकतर लाख नागपुर के पठार पर प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त बिहार के पूर्वी भाग, पश्चिमी बगाल, आसाम, उडीसा तथा मध्य प्रदेश मे लाख के कीडे पालने के वृक्ष पाये जाते हैं। सन् १९६९-७० मे लाख का कुल उत्पादन लगभग ३० हजार मीट्रिक टन था। उत्पादन का ९० प्रतिशत से भी अधिक भाग निर्यात किया जाता है। यहाँ से लाख का निर्यात अमरीका, जर्मनी, इगलैण्ड, जापान, फ्रास, ब्राजील, स्वीडन, रूस, अर्जेण्टाइना, इटली आदि को किया जाता है।

(२) रबड—रबड उष्ण कटिबन्धीय वनों मे पाया जाता है। रबड एक विशेष वृक्ष के रस (latax) से प्राप्त किया जाता है जिसमे अनेक वस्तुएँ बनती हैं। रबड के वृक्ष के तनो पर खांचे बनाकर रस सग्रह किया जाता है और इसको गर्म कर के फिर ठण्डा किया जाता है। कारखानो मे शुद्ध करके विभिन्न वस्तुएँ बनायी जाती हैं। दक्षिणी भारत मे केरल मे रबड के वृक्ष पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास, मैसूर, आसाम और अण्डमान द्वीप मे भी रबड का उत्पादन किया जाता है। केरल

में कुल उत्पादन का ८५ प्रतिशत, मद्रास में १२ प्रतिशत तथा शेष भागों में ३ प्रतिशत रबड़ उत्पादित किया जाता है।

(३) चमड़ा कमाने के पदार्थ—भारत में कई प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी छाल चमड़ा रंगने या कमाने में काम आते हैं। चमड़ा रंगने के पदार्थ उष्ण कटिबन्धीय और शीतोष्ण कटिबन्धीय दोनों प्रकार के वनों में पाये जाते हैं। वनों से प्राप्त होने वाले पदार्थ माइरा बोलन, बबूल, मैंग्रोव, गरजेरा, आंवला, हर्रबहेड़ा टीमरू, सुन्दर आदि हैं। भारत में राजस्थान व मध्य प्रदेश में शुष्क वनों में बबूल का पेड़ पाया जाता है जिसकी छाल चमड़ा कमाने के काम आती है। मैंग्रोव वृक्ष भारत के नदियों के डेल्टा प्रदेशों में पाया जाता है। माइराबोलन मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र, उड़ीसा तथा मद्रास राज्यों में प्राप्त होता है। माइराबोलन के फलों को सुखाकर चमड़ा रंगने के काम में लाया जाता है।

(४) बांस और बेंत—बांस के वृक्ष अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इससे कागज की लुग्दी बनायी जाती है और अन्य कामों में भी आता है। भारत में यह आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि भागों में पाया जाता है। पैकिंग या रैपिंग पेपर इससे बनाया जाता है।

उष्ण तथा नम जलवायु के वनों में लचीली शाखाओं वाले वृक्ष पाये जाते हैं। इन शाखाओं को बेंत कहा जाता है। इनको टोकरियों, अलमारियों आदि के काम में लाते हैं। नदियों के डेल्टा भागों तथा कश्मीर घाटी में भी बेंत काफी पायी जाती है। भारत में प्रति वर्ष लगभग दो करोड़ रुपये मूल्य का बांस एवं बेंत वनों से प्राप्त होता है।

(५) तारपीन का तेल और बिरोजा—चीड़ और नीला पाइन वृक्षों से रस प्राप्त किया जाता है उससे तारपीन का तेल बनाया जाता है और जो पदार्थ शेष बचता है वह बिरोजा होता है। तारपीन के तेल को औषधियों, कृत्रिम कपूर, इट-पालिश तथा वार्निश में काम में लाया जाता है। बिरोजे को ग्रामोफोन रिकार्ड, स्याही, कागज तथा साबुन बनाने के काम में लाया जाता है। भारत में कुमायूँ पहाड़ी पर लगभग वृक्षों से रेजिन प्राप्त करके उससे तारपीन का तेल निकाला जाता है। हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में १,५०० से ४,५०० मीटर तक की ऊँचाई तक चीड़ के वृक्ष पाये जाते हैं जिनसे ये पदार्थ मिलते हैं।

(६) कत्था तथा सुपारी—कत्था तथा सुपारी को पान में काम में लाया जाता है। कत्था खैर के वृक्ष से प्राप्त किया जाता है जो कि भारत में हिमालय का तराई प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान में उपलब्ध है। सुपारी के वृक्ष पश्चिमी बंगाल तथा पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान में पाये जाते हैं।

(७) कागज की लुग्दी—विभिन्न प्रकार की वनस्पति जैसे घास तथा बांस से कागज की लुग्दी तैयार की जाती है। पश्चिमी बंगाल, आसाम, उत्तर प्रदेश, छोटा नागपुर, उड़ीसा आदि भागों में उपलब्ध घासों से लुग्दी बनाई जाती है।

(८) गोंद—गोंद, साल, बबूल, आम, बड तथा अन्य कई प्रकार के वृक्षो से प्राप्त किया जाता है। इसके वृक्ष राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश तथा आसाम मे पाये जाते हैं।

(९) जडी-बूटियाँ—उष्ण कटिबन्धीय वनो मे अनेक प्रकार के वृक्ष तथा पौधों मे जडी-बूटियाँ मिलती हैं, जिनसे औषधियाँ तैयार की जाती हैं। भारत में अनेक जडी-बूटियाँ उपलब्ध हैं जिनसे आयुर्वेदिक औषधियाँ बनायी जाती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय वनों मे विभिन्न प्रकार की ५०० जडी-बूटियाँ पायी जाती हैं।

(१०) रेशे—वृक्षो तथा पौधो के रेशों से रस्सियाँ, चटाइयाँ, पालकी आदि वस्तुएँ बनायी जाती हैं। नारियल के रेशे से रस्सियाँ बनायी जाती हैं और इनको गद्दे भरने, सीट बनाने के काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त भारत मे सरकण्डे से मूँज तैयार की जाती है। यहाँ आक की झाडियो तथा सेमल वृक्षों से रेशे प्राप्त किये जाते हैं जिनको गद्दो तथा तकियों में काम मे लाया जाता है। नारियल के वृक्ष केरल, महाराष्ट्र तथा मैसूर मे पाये जाते हैं। सरकण्डे के वृक्ष राजस्थान, पजाब तथा उत्तर प्रदेश मे पाये जाते हैं।

(११) गर्म मशाले—गर्म मशाले उष्ण कटिबन्धीय वन प्रदेशों में पाये जाते हैं। इन वनों मे तेज पत्ता, इलाइची, पीपल सोंठ, जीरा आदि उपलब्ध होते हैं जिनको दवाइयो के काम मे लिया जाता है। ये अधिकतर दक्षिणी भारत मे पाये जाते हैं।

वर्ष १९५०-५१ मे गौण उपज का मूल्य लगभग ६ करोड ९२ लाख रुपये था जबकि वर्ष १९६४-६५ मे इनका मूल्य १५ करोड ८६ लाख रुपये था।[1] गौण उपजो का उत्पादन लगातार बढ रहा है।

वनो से प्राप्त मुख्य तथा गौण उपज अनेक उद्योगों मे कच्चे माल के रूप में काम मे ली जाती हैं। भारत मे निम्नलिखित उद्योग वनों पर आधारित हैं :

(१) कागज उद्योग,
(२) दियासलाई उद्योग,
(३) औषधि निर्माण उद्योग,
(४) पेण्ट तथा वार्निश,
(५) लाख उद्योग,
(६) फर्नीचर उद्योग,
(७) प्लाईवुड उद्योग,
(८) नारियल से सम्बन्धित उद्योग,
(९) खिलौने बनाने का उद्योग,
(१०) रेशम उद्योग,
(११) चमडा उद्योग।

उक्त उद्योग आंशिक रूप मे अथवा पूर्णरूप से वनों पर आधारित हैं।

भारत सरकार की वन नीति

भारत सरकार ने सन् १९५२ में राष्ट्रीय वन नीति घोषित की। इस नीति

---

1 *India*, 1970

के अन्तर्गत वनों के विकास तथा उनके समुचित प्रयोग के लिए कुछ सिद्धान्त अपनाये गये। इन सिद्धान्तों में प्रमुख, उपयुक्त सुविधाओं के स्थान पर वन विकास, वनों के विनाश को रोकना, नदियों के किनारों और बेकार पड़ी भूमि पर वृक्ष लगाना, मिट्टी के कटाव को अथवा रेगिस्तान के बढ़ाव को वृक्षारोपण करके रोकना, वनों की रक्षा करना तथा वनों से स्थायी तथा अधिक आय प्राप्त करना।

भारत सरकार की वन नीति के प्रमुख उद्देश्य वन साधनों का दीर्घकालीन विकास तथा ईंधन और इमारती लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करना है। सन् १९५२ की वन नीति में भारत की समस्त भूमि के ३३ ३ प्रतिशत क्षेत्र में वन लगाने का लक्ष्य रखा गया, जबकि इस समय लगभग २३ प्रतिशत क्षेत्र में वन पाये जाते हैं। इस नीति के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों में ६० प्रतिशत भागों में और मैदानी क्षेत्र में २० प्रतिशत भागों में वन संरक्षण, आरक्षण तथा विस्तार का लक्ष्य था। इस वन नीति के आधार पर वनों को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है :

(१) सुरक्षित वन (Protected Forests),
(२) राष्ट्रीय वन (National Forests),
(३) गाँवों के वन (Village Forests),
(४) वृक्ष निकुंज (Tree Lands)।

इन वनों का वर्णन पहले किया जा चुका है।

पंचवर्षीय योजनाओं में वन विकास

भारत सरकार की वननीति के आधार पर पंचवर्षीय योजनाओं में वनों का विकास किया जा रहा है। योजनाओं के आधार पर विकास निम्न प्रकार है :

(१) प्रथम पंचवर्षीय योजना एवं वन

प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने से पूर्व सन् १९५० में भारत सरकार ने केन्द्रीय वन बोर्ड बनाया। योजना चालू होने के पश्चात् सन् १९५२ में वननीति की घोषणा की। प्रथम योजना के शेष वर्षों में इस नीति के आधार पर विकास के प्रयत्न किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ६·४ करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस काल में वन शिक्षा, वन अनुसन्धान तथा वन यातायात पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३ हजार मील लम्बी सड़कों के किनारे वृक्षारोपण किया गया। वर्ष १९५०-५१ में वनों के अन्तर्गत क्षेत्र ७,१८,०१० वर्ग कि० मीटर था, जो कि १९५५-५६ में घट कर ७०३,६६१ वर्ग कि० मीटर हो गया। सुरक्षित वन और संरक्षित वनों के क्षेत्र में क्रमशः ११ हजार तथा ५० हजार वर्ग कि० मीटर वृद्धि हुई परन्तु श्रेणी रहित वनों में काफी कमी हुई। चौड़ी पत्तियों वाले वृक्षों में साल तथा सागवान के वृक्षों के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई।

(२) द्वितीय पंचवर्षीय योजना और वन

द्वितीय योजना म वन विकास पर ११.३ करोड रुपय व्यय किय गय। इस योजना में वनों व अन्तर्गत क्षेत्रफल म स सरक्षित वना व क्षेत्रफल म वृद्धि हुई जो कि ७,२०,१२१ वर्ग कि० मीटर थी। इस योजना म वनो की पुनर्व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया गया। नुकीली पत्तो वाल वृक्षा का क्षेत्रफल १९५५-५६ म २५,२१६ वर्ग कि० मीटर था जो कि १९६०-६१ तक ४४,३११ वर्ग कि० मीटर हो गया। साल और सागवान जो कि चौडी पत्ती वाल वृक्ष हैं, इनक क्षेत्रफल में भी वृद्धि हुई। प्रथम योजना के अन्त में साल तथा सागवान क वृक्षो का क्षेत्रफल क्रमश १,०८,३८६ तथा ५८,१३२ वग कि० मीटर था जबकि द्वितीय योजना के अन्त मे क्षेत्रफल क्रमश १,१३,५०६ तथा ८७,५०३ वग कि० मीटर हो गया।

द्वितीय योजना के अन्त मे वनो स प्राप्त इमारती, ईंधन तथा अन्य प्रकार की लकडी का मूल्य लगभग ५० करोड रुपय वार्षिक था जबकि प्रथम योजना के अन्त मे इसका मूल्य लगभग २८ करोड रुपय था। गौण उपज, द्वितीय योजना के अन्त तक लगभग ११ करोड रुपये वार्षिक थी जबकि प्रथम योजना के अन्त मे लगभग ८ करोड रुपय थी।

(३) तृतीय पचवर्षीय योजना और वन

तृतीय पचवर्षीय योजना मे वनो क विकास पर लगभग ५१ ४ करोड रुपय का आवटन किया गया था जबकि अनुमानित व्यय लगभग ४७ करोड रुपये था। इस काल मे वनो का विस्तार, सर्वेक्षण, चरागाहो का विकास, वन के जन्तुओ की रक्षा, वन अनुसन्धान व प्रशिक्षण, सडको का निर्माण तथा वन प्रबन्ध पर अधिक जोर दिया गया।

तृतीय योजना मे राज्यो के वन विकास कार्यक्रमो म कृषि वनो एव औद्योगिक लकडी के वनो का विस्तार, निम्नकोटि के वनो का पुनस्थापन आदि सम्मिलित किये गये। इस योजना मे एक विशेष कार्यक्रम (Special Programme) बनाया गया जो कि तेजी मे बढन वाल वृक्षो को उगान का था। तजी से बढने वाले पेडो का जो कि दियासलाई, प्लाइवुड, कागज की लुग्दी तथा बोर्ड उद्योगो म उपयुक्त समझे गय, तेज विकास का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। तृतीय योजना के अन्त तक इस विशेष कार्यक्रम पर ३ ७० करोड रुपय व्यय किय गय जो कि लगभग ८४ ८०० हेक्टयर भूमि के क्षेत्र के अन्तगत थे। इस योजना म लाभपूर्ण वन लगान का लक्ष्य ३ ४ लाख हेक्टयर क्षेत्र म था जिस पूरा किया गया। योजना के अन्त तक वन फार्म ३० हजार हेक्टयर क्षेत्र म थे। २०५ लाख हेक्टेयर भूमि मे पौध सरक्षण किया गया।

तीसरी योजना म १९६५ म सयुक्त राष्ट्र की विशेष निधि मे वित्तीय सहायता प्राप्त करक वन साधनो का निवशपूर्ण सर्वेक्षण और लट्ठे काटन एव प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना क लिए दो परियोजनाएँ चालू की गयी हैं।

(४) वार्षिक योजनाएँ (१९६६-६९) (Annual Plans)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के स्थगित हो जाने पर वार्षिक योजनाओं में वन विकास कार्यक्रम चालू रहे। वर्ष १९६६-६७ में वनों की उत्पादकता बढ़ाने के तरीके अपनाने में अधिक गति प्रदान की गयी। इस वर्ष में पौधे लगाने, वनों में संचार व्यवस्था, कृषि वन, ईंधन की लकड़ी के वृक्ष, वन साधनों का सर्वेक्षण और लट्ठे काटने की विधि में सुधार के प्रयत्नों पर विशेष ध्यान दिया गया। इस वर्ष में लाभपूर्ण वनों जैसे साल, सागवान, सीमू तथा अन्य वृक्षों के क्षेत्रफल में ४६ हजार हेक्टेयर वृद्धि होने का अनुमान है जिसमें लागत का अनुमान ३.६५ करोड़ रुपये है। इसके अतिरिक्त वर्ष १९६७-६८ में ६० हजार हेक्टेयर भूमि में तेजी से बढ़ने वाले पेड़ लगाये गये। संयुक्त राष्ट्र संघ की वित्तीय सहायता से चालू किये गये कार्यक्रमों के अन्तर्गत ४८ प्रशिक्षण कार्यक्रम चालू किये गये और ५०० व्यक्तियों को आधुनिक विधियों को काम में लाने का प्रशिक्षण दिया गया। तीन एक वर्षीय योजनाओं में ४४ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

(५) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि और उद्योगों की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वन वस्तु आवश्यकताओं को पूरा करने पर विशेष जोर दिया जायगा। इस योजना में शीघ्र बढ़ने वाले तथा आर्थिक तथा औद्योगिक महत्व के वन उपजों का उत्पादन बढ़ाया जाने का लक्ष्य है। चतुर्थ योजना में निम्न कार्यक्रम किये जायेंगे।

(१) तेजी से बढ़ने वाले वृक्ष लगाना,

(२) लाभपूर्ण वृक्ष लगाना,

(३) वनों की पुनर्स्थापना तथा वर्तमान वनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना।

इन तीनों कार्यक्रमों के अतिरिक्त अधिक लकड़ी के पेड़ लगाने के प्रस्ताव रखे गये हैं जिनमें भूमि संरक्षण कार्यक्रमों के लिए वनों में फार्म तथा वन उगाने के कार्यक्रम सम्मिलित हैं। सन् १९५१ से १९६६ तक और उसके बाद वन विकास के लिए किये गये व्ययों का विवरण इस प्रकार है :

तृतीय, तीन वार्षिक तथा चतुर्थ योजना में वन विकास पर व्यय के मद

योजनाएँ	इकाई	प्रावधान
१. तृतीय पंचवर्षीय योजना (१९६१-६६)	करोड़ रुपए	४६.००
२. तीन वार्षिक योजनाएँ (१९६६-६९)	करोड़ रुपए	४४.००
३. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९६९-७४)	करोड़ रुपए	९२.५५

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रथम दो पचवर्षीय योजनाओं में वन विकास का कार्य विशेष प्रगति नहीं कर सका। किन्तु सन् १९६१ के बाद से इस पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। चतुर्थ योजना में इसके लिए किया गया प्रावधान तृतीय योजना में किये गये वास्तविक व्यय से लगभग दो गुना है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे शीघ्र बढने वाले पेड और पौधे ३,४०,००० हेक्टेयर मे लगाने का लक्ष्य रखा गया है। लाभपूर्ण पेड व पौधे, जो कि औद्योगिक एव व्यापारिक काम मे आयेंगे, २,०० ००० हेक्टेयर मे और वन फार्म व ईंधन-काठ के पेड पौधे ७५,००० हेक्टयर मे लगाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

उक्त विवरण मे भारत सरकार के वन विकास कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया है। केन्द्रीय वन बोर्ड के निश्चय के आधार पर वन क्षेत्र के विकास में समन्वय (coordination) कार्य के लिए एक केन्द्रीय वन कमीशन की स्थापना का प्रस्ताव है। आशा है चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे अधिक विकास किया जायेगा।

भारतीय वनो की असन्तोषजनक दशा के कारण

भारतीय वनों की दशा असन्तोषजनक है। वनों की देश में कमी है। औद्योगिक लकडियो की पूर्ति बहुत कम है। वनों की दयनीय दशा के कारण वन वस्तुओं का उत्पादन कम होता है। वनों की इस असन्तोषजनक दशा के निम्न-लिखित कारण हैं :

(१) वनों का विनाश—वनो का विनाश अथवा ह्रास होने के कारण उनकी स्थिति असन्तोषजनक है। मनुष्य, प्राकृतिक शक्तियो तथा अन्य जीवधारियो द्वारा वनो का ह्रास होता है। वनो मे वृक्षों के अनेक प्रकार के रोग फैल जाते हैं जिनसे वृक्षो मे क्षीणता आने लगती है और कुछ समय पश्चात् वे समाप्त हो जाते हैं। वनों मे अनेक प्रकार के कीट (Insects) पाये जाते हैं जो कि वृक्षो की लकडी मे छेद कर देते हैं।

कभी-कभी तूफानो, वनो मे वृक्षों की पारस्परिक रगड से अग्नि तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों स भी वनो का विनाश होता है। कभी-कभी वनो मे प्रचण्ड आग भी लग जाती है जिसे दावानल' कहा जाता है। जब यह फैलती है तो बहुत बडे क्षेत्र के वनों का नाश कर देती है। उत्तरी भारत के पश्चिमी भागो में तेज आँधियों तथा पूर्वी भागों मे बाढ से भी वृक्षों का ह्रास होता है।

मनुष्य के दुर्व्यवहार से भी वनों का विनाश होता है। भारत मे निजी स्वार्थों के लिए वनो का विनाश किया जाता है। लकडी काटने में असावधानी की जाती है। वनों मे छोटे बडे सभी पेडों को काटा जाता है। पशुओं द्वारा अधिक चराई द्वारा भी वनो का विनाश होता है।

(२) अपर्याप्तता—भारत मे वन क्षेत्र २२ प्रतिशत है जो कि बहुत कम है। सरकारी वन नीति के अन्तर्गत ३३ प्रतिशत क्षेत्र मे वनों का होना आवश्यक

बतलाया गया है। इस अपर्याप्तता के कारण वनों की स्थिति अच्छी नहीं है जिससे लकड़ी की माँग की पूर्ति नहीं हो पा रही है।

(३) वनों के प्रबन्ध सम्बन्धी बाधाएँ—भारत में वन प्रबन्ध के लिए कुशल और प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है। प्रबन्ध कुशलता के अभाव में वनों का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। प्रबन्ध कुशलता के अभाव में वनों की उत्पादकता में सुधार सम्भव नहीं है।

(४) वनों का असमान वितरण—वनों में एक प्रकार के वृक्ष समूहों में नहीं पाये जाते हैं। ये बिखरे हुए हैं। एक जगह के वनों में वृक्षों की विभिन्नता पायी जाती है जो कि आर्थिक दृष्टि से अच्छी नहीं मानी जाती। वनों का भौगोलिक वितरण भी समान नहीं है कुछ भागों में जहाँ वर्षा अधिक होती है वन घने हैं जबकि कुछ प्रदेशों में वनों का सर्वथा अभाव है। राजस्थान में दूर-दूर तक झाड़ियाँ दिखायी पड़ती हैं जबकि पूर्वी हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी घाट के ढालों पर, छोटा नागपुर का पठार आदि भागों में सघन वन पाये जाते हैं।

(५) हिमालय के वनों का प्रयोग न हो पाना—हिमालय पर्वत पर अधिक ऊँचाई वाले भागों में वनों को काम में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि यातायात अथवा सचार के साधनों का अभाव पाया जाता है। कोणधारी वनों में कई प्रकार की उपयोगी लकड़ी प्राप्त हो सकती है परन्तु अधिक ऊँचाई वाले भागों से लकड़ी को लाने में कठिनाई होती है। पूर्वी हिमालय के कुछ भागों में घने वन पाये जाते हैं जिनमें भी यातायात के साधनों का अभाव पाया जाता है अतः लकड़ी के उपयोग में बाधा आती है।

(६) वन अनुसन्धान संस्थाओं का अभाव—भारत में वन अनुसन्धान संस्थाओं का अभाव है। इनके अभाव के कारण वन सम्बन्धी शोध कार्य नहीं हो पाते हैं। वृक्षों के रोगों की रोकथाम नहीं हो पाने के कारण वन रक्षा नहीं हो पाती है। इसके अलावा वन अनुसन्धान कार्य में काफी शिथिलता नजर आती है। देश के विभिन्न भागों में ऐसी संस्थाओं का अभाव है। अब तक देहरादून में 'वन अनुसन्धान केन्द्र' नामक प्रसिद्ध संस्था ही इस क्षेत्र में अन्वेषण का काम करती रही थी। अब देश के अन्य क्षेत्रों में भी वन अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त संस्थाएँ खोली जा रही हैं।

(७) सचार के अपर्याप्त साधन—भारत में वनों के बहुत बड़े क्षेत्र में सचार के साधन अपर्याप्त हैं जिसके कारण लकड़ी को काटकर एक जगह से दूसरी जगह भेजने में अधिक खर्चा पड़ता है। वनों में सड़कों का अभाव है और इनके अभाव में यातायात के साधनों का भी अभाव है।

(८) लकड़ी काटने के प्राचीन तरीके—भारत में लकड़ी काटने के अभी तक प्राचीन तरीके काम में लाये जाते हैं जिन पर व्यय अधिक होता है। लट्ठे काटने व

वैज्ञानिक तरीके और प्रशिक्षण कार्यों के अभाव मे वनो मे लकड़ी उपलब्ध होते हुए भी उत्पादन नही बढ़ता।

(९) *किस्मो की अधिकता (Multiplicity of Species)*—*यह* पहले भी कहा जा चुका है कि उष्ण कटिबन्धीय वनो मे थोड़े से क्षेत्र मे अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं *जिससे वनो को काटने मे मशीनीकरण आदि का उपयोग अत्यन्त कठिन* हो जाता है। वहाँ एक वर्ग किलोमीटर मे साठ विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे तक मिल जाते हैं जबकि शीतोष्ण कटिबन्धीय वनो मे मीलों तक दो-चार प्रकार के पेड पौधों की ही प्रधानता होती है। इसके *अतिरिक्त कोणधारी वनो को* छोड़ कर अथवा साल, सागवान, शीशम जैसे कुछ वृक्षो के अतिरिक्त भारतीय वनो मे सीधे लम्बे तनो वाले वृक्षों का अभाव होता है। छोटे टेढे-मेडे वृक्ष इमारती लकड़ी का काम नही दे सकते। *वे तो ईंधन के काम मे लाये जा सकते हैं।*

(१०) लकडी जलाना—भारत मे लकडी जलाने की प्रथा अधिक प्रचलित है। अतः प्रतिवर्ष वन क्षेत्र नष्ट होता जाता है। अभी तक भारत मे कोयले का *उपयोग कम हो पा रहा है।* देहातो में *अधिक लकडी जलाई जाती है। वन भागो* मे रहने वाले काफी लकड़ियो के ढेरो को जलाते हैं। जलाने के लिए तेल तथा भोजन बनाने इत्यादि के लिए बिजली एव प्राकृतिक गैस का उपयोग अब बढ रहा है। अतः भविष्य मे लकडी जलाने की आवश्यकता कम होती जायेगी।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय वनो की दशा असन्तोषजनक है। इस स्थिति को सुधारने के लिए यद्यपि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सरकार ने काफी प्रयत्न किये हैं फिर भी सन्तोषजनक सुधार नही हो पाया है।

उन्नति के सुझाव

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे वनों के रक्षण तथा विकास के नवीन प्रयत्न करने चाहिए। अब तक जो प्रयत्न किये गये हैं उन्हे गति प्रदान करना नितान्त आवश्यक है। *कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्न प्रकार हैं :*

(१) शीघ्र उगने और बढ़ने वाले पेड़ लगाना—भारत मे औद्योगिक लकडी *एव ईंधन की कमी की पूर्ति करने के लिए शीघ्र उगने व बढ़ने वाले पेड़ो को अधिक* मात्रा मे लगाना चाहिए। *यद्यपि तृतीय पचवर्षीय योजना मे तेजी से बढ़ने वाले पेड़ो* के लिए विशेष कार्यक्रम बनाया गया और इस दिशा मे प्रगति भी की गयी, फिर भी चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस तरफ और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

(२) *वनो का रक्षण—वनों का ह्रास रोकने के लिए वन-रक्षण कार्यक्रम* प्रारम्भ किये जाने चाहिए। कीटनाशक औषधियो को छिड़ककर हानिकारक कीटो को नष्ट किया जा सकता है। विस्तृत वन भागो मे वायुयानो द्वारा दवाएँ छिड़कनी चाहिए। वन भागों के पास गुजरने वाली रेलो के इजनो मे *इस प्रकार की व्यवस्था*

(६) वन अनुसन्धान सस्थाएँ—भारत मे वन अनुसन्धान सस्थाएँ अधिक विकसित होनी चाहिए जिनसे शोध कार्य सम्भव हो सके। विभिन्न लकडियो के उपयोग सम्बन्धी सर्वेक्षण होने चाहिए। वन अनुसन्धान सस्थाओ द्वारा शोध कार्य करना या उनके सुधारो के आधार पर वन विकास किया जाना चाहिए। इस समय देहरादून और बगलौर मे वन अनुसन्धान शालाएँ कार्यशील हैं।

भारत मे वन विकास के लिए 'वन महोत्सव' कार्यक्रम स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी की प्रेरणा से सन् १९५० मे प्रारम्भ किया गया जबकि वे भारत के खाद्य मन्त्री थ इसका उद्देश्य जन साधारण को वृक्षारोपण की आवश्यकता के प्रति जागरूक करना है। वन महोत्सव से वन विकास मे काफी मदद मिल सकती है। भारत म वन महोत्सव वर्षा आरम्भ होत ही विभिन्न राज्यो मे जुलाई या अगस्त मे मनाया जाता है। इससे पिछले बीस वर्षों मे नगरों, गाँवो, अस्पतालो, शिक्षण एव अन्य सस्थाओ के आस-पास पडी खाली भूमि मे वृक्षारोपण करके वन विकास मे सहयोग मिला है। इसके अतिरिक्त अन्य सुझाव जो पहले बताये गये हैं, उनको ध्यान म रखकर विकास करना चाहिए ताकि चतुर्थ पचवर्षीय योजना के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। वन विकास की भावी सम्भावनाएँ आशाजनक हो सकती हैं यदि वन-रक्षण तथा नये वन लगाने का कार्यक्रम तेजी से पूरा किया गया। यद्यपि जनसख्या के भार के बढने के साथ-साथ अधिक भूमि मे खेती करनी होगी और फिर भी बेकार भूमि, नदियों के किनारो आदि स्थानो पर वन लगाये जा सकते हैं चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे शीघ्र बढने वाले पेड-पौधो के अधिक विकास का उद्देश्य रखा गया है। आशा है इस उद्देश्य की पूर्ति अच्छी तरह हो सकेगी।

प्रश्न

१ भारतीय वनो के भौगोलिक वर्गीकरण का विवेचन करिए। भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे उनका क्या महत्व है। (टी० डी० सी०, १९६९)

२. भारतीय वनो के पिछडेपन के कारण बताते हुए पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत उनके विकास के लिए किये गये कार्यो का वर्णन कीजिए। भविष्य में इनके विकास के लिए क्या प्रयत्न किये जाने चाहिए। (टी० डी० सी०, १९६६)

३ भारतीय वनों की हीन दशा के क्या कारण हैं ? वनो की उन्नति के उपायो पर प्रकाश डालिए। (टी० डी० सी०, १९६५)

४ भारत मे वन सम्पदा का वर्णन करते हुए बताइए कि हमारे राष्ट्र को वनों से क्या लाभ हैं ? इन पर कौन से उद्योग आश्रित हैं ? (राज०, बी० कॉम०, १९६४)

५ सन् १९५० से अब तक भारत की वन सम्पदा के विकास के लिए क्या किया गया है ? समस्याओ तथा सुझावो की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९७०)

अध्याय ७

भारत में पशु सम्पदा
(ANIMAL WEALTH IN INDIA)

कृषि प्रधान देशों में पशु सम्पदा का विशेष महत्व है। कृषि व्यवसाय एवं पशु पालन दोनों एक दूसरे से काफी प्रभावित हैं। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का प्रमुख योगदान होने के कारण पशु सम्पदा भी महत्वपूर्ण है। पशुओं से मनुष्य को भोजन, वस्त्र तथा उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध होता है। भारतीय कृषि तथा आवागमन के साधनों के रूप में पशु बहुत उपयोगी हैं। किसान खेती के साथ साथ अपनी आय बढ़ाने के लिए सहायक धन्धे के रूप में पशु पालन करते हैं। पशुओं से अनेक छोटी-मोटी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं जिन पर कुछ कुटीर-उद्योग आधारित हैं। पशुओं से प्राप्त चमड़े से जूते, बैग, सूटकेस, सीटें, पट्टे आदि विभिन्न वस्तुएँ बनायी जाती हैं। इनसे प्राप्त हड्डियों के चूरे को खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। पशुओं से प्राप्त गोबर का प्रयोग कम्पोस्ट की खाद बनाने में किया जाता है तथा उसे ईंधन के रूप में भी जलाया जाता है। जंगली पशुओं की खालों से अनेक उपयोगी पदार्थ बनाये जाते हैं। शीतोष्ण एवं ध्रुव प्रदेशीय जीव जन्तुओं के मुलायम समूर (Fur) जर्सी, ओवरकोट, दस्तानें, टोपी आदि के बनाने के काम में आते हैं।

पशु सम्पदा से दूध, माँस, अण्डे तथा जीविज रेशे (Animal Fibres) प्राप्त होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की आय बढ़ाने का तथा रोजगार का यह प्रमुख साधन है। भारत में अनेक स्थानों पर पशुओं द्वारा हल चलाया जाता है, बोझा ढोया जाता है तथा आवागमन के साधन के रूप में इनका उपयोग किया जाता है। पशुओं से प्राप्त जीविज रेशों से ऊन, बाल तथा समूर की प्राप्ति होती है जिन पर कई उद्योग आधारित हैं। भारत में संसार के एक तिहाई पशु पाये जाते हैं, परन्तु पशु धन की स्थिति अच्छी नहीं है। दूध देने वाले पशुओं की दूध देने की क्षमता बहुत कम है।

पशु सम्पदा का महत्व

पशु सम्पदा राष्ट्रीय आय में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन है। कृषि उद्योग तथा व्यापार में पशुओं का योग है। ग्रामीण क्षेत्रों में ये रोजगार प्रदान करते हैं और किसानों की आय बढ़ाने में मदद देते हैं। जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है, पशुओं

से भोजन, वस्त्र तथा औद्योगिक कच्चा माल उपलब्ध होता है। पशुओं से प्राप्त लाभों का विवरण नीचे दिया गया है :

(१) दुग्ध जीव जगत से प्राप्त होता है। मनुष्य के भोजन के लिए यह आवश्यक समझा जाता है। इससे अनेक पदार्थ बनाये जाते हैं जैसे मक्खन, दही, घी, पनीर, मट्ठा तथा मिठाइयाँ आदि। दुग्धशाला उद्योग (Dairy Industry) इसी पर आधारित है। हमारे देश में मवेशियों की संख्या संसार में सबसे अधिक है और प्रतिवर्ष यहाँ लगभग २३० लाख टन से भी अधिक दूध उत्पन्न होता है। जनसंख्या अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति खपत ४ औंस दैनिक है जबकि अन्य देशों में यह इससे कहीं अधिक है।

(२) मनुष्य के भोज्य पदार्थों में मांस व अण्डे भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। वैसे देखा जाये तो अन्य देशों की तुलना में भारत में मांस कम प्रयोग में लाया जाता है और प्रायः पशु-पालन का दृष्टिकोण मांस प्राप्त करना न होकर दूध प्राप्त करना तथा कृषि एवं यातायात में सहायता लेना है। वन जाति के लोग आजकल भी मांसाहारी हैं। मुर्गी पालन व्यवसाय अण्डे प्राप्त करने के लिए उन्नत किया जा रहा है। इस प्रकार शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों ही प्रकार से पशु खाद्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

(३) जीविज रेशों में सबसे महत्त्वपूर्ण रेशा ऊन है। ऊन से कपड़ा, शाल, दुशाले, गलीचे, कम्बल आदि वस्तुएँ बनायी जाती हैं। भारत में लगभग ४ करोड़ २० लाख भेड़ें हैं। यहाँ प्रति वर्ष लगभग दो लाख क्विंटल स्वच्छ ऊन पैदा किया जाता है। मुख्यतः भारत में गडरिया जाति भेड़ पालन के व्यवसाय में संलग्न हैं किन्तु अन्य लोग भी अब इसे अपना रहे हैं।

(४) पशुओं के गोबर से खाद प्राप्त होती है जिससे मिट्टी की उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। इससे कृषि विकास में उन्नति हो सकती है। इनसे प्राप्त होने वाली हड्डियों से भी उत्तम प्रकार की खाद बनायी जा सकती है।

(५) पशु पालन व्यवसाय में बहुत से व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है। देहातों में किसान पशु पालन करके अथवा भेड़ बकरियाँ पालकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं क्योंकि अनेक क्षेत्रों में खेती से उन्हें पूरा रोजगार नहीं मिल पाता है।

(६) पशु कृषि कार्यों में सहायता प्रदान करते हैं। भारत में ये हल चलाने के काम में लाये जाते हैं। किसान हल चलाने के अतिरिक्त बोझा ढोने तथा कृषि पदार्थों को बाजारों तक पहुँचाने में पशुओं की मदद लेते हैं।

(७) भारत में पशु परिवहन के साधन के रूप में काम आते हैं। पश्चिमी राजस्थान में ऊँट सवारी, समान ढोने तथा ऊँटगाड़ी चलाने के काम में लाये जाते हैं। घोड़ा गाड़ी खींचने तथा सवारी के प्रयोग में आता है। बैल गाड़ी खींचने के काम में आते हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में पशु-सम्पदा का काफी महत्त्व है। पशु सम्पदा से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है। इससे पहले यह देखना आवश्यक है कि भारत में आर्थिक महत्त्व के प्रमुख पशु कौन से हैं।

भारत में पशु सम्पदा

भारत में यों तो अनेक पशु पाये जाते हैं परन्तु हमें यहाँ केवल आर्थिक महत्त्व के प्रमुख पशुओं का ही अध्ययन करना है। इनका विवरण निम्न प्रकार है :

(१) गाय तथा बैल—विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में गाय व बैलों की संख्या अधिक है। भारत में इस समय लगभग १७.६१ करोड़ गाय व बैल हैं। अधिकांश गाय-बैल उत्तरी भारत में उपलब्ध हैं। ये उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक हैं और इसके अतिरिक्त पंजाब, राजस्थान, गुजरात तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों में भी पाये जाते हैं। गाय बैलों की अच्छी नस्लों में साचोरी, हरियाणा, कांकरेज, राठी, नागोरी, मालवी तथा साहीवाल आदि हैं। राजस्थान के नागोरी बैलों तथा हरियाणा गायों की प्रसिद्धि समस्त भारत में है।

यद्यपि भारत में गाय बैलों की संख्या काफी है परन्तु उनकी दशा दयनीय है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारतीय गाय से कम दूध प्राप्त होता है। भारत में दुग्ध-काल में औसत एक गाय से केवल १८६ किलोग्राम दूध मिलता है जबकि पश्चिमी राष्ट्रों में अधिक दूध मिलता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में और विशेष रूप से कृषि व्यवसाय में गाय-बैलों का महत्त्व बहुत अधिक है। प्राचीन समय से ही ये कृषि जीवन का आधार रहे हैं।

(२) भैंस—भारत में लगभग ५.१ करोड़ भैंसें पायी जाती हैं जोकि विश्व की लगभग आधी हैं। भारत में प्रति भैंस से दूध का वार्षिक उत्पादन ५०० किलोग्राम प्राप्त होता है। भैंसों की कुछ किस्में मुर्रा, महसाना, रोहतक, जाफरबादी, नीली, सुरती, तेलंगाना, रावी, पंढारपुरी आदि प्रसिद्ध हैं।

भारत में सबसे अधिक भैंसें उत्तर प्रदेश में पायी जाती हैं जो कि कुल संख्या की २१ प्रतिशत हैं। इसके पश्चात् पंजाब व हरियाणा का स्थान आता है जहाँ १५ प्रतिशत भैंसें पायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार और आन्ध्र प्रदेश आते हैं। भारत में भैंसों से प्रतिवर्ष १ करोड़ टन से भी अधिक दूध प्राप्त होता है।

(३) भेड़ें—भारत में चार करोड़ से भी अधिक भेड़ें हैं। ये अधिकतर ठण्डे और शुष्क स्थानों में पायी जाती हैं। भेड़ों का ऊन प्राप्ति और मांस प्राप्ति, दो दृष्टियों से पाला जाता है। उत्तरी भारत की भेड़ों की ऊन की किस्म अच्छी होती है और इनके बालों का रंग सफेद होता है। भारत में भेड़ें अनेक प्रकार की पायी जाती हैं परन्तु उत्तम नस्लें काश्मीर, पंजाब और उत्तर प्रदेश में पायी जाती हैं।

भेड पालन के मुख्य क्षेत्र काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान तमिलनाड, मैसूर, महाराष्ट्र, गुजरात आदि हैं। पश्चिम के शुष्क भागों में भेडें अधिक पायी जाती हैं।

भारतीय भेडों से ऊन प्राप्ति प्रतिवर्ष लगभग १ किलोग्राम प्रति भेड है, जबकि आस्ट्रेलिया में प्रतिवर्ष, प्रति भेड ४ किलोग्राम ऊन की प्राप्ति होती है। हिमालय क्षेत्र में भेडों की नस्लकरण, गुरेज, मकरवाल, आदि हैं। पश्चिमी भारत में बीकानेरी, मारवाडी, कच्छी, लोही आदि नस्लें पायी जाती हैं और दक्षिण में जैलोर—नस्ल की भेडें पायी जाती हैं। राजस्थान में भारत की कुल भेडों की ३० प्रतिशत संख्या है। राजस्थान में अब आधुनिक ढंग के भेड पालन केन्द्रों का विकास किया जा रहा है।

(४) बकरियाँ—भारत में इस समय ६.६ करोड बकरियों का अनुमान है। बकरियों से दूध, बाल, मांस तथा चमडा उपलब्ध होता है। बकरियाँ साधारणतः भेडों के साथ पाली जाती हैं। एक अनुमान के आधार पर लगभग २० प्रतिशत बकरियाँ ही दूध के लिए पाली जाती हैं और शेष मांस के लिए पाली जाती हैं।

बकरियाँ भेडों की अपेक्षाकृत अधिक सहनशील होती हैं। ये अभावग्रस्त भागों में भी जीवन यापन कर लेती हैं। ये कम वर्षा तथा कम वनस्पति वाले भागों में भी काम चला लेती हैं। भारत में बकरियाँ राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, काश्मीर, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाड तथा मैसूर राज्यों में पाली जाती हैं। बकरियों की नस्लें द्वापर, कच्छी, सूरती, कोची, मालवारी, हिमालयी, बंगाली, बडवारी आदि प्रमुख हैं।

(५) ऊँट—ऊँट शुष्क और गर्म प्रदेशों में पाया जाता है। पानी के अभाव वाले भागों में पाया जाता है जहाँ यह कई रोज तक बिना पानी के रह सकता है। इसके पैर गद्दी दार होते हैं अतः रेगिस्तान या रेतीले भागों में यात्रा के लिए यह अत्यन्त उपयोगी हैं। ऊँट को रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। ऊँट, हल चलाने, सवारी करने बोझा ढोने तथा पानी खींचने के काम आता है। भारत में इनकी संख्या लगभग ६.१ लाख है।

(६) अन्य—इनके अतिरिक्त भारत में घोडे, खच्चर आदि पशु पाये जाते हैं जो कि काफी आर्थिक महत्त्व के हैं।

पशुओं से प्राप्त वस्तुएँ

पशुओं से निम्नलिखित वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं :

दुग्ध
(Milk)

भारत में दुग्ध गाय, भैंस तथा बकरी से प्राप्त किया जाता है। दूध से दही, घी, मट्ठा, पनीर, मक्खन आदि प्राप्त होता है। दुग्ध पर आधारित आजकल डेयरी

उद्योग (Dairy Industry) विकसित हो रहा है। भारत में दुग्ध उत्पादन लगातार बढ़ रहा है जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :

भारत में दूध का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख मीट्रिक टन)
१९५०-५१	१७०
१९५५-५६	१९०
१९६०-६१	२१०
१९६५-६६	२००
१९७०-७१	२३०
१९७३-७४ (लक्ष्य)	२५०

उपर्युक्त तालिका के आधार पर कहा जा सकता है कि दूध का उत्पादन निरन्तर बढ़ रहा है। जनसंख्या अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति दूध के उपयोग की मात्रा विश्व के अनेक देशों से कम है। बीस वर्ष पूर्व भारत में दूध की प्रति व्यक्ति दैनिक खपत चार औंस से भी कम थी जो सन् १९७१ में अब बढ़कर लगभग पाँच औंस हो गयी है। भारत में उपलब्ध दूध के लगभग ५२ प्रतिशत भाग को घी निकालने के काम में लाया जाता है। ३० प्रतिशत ताजा दूध तथा १८ प्रतिशत अन्य वस्तुएँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। उत्तर पश्चिमी भारत में दूध का प्रति व्यक्ति औसत उपयोग अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक है।

(I) दुग्ध उद्योग
(Dairy Industry)

भारत में दुग्ध उद्योग असंगठित दशा में है। व्यवस्थित दुग्धशालाएँ बहुत कम हैं। शहरी तथा देहाती क्षेत्रों में दूध के भावों में काफी अन्तर पाया जाता है। भारत में वृहत पैमाने की दुग्धशालाएँ अलीगढ़, आगरा, मैसूर, आनन्द, मेरठ, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास के निकट मधवराम, बम्बई के निकट आरे, भोपाल, कोयम्बटूर, चण्डीगढ़, त्रिवेन्द्रम, पटना, गया, जयपुर, हिसार, कटक और श्रीनगर आदि शहरों में स्थापित की गयी हैं।

भारत में इस समय ९१ व्यवस्थित दुग्धशालाएँ हैं जिनमें ४० तरल दुग्ध फार्म (Liquid Milk Plants), १० पाश्चराइज दुग्धशालाएँ, ४ दुग्ध पाउडर फैक्टरियाँ तथा ३ क्रीमरीज (Creameries) हैं। इनके अतिरिक्त ४१ अन्य दुग्ध योजनाएँ और ६ दुग्ध उत्पादन फार्म योजनाएँ कार्य रूप में परिणित हो रही हैं। वर्ष १९६९-७० में दैनिक दुग्ध उत्पादन (सभी डेयरी फार्मों से) १८ लाख लिटर था। दुग्ध चूर्ण बनाने के चार कारखाने क्रमशः आनन्द, मेहसाना, राजकोट तथा अमृतसर में हैं। इन चारों कारखानों में प्रतिदिन २७ टन दुग्ध चूर्ण का उत्पादन होता है। तीन क्रीमरीज (Creameries) क्रमशः जूनागढ़, अलीगढ़ एवं बरौनी में हैं जिनमें प्रति-

दिन २० टन मक्खन और घी का उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त देश भर में प्रत्येक कस्बे में छोटे डेयरी फार्म हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राय: प्रत्येक परिवार में दूध के लिए पशु पालन होता है।

भारत में डेयरी उद्योग की कठिनाइयाँ

भारत में डेयरी उद्योग की निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण इस उद्योग की अधिक उन्नति नहीं हो पायी -

(१) भारत में गायों और भैंसों से कम दूध प्राप्त होता है इसके कारण डेयरी फार्मों को लागत के अनुसार आय नहीं हो पाती है। नुकसान की हालत में इस उद्योग की अधिक उन्नति नहीं हो पा रही है।

(२) भारत में मवेशियों की नस्ल भी अच्छी नहीं है। अच्छी नस्ल के अभाव में फार्मों का विकास नहीं हो पाया है। डेयरी फार्मों के लिए दुधारू नस्ल की गायों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

(३) भारत में दुग्ध चूर्ण तथा मक्खन को कम उपयोग में लाया जाता है। यहाँ घी तथा मावा अधिक काम में लाने की प्रवृत्ति पायी जाती है अत: विकास में कठिनाई आती है।

(४) वित्तीय कठिनाइयों के कारण भी विभिन्न स्थानों पर डेयरी फार्मों का पर्याप्त विकास नहीं हो पा रहा है। धन के अभाव में आवश्यक सामान नहीं खरीदा जा सकता है अत: डेयरी फार्मों की स्थिति में सुधार नहीं हो पा रहा है।

(५) भारत के कुछ भागों में हरी घास केवल वर्षा के दिनों में ही प्राप्त होती है। शेष महीनों में सूखे घास पर निर्भर रहना पड़ता है अत इस उद्योग की उन्नति नहीं हो पायी है। भारत में चारे की समस्या एक विकट समस्या बन गयी है। यहाँ व्यावसायिक स्तर पर चारे का उत्पादन नहीं होता है। दुर्भिक्ष के समय चारे की कमी के कारण भारी संख्या में पशुओं की मौत हो जाती है।

(६) डेयरी मशीनों और उपकरणों के उत्पादन की कमी के कारण नवीन तरीके नहीं अपनाये जा सकते।

(७) भारत में डेयरी उद्योग के लिए अनुसन्धान तथा शिक्षा का अभाव भी कठिनाई बना हुआ है। पशुओं के प्रजनन तथा रोग नियन्त्रण से सम्बन्धित अनुसन्धान और प्रशिक्षण की माँग निरन्तर बढ़ रही है। इस माँग की पूर्ति नहीं होने के कारण इस उद्योग का बड़े पैमाने पर विकास नहीं हो पाया।

उपरोक्त कठिनाइयों के कारण भारत में दूध का उत्पादन तथा डेयरी फार्मों का विकास अधिक नहीं हो पाया है। डेयरी उद्योग के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं ·

दूध उत्पादन तथा डेयरी फार्मों के विकास के उपाय

भारत में दूध के उत्पादन तथा डेयरी फार्मों के विकास के लिए अग्रलिखित उपाय काम में लाने आवश्यक हैं :

(१) चारे की व्यवस्था, पशु सुधार का प्रमुख उपाय है। चारे के उत्पादन में वृद्धि होने से दूध के उत्पादन में भी वृद्धि होगी तथा डेयरी फार्मों को सस्ता चारा प्राप्त हो सकेगा। पोषक तत्व वाला चारा अधिक पैदा करना चाहिए। नहरी क्षेत्रों की कम उपजाऊ भूमि को चारा उत्पन्न करने के लिए काम में लाया जा सकता है।

(२) नस्ल सुधार के विभिन्न तरीके अपनाने चाहिए। नस्ल सुधार के लिए अच्छे किस्म के सांड तैयार करने पड़ते हैं। भारत में अच्छे सांडों के अभाव को दूर करने के लिए फार्मों में अच्छी नस्ल के सांड तैयार करके उनको विभिन्न गांवों में वितरित करना चाहिए। भारत में इस समय सांडों की पूर्ति बहुत कम है। इस समस्या को भी यथासम्भव दूर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उत्तम सांडों की प्राप्ति के लिए सरकारी फार्मों की वृद्धि की जानी चाहिए। इस दिशा में कृत्रिम गर्भाधान (Artificial insemination) केन्द्रों की संख्या में भी वृद्धि करने की आवश्यकता है।

(३) शुद्ध व ताजे पानी की व्यवस्था पशु विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। देहातों में पशु गन्दा पानी पीते हैं। इससे विभिन्न प्रकार के रोग फैल जाते हैं। देश के कुछ भागों में पशु खारा पानी पीकर भी जीवित रहते हैं। इस वजह से उनसे बहुत कम दूध प्राप्त किया जाता है। राजस्थान के कई क्षेत्रों में खारे पानी के कारण गर्मी के मौसम में गायों और भैंसों के बहुत कम दूध हो जाता है। पानी की समस्या को भी हल करना अत्यन्त आवश्यक है।

(४) अस्वस्थ, बूढ़े, बेकार तथा कमजोर पशुओं को अच्छी नस्ल के पशुओं से दूर रखना चाहिए। इसके लिए भारत सरकार ने गौ सदन खोले हैं। गौ सदनों की वृद्धि की जानी चाहिए।

(५) पशुओं की बीमारियों को रोकने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। इन बीमारियों को रोकने के उपाय तथा उचित सुविधाएँ ग्रामों तक पहुँचानी चाहिए। किसानों और पशुपालकों को रोग नियन्त्रण के तरीकों की जानकारी दी जानी चाहिए।

(६) डेयरी फार्मों के विकास के लिए अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण व्यवस्था करनी चाहिए ताकि बड़े पैमाने पर फार्मों का प्रबन्ध किया जा सके।

(७) शीत भण्डार की सुविधा से इस उद्योग का क्षेत्र व्यापक बनाया जा सकता है।

इन उपायों को ध्यान में रखकर अगर पशु विकास किया जायगा तो पंचवर्षीय योजना में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होगी। यद्यपि सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में प्रयत्न किये हैं फिर भी अधिक विकास नहीं हो पाया है। विकास को तेज गति प्रदान करने के लिए ये उपाय आवश्यक हैं। दुग्ध चूर्ण एवं शिशु खाद्य (Baby food) उत्पादन के लिए भी अब देश के कुछ स्थानों पर कारखाने स्थापित

किये गये हैं। इन पदार्थों की मांग अधिक तथा पूर्ति कम है और इसलिये इनके मूल्यों म निरन्तर वृद्धि होती रही है। एक साधारण परिवार के लिए इन मूल्यों पर पर्याप्त दूध-घी खरीदना सम्भव नहीं हो पा रहा है। आर्थिक विकास के साथ-साथ दुग्ध-पदार्थों की मांग म और वृद्धि होना निश्चित है जिसके कारण मूल्य और अधिक बढ़ेंगे। अतः उत्पादन बढाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाना आवश्यक है।

(II) अण्डे और माँस

अण्डे और मांस भी भोज्य पदार्थों मे सम्मिलित किये जाते हैं। भारत मुख्यतः शाकाहारी देश है फिर भी मांस खाने वाले बहुत से लोग हैं। अण्डा तो अब साधारणत पर्याप्त काम म लिया जाने लगा है। भारत म अनेक स्थानो पर बूचड़-खाने (Slaughter Houses) हैं जिनमे पशुओं को काट कर उनका मांस बेचा जाता है। मांस बकरे, भेड़ भैंस, सुअर, मुर्गियां आदि से प्राप्त किया जाता है।

अण्डे मुख्यतः मुर्गियों से प्राप्त किये जाते हैं और इन पर आधारित मुर्गी पालन (*Poultry Farming*) व्यवसाय का विकास किया जा रहा है। भारत में लगभग १० करोड से अधिक मुर्गियो का अनुमान लगाया जाता है। आधुनिक भोजन विज्ञान (Dietetics) म अण्डों को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया जाता है अत इनका प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है। भारत सरकार ने मुर्गी पालन के विकास के लिए विस्तार कार्यक्रम अपनाये हैं। पाँच क्षेत्रीय फार्मो मे जो कि दिल्ली, बम्बई, बगलौर, भुवनेश्वर तथा कलकत्ता मे है, इस दिशा मे उत्तम कार्य किया गया है।

सन् १९६९-७० मे भारत म कुल मिलाकर लगभग ५३० करोड अण्डे उत्पादित हुए। चतुर्थ योजना के अन्त तक ८०० करोड अण्डे प्रतिवर्ष उत्पादित करने का लक्ष्य रखा गया है।

(III) ऊन
(Wool)

पशुओ से प्राप्त होने वाले रेशों में ऊन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उनसे विभिन्न वस्तुएँ जैसे कपड़ा, गलीचे, शाल-दुशाले, कम्बल आदि वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। भेड की ऊन सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। भेडों की संख्या की दृष्टि से भारत का ससार मे छठा स्थान है। प्रति वर्ष लगभग ३५.६६ मिलियन किलोग्राम ऊन का उत्पादन होता है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त तक इसका उत्पादन ३८ मिलियन किलोग्राम हो जायगा। भारत मे आयात तथा निर्यात होता है। ऊन उत्पादन मे राजस्थान का प्रमुख स्थान है। यहाँ ऊन के कातने और बुनने के कुछ कारखाने भी खोले गये हैं। राजस्थान के मरुस्थलीय प्रदेशो तथा अनेक पहाड़ी क्षेत्रों मे भेड-पालन अनेक परिवारो की जीविका का साधन है और भेड पालन तथा ऊन-उत्पादन से अब इन परिवारो को पर्याप्त अतिरिक्त आय प्राप्त होने लगी है। भारत लगभग ६ करोड रुपये की ऊन विदेशों को निर्यात करता है। इसके अतिरिक्त लगभग १० करोड रुपये का ऊन से निर्मित सामान (गलीचे, शाल-दुशाले, कम्बल आदि)

प्रतिवर्ष निर्यात करता है। इधर कुछ वर्षों से भारत से ऊन का निर्यात कम हुआ और ऊन से बने सामान का निर्यात बढ़ा है। विदेशों से लगभग बारह तेरह करोड़ रुपये की उत्तम किस्म की ऊन भारत प्रतिवर्ष आयात करता है। चतुर्थ योजना में इस बात के प्रयत्न किये जा रहे हैं कि देश में ही उत्तम किस्म की ऊन अधिक मात्रा में उत्पादित की जाय। अभी कुल ऊन उत्पादन में लगभग ३० प्रतिशत ही सर्वोत्तम किस्म की ऊन होती है और ५० प्रतिशत साधारण मध्यम दर्जे की और शेष २० प्रतिशत मोटी ऊन होती है।

(IV) खाल व चमड़ा

भारत में पशुओं की संख्या अधिक है उनकी मृत्यु भी अधिक होती है। इनसे खाल अथवा चमड़ा प्राप्त करके उनसे विभिन्न वस्तुएँ जैसे जूता, थैले, पेटियाँ, दस्ताने आदि बनाये जाते हैं। गाय, भैंस तथा बकरे की खाल जूत बनाने के काम में लायी जाती हैं। भारत में खालों का आयात तथा निर्यात दोनों होते हैं। तृतीय योजना के अन्त तक लगभग ६६ करोड़ रुपये की खालों का निर्यात किया गया और लगभग २४ करोड़ रुपये की खालों का आयात किया गया।

भारत में मुलायम खाल भी प्राप्त की जाती है। ऐसी खालों को समूर (Fur) कहते हैं। यद्यपि समूर उद्योग (Fur Industry) शीत प्रधान देशों में उन्नत है परन्तु भारत में भी ब्रिटिश काल में इसका विकास हुआ। काश्मीर में इस उद्योग की उन्नति हुई। उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में खरगोश, ऊदबिलाव रजत लोमड़ी आदि समूर धारी जन्तु पाये जाते हैं और उनसे खालें प्राप्त की जाती हैं। श्रीनगर में इन खालों को साफ किया जाता है।

(V) खाद

पशुओं के गोबर, मूत्र तथा हड्डियों से खाद प्राप्त होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में गोबर का उत्पादन लगभग ८० करोड़ टन प्रतिवर्ष है, किन्तु दुर्भाग्य से इसका अधिकांश भाग जला दिया जाता है अथवा व्यर्थ पड़ा जाता है। इसका केवल एक तिहाई भाग ही कम्पोस्ट या खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जिसे भविष्य में बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कम्पोस्ट खाद, जिसमें पशुओं का महत्त्वपूर्ण भाग है, देश में उत्पादित की जाती है। भारत में गोबर को ईंधन के रूप में जलाने की प्रथा है। अब धीरे धीरे गोबर की खाद के काम में लाया जाने लगा है। पशुओं से हड्डियाँ प्राप्त करके भी खाद बनायी जाती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पशुओं से विभिन्न प्रकार के पदार्थ उपलब्ध होते हैं जिनका काफी आर्थिक महत्त्व है। चमड़ा उद्योग, डेयरी उद्योग तथा ऊन उद्योग आदि पशु सम्पदा पर आधारित हैं। चमड़ा एवं ऊन उद्योग से विदेशी मुद्रा कमायी जाती है। विभिन्न प्रकार के पशुओं के विकास के लिए काफी प्रयत्न किये जा रहे हैं। सरकार ने जो प्रयत्न किये हैं उनको देखने से पता हम यह विचार

करना है कि भारत में पशु धन की प्रमुख समस्याएँ कौन सी हैं ? इस विषय का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है :

भारत में पशु धन की समस्याएँ

भारत मे विश्व के पशुओं का लगभग छठा भाग पाया जाता है। संख्या की दृष्टि से संसार के सभी देशों की तुलना म यहाँ अधिक पशु पाए जाते हैं फिर भी उनसे उत्पादित पदार्थ अन्य देशों की तुलना में कम है। यहाँ के पशुओं की नस्ल अच्छी नही है। अच्छी नस्ल व किस्म के अभाव मे ऊन तथा डेयरी उद्योग अधिक विकसित नही हो पाये हैं। भारत म पशुओं के विकास मे निम्न समस्याएँ हैं :

(१) चारे का अभाव

चारे के अभाव मे गाय, बैल, बकरी, भेड़, बोझा ढोने वाले तथा हल चलाने वाले पशुओं की उन्नति नहीं हो पाती है। इनके अभाव मे पशु कमजोर पाये जाते हैं। देश के अधिकतर भागो मे खेती होती है, चरागाहों का अभाव पाया जाता है। कुछ प्रदेशों मे हरा चारा केवल वर्षा ऋतु म ही उपलब्ध होता है शेष महीनों में सूखा चारा और वह भी कम मात्रा म मिल पाता है। इससे दूध देने वाले पशुओं का दूध कम हो जाता है और बैल तथा ऊँट कमजोर हो जाते हैं जिससे उनकी हल चलाने की क्षमता कम हो जाती है। भारत के पश्चिमी भागों में जैसे राजस्थान, पंजाब तथा हरियाना मे गर्मियो मे चारे की कमी हो जाती है। विशेषकर राजस्थान मे हालत गर्मियों मे गम्भीर हो जाती है। चारे के अभाव मे पशु मरने लगते हैं।

देश में कई बार अकाल पडते हैं जिनकी वजह से चारे की कमी हो जाती है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी राजस्थान में वर्ष १९६८-६९ मे भयंकर अकाल के कारण बहुत से पशु धन की क्षति हुई। इस राज्य के बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर तथा बाड़मेर क्षेत्र मे इस वर्ष पानी तथा चारे के अभाव मे बहुत से पशुओं की मृत्यु हो गयी।

चारे की समस्या के समाधान के लिए, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शीघ्र कदम उठाने चाहिए। इस समस्या को सुलझाने के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिए :

(१) देश में ऐसी फसलें उगायी जायें जिनसे उत्तम किस्म का चारा प्राप्त हो सके तथा मिट्टी की उत्पादन क्षमता भी बढ जाय। ये फसलें अन्य फसलों के साथ भी उगायी जा सकती हैं।

(२) देश मे तिलहन का उत्पादन बढाया जाय जिससे खली अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सके। इस खली को पशुओं के खिलाने तथा खाद बनाने के काम में लाया जा सकता है।

(३) जो घास वर्षा काल मे उत्पन्न की जा सकती है वह सम्पूर्ण देश में

उत्पन्न की जाय और उसे सुखा कर शेष महीनों के लिए सुरक्षित रखी जाय। सूखी घास देश के कुछ भागों में इकट्ठी की जाती है।

(४) भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान के प्रयोगों के आधार पर बबूल की पत्ती, मूंगफली के छिलके, आम की गुठली, गिरि कोस तथा जामुन की गुठली भी पशुओं को खिलायी जा सकती है। भारत में इनका उपभोग अभी तक नहीं हो पा रहा है। अतः इनका उपयोग शीघ्र किया जाना चाहिए।

(५) इस प्रकार के पेड़ अनेक स्थानों पर लगाये जायें जिनकी पत्ती छाल, तथा फल पशुओं के खाने के काम आ सकें। इन पेड़ों को शुष्क भागों में, नदियों के किनारे, बेकार भूमि आदि जगहों पर लगा कर चारा प्राप्त किया जा सकता है।

(६) चरागाहों में भी उत्तम घास उत्पन्न करने की व्यवस्था करनी चाहिए। इनमें दूध बढ़ाने वाली घास लगाने तथा पशुओं की शक्ति बढ़ाने वाली घास लगानी चाहिए।

(७) मछलियों से भी पशुओं के लिए पोषक खाद्य पदार्थ तैयार किया जा सकता है। अतः मछली उद्योग को अधिक विकसित करना चाहिए।

(८) देश के विभिन्न भागों में ऊबड़-खाबड़ तथा बेकार पड़ी भूमि में चरागाह बनाने चाहिए। इन स्थानों पर अच्छी किस्म के पेड़ पौध तथा घास लगायी जानी चाहिए ताकि पशुओं को अच्छी किस्म का चारा उपलब्ध हो सके।

(९) वनों से तथा अधिक चारा उपलब्ध होने वाले अन्य स्थानों से चारा प्राप्त करके कमी वाले क्षेत्रों में भेजना चाहिए जिससे कमी वाले क्षेत्रों के पशुओं को बचाया जा सके।

(१०) जो चरागाह वर्तमान समय में हैं उनका प्रबन्ध उचित रूप से करना चाहिए तथा चारा उपलब्ध कराने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

उक्त उपायों को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रयत्नों से—देश में चारे की समस्या को सुलझाया जा सकता है और देश में भूख वाले पशुओं को बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पशुओं से दूध तथा अन्य प्रकार के पदार्थ अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं।

(२) नस्ल व उसके सुधार की समस्या

भारतीय पशुओं की नस्ल अच्छी नहीं है इसके कारण उनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता कम है। घटिया नस्ल की समस्या के कारण डेयरी उद्योग तथा ऊन उद्योग का अधिक विकास नहीं हो पाया। इस समस्या के समाधान के लिए नस्ल सुधार के अनेक प्रयत्न करने पड़ेंगे। देश में अच्छी नस्ल के सांडों का भी अभाव है। मांग को देखते हुए अच्छे सांडों की बहुत कमी है। अच्छे सांडों की कीमत भी बहुत अधिक होती है। अतः सरकार को अच्छे सांडों की व्यवस्था करनी चाहिए। नस्ल सुधारने के लिए यह भी आवश्यक है कि बेकार तथा रोगी पशुओं को दो सालों से रखने की

व्यवस्था की जाय । इसके अतिरिक्त ताजा पीने के पानी, उत्तम चारा, तथा अच्छी रहने की व्यवस्था करनी आवश्यक है ।

(३) रोगों की समस्या

भारतीय पशु गदा पानी पीने, गन्दी-सड़ी वस्तुएँ खा लेने, गन्दे तथा अन्धेरे बाड़ो मे रहने के कारण अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं । वर्षा ऋतु मे इन पशुओं के मुँह तथा पैरों मे बीमारियाँ फैल जाती हैं । गायों के थनों म बीमारी फैलने की वजह से दूध कम हो जाता है । पशुओं को इन बीमारियों से बचाना अत्यन्त आवश्यक है ।

इस समस्या के समाधान के लिए, प्रथम, पशु चिकित्सा का उचित प्रबन्ध करना चाहिए । दूसरे, पशुओं मे जब बीमारी फैलने लगती है तो उपचार के रूप में टीके लगाने का प्रबन्ध सरकार को करना चाहिए । तीसरे, किसानों व पशुपालकों को समय-समय पर रोग निदान का साधारण प्रशिक्षण देना चाहिए । इसके अतिरिक्त पशुओं के लिए अच्छे पानी तथा रहने के स्थान की व्यवस्था करनी चाहिए ।

(४) सयोग की समस्या

देश के कुछ भागो मे पशुओं के सयोग के सम्बन्ध मे पशुपालक विचार नहीं करते । दूध निकालने के पश्चात् गायों तथा भैसो को बाड़ों से निकाल दिया जाता है । जंगल मे उनका निम्न कोटि के सांडो तथा भैंसों से सयोग हो जाता है । इस वजह से पशुओं की किस्म निम्न होती जाती है ।

इस समस्या के समाधान के लिए पशुओं की व्यवस्था बाड़ों तथा दुग्ध-शालाओं मे करना आवश्यक है और उनके लिए अच्छे सांडो तथा भैंसो का प्रबन्ध करना चाहिए ।

इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने पचवर्षीय योजना में कुछ प्रयत्न किये हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :

पचवर्षीय योजनाओ मे सरकारी प्रयत्न

भारत सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं में निम्नलिखित प्रयत्न किये हैं :

(१) गौशालाएँ—सरकार निजी क्षेत्र की गौशालाओं में से कुछ चुनकर उनमें सुधार के प्रयत्न करती है । देश मे ३,००० गौशालाओं में से ४२३ गौशालाएँ चुनी गयीं । इन गौशालाओ मे सरकारी कार्यक्रम के आधार पर पशुपालन किया जाता है । इन गौशालाओ को सरकार वित्त सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की सहायता प्रदान करती है । इन गौशालाओं में पशु कमजोर होते हैं, रोगी होते हैं तथा अनुत्पादक होते हैं उनको गौ सदन मे भेज दिया जाता है ।

(२) गौसदन—जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है अनुत्पादक, बेकार, कमजोर पशुओं को अच्छी नस्ल वाले पशुओं से अलग रखना आवश्यक है । इसके लिए गौसदन बनाये गये हैं जिनमे इन बेकार पशुओं को रखा जाता है । प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ मे देश मे ६१ गौसदन स्थापित किये गये ।

(३) दुग्धशालाएँ—पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल की गयी विभिन्न डेयरी परियोजनाओं के दो उद्देश्य रहे हैं। प्रथम, उत्पादक को लाभकारी बाजार उपलब्ध कराना और द्वितीय उपभोक्ताओं को उचित दाम पर अच्छा दूध उपलब्ध कराना। पिछले दस वर्षों में २६ नयी दूध वितरण स्कीमें जिनमें १२ सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत हैं चालू की गयी हैं। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में ये स्कीमें १ लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले शहरों में चालू की गयी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ये छोटे शहरों में चालू की जायेंगी। मार्च १९७० तक ६१ शहर तथा कस्बे डेयरी परियोजनाओं के अन्तर्गत लाये गये हैं।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में डेयरी और दुग्ध पूर्ति कार्यक्रमों में ३४ करोड़ रुपये व्यय किये गये। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९६९-७४) में ४५.११ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। तीन वार्षिक योजनाओं में डेयरी तथा दूध वितरण कार्यक्रमों में २६ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में निम्न बातों पर अधिक ध्यान दिया जायेगा :

(१) वर्तमान दुग्ध वितरण योजनाओं को पूरा करना, समन्वय स्थापित करना तथा उनका विस्तार करना।

(२) दुग्ध इकट्ठा करने का कार्य प्राथमिक सहकारी दुग्ध समितियों अथवा सेवा सहकारी समितियों द्वारा किया जाना।

(३) ग्रामीण डेयरी केन्द्रों की स्थापना करना और दुग्ध उत्पादन का सघन विकास करना।

(४) डेयरी मशीनों तथा उपकरणों के देशी उत्पादन का विस्तार करना।

इसके अतिरिक्त सहकारी साख उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था की जायेगी जिससे किसान पशु खरीद सकें।

वर्तमान स्थिति

जहाँ तक संगठित दुग्ध व्यवसाय का प्रश्न है, इस समय देश में कुल मिलाकर ६१ बड़ी दुग्धशालाएँ (Organised Dairy Farms) हैं, जिनमें ४७ तरल दुग्ध फार्म (Liquid Milk Plants), २७ पाइलट दुग्धशालाएँ (Pilot Dairy Farms), ४ दुग्धचूर्ण फैक्टरियाँ (Milk Powder Plants) तथा ३ मक्खन बनाने के कारखाने (Creameries) हैं। इनसे प्रतिदिन १८ लाख लिटर तरल दुग्ध, ७० टन दुग्ध-पाउडर तथा २० टन मक्खन उत्पादित होता है। गाँवों एवं कस्बों में लघु एवं कुटीर स्तर पर संचालित दुग्ध-व्यवसाय से जो दूध एवं घी का उत्पादन होता है वह इससे अलग है।

(४) ग्राम केन्द्र योजना—ग्राम केन्द्र योजना प्रथम पंचवर्षीय योजना में चालू की गयी। प्रत्येक ग्राम केन्द्र में ३ सान्द्र या बड़ी लगभग ४०० गायें सम्मिलित की जाती हैं। इस केन्द्र में ३ या ४ ग्राम सम्मिलित होते हैं। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य पशुओं की नस्ल सुधारना है। कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों द्वारा नस्ल सुधार का

कार्य किया जाता है । इस योजना में बछड़ा पालन, पशुओं से प्राप्त पदार्थों की बिक्री, व्यवस्था का सहकारी प्रबन्ध, चारे की व्यवस्था आदि कार्य भी किये जाते हैं । चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ग्राम खण्डों की संख्या ४६० से ५५० हो जायगी ।[1]

(५) पशुओं के रोगों पर नियन्त्रण—पशुओं की बीमारियों को रोकने के लिए योजना काल में पशु चिकित्सालयों का विकास किया गया है । प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में इनकी संख्या ४,००० हो गयी जबकि इस योजना के आरम्भ में पशु चिकित्सालयों की संख्या २,००० थी । तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में इनकी संख्या ८,००० हो गयी । चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में २०० नये पशु चिकित्सालय, १,००० डिस्पेन्सरियाँ, २,००० स्टोकमैन सेन्टर तथा ६ चलती-फिरती डिस्पेन्सरियाँ संगठित की जायेंगी । ५०० वर्तमान डिस्पेन्सरियों को चिकित्सालयों के रूप में विकसित किया जायगा ।

(६) चारे का विकास—चारे के विकास तथा उत्पादन बढ़ाने सम्बन्धी कार्यक्रमों में अभी तक कोई विशेष सफलता नहीं मिली है । चारा विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी राज्यों में ग्रामों में प्रदर्शन केन्द्र स्थापित किये गये हैं । इन केन्द्रों में उत्तम किस्म के चारे के उत्पादन सम्बन्धी बातें बतायी जाती हैं । सघन पशु विकास और प्रमुख ग्राम खण्डों में सघन सूखा घास विकास कार्यक्रम भी अपनाया गया है परन्तु इस तरफ चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में अधिक ध्यान दिया जायेगा । चतुर्थ योजना में १० बीज उत्पादन फार्म, २५ मिश्रित फार्म इकाइयाँ स्थापित की जायेंगी तथा साथ ही २५ घास बीड विकसित किये जायेंगे ।

(७) पशु विकास—पशु विकास को फसलों के सघन कृषि कार्यक्रमों की परम्परा में आयोजित किया जा रहा है । पुनरीक्षित पशु प्रजनन नीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं—माने हुए प्रजनन केन्द्रों में चुनकर प्रजनन करना, सूखी नस्लों में दूध उत्पादन बढ़ाना, वर्ण सङ्कर नस्ल को अच्छी दुग्धशालाओं की नस्लों के साथ ऊँचा उठाना, पहाड़ी तथा अन्य भागों में विदेशी नस्लों के साथ सङ्कर प्रजनन करना और अधिक दूध देने वाले पशुओं का पालन करना तथा उनको उचित सुविधाएँ प्रदान करना आदि । इनके लिए ३० सघन पशु विकास कार्यक्रमों के चालू करने का प्रस्ताव है । प्रत्येक कार्यक्रम में एक लाख गायें और भैंस जो कि प्रजनन की उम्र की हैं सम्मिलित की गयी हैं ।

तीन प्रजनन केन्द्र, चिपलिमा (उड़ीसा), सूरतगढ़ (राजस्थान) और अंकलेश्वर (गुजरात) में स्थापित किये जा चुके हैं ।

(८) मुर्गी पालन विकास—मुर्गी पालन विकास के लिए सघन विकास कार्य क्रम चालू किये गये हैं । क्षेत्रीय मुर्गी पालन फार्मों में जो कि दिल्ली, बम्बई, बंगलौर, भुवनेश्वर और कामलाही स्थानों पर स्थापित किये गये हैं, समन्वित (Coordinated)

---

1 Fourth Five Year Plan (1969-74)

मुर्गी पालन प्रजनन कार्यक्रम चालू किया है। इन फार्मों के द्वारा २३ लाख अण्डे प्रतिवर्ष उत्पादित किये जाते हैं।

मुर्गी पालन विकास के अन्य कार्यक्रमों में अब तक ८६ अण्डे और मुर्गी उत्पादन विक्रय केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है। चण्डीगढ़ में एक मुर्गी पालन ड्रेसिंग प्लांट स्थापित हो चुकी है जो कि शीघ्र ही काम चालू करने वाली है। विश्व खाद्य कार्यक्रम (World Food Programme) के अन्तर्गत मुर्गियों के भोजन के लिए २०,००० टन मक्का की सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के अन्तर्गत २५ सघन मुर्गी पालन विकास खण्डों को ५०,००० टन मक्का ५ वर्षों में प्राप्त होगी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में अण्डों का उत्पादन ४,३०० मिलियन से ८,००० मिलियन होने का लक्ष्य रखा गया है।

(९) भेड़ व ऊन विकास—भेड़ विकास का मुख्य उद्देश्य ऊन की पूर्ति में वृद्धि करना तथा ऊन की किस्म में सुधार करना है। उत्तम भेड़ प्रजनन के लिए दक्षिणी पठार तथा पश्चिमी हिमाचल क्षेत्र के चुने गये क्षेत्रों में स्थानीय नस्लों को अच्छी ऊन वाली विदेशी भेड़ों से शामिल कराया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी भागों में वर्तमान किस्मों में चुने हुए प्रजनन पर बल दिया गया है। एक केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसन्धान राजस्थान में स्थापित किया गया है जिसके दो उपकेन्द्र खोले गये हैं जो एक हिमाचल प्रदेश तथा दूसरा मद्रास राज्य में है। राजस्थान में भारत की कुल भेड़ों की २० प्रतिशत संख्या है, तथा भारत की कुल ऊन उत्पादन का ४८ प्रतिशत भाग राजस्थान उत्पादित करता है। अतः भेड़-पालन और ऊन उत्पादन की दृष्टि से भारत में राजस्थान का प्रमुख स्थान है।

राजस्थान में भेड़ की ऊन छाँटने, वर्गीकरण करने तथा विक्रय के लिए तैयार करने की परियोजना जो कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम (UNDP) के विशेष कोष से सहायता प्राप्त कर चालू की गयी है। तृतीय योजना काल में १५ भेड़ पालन केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ८ बड़े भेड़ प्रजनन फार्म जिनमें ५,००० से १५,००० भेड़ों को रखा जायगा स्थापित किए जायेंगे। इस योजना में ऊन का उत्पादन ३५.६६ मिलियन किलोग्राम से ३८ मिलियन किलोग्राम होने का लक्ष्य रखा गया है।

(१०) अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण—पशुओं के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण कार्य भी किये गये हैं। तीसरी पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक राज्य में एक पशु अनुसन्धान केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गयी थी किन्तु अधिकांश राज्यों में प्रारम्भिक कदम उठाये गये हैं। डेयरी उद्योग के लिए ६ केन्द्रों में, जो कि करनाल, बंगलौर, आरे (Aare), इलाहाबाद, आनन्द और हरिणघट्टा में हैं, डेयरी कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा सरकार ने अनेक प्रयत्न किये हैं और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में विभिन्न कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। आशा है इस योजना के विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति हो सकेगी। डेयरी उद्योग, ऊन उद्योग तथा मुर्गी पालन व्यवसाय की उन्नति में काफी सम्भावनाएं हैं। पशु विकास से देश की अर्थव्यवस्था में काफी सुधार होगा और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिससे देशवासियों का जीवन स्तर काफी ऊँचा हो सकेगा। दूध और अण्डों की अधिक उपलब्धि से लोगों की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी तथा देशवासी अधिक हृष्ट-पुष्ट हो सकेंगे।

प्रश्न

१. भारत के पशुधन को सुधारने के लिए उपयुक्त सुझाव दीजिए ? इस दिशा में भारत सरकार ने अब तक क्या किया है ? (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६८)
२. भारतीय पशुओं से कौन-कौन सी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ? संक्षिप्त विवरण दीजिए।
३. भारत में डेयरी उद्योग की कौन-कौन सी समस्याएँ हैं उनको दूर करने का सुझाव दीजिए।
४. भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुओं का क्या महत्त्व है ? भारत में पशु सम्पदा का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
५. भारत में पशुधन के विकास के लिए सुझाव दीजिए।

अध्याय ८

भारत में मत्स्य व्यवसाय

(FISHING IN INDIA)

मछली पकड़ना मानव के प्राचीन उद्यमों में गिना जाता है। प्राचीनकाल में जलाशयों, झीलों, समुद्रतटों तथा नदियों के निकट जो मनुष्य रहते थे वे मछुआ कर्म में प्रवीण थे। मछली पकड़ने का व्यवसाय आजकल काफी विकसित हो रहा है। मछलियाँ वास्तव में मनुष्य के लिए भोजन की पूर्ति का अक्षय भण्डार है। समुद्रों में मछलियों की पूर्ति इतनी तेजी से होती है कि शक्तिचालित नौकाओं तथा बड़े बड़े जालों से बहुत बड़ी मात्रा में मछली का उत्पादन हो सकता है। मछली व्यवसाय यद्यपि शीतोष्ण प्रदेशीय समुद्रों में अधिक विकसित है फिर भी आजकल उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में भी इसका विकास हो रहा है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ इन प्रदेशों में मछली का उत्पादन बढ़ गया है, क्योंकि प्रशीतन विधि द्वारा मछली को सड़ने-गलने से बचा लिया जाता है।

भारत में मछलियाँ पकड़ने के लिए अनेक प्रकार की प्राकृतिक परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं। यहाँ मछली पकड़ने के प्रमुख भाग समुद्रतटीय भागों में हैं और इनके अतिरिक्त नदियों, नहरों तथा झीलों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। समुद्रतटीय मत्स्य-पालन में प्रमुख बाधा यह है कि देश के आकार को देखते हुए हमारी समुद्र तट रेखा की लम्बाई बहुत कम है। तट रेखा सीधी एवं सपाट है और उसमें मोड़ों, कटानों, खाड़ियों आदि का अभाव है। भारत में कुल मछली उत्पादन का ३० प्रतिशत मीठे पानी से प्राप्त किया जाता है तथा शेष ७० प्रतिशत समुद्र से प्राप्त किया जाता है। झीलों, नदियों तथा समुद्रों से उत्पादित मछलियों से देश को प्रतिवर्ष लगभग ८० करोड़ रुपये से भी अधिक आय होती है जिसमें से लगभग २४ करोड़ रुपये की आय मछलियों के निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा के रूप में होती है। भारत से खास प्रशीतित झींगा (Frozen Prawn) मछलियाँ निर्यात होती हैं। हमारा सबसे बड़ा ग्राहक संयुक्तराज्य अमरीका है जो लगभग १८ करोड़ रुपये की मछलियाँ भारत से खरीदता है। इसके बाद जापान का स्थान है जहाँ लगभग ६ करोड़ रुपये की मछलियों का निर्यात होता है। इसके अतिरिक्त बेलजियम, हालैण्ड, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड तथा पश्चिमी जर्मनी को भी मछलियों का निर्यात भारत से होता है।

आर्थिक महत्त्व

भोजन के साधन के रूप म होने के कारण मछली, कृषि तथा पशु सम्पदा दोनों के समान आर्थिक महत्त्व की है। जब देश की भूमि पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ पैदा न कर सके तो पानी को अधिक खाद्य पदार्थ उत्पादन करने के काम मे लाना उचित हो सकता है। मछली उत्पादन के निम्नलिखित आर्थिक महत्त्व हैं

(१) भोजन का साधन—मछलियाँ भोजन के साधन के रूप में काम आती हैं। देश की कुल जनसंख्या के १६ प्रतिशत भाग को छोडकर शेष जनसंख्या मछली खा सकती है। भारत म खाद्य समस्या है क्योंकि यहाँ पर्याप्त मात्रा म अन्न का उत्पादन नहीं हो पाता है। अत मछली उत्पादन से कुछ मात्रा म इस समस्या को हल किया जा सकता है। समुद्रतटीय भागों में मछली मनुष्य के भोजन मे पौष्टिक तत्त्व की पूर्ति मे सहायक है। सर्वविदित है कि पूर्वी एव दक्षिणी भारत के लोगों का प्रमुख भोजन चावल है जिसमे स्टार्च की मात्रा अधिक और प्रोटीन की मात्रा कम होती है। इन क्षेत्रों मे दूध, दही एव घी आदि का भी अभाव है। अत. यदि चावल खाने वाले लोगों के आहार मे मछलियों के द्वारा पौष्टिकता की पूर्ति न की जाय तो यहाँ के लोगो के स्वास्थ्य पर अत्यन्त विपरीत प्रभाव पड सकता है। मछली मे उच्च-कोटि की प्रोटीन एव विटामिन 'डी' पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होती है।

(२) तेल का निकालना—मछली का तेल भी निकाला जाता है और उसे अनेक कार्यों म प्रयुक्त किया जाता है। इसका तेल औषधि, साबुन बनाने, चमडे को मुलायम करने, इस्पात को चमकाने तथा मशीनों को चिकना करने के काम आता है। *मछलियों का तेल निकालने का कार्य मुख्यत: केरल, महाराष्ट्र तथा तमिल राज्यों* मे होता है। यह तेल शार्क तथा सारडीन मछलियों से प्राप्त किया जाता है।

(३) खाद प्राप्त होना—मछलियों से उत्तम खाद प्राप्त होती है। मछली को काम मे लाने के बाद जो अंश बचता है उसे खाद के काम में लाया जा सकता है इसके अलावा छोटी मछलियों को भी खाद के काम मे लाया जाता है। मछलियों से खनिज, फासफोरस तथा अन्य उपयोगी तत्त्व मिलते हैं जिनसे मिट्टी की उत्पादन क्षमता बढती है। भारत के कुछ मछली उत्पादन का लगभग १० प्रतिशत खाद के काम म लाया जाता है।

(४) पशुओं का चारा—मछलियों को पशुओं के चारे के रूप मे भी खिलाया जाता है। मछलियाँ के टुकडे करके पशुओं और मुर्गियों को खिलाकर चारे की कमी की पूर्ति की जा सकती है। भारत मे चारे की विकट समस्या है। अतः इसे हल करने के लिए कुछ हद तक मछलियाँ सहयोग दे सकती हैं।

(५) रोजगार—मछली उद्योग से रोजगार मिलता है। भारत में इस समय लगभग १० लाख मछुए इससे जीविका कमाते हैं। इस व्यवसाय की उन्नति करके देश की बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सकता है। मछली पकड़ने के

ा उनके विक्रय तथा अन्य मछली पकड़ने के उपकरणों को बनाने में काफी गार दिलाया जा सकता है।

(६) विदेशी विनिमय की प्राप्ति—मछलियों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा। कि पहले कहा जा चुका है कि मुख्यत प्रशीतित प्रान (Frozen Prawns) लियों का निर्यात मुख्यतः अमरीका, जापान, बेल्जियम, हालैंड, पश्चिमी जर्मनी, ट्रेलिया, लंका, ब्रह्मा, सिंगापुर आदि देशों में किया जाता है। पिछले बीस वर्षों में ति में निरन्तर वृद्धि हुई है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है

वर्ष	मछलियों के निर्यात की मात्रा (टनों में)	मछलियों के निर्यात का मूल्य (करोड़ टनों में)
१६५१	१६,६५१	२ ४६
१६५६	२१,६००	३ ६२
१६६१	१७,३००	४ १३
१६६६	१६,१५३	१३ ५२
१६७०	३०,०००	३४ ५०

स्पष्ट है कि तृतीय योजना के बाद निर्यात में विशेष वृद्धि हुई है क्योंकि प्रशीत (Frozen) मछलियों के निर्यात पर विशेष जोर दिया गया है। चतुर्थ योजना अन्त तक अनुमान है कि यह निर्यात ६० करोड़ रुपये से अधिक हो जायगा।

(७) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—भारत को प्रतिवर्ष ८० करोड़ रुपय की आय होती है। सन् १६७० में मछलियों का उत्पादन लगभग १६'५ लाख टन हुआ। इस व्यवसाय का अधिक विकास करके राष्ट्रीय आय में अधिक वृद्धि की जा सकती है।

(८) औद्योगिक वस्तुएं—भारत में मछली के कुल उत्पादन का १० प्रतिशत भाग औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में काम में लाया जाता है। साबुन उद्योग, चमड़ा उद्योग तथा अन्य उद्योगों में मछली का तेल काम में आता है। तेल उद्योग में भी मछलियों का महत्वपूर्ण योगदान है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मछली उत्पादन में भारत को अनेक लाभ है। देश के सामने खाद्य समस्या तथा बेरोजगारी की समस्याएँ हैं, इनको दूर करने के लिए मछली उद्योग बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किन्तु खेद है कि भारत ने अपने मत्स्य साधनों का अब तक पर्याप्त विकास नहीं किया है। हमारे देश में मछली की प्रतिव्यक्ति दैनिक खपत केवल तीन ग्राम है जबकि अन्य देशों में यह इससे कई गुना अधिक है जैसा कि अग्र तालिका से स्पष्ट हो जायगा।

देश	मछली की प्रतिव्यक्ति दैनिक खपत (ग्रामों में)
१ जापान	८४
२ फिलीपाइन	४५
३ कोरिया	३६
४ मलेशिया	२८
५ ताइवान	३९
६. इन्डोनेशिया	१३
७ लका	१६
८ पाकिस्तान	५
९ भारत	३

मत्स्योपाद्य व्यापारिक दृष्टि से भी काफी महत्त्वपूर्ण है। मछली उद्योग के विकास के लिए कुछ विशेष परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जिनका वर्णन नीचे किया गया है :

मछली उद्योग के लिए अनुकूल दशाएँ

मछली का उत्पादन व्यापारिक दृष्टि तथा मछुओं के स्वय के काम मे लाने की दृष्टि से होता है। जब व्यापारिक दृष्टि से मछली का उत्पादन किया जाता है तो इसके लिए निम्नलिखित अनुकूल दशाएँ होना आवश्यक है :

(१) **नीचा तापक्रम**—मछलियो की वृद्धि ठण्डे समुद्रो मे तेज गति मे होती है और इसके अतिरिक्त एक ही प्रकार की बहुत सी मछलियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसके विपरीत उष्ण समुद्रो म अनेक प्रकार की मछलियाँ पायी जाती हैं। जिनमे से अनेक खाने योग्य नहीं होती। शीत जलवायु से मछलियाँ अपेक्षाकृत अधिक समय तक ठीक रहती हैं। भारत उष्ण कटिबन्ध में होने के कारण यहाँ तापक्रम नीचा नही है अत यहाँ मछली उद्योग अधिक विकसित नही हो पाया। यद्यपि आजकल वैज्ञानिक तरीके अपनाकर उन्नति की जा रही है।

(२) **विकसित नाव कला**—मछली के उत्पादन के लिए कुशल नाविकों की आवश्यकता पडती है। आजकल बडी मात्रा मे उत्पादन होता है अत शक्तिचालित और छोटे-छोटे स्टीमर काम मे लाये जाते हैं। इनको प्रयोग मे लाने के लिए नाविक प्रवीण होने चाहिए। भारत मे समुद्रतटीय भागो मे नावें चलाने मे कुछ लोग दक्ष पाये जाते हैं।

(३) **उत्तम पोताश्रय** (Harbour)—जैसा कि पहले कहा गया है अधिक मात्रा मे मछली उत्पादन के लिए बडी नौकाओ तथा स्टीमरो को काम मे लाया जाता है। इसके लिए तट के पास आश्रय देने के लिए उत्तम आश्रय स्थल होने चाहिए।

भारत में कहीं-कहीं उत्तम आश्रय स्थल उपलब्ध हैं परन्तु अधिकतर समुद्रतट पर अच्छे आश्रय स्थल नहीं हैं।

(४) पर्याप्त स्थानीय माँग—मछली का शीघ्र खराब होने का अधिक डर रहता है अतः इसको शीघ्र काम में लाना पड़ता है। मछली उत्पादन के आस-पास के क्षेत्रों में यदि माँग काफी है तो यह उद्योग अधिक विकसित हो सकता है। भारत के समुद्रतटीय राज्यों में माँग पर्याप्त है अतः यह उद्योग विकसित हो रहा है।

(५) *बन्दरगाहों की निकटता—बड़ी मात्रा में मछली का उत्पादन करके उसे* निर्यात भी किया जाता है। निकट अच्छे बन्दरगाह होने से मछलियों को शीघ्र दूसरे देशों में भेजा जा सकेगा। भारत में मछली उत्पादन के कुछ क्षेत्रों के पास बन्दरगाह उपलब्ध हैं परन्तु बन्दरगाहों की कमी होने के कारण सभी क्षेत्रों में निकटता नहीं रह पाती।

(६) शीत भण्डार गृहों का विकास—मछली बहुत कम समय में सड़ने लगती है अतः शीत भण्डार गृहों का निर्माण आवश्यक होता है। भारत की जलवायु उष्ण है अतः यहाँ बहुत शीघ्र मछलियाँ सड़ने-गलने लगती हैं अतः पर्याप्त शीत भण्डार गृह होने चाहिए। जिनको वैज्ञानिक विधियों से सुरक्षित रखा जाता है। भारत में अब शीत भण्डार गृहों का निर्माण किया जाने लगा है। पश्चिमी तट पर अनेक बन्दरगाहों में अब प्रशीतन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

(७) अच्छी पैकिंग व्यवस्था—मछली के व्यापार में पैकिंग का बहुत महत्व है। मछलियाँ शीघ्र खराब हो जाती हैं अतः पैकिंग ऐसा हो जिससे काफी दिनों तक *मछलियाँ खराब न होने पायें।*

मछलियों को डिब्बों में भरकर हवा निकाल दी जाती है और इस प्रकार डिब्बों को वायु विहीन कर दिया जाता है जिससे कि काफी समय तक मछलियाँ खराब नहीं हो पातीं। भारत में आजकल अच्छी पैकिंग व्यवस्था का विकास किया गया है। बाहर भेजी जाने वाली मछलियों को वैज्ञानिक तरीकों से पैक किया जाता है। *इसमें प्रशीतन पैकिंग विधि सर्वोत्तम एवं आधुनिक है।*

मछली उत्पादक क्षेत्र
(Fishing Areas)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि मछलियाँ प्रायः नदियों, जलाशयों, सरोवरों, झीलों आदि में पायी जाती हैं। इन जलाशयों में मीठे ताजा पानी के जलाशय हैं जैसे नदियाँ, नहरें, झीलें आदि। समुद्र ऐसा जल का भण्डार है जहाँ खारा पानी होता है। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर मछली क्षेत्रों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है जैसे ताजा पानी के मत्स्य क्षेत्र और समुद्री मत्स्य क्षेत्र। भारत के मछली उत्पादक क्षेत्रों को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) देश के भीतरी भागों के मछली उत्पादक क्षेत्र,

(ii) समुद्री मछलियों के क्षेत्र,

(iii) मोती देने वाली मछलियाँ (Pearl Fisheries)।

इन तीनों प्रकार के क्षेत्रों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है :

(I) देश के भीतरी भागों के मछली उत्पादन क्षेत्र

इनको ताजे पानी की मछलियाँ (Fresh Water Fisheries) भी कहा जाता है। देश के भीतरी भागों में नदियों, नहरों, तालाबों, पोखरों आदि में मछलियाँ पकडी जाती हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है.

(१) नदियों में मछलियाँ—भारत में अनेक भागों में नदियों का जाल सा बिछा हुआ है। इन नदियों से मछली पकडी जाती हैं। उत्तरी भारत में गंगा तथा उसकी सहायक नदियों में उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में मछलियाँ पकडी जाती हैं। आसाम में ब्रह्मपुत्र नदी से मछलियाँ पकडी जाती हैं। इनके अलावा यह मध्य प्रदेश में गोदावरी, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों से, उडीसा में महानदी से, इनके अतिरिक्त दक्षिण में कृष्णा तथा कावेरी नदियों से मछलियाँ पकडी जाती हैं। वर्षा-ऋतु में जब नदियों में बाढ आती है तो मछली व्यवसाय हल्का हो जाता है।

(२) तालाबों में मछलियाँ—बडे-बडे तालाबों में काफी पानी होने के कारण मछलियाँ पायी जाती हैं। दक्षिणी भारत में तालाबों की संख्या अधिक है। मद्रास, आन्ध्र, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में तालाबों में काफी मछलियाँ उपलब्ध होती हैं। तालाबों में जब पानी की सतह नीची हो जाती है तब आसानी से मछलियाँ पकडी जाती हैं।

(३) झीलों में मछलियाँ—भारत से झीलों में पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा आसाम राज्यों में अनेक मछलियाँ पकडी जाती हैं। झीलों का निर्माण खड्डों में वर्षा तथा नदियों के पानी से होता है। पानी पर्याप्त होने की वजह से इनमें मछलियाँ पायी जाती हैं। भारत में झीलों से मछलियाँ अप्रैल से जुलाई तक अधिक मात्रा में पकडी जाती हैं। केरल राज्य में एक झील में प्रान (Pran) नामक मछली बहुतायत से पकडी जाती है।

(४) नहरों की मछलियाँ—पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में नहरों का जाल सा बिछा हुआ है। इन राज्यों में नहरों से मछलियाँ पकडी जाती हैं।

(५) डेल्टा प्रदेश—नदियों के डेल्टा प्रदेशों में दलदली भूमि पायी जाती है तथा अनेक नाले बने हुए होते हैं। इनमें पानी पर्याप्त होने के कारण मछलियाँ पायी जाती हैं। बंगाल के डेल्टा प्रदेश में सबसे अधिक मछलियाँ पकडी जाती हैं। इस डेल्टा भाग में मछली पकडने का क्षेत्र ५,८०० वर्गमील है जिसमें अधिकांश भाग में नदियाँ, नाले, जंगल तथा दलदल है। यातायात के साधनों के अभाव में मछलियों को निकालकर बाहर लाने में समय लग जाता है अतः बहुत सी मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसके डेल्टा प्रदेश में हिल्सा, कतला, रोहू, मंगठअप तथा कैटफिश पायी जाती हैं।

(६) अन्य—जिन भागों में वर्षा काफी होती है वहाँ गड्ढों में जल एकत्रित हो जाता है। बंगाल में इन गड्ढों को बील (Beel) कहा जाता है। उनमें काफी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इसके अतिरिक्त धान के खेतों में मछलियाँ पाली जाती हैं।

भारत में भीतरी भागों में तीसरी योजना के अन्त तक ४ लाख टन मछलियाँ प्राप्त की गयीं। इन ताजा मछलियों में पश्चिमी बंगाल में लगभग आधे से अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। भीतरी भागों में पायी जाने वाली मछलियाँ मंगरेल, सॉ-फिश, कैटफिश, बटोरिए, रोहू, कटला, मार, मुरेल, सालाबाल, हिल्सा, बाटा, रिघन, तापसी आदि हैं।

(II) समुद्री मछली क्षेत्र (Sea Fisheries)

व्यापारिक मछली उत्पादन में समुद्री मछली क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण है। समुद्र मछलियों का अक्षय भण्डार है। अब मछली उत्पादन काफी बढ़ाया जा सकता
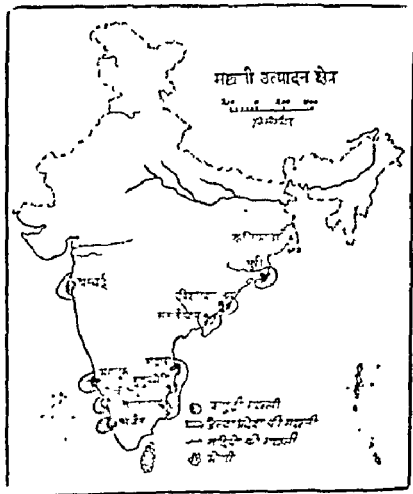
है। समुद्रों के बीच उथले समुद्री उभारों (Banks और समुद्रों के तटवर्ती क्षेत्रों में बहुत मछलियां मिलती हैं। हिन्द महासागर मे उष्ण कटिबन्धीय समुद्र होने के कारण विभिन्न प्रकार की मछलियां पायी जाती हैं। बगाल की खाडी तथा अरब सागर में भी अनेक प्रकार की मछलियां उपलब्ध होती हैं।

खुले समुद्र म मछली पकडन (Open Sea Fisheries) का व्यवसाय अभी भारत मे बहुत अधिक विकसित नही हो सका है। भारत में समुद्री मछलियाँ पकडने के मुख्य क्षेत्र समुद्र तटरेखा के १० से २० किलोमीटर की सीमा तक है। भारत मे समुद्री मछली के प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी और पूर्वी समुद्रतटीय भाग प्रमुख हैं। पश्चिमी समुद्रतटीय भाग म कुल उत्पादन की ६६ प्रतिशत मछलियां पकडी जाती हैं जबकि पूर्वी समुद्री तट मे बहुत कम। पूर्वी समुद्रतटीय भाग पश्चिमी तटीय भाग से अधिक लम्बा होते हुए भी वहाँ मछलियाँ कम पकडी जाती हैं।

भारत मे समुद्री मछली पकडने का व्यवसाय निश्चित समय में ही हो पाता है क्योंकि मानसून हवाओ के मास मे जब ये हवाएँ आरम्भ होती हैं तो तेज हवा तथा तूफान आते हैं। इसके पश्चात् तेज वर्षा से पानी का वेग नदियो से समुद्र की तरफ तेज होता है अत: इस समय मछली पकडने का धन्धा शिथिल हो जाता है। इन दिनों मे केवल तट पर ही कुछ भागों मे मछलियाँ पकडी जाती हैं। जब ये मानसून लौट जाते हैं तो मछली व्यवसाय आरम्भ होता है। पश्चिमी समुद्र तट इन मानसूनो से अधिक प्रभावित होता है अत पूर्वी समुद्र तट इन मानसूनी हवाओं से कम प्रभावित होने के कारण यहाँ वर्ष भर न्यूनाधिक मछलियां पकडी जाती हैं। इस प्रकार समुद्री मछलियां पकडने में पश्चिमी बगाल, मद्रास, आन्ध्र, महाराष्ट्र, गुजरात तथा केरल राज्य प्रमुख हैं।

बगाल की खाडी में पायी जाने वाली मछलियां प्रान, हिल्सा, भारतीय सामन, शिरिमा, ज्यू, पाम्फ्रेट, रिबजमारडाइन आदि प्रमुख हैं। अरब सागर के तट मे केरल, सिलवर बेली, प्रोन, शार्क, सोल कॅटफिश आदि प्रमुख हैं।

(III) मोती देने वाली मछलियां (Pearl Fisheries)

उष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में इस प्रकार का जीव होता है जिसके शरीर पर एक सुराख (sheel) होता है जिसे सीपी कहा जाता है। इस सीपी के भीतर मोती बनते हैं जो बहुमूल्य होते हैं और उन्हें आभूषणों मे प्रयुक्त किया जाता है। हमारी राष्ट्रीय योजना समिति के अनुमानो के आधार पर मनार की खाडी, कच्छ की खाडी तथा सौराष्ट्र मे समुद्री किनारों पर 'ओइस्टर' मछलियां पायी जाती हैं जिनसे मोती प्राप्त किये जाते हैं। तमिलनाड राज्य के कुछ भागो में ओइस्टर मछलियाँ पायी जाती हैं।

उक्त वर्णन के आधार पर स्पष्ट है कि भारत मे मछली व्यवसाय समुद्री मछलियो का अधिक है। भारत में समुद्री मछलियो का उत्पादन काफी बढाया जा सकता है। अभी तक बहुत थोडी दूरी तक समुद्रों मे मछलियां पकडी जाती हैं।

इसके कई कारण हैं। भारतीय मछुओं के पास आधुनिक नौकाओं का अभाव है तथा शीत भण्डारों के अभाव में इस उद्योग का विकास नहीं हो पाया है।

भारत में मछली उत्पादन

भारत में मछली का उत्पादन १९६१ में ९·६ लाख टन था जो १९७० में १६.६ लाख टन से भी अधिक हो गया। भारत में मछली उत्पादन लगातार बढ़ रहा है। निम्न तालिका से मछली का उत्पादन स्पष्ट हो जाता है :

भारत में मछली का उत्पादन

वर्ष	इकाई	कुल मछली उत्पादन
१९५५	लाख टन	८.३
१९६१	" "	९·४
१९६६	" "	१३.७
१९७०	" "	१६.५
१९७४	" "	१९.७

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि मछली उत्पादन लगातार बढ़ा है। १९५५ में मछली का उत्पादन ८.३ लाख टन था जो कि द्वितीय योजना के अन्त तक ९.४ लाख टन हो गया और तृतीय योजना के अन्त तक १३·७ लाख टन हो गया। उसके बाद से इसमें आशातीत वृद्धि हुई है। किन्तु फिर भी भारत के कुल उपलब्ध वार्षिक मत्स्य भण्डार के केवल ग्यारह प्रतिशत भाग का ही उपयोग प्रतिवर्ष करने में सफल हो सका है। ऐसा अनुमान है कि भारत की वार्षिक मछली उत्पादन क्षमता डेढ़ करोड़ टन है। यह मानते हुए कि चतुर्थ योजना में निर्धारित लक्ष्य प्राप्त कर लिया जायगा, तो सन् १९७४ तक भी भारत अपनी कुल उत्पादन क्षमता के लगभग १३.३ प्रतिशत भाग को उत्पादित करने में सफल हो सकेगा।

मछली का विदेशी व्यापार

भारत से मछलियों का निर्यात किया जाता है। मछलियों के अतिरिक्त तेल तथा अन्य उत्पादनों का भी निर्यात होता है। हमारे निर्यात में प्रमुख भागीदार संयुक्त राज्य अमरीका और जापान हैं, किन्तु जिन अन्य देशों को भारत निर्यात करता है उनके नाम हैं, डेनमार्क, हालैण्ड, इंगलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर, लंका, ब्रह्मा आदि। निर्यात प्रमुखतः प्रशीतित झींगा मछलियों का होता रहा है, किन्तु डिब्बा बन्द एवं सुखाई गयी मछलियों का भी निर्यात होता है। बीस वर्ष पूर्व केवल १९,६२१ टन मछली एवं उत्पादन निर्यात होते थे जिनका मूल्य केवल २.४६ करोड़ था जो सन् १९७० में बढ़कर ३०,००० टन हो गया जिसका मूल्य ३४.२ करोड़ रुपये था। आगे निर्यात बढ़ेगा। आशा की गयी है कि यह निर्यात चतुर्थ योजना के अन्त तक ६० करोड़ रुपये और पांचवीं योजना के अन्त तक लगभग ११८ करोड़

रुपये का हो जायगा। इस प्रकार भारत के निर्यात व्यापार मे मछली उद्योग का स्थान महत्वपूर्ण बन जायगा।

भारतीय मछली उद्योग का पिछडापन

भारत का मछली उद्योग पिछडा हुआ है। अन्य देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक मछलियाँ कम पकडी जाती हैं। देश में मछलियों की माँग अधिक है लेकिन पूर्ति कम हो पाती है। मछली उद्योग के पिछडे होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

(१) धार्मिक कठिनाइयाँ—मछली उद्योग के विकास में धार्मिक कठिनाई बहुत महत्वपूर्ण है। धार्मिक विचारधाराओं के आधार पर इस उद्योग से कुछ वर्गों के लोग घृणा करते हैं। ये लोग मछलियाँ नहीं खाते हैं अत इनकी माँग की कमी रही है और इनसे, इन वर्गों के लोग इस उद्योग के विकास में सहायता भी नहीं करते। नये पीढी के लोगो मे अब धीरे-धीरे धार्मिक कट्टरता की कमी हो रही है और वे अब मत्स्य व्यवसाय की उत्पत्ति को आवश्यक मानने लगे हैं।

(२) लगातार मछलियों की पूर्ति का अभाव—मछली पकडने का व्यवसाय कुछ भागो मे सामयिक है अत लगातार पूर्ति नहीं हो पाती है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी समुद्रतटीय भाग में दक्षिण पश्चिम मानसूनो के समय मछलियाँ नहीं पकडी जा सकती हैं। इस कारण निरन्तर पूर्ति कठिनाई से हो पाती है।

(३) प्राचीन तरीके—भारत मे मछली पकडने के प्राचीन तरीके काम मे लाये जाते हैं। अधिकाश मछुए छोटी व पुरानी नावो को काम मे लाते हैं जिनसे अधिक मात्रा में मछली नहीं मिल पाती। भारत मे ट्रालन जहाज की कमी पायी जाती है अत. यह व्यवसाय अधिक उन्नति नहीं कर पाया।

(४) शीतभण्डार गृहों की कमी—व्यापारिक दृष्टि से मछली उत्पादन मे मछलियो के रखने के लिए शीत भण्डार गृहो की आवश्यकता पडती है क्योंकि भारत की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय है। अत गर्मी मे मछलियों को बचाना आवश्यक होता है। यहाँ शीत भण्डारो की कमी है अत मछली व्यवसाय उन्नत नहीं हो पाया।

(५) आवागमन के साधनों का अभाव—मछली को एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र भेजना पडता है क्योंकि ये शीघ्र खराब हो जाती हैं। भारत के अनेक क्षेत्रो में इन साधनो का अभाव है जिससे अच्छी मछलियाँ सड जाती हैं। बगाल के डेल्टा प्रदेशो में दलदली मिट्टी होने के कारण मछलियाँ शीघ्र बाहरी भागो मे नही ला पाते हैं। इसके अलावा आन्तरिक भागो मे भेजने के भी शीघ्रगामी साधन नही हैं।

(६) नदियों व तालाबों में मिट्टी का भराव—पश्चिमी बगाल क्षेत्र में कई नदियो तथा गड्ढो मे मिट्टी भरती जा रही है। इसके अतिरिक्त मद्रास क्षेत्र में तालावो मे मिट्टी भरती जा रही है। इस मिट्टी भरने के कारण मछलियो की उत्पत्ति कम होती जा रही है।

(७) मछुओं का अभावग्रस्त होना—अधिकांश मछुए महाजनों के कर्जदार होते हैं अतः मछलियाँ पकड़कर उनको दे देते हैं जिससे मछुओं को बहुत कम हिस्सा मिल पाता है अतः उनकी आर्थिक दशा खराब रहती है। कुछ मछुए साथ-साथ खेती का काम भी करते हैं अतः इसमें अधिक रुचि नहीं ले पाते।

(८) नवजात मछलियाँ पकड़ना—मछुए प्रायः छोटी-छोटी नवजात मछलियों को पकड़ लेते हैं। जिससे मछलियों की उत्पत्ति में कमी आने लगती है।

(९) समुद्री क्षेत्र के सीमित मात्रा में मछली पकड़ना—भारत के समुद्री क्षेत्र में केवल १० से २५ किलोमीटर तक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। अधिकतर मछलियाँ १० किलोमीटर की दूरी तक पकड़ी जाती हैं। अतः सीमित मात्रा में मछली उत्पादन होता है।

(१०) मछली के भोजन का अभाव—मछलियों का भोजन समुद्री वनस्पतियाँ (Plankton) तथा समुद्री जीव हैं। ये दोनों उष्ण समुद्रों में शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। शीत समुद्रों में ये जीव तथा वनस्पति अधिक समय तक रह सकते हैं। समुद्र उष्ण कटिबन्ध में होने के कारण यहाँ का मछली उत्पादन अधिक उन्नत नहीं हो पाया है।

(११) मछलियों के उपयोग सम्बन्धी जानकारी का अभाव—भारतीय मछुए मछलियों के विभिन्न उपयोग नहीं जानते। अशिक्षा की वजह से बहुत सी मछलियों का उपयोग नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की मछलियों के सम्बन्ध में जानकारी करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

(१२) गर्म जलवायु—भारत में गर्म जलवायु होने की वजह से मछली व्यवसाय की उन्नति नहीं हो पायी है। उष्ण जलवायु के कारण मछलियाँ अधिक समय तक नहीं रह पाती और शीघ्र सड़-गल जाती हैं। मछली उद्योग के लिए शीत जलवायु आवश्यक मानी जाती है। उष्ण जलवायु में अनेक जहरीली मछलियाँ भी पायी जाती हैं।

उक्त सभी कारणों से भारत में मछली उद्योग अधिक विकसित नहीं हो पाया है। इस उद्योग के विकास के लिए प्रमुख सुझाव नीचे दिये गये हैं

मछली उद्योग के विकास के लिए सुझाव

भारत में मछली व्यवसाय के भविष्य को सुन्दर व सुरक्षित बनाने के लिए निम्नलिखित उपायों पर ध्यान देना आवश्यक है :

(१) अज्ञात भण्डारों का पता लगाना—मछली के अज्ञात भण्डारों का शीघ्र पता लगाया जाय। समुद्र के तलों तक की मछलियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रतिध्वनि विस्तार यन्त्र (Electro sounder) से यह कार्य किया जा सकता है। इन यन्त्रों से नवीन मछली क्षेत्रों की जानकारी की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त खाने योग्य अन्य जीवों का भी पता लगाना चाहिए।

(२) वर्तमान मछली उद्योग में शीत भण्डार गृहों की व्यवस्था—वर्तमान मछली व्यवसाय में शीत भण्डारों की व्यवस्था करना आवश्यक है। भारत में गर्म

जलवायु होने के कारण मछलियाँ शीघ्र खराब हो जाती हैं अत उनको बचाने के लिए शीत भण्डार गृहो का विकास या विस्तार करना चाहिए।

(३) नवीन विधियो व वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग—समुद्रतटीय मछली व्यवसाय मे नवीन कलाओ तथा वैज्ञानिक तरीको को उपयोग में लना चाहिए। इस व्यवसाय मे काम मे आने वाली पुरानी कला को छोडकर नवीन औजारो को काम मे लेना चाहिए।

(४) मछली सहकारी समितियों की स्थापना—मछली व्यवसाय में सलग्न मछुओ और उपभोक्ताओ के मध्य मध्यस्थों को समाप्त करने के लिए सहकारिता के आधार पर इस उद्योग को सगठित करना चाहिए। इससे मछुओ की आर्थिक स्थिति मे भी सुधार होगा तथा उत्पादन म वृद्धि होगी।

(५) आधुनिक नौकाओं व ट्रालर जहाजों की सुविधाएँ देना—उत्पादन बढाने के लिए आधुनिक नौकाओ व ट्रालर जहाजो की सुविधा मिलनी चाहिए। मछुओ को इन नौकाओ तथा ट्रालर जहाजो के खरीदन के लिए सरकार द्वारा ऋण दिया जाना चाहिए तथा आसान किश्तो म उसकी वापसी होनी चाहिए।

(६) समुद्री क्षेत्रों का विस्तार करना—भारतीय मछुए बहुत कम दूर तक समुद्र की मछलियाँ पकडते हैं। वैज्ञानिक तरीको को अपनाकर तथा नवीन ट्रालर जहाजो को काम म लाकर अधिक दूर तक मछलियाँ पकडनी चाहिए।

(७) सहायक उद्योगों की उन्नति—मछली उद्योग से सम्बन्धित सहायक उद्योग जैसे खाद तेल उद्योगो का विकास करना चाहिए। इन उद्योगो के विकास से मछली उद्योग का अधिक विकास हो सकता है।

(८) यातायात व्यवस्था—मछलियो के पकडने के पश्चात् शीघ्र एक स्थान मे दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिए यातायात व्यवस्था करनी चाहिए। रेलों द्वारा विभिन्न स्थानो को जोडना चाहिए ताकि बडी मात्रा म और शीघ्र मछलियाँ दूर दूर तक पहुँचायी जा सकें।

इन उपायों को ध्यान म रखकर विकास किया जाना चाहिए। मछली की माँग की पूर्ति करने के लिए चतुर्थ योजना म सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अभी जितना उत्पादन होता है उससे माँग कही अधिक है।

मछली व्यवसाय की उन्नति के लिए सरकारी प्रयत्न

पिछले कुछ वर्षों मे मछली पकडने, पालन सरक्षण करने, माल तैयार करने, विपणन व्यवस्था, तकनीकी तरीको स विकास की तरफ प्रयत्न किये गये हैं। मछली विकास के कार्यक्रम दो भागो म विभक्त किय गये हैं। प्रथम, समुद्री मछलियों और द्वितीय भीतरी भागों से प्राप्त होने वाली मछलियो स सम्बन्धित कार्यक्रम चालू किये गये हैं। सरकार ने निम्नलिखित कार्य किय हैं

(१) अनुसन्धान—मछली व्यवसाय के नये साधनों की खोज के लिए सरकार ने अनुसन्धानशालाएँ स्थापित की हैं। बम्बई म गहरे समुद्र की मछलियो के

अनुसन्धान के लिए एक संस्थान स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त तूतीकोरन, विशाखापत्तनम, कोचीन, उड़ीसा तथा मद्रास में अनुसन्धानशालाएँ स्थापित की गयी हैं।

(२) विस्तार एवं प्रशिक्षण—मछली व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर अल्पकालीन प्रशिक्षण विस्तार संस्थाओं द्वारा दिया जाता है। मछुओं को मछली पकड़ने के अच्छे तरीके बताने के लिए अनेक स्थानों पर प्रशिक्षण संस्थाएँ स्थापित की गयी हैं। कलकत्ता में एक गवेषणा केन्द्र है जहाँ पर झीलों, तालाबों तथा नदियों से अधिक मछलियों का उत्पादन करना सिखाया जाता है। गुजरात में गहरे समुद्र में मछली पकड़ने का प्रशिक्षण दिया जाता है। मछली विस्तार संस्थाएँ प्रदर्शनियाँ लगाती हैं, विज्ञापन करती हैं तथा फिल्म दिखाती हैं।

बम्बई की केन्द्रीय मछली पालन शिक्षा संस्था द्वारा मछली व्यवसाय के प्रबन्ध अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त बैरकपुर में भी इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(३) शीत गोदाम—मछलियों को सड़ने-गलने से बचाने के लिए शीत गोदामों की व्यवस्था की जाती है। बम्बई, मंगलौर, कालीकट, कोचीन, त्रिवेन्द्रम, कलकत्ता, मद्रास तथा अन्य स्थानों पर T C M तथा Indo-Norwegian Project के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करके शीत गोदामों का निर्माण किया गया है।

(४) मछली व्यवसाय कला में यन्त्रीकरण—प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न तटीय प्रदेशों में मछली पकड़ने की कला का यन्त्रीकरण किया गया। इस समय देश में ७,८०० यन्त्रीकृत मछली नावें हैं। समुद्रतट से दूर तक मछलियाँ पकड़ने के लिए दो बड़े जहाज जो कि १०६ फीट लम्बे होंगे, प्राप्त होंगे इसके अतिरिक्त नावों से तीन बड़े मछली पकड़ने के जहाज प्राप्त किये जा चुके हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में गहरे समुद्र की मछलियाँ पकड़ने पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस योजना के अन्त तक ५,५०० नयी यन्त्रीकृत नावों का निर्माण किया जायेगा। इस प्रकार योजना के अन्त तक १३,३०० यन्त्रीकृत नावें हो जायेंगी। इस योजना के अन्त तक ३०० मध्य श्रेणी के ट्रेलर्स बनाये जायेंगे।

(५) मछली व बन्दरगाहों की स्थापना—मछली व्यवसाय के विकास के लिए मछली बन्दरगाहों की स्थापना की गयी है। वर्ष १९६९-७० में भटकल (Bhatkal) और बेपुर (Beypore) में मछली बन्दरगाहों का निर्माण किया गया है। पोरबन्दर, उमरगाँव (Umbergaon), करवाड़, कन्नानोर, मंगिपत्तनम, तूतीकोरन, कुडलोर आदि बन्दरगाहों का कार्य प्रगति पर है। मछली बन्दरगाहों के विकास के लिए महाराष्ट्र विकास कार्यक्रम (विश्व कोष) के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रारम्भ हो गया है।

(६) मछली विपणन और सहकारिता—केन्द्रीय मछली पालन निगम के द्वारा (जो कि १९६५ में केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित किया गया) दामोदर घाटी

निगम को मछलियों को लीज पर लिया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे राज्य तथा केन्द्रीय दोनो प्रकार के निगमो द्वारा मछली विपणन की निगरानी रखी जायेगी। मछुओ की आर्थिक दशा सुधारने के लिए मद्रास, केरल, बम्बई, उडीसा आदि मे लगभग २,१०० सहकारी समितियाँ स्थापित हुई हैं जिनका कार्य सदस्यों द्वारा पकडी गयी मछलियो का विपणन करना है।

प्रथम दो पचवर्षीय योजनाओ मे मत्स्य विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। पहली योजना मे २८ करोड और दूसरी योजना मे लगभग ६ करोड रुपये इसके लिए व्यय हुए। किन्तु तीसरी योजना मे यह व्यय लगभग २३ करोड रुपये था। इसके बाद तीन वार्षिक योजनाओ के काल (१९६६-६९) मे ३७ करोड रुपये व्यय किये गये। मत्स्य विकास पर चतुर्थ योजना मे व्यय का लक्ष्य ८४ करोड रुपये का निर्धारित किया गया है। हाल ही मे सयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (U. N. Development programme) के अन्तर्गत भारत की ५,६८० किलोमीटर लम्बी तट रेखा पर मछली पकडने के बन्दरगाहो का विकास करने के लिए एक सर्वेक्षण प्रारम्भ किया गया है। इस सर्वेक्षण पर कुल ११·२ लाख डालर का व्यय होगा जिसका अधिकाश भाग सयुक्त राष्ट्र के विशेष कोष (U. N. Special fund) से दिया जायगा। यह सर्वेक्षण सन् १९७२ तक पूरी हो जायगी और उसके बाद २·२ करोड डालर की लागत से देश मे १४ मत्स्य बन्दरगाहो (Fishing harbours) का विकास किया जायगा।

प्रश्न

१ भारत मे मछली व्यवसाय के पिछडा होने के कारण बताइए तथा इसको सुधारने के सुझाव दीजिए।

२ भारत सरकार ने मछली व्यवसाय के विकास के लिए १९५० के पश्चात् क्या प्रयत्न किये हैं? क्या ये प्रयत्न सन्तोषजनक हैं?

३. भारतीय अर्थव्यवस्था मे मछली व्यवसाय का क्या महत्त्व है? इस व्यवसाय की स्थिति के बारे मे सक्षिप्त परिचय दीजिए।

अध्याय ९

भारत मे सिंचाई

(IRRIGATION IN INDIA)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि के लिए अन्य दशाओं की अनुकूलता के साथ पर्याप्त जल की पूर्ति की आवश्यकता भी होती है। जल की पूर्ति प्राकृतिक वर्षा तथा कृत्रिम सिंचाई द्वारा हो सकती है। भारत में वर्षा अनिश्चित एवं अनियमित होने के कारण कृषि को कृत्रिम तरीकों से पानी देना पड़ता है। इस कृत्रिम तरीके से पौधों को पानी देने की क्रिया को सिंचाई कहा जाता है। प्रकृति द्वारा जब जल की कमी की पूर्ति नहीं होती तो उसकी पूर्ति सिंचाई द्वारा की जाती है। सिंचाई के अभाव मे भारतीय कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। देश मे सिंचाई के साधन पूर्णतः उन्नत नही हो पाये हैं अतः वर्षा पर आधारित रहना पड़ता है। जिस वर्ष मानसून नही आते या कम आते हैं तो देश मे अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अकालो से बचने, जन धन को बचाने तथा देश की समृद्धि के लिए सिंचाई का विकास परम आवश्यक है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मे निरन्तर भारत विदेशो मे खाद्यान्नो का आयात करता रहा है। इस समस्या के निवारण के लिए देश मे सिंचाई का महत्त्व और भी बढ़ गया है। ठीक समय पर तथा पर्याप्त मात्रा मे पानी की उपलब्धि, कृषि उत्पादकता का मूल निर्धारक तत्व है। पानी की उपलब्धि मे ही कृषि के उन्नत तरीकों को काम मे लाया जा सकता है और खाद का उपयोग हो सकता है। भारत सरकार ने गहन कृषि कार्यक्रम अपनाये हैं। उनके लिए सिंचाई अत्यन्त आवश्यक है

सिंचाई की आवश्यकता

भारत जैसे देश मे जहाँ वर्ष मे केवल चार महीनों मे वर्षा होती हो, फसलों की सिंचाई के लिए कृत्रिम तरीके अपनाने आवश्यक हो जाते हैं। भारत के उत्तर पश्चिमी भागो मे पानी का अभाव कृषि की बड़ी समस्या है जिसके कारण काफी क्षेत्र मे कृषि विकास नहीं हो पाता। कृषि को वर्षा की निर्भरता से मुक्त करके कृषि फसलो को समय पर पर्याप्त पानी की व्यवस्था करना कृषि की एक मौलिक समस्या का समाधान करना है। भारत मे सिंचाई की आवश्यकता निम्न प्रकार है

(१) **अनिश्चित वर्षा**—भारत की वर्षा की प्रमुख विशेषता उसकी अनिश्चितता है। वर्षा कभी समय से पहले हो जाती है और कभी पर्याप्त विलम्ब से होती है। कभी-कभी शुरू मे वर्षा समय पर हो जाती है और फिर लम्बी अवधि तक वर्षा

नही होती है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि प्रत्येक चार या पाँच वर्षों में एक बार सूखा पड जाता है जिससे कृषि अस्त-व्यस्त हो जाती है तथा देश की अर्थ-व्यवस्था असन्तुलित हो जाती है। वर्षा के इस व्यवहार से छुटकारा पाने के लिए सिंचाई के साधनो का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अपर्याप्त वर्षा—देश के कुछ भागों में वर्षा अपर्याप्त होती है। उत्तरी भारत के पश्चिमी भागों में वर्षा का अभाव रहता है। कभी-कभी बहुत कम होती है तथा कभी होती ही नहीं है। पश्चिमी मरुस्थल इसका उदाहरण है। इसके अतिरिक्त गगा-सतलज के मैदान के पश्चिमी भागो म वर्षा के इस अभाव को दूर करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता पडती है।

(३) असमान वितरण—भारतीय वर्षा का वितरण असमान है। देश के पूर्वी भागो (आसाम) मे अधिक वर्षा होती है। इस भाग के चेरापूंजी को विश्व के सबसे अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे गिना जाता है। इसके विपरीत राजस्थान के कई भागों में १० से० मी० से २५ सेण्टी मीटर तक ही वर्षा होती है। इस असमान वितरण के कारण कम वर्षा वाले भागों मे सिंचाई अनिवार्य हो जाती है। वर्षा की इतनी अधिक क्षेत्रीय असमानता विश्व के अन्य देशो मे कदाचित ही देखने को मिलेगी।

(४) वर्षा की मौसमी प्रकृति—देश म अधिकतर वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी हवाओ से होती है। ये हवाएँ वर्ष के एक निर्धारित समय में ही समुद्र की ओर से प्रवाहित होती हैं। अत अधिकाश वर्षा जून से अक्टूबर तक इन हवाओं से होती है। शीतकाल म बहुत थोडी वर्षा होती है जिसका वितरण सभी जगह समान नही है। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य महीनों मे पानी की कमी सिंचाई द्वारा पूरी की जा सकती है। वस्तुत भारत की सबसे महत्वपूर्ण रबी की फसल शीतकाल मे होती है। यह काल वर्षा रहित होता है। अत सिंचाई आवश्यक हो जाती है।

(५) कुछ फसलों को सिंचाई की विशेष आवश्यकता—देश म कुछ इस प्रकार की फसलें होती हैं जिनमे अधिक पानी की आवश्यकता पडती है। ये फसलें चावल, जूट, गन्ना आदि हैं, जिनको नियमित रूप से तथा पर्याप्त मात्रा में जल की आवश्यकता पडती है। देश के जिन भागो में वर्षा कम होती है तथा जहाँ ये फसलें अच्छी हो सकती हैं ऐसे भागों म सिंचाई की आवश्यकता पडती है।

(६) खाद्य समस्या से निपटारा—भारत मे खाद्य समस्या एक जटिल समस्या है जिसके निवारण की अत्यन्त आवश्यकता है। देश को खाद्यान्न के आयात पर निर्भर रहना पडता है जिससे विदेशो को देश की आय देनी पडती है। इस समस्या का समाधान देश म सिंचाई व्यवस्था को उन्नत करके किया जा सकता है, क्योंकि सिंचाई के अभाव मे खाद्यान्न के उत्पादन म वृद्धि नहीं हो सकती। सघन कृषि द्वारा अधिक उपज सिंचाई के बिना नही प्राप्त की जा सकती है।

(७) अतिरिक्त भूमि मे कृषि—देश का काफी भू भाग पानी के अभाव मे कृषि योग्य नहीं है। अगर कृषि की भी जाती है तो बहुत कम उत्पादन होता है।

जितना क्षेत्र कृषि योग्य है उसमें सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करके अतिरिक्त भूमि मे कृषि की जा सकती है। राजस्थान में अधिकतर क्षेत्र में पानी के अभाव में भूमि बेकार पड़ी रहती है। इस भूमि को सिंचाई द्वारा खेती के काम में लिया जा सकता है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर राजस्थान के पश्चिमी भाग में लिफ्ट सिंचाई योजना चालू की जा रही है।

(८) योजनाओं की सफलता के लिए—देश में आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में विकास कार्यक्रम हो रहे हैं। इनमें कृषि भी प्रमुख है। कृषि कार्यक्रमों मे सिंचाई सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि सिंचाई के अभाव में सघन कृषि कार्यक्रम अपनाना कठिन है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में जो लक्ष्य कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए निर्धारित किये गये हैं उनकी प्राप्ति के लिए सिंचाई बहुत आवश्यक है।

(९) *अकाल से रक्षा*—देश में प्रतिवर्ष किसी न किसी भाग में अकाल अवश्य पड़ता है। इससे अपार जन धन का नुकसान होता है। अकाल साधारणतः वर्षा के अभाव में पड़ते हैं और इनसे बचने का स्थायी हल सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करना है। वर्ष १९६८-६९ मे राजस्थान के बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर आदि जिलों में भयंकर अकाल के कारण राजस्थान की आर्थिक व्यवस्था को बहुत धक्का पहुँचा। काफी धन की हानि हुई। इस प्रकार की स्थिति का स्थायी इलाज सिंचाई हो सकता है।

(१०) यातायात विकास—देश के आन्तरिक भागों में बड़ी बड़ी सिंचाई योजनाओं के अंतर्गत नहरों में स्टीमर तथा नावें चलायी जा सकती हैं। इनसे आन्तरिक व्यापार में वृद्धि हो सकती है। नावों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान कम लागत में पहुँचाया जा सकता है। इस यातायात के विकास से सड़क व रेल यातायात के भार को हलका किया जा सकता है। पूर्वी यूरोप के देशों में अनेक नदियों को नहरों द्वारा जोड़ दिया गया है ताकि व्यापक जल यातायात की सुविधा हो सके।

(११) *अन्य*—*सिंचाई के साधनों के विकास से कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी* जिससे कि उद्योगों को अधिक कच्चा माल उपलब्ध हो सकेगा। इससे औद्योगिक उन्नति होगी। इसके अतिरिक्त देश की बढ़ती हुई जनसंख्या में रोजगार तथा खाद्य पदार्थों की पूर्ति सिंचाई द्वारा हो सकेगी।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दिन प्रतिदिन सिंचाई की आवश्यकता बढ़ती जाती है कृषि उपज में वृद्धि होती है और राष्ट्र की आय में वृद्धि होती है। सिंचाई के विकास से देश की आय बढ़ती जिसके परिणामस्वरूप लोगों के जीवन स्तर मे वृद्धि हो सकेगी।

सिंचाई की सुविधाएँ

सिंचाई की आवश्यकता की पूर्ति करने से पहले इस बात पर विचार करना

अत्यन्त आवश्यक है कि इसकी सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं या नहीं। देश के कुछ भागों में काफी सुविधाएँ हैं किन्तु थार के मरुस्थल जैसे क्षेत्र भी हैं जहाँ सिंचाई की सुविधाओं का अभाव है। ये सुविधाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं :

(१) पर्याप्त जल राशि—सिंचाई के लिए पर्याप्त जल राशि की सुविधा होना अति आवश्यक है। जल की उपलब्धि पृथ्वी की ऊपरी सतह पर भी हो सकती है और पृथ्वी के अन्दर से भी पानी निकाला जा सकता है। ऊपरी सतह पर पानी नदियों तथा नालों से उपलब्ध होता है। नदियों से नहरें निकाल कर सिंचाई की जा सकती है और पृथ्वी के भीतर से कुँओं से पानी निकाल कर सिंचाई की जा सकती है। भारत के अनेक भागों में जल उपलब्ध है। उत्तरी मैदान में हिमालय से आने वाली नदियों से जल उपलब्ध है। यहाँ नदियाँ वर्ष भर बहने वाली हैं अत. नहरों से लगातार सिंचाई की जा सकती है। दक्षिणी भारत में तालाबों की सुविधाएँ हैं परन्तु राजस्थान में सिंचाई के साधनों का अभाव है।

(२) समतल एवं मुलायम धरातल—सिंचाई के लिए भूमि समतल होनी चाहिए क्योंकि ऊबड़-खाबड़ भूमि में सिंचाई करने में बहुत कठिनाइयाँ आती हैं। सिंचाई के लिए कुँए तालाब तथा नहरों का निर्माण करना पड़ता है। इन कार्यों में मिट्टी खोदनी पड़ती है। मिट्टी मुलायम होने पर आसानी से खोदी जा सकती है। उत्तरी मैदानी भाग में मिट्टी काफी गहरी एवं मुलायम है। गंगा का मैदान समतल है तथा उसमें बहुत थोड़ा और क्रमिक ढाल है जिससे नहरें बनाने में काफी सुविधा मिलती है। दक्षिणी भारत में अधिकतर भूमि पथरीली होने के कारण नहरों और कुँओं का निर्माण कठिन है।

(३) वित्तीय साधन—नहरें, तालाब, कुँए आदि बनाने के लिए काफी पूँजी की आवश्यकता होती है। सबसे अधिक वित्त की आवश्यकता नहरों में होती है। कम पूँजी से नहरों का निर्माण नहीं किया जा सकता अतः इनके विकास के लिए पर्याप्त धन जुटाना होगा।

(४) सरकारी नीति—सिंचाई के विकास के लिए सरकार की अनुकूल नीति होनी चाहिए। बड़ी सिंचाई योजनाओं में बड़े पैमाने पर प्रयत्नों की आवश्यकता होती है जो कि सरकार द्वारा किये जा सकते हैं। इनमें वृहत् आर्थिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है जिसे सरकार प्रदान कर सकती है। इसके अतिरिक्त सरकार की सिंचाई के विकास की जिस प्रकार की नीति होगी विकास की गति उसी पर आधारित होगी। यदि सिंचाई कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाती है तो अनेक सुविधाएँ भी उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

(५) मशीनों की उपलब्धि एवं तकनीकी ज्ञान—सिंचाई की विभिन्न सुविधाएँ उपलब्ध करने के लिए मशीनों और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है जैसे बाँधों के निर्माण के लिए बड़ी मशीनों तथा तकनीकी विशेषज्ञों की पड़ती है। तकनीकी ज्ञान के अभाव में वृहत सिंचाई परियोजनाएँ पूरी नहीं की जा सकती हैं।

इसके अतिरिक्त छोटी सिंचाई योजनाओं में भी नवीन औजारों और आधुनिक मशीनों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में इस सुविधा की पूर्ति के लिए प्रथम तीन योजनाओं में काफी प्रयत्न किये गये हैं।

(६) उपजाऊ मिट्टी—सिंचाई के लिए उपजाऊ मिट्टी होना अत्यन्त आवश्यक है। उपजाऊ मिट्टी वाले भागों में सिंचाई की व्यवस्था करके ही उपज बढ़ायी जा सकती है। भारत में उत्तरी मैदानी भाग की मिट्टी काफी उपजाऊ है। इसके अतिरिक्त समुद्रतटीय मैदानी भागों में भी उपजाऊ मिट्टी है। इस उपजाऊ मिट्टी का उत्तम उपयोग करने के लिए सिंचाई की जाती है।

इन सुविधाओं के अतिरिक्त उन क्षेत्रों में, जहाँ नहरों का निर्माण करना है जनसंख्या भी पर्याप्त होनी चाहिए और अधिकतर व्यक्ति कृषि कार्यों में लगे हुये होने चाहिये ताकि सिंचाई की माँग हो। भारत में विभिन्न सुविधाएँ अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं और उन भागों में सिंचाई योजनाएँ चालू की गयी हैं।

सिंचाई के साधन

भारत की ८२ मिलियन हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा सकती है। ऐसा अनुमान है कि भारत में नहरों से ४० प्रतिशत, कुँओं से ३० प्रतिशत, तालाबों से २० प्रतिशत तथा अन्य साधनों से १० प्रतिशत सिंचाई होती है।

भारत में वर्षा से जो जलराशि प्राप्त होती है उसकी मात्रा लगभग ३०,००, ४४० करोड़ घन मीटर अनुमानित की गयी है। इसका २३ प्रतिशत भाप बन कर उड़ जाता है, २२ प्रतिशत भूमि के अन्दर छनकर (percolate) भूगर्भिक चट्टानों एवं तहों में जमा रहता है जिसे कुँआ एवं नल कूपों से पुनः धरातल पर लाया जा सकता है, और शेष ४५ प्रतिशत धरातल पर प्रवाहित होता है जिसकी मात्रा लगभग १,६८,००० करोड़ घन मीटर है। किन्तु मिट्टी, जलवायु एवं अन्य धरातलीय असमानताओं के कारण इस समस्त धरातलीय जल प्रवाह (Surface water flow) का उपयोग नहीं किया जा सकता है। इसमें से लगभग ५६,००० घन करोड़ मीटर (अर्थात कुल धरातलीय जल प्रवाह का लगभग ३५ प्रतिशत) जलराशि ही सिंचाई के काम में लायी जा सकती है। सन् १९५१ में ९,५०० करोड़ घन मीटर जल का उपयोग सिंचाई के लिए हो रहा था—अर्थात उपयोग योग्य धरातलीय जल प्रवाह का १७ प्रतिशत। द्वितीय योजना के अन्त में सन् १९६१ में यह मात्रा १४,८०० करोड़ घन मीटर (अर्थात २७ प्रतिशत) और तीसरी योजना के अन्त तक सन् १९६६ में यह मात्रा १८,५०० करोड़ घन मीटर (अर्थात उपयोग योग्य धरातलीय जल प्रवाह का ३६ प्रतिशत) हो गया। चतुर्थ योजना के अन्त तक यह मात्रा २५,८०० करोड़ घन मीटर अर्थात उपयोग योग्य धरातलीय जलप्रवाह का ४६ प्रतिशत हो जायगी। आगे इसे और बढ़ाया जा सकेगा।

भारत में पृथ्वी तल से निकाले जाने वाले (Ground water) से लगभग २२ मिलियन हेक्टेयर अतिरिक्त पानी प्राप्त किया जा सकता है जिसका उपयोग

कुँओ, नलकूपो के द्वारा किया जा सकता है। भारत मे सिंचाई के विभिन्न साधनों का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है·

देश मे सिंचाई के तीन प्रमुख साधन हैं जो निम्न प्रकार हैं :

(१) नहरें; (२) तालाव, (३) कुँए।

भारत के धरातल की वनावट विभिन्न स्थानो पर असमान है। इस वनावट के आधार पर सिंचाई के विभिन्न साधन काम मे लाये जाते हैं। उत्तरी भारत में मुख्यत कुँओ और नहरो से और दक्षिणी भारत मे अधिकांशत तालाबो से सिंचाई होती है। इन साधनो का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :
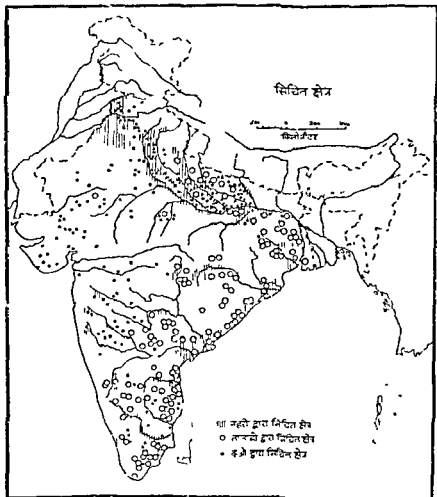
(१) नहरें (Canals)

भारत मे सिंचाई के प्रमुख साधन नहरें हैं। नहरों के लिए विशेषकर समतल भूमि तथा नदियो के जल की लगातार प्राप्ति आवश्यक है। ये सुविधाएँ अधिकांशत. उत्तरी मैदान में उपलब्ध हैं अतः यहाँ नहरो का जाल सा विछा हुआ है।।नदियों

के अतिरिक्त नहरों को पानी बड़े-बड़े तालाबों से भी पहुँचाया जाता है। दक्षिणी भारत में तालाबों से ही अधिकतर नहरों को पानी दिया जाता है। पानी की दृष्टि से नहरें दो प्रकार की होती हैं—अनित्यवाही अथवा मौसमी नहरें और स्थायी अथवा नित्यवाही नहरें।

(१) अनित्यवाही अथवा मौसमी नहरें (Inundation Canals)—अनित्यवाही नहरें पानी के अभाव में वर्ष भर नहीं बह सकतीं। वर्षा ऋतु में जब वर्षा से नदियों में अधिक पानी आता है तभी इन नहरों में जल प्रवाह हो पाता है। ये नहरें विशेषकर अक्टूबर से मई तक जलाभाव में सूखी रहती हैं। नदियों में वर्षा अधिक होने पर बाढ़ आती है तब इन नहरों को पानी देकर बाढ़ से छुटकारा पाया जा सकता है। इन नहरों का प्रमुख दोष यह है कि इनसे सिंचाई वर्ष भर नहीं हो पाती है। अतः आजकल इस प्रकार की नहरों का निर्माण नहीं किया जाता।

(२) नित्यवाही अथवा स्थायी नहरें (Perennial Canals)—जैसा कि नहरों के नाम से विदित होता है कि ये हमेशा बहने वाली नहरें होती हैं। ये नहरें वर्ष भर बहने वाली नदियों से निकाली जाती हैं जिनसे वर्ष भर इनको पानी उपलब्ध हो सके। उत्तरी भारत में नित्यवाही नदियाँ काफी हैं अतः उनसे नित्यवाही नहरें निकाली गयी हैं और वर्ष पर्यन्त स्थायी तौर पर सिंचाई की जाती है।

भारत में नहरों से सिंचाई कुल सिंचित क्षेत्रफल के लगभग ४० प्रतिशत भाग में होती है। यहाँ नहरों से सिंचाई का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है—उत्तरी भारत की नहरें तथा दक्षिणी भारत की नहरें। इन दोनों भागों की नहरों का नीचे विस्तृत वर्णन किया गया है.

उत्तरी भारत की नहरें

उत्तरी भारत में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा राजस्थान में नहरों से सिंचाई होती है। इन राज्यों में नहरों की स्थिति निम्न प्रकार है:

पंजाब और हरियाणा की नहरें

पंजाब और हरियाणा राज्यों में वर्षा २० से० मी० से ४० से० मी० तक होती है। भूमि उपजाऊ होने के कारण यहाँ सिंचाई अत्यन्त आवश्यक समझी गयी और नहरों का निर्माण किया गया। यहाँ की मुख्य नहरें निम्नलिखित हैं

(१) पश्चिमी यमुना नहर (Western Jamuna Canal)—इसको सबसे पहले १४वीं शताब्दी में शेरशाह सूरी ने बनवाया परन्तु इस नहर को सिंचाई योग्य १९वीं शताब्दी में बनाया गया था। यमुना नदी के दाहिने किनारे से 'तेजवाला' के निकट से निकाली गयी है। यह नहर ३,२०० किलो मीटर लम्बी है। इस नहर की तीन मुख्य शाखाएँ हैं—(१) दिल्ली शाखा, (२) हांसी शाखा, (३) सिरसा शाखा। पश्चिमी यमुना नहर शाखा और प्रशाखाओं सहित ४ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई करती है। इससे हरियाणा राज्य में करनाल, अम्बाला, हिसार, रोहतक आदि और पंजाब में पटियाला जिले में सिंचाई होती है।

(ii) सरहिन्द नहर (Sirhind Canal)—यह नहर १८६२ मे बनानी शुरू की गयी। सरहिन्द नहर सतलज नदी से रूपड स्थान पर निकाली गयी है। यह नहर शाखाओं सहित ६,११५ किलो मीटर लम्बी है। इसकी प्रमुख शाखाएँ पटियाला, भटिन्डा, अमोर, घग्घर, कोटला तथा दोआ आदि हैं। शाखाओं सहित इस नहर से लगभग ८ लाख हेक्टेअर भूमि मे सिचाई होती है। पजाव म नाभा, फिरोजपुर, पटियाला तथा लुधियाना म और हरियाणा मे जिन्द और हिसार जिलो मे इससे सिंचाई की जाती है।

(iii) ऊपरी बारी दोआब (Upper bari Doabs)—इस नहर का निर्माण १८५९ म हुआ, यह रावी नदी से माधोपुर (पठान कोट के पास) से निकाली गयी है। इस नहर की कुल लम्बाई २,९०० किलो मीटर है। लगभग ७ लाख हेक्टेयर भूमि मे इस नहर से सिंचाई होती है। मुख्य शाखाएँ सवरो, कसूर, लाहौर आदि हैं। अमृतसर तथा गुरदासपुर जिलो मे इस नहर से सिंचाई होती है। इस नहर का कुछ भाग पाकिस्तान मे चला गया।
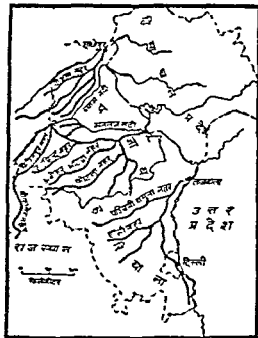
(iv) भाखरा की नहरें—यह १९५४ मे बनी। पजाव में पटियाला, अम्बाला और हरियाणा मे करनाल एव हिसार तथा उत्तरी राजस्थान मे सिचाई इस नहर प्रणाली से होती है। शाखाओ और उपशाखाओ सहित इसकी लम्बाई लगभग ६ हजार किलोमीटर है। ये नहरें भाखरा नागल योजना का अग है। भाखरा नागल योजना भारत की सबसे बडी नदी घाटी योजना मानी जाती है। इन नहरों का विस्तृत वर्णन नदी घाटी योजनाओ के अन्तर्गत किया गया है।

बिस्त-नहर (Bist-Canal)—इस नहर का निर्माण भी १९५४ मे हुआ। व्यास तथा सतलज नदियों के दोआव को बिस्त दोआब (Bist doab) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह नहर सतलज नदी से नोवा नामक स्थान से निकाली गयी है। वस्तुतः यह नहर भाखरा योजना का ही अग है और बिस्त-दोआब मे चार लाख हेक्टर भूमि म सिंचाई करती है जिसका लाभ मुख्यतः जालन्धर और होशियारपुर जिलो को होता है।

इन नहरों के अलावा १९५४ मे 'पूर्वी नहर' बनायी गयी जिसमे रावी नदी का अतिरिक्त पानी काम मे लाया जाता है। इससे फिरोजपुर जिले मे सिंचाई की

जाती है। इसके अतिरिक्त 'गुड़गाँव योजना की नहर' हरियाणा राज्य में है। यह जमुना नदी से निकाली जा रही है। इससे गुड़गाँव जिले में ३.२ लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई हो सकेगी।

उत्तर प्रदेश की नहरें

उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में नहरों का जाल सा बिछा हुआ है। इस राज्य की कृषि उन्नति में नहरों का पर्याप्त योग दान रहा है। राज्य की कुल बोयी जाने वाली भूमि का ३० प्रतिशत नहरों द्वारा सिंचित है। उत्तर प्रदेश में निम्नलिखित नहरें हैं :

(१) पूर्वी यमुना नहर—पूर्वी यमुना नहर फैजाबाद के निकट यमुना नदी से निकाली गयी है। इसका निर्माण शाहजहाँ काल में आरम्भ किया गया और सिंचाई कार्य १८३० में प्रारम्भ किया गया। इस नहर की लम्बाई शाखाओं सहित १,४४० किलोमीटर है। इससे मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और बुलन्दशहर में २ लाख हेक्टेअर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(२) आगरा नहर—आगरा नहर यमुना नदी के दायें किनारे से दिल्ली से १८ किलोमीटर दूर ओखला नामक स्थान से निकाली गयी है। इसका निर्माण १८७४ में हुआ। शाखाओं सहित नहर की लम्बाई १,६०० किलोमीटर है। इस नहर से दिल्ली, मथुरा, आगरा भरतपुर, गुड़गाँव आदि में १.२ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(३) ऊपरी गंगा नहर—ऊपरी गंगा नहर हरिद्वार के निकट गंगा नदी के दाहिने किनारे से निकाली गयी है। इसका निर्माण कार्य १८५४ में पूर्ण हुआ। मुख्य

नहर ३४० किलोमीटर लम्बी है और शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ५,६४० किलो-मीटर है। इस नहर की प्रमुख शाखाएँ भाटा और अनूप शहर हैं। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, बुलन्द शहर, अलीगढ़, कानपुर, एटा, इटावा, मथुरा, फतहपुर, फर्रुखाबाद आदि क्षेत्रों में सिंचाई होती है। कुल सिंचाई ७ लाख हेक्टेयर भूमि में होती है। ऊपरी गंगा नहर से गंगा की निचली नहर और आगरा नहर को जल प्रदान किया जाता है।

(४) गंगा की निचली नहर—इस नहर को गंगा नदी से नरौरा (बुलन्दशहर जिला) के निकट से निकाला गया है। यह नहर १८७८ में निकाली गयी। शाखाओं सहित इस नहर की लम्बाई ४,८२५ किलोमीटर है। इसकी इटावा तथा कानपुर मुख्य शाखाएँ हैं। इस नहर से एटा, फतेहपुर, कानपुर, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, आदि जिलों में लगभग ४ ५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(५) शारदा नहर—घाघरा नदी की सहायक नदी शारदा से १९२८ में यह नहर निकाली गयी। भारत व नेपाल की सीमा के निकट वनवासा नामक स्थान पर यह नहर निकाली गयी। शाखाओं और उपशाखाओं सहित इस नहर की लम्बाई लगभग १२,३७० किलोमीटर है। इस नहर के द्वारा लगभग २१·५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। इस नहर की मुख्य शाखाएँ शारदा देवा, बीसलपुर, सीतापुर, खेरी, निगोही, हरदोई तथा लखनऊ हैं। इससे इलाहाबाद, लखनऊ, हरदोई, खेरी, सीतापुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, बाराबंकी, शाहजहाँपुर, बरेली, पीलीभीत, फैजाबाद आदि भागों में सिंचाई की जाती है।

(६) बेतवा नहर—बेतवा नहर का पूर्ण निर्माण १९०९ में हुआ। झाँसी के निकट 'परीचा' नामक स्थान से यह नहर निकाली गयी है। इसकी प्रमुख शाखाएँ कठौना तथा हमीरपुर हैं। इस नहर से लगभग १ ५ लाख हेक्टेयर में झाँसी हमीरपुर तथा जालौन आदि क्षेत्रों में सिंचाई होती है।

(७) अन्य—उत्तर प्रदेश की अन्य नहरों में केन नहर, घग्घर नहर, धसान नहर आदि है जिनसे मिर्जापुर, हमीरपुर तथा बांदा जिलों में सिंचाई होती है।

बिहार राज्य की नहरें

बिहार राज्य में सोन तथा गण्डक नदियों से नहरें निकाली गयी हैं। इस राज्य में वर्षा की अनियमितता के कारण सिंचाई की जाती है। बिहार की कुल बोयी जाने वाली भूमि का लगभग २२ प्रतिशत नहरों द्वारा सिंचित है। यहाँ प्रमुख नहरें निम्नलिखित हैं :

(१) पूर्वी सोन नहर—इस नहर का निर्माण १८७५ में हुआ। सोननदी के दाहिने किनारे से 'बारन' नामक स्थान से यह नहर निकाली गयी है। इसे पटना नहर भी कहा जाता है क्योंकि पटना के समीप इसे गंगा नदी में मिला दिया गया है। पूर्वी सोन नहर से गया और पटना जिलों में लगभग ३ ५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है। इस नहर की लम्बाई लगभग १३५ किलोमीटर है।

(२) पश्चिमी सोन नहर—सोन नदी के बायें किनारे से डेहरी नामक स्थान से यह नहर निकाली गयी है जिसे पश्चिमी सोन नहर कहते हैं। इस नहर की मुख्य दो शाखायें हैं एक शाखा को बक्सर के निकट गंगा नदी से मिला दिया गया है। शेष एक शाखा की तीन उपशाखायें हैं जो डुमराव, आरा तथा चौसा नहरें हैं। आरा नहर भी गंगा में मिल जाती है। पश्चिमी सोन नहर से शाहाबाद जिले में सिंचाई होती है।

(३) त्रिवेणी नहर—यह नहर गण्डक नदी से त्रिवेणी नामक स्थान के निकट से निकाली गयी है। बिहार के चम्पारन जिले में २.३५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है।

(४) अन्य नहरें—बिहार में मयूराक्षी नदी पर बनाये बाँध से नहरें निकाली गयी हैं जिनसे लगभग ५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। इसके अतिरिक्त गण्डक बाँध जो कि गण्डक नदी पर बनाया गया है जिससे दो नहरें निकालकर चम्पारन, मुजफ्फरपुर और दरभंगा के लगभग १० लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा सकती है।

पश्चिमी बंगाल की नहरें

पश्चिमी बंगाल में वर्षा अधिक होती है अतः सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है। जिन भागों में वर्षा की कमी रहती है वहाँ निम्नलिखित नहरें हैं :

(१) दामोदर नदी की नहरें—दामोदर नदी पर बाँध बनाकर दो नहरों का निर्माण किया गया है जिनसे आसनसोल, हुगली, बर्दवान जिलों में लगभग ४ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(२) एडन नहर—एडन नहर का निर्माण १९३८ में हुआ। इससे १० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। इस नहर की लम्बाई लगभग ३४ किलोमीटर है।

(३) तिलपाड़ा बाँध की नहर—सूरी नामक स्थान पर मयूराक्षी नदी पर बाँध बनाकर इससे ये नहरें निकाली गयी हैं जिनसे वीरभूमि, बर्दवान और मुर्शिदाबाद जिलों में लगभग १० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(४) मिदनापुर नहर—यह नहर कोसी नदी से १८८८ में मिदनापुर के निकट निकाली गयी है। इस नहर के कुछ भाग में सिंचाई होती है तथा कुछ भाग में नावें चलायी जाती हैं। लगभग ५० हजार हेक्टेयर भूमि में इससे सिंचाई की जाती है।

राजस्थान की नहरें

राजस्थान राज्य में वर्षा का अभाव रहता है अतः सिंचाई की बहुत आवश्यकता है। इस भाग में जल की उपलब्धि के अभाव में तथा रेतीले भाग होने के कारण अधिक नहरों का निर्माण नहीं हो पाया है। आजकल पश्चिमी भाग के मरुस्थल को हरे-भरे खेतों में परिवर्तित करने की योजना है। राजस्थान नहर जो

इस राज्य की महत्वपूर्ण नहर है, के बन जाने से इस क्षेत्र का काफी विकास हो सकेगा। राजस्थान की मुख्य नहरें निम्नलिखित हैं

(१) गग नहर अथवा बीकानेर नहर—इस नहर का निर्माण १९२८ मे किया गया। सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट यह नहर निकाली गयी है। यह सीमेण्ट की बनायी गयी है। राजस्थान मे बीकानेर क्षेत्र के गगानगर, रायपुर, पदमपुर, रायसिंह नगर, अनूपगढ तहसीलों मे सिचाई होती है। इस नहर से लगभग १·५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिचाई की जाती है। इस नहर की मुख्य शाखाएँ लालगढ, लक्ष्मीनारायण जी, समिजा व करणीजी हैं। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई १,२८० किलोमीटर है।

(२) राजस्थान नहर—व्यास और सतलज नदी के सगम पर हरीके बाँध से राजस्थान नहर को निकाला गया है। इस नहर पर कार्य जून १९५८ में प्रारम्भ किया गया और सम्पूर्ण काय को दो चरणों म पूरा किया जायेगा। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक इस नहर से ३१ १६ हजार हक्टेयर भूमि की सिंचाई की गयी। राजस्थान नहर का विस्तृत विवरण "राजस्थान म सिचाई' क अध्याय में किया गया है।

(३) भाखरा की राजस्थान शाखा—भाखरा की राजस्थान शाखा से गगानगर जिल के लगभग ४ लाख हेक्टेयर मे भी अधिक भूमि मे सिचाई की जा सकेगी। भाखरा नागल परियोजना मे सिचाई कार्य सर्वप्रथम १९५४ में शुरू कर दिया गया था। वर्ष १९६६-६७ मे इस शाखा से राजस्थान की १·१५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिचाई की गयी। इसके विस्तृत विवरण के लिए "नदी घाटी योजनाओं" के अध्याय को देखिए।

(४) चम्बल की नहरें—चम्बल घाटी योजना के अन्तर्गत नहरों का निर्माण हो चुका है। इनसे राजस्थान के कोटा, झालावाड, बूँदी, सवाई माधोपुर, टोंक तथा भरतपुर जिलो मे सिंचाई प्रदान की जायेगी। इसका विस्तृत विवरण "नदी घाटी योजनाओं" के अध्याय म किया गया है।

दक्षिणी भारत की नहरें

दक्षिणी भारत मे महाराष्ट्र, मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश की नहरें हैं। इस भाग की नहरें अधिकतर डेल्टा प्रदेशों मे बनायी गयी हैं। पश्चिम समुद्रतटीय भागों मे वर्षा काफी होने के कारण सिचाई की आवश्यकता नही पडती। पूर्वी समुद्रतट पर वर्षा कम होती है अत यहाँ गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियों से डेल्टों में सिंचाई की जाती है।

महाराष्ट्र की नहरें

महाराष्ट्र मे नहरो के विकास की अच्छी दशाओं के अभाव म अधिक नहरों का विकास नहीं हो पाया है। इस क्षेत्र की मुख्य नहरें निम्न प्रकार हैं :

(१) गोदावरी नदी की नहर—बेल झील के पास बाँध बनाकर गोदावरी नदी से दो नहरें निकाली गयी हैं। इनकी कुल लम्बाई २०० किलोमीटर है। अहमद-

नगर तथा नासिक जिलों में लगभग ३० हजार हेक्टेयर भूमि में इन नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है।

(२) भण्डारदरा बाँध की नहरें—इस बाँध से लगभग १३७ किलोमीटर लम्बी नहरों का निर्माण किया गया है। अहमदनगर जिले में इससे लगभग २५ हजार हेक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है।

(३) गंगापुर बाँध की नहर—इस बाँध के बायीं ओर नहर निकाली गयी है उसे नासिक नहर कहते हैं। इसकी लम्बाई लगभग ३८ किलोमीटर है तथा इससे २० हजार हेक्टेयर भूमि से भी अधिक क्षेत्र में सिंचाई होती है।

(४) मूठा नहरें—इन नहरों का निर्माण पीने के पानी की उपलब्धि के लिए किया गया था। इसमें दो नहरें हैं जिनकी कुल लम्बाई १४२ किलोमीटर के लगभग है। इससे बहुत कम सिंचाई होती है।

(५) नीरा नहरें—ये नहरें नीरा नदी पर बाँध बनाकर निकाली गयी हैं। इनसे पूना और शोलापुर जिलों में लगभग ७० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है।

मद्रास राज्य की नहरें

मद्रास राज्य में निम्नलिखित नहरें हैं :

(१) पेरियर योजना—यह योजना पेरियर नदी की योजना है। यह नदी केरल राज्य में होकर अरब सागर में गिरती है। इस नदी का जल कोई काम नहीं आता था। यह इलायची की पहाड़ियों से निकलकर पश्चिम की तरफ बहती है। इन पहाड़ियों के पूर्व में मद्रास के कुछ क्षेत्रों में वर्षा की कमी रहती है। अतः इस नदी पर बाँध बनाकर उसमें झील का निर्माण किया गया है और इस झील से ३ किलोमीटर लम्बी सुरंग बनाकर पानी को पूर्व की तरफ से लाया गया है। इस पानी से लगभग ७० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। पेरियर योजना की नहरों की लम्बाई ४३० किलोमीटर है।

(२) मेट्टूर योजना—इस योजना के अन्तर्गत १९४३ में एक बाँध बनाया गया। यह कावेरी नदी पर मेट्टूर नामक स्थान पर बनाया गया है। इस बाँध से लगभग २०० किलोमीटर लम्बी नहरें निकाली गयी हैं जो कि कावेरी नदी के डेल्टा प्रदेशों में पहुँचायी गयी हैं। इस प्रदेश में ये लगभग ८० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई करती हैं।

(३) निचली भवानी योजना की नहर—जिसमें भवानी नदी पर एक बाँध बनाकर झील का निर्माण किया गया है। इस झील से नहरें निकाल कर कोयम्बटूर जिले में लगभग ६० हजार हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

आन्ध्र प्रदेश की नहरें

आन्ध्र प्रदेश की प्रमुख नहरें निम्नलिखित हैं

(१) गोदावरी डेल्टा की नहरें—ये नहरें गोदावरी नदी पर बाँध बनाकर

निकाली गयी है। इन नहरों की शाखाओं सहित लम्बाई ३,२२० किलोमीटर है। इन नहरों के द्वारा डेल्टा प्रदेशों में ५ ४ लाख हेक्टयर भूमि म सिंचाई की जाती है।

(२) **कृष्णा डेल्टा की नहरें**—कृष्णा नदी का जल बांध बनाकर इकट्ठा किया गया है जिसमे दो नहरें निकाली गयी हैं। इन नहरों का निर्माण १८६८ में किया गया। कृष्णा नदी के डेल्टा प्रदेश में इन नदियों से ४ लाख हेक्टयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(३) **तुंगभद्रा योजना की नहरें**—तुंगभद्रा नदी कृष्णा की सहायक नदी है जिस पर मालापुरम नामक स्थान पर बांध बनाया गया है। इस बांध से नहरें निकालकर १ लाख हेक्टेयर भूमि म सिंचाई की जाती है।

(४) **कृष्णा पेनार योजना**—कृष्णा तथा पनार नदियों पर बांध बनाकर इनमें नहरें निकाली जाती हैं जिनसे इस प्रदेश की ११ ५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। इन नहरों की कुल लम्बाई लगभग १,३३० किलोमीटर है।

(५) **अन्य**—आन्ध्र प्रदेश में अन्य रामपद सागर योजना तथा कृष्ण बैरेज परियोजना प्रमुख हैं। कृष्ण नदी पर १९५६ में एक बांध बनाकर नहरें निकाली गयी हैं जिनसे डेल्टा और ऊपरी क्षेत्रों में ३० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है। रामपद सागर योजना के अन्तर्गत भी बांध से दो नहरें निकाली गयी हैं जिनसे ११ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है।

केरल राज्य की नहरें

इस राज्य की प्रमुख नहरें निम्नलिखित हैं :

(१) **मगलम योजना की नहरें**—मगलम योजना के अन्तर्गत इस राज्य में दो नहरों पर निर्माण किया गया है। बांध बनाकर जल संग्रह की व्यवस्था की गयी है जिससे इनको पानी दिया जाता है। दोनों नहरों से ३,४०० हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(२) **मालमपुना बांध की नहरें**—मालमपुना बांध का निर्माण १९५६ में किया गया। इसमें निकाली गयी नहरों से २१ हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(३) **बलायर योजना**—यह योजना बलायर नदी की योजना है। इस नदी पर १९५७ में एक बांध का निर्माण किया और जलाशय बनाया गया है। इस जलाशय से चार नहरें निकाली गयी हैं जिनसे लगभग ३ हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

मध्यप्रदेश की नहरें

मध्यप्रदेश में निम्न नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है :

(१) **महानदी नहर**—यह नहर महानदी से खद्री नामक स्थान से निकाली गयी है जिसकी कुल लम्बाई लगभग १,५५० किलोमीटर है। इस नहर का निर्माण १९२७ में किया गया। इससे मध्यप्रदेश के लगभग १·३ लाख हेक्टेयर भूमि म सिंचाई की जाती है।

(२) वेनगंगा नहर—वेनगंगा नहर, वेनगंगा नदी से निकाली गयी है जिसकी लम्बाई लगभग ४८ किलोमीटर है और इसमें बालघाट तथा भण्डारा जिलों में ४ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

(३) तन्दुला नहर—इस नहर का निर्माण १६२५ में हुआ। सूखा तथा तन्दुल नदियों पर दो बाँधो का निर्माण करके इस नहर को निकाला गया है। तन्दुला नहर के द्वारा दुर्ग और रायपुर जिलों में लगभग ७.५ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में नहरों से सिंचाई का काफी महत्व है लेकिन उत्तरी भारत में इनका महत्व अधिक है। उत्तरी भारत में अनेक सुविधाओं की उपलब्धि के कारण नहरों का विकास अधिक हो सका है। इस क्षेत्र में नहरों के अधिक विकास के निम्न कारण हैं

(१) गंगा सतलज जल प्रणाली—उत्तरी भारत में नहरों के अधिक विकास का कारण इस भाग में गंगा सतलज नदियों में वर्ष भर पानी उपलब्ध है। गंगा सतलज तथा इनकी सहायक नदियों का जाल सा बिछा हुआ होने के कारण विभिन्न भागों में नहरों से सिंचाई होती है।

(२) मैदान का क्रमिक ढाल—गंगा-सतलज के मैदान की विशेषता है कि ये क्रमिक ढालू हैं। गंगा नदी का मैदान पश्चिम से पूरब की तरफ क्रमिक ढालू है जिससे नहरों में पानी ले जाने में काफी सुविधा होती है। सतलज नदी का ढाल उत्तर-पूरब से दक्षिण-पश्चिम की तरफ ढालू है।

(३) मुलायम समतल कछारी मिट्टी—उत्तरी मैदान की मिट्टी समतल मुलायम मिट्टी है जिसमें नहरें खोदने में कठिनाई नहीं होती तथा यह बहुत उपजाऊ है अतः सिंचाई अधिक होती है। इस मैदान में चट्टान नहीं है अतः नहरों का जाल सा बिछा हुआ है।

(४) कृषि क्षेत्र तथा घनी आबादी—उत्तर का मैदानी भाग घना आबाद है और यहाँ अधिकांश भूमि पर खेती की जाती है। अधिकतर जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी हुई है अतः नहरों का विकास अधिक हो पाया।

इन सुविधाओं के कारण उत्तरी भारत में नहरों से अधिक सिंचाई होती है। उत्तरी भारत में पूर्वी पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक नहरें हैं। यहाँ अधिकांश भूमि में नहरों से सिंचाई होती है।

नहरों द्वारा सिंचाई से लाभ

नहरों से सिंचाई करने से निम्न लाभ प्राप्त हो सकते हैं :

(१) भारत में वर्षा के अभाव में कृषि उन्नति नहीं हो सकती। नहरों से सिंचाई करके अधिक मात्रा में बंजर भूमि को लहलहाते खेतों में परिवर्तित किया जा सकता है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश इस बात की पुष्टि करते हैं।

(२) नहरों से सिचाई द्वारा अधिक क्षेत्र में कृषि उन्नति के नये तरीके अपना कर सघन कृषि कार्य अपनाया जा सकता है।

(३) सिंचित भूमि से अन्य भूमि की अपेक्षा अधिक उपज हो सकती है। विशेषकर जिन भागों मे वर्षा का अभाव पाया जाता है वहां फसल उत्पादन में सिचाई से पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। नहरों से यह कार्य अधिक मात्रा में अपनाया जा सकता है। यह देखा गया है कि बरानी या सूखी खेती की तुलना में नहरी क्षेत्रों में ड्योढ़ी से लगाकर दुगुनी उपज प्रति हेक्टर हो सकती है।

(४) नहरों द्वारा सिंचाई के साथ साथ यातायात का भी विकास हुआ है। कुछ भागो मे जहां रेलों तथा सड़कों का अभाव पाया जाता है वहां इनसे यातायात हो सकता है। उदाहरण के लिए, पूर्वी डेल्टा प्रदेशों में सिचाई के अलावा नहरों से यातायात भी होता है।

(५) देश की खाद्य समस्या को दूर करने के लिए नहरों द्वारा सिचाई आवश्यक हो जाती है। नहरों से अधिक भूमि में सिंचाई करके कृषि उत्पादन में अधिक वृद्धि की जा सकती है।

(६) सरकार को नहरों पर लगायी पूंजी पर आवकारी कर एव सुधहाली करों के रूप मे पर्याप्त आय हो जाती है।

(७) नहरों की खुदायी मे लाखों भूमिहीन परिवारों को रोजगार मिल जाता है। विशेषतः अकाल के समय इन प्रकार के कार्यों से बड़ी राहत मिलती है।

इन लाभों के साथ-साथ ही नहरों से सिचाई से कुछ हानियां भी हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है :

नहरों द्वारा सिंचाई की हानियां

नहरों से सिचाई से निम्नलिखित हानियां होती हैं :

(१) नहरों म जो पानी आता है उसमें अनेक प्रकार के लवण व अन्य पदार्थ घुले होते हैं जिससे खेतो की मिट्टी पर लवण की रेह जमा हो जाती है जो कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर देती है। नहरों के समीप खेतों में सेम की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। अधिक नमी (moisture) के कारण फसलों को नुकसान होने लगता है।

(२) नहरों पर कुंओ तथा तालाबों से अधिक खर्चा होता है अत इनको सरकार द्वारा बनाया जा सकता है। अन्य साधनों मे कम खर्चा होने के कारण निजी रूप मे भी बनाय जा सकते हैं।

(३) देश के सभी भागो मे वर्ष भर पानी न मिलने के कारण उचित समय पर पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता। कभी-कभी किसान अधिक पानी खेतों को दे देते हैं जिससे भी फसलों को हानि होती है।

उक्त हानियों को देखकर यह समझना अनुचित होगा कि नहरों से हानि होती है। हानियां लाभों की तुलना मे बहुत कम हैं। अतः जिन भागों में नहरों का निर्माण हो सके आवश्यक रूप से करना चाहिए।

तालाब
(Tanks)

धरातल के बनावट की भिन्नता के कारण कुछ भागों में कठोर व पथरीली भूमि पायी जाती है। इस कठोर धरातल पर कुँओं का निर्माण कठिन होता है। अत प्राकृतिक या कृत्रिम तालाबों का निर्माण किया जाता है जिनमें वर्षा का पानी इकट्ठा हो जाता है और उससे सिंचाई की जाती है।

नदियों पर बाँध बनाकर उनका पानी जलाशयों में इकट्ठा करके भी सिंचाई की जाती है। दक्षिण भारत में अधिकतर सिंचाई परियोजनाओं में नदियों पर बाँध बनाकर उनसे जलाशयों म पानी इकट्ठा किया जाता है जिसे फिर सिंचाई के काम में लाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि भारत में इस समय पाँच लाख बड़े तालाब हैं, जबकि छोटे तालाबों की संख्या लगभग पचास लाख होगी।

भारत में कुल सिंचित क्षेत्र का २० प्रतिशत तालाबों द्वारा सींचा जाता है। भारत में सबसे अधिक तालाब मद्रास, आन्ध्र, मैसूर, मध्य प्रदेश व राजस्थान के कुछ भागों में हैं। यद्यपि अधिकतर उत्तर प्रदेश, मद्रास, आन्ध्र राज्यों में बनाये गये हैं। आन्ध्र प्रदेश के कुछ तालाब प्रसिद्ध हैं जैसे निजामसागर, कृष्णराज सागर। राजस्थान में भी बालसमन्द, जयसमन्द, राजसमन्द, पिछोला आदि प्रसिद्ध तालाब या कृत्रिम झीलें हैं। कहीं-कहीं इनसे छोटी नहरें या नालियाँ निकाल कर सिंचाई की जाती हैं। वैसे प्रायः इनके जल का उपयोग पेय जल के लिए भी होता है। अब मछली पालन के लिए भी इनका उपयोग किया गया है। नौका वाहन एवं पर्यटन तथा मनोरंजन के स्थल के रूप में भी ये उपयोगी हैं।

तालाब अधिकतर दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

(१) दक्षिण भारत में सिंचाई के अन्य साधनों को नहीं अपनाया जा सकता क्योंकि भूमि अधिकतर पथरीली है जिससे कुँओं और नहरों का निर्माण करना कठिन होता है।

(२) दक्षिण भारत की नदियाँ वर्षा ऋतु में अधिक जल प्रवाहित करती हैं अतः उनका पानी तालाबों और जलाशयों में इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर आवश्यकता पड़ने पर उसे काम में लाया जाता है।

(३) तालाबों का पानी काफी समय तक उपयोग में लाया जाता है अत भूमि ऐसी होनी चाहिए जो पानी को सोख न जाय। दक्षिणी भारत में भूमि कठोर है अतः तालाबों के पानी को नहीं सोखती।

इन कारणों की वजह से तालाबों से सिंचाई दक्षिणी भारत में अधिक होती है। दक्षिणी भारत में अधिक तेज बहने नदियाँ हैं अत उन स्थानों पर और अधिक बनाये जा सकते हैं।

तालाबों के दोष

तालाबों के निम्नलिखित दोष हैं -

(१) वर्षा द्वारा पानी प्राप्त होने की वजह से वर्षा के व्यवहार के आधार पर पानी इकट्ठा हो पाता है। कभी-कभी वर्षा कम होती है तो तालाबो में पानी का अभाव हो जाता है।

(२) वर्षा के पानी के साथ मिट्टी बहकर आ जाती है जो कि तालाबो मे जमा हो जाती है। इससे तालाबो की गहराई कम हो जाती है।

(३) इनसे खेतो तक पानी पहुँचने में काफी धन और श्रम की आवश्यकता होती है। इनकी सिंचाई क्षमता सीमित होती है जिसका उपयोग स्थानीय रूप से हो सकता है।

कुँओ द्वारा सिंचाई

भारत म कुल सिंचित क्षेत्रफल क ३० प्रतिशत भागो म कुँओं द्वारा सिंचाई की जाती है। नहरो तथा तालाबो की अपेक्षा कुँओं मे कम व्यय होता है। अत निजी तौर पर भी इनका निर्माण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिन भागो मे नहरें तथा तालाब नही बनाय जा सकत वहाँ कुँओं द्वारा सिंचाई की जा सकती है। कुँओं द्वारा सिंचाई पृथ्वी तल से पानी निकाल कर की जाती है। सन् १९७१ क आरम्भ म भारत म सब प्रकार के कुँओं की सख्या लगभग साठ लाख थी। चतुर्थ योजना के अन्त जल तक लगभग पैंसठ लाख हो जायगी। इनमे पक्के कुँए कम हैं तथा अधिकाश कुएँ कच्चे हैं जो कुछ समय बाद नष्ट हो जाते हैं। पचवर्षीय योजनाओं मे किसानों को सीमेंट आदि सुलभ किया गया है तथा कुँओं के निर्माण के लिए पर्याप्त ऋण एव अनुदान दिये गये हैं। अत. पिछले बीस वर्षों मे पक्के कुँओं की सख्या मे वृद्धि हुई है। एक पक्का कुँआ औसतन ५ से १५ हेक्टर भूमि की सिंचाई कर सकता है, जबकि कच्चे कुँओं से मुश्किल मे २ या ३ हेक्टर भूमि ही सींची जा सकती है। जहाँ तक कुएँ के निर्माण के लिए पूँजी लागत का प्रश्न है यह अनेक तत्वो पर निर्भर होती है। जैसे मिट्टी एव चट्टानो का प्रकार, भूमि के नीचे जल स्तर (Water-level) की गहराई इत्यादि। जहाँ गहराई कम है वहाँ एक पक्का कुआँ सामान्यतः दो तीन हजार रुपयो मे बन जाता है, किन्तु गहराई बढने के साथ-साथ यह लागत पाँच हजार से पच्चीस हजार रुपये तक हो सकती है। पश्चिम राजस्थान के बाडमेर, जैसलमेर क्षेत्र म जहाँ भूमिगत पानी की गहराई ४०० फीट से भी अधिक है, इस लागत मे और वृद्धि हो जाती है।

कुँओं के लिए निम्न अनुकूल परिस्थितियो का होना अनिवार्य है :

(१) भूमि की ऊपरी सतह से पानी कम गहराई पर होना चाहिए, ताकि सिंचाई मे सुविधा हो सके।

(२) सिंचाई के लिए खारा पानी अच्छा नही होता, अतः कुँओं मे खारा पानी नही होना चाहिए।

(३) मिट्टी पथरीली अथवा कठोर नहीं होनी चाहिए जिससे खोदन में कठिनाई हो।

कुँओ से सिंचाई की जा सकती है। कुँओं के द्वारा इस समय लगभग ८० लाख हेक्टेयर भूमि मे सिंचाई की जाती है।

नलकूप
(Tube Wells)

साधारण कुँओ से कम क्षेत्र म सिंचाई की जा सकती है। अधिक क्षेत्र मे सिंचाई के लिए नलकूपो का निर्माण किया जाता है। नलकूपो की सफलता के लिए (i) भूमि मे पानी की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए (ii) पानी अधिक गहरा नही होना चाहिए, (iii) सिंचाई की मांग वर्ष भर मे ३ २०० घण्टो से कम न हो, (iv) मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिए। प्राय 'पम्पसेट' एव 'ट्यूब वैल' को एक समान ही समझ लिया जाता है किन्तु इनम वस्तुत अन्तर है। पम्पसेट किसी भी छोटे बडे पक्के कुएँ मे लगाया जा सकता है। ट्यूबवैल मे कुआं खोदने की आवश्यकता नही होती है वलिक धरातल पर वरमे (Drilling Machine) मे सूराख करके पाइप फिट कर दिया जाता है जिसे विद्युत मोटर द्वारा सचालित किया जाता है। 'पाताल तोड कुँआ' (Artesian Well) केवल वही वनाया जा सकता है जहां भूमिगत चट्टानो की रचना विशिष्ट प्रकार की होती है जिन्हे तोडकर या जिनमे छेद करके भू-गर्भिक जल के भण्डार को धरातल पर लाया जाता है। आस्ट्रेलिया मे ऐसे अनेक कुँए हैं। भारत मे भी अव कुछ स्थानो पर ऐसी चट्टानी रचना का पता लगा है। गुजरात मे वीरमगांव के निकट ऐसे कुएँ का निर्माण किया गया है और राजस्थान मे भी ऐसे कुँओ के निर्माण के प्रयास हो रहे हैं। ट्यूबवैल उन क्षेत्रो मे सिंचाई के लिए अति उपयोगी होते हैं जहां नहरो द्वारा सिंचाई सम्भव नहीं हैं। ट्यूबवैल से लगभग ढाई सौ से तीन सौ हेक्टर भूमि की सिंचाई सरलता से की जा सकती है। वडा ट्यूबवैल चार सौ हेक्टर भूमि मे सिंचाई कर सकता है। प्रथम योजना के प्रारम्भ मे देश मे केवल २,५०० ट्यूब वैल थे जबकि तृतीय योजना के अन्त मे सन् १९६६ तक इनकी सख्या ११,२०० हो गयी। उसके वाद इसमे शीघ्रता से वृद्धि हुई है।

नलकूपो द्वारा अधिक सिंचाई उत्तर प्रदेश में की जाती है। इसके अतिरिक्त पजाव, विहार, उडीसा, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यो मे इनसे सिंचाई की जाती है।

सिंचाई और पचवर्षीय योजनाएँ

सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की कृषि अवस्था मे सुधार करने के लिए सिंचाई के विकास की तरफ ध्यान दिया। सरकार ने अनेक वडी तथा छोटी सिंचाई योजनाएँ पिछले वीस वर्षों मे चालू की हैं।

प्रथम योजना के आरम्भ मे भारत मे केवल २२० लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई होती थी, जबकि तीसरी योजना के अन्त मे देश का सिंचित क्षेत्र वढ़ कर ३२० लाख हेक्टर हो गया, अर्थात् योजना काल के प्रथम पन्द्रह वर्षों में इसमें ४५

प्रतिशत की वृद्धि हुई। उसके बाद इसमें निरन्तर वृद्धि हुई है और सन् १९६९-७० के अन्त में हमारा कुल सिंचित क्षेत्र ३७२ लाख हेक्टर था अर्थात् योजनाओं के प्रथम बीस वर्षों में इसमें ७५ प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी थी। मार्च सन् १९७१ में सिंचित क्षेत्र बढ़कर ३८६ लाख हेक्टर हो गया तथा चतुर्थ योजना के अन्त तक यह बढ़कर ४३० लाख हेक्टर हो जायगा। इस प्रगति का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :

योजना-काल में सिंचित क्षेत्र में वृद्धि

वर्ष	सिंचित क्षेत्र (लाख हेक्टर)	कुल बोयी जाने वाली भूमि के प्रतिशत के रूप में सिंचित क्षेत्र
१९५१	२२०	१५
१९५६	२५०	१६
१९६१	२८०	१८
१९६६	३२०	१९
१९७१	३८६	२०
१९७४ (लक्ष्य)	४३०	२२
१९८९ (लक्ष्य)	५८०	२५

सिंचाई वस्तुतः राज्य सरकारों का दायित्व है किन्तु बड़ी सिंचाई योजनाएँ केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा पूर्ण की जाती हैं। मध्यम एवं लघु सिंचाई योजनाएँ राज्य सरकारें स्वयं पूरी करती हैं। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अभी देश में कुल बोयी जाने वाली भूमि का पाँचवाँ भाग ही सिंचाई सुविधाओं का लाभ उठा रहा है। पाँचवीं योजना के अन्त तक (सन् १९८९ तक) कुल कृषित क्षेत्र के अनुपात में सिंचित क्षेत्र लगभग चौथाई हो जायगा।

विभिन्न योजनाओं में बड़ी, मध्यम एवं छोटी सिंचाई परियोजनाओं के लिए पर्याप्त धनराशि व्यय की गयी है। प्रथम योजना से लगाकर सन् १९६९ तक के उन्नीस वर्षों में बड़ी एवं मध्यम दर्जे की सिंचाई योजनाओं पर लगभग १,८५० करोड़ रुपयों की धनराशि व्यय की जा चुकी है। छोटी सिंचाई योजनाओं पर व्यय की गयी धनराशि इसके अतिरिक्त है। बड़ी एवं मध्यम सिंचाई योजनाओं पर किये गये व्यय का विवरण निम्न प्रकार है :

बड़ी एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं पर योजना-वार व्यय

योजना	वास्तविक व्यय राशि (करोड़ रुपये)
१ प्रथम योजना (१९५१-५६)	३०४
२ द्वितीय योजना (१९५६-६१)	४२५
३. तृतीय योजना (१९६१-६६)	६६४
४. तीन वार्षिक योजनाएँ (१९६६-६९)	४५७
प्रथम उन्नीस वर्षों का योग	१,८५०
५ चतुर्थ योजना (१९६९-१९७४) प्रस्तावित	१,०८९
योग	२,९३९

इस प्रकार चौथी योजना के अन्त तक भारत मे बडी एव मध्यम सिंचाई परियोजनाओ पर २,६३६ करोड रुपये व्यय हो चुकेगा।

सिंचाई के साधनो के विस्तार मे बाधाएँ

भारत मे सिंचाई के साधनो के विकास के सामने निम्न बाधाएँ हैं

(१) **वित्त व्यवस्था**—सिंचाई की बडी व मध्यम आकार की योजनाओ मे बडी मात्रा मे वित्त व्यवस्था करनी पडती है। इन योजनाओ को चालू करने के लिए हमारे देश मे धन का अभाव है अत बडी योजनाओ को चलान म कठिनाई होती है।

(२) **तकनीकी ज्ञान का अभाव**—भारत मे तकनीकी शिक्षा का अधिक विकास नही हो पाया है। बडी-बडी योजनाओ को कार्य रूप मे परिणित करने के लिए विदेशो से तकनीकी सहायता ली जाती है।

(३) ***धरातल रचना सम्बन्धी बाधा***—*भारत भूमि का सम्पूर्ण धरातल एक* जैसा नही है। दक्षिण के पठार की अधिकतर भूमि पथरीली है अत यहाँ नहरो तथा कुँओ के निर्माण मे बाधाएँ आती हैं। राजस्थान मे रेतीला भाग होने के कारण सिंचाई बहुत खर्चीली पडती है।

(४) **अनुसन्धान कार्यों का अभाव**—सिंचाई सम्बन्धित विभिन्न योजनाओ के लिए अनुसन्धान कार्यक्रमो म शिथिलता पायी जाती है। अनुसन्धान व रिसर्च के अभाव मे अधिक धन व्यय होता है।

सिंचाई विकास के सुझाव

सिंचाई के विकास के लिए श्री निजलिंगप्पा समिति के सुझाव महत्त्वपूर्ण हैं जिसने कि अपनी रिपोर्ट जनवरी १९६५ मे पेश की थी। इस समिति के सुझाव निम्नलिखित हैं

(१) **नयी योजनाओ का लक्ष्य**—सिंचाई की नवीन योजना खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि करने के लक्ष्य मे बनायी जायें।

(२) **लाभ को महत्त्व**—इस समिति ने लाभ के महत्त्व पर अधिक जोर दिया। इस समिति का यह मत है कि १०० रुपये की पूँजी के विनियोग से ५० रुपये लाभ प्राप्त हो अर्थात् १५० रुपये की कुल प्राप्ति होनी चाहिए।

(३) ***पुरानी योजना को प्राथमिकता***—*इस समिति के अनुसार पुरानी* योजनाएँ जो पूर्ण नही हुई हैं उन्हें पूरा किया जाय।

(४) **योजनाओ मे समन्वय**—इस समिति ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि बडी, मध्यम तथा लघु योजनाओ म समन्वय स्थापित किया जाय।

(५) **निर्धारित राशि का प्रयोग**—समिति के अनुसार जो धन राशि सिंचाई क्षेत्र मे लगायी जाती है उसे अन्य क्षेत्रो म स्थानान्तरित न की जाय।

(६) **शुल्क**—समिति ने सुझाव दिया है कि सिंचाई से प्राप्त लाभो के २५ से ४० प्रतिशत भाग जल शुल्क के रूप मे किसानो से वसूल किया जाय।

(७) सुधार-शुल्क देने वाले क्षेत्रों में नयी सुविधाएँ—जिन क्षेत्रों में कृषक सुधार के लिए शुल्क देने को तत्पर हों, वहाँ नवीन योजनाएँ चालू करने की प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त निम्न सुझाव भी महत्त्वपूर्ण हैं :

(१) वित्तीय सहायता—छोटी सिंचाई योजनाओं के लिए किसानों को वित्तीय सहायता देनी चाहिए। यह सहायता ऋण एवं अनुदान के रूप में हो सकती है। सहकारिता के आधार पर इस तरफ अधिक प्रयत्न किये जा सकते हैं।

(२) सन्तुलित विकास कार्यक्रम—सिंचाई व्यवस्था का सन्तुलित विकास अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न राज्यों में जो साधन उपलब्ध हो सकते हैं उनकी व्यवस्था करनी चाहिए। राजस्थान जैसे क्षेत्रों में विराट सिंचाई योजनाएँ चालू करनी चाहिए ताकि बेकार भू-भाग कृषि योग्य हो सके।

(३) अनुसन्धान को प्रोत्साहन—अनुसन्धान कार्यों को प्रोत्साहित करना अत्यन्त आवश्यक है। इन कार्यों से सिंचाई से सम्बन्धित विभिन्न बातों का अनुमान लगाया जा सकेगा तथा योजना निर्माण में काफी मदद मिलेगी।

(४) अन्य—केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अधिक अनुदान देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग किया जाना चाहिए।

सिंचाई की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सरकार को अधिक भूमि में सिंचाई के साधनों का विकास करना होगा ताकि वह क्षेत्र जोकि सिंचाई से वंचित है अधिक उत्पादन के योग्य हो सके। देश की खाद्य समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि देश के विभिन्न भागों में सिंचाई का अधिकतर विकास किया जाय। देश में सघन कृषि कार्यक्रम चालू किये गये हैं। अभी तक उन्हीं भागों में ये कार्यक्रम चालू किये गये हैं जहाँ सिंचाई पहले से हो रही है। भविष्य में इन कार्यक्रमों के विस्तार के लिए अधिक सिंचाई व्यवस्था करने की योजना है। हाल ही में केन्द्रीय सरकार ने नलकूपों से सिंचाई करने पर काफी जोर दिया है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में देहातों में बिजली का विस्तार होगा ताकि नलकूपों को बिजली उपलब्ध हो सके। आशा है शीघ्र ही भारत के सभी भागों में जहाँ आवश्यकता है सिंचाई के साधन उपलब्ध होंगे। इनके विकास से थार के मरुस्थल जैसे क्षेत्र भी हरे-भरे खेतों में परिणित हो सकेंगे।

प्रश्न

१. भारत के विभिन्न प्रान्तों में नहरों द्वारा सिंचाई का विस्तृत वर्णन कीजिए। राजस्थान नहर का आर्थिक महत्त्व बताइए।

(टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६६)

२. भारत मे सिंचाई के विभिन्न साधनों का वर्णन कीजिए और उनके महत्त्वों पर प्रकाश डालिए।

३. भारत मे सिंचाई की क्यों आवश्यकता है ? यहां इसकी कौन-कौन सी सुविधाएँ उपलब्ध हैं ?

४. "भारत मे कृषि उन्नति के लिए सिंचाई के साधनो की उन्नति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके बिना खाद्य समस्या सुलझ नहीं सकती।" इस कथन का विवेचन कीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी० १९६८)

५ भारत मे सिंचाई के विकास की क्या बाधाएँ हैं ? उनके लिए सुझाव दीजिए।

अध्याय १०

नदी घाटी योजनाएँ

(RIVER VALLEY PROJECTS)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने आर्थिक विकास के लिए नदी घाटी योजनाएँ चालू की हैं। इन योजनाओं को बहु-उद्देशीय परियोजनाएँ भी कहा जाता है, क्योंकि इनसे अनेक उद्देश्य की पूर्ति की जाती है। इन परियोजनाओं म सिंचाई व्यवस्था, जल-विद्युत का निर्माण, मछली पालन, यातायात, बाढ़ नियन्त्रण, वृक्षारोपण तथा मिट्टी कटाव से रक्षा आदि अनेक उद्देश्यों के आधार पर कार्य किया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था म इन परियोजनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

"नदी घाटी योजनाएँ वर्तमान भारत के तीर्थ स्थान हैं।" ये वास्तव में आधुनिक भारत की विकासशील अर्थव्यवस्था के प्रतीक हैं। कृषि विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में सिंचाई तथा विद्युत की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के कटाव को रोकना अति आवश्यक है। इनकी पूर्ति इन परियोजनाओं से ही सकती है। औद्योगिक विकास के लिए भी कच्चे माल एवं विद्युत की आवश्यकता पड़ती है। नदी घाटी योजनाओं के विकास से इनकी प्राप्ति हो सकती है। इन परियोजनाओं द्वारा यातायात भी सुलभ बनाया जाता है। अतः राष्ट्रीय आय में इनका बहुत महत्व है। भारत में अकाल की समस्या और बाढ़ की समस्या आदि वर्षा के व्यवहार के परिणाम हैं, इन परियोजनाओं से ये दूर की जा सकती हैं।

नदी घाटी योजनाएँ अथवा बहुउद्देशीय योजनाओं के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :

(१) सिंचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग—नदी घाटी योजनाओं से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो सकती है। भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एवं प्रबन्ध इन योजनाओं के अन्तर्गत हो सकता है। भारत म वर्षा के अनिश्चित व्यवहार के कारण सिंचाई आवश्यक है और इन योजनाओं से पर्याप्त मात्रा म जल की उपलब्धि करके सिंचाई की जा सकती है। हमारे देश म वर्षा काल साल के कुछ महीनों तक ही सीमित होता है तथा शेष महीनों म वर्षा प्रायः नहीं के बराबर होती है जबकि

हमारी सबसे महत्वपूर्ण रबी की फसल वर्षा विहीन काल में होती है, जिसके लिए सिंचाई की व्यवस्था तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत बाँधों एवं जलाशयों का निर्माण करके पर्याप्त जल के एकत्रीकरण की व्यवस्था न की जाय।

(२) जल विद्युत—देश के औद्योगीकरण के लिए सस्ती और पर्याप्त मात्रा में विद्युत शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति नदियों के पानी से जल विद्युत उत्पन्न करके की जाती है। भारत में जल विद्युत (Hydel Power) की महत्ता इसलिये और भी अधिक हो जाती है, क्योंकि यह शक्ति स्वयं कृषि-विकास में सहायता करती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ नहरें नहीं पहुँच सकतीं विद्युत प्रसार के द्वारा सिंचाई के लिए नल-कूपों (Tube-wells) का जाल सा बिछाया जा सकता है। कृषि विकास एवं सिंचाई के अतिरिक्त छोटे-बड़े उद्योग धन्धों के विकास के लिए भी जल-विद्युत अन्य शक्ति के साधनों की तुलना में अधिक सुविधाजनक एवं सस्ता साधन है। यह शक्ति का ऐसा साधन है जो सरल एवं स्वच्छ ही नहीं, बल्कि स्थायी (Permanent) भी है अर्थात कभी न समाप्त होने वाला स्रोत है। कोयला और तेल के भण्डार चुक सकते हैं, अणु-ईंधन के अभाव में अणु-शक्ति केन्द्र (Atomic Power Stations) बन्द हो सकते हैं, किन्तु जब तक धरातल पर जल प्रवाह होता रहेगा जल-विद्युत एक शक्ति के साधन के रूप में मानव को सदैव उपलब्ध होता रहेगा। इस दृष्टि से मूल्यांकन करने पर नदी घाटी योजनाओं का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

(३) बाढ़ नियन्त्रण—भारत में बाढ़ की समस्या जटिल समस्या है। वर्षा काल में नदियों में पानी की अधिकता के कारण प्रायः बाढ़ आया करती हैं। बाढ़ से जन धन की हानि होती है। इस पर नियन्त्रण करने के लिए इन योजनाओं की सहायता ली जाती है। भारत में दामोदर, महानदी, ब्रह्मपुत्र, कोसी आदि नदियों से काफी हानि होती थी लेकिन आजकल इन योजनाओं के द्वारा कुछ हद तक नियन्त्रण किया गया है।

(४) मछली पालन—इन योजनाओं के अन्तर्गत जलाशयों में पानी इकट्ठा किया जाता है जिनमें मछली पालन व्यवसाय किया जा सकता है। भारत में देश के भीतरी भागों में मछली उत्पादन बढ़ाने में इन योजनाओं से काफी मदद मिल सकती है।

(५) यातायात—देश के भीतरी भागों में जल मार्गों का विकास इन योजनाओं के अन्तर्गत हो सकता है। नदी घाटी योजनाओं में नहरों का भी निर्माण किया जाता है, जिनसे सिंचाई के अतिरिक्त यातायात की सुविधा भी उपलब्ध होती है।

(६) मिट्टी के कटाव पर नियन्त्रण—नदी घाटी योजनाओं में बाँध बना कर पानी के वेग पर नियन्त्रण किया जाता है। इससे बाढ़ पर नियन्त्रण होता है

और फलस्वरूप मिट्टी के कटाव पर नियन्त्रण होता है। भारत में यह बहुत बड़ी समस्या थी जिसका धीरे-धीरे अनेक योजनाओं के अन्तर्गत समाधान किया गया है।

(७) वृक्षारोपण तथा वन-विकास—नदी घाटी योजनाओं में वृक्षारोपण किया जाता है। वर्तमान वनों की रक्षा की जाती है तथा उनका विकास भी किया जाता है।

(८) पशुओं के लिए चारा—इन योजनाओं के अन्तर्गत पशुओं के लिए अच्छे किस्म के चारे की व्यवस्था की जाती है। अनेक स्थानों पर पानी उपलब्ध होने से पशुओं को अधिक चारा उपलब्ध होता है।

(९) मलेरिया नियन्त्रण—नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत मलेरिया नियन्त्रण भी किया जाता है। नदियों के पानी से तथा वर्षा के पानी से दलदली भागों तथा गड्ढों में मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे मलेरिया फैलता है। इन योजनाओं में इन मच्छरों को समाप्त करने की व्यवस्था की जाती है।

(१०) आमोद-प्रमोद—नदी घाटी योजनाओं में कृत्रिम झीलों का निर्माण किया जाता है। विद्युतघर तथा बाँधों के निर्माण से सौन्दर्य वृद्धि होती है, जिन्हें देखने लोग दूर दूर से आते हैं। देश के बड़े बड़े बाँध एवं जलाशय, पर्यटन (Tourism) के महत्त्वपूर्ण स्थल बनते जा रहे हैं जहाँ देश विदेश के लाखों यात्री पहुँचते हैं। इस प्रकार इससे पर्यटन व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलता है।

(११) सर्वांगीण विकास—देश के सर्वांगीण विकास के लिए इन योजनाओं में प्रयत्न किये जाते हैं। कृषि, उद्योग तथा व्यापार की उन्नति के प्रयास किये जाते हैं। जिससे आर्थिक उत्थान होता है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नदी घाटी योजनाओं के द्वारा अनेक उद्देश्यों की पूर्ति होती है और देश का बहुमुखी विकास होता है। बहुउद्देशीय योजनाओं का आरम्भ संयुक्त राज्य अमरीका की टेनिसी वैली अथॉरिटी (Tennesse Valley Authority) के ढंग पर किया गया है। इस योजना के अनेक उद्देश्य थे परन्तु प्रमुख उद्देश्य बाढ़ नियन्त्रण था। नदी के तेज प्रवाह को कम करने के लिए अनेक बाँधों का निर्माण किया है, जिसमें पानी एकत्रित किया जाता है। सिंचाई तथा जल-विद्युत का इस योजना से काफी विकास हुआ। संसार के अन्य देश जैसे भारत, जर्मनी, रूस आदि ने इस घाटी योजना से प्रेरित होकर नदी घाटी योजनाएँ चालू कीं जिनमें काफी सफलता मिली। भारत में भी जल शक्ति के उपयोग के लिए बहु-उद्देशीय परियोजनाएँ चालू की गईं। भारत में दामोदर वैली कारपोरेशन (D V. C.) का आरम्भ उपर्युक्त योजना से प्रेरणा प्राप्त करके ही किया गया।

प्रमुख नदी घाटी योजनाएँ

भारत में अनेक नदियों का असीम जल-स्रोत है। यहाँ गंगा, सिन्धु नदी, ब्रह्मपुत्र नदी, दामोदर घाटी, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, ताप्ती तथा नर्मदा नदियों का पानी समुद्र में बह जाता है। इन नदियों द्वारा वर्षा काल में बाढ़ आती

है, जिनसे अपार क्षति होती है। अतः इन नदियों पर पिछले बीस-बाईस वर्षों में नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत अनेक बाँध एवं जलाशय बनाये गये हैं। नीचे भारत की कुछ महत्त्वपूर्ण नदी घाटी योजनाओं का वर्णन किया गया है :

दामोदर घाटी योजना
(Damodar Valley Project)

बिहार के पालामऊ जिले में छोटा नागपुर के पठार से दामोदर नदी निकलती है। उद्गम स्थान पर इसकी ऊँचाई लगभग ६०० मीटर है। इसकी कुल लम्बाई लगभग ६०० किलोमीटर है। बिहार राज्य में यह नदी लगभग २६० किलोमीटर बहकर पश्चिमी बंगाल में प्रवेश करती है और यहाँ हुगली नदी में मिल जाती है। नागपुर के पठारी भाग में वर्षा अधिक होने के कारण इस नदी में भयंकर बाढ़ें आती,

है और किनारे बहने लगते हैं। इससे जन-धन की अपार हानि होती है। अतः इसको शोक की नदी कहा जाता है।

दामोदर घाटी के सर्वांगीण विकास तथा बिहार और बंगाल को बाढ़ से बचाने के लिए १६४८ में अलग अधिनियम (Separate Act) द्वारा दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) की स्थापना की गयी। इस निगम का संगठन 'टेनिसी वैली अथोरिटी' (T V A) के आधार पर किया गया। टी वी ए. की भाँति इस निगम के शीर्ष प्रबन्ध मण्डल (Governing Board) में तीन सदस्य रखे गये, जिनमें से एक अध्यक्ष है तथा दो सदस्य के रूप में हैं।

इस निगम में केन्द्रीय सरकार, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल की सरकारें भागीदार हैं। निगम का कार्यालय कलकत्ता में है। दामोदर घाटी योजना में पाँच जिले बिहार और चार जिले बंगाल के सम्मिलित हैं।

योजना पर व्यय—दामोदर घाटी योजना में कुल व्यय १७० करोड़ रुपये होने का अनुमान है। वित्त व्यवस्था केन्द्रीय सरकार, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल सरकारों द्वारा की गयी है। सरकार ने संयुक्त राज्य अमरीका से ३.८ करोड़ डालर का ऋण दामोदर घाटी योजना के विकास के लिए प्राप्त किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्तरराष्ट्रीय विकास संघ ने ८.८२ करोड़ रुपये की सहायता प्रदान की है।

दामोदर घाटी योजना के उद्देश्य—दामोदर घाटी योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं

(१) दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों के पानी को सिंचाई के काम में लाने के लिए 'नहरों का निर्माण' करना मुख्य उद्देश्य है। लगभग ४.२५ लाख हेक्टर भूमि पर स्थायी सिंचाई हो सकेगी।

(२) दामोदर और उसकी सहायक नदियों में आने वाली 'बाढ़ों पर नियन्त्रण' किया जा सकेगा।

(३) 'जल विद्युत' उत्पन्न की जायेगी, जिससे उद्योगीकरण में मदद मिलेगी एवं नगर व ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली उपलब्ध करायी जायगी। इस योजना से लगभग ३ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी जो कि बिहार तथा बंगाल के अनेक औद्योगिक क्षेत्रों में भेजी जा सकेगी।

(४) 'जलमार्गों का विकास' किया जायगा जिससे नावों द्वारा यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकेंगी जिसके द्वारा कलकत्ता एवं रानीगंज तथा झरिया कोयला क्षेत्रों के मध्य १४४ किलोमीटर दूरी में जल परिवहन की सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी।

(५) पानी के वेग को कम करके मिट्टी के कटाव को रोका जायेगा।

(६) 'मछली पालन' व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया जायगा।

(७) 'वृक्षारोपण' तथा वन भाग की वृद्धि के प्रयत्न किए जायेंगे। पशुओं के लिए चारा, रेशम के कीड़े पालने के लिए शहतूत के वृक्ष लगाये जायेंगे। उद्योगों के लिए लाख तथा लकड़ी उपलब्ध किया जायगा।

(८) मलेरिया के नियन्त्रण के लिए मच्छरों को समाप्त करने की व्यवस्था की जायेगी।

योजना—सम्पूर्ण योजना मे ८ बांध तथा एक बैरेज का निर्माण रखा गया है। वित्त-व्यवस्था, सामान और मशीनों आदि की कठिनाई के कारण योजना को दो चरण मे पूरा करने की योजना है। प्रथम चरण मे निम्न कार्य सम्मिलित किये गये .

(१) चार बांध तिलैया, कोनार, मैथान और पचेत पहाड़ी पर बनाना और कोनार बांध को छोडकर अन्य तीनों पर जल विद्युत केन्द्र स्थापित करना जिनकी उत्पादन क्षमता १,०४,००० कि० वा० है।

(२) इस चरण मे कोयले से चलने वाले विद्युत गृह, चन्द्रपुरा, बोकारो, तथा दुर्गापुर मे बनाना जिनकी क्षमता ६,५७,००० किलो वाट होगी। ये तीनों ताप बिजली घर (Thermal Power Houses) बन चुके हैं। बोकारो मे सन् १९५३ मे ताप बिजली घर बना। फिर दुर्गापुर मे ७५ मेगावाट के दो यूनिट तथा १४० मेगा-वाट का तीसरा यूनिट लगाया गया। चन्द्रपुरा मे प्रथम यूनिट १९६४ मे, दूसरा यूनिट १९६५ मे और अन्तिम यूनिट जुलाई १९६८ मे लगाया गया।

(३) विद्युत वितरण की लाइनें बिछाना जो कि १,२८७ किलोमीटर होगी।

(४) सिंचाई के लिए दुर्गापुर अवरोधक का निर्माण करना जिसके द्वारा लगभग ७ ५ लाख हेक्टेयर भूमि मे सिंचाई की सुविधा प्रदान करना।

प्रथम चरण के विभिन्न कार्यों का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है :

(अ) बाराकर (दामोदर की सहायक) पर दो बांध

(१) तिलैया बांध (Tilaiya-Dam)—तिलैया बांध बिहार के हजारी बाग जिले मे बाराकर नदी पर बनाया गया है। यह बांध बाराकर तथा दामोदर नदियों के मिलन स्थल से २१० कि० मी० दूर बनाया गया है। इसका निर्माण १९५० मे पूर्ण हो गया। १९५३ मे स्व० पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा उद्‌घाटन किया गया। यह बांध लगभग ३१ मीटर ऊँचा तथा ३६६ मीटर लम्बा है। इस बांध पर ३ करोड रुपये व्यय किया गया है। इससे लगभग ४१ हजार हेक्टर भूमि मे सिंचाई हो सकती है।

इस बांध पर एक भूमिगत जल विद्युत गृह का निर्माण किया गया है। जिसकी ६० हजार किलोवाट विद्युत उत्पादन क्षमता है इससे बिजली हजारी बाग और कोरडमा की अभ्रक की खानों को दी जा रही है।

(२) मैथान बांध (Maithan Dam)—बाराकर नदी का दूसरा बांध मैथान बांध है। इसकी लम्बाई ४,३५७ मीटर है और ऊँचाई ५६ मीटर है। यह १९५७ मे बनकर तैयार हो गया। इस बांध का मुख्य उद्देश्य बाढ पर नियन्त्रण करना है। इससे लगभग १ २५ लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई की जाती है। बांध के निकट विद्युत गृह का निर्माण किया गया है जिसकी संस्थापित क्षमता ६०,००० किलोवाट है।

(ब) दामोदर नदी पर बांध व सिंचाई बांध (बेरेज)

(१) पंचेत पहाड़ी बांध—यह बांध दामोदर नदी पर बनाया गया है जो कि मान भूमि जिले के मैथान से २० किलोमीटर दक्षिण में है। यह १९५९ में बनकर तैयार हो गया। बांध की लम्बाई २,५५० मीटर तथा ऊँचाई ४० मीटर है। बांध के निकट जल-विद्युत उत्पादन गृह का निर्माण किया गया है जिसकी उत्पादन क्षमता ४०,००० कि० वा० है। इस बांध से लगभग १ ७५ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई की जा सकेगी।

(२) दुर्गापुर बैरेज अथवा सिचाई बांध—दुर्गापुर बैरेज ६९५ मीटर लम्बा तथा ११ ५८ मीटर ऊँचा है। बैरिज १९५५ में खुला। १ अप्रैल, १९६४ को इस बैरिज का कार्य, मरम्मत व्यवस्था, सिचाई प्रणाली आदि पश्चिमी बंगाल की सरकार को हस्तान्तरित कर दिये गये हैं। इस सिचाई बांध से लगभग ४ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। इसकी दो नहरें हैं। बायें किनारे की मुख्य नहर १३७ किलो मीटर लम्बी है। जिसमें जल यातायात प्रारम्भ कर दिया गया है। दाहिने किनारे से निकाली गयी नहर ६४ किलो मीटर है। उपशाखाओं सहित नहर की लम्बाई २,४१४ किलो मीटर है।

(स) दामोदर की सहायक कोनार नदी पर एक बांध

कोनार बांध—यह बांध दामोदर की सहायक कोनार नदी पर बनाया गया है। यह अक्टूबर १९५५ में पूर्ण हुआ। कोनार बांध की लम्बाई ३,८७१ मीटर तथा ऊँचाई लगभग ४९ मीटर है। इस बांध से लगभग ४०,००० हजार हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी जो कि जलाशय के पानी से की जायेगी। बांध के नीचे ४०,००० कि० वा० क्षमता का एक भूगर्भ स्थित विद्युत गृह बनाया गया है।

द्वितीय चरण—दामोदर घाटी योजना के द्वितीय चरण में ४ बांध बनाने का कार्यक्रम रखा गया है। ये बांध निम्न प्रकार हैं

(१) बर्मो—यह दामोदर नदी पर बनाया जायेगा, इसमें २८,००० कि० वा० विद्युत का निर्माण किया जायेगा।

(२) अय्यर—यह बांध भी दामोदर नदी पर बनाया जायेगा। जिसमें लगभग ४५ हजार किलो वाट बिजली उत्पादित हो सकेगी।

(३) बोकारो—कोनार तथा बोकारो नदियों के संगम से आगे हजारी बाग जिले में विद्युत गृह का निर्माण किया गया है। यह कोयले से चलित है। बोकारो विद्युत स्टेशन की क्षमता १५० मेगावाट थी। इस विद्युत स्टेशन में एक ७५ साग मेगावाट की इकाई और जोड़ दी गयी है। यह ताप बिजलीघर अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है, क्योंकि बोकारो में स्थापित किये जा रहे इस्पात के कारखाने के लिए शक्ति उपलब्ध करने में यह अत्यन्त सहायक हुआ है।

(४) बाल पहाड़ी बाँध—बाल पहाड़ी बाँध बाराकर नदी पर बनाया जायेगा।

दामोदर घाटी योजना के लाभ

सम्पूर्ण योजना पूर्ण हो जाने पर अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी। दामोदर घाटी योजना से लगभग ४.२५ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई का लक्ष्य रखा गया। इसमें से लगभग ४ लाख हेक्टर भूमि में खरीफ की फसल तथा लगभग २५ हजार हेक्टर भूमि में रबी की फसलों की सिंचाई का लक्ष्य था, किन्तु अब तक ३ लाख हेक्टर खरीफ की फसल और २० हजार हेक्टर रबी की फसलों में सिंचाई की जाती है। *ऐसा अनुमान किया जा रहा है कि सिंचाई की वर्तमान अवस्था में प्रति वर्ष १४* करोड़ ६८ लाख रुपये के मूल्य की अतिरिक्त उपज प्राप्त हुई है। इस योजना ने दामोदर नदी घाटी के जन-जीवन को एक नया मोड़ दे दिया है। जो नदी बीस वर्ष पूर्व 'बिहार के शोक' (Sorrow of Bihar) के नाम से याद की जाती थी वही नदी अब बिहार और पश्चिमी बंगाल के लिए 'वरदान' (Blessing) सिद्ध हो रही है। *सिंचाई, कृषि विकास, बाढ़ नियन्त्रण, वन-विकास, जल परिवहन, मत्स्य-पालन,* जल विद्युत, ताप विद्युत, मिट्टी के कटाव पर रोक, मलेरिया नियन्त्रण, औद्योगिक विकास आदि अनेक रूपों में इस नदी घाटी योजना ने इस क्षेत्र को लाभान्वित किया है।

सन् १९४३ में जब इस नदी में भयंकर बाढ़ आयी थी तब लोगों ने इस *नदी की विनाशकारी शक्ति को 'नियति का एक स्थायी अभिशाप' मान कर अपने* दुर्भाग्य पर आँसू बहाये थे। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है (अध्याय एक) कि मानव कभी हार नहीं स्वीकार करता है और वह निरन्तर 'प्रकृति की क्रूरता' से संघर्ष करता है। अतः तत्काल सरकार द्वारा एक समिति का निर्माण किया गया जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय डाक्टर भाभा थे। इस समिति ने समस्त समस्या पर पूर्ण *विचार करके नदी घाटी योजना के निर्माण का प्रस्ताव सरकार को सन् १९४६ में* दिया। स्वतन्त्रता के बाद ही स्वर्गीय श्री नेहरू ने इस योजना में विशेष रुचि ली और उसी के फलस्वरूप दामोदर वेली कार्पोरेशन (D V C) का निर्माण हुआ जिसके अन्तर्गत बाईस वर्षों में इस योजना पर जो कार्य हुआ है, वह भारत की नदी घाटी योजनाओं के इतिहास में *सदैव स्मरणीय रहेगा। नदी के 'विनाशकारी स्वरूप'* को पूर्ण रूप से नियन्त्रित करके उसे 'कल्याणकारी स्वरूप' प्रदान कर दिया गया है। यही कारण है कि कृषि विकास के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों का विकास इस क्षेत्र में हुआ है। सिन्दरी, चितरंजन, दुर्गापुर, राँची, बोकारो तथा आसनसोल के आस पास अनेक छोटे बड़े उद्योगों धन्धों का विकास इसका प्रमाण है।

74 भाखरा नांगल योजना
(Bhakra and Nangal Project)

भाखरा नांगल योजना भारत की सबसे बड़ी एवं विशिष्ट बहुउद्देशीय योजना है। इस योजना पर कुल व्यय १३२.६ करोड़ रुपये हुआ। इसकी व्यवस्था पंजाब,

हरियाना, राजस्थान तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा की गयी है। भाखरा बाँध ससार के सबसे ऊँचे बाँधो मे से एक है, इस बाँध का निर्माण सतलज नदी पर किया गया है। इस बाँध के निर्माण का विचार सर्वप्रथम सन् १९०९ म पजाब के तत्कालीन गवर्नर के मस्तिष्क मे आया और उसके बाद समय-समय पर इस पर विचार होता रहा। किन्तु भारत सरकार न सन् १९४४ मे सिद्धान्ततः इस योजना को स्वीकार किया। सन् १९४६ मे निर्माण प्रारम्भ किया गया, किन्तु वास्तविक कार्य स्वतन्त्रता के पश्चात् सन् १९४८ मे ही प्रारम्भ हो सका। अम्बाला जिले के रूपड नामक स्थान से ८० किलो मीटर ऊपर सतलज नदी की सकरी उपत्यका मे भाखरा नामक स्थान पर नदी क आरपार यह बाँध बनाया गया है। विश्व के सीधे भाराश्रित बाँधों (Straight Gravity Dams) मे इसका स्थान सर्व प्रथम है। इसकी ऊँचाई नदी-तल मे २२६ मीटर है, तथा समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ५२२ मीटर है। इस बाँध के पीछे जो कृत्रिम झील बन गयी है उसका नाम गोविन्द सागर (स्वर्गीय श्री गोविन्द वल्लभ पत क नाम पर) रखा गया है। यह जलाशय (reservoir) लगभग ८० मील की लम्बाई तथा तीन से चार मील की औसत चौडाई मे फैला हुआ है और इसकी जल सग्रह क्षमता लगभग ११४ करोड घन मीटर है।

उद्देश्य—सतलज नदी की विशाल जल राशि को सिचाई के काम मे लाना इस योजना का मुख्य उद्देश्य था। दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य जल विद्युत का निर्माण करना था। इसके उद्देश्यों को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

(१) सतलज नदी एव यमुना नदी के मध्यभाग मे सिचाई व्यवस्था करना प्रमुख उद्देश्य है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक नहरो के निर्माण का लक्ष्य रखा गया।

(२) सरहिन्द नहर म इस योजना के अन्तर्गत पानी की वृद्धि करना जिससे सिचाई अधिक क्षेत्र म हो सके।

(३) राजस्थान मे सिचाई व्यवस्था के लिए गग नहर तथा भाखरा की नहरों द्वारा पानी पहुँचाना जिससे राजस्थान मे अधिक सिचाई की जा सकेगी।

(४) जल विद्युत का निर्माण करके उसका वितरण करना।

(५) अन्य उद्देश्यो म अनेक गौण उद्देश्य सम्मिलित किये जा सकते हैं जैसे, बाढ नियन्त्रण, मलेरिया नियन्त्रण, मिट्टी के कटाव पर रोक, वन विकास, मत्स्य *पालन, पर्यटन का विकास आदि।*

भाखरा-नागल योजना के विभिन्न अगो का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है:

(1) भाखरा बाँध (Bhakra Dam)

भाखरा बाँध का निर्माण भाखरा नामक स्थान पर सतलज नदी पर हुआ है। इस बाँध की मुख्य विशेषता है कि यह सीमेन्ट व कक्रीट बाँध २२६ मीटर ऊँचा है। विश्व म यह सबस ऊँचा बाँध है। विशाल बाँध को बनाने के लिए सतलज नदी के जल प्रवाह की दिशा को बदला गया है। नदी के दायें तथा बायें किनारों से पहाडियों म सुरगो म दो मार्ग (Tunnels) बनाय गय। सतलज नदी के पानी

भाखरा नंगल योजना
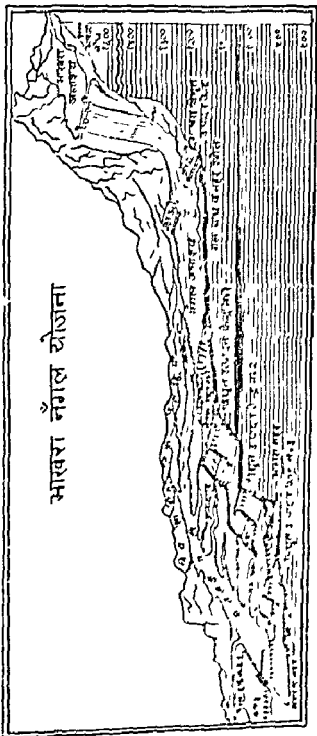
को इन दोनों मार्गों मे ले जाकर बांध का निर्माण किया गया। बांध बनने के पश्चात दोनो मार्गों को बन्द कर दिया गया। इस बांध का आकार अंग्रेजी के अक्षर (V) 'वी' जैसा है। ऊपरी भाग पर इसकी लम्बाई ५१८ मीटर है तथा नीचे ३३८ मीटर है। इसकी चौडाई शिखर पर ३० फीट तथा तलहटी या नदी-तल पर लगभग ६२५ फीट है। इस बांध के निर्माण मे लाखो टन सीमेन्ट, कंक्रीट तथा इस्पात का उपयोग किया गया है। सबसे ऊँचा बांध होने के कारण यह स्थल पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र बन चुका है।

(ii) भाखरा नहर प्रणाली (Bhakra Canal System)

भाखरा नहर प्रणाली मे निम्नलिखित नहरें हैं

(१) भाखरा की मुख्य नहर—भाखरा की मुख्य नहर रोपड मे निकाली गयी है तथा यह रोहना तक जाती है जो कि हिसार जिले की सीमा पर है। मुख्य नहर १७५ किलोमीटर है। टोहना के पास यह नहर दो भागो मे विभक्त हो जाती है। प्रथम भाखरा की मुख्य शाखा है जो कि पलस्तर युक्त है और दूसरी फतेहबाद शाखा है जो कि पलस्तर रहित है। शाखाओं सहित लम्बाई १,०५० किलोमीटर तथा उपशाखाओं की लम्बाई ३ ५४० किलोमीटर है। भाखरा की मुख्य नहर विश्व मे सबसे लम्बी पलस्तर युक्त नहर है।

(२) बिस्त दोआब नहर—यह रोपड के दाहिने किनारे से निकाली गयी है शाखाओं सहित इस नहर की लम्बाई लगभग १,०६० किलोमीटर और उपशाखाओं की लम्बाई लगभग ६,४३० किलोमीटर है।

(३) नरवाना शाखा नहर—भाखरा मुख्य नहर के ५० किलोमीटर के पश्चात निकाली गयी है। यह नहर १०४ किलोमीटर तक पलस्तर युक्त है। नहर के मार्ग मे पटियाला, सरस्वती, घग्घर, टागरी तथा मारकण्डा नदियाँ आती हैं। इस नहर द्वारा सिरसा ब्रान्च को पानी दिया जाता है।

(४) सरहिन्द नहर प्रणाली—भाखरा नहर प्रणाली द्वारा सरहिन्द नहर को पानी प्रदान किया जाता है। इससे पूर्वी पजाब के अनेक क्षेत्रो मे सिचाई होती है। इसके द्वारा सरहिन्द नहर की पानी की मात्रा को प्रति सैकिंड ६,००० क्यूसेक से बढाकर १२ ००० क्यूसेक किया गया है।

भाखरा नागल की नहरें जिन क्षेत्रो मे प्रवाहित होती हैं उनका कुल क्षेत्रफल २७ ४ लाख हेक्टर है जिसमे २३ ७ लाख हेक्टर भूमि पर कृषि होती है। इसमे से १४ ६ लाख हेक्टर भूमि को इस योजना के द्वारा सिचाई लाभ प्रत्यक्षतः प्राप्त होगा, तथा इसके अतिरिक्त लगभग १५ लाख हेक्टर भूमि को अप्रत्यक्ष रूप मे बढी हुई जल पूर्ति (Increased Water Supply) के रूप मे प्राप्त होगा। इस प्रकार पजाब के जालन्धर, होशियारपुर, लुधियाना फिरोजपुर, हरियाना के हिसार, करनाल, अम्बाला, तथा राजस्थान के गगानगर क्षेत्रो की भूमि इस योजना की नहर प्रणालियों से लाभान्वित होगी।

(iii) नांगल बांध (Nangal Dam)

नांगल बांध नांगल के निकट बनाया गया है जो कि भाखरा बांध से १३ किलोमीटर नीचे है। यह बांध भाखरा बांध के सहायक के रूप में है जो कि जल को सन्तुलित करता है। यह कंकरीट से बनाया गया है। बांध की लम्बाई ३१५ मीटर तथा २६ मीटर ऊँचाई है।

(iv) नांगल जल विद्युत नहर (Nangal Hydel Channel)

यह नांगल बांध के बायें किनारे से निकाली गयी है। इस नहर की लम्बाई लगभग ६५ किलोमीटर है। यह नहर भाखरा की मुख्य शाखा तथा उपशाखाओं को पानी देती है। यह नहर ऊबड़ खाबड़ धरातल पर प्रवाहित होती है तथा इसका तला और दोनों किनारे पक्के सीमेन्ट से बनाये गये हैं।

(v) विद्युत शक्ति गृह (Power Houses)

नांगल जल विद्युत नहर (Nangal Hydel Channel) पर तीन विद्युत गृह लगाने की योजना है जिनमें से दो का निर्माण हो चुका है। प्रथम विद्युत गृह बांध से २० किलोमीटर दूर 'गंगूवाल' में और द्वितीय २८ किलोमीटर दूर 'कोटला' नामक स्थान पर बनाये गये हैं। तीसरा विद्युत गृह रोपड़ के पास बनाया जावेगा। इन दो विद्युत गृहों से १.५ लाख किलोवाट शक्ति तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त भाखरा बांध के दोनों ओर दो विशाल जल शक्ति गृहों का निर्माण किया गया है। भाखरा के बायीं ओर का शक्तिगृह एक प्रथक परियोजना के रूप में पूरा किया गया है जिस पर लगभग ६० करोड़ रुपया व्यय हुआ है। इसमें पांच विद्युत यन्त्र स्थापित किये गये हैं जिनमें से प्रत्येक की जल विद्युत उत्पादन क्षमता १२० मेगावाट है। इन समस्त विद्युत-केन्द्रों (भाखरा, गंगूवाल, कोटला, रोपड़) के द्वारा लगभग १,२०४ मेगावाट बिजली भविष्य में उत्पन्न की जा सकेगी।

भाखरा नांगल योजना के लाभ

भाखरा नांगल योजना के पूर्ण हो जाने पर पंजाब तथा राजस्थान तथा हरियाणा में बहुत लाभ प्राप्त हो सकेंगे। इन राज्यों के रेतीले भाग में पहले अकाल पड़ा करते थे जिनमें आजकल राहत मिल गयी है। भाखरा नांगल बांध से राजस्थान के बीकानेर, गंगा नगर, चूरू, सीकर तथा झुंझुनू जिलों में विद्युत पहुँचायी गयी है। गंगूवाल और कोटला से उत्पन्न होने वाली विद्युत लगभग ३,७०० मीटर लम्बे तारों से रोपड़, अम्बाला, लुधियाना, रोहतक, पटियाला, पानीपत, भिवानी, हिसार, नाभा जलधर, फीरोजपुर, मोगा, फरीदकोट, शिमला, कालका, होशियारपुर, पठान कोट, दोली, राजपुर आदि अनेक शहरों और कस्बों को विद्युत पहुँचायी जाती है। भाखरा नांगल योजना लगभग सम्पूर्ण हो चुकी है और अपनी अनेक विशिष्टताओं के साथ आज यह स्वप्न, जिसकी कल्पना आज से चालीस वर्ष पूर्व की गयी थी, अब साकार होकर प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने है। प्रकृति पर मानव की विजय का यह दूसरा

ज्वलन्त उदाहरण हमारे समक्ष है। इस योजना द्वारा उपलब्ध जल राशि के द्वारा वर्षों से हरियाणा एव राजस्थान की प्यासी धरती को शीतल करके लाखों हेक्टर भूमि क्षेत्र मे सिचाई की सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं और कृषि उपज मे वृद्धि की गयी है। इन क्षेत्रों के हजारों कस्बे एव ग्राम जो सदियों से घोर अन्धकार मे डूबे हुए थे अब इस योजना द्वारा उपलब्ध विद्युत प्रकाश से जगमगा रहे हैं। कितने कृषक एव श्रमिक परिवारों को सिचाई एव विद्युत उपलब्धि के द्वारा रोजगार प्राप्त हुआ है—यह कोई कल्पना की बात न होकर प्रत्यक्षदर्शी तथ्य बन चुका है। विद्युत प्राप्ति के कारण अनेक प्रकार के छोटे-बडे उद्योग धन्धे इन क्षेत्रो मे प्रारम्भ किय गये हैं। इनसे इन क्षेत्रों के सर्वांगीण आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है। कृषि क्षेत्रों को सिचाई एव बिजली प्राप्त हो जाने के कारण अधिक खाद्यान्नों एव व्यापारिक उपजों को उत्पन्न करने का अवसर मिला है जिससे इन क्षेत्रों के कृषकों की आय बढ गयी है। व्यापारिक उपजो म कपास, तिलहन, गन्ना आदि के साथ-साथ पशुओ के लिए पर्याप्त चारे का उत्पादन भी बढा है। भाखरा की विद्युत शक्ति से फरीदाबाद, अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर, गगा नगर आदि नगरों मे अनेक उद्योग प्रारम्भ किये गये। आगे चलकर इस क्षेत्र की प्रमुख रेलवे लाइनो के विद्युतीकरण (electrification) के लिए भी इस योजना से प्राप्त बिजली का उपभोग किया जायगा। सन् १६६७ मे 'भाखरा प्रबन्ध मण्डल' का गठन भारत सरकार द्वारा कर दिया गया तथा इस योजना के समस्त अगों के प्रबन्ध का दायित्व इसे सौंप दिया गया है।

चम्बल योजना
(Chambal Project)

चम्बल योजना मध्य प्रदेश तथा राजस्थान राज्यों की बहुउद्देशीय नदी घाटी योजना है, जोकि चम्बल नदी से सम्बन्धित नदी है। चम्बल नदी लगभग ६७० किलो मीटर लम्बी है, यह विन्ध्याचल पर्वत से निकलती है और मध्य प्रदेश के ग्वालियर तथा इन्दौर के पास से होती हुई राजस्थान मे प्रवेश करती है। राजस्थान से फिर यह उत्तर प्रदेश म प्रवेश कर यमुना नदी में मिल जाती है। वर्षा काल मे यह नदी तेज बहती है और शेष काल मे धीरे-धीरे बहती है। वर्षा काल में पानी तेज बहकर व्यर्थ चला जाता है। वर्षा काल मे अनेक बार बाढें भी आ जाती हैं। अत बाढ नियन्त्रण तथा सिचाई एव विद्युत उत्पादन के लिए राजस्थान और मध्य प्रदेश के सम्मिलित प्रयत्नो से चम्बल घाटी योजना चालू की गयी है।

योजना आयोग ने इस योजना के निम्न प्रारूप को स्वीकार किया :

(१) तीन बाँध और प्रत्येक बाँध के साथ एक बिजली घर का निर्माण करना।

(२) कोटा बैरेज का निर्माण करना।

(३) सिंचाई के लिए नहरें निकालना।

(४) हाइटेन्शन, ट्रान्समीशन तथा एक-एक सब स्टेशन (दोनों राज्य मे)।

इन कार्यक्रमों से राजस्थान के औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र में विकास किया जा सकेगा। राजस्थान की विस्तृत योजना होने के कारण इसको तीन चरणों में पूरा किया जा रहा है। योजना के 'प्रथम चरण' में गांधी सागर बाँध, गांधी सागर बिजली घर, ट्रान्समीशन लाइनें, कोटा बैरेज तथा बैरेज के दोनों तरफ नहरें बनाने का कार्य रखा गया है। योजना के 'द्वितीय चरण' में राणा-प्रताप बाँध तथा एक बिजली घर बनाने की योजना रखी गयी है। 'तृतीय चरण' में कोटा बाँध तथा एक बिजली घर तैयार करने का कार्य-क्रम रखा गया है।

योजना की प्रगति निम्न प्रकार है :

(१) **गांधी सागर बाँध** (Gandhi Sagar Dam)—गांधी सागर बाँध चौरासी गढ़ से ८ किलोमीटर दूर बनाया गया है। यहाँ पर घाटी की चौड़ाई कम है। इस बाँध की लम्बाई ५१० मीटर तथा ऊँचाई ६२ मीटर है। वर्षा काल में चम्बल नदी में बाढ़ आती है। इस अतिरिक्त जल को निकालने के लिए १० फाटक बनाये गये हैं। बाँध के जलाशय का क्षेत्र ५१० वर्ग किलोमीटर है तथा जिसमे ७७,४६० लाख घन मीटर पानी समा सकता है।

बाँध के साथ एक विद्युत गृह का निर्माण किया गया है। इस विद्युत गृह में विद्युत उत्पादन यन्त्र लगाये गये हैं। प्रथम चरण में चार यन्त्र लगाये गये हैं तथा बाद में एक और लगाया गया। इन पाँच यन्त्रों से ६० प्रतिशत भारांश (Load-factor) की ८०,००० किलोवाट बिजली उत्पादन होने लगी है।

गांधी सागर बाँध तथा शक्तिगृह पूर्ण हो चुके हैं और १९ नवम्बर, १९६० से शक्ति उत्पादन कार्य भी चालू किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त हाईटेन्शन ट्रान्स-मीशन लाइनें भी तैयार की गयी हैं।

(२) **राणा प्रताप सागर बाँध** (Rana Pratap Sagar Dam)—चम्बल योजना के द्वितीय चरण में राणा प्रताप सागर बाँध सम्मिलित है। गांधी सागर बाँध से ३३ मील दूर राजस्थान में इस बाँध और शक्ति गृह का कार्य अभी पूर्ण होने वाला है। राणा प्रताप सागर बाँध चुलिया जल प्रपात के पास रावतभाटा में स्थित है। इस बाँध की लम्बाई लगभग १,१०० मीटर तथा ऊँचाई लगभग ३६ मीटर है। बाँध के जलाशय द्वारा अपने १,४४० वर्ग किलोमीटर के प्रभावशाली क्षेत्र से जल संग्रह करेगा तथा नियन्त्रण के लिए गांधी सागर बाँध का सहायक रहेगा। इसमें लगभग ३ लाख हेक्टोमीटर जल से भी अधिक जल इकट्ठा हो सकता है। इस जलाशय के द्वारा चम्बल योजना में सिंचाई की १ २१ लाख हेक्टर भूमि में अधिक सिंचाई की सुविधा मिल सकेगी। बाँध के निचले हिस्से पर बायीं ओर बिजली घर स्थित किया गया है। इस बिजली घर की विद्युत ६० प्रतिशत भारांश (Load-Factor) वाली ६०,००० किलोवाट उत्पादित होगी। राणा प्रताप सागर बाँध एवं बिजली घर सन् १९७० तक पूरे हो चुके थे। इस चरण पर लगभग ३४ १३ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

(३) कोटा अथवा जवाहर सागर बांध—राणा प्रताप सागर बांध के लगभग ३२ किलोमीटर दूर बारा बांस ग्राम के निकट बनाया जा रहा है। इस बांध की लम्बाई लगभग ५४५ मीटर तथा ऊँचाई २४ मीटर है। यह बांध पहले दो बड़े बांधों का सहायक होगा तथा इसमें उनके द्वारा छोड़ा गया अतिरिक्त जल संग्रह करके जल विद्युत उत्पादन के हेतु प्रयोग किया जायगा। इस बांध के निर्माण का कार्य (जो कि योजना के तीसरे चरण में है) अभी प्रारम्भ ही किया गया है तथा चौथी योजना के अन्त तक इसके पूर्ण होने की आशा है।

जवाहर सागर बांध के नीचे एक विद्युत गृह बनाया जा रहा है। जिसमें तीन यन्त्र लगाये जाने की योजना है और चौथे यन्त्र के लिए प्रस्ताव रखा गया है। प्रत्येक यन्त्र की ३३ ००० किलोवाट विद्युत क्षमता होगी। उनके पूर्ण हो जाने पर ६० प्रतिशत भाराश वाली ६०,००० किलोमीटर बिजली पैदा होगी। तृतीय चरण पर अनुमानित व्यय १६ ०० करोड़ रुपया होगा।

कोटा बैरेज (Kota-Barrage)—कोटा बैरेज का निर्माण कोटा बांध से १६ किलोमीटर दूर किया गया है। इस बांध की ऊँचाई ३६ मीटर है तथा लम्बाई लगभग ६०० मीटर है। सिंचाई के लिए इस बांध से दो नहरें निकाली गयी हैं। दायीं ओर से निकाली गयी नहर की कुल लम्बाई का लगभग ३७० मील होगी जो कि मध्य प्रदेश तथा राजस्थान दोनों में होगी प्रथम १२९ किलोमीटर राजस्थान राज्य

मे तथा शेष मध्य प्रदेश मे होगी। बायीं तरफ की नहर ६५ किलोमीटर लम्बी होगी जो आवश्यकता पड़ने पर बढ़ायी भी जा सकेगी।

कोटा बैरेज का निर्माण हो चुका है और सिंचाई के लिए पानी २० नवम्बर, १६६० से दिया गया है। इससे दोनों राज्यों मे लगभग ४.४४ लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त हो गयी हैं जिसमें राजस्थान तथा मध्य प्रदेश का भाग लगभग समान है।

योजना से लाभ

तीनों चरण पूर्ण हो जाने पर चम्बल योजना से लगभग ६ लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो सकेगी और स्थापित विद्युत उत्पादन ३८६ मेगावाट होगी।

गांधी सागर बिजली घर से दो मुख्य लाइनें जाती हैं जिनमे एक इन्दौर की तरफ जाती है तथा दूसरी कोटा, सवाई माधोपुर अजमेर, जयपुर, उदयपुर तथा ग्वालियर (मध्य प्रदेश) की तरफ जाती है। विद्युत की सुविधा से कोटा क्षेत्र की औद्योगिक प्रगति हो रही है तथा भविष्य मे राजस्थान के औद्योगिक विकास मे इस योजना से काफी सहायता मिलेगी। राजस्थान की साभर झील मे नमक, जयपुर, भीलवाड़ा, कोटा तथा किशन गढ़ की सूती वस्त्र मिलो, बूंदी सीमेण्ट, जयपुर के बाल बियरिंग व धातु उद्योग, मकराने की संगमरमर की काफी प्रगति हो सकेगी। चित्तौड़ गढ़ मे स्थापित नये सीमेंट के कारखाने, कोटा मे रेयन, अलवर जिले की तांबे की खानों तथा अन्य उद्योगो का विकास चम्बल योजना से विद्युत प्राप्त करके हो सकेगा। इस योजना के निर्माण ने राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी भाग को एक नया जीवन प्रदान किया है। चम्बल के विनाशकारी रूप को अब नियन्त्रित करके उसे रचनात्मक कार्यों मे प्रयुक्त किया गया है। योजना के तीनो चरण पूरे हो जाने पर सिंचित भूमि का क्षेत्र ४.४४ लाख हेक्टर से बढ़ कर लगभग ६ लाख हेक्टर हो जायगा। इससे जो अतिरिक्त खाद्यान्न इस क्षेत्र म उत्पन्न किया जा सकेगा उसकी सम्भावित मात्रा लगभग पाँच लाख टन आँकी गयी है। इसके अतिरिक्त तिलहन, कपास, तम्बाकू, गन्ना, फल, सब्जी, चारा, मसाले, प्याज, लहसन आदि अनेक प्रकार की उपजों मे आशातीत वृद्धि होगी, जो इस क्षेत्र के लोगों की खुशहाली का आधार होगी। कोटा, जयपुर, भीलवाड़ा चित्तौड़गढ़, ब्यावर, अजमेर बांसवाड़ा तथा मध्य प्रदेश के मन्दसौर, मुरैना, भिण्ड, नागदा, रतलाम, उज्जैन, इन्दौर, ग्वालियर आदि नगरो मे अनेक उद्योगों का विकास इस योजना से प्राप्त विद्युत शक्ति के कारण हुआ है जिससे लाखों बेकार परिवारों को रोजगार प्राप्त हुआ है। इन उद्योगो म सीमेंट सूती वस्त्र, रेयन, चीनी एव अलकोहल, वनस्पति तेल, धातु एव इंजीनियरिंग आदि के उद्योग प्रमुख है। औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं को देखते हुए ही भारत के द्वितीय अणु बिजलीघर (Atomic Power Station) की स्थापना का निश्चय किया गया। राणा प्रताप सागर के पास ही यह कार्य सन् १९६४ मे

प्रारम्भ किया गया। इसमे २ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। भविष्य में इसमें २ लाख किलोवाट का एक और संयन्त्र स्थापित किया जा सकेगा। इस प्रकार चम्बल नदी घाटी योजना राजस्थान एवं मध्य प्रदेश के लिए नवीन आशा का प्रतीक बन चुकी है।

(राजस्थान की अन्य नदी घाटी योजनाएँ राजस्थान में सिंचाई अध्याय मे देखें।)

कोसी योजना

कोसी योजना बिहार राज्य की नदी घाटी योजना है। कोसी नदी में जब विनाशकारी बाढ़ें आती हैं तो बिहार राज्य में अपार धन की हानि होती है। बिहार और नेपाल क लगभग २० हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में यह नदी नुकसान पहुँचाती है। अतः इस बाढ पर नियन्त्रण करने के लिए कोसी योजना बनायी गयी। इस योजना पर अनुमानित व्यय लगभग ६८·१३ करोड़ रुपया किया गया।

इस योजना के अन्तर्गत कोसी नदी पर बाँध और पुश्ते का निर्माण किया गया है तथा नहरें बनायी गयी हैं। बाँधों का निर्माण किया गया है। इस योजना के दो चरण हैं।

प्रथम चरण

(१) बाँध—कोसी नदी के आर-पार बनाया गया है। यह नेपाल के हनुमान नगर के निकट बनाया गया। यह बाँध पूर्ण हो चुका है। इसका उद्घाटन नेपाल के राजा द्वारा किया गया है।

(२) कोसी योजना के अन्तर्गत लगभग २७० किलोमीटर लम्बे बाढ़ अवरोधक पुश्ते बनाने की योजना है। लगभग २४२ किलोमीटर बाढ़ अवरोधक कोसी नदी के पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर १९५९ में पूरे हो चुके हैं।

(३) पूर्वी कोसी नहर प्रणाली के अन्तर्गत ५·७६ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जायेगी। पूर्वी कोसी नहर बाँध के पूर्वी किनारे से, निकाली गयी है। इस नहर प्रणाली से उत्तरी बिहार के पूर्णिया और सहरसा जिलों में सिंचाई की जा सकेगी।

द्वितीय चरण

योजना के द्वितीय चरण में निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तावित किये गये हैं:

(१) कोसी शक्ति गृह—एक शक्ति गृह जो कि पूर्वी कोसी नहर पर स्थापित किया जा रहा है २० मेगावाट क्षमता का होगा। इस विद्युत गृह से उत्पादित विद्युत नेपाल तथा बिहार आधी-आधी काम में लायेंगे।

(२) पश्चिम कोसी नहर—इस कार्यक्रम पर १६·६९ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इस मुख्य नहर की लम्बाई लगभग ११२ किलोमीटर होगी जो कि कोसी बाँध के दाहिने किनारे से निकाली जायेगी। इस नहर द्वारा बिहार

के दरभंगा जिले में ३.१२ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी और नेपाल के सपतरी (Saptari) जिले में १२,१२० हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।
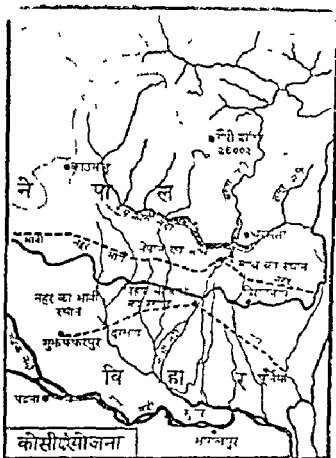
(३) पूर्वी कोसी नहर का विस्तार—इस विस्तार कार्यक्रम पर ६.८२ करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। जिसमें पूर्वी मुख्य नहर से नहर प्रणाली बनायी जायगी जिससे बिहार की १.६० लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

कोसी योजना के प्रथम चरण का अनुमानित व्यय ६८.१३ करोड़ रुपये है।

हीरा कुण्ड योजना
(Hira-Kund Project)

यह योजना उड़ीसा राज्य की योजना है। यह नदी, जो कि उड़ीसा की शोक की नदी कही जाती है, मध्यप्रदेश से निकलती है। नदी की कुल लम्बाई ८८० किलोमीटर है। वर्षा के दिनों में प्रायः बाढ़ आती है और अधिकतर पानी बंगाल की खाड़ी में बह जाता है।

हीरा कुण्ड योजना को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम चरण का कार्य लगभग समाप्त हो चुका है, जिस पर ६७.८२ करोड़ रुपये व्यय किये गये हैं द्वितीय चरण का अनुमानित व्यय १४ ६५ करोड़ रुपये है।

प्रथम चरण

प्रथम चरण में निम्न कार्यक्रम सम्मिलित किये गये हैं :

(१) हीरा कुण्ड बाँध—जिसकी लम्बाई ४,८०० मीटर है, विश्व का सबसे लम्बा बाँध है। हीरा कुण्ड नामक स्थान पर बनाया गया है। इसके द्वारा निर्मित झील में ८१० करोड़ क्यूबिक मीटर पानी इकट्ठा करने की क्षमता है।

(२) हीरा कुण्ड जल विद्युत गृह—बाँध के निकट बनाया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता १,२३,००० किलो वा० है। इस विद्युत गृह से हीरा कुण्ड, राजगंगापुर, रुरकेला, गोदा, बृजराज नगर के विभिन्न कारखानों को प्रदान की जा रही है। उड़ीसा के अन्य कस्बों को भी इससे विद्युत पहुंचायी जाती है।

(३) प्रथम चरण में महानदी डेल्टा की सिंचाई परियोजना भी सम्मिलित है। इस प्रणाली की तीन मुख्य नहरें हैं। दायी तरफ एक नहर है जिसे बोरगढ नहर
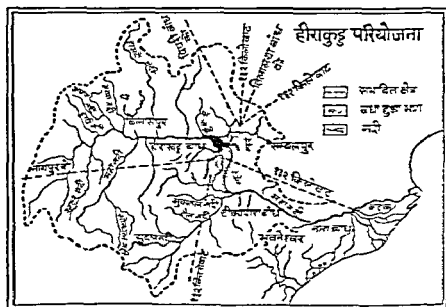
तथा बायी तरफ दो नहरें हैं जिन्हें सैसन नहर और सम्भलपुर नहर कहते हैं। दाहिनी तरफ की नहर की लम्बाई लगभग ६० किलोमीटर है। इसकी दो मुख्य शाखाएँ हैं तथा कई छोटी शाखाएँ भी हैं। महानदी डेल्टा योजना उड़ीसा की सरकार के द्वारा हीराकुण्ड योजना के प्रथम चरण के पूरक के रूप में निर्मित की जा रही है। इस पर अनुमानित व्यय ६८ ३८ करोड़ रुपये होगा। इसके अन्तर्गत मुन्दाली तथा

विरूपा नदियों पर दो जलाशय (Weirs) बनाये जा रहे हैं जिनसे अनन्त कटक एवं पुरी जिलों में ६८ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

द्वितीय चरण

योजना के द्वितीय चरण में १८.६५ करोड़ रुपये व्यय करने का अनुमान है। द्वितीय चरण भी लगभग समाप्त हो चुका है। चिपलीमा (Chiplima) विद्युत गृह बन चुका है। इसमें तीन विद्युत उत्पादन यन्त्र लगाये गये हैं, प्रत्येक की विद्युत उत्पादन क्षमता २४ मे० वा० है। हीरा कुण्ड विद्युत गृह का विस्तार भी किया गया है।

सम्पूर्ण हीरा कुण्ड योजना से २७० मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता है।

रिहन्द घाटी योजना

रिहन्द घाटी योजना उत्तर प्रदेश की महत्त्वपूर्ण योजना है। सोननदी की सहायक नदी रिहन्द पर बाँध बनाया गया है। रिहन्द नदी का उद्गम स्थान

विन्ध्या…पर्वत है। वर्षा काल में इस नदी में पानी अधिक आने के कारण पानी खेतों में फैल जाता है। रिहन्द बाँध इस बाढ़ के नियन्त्रण तथा सिंचाई सुविधाएँ

प्रदान करने के लिए बनाया गया है। इस बांध का निर्माण पिपरी नामक स्थान पर किया गया है। इस स्थान मे रिहन्द नदी एक सकरी और तग घाटी मे होकर निकलती है जिसके दोनो किनारो पर कठोर चट्टानें हैं। यह स्थल मिर्जापुर से दक्षिण मे ११६ किलोमीटर दूर है।

रिहन्द बांध नदी के तल से १६७ मीटर ऊँचा है और बांध की नींव से ९२ मीटर ऊँचा है। यह बांध लगभग ९३० मीटर लम्बा है। बांध द्वारा निर्मित झील को गोविन्द वल्लभ पत सागर भी कहा जाता है। इसमे ११४ लाख हेक्टर मीटर पानी इकट्ठा हो सकता है। इसकी चौडाई शिखर पर सात मीटर तथा सतह पर ७० मीटर है। यहां जो जलाशय बना है उसका नाम गोविन्द वल्लभ पत सागर रखा गया है। इसकी जल सग्रह क्षमता ११४ लाख हेक्टर मीटर है। बांध के भीतर जांच पडताल एव सम्भावित दरारो (cracks) को रोकने के लिए चार सुरग-मार्ग बनाये गये हैं। बांध के ऊपर जल-निष्कासन के लिए चौदह फाटक लगाये गये हैं। इस बांध के निर्माण मे लगभग ३८ करोड रुपये व्यय हुए हैं।

सोन एव रिहन्द नदी की घाटी अनेक महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थों के लिए प्रसिद्ध है जैसे चूना, बाक्साइट, कोयला आदि। चुर्क की सीमेण्ट फेक्टरी और मिर्जापुर के हिन्दुस्तान एल्यूमीनियम के कारखाने को यही से विद्युत-शक्ति प्राप्त होती है। इससे नहरें भी निकाली गयी हैं जिनसे बिहार राज्य मे लगभग २५ लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई होती है।

गोविन्द वल्लभ पत सागर के नीचे बिजली घर बनाया गया है। जिसमे विद्युत पैदा करने के ६ विद्युत उत्पादक यन्त्र लगाये जा रहे हैं जिनमे प्रत्येक की उत्पादन क्षमता ५० मे० वा० है। विद्युत लघु, मध्यम तथा बडी सिंचाई योजनाओ को विद्युत प्रदान की जा रही है।

तुगभद्रा योजना
(Tungbhadra-Project)

तुगभद्रा योजना आन्ध्र प्रदेश और मैसूर की सयुक्त योजना है। तुगभद्रा नदी कृष्णा की सहायक नदी है। जो तुंगा तथा भद्रा नामक दो नदियों से मिलकर बनी है। तुगभद्रा नदी उत्तरी मैसूर, बेलारी तथा कुरनूल जिलो मे होकर प्रवाहित होती है। इस योजना के निम्नलिखित अग हैं :

(१) बांध का निर्माण—तुगभद्रा नदी पर एक बांध का निर्माण किया गया है जो कि मल्लपुरम नामक स्थान पर है। यह स्थान मैसूर राज्य के बेलारी जिले के होस्पेट (Hospet) नामक स्थान से केवल चार-पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। बांध जुलाई १९५६ मे पूर्ण हो गया। बांध की लम्बाई २,४४१ मीटर है तथा ऊँचाई ४९.३९ मीटर है। इस बांध मे जल निष्कासन के लिए ३३ फाटक बनाये गये हैं जिनमे प्रत्येक फाटक १८ मीटर चौडा और ६ मीटर ऊँचा है।

प्रमुख बाँध कंक्रीट का बना है और इसकी लम्बाई लगभग १८३ मीटर है। इसके बीच में नावों और जल के बहाव को रोकने के उद्देश्य से दो छोटे बाँध
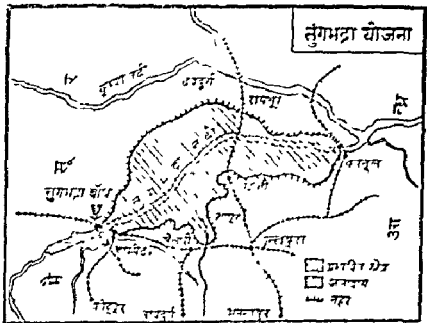
बनाये गये हैं जिनमें एक मिट्टी और पत्थरों से निर्मित है तथा दूसरा कच्ची मिट्टी का बाँध है। बाँध की पृष्ठभूमि में निर्मित जलाशय का जल ग्रहण क्षेत्र (Catchment Area) लगभग ३६५ वर्ग किलोमीटर है। जलाशय की जलसंग्रह क्षमता (Water storage capacity) लगभग चार लाख हेक्टर मीटर है।

(२) नहर प्रणाली—बाँध के दोनों किनारों से सिंचाई के लिए नहरें निकाली गयी हैं। बायें किनारे से जो नहर निकाली गयी है उसकी लम्बाई २२७ किलोमीटर है। दायें किनारे से दो नहरें निकाली गयी हैं—प्रथम 'नीची सतह नहर' (Low level canal) है जिसकी लम्बाई ३४९ किलोमीटर है, तथा दूसरी 'ऊँची सतह नहर' (High level canal) है जो १९६ किलोमीटर लम्बी है। बायें किनारे की नहर तथा दायें किनारे की नीची सतह नहर से मैसूर और आन्ध्र प्रदेश में लगभग ३.३२ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई सुविधायें उपलब्ध हुई हैं। दायें किनारे की ऊँची सतह नहर अभी बन रही है और पूरा होने पर १.८७ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

(३) विद्युत गृह—बाँध के दोनों ओर दो बिजली घरों का निर्माण किया गया है—एक बिजलीघर बाँध के ठीक नीचे बनाया गया है तथा दूसरा २२.५ कि०मी० लम्बी हाइडल चैनल के दूसरे छोर पर हम्पी (Hampi) नामक स्थान पर बनाया गया है। प्रथम विद्युत गृह में चार जनरेटर लगे हैं जिनमें से प्रत्येक की क्षमता

९,००० किलोवाट है। इसी प्रकार दूसरे विद्युत गृह मे भी नौ नौ हजार किलोवाट क्षमता वाले चार सयत्र स्थापित किये जा चुके हैं। इस प्रकार दोनों विद्युतगृहों की क्षमता ७२,००० किलोवाट है। तुगभद्रा बाँध के बायें किनारे पर भी एक विद्युत-गृह बनाया जा चुका है जिसमे तीन सयत्र लगाये गये हैं और प्रत्येक सयत्र की क्षमता ९,००० किलोवाट बिजली उत्पादन की है। इस प्रकार इस योजना से कुल मिलाकर ९९ हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न हो रही है।

तुगभद्रा योजना से मैसूर और आन्ध्र प्रदेश के इन क्षेत्रों मे कृषि उपज बढाने में सहायता मिली है। इन क्षेत्रों में गन्ना, कपास, मूंगफली, मसाले आदि की पर्याप्त खेती होती है। सिचाई की सुविधा उपलब्ध होने के बाद से यहाँ कृषि का स्तर बढा है। साथ ही विद्युत शक्ति प्राप्त होने से यहाँ औद्योगीकरण के लिए नवीन दिशाएँ प्राप्त हुई हैं। मैसूर खनिज प्रधान राज्य है और यहाँ खनिज लोहा, मैगनीज, चूना पत्थर आदि प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। होस्पेट में इस्पात के एक छोटे कारखाने के निर्माण का निश्चय किया जा रहा है जिसे विद्युत शक्ति इस योजना से प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त सूती वस्त्र, सीमेन्ट, चीनी, रासायनिक पदार्थ, इन्जीनियरिंग आदि के कारखानों के लिए भी शक्ति की सुविधा इस योजना से प्राप्त हो गयी है।

उपर्युक्त पक्तियो मे भारत की कतिपय महत्त्वपूर्ण नदी घाटी योजनाओं का ही वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक नदी घाटी योजनाएँ अभी निर्माणाधीन हैं। इन सबका विस्तार से विवरण देना स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं है। इन योजनाओं मे कुछ महत्त्वपूर्ण योजनाएँ निम्न हैं:

(१) **नागार्जुन सागर योजना**—आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी पर सिचाई एव विद्युत योजना है जिस पर अनुमानित पूँजी व्यय १९३ ५ करोड रुपये होगा।

(२) **राजस्थान नहर योजना**—सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट हरीके बाँध से निकाली गयी है। यह नहर पक्की नहर है और राजस्थान के उत्तर पश्चिम मे सिचाई की सुविधा प्रदान करेगी। इस पर कार्य चालू है। विस्तृत विवरण के लिए देखिए अध्याय राजस्थान की सिचाई एव नदी घाटी योजनाएँ।

(३) **गंडक योजना**—बिहार एव उत्तर प्रदेश की सम्मिलित योजना है। इससे नेपाल को भी सिचाई एव बिजली प्राप्त होगी। बिहार राज्य में वाल्मीक नगर के समीप गडक नदी पर ७४३ मीटर लम्बा बराज (Barrage) लगभग बन चुका है। नहरों पर खुदाई का कार्य हो रहा है। इसकी अनुमानित लागत लगभग १५८·५७ करोड रुपये होगी।

(४) **तवा-योजना**—मध्यप्रदेश मे नर्मदा की सहायक नदी तवा पर बनाया जा रहा है। इससे ३ २ लाख हेक्टर मे सिचाई तथा २० मेगावाट जलविद्युत सुलभ हो सकेगी। अनुमानित लागत ४० १९ करोड रुपये है।

(५) **व्यास योजना**—यह पजाब, हरियाणा एव राजस्थान राज्यों की सयुक्त योजना है। इसके दो अग हैं (क) व्यास को सतलज से जोड़ने वाली लिंक नहर, तथा

(ग) ब्यास नदी पर पोंग-बाँध। जिस नहर से पंजाब हरियाणा में सिंचाई एवं जल विद्युत की सुविधा प्राप्त होगी। पोंग-बाँध ११६ मीटर ऊँचा होगा जिसका प्रमुख उद्देश्य राजस्थान नहर को अधिक जलराशि उपलब्ध कराना है। यह योजना चतुर्थ योजना के अन्त तक पूरी हो जायगी और इस पर अनुमानित पूँजी-व्यय लगभग १४७ करोड़ रुपये का होगा।

(६) रामगंगा योजना—गंगा नदी की सहायक रामगंगा नदी पर गढ़वाल जिले में कालागढ़ के समीप १२५.६ मीटर ऊँचा पत्थर तथा मिट्टी का बाँध बनाया जा रहा है। इस योजना के द्वारा ६.६ लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई तथा १६८ मेगावाट बिजली सुलभ हो जायगी जिसका लाभ उत्तर प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों को होगा। इसका अनुमानित व्यय ११६ करोड़ रुपये होगा तथा सन् १९७४ तक इसके पूर्ण होने की आशा है।

उपर्युक्त नदी घाटी योजनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य योजनाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है जैसे गुजरात की ककरपारा योजना तथा उकाई-योजना, महाराष्ट्र की पुरना-योजना तथा गिरना-योजना, मैसूर की उत्तरी कृष्णा योजना, मालप्रभा योजना, तथा पश्चिमी बंगाल की मयूराक्षी योजना तथा फरक्का-बाँध योजना आदि। इनमें से कुछ योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं, कुछ पर काम चल रहा है, तथा अन्य कुछ योजनाएँ भारत की पाँचवीं योजना में पूरी होंगी।

देश के विभिन्न भागों में नदी घाटी योजनाओं से अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त हुये हैं। इन योजनाओं से कृषि उद्योग तथा व्यापार की उन्नति हुई है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय आय पर पड़ा है। जिससे देशवासियों का जीवन स्तर ऊँचा हुआ है। देश की खाद्यसमस्या को दूर करने के लिए नदी घाटी योजनाओं से काफी सहायता मिली है। बाढ़ नियन्त्रण से फसलों को लाभ हुआ है तथा सिंचाई व्यवस्था से उत्पादन बढ़ा है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था में इन योजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि इनके द्वारा भारतीय कृषि एवं उद्योगों को एक दीर्घकालीन सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ है।

प्रश्न

१. दक्षिणी भारत की एक बहुउद्देशीय नदी घाटी योजना के लाभों का विवेचन करिए। (टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६६)
२. भारत की किसी एक विशाल बहुमुखी नदी घाटी योजना का विवरण दीजिए। इस योजना से प्राप्त सिंचाई जल विद्युत, एवं अन्य लाभों का उल्लेख कीजिए। (टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६८)
३. बहुउद्देशीय योजनाओं का आर्थिक महत्व समझाइए। उकाई नदी परियोजना का विस्तृत वर्णन कीजिए। (टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६६)

. चम्बल योजना का विस्तृत विवरण दीजिए। कौन इसमें कितने लाभ का भागी है। (टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६४)

. भाखरा नागल योजना के विषय में आप क्या समझते हैं। इससे क्या लाभ हैं विशेषकर राजस्थान को। (टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६३)

. दामोदर घाटी योजना के विषय में आप क्या जानते हैं ? ऐसी योजनाएँ हमारी आर्थिक क्षमता में किस प्रकार वृद्धि करती हैं।

(टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९६२)

. राजस्थान की किसी एक नदी घाटी योजना का विवेचन कीजिए।

(टी० डी० सी०, वाणिज्य, १९७०)

अध्याय ११

कृषि उपज

(AGRICULTURAL CROPS)

सभ्य मानव के प्राचीनतम उद्यमों में से कृषि एक है। मानव के सफलता पूर्वक जीवन यापन के लिए अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति अनेक उपायों से की जाती है। इनमें कृषि महत्वपूर्ण उद्यम है। इस उद्यम का आविर्भाव कृषि युग से हुआ, आज भी कृषि भारत जैसे देशों की अर्थव्यवस्था का आधार है। प्राचीन काल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है, लगभग ७० प्रतिशत देशवासी कृषि से जीविका कमाते हैं और राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग कृषि व सम्बन्धित क्रियाओं द्वारा मिलता है। विश्व के और देशों में खेती एक महत्वपूर्ण उद्यम रहा है। कृषि, उद्योगों के विकास का आधार है, किसी भी देश के औद्योगिक विकास के पहले कृषि का विकास अत्यन्त आवश्यक है, यह कहा जाता है कि जो देश कृषि प्रधान हैं, उसके निवासी निर्धन हैं और वह देश अल्प विकसित है। वास्तव में, यह बात कुछ अंश तक सत्य प्रतीत होती है किन्तु निर्धनता का कारण कृषि व्यवसाय नहीं है, इसका कारण कृषि व्यवसाय का पिछड़ापन है। भारतीय कृषि के पिछड़े होने के कारण यहाँ के निवासी निर्धन हैं। निर्धनता अर्थव्यवस्था के कुचक्र (Vicious Circle) का परिणाम है, जिससे छुटकारा पाना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु इससे देश के लिए कृषि का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं होता। भारत में यह व्यवसाय महत्वपूर्ण है और भविष्य में भी रहेगा।

कृषि उत्पादन की मात्रा पर व्यापार की उन्नति आधारित है, भारत से कृषि उत्पादन का निर्यात भी किया जाता है जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, देशी व्यापार की उन्नति में भी कृषि का महत्वपूर्ण योग है, अतः देश की आर्थिक समृद्धि के लिए कृषि विकास अत्यन्त आवश्यक है।

भारत के लिए कृषि का महत्व

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कृषि एक प्रकार का आधार है। भारत में खाद्य पदार्थों का अभाव है तथा उद्योगों के लिए कच्चे माल का भी अभाव है ऐसी स्थिति में इस व्यवसाय को प्राथमिकता देना स्वाभाविक हो जाता है। निम्नलिखित तथ्यों से कृषि का महत्व स्पष्ट हो जायगा :

(१) जीविका का साधन—भारत मे प्रत्यक्ष रूप से लगभग ७० प्रतिशत व्यक्ति कृषि से जीविका कमाते हैं, जिन लोगों के पास भूमि है वे स्वय खेती करते हैं और जिनके पास भूमि नही है वे खेतो मे मजदूरी करते हैं, अत भारत का सबसे प्रमुख व्यवसाय कृषि है जिसमे अधिकतर जनसख्या जीवन यापन करती है।

(२) औद्योगिक कच्चे माल की उपलब्धि—भारत मे अनेक वृहत उद्योग कृषि पर आधारित हैं, इनमे से प्रमुख सूती वस्त्र, जूट चीनी, वनस्पति तेल उद्योग इत्यादि हैं, इन उद्योगों का विकास कृषि विकास पर आधारित है, भारतीय कृषि के अधिक उन्नति न होने के कारण कुछ प्रकार के कच्चे माल का आयात किया जाता है जैसे कपास, जूट आदि। इसमे देशी आय का भाग विदेशों को देना पड़ता है। अत. इन उद्योगो की उन्नति के लिए कृषि विकास आवश्यक है। इन उद्योगों मे लाखों लोगों को जीवन यापन करने की सुविधा उपलब्ध है। अत. इस दृष्टि से भी कृषि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यवसाय बन चुका है।

(३) खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति—भारत मे अधिकाश जनसख्या शाकाहारी है अत कृषि उपजो की प्रधानता स्वाभाविक है, कृषि द्वारा खाद्य पदार्थ जैसे गेहूँ, चावल, बाजरा, चना, ज्वार आदि उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त साग सब्जियाँ, फल इत्यादि भी कृषि से उपलब्ध होते हैं। कृषि पर पशु सम्पत्ति आधारित है जिससे खाद्य सामग्री मिलती है। घी-दूध का व्यवसाय भी कृषि से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है।

(४) राष्ट्रीय आय का प्रमुख साधन—भारतीय आय का सबसे प्रमुख साधन कृषि है। वर्ष १९६९-७० मे भारत की कुल राष्ट्रीय आय चालू मूल्यों के अनुसार ३०,५७० करोड रुपये थी जिसमें कृषि द्वारा प्राप्त आय १५,४०१ करोड रुपये थी—अर्थात् कुल राष्ट्रीय आय का ५०.३ प्रतिशत।

(५) निर्यात व्यापार—भारत के निर्यात व्यापार मे अनेक वस्तुएँ सम्मिलित हैं, उदाहरण स्वरूप चाय, लाख, शक्कर, जूट, चमडा, रुई, मसाले, चीनी, तिलहन, ऊन आदि वस्तुएं कृषि से प्राप्त होती हैं, जिनको निर्यात करके विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाती है। देश मे निर्यात बढाने पर आजकल काफी जोर दिया जा रहा है।

(६) पशु पालन व्यवसाय मे सहायक—कृषि पशुपालन व्यवसाय मे काफी सहायता प्रदान करती है, किसान अपने सहायक धन्धे के रूप मे पशु पालते हैं और अपनी आय मे वृद्धि करते हैं। पशुओ को कृषि से चारा उपलब्ध होता है, कृषि को भी पशुओं से सहायता मिलती है, फसलें बोने तथा खाद प्राप्ति के ये मुख्य साधन हैं।

(७) सरकार को आय—केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को कृषि व्यवसाय से आय प्राप्त होती हैं, केन्द्रीय सरकार निर्यात कर व उत्पादन कर के रूप मे कृषि से आय प्राप्त करती है और राज्य सरकारें भूमि कर तथा आबकारी कर के रूप मे आय प्राप्त करती हैं, भारत का बजट भी कृषि पर आधारित है।

(८) अन्य—कृषि देश के आन्तरिक व्यापार का आधार है। विभिन्न श्रेणियों के व्यापार कृषि पदार्थों के क्रय-विक्रय कार्यों में लगे हुए हैं, इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों के विकास के लिए भी कृषि महत्वपूर्ण है, कृषि उन्नति से इनकी भी उन्नति होती है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय कृषि यहाँ की अर्थव्यवस्था की आधार-शिला है। उद्योग तथा व्यापार के ढाँचे को कृषि आधार प्रदान करती है। पंचवर्षीय योजनाओं में भी कृषि आधार मानी गयी है।

भारतीय कृषि की विशेषताएँ

भारतीय कृषि यहाँ के निवासियों का एक प्रमुख अंग बन चुकी है। यहाँ की कृषि पर भौगोलिक तथा सामाजिक वातावरण का प्रमुख प्रभाव पड़ता है। विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर भारतीय कृषि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

(१) भारतीय कृषि वर्षा के व्यवहार पर निर्भर रहती है अतः इसे मानसून का जुआ कहा जाता है। जिस वर्ष वर्षा अच्छी हो जाती है तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, कृषि उपज अधिक होती है परन्तु जिस वर्ष वर्षा का अभाव रहता है अथवा कमी रहती है देश में अकाल की स्थिति पैदा हो जाती है।

(२) देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग ७० प्रतिशत कृषि में लगा हुआ है अतः कृषि जीवन निर्वाह का महत्वपूर्ण साधन है। ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य में कृषि में क्रमशः ४ और ७ प्रतिशत जनसंख्या ही लगी हुई है।

(३) भारतीय कृषि को घाटे का व्यवसाय माना जाता है। जितनी मेहनत इस व्यवसाय में की जाती है उतनी आय नहीं होती। कभी कभी अकाल की स्थिति में आय बिलकुल भी नहीं हो पाती है। किन्तु सिंचित क्षेत्रों एवं उत्तम वर्षा वाले भागों में अब कृषि एक लाभदायक व्यवसाय बन चुका है।

(४) भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषता है कि यहाँ उत्पादकता निम्न है। अन्य देशों की तुलना में भारत में अनेक फसलों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर कम है।

(५) मिश्रित खेती भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषता है। किसान अपने खेतों में एक से अधिक फसल बोते हैं। विदेशों में विशिष्ट कृषि को अधिक महत्व दिया जाता है।

(६) भारत की कुल भूमि की लगभग ४२ प्रतिशत खेती के लिए काम में ली जाती है, विश्व के अन्य देशों में यह प्रतिशत कम है जैसे फ्रांस में ३६ प्रतिशत तथा ब्रिटेन में २३ प्रतिशत भूमि कृषि कार्य में ली जाती है।

(७) भारत में खेतों का आकार छोटा है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति भूमि की कमी होती जा रही है। यहाँ के खेतों का औसत आकार लगभग ९ हेक्टेयर का है। प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि लगभग ०.४ हेक्टेयर है।

(८) भारतीय कृषि अल्प विकसित है, पूंजी के अभाव मे कृषि का विकास नही हो पाया है, किसान ऋणग्रस्त हैं। वे आधुनिक साधनो को काम मे नही ला पाते हैं। अत कृषि पिछडी हुई है।

(९) एक कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारत खाद्यान्नो मे आत्म-निर्भर नही है, खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति आयात मे की जाती है। इसके अतिरिक्त रुई तथा जूट के उत्पादन म भी देश आत्म-निर्भर नही है।

इस प्रकार भारतीय कृषि यहाँ की अर्थव्यवस्था म विशेष महत्त्व रखती है। इसकी विशेषताओ के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कृषि आज भी उन्नत स्तर तक नहीं पहुँच सकी है।

भारत मे खेती की पद्धतियाँ

भारत के विभिन्न भागो म कई प्रकार की खेती होती है, यह भिन्नता प्राकृतिक अवस्था मिट्टी तथा जलवायु सम्बन्धी विभिन्नताओ के कारण है। यहाँ निम्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं :

(१) शुष्क खेती (Dry Farming)—शुष्क कृषि उन भागो मे होती है जहाँ वर्षा कम होती है, जिन क्षेत्रो मे ५० से० मी० से भी कम वर्षा होती है, वहाँ यह खेती होती है, भारत मे राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यो में शुष्क खेती होती है। इन भागो मे बाजरा, ज्वार, जौ, गेहूँ, चना आदि फसलें होती हैं।

(२) तर खेती (Wet Farming)—देश के जिन भागो मे अधिक वर्षा होती है और काँप मिट्टी पायी जाती है वहाँ तर खेती होती है, पश्चिमी समुद्रतट, पश्चिमी बगाल, तथा कुछ अन्य क्षेत्रो म जहाँ २०० से० मी० से अधिक वर्षा होती है, और काँप मिट्टी है इस प्रकार की खेती होती है। इस प्रणाली मे जूट, गन्ना तथा चावल की खेती होती है।

(३) आर्द्र खेती (Humid Farming)—आर्द्र खेती काली मिट्टी प्रदेश मे की जाती है। यह मिट्टी अधिक समय तक नमी को अपने अन्दर बनाये रखती है। जिन भागो मे १२५ से० मी० से २०० से० मी० वर्षा होती है वहाँ भी यह खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त गगा के मैदान जिन भागो मे १२५ से० मी० से २०० से० मी० तक वर्षा और काँप मिट्टी पायी जाती है वहाँ यह खेती होती है।

(४) सिंचित खेती (Irrigated Farming)—जिन भागो मे सिंचाई के द्वारा खेती होती है वे भाग इसमे सम्मिलित हैं। गगा-यमुना के मैदानी भाग मे जहाँ १२५ से० मी० से कम वर्षा होती है वहाँ इस पद्धति से खेती होती है। इसके अतिरिक्त कुछ नदियो के डेल्टा प्रदेशो मे भी सिंचाई के द्वारा खेती होती है।

(५) अन्य—इसके अतिरिक्त भारत मे पहाडी ढालो पर सीढीनुमा खेत बना के खेती की जाती है। देश के कुछ भागो म, कृषि स्थानान्तर प्रणाली अथवा झूमिंग प्रणाली से खेती की जाती है। इसके अन्तर्गत कालान्तर मे स्थान परिवर्तन करके

खेती की जाती है, जिन भागों में अधिक भूमि बेकार पड़ी है उन भागों में किसान कुछ समय तक एक भूमि के टुकड़े पर खेती करते हैं। गहन-कृषि (Intensive farming) प्रणाली के अन्तर्गत उन्हीं खेतों में निरन्तर फसलें बोयी जाती हैं तथा अधिक उन्नत बीज, खाद, सिंचाई, आदि के आधार पर अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों में कुछ जिलों एवं क्षेत्रों का चयन किया गया है जहाँ गहन कृषि जिला कार्यक्रमों (Intensive Agriculture District Programmes) तथा गहन कृषि क्षेत्रीय कार्यक्रमों (Intensive Agriculture Area Programmes) को लागू करके अधिक उपज प्राप्त की जा रही है।

भारत के अधिकतर भागों में सिंचित, शुष्क, तर तथा आर्द्र खेती प्रणालियाँ प्रचलित हैं। कृषि विकास के साथ-साथ शुष्क प्रदेशों में सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है जिससे कृषि उत्पादन अधिक हो सकेगा। इस प्रकार शुष्क कृषि के स्थान पर अब सिंचित-कृषि का क्षेत्र बढ़ रहा है।

कृषि व्यवसाय को प्रभावित करने वाले तत्त्व

कृषि व्यवसाय को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक हो सकते हैं। इस व्यवसाय में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। प्राकृतिक तत्त्वों में धरातल, मिट्टी तथा जलवायु सम्मिलित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक एवं राजनैतिक तत्त्व भी कृषि व्यवसाय की उन्नति को काफी प्रभावित करते हैं। सभी प्रकार के तत्त्वों का प्रभाव निम्न प्रकार है :

(१) धरातल—कृषि उन्नति में धरातल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समतल भूमि कृषि कार्यों के लिए उत्तम समझी जाती है। मैदानी भागों में समतल खेत उपलब्ध हो सकते हैं। पर्वतीय तथा पठारी भागों में खेती सुगम नहीं हो सकती। यद्यपि इन भागों में भी कृषि होती है परन्तु सीमित मात्रा में। इन भागों में खेत बनाना कठिन होता है फिर भी कुछ ऐसी फसलें भी हैं जो पहाड़ी ढालों पर अच्छी होती हैं जैसे चाय, कहवा इत्यादि। मैदान समतल होने के साथ-साथ ढलान युक्त भी होना चाहिए ताकि जल मग्नता (water-logging) की समस्या उत्पन्न नहीं हो।

(२) मिट्टी—मिट्टी कृषि का प्रमुख आधार है। अधिक गहराई वाली तथा उपजाऊ मिट्टी कृषि के लिए उत्तम होती है, मिट्टी के कण न तो अधिक छोटे होने चाहिए तथा न अधिक बड़े। मिट्टी में कार्बनिक अंश तथा पौधों के लिए आवश्यक तत्त्व मौजूद होने चाहिए। चूँकि विभिन्न फसलों के लिए अलग अलग प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है, अतः फसल की आवश्यकतानुसार मिट्टी होने से उपज अधिक हो सकती है। चावल उन्हीं भागों में उत्पन्न किया जा सकता है जहाँ उपजाऊ दोमट मिट्टी हो और पर्याप्त पानी तथा उपजाऊ मिट्टी प्राप्त होती है।

(३) जलवायु—जलवायु का भी कृषि पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। फसलें जलवायु की विद्यमानता के आधार पर उत्पन्न की जाती हैं। जिन भागों में कम वर्षा होती है वहाँ शुष्क खेती की जाती है तथा जिन भागों में अधिक वर्षा

होती है वहाँ तक खेती की जाती है। किसी स्थान का जलवायु किसी फसल विशेष का क्षेत्र निर्धारित करता है जैसे राजस्थान का जलवायु जूट के लिए उपयुक्त नहीं है और गंगा का डेल्टा प्रदेश कपास के लिए अच्छा नहीं है, वर्षा के अतिरिक्त फसलों को तापक्रम भी प्रभावित करता है। अधिक शीत प्रदेश फसलों के लिए हानि कारक होते हैं, शुष्क प्रदेशों मे भी बहुत कम फसलें होती हैं।

(४) कुशल श्रम शक्ति—कृषि व्यवसाय के लिए श्रम शक्ति अनिवार्य है, आजकल वैज्ञानिक कृषि का प्रचार हो रहा है, इसमे कुशल श्रमिक होने चाहिए, कृषकों को कृषि कार्यों के लिए श्रम की आवश्यकता पड़ती है। अगर दक्ष श्रम उपलब्ध है तो उत्पादन भी अधिक होगा किसान तथा श्रम दोनों को नवीन कृषि यन्त्रों के प्रयोग की जानकारी होनी चाहिए।

(५) मशीनों का प्रयोग—मशीनों का आजकल बहुत महत्व है, कृषि कार्यों मे आजकल उनका प्रयोग होने लग गया है, इनके प्रयोग से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। कृषि मशीनरी के उपयोग से उपजों मे काफी वृद्धि की जाती है। भारत मे सघन कृषि कार्यक्रमों मे कृषि यन्त्रों का महत्त्व काफी बढ़ गया है।

(६) वित्तीय साधनों की पर्याप्तता—कृषि कार्य काफी विस्तृत व्यवसाय है जिसमें अनेक छोटी छोटी क्रियाएँ हो सकती हैं जैसे बुआई, सिंचाई, कटाई आदि, इन सभी कार्यों मे पूँजी की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक कृषि करने मे विभिन्न उर्वरकों तथा खादों की आवश्यकता पड़ती है। बागान की खेती (Plantation Cultivation) मे बहुत पूँजी की आवश्यकता पड़ती है अत धनी किसानों अथवा पूँजीपतियों के हाथ मे इनका विकास होता है।

(७) उपजों की मांग—कृषि विकास इससे पैदा होने वाली उपजों की मांग पर आधारित है, जिन वस्तुओं की अधिक मांग होती है उनको अधिक उत्पन्न किया जाता है। भारत मे चाय के उत्पादन मे वृद्धि अन्तरराष्ट्रीय मांग के आधार पर हुई है। इसके अतिरिक्त वस्तु की मांग यदि अधिक निकट के क्षेत्रों मे होती है तो किसान उससे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

(८) परिवहन के साधनों की सुविधा—कृषि उपजों को विक्रय के लिए बाजार तक पहुँचाने के लिए परिवहन के साधनों की आवश्यकता होती है, इन साधनों के अभाव मे यह कार्य बहुत कठिन हो जाता है और किसान के लिए एक विकट समस्या बन जाती है। भारत मे ग्रामीण क्षेत्र पक्की सड़कों तथा रेल मार्गों से जुड़े हुए न होने के कारण किसानों की दशा पिछड़ी हुई है।

(९) राजनैतिक दशा—देश की राजनैतिक दशा का भी कृषि उपजों पर प्रभाव पड़ता है, स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भारत मे उन उपजों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था जिनकी आवश्यकता अंग्रेजों को अपने देश के लिए थी, जैसे गेहूँ, कपास, तिलहन आदि, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत मे किसानों की दशा सुधारने तथा सभी प्रकार की फसलों के विकास को प्रोत्साहन मिला है।

(१०) सरकारी आर्थिक नीति—सरकारी आर्थिक नीति का कृषि उपजों पर काफी प्रभाव पड़ता है, सरकार कुछ उपजों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहती है तथा कुछ उपजों के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न करती है, सरकारें अपनी नीति के आधार पर उपज बढ़ाने हेतु किसानों को कृषि से सम्बन्धित जानकारी देने की व्यवस्था करती हैं। नवीन कृषि तरीकों का प्रदर्शन करती है। अधिक उपज करने वाले किसानों को पुरस्कार दिया जाता है, सरकारी फार्म खोलकर विभिन्न विकास सम्बन्धित प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन व्यवस्था भी की जाती है, भारत में कृषि विकास के लिए इन सभी उपायों को काम में लाया जा रहा है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कृषि विकास में प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तीनों ही प्रकार के तत्वों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक तत्व भी महत्वपूर्ण है कृषि कार्यों में प्रोत्साहन देने से किसानों का उत्साह बढ़ जाता है। इस प्रकार कृषि उपज अधिक होती है।

कृषि उपज

भारत में अनेक प्रकार की कृषि उपज होती है, देश की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के आधार पर इसमें काफी क्षेत्रीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं, यहाँ उष्ण जलवायु प्रदेशों में चावल तथा गन्ने की फसल प्रमुख है, और समशीतोष्ण जलवायु के क्षेत्रों में गेहूँ, कपास तथा अन्य उपजें अधिक मात्रा में होती हैं, भारत की मुख्य फसलें गेहूँ, चावल, मक्का, मोटे अनाज, कपास, गन्ना, चाय, तम्बाकू, जूट आदि हैं।

कृषि फसलों का वर्गीकरण
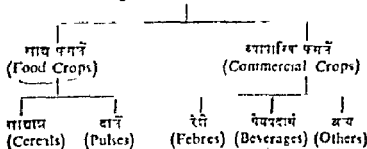
- खाद्य फसलें (Food Crops)
  - खाद्यान्न (Cereals)
    - १. गेहूँ
    - २ चावल
    - ३ मोटे अनाज जैसे जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि।
  - दालें (Pulses)
    - १. मूँग
    - २ उरद
    - ३ मोठ
    - ४. मसूर
    - ५ चना आदि
- व्यापारिक फसलें (Commercial Crops)
  - रेशे (Febres)
    - कपास
    - जूट
  - पेयपदार्थ (Beverages)
    - चाय
    - कहवा
    - कोको
  - अन्य (Others)
    - १ तम्बाकू
    - २ गन्ना
    - ३ तिलहन
    - ४ रबड़
    - ५ मसाले
    - ६ फल सब्जी आदि

I. खाद्यान्न
(Food Grains)

कृषि जन्य पदार्थों मे खाद्यान्नों का विशेष महत्त्व है। भारत मे खाद्यान्नों मे गेहूँ, चावल, मोटे अनाज, मक्का, जौ आदि उत्पन्न होते हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :

गेहूँ
(Wheat)

खाद्यान्नो म गेहूँ एक महत्वपूर्ण उपज है। गेहूँ एक प्रोटीन प्रधान अन्न माना जाता है। इसलिए अधिकाश उन्नत देशो के लोग इसको काम मे लेते हैं। विश्व की लगभग आधी जनसंख्या गेहूँ पर निर्भर है। यह अधिक स्फूर्तिदायक अन्न है और अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा इसे अधिक समय तक रखा जा सकता है। गेहूँ जिस प्रकार की विभिन्न जलवायु-स्थितियो मे पैदा किया जा सकता है उस प्रकार अन्य फसलें नहीं पैदा की जा सकती हैं। गेहूँ का प्रयोग रोटी, बिस्कुट, सूजी, मैदा तथा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने में किया जाता है।

भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियां

गेहूँ की उपज के लिए निम्नलिखित भौगोलिक एव आर्थिक परिस्थितियो का होना अपेक्षित है .

(१) तापमान—गेहूँ के लिए उगते समय औसतन १०° सेंटी ग्रेड और पकते समय १५° सेंटी ग्रेड से २०° सेंटी ग्रेड तापमान उपयुक्त समझा जाता है। इस उपज के लिए सूर्य प्रकाश तथा धूप की आवश्यकता होती है। यदि गेहूँ की फसल अधिक समय तक धूप म वंचित रहती है तो इसे "रतुआ" रोग लग जाता है।

(२) वर्षा—सामान्यतः गेहूँ की उपज के लिए औसत वार्षिक वर्षा ६० से ७५ सेंटीमीटर तक पर्याप्त होती है। अधिक वर्षा वाले भागों में गेहूँ की फसल नहीं बोयी जाती। इसे साधारणतः अर्द्ध शुष्क प्रदेशों की उपज कहा जाता है। कम वर्षा वाले भागो में भी सिंचाई के द्वारा प्रचुर मात्रा में गेहूँ उत्पन्न किया जाता है।

(३) मिट्टी—गेहूँ की प्रति हेक्टर उपज मिट्टी की उर्वरता पर आधारित है। इसके लिए कछारी मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। काली मिट्टी में भी यह सफल हो सकती है। विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मिट्टी उर्वरा होनी चाहिए और धरातल समतल। ऐसी भारी मिट्टियाँ जो पानी नहीं सोख सकती, गेहूँ उत्पादन के योग्य नही होती हैं जैसे बगाल की चिकनी मिट्टी।

(४) कुशल श्रम —गेहूँ की उपज के लिए अनेक कार्य करने पड़ते हैं। अतः सस्ते श्रमिक उपलब्ध होना आवश्यक है। वैसे गेहूँ की खेती के लिए बहुत अधिक श्रमिकों की आवश्यकता नही है। आजकल मशीनों का प्रयोग बढ़ने पर कम श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है अब उत्तर पश्चिम भारत में भी गेहूँ की खेती के

लिए मशीनों एवं अन्य उपकरणों का उपयोग किया जाने लगा है। ट्रैक्टरों का प्रचलन बढ़ रहा है। कम्बाइन्ड हारवेस्टरों के निर्माण की योजना भी विचाराधीन है।

भारत में गेहूँ का उत्पादन

भारत के खाद्यान्नों में गेहूँ के उत्पादन का भाग महत्त्वपूर्ण है। पंचवर्षीय योजनाओं के काल में इसके उत्पादन में वृद्धि हुई है।

योजनाओं की अवधि में गेहूँ का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)	प्रति हेक्टर उत्पादन (किलोग्राम)
१९५०-५१	६४	६५५
१९५५-५६	८८	७०८
१९६०-६१	११०	८५१
१९६५-६६	१०४	८२४
१९६६-६७	११४	८८७
१९६७-६८	१६५	१,१०३
१९६८-६९	१८७	१,१६९
१९६९-७०	२०१	१,२०९

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पिछले बीस वर्षों में गेहूँ के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यद्यपि तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष में गेहूँ का उत्पादन गिर गया किन्तु उसके बाद हरी क्रान्ति (Green Revolution) के फलस्वरूप उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है। सन् १९७०-७१ में लगभग २०६ लाख टन की गेहूँ की उपज होने का अनुमान है।

पिछले बीस वर्षों में गेहूँ के प्रति हेक्टर उत्पादन में भी दो गुनी वृद्धि हुई है जैसा कि उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है। अब गेहूँ के सुधरे बीजों की खेती बढ़ रही है जो अधिक उपज देती है।

गेहूँ के उत्पादक क्षेत्र

भारत में खाद्यान्नों के क्षेत्रफल का लगभग ११ प्रतिशत भाग गेहूँ की उपज के अन्तर्गत आता है। गेहूँ अधिकांशतः उत्तरी मैदानी भाग तथा मध्य भारत में पैदा होता है। सबसे अधिक गेहूँ उत्तर प्रदेश में होता है। इसके अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र में भी इसकी उपज होती है। सम्मुख चित्र से विभिन्न राज्यों में गेहूँ की उपज की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

भारत में गेहूँ उत्पादन क्षेत्र

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश भारत का प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ देश के कुल उत्पादन का लगभग ४० प्रतिशत गेहूँ पैदा होता
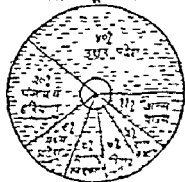
है। इस राज्य मे गोरखपुर जिला बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त मुजफ्फर नगर, मेरठ, मुरादाबाद, कानपुर, आगरा, बुलन्दशहर, सहारनपुर इटावा, फर्रुखाबाद, तथा कुछ अन्य जिलो मे गेहूँ की खेती होती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागो मे गेहूँ की खेती कम होती है। अन्य भागो मे नहरो तथा कुँओ द्वारा सिंचाई भी की जाती है। उत्तर प्रदेश की जलवायु, मिट्टी तथा मानवीय दशाएँ गेहूँ की फसल के अनुकूल हैं अत यहाँ अन्य क्षेत्रो की तुलना मे अधिक गेहूँ पैदा किया जाता है।

पजाब व हरियाणा—पजाब व हरियाणा मे देश के कुल उत्पादन का लगभग २० प्रतिशत गेहूँ उत्पादित होता है। इन राज्यो मे प्रमुख क्षेत्र जलधर, लुधियाना, पटियाला, अमृतसर, फिरोजपुर, रोहतक, हिसार तथा गुड़गाँव आदि जिलो मे हैं।
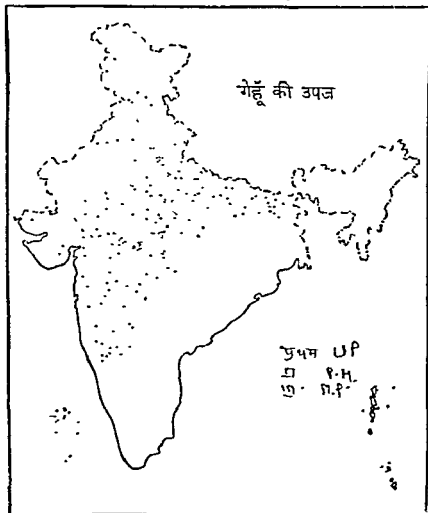
दक्षिण पूर्व की तरफ सिंचाई की सुविधाएँ प्रदान करके गेहूँ उपज क्षेत्र बढाया जा रहा है।

मध्य प्रदेश—गेहूँ उपज का तृतीय मुख्य क्षेत्र मध्य प्रदेश है। यहाँ देश के उत्पादन का ६ प्रतिशत गेहूँ होता है। इस राज्य के मुख्य क्षेत्र सागर ग्वालियर, होशंगाबाद, जबलपुर, उज्जैन, भोपाल आदि जिले हैं।

महाराष्ट्र एवं गुजरात—महाराष्ट्र एवं गुजरात में देश के कुल उत्पादन का लगभग ८ प्रतिशत होता है। महाराष्ट्र के खानदेश, अमरावती, बीजापुर आदि जिलों और गुजरात में अहमदाबाद व भड़ौंच जिलों में गेहूँ का उत्पादन होता है।

अन्य—*राजस्थान, बिहार तथा अन्य राज्यों में क्रमशः ५, ७ व ११ प्रतिशत* गेहूँ का उत्पादन होता है। राजस्थान के अलवर, जयपुर, कोटा, भरतपुर आदि में और बिहार में मुजफ्फरपुर, पटना आदि में गेहूँ की उपज होती है।

व्यापार—भारत में गेहूँ माँग से कम पैदा होता है अतः इसका आयात किया जाता है। आयात संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना आदि से होता है। पिछले वर्षों में गेहूँ का आयात निम्न प्रकार किया गया

गेहूँ का विदेशों से आयात

वर्ष	लाख टन
१९५०-५१	१३
१९५५-५६	४
१९६०-६१	४४
१९६५-६६	६६
१९६६-६७	७८
१९६७-६८	६४
१९६८-६९	४८
१९६९-७०	३१

उपर्युक्त आँकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तृतीय योजना के अन्त में गेहूँ का आयात अधिक करना पड़ा। उसके बाद आयात की मात्रा में क्रमशः कमी हुई है। सन् १९७०-७१ में यद्यपि गेहूँ की उपज बहुत उत्तम हुई है, फिर भी बफर स्टाक बनाने के लिए १५ लाख टन गेहूँ के आयात का समझौता किया गया है। आशा है कि अगले वर्ष भारत को आयात की आवश्यकता न रह जायगी।

चावल
(Rice)

चावल प्राचीन काल से ही मनुष्य के खाद्य पदार्थ के उपयोग में आ रहा है। ऐसा माना जाता है कि हजारों वर्ष पूर्व चावल का प्रचार चीन से भारत में हुआ। इसके पश्चात् विश्व के अन्य देशों में भी इसका प्रचार हुआ। चावल में माँड़ी (Starch) अधिक मात्रा में होती है। इसे उबालकर भात बनाकर खाया जाता है। इसका उपयोग मछली के साथ भी किया जाता है। कुछ देशों में चावल को मटर तथा अन्य फलियों (Beans) के साथ भी काम में लिया जाता है।

भौगोलिक परिस्थितियाँ

चावल उष्ण एवं तर जलवायु का पौधा है। संसार का तीन चौथाई से भी अधिक चावल दक्षिणी-पूर्वी-एशिया में उगाया जाता है। गेहूँ की अपेक्षा चावल के उत्पादन में प्राकृतिक परिस्थितियों का अधिक महत्त्व है। इसकी खेती कुछ विशेष प्रदेशों में ही हो पाती है। चावल की फसल के लिए निम्नलिखित प्राकृतिक परिस्थितियाँ आवश्यक हैं .

(१) **तापक्रम**—उष्ण प्रदेश के चावल के अंकुरित होने के लिए निम्नतम तापक्रम २०° सें० ग्रे० है। साधारणत इस बोने के समय २१° सें० ग्रे०, मध्य समय में २४°-२५° से० ग्रे० तथा पकने के समय २७° स० ग्रे० तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है।

(२) **वर्षा**—चावल की खेती के लिए १२५ से० मी० से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुकूल माने जाते हैं। चावल पानी भरे क्षेत्रों में पैदा होता है अतः जिन भागों में वर्षा कम होती है वहाँ सिंचाई करके जल की पूर्ति भी की जाती है। फिर भी कम वर्षा वाले भागों में चावल प्रायः कम ही बोया जाता है क्योंकि सिंचाई द्वारा इतने पानी की व्यवस्था करना कठिन होता है।

(३) **मिट्टी**—भारत में अधिकांश चावल नदियों के डेल्टा प्रदेशों में दलदली भूमि में होता है। इस फसल के लिए उपजाऊ चिकनी अथवा दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। चावल से भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है अत. खाद भी देनी पड़ती है। पहाड़ी ढालों की मिट्टियों में भी सीढ़ीदार खेत बनाकर चावल उत्पन्न किया जाता है क्योंकि वहाँ वर्षा की मात्रा पर्याप्त होती है।

(४) **सस्ता श्रम**—चावल उगाने के कार्य हाथ से करने पड़ते हैं क्योंकि दलदली भागों में मशीनों का उपयोग नहीं हो सकता। पानी से भरे खेतों में साधारणतः खुरपों से पौधा लगाया जाता है। अत. इसे "खुरपे की खेती" कहते हैं। अत जिन भागों में अधिक जनसंख्या पायी जाती है वहाँ सस्ता श्रम उपलब्ध हो सकता है।

भारत में चावल की अमन, औस तथा बोरो, तीन प्रकार की फसलें हैं। 'अमन' शीतकालीन फसल है जो कि प्रमुख फसल है। भारत में इसमें ६० प्रतिशत से भी अधिक उत्पादन होता है। यहाँ यह फसल पश्चिमी बंगाल बिहार, केरल, तमिलनाड, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब राज्यों में होती है। द्वितीय फसल 'औस' पतझड़-कालीन फसल है जिससे कुल उत्पादन का लगभग ३५ प्रतिशत से भी अधिक होता है। यह फसल पश्चिमी बंगाल केरल, बिहार आदि राज्यों में होती है। 'बोरो' ग्रीष्मकालीन फसल है जिससे बहुत कम उत्पादन होता है। यह फसल पश्चिमी बंगाल, बिहार, केरल तथा तमिलनाड राज्यों में होती है।

चावल का उत्पादन

भारत का चावल के क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में प्रथम, और उत्पादन की दृष्टि से द्वितीय स्थान है। प्रति हेक्टेयर चावल का उत्पादन भारत में अन्य देशों की

अपेक्षाकृत बहुत कम है। भारत में इस समय लगभग ११६ खाद्यान्न फसलें होती हैं जिनमें से चावल की फसल ३१ होती है जो कि कुल बोयी जाने वाली भूमि का लग वर्षों में चावल का उत्पादन निम्न प्रकार हुआ

चावल का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)	प्रति हेक्टेयर उत्पादन (किलोग्राम)
१९५०-५१	२३५	७३१
१९५५-५६	२७६	८७४
१९६०-६१	३४६	१,०१३
१९६५-६६	३०७	८६६
१९६६-६७	३०४	८६३
१९६७-६८	३७६	१,०३२
१९६८-६९	३९८	१,०७६
१९६९-७०	४०४	१,०७३

पिछले तीन वर्षों में उत्पादन बढ़ा है किन्तु गेहूँ की तुलना में चावल के उत्पादन में वृद्धि उतनी तीव्रता से नहीं हुई है। चावल की उपज में भी गेहूँ की भांति क्रान्ति लाने की आवश्यकता है। कृषि के गहन तरीकों से चावल के प्रति हेक्टेयर उत्पादन को १,०७३ किलोग्राम से बढ़ा कर १,२०० किलोग्राम कर दिया जाना चाहिए।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में चावल के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मद्रास (तमिलनाडु), उड़ीसा, मैसूर, महाराष्ट्र, आसाम तथा केरल राज्य प्रमुख हैं। वैसे भारत में थार के मरुस्थल को छोड़कर न्यूनाधिक चावल लगभग सभी क्षेत्रों में होता है। विभिन्न राज्यों का भाग पृष्ठ २१८ के चित्रानुसार है।

भारत में चावल का उत्पादन

पृष्ठ २१८ के रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि भारत में सबसे अधिक चावल पश्चिमी बंगाल में होता है। इसके पश्चात् आन्ध्र प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु (मद्रास), उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा अन्य हैं। विभिन्न राज्यों में उत्पादन निम्न प्रकार है:

पश्चिमी बंगाल—भारत में पश्चिमी बंगाल का चावल के उत्पादन में प्रथम स्थान है। पश्चिमी बंगाल देश के कुल उत्पादन का लगभग १४ प्रतिशत चावल उत्पादन करता है। पश्चिमी बंगाल में आमन, औस तथा ग्रीष्मकालीन तीनों फसलें होती हैं। इस राज्य के मुख्य चावल उत्पादक क्षेत्र दार्जिलिंग, बर्दवान, मिदनापुर, जलपाईगुड़ी तथा बांकुड़ा हैं। गंगा के डेल्टा क्षेत्र में भी पर्याप्त चावल होता है।

का औसत वार्षिक आयात तीन चार लाख टन था। तीसरी योजना के काल में प्रति वर्ष ७ से ८ लाख टन चावल औसतन विदेशों से आयात किया गया। सन् १९६९-७० में पाँच लाख टन चावल विदेशों से आयात हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि गेहूँ की तुलना में चावल का आयात कम होता है क्योंकि विश्व बाजार में चावल निर्यात करने वाले देश बहुत कम हैं। जो देश चावल उत्पादन करते भी हैं उनकी स्वयं की जनसंख्या बहुत अधिक है।

गेहूँ की भाँति चावल उत्पादन में भी क्रान्ति लाने के प्रयत्न हो रहे हैं। भुवनेश्वर के चावल अनुसन्धान केन्द्र (Rice Research Institute) ने अप्रैल १९७१

में अधिक उपज देने वाली धान की नई किस्मों का विकास किया है जिससे आशा है चावल की प्रति हेक्टर उपज भारत में १,२०० किलोग्राम हो जायगी।
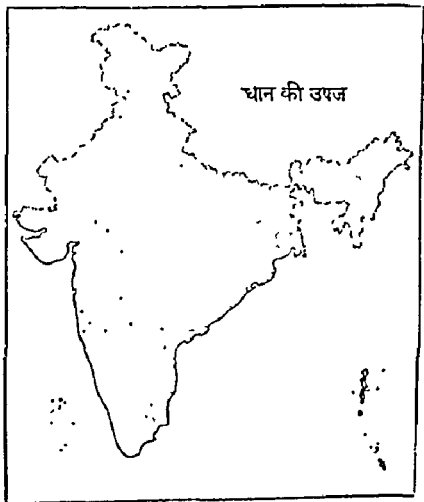
II. व्यापारिक फसलें
(Commercial Crops)

अन्य फसलों के अन्तर्गत व्यावसायिक फसलें हैं जिनमें रेशेदार उपजें तथा पेय पदार्थ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ प्रमुख फसलों का वर्णन नीचे किया गया है :

कपास
(Cotton)

रेशेदार उपजों में कपास बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे सूती वस्त्र बनाये जाते हैं। सूती वस्त्रों का उपयोग भारत में प्राचीनकाल से ही हो रहा है। ऋग्वेद में भी सूती धागों का विवरण पाया जाता है। वर्तमान समय में सूती वस्त्र उद्योग कपास पर आधारित है और इसका देश की अर्थव्यवस्था में काफी महत्त्व है।

कपास कई किस्म की होती है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से इसका वर्गीकरण रेशे की लम्बाई के आधार पर किया जा सकता है। इस दृष्टि से कपास तीन प्रकार की होती है—लम्बे रेशे की कपास, मध्य रेशे की कपास तथा छोटे रेशे वाली कपास। लम्बे रेशे वाली कपास की लम्बाई साधारणतः ४० मिलीमीटर से अधिक होती है और मध्य रेशे वाली कपास की लम्बाई २५ मिलीमीटर से ४० मिलीमीटर तक होती है। छोटे रेशे वाली कपास की लम्बाई अधिकतम २५ मिलीमीटर होती है। इन किस्मों में लम्बे रेशे की कपास से बहुत अच्छी किस्म का कपड़ा बनाया जाता है। व्यापारिक दृष्टि से मध्य रेशे वाली का महत्त्व है और छोटे रेशे वाली कपास से घटिया किस्म का कपड़ा बनता है तथा ऊनी और सूती मिश्रित वस्त्र बनाने में भी छोटी रेशे वाली कपास काम में लायी जाती है।

भौगोलिक परिस्थितियाँ

कपास की उपज के लिए निम्नलिखित भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल होनी चाहिए :

(१) तापमान—कपास के पौधों के लिए ऊँचे तापमान की आवश्यकता पड़ती है। इसे बोते अथवा उगते समय २४° सेण्टीग्रेड तापमान की जरूरत होती है। अधिकतम तापमान ३०° सण्टीग्रेड तक उपयुक्त होता है। इसके पौधों के लिए पाला हानिकारक होता है। इस उपज को गर्मी में बोते हैं और इसकी उपज लगभग ६-७ महीनों में तैयार हो पाती है अतः लगभग २०० दिन इस प्रकार के होने चाहिए जिनमें पाला न पड़ता हो। इस पौधे के लिए समुद्री हवाएँ उत्तम समझी जाती हैं। उगते तथा बढ़ते समय खुली धूप मिलती रहनी चाहिए।

(२) वर्षा—कपास के लिए १०० सेण्टीमीटर तक वर्षा वाले भाग उपयुक्त माने जाते हैं। कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई करके भी काम चलाया जाता है। बोने के पश्चात् प्रथम चार महीनों तक वर्षा थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् होती रहनी चाहिए और इस अवधि के पश्चात वर्षा नहीं होनी चाहिए, अन्यथा कपास की किस्म खराब होने की आशंका रहती है।

(३) मिट्टी—कपास के लिए लावा प्रदेश की काली मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। इस फसल के लिए मिट्टी में चूने की यथेष्ट मात्रा होनी चाहिए। इसके अलावा अन्य मिट्टियों में भी कपास की खेती हो सकती है। धरातल समतल तथा हल्के ढाल वाला उचित माना जाता है क्योंकि इसमें पानी खेतों में इकट्ठा नहीं होता।

(४) श्रम शक्ति—कपास की उपज के विभिन्न कार्य जैसे इसे बोने, सिंचाई करने तथा चुनने में काफी श्रमिकों की आवश्यकता होती है अतः सस्ता श्रम उपलब्ध होना चाहिए। यद्यपि आजकल मशीनों का प्रयोग बढ़ रहा है फिर भी श्रमिकों का *विशिष्ट महत्व है। तैयार कपास के गोलों (Cotton Balls)* को चुनने का कार्य मानव के नेत्र एवं हाथ की उत्तमता से कर सकते हैं। भारत में अभी कपास चुनने के लिए मशीनों का उपयोग नहीं होता है।

कपास का उत्पादन

भारत विश्व के तीन बड़े कपास उत्पादकों में से एक है। भारत में मध्यम तथा छोटे रेशे की कपास अधिक पैदा होती है अतः लम्बे रेशे वाली कपास का आयात करना पड़ता है। आजकल यहाँ पंजाब, हरियाना तथा दक्षिणी भारत में अच्छे किस्म की कपास के उत्पादन के प्रयत्न सफलतापूर्वक किए जा रहे हैं। भारत में योजनाओं की अवधि में कपास का उत्पादन निम्न प्रकार हुआ :

कपास का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख गाँठें)[1]	प्रति हेक्टर उत्पादन (किलोग्राम)
१९५०–५१	२८ ७५	८८
१९५५–५६	३६ ८६	८८
१९६०–६१	५२ ६३	१२५
१९६५–६६	४७ ६२	१०८
१९६९–७०	५२ ३१	१२७
१९७३–७४ सभव	८० ००	—

सन् १९६६ में उत्पादन गिर गया। उसके बाद यह कुछ बढ़ा। उदाहरण के लिए, सन् १९६८ में ५४ लाख गाँठों का उत्पादन हुआ किन्तु पिछले दो वर्षों में इसमें कुछ गिरावट आ गयी। भारत में रूई की माँग उत्पादन से कहीं अधिक है जिसे पूरा करने के लिए प्रति हेक्टर उत्पादन में वृद्धि लाना अनिवार्य है। भारत को इस समय प्रतिवर्ष ७० लाख गाँठों की आवश्यकता होती है।

[1] एक गाँठ १८० कि० ग्राम की है।

भारत में कपास की फसल के अन्तर्गत वर्ष १६५०-५१ में ५८ ८२ लाख हेक्टेयर क्षेत्र था जोकि प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त में ८० ८६ लाख हेक्टेयर हो गया। इस क्षेत्रफल में द्वितीय योजना तथा तृतीय योजना में कुछ कमी हो गयी। चतुर्थ पचवर्षीय योजना में अधिक भूमि पर कपास की खेती किये जाने के प्रस्ताव हैं। नवीन नहरी-क्षेत्रों में उत्तम किस्म की कपास उत्पन्न करने के लिए किसानों को प्रेरित किया जा रहा है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में कपास का महत्त्वपूर्ण उत्पादन क्षेत्र दक्षिणी भारत का काली मिट्टी प्रदेश है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा गुजरात में देश का लगभग आधा कपास उत्पन्न किया जाता है। इन राज्यों के अतिरिक्त पंजाब, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश तथा राजस्थान आदि राज्यों में भी कपास उत्पन्न होती है।
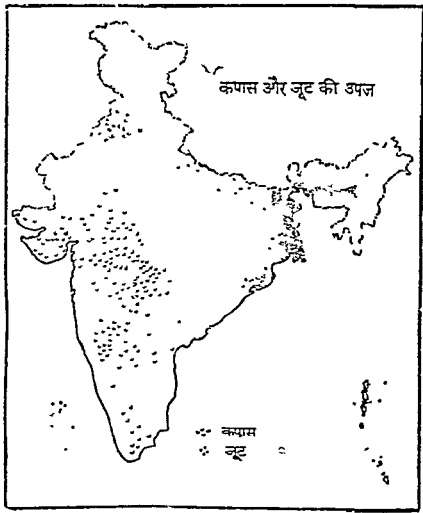
गुजरात राज्य—गुजरात कपास का प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है। यहाँ लगभग १६.५० लाख हेक्टेयर भूमि में कपास की खेती होती है। इस राज्य में मुख्य क्षेत्र भड़ौच, सूरत, बड़ौदा, खेड़ा, महसाना तथा पंचमहल आदि हैं।

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र में लगभग २७.२६ लाख हेक्टेयर भूमि में कपास की खेती होती है। इस राज्य के अहमदनगर, पूना, शोलापुर, खान देश नागपुर, वर्धा, अमरावती तथा बीड जिलों में कपास पैदा किया जाता है।

मध्यप्रदेश—मध्य प्रदेश में ८.०६ लाख हेक्टेयर भूमि में कपास की उपज होती है। इस राज्य में इन्दौर, उज्जैन, धार, नीमाड़, झाबुआ, देवास आदि भागों में कपास की फसल होती है।

पूर्वी पंजाब व हरियाणा—इन राज्यों में अमृतसर, लुधियाना, जलंधर, पटियाला हिसार, रोहतक, करनाल, गुड़गांव, भटिण्डा आदि जिलों में कपास की खेती होती है। पूर्वी पंजाब तथा हरियाणा में क्रमशः ४.२० लाख हेक्टेयर तथा २.६० लाख हेक्टेयर भूमि में कपास की खेती होती है।

अन्य—इन राज्यों के अतिरिक्त राजस्थान के कोटा, झालावाड़, बूंदी, बांसवाड़ा, चित्तौड़, उदयपुर, टोंक आदि क्षेत्रों में कपास होती है। तमिलनाडु राज्य के तंजोर, सलेम, मदुराई, कोयम्बटूर तिरूनलवैली, रामनाथ पुरम आदि भागों में कपास होती है। आन्ध्र प्रदेश में कर्नूल, कड्डपा तथा गन्टूर जिला में और मैसूर के कुछ क्षेत्रों में कपास की खेती होती है।

व्यापार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारत को इस समय ७० लाख कपास की गांठों की प्रतिवर्ष आवश्यकता होती है जबकि हमारा उत्पादन इससे कहीं कम है। अतः देश को सात-आठ लाख गांठें प्रतिवर्ष विदेशों से आयात करनी होती हैं। भारत सरकार ने कपास की कमी एवं बढ़ते हुए मूल्यों को देखते हुये सन् १९७० में कपास का आयात व्यापार अपने हाथ में ले लिया है और वितरण व्यवस्था के लिए एक कपास निगम[1] का गठन किया है। यह निगम धीरे-धीरे कपास का आन्तरिक व्यापार भी अपने हाथ में ले लेगा।

भारत रुई का आयात तथा निर्यात दोनों करता है लम्बे रेशे वाली रुई का आयात तथा छोटे रेशे वाली रुई का निर्यात किया जाता है। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में औसत वार्षिक आयात उपर्युक्त प्रकार हुआ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में औसत-वार्षिक आयात ७७ करोड़ रुपये का था जबकि द्वितीय योजना में भारी कमी हुई। तृतीय पंचवर्षीय योजना में द्वितीय योजना की अपेक्षा अधिक आयात किया गया किन्तु यह प्रथम योजना की तुलना में

1 The canalisation of cotton imports through the Cotton Corporation of India became effective since from 15th September, 1970

कम था। वर्ष १९६६-६७ मे ५६ ६ करोड रुपये की कपास का आयात किया गया। चतुर्थ पचवर्षीय-योजना मे आयात कम होने की सम्भावना है क्योंकि अब देश मे अच्छी किस्म की कपास का उत्पादन बढाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस समय कपास सयुक्तराज्य अमरीका, यू० ए० आर०, सोवियत रूस, सूडान आदि देशों से आयात की जा रही है।

भारत से कपास का निर्यात सयुक्त राज्य अमरीका, जापान, फ्रास, इटली, तथा ब्रिटेन को किया जाता है। तृतीय योजना म कपास का औसत निर्यात लगभग १४ करोड रुपये था। वर्ष १९६९-७० म लगभग १८ करोड रुपय का कपास निर्यात किया गया। अन्तरराष्ट्रीय बाजार म परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की हैं कि भारत छोटे रेशे वाली रुई के निर्यात से अधिक विदेशी मुद्रा नही अर्जित कर सकता है, क्योंकि ब्राजील और सूडान जैसे देशों स भी सस्त दामो पर ऐसी रुई निर्यात होती है।

जूट
(Jute)

जूट एक रेशेदार कृषि उपज है जो कि पौधे के तने पर आवेष्टित छाल से प्राप्त होता है। जूट का पौधा सीधा बढ जाता है जिसकी लम्बाई लगभग ३ मीटर होती है। पौधा तैयार हो जाने पर इसे काट कर पानी में सड़ाया जाता है इसके पश्चात् जूट प्राप्त किया जाता है। यह उपज बोरियाँ, सुतली तथा टाट बनाने के काम मे ली जाती है। भारत म यह पौधा बहुत प्राचीन है। देश के विभाजन से पूर्व भारत जूट उत्पादन का एकाधिकारी था किन्तु विभाजन के पश्चात् एकाधिकार समाप्त हो गया, फिर भी भारत विश्व मे जूट का सबसे बडा उत्पादक है।

भौगोलिक दशाएँ

जूट गर्म और नम जलवायु का पौधा है। इसके लिए निम्न भौगोलिक दशाएँ चाहिए

(१) तापक्रम—जूट की उपज के लिए साधारणत: उच्च तापक्रम आवश्यक है लेकिन नम जलवायु भी आवश्यक है। यह लगभग २४° सेण्टीग्रेड स ऊँचे तापक्रम पर उगता है और इसके लिए अधिकतम तापक्रम ३५° सेण्टीग्रेड उत्तम माना जाता है।

(२) वर्षा—जूट की फसल क लिए १०० सेण्टीमीटर से २०० सेण्टी मीटर तक की वर्षा चाहिए। फसल बोते समय कम नमी की आवश्यकता है और पौधे के बढने के लिए लगातार अधिक नमी की आवश्यकता पडती है। इसके लिए वर्षा ऋतु लम्बी होनी चाहिये ताकि पानी समय पर मिलता रहे।

(३) मिट्टी—जूट के लिए उपजाऊ मिट्टी बहुत आवश्यक है। इसके लिए चिकनी दोमट मिट्टी की आवश्यकता पडती है। यह नदियों के डेल्टा प्रदेशो मे अधिक मात्रा मे हो पाता है क्योंकि नदियाँ प्रतिवर्ष उपजाऊ मिट्टी लाकर खेतों मे बिछा देती

है। जिन भागों में नदियों की लगातार मिट्टी नहीं मिल पाती है वहाँ काफी खाद की आवश्यकता पड़ती है किन्तु खाद देकर जूट उत्पादन करना बहुत खर्चीला पड़ता है। अत नदियों की घाटियों तथा डेल्टा प्रदेशों म ही इसकी खेती होती है।

(४) श्रम—जूट को बोने से लगातार रेशा प्राप्त करने तक कई कार्य श्रमिकों द्वारा करने पड़ते हैं अत सस्ते श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

जूट का उत्पादन

जूट की फसल वाले देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। देश के विभाजन के पश्चात् अधिकांश जूट उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। भारत म केवल २५ प्रतिशत भाग ही रहा जबकि अधिकांश जूट के कारखाने भारत म रह गये। भारत में जूट का उत्पादन निम्न प्रकार रहा है

जूट का उत्पादन

वर्ष	गाँठें (लाख में)
१९५०-५१	३३
१९५५-५६	४२
१९६०-६१	४१
१९६५-६६	४४
१९६९-७०	५६

स्पष्ट है कि प्रथम योजना काल में जूट की उपज में वृद्धि हुई, किन्तु उसके बाद अगले दस वर्षों तक इसमें उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी। तीसरी योजना के बाद इसमें वृद्धि हुई और सन् १९६७-६८ में ६३ लाख गाँठों का उल्लेखनीय उत्पादन हुआ, किन्तु सन् १९६८-६९ में उत्पादन गिर कर केवल २९ लाख गाँठों का ही हुआ जिससे जूट की कमी हो गयी। सन् १९६९-७० म उत्पादन बढ़कर पुन ५६ लाख गाँठें हो गया। फिर भी जूट की माँग इससे कहीं अधिक है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में जूट उत्पादन क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम तथा कुछ अन्य राज्य हैं। पश्चिमी बंगाल में सबसे अधिक जूट का उत्पादन होता है। इस राज्य में गंगा-डेल्टा के पश्चिमी भाग और गंगा की निचली घाटी के क्षेत्र म जूट की खेती होती है। द्वितीय स्थान बिहार राज्य का है जिसमें लगभग १८ प्रतिशत जूट पैदा होता है। इस राज्य में पूर्णिया, मुजफ्फरपुर तथा चम्पारन जिले प्रमुख हैं। आसाम राज्य का तृतीय स्थान है। यहाँ देश के कुल उत्पादन का १२ प्रतिशत जूट उत्पन्न होता है। यहाँ नौ गाँव और कामरूप जिले जूट के मुख्य उत्पादक हैं। इसके अतिरिक्त बिहार राज्य के कटकपुरी तथा बालासोर जिले प्रमुख हैं। जूट के अतिरिक्त मेस्ता

(Mesta) का उत्पादन भी भारत मे होता है । मेस्ता जूट की भाँति ही एक रेशा है जो कुछ घटिया किस्म का होता है तथा जिसमे उतनी चमक एव एकरूपता नही होती है । यह मुख्यत दक्षिण भारतमे होता है । सन् १९६९-७० मे मेस्ता की ११ ४१ लाख गाँठ भारत में उत्पन्न की गयी । भारतीय जूट विकास परिषद ने सन् १९७०-७१ के लिए ६७ लाख गाँठ जूट के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया है । चतुर्थ योजना का लक्ष्य ७४ लाख गाँठो के उत्पादन का है । मेस्ता का उत्पादन इसके अतिरिक्त होगा ।
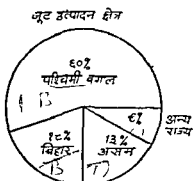
व्यापार

भारत के विभाजन के पश्चात् जूट का आयात करना अनिवार्य हो गया, क्योंकि प्रमुख जूट उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान मे चले गये अतः यहाँ के जूट के कारखानो को कच्चे माल की पूर्ति आयात द्वारा की गयी । सन् १९५०-५१ मे भारत ने २६ लाख गाँठो का आयात किया जो पूर्वी पाकिस्तान से था । उसके बाद जैसे-जैसे देश में जूट के उत्पादन मे वृद्धि हुई, आयात मे कमी हुई । सन् १९६५-६६ मे हमारा आयात १२ लाख गाँठो का था । उसके बाद से आयात घटता बढता रहा है । मार्च १९७१ में पूर्वी पाकिस्तान मे गृह युद्ध के कारण तथा पूर्वी पाकिस्तान के निवासियों द्वारा 'बगला देश' की घोषणा के कारण वहाँ की अर्थव्यवस्था बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो गयी है । भारत की जूट मिलो को पूर्वी पाकिस्तान के उत्तम किस्म के जूट की आवश्यकता अभी बनी हुई है और भविष्य मे भी रहेगी । पूर्वी पाकिस्तान मे गंगा-डेल्टा मे उत्तम कोटि का जूट उत्पादित किया जाता है—विशेषत. राजशाही, जैसोर, खुलना, वारिसाल कोमिल्ला, ढाका एव चटगाँव जिलो मे अच्छा जूट उत्पन्न किया जाता है । भारतीय मिलों को प्रतिवर्ष मेस्ता के अतिरिक्त कम से कम ७० लाख गाँठें जूट की आवश्यकता होती है । अत भारत में ही जूट के प्रति हेक्टर उत्पादन को बढाने से ही समस्या का स्थायी हल निकल सकता है ।

गन्ना

भारत मे गन्ने का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है । इससे चीनी तथा गुड बनाया जाता है । किसान खेतो मे कोल्हू लगाकर गुड बना लेते हैं । इसके अतिरिक्त किसान गन्ने के रस से देशी खाड भी बनाते हैं । गन्ने पर आधारित कुटीर उद्योग को खण्डसारी उद्योग कहा जाता है । आजकल चीनी उद्योग का काफी विकास हो रहा है । गन्ने का बीज नहीं होता तथा पौधे के रूप मे ही इसे लगाया जाता है । एक बार लगाकर पौधा कई वर्ष तक चलता है किन्तु सामान्यत. कृषक तीसरे वर्ष नयी पौध की रोपायी करते हैं ।

भौगोलिक दशाएँ

गन्ने के लिए निम्न भौगोलिक दशाएँ आवश्यक हैं :

(१) तापक्रम—इसकी उपज के लिए औसत वार्षिक तापक्रम २८° सेन्टीग्रेड उपयुक्त माना जाता है। फसल बोते समय २०° सेन्टीग्रेड बढ़ते समय २४° से ३५° सेन्टीग्रेड उत्तम होता है। पाला गन्ने के लिए हानिकारक होता है।

(२) वर्षा—गन्ना १०० सेन्टीमीटर से २०० सेन्टीमीटर वर्षा वाले भागों में पैदा होता है। कुछ भागों में जहाँ ७५ सेन्टीमीटर वर्षा होती और सिंचाई के पर्याप्त साधन होते हैं वहाँ भी इसकी फसल हो सकती है।

(३) *मिट्टी—गन्ना कई प्रकार की मिट्टियों में पैदा किया जा सकता है।* नदी घाटियों में कांप मिट्टी में इसकी खेती बहुत अच्छी होती है। काली मिट्टी प्रदेशों में भी इसकी फसल होती है। खाद देकर भी गन्ने की उपज में वृद्धि की जा सकती है। गन्ना की खेती मिट्टी से नाइट्रोजन का अधिक शोषण करती है अतः नेत्रजन *प्रधान उर्वरकों की आवश्यकता हो जाती है।*

(४) कुशल श्रमिक—गन्ना उगाने तथा अन्य कार्यों के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। यद्यपि आजकल मशीनों का प्रयोग भी होने लगा है किन्तु भारत में अभी मानव श्रम काफी महत्वपूर्ण है। फसल बोने और काटने के समय पर्याप्त संख्या में श्रमिक चाहिए।

गन्ने के उत्पादन

विश्व के समस्त गन्ना क्षेत्र का लगभग ३३ प्रतिशत भारत में है। यहाँ गन्ने की उपज प्रति हेक्टेयर कम है। कम उपज के मुख्य कारण खादों का कम प्रयोग तथा कृषि के प्राचीन तरीके हैं। आजकल प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाने तथा अच्छी किस्म के गन्ने के उत्पादन के लिए अनुसन्धान कार्य किए जा रहे हैं। गन्ने का भारत में प्रति हेक्टेयर लगभग ४,४०३ टन गन्ना पैदा किया जाता है जबकि अन्य देशों में उपज इससे तीन गुनी तक हो जाती है। उत्पादन क्षेत्र तथा उत्पादन निम्न प्रकार है :

गन्ने का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)
१९५०-५१	५७०
१९५५-५६	६०५
१९६०-६१	१,१००
१९६५-६६	१,२१०
१९६६-६७	९५०
१९६७-६८	९८०
१९६८-६९	१,२८०
१९६९-७०	१,३८०

स्पष्ट है कि तीसरी योजना के बाद के दो वर्षों में गन्ने का उत्पादन गिर गया और चीनी एवं गुड़ का संकट रहा तथा मूल्य ऊँचे चढ़ गये, किन्तु पिछले दो वर्षों में गन्ने का पर्याप्त उत्पादन हुआ है। सन् १९७०-७१ में १,३७० लाख टन गन्ने का उत्पादन होने की आशा है। फलतः चीनी एवं गुड़ के मूल्य गिर गये हैं।

भारत में जितना गन्ना उत्पादित होता है उसका ५० प्रतिशत गुड़ एवं खाँड बनाने में, ३५ प्रतिशत चीनी बनाने में तथा शेष १५ प्रतिशत अन्य प्रकार से उपयोग होता है। भारत विश्व में गन्ने का सबसे बड़ा उत्पादक है।
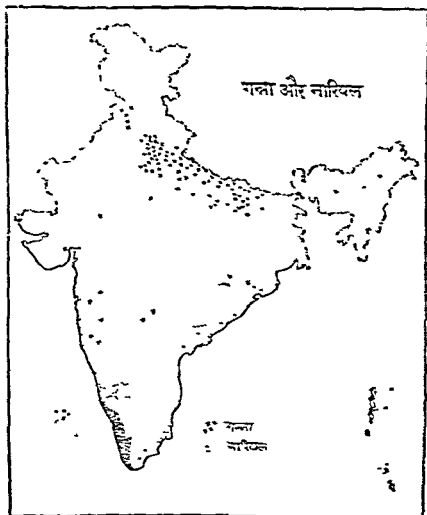
उत्पादन क्षेत्र

भारत में गन्ने के उत्पादक क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार क्षेत्र काफी महत्वपूर्ण हैं। इन तीनों राज्यों में कुल मिलाकर देश के कुल उत्पादन का लगभग

८० प्रतिशत गन्ना होता है। 'उत्तर प्रदेश' में गन्ने के प्रमुख क्षेत्र गोरखपुर, बस्ती गोंडा, बलिया, मेरठ बुलन्द शहर, अलीगढ़, सहारनपुर, आदि जिले प्रमुख हैं। 'बिहार' के पश्चिमी भाग में गन्ने का प्रमुख क्षेत्र है। इस राज्य के चम्पारन, दरभंगा, शाहाबाद, मुजफ्फरपुर तथा पटना जिले गन्ने की उपज के क्षेत्र हैं। 'पंजाब व हरियाणा' के रोहतक, जलधर फिरोजपुर, अमृतसर, गुरदासपुर आदि क्षेत्रों में गन्ने का उत्पादन होता है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, तमिलनाड, आन्ध्र, मैसूर, मध्य प्रदेश राज्यों में भी गन्ने की फसल होती है। दक्षिणी भारत में गन्ने की उपज प्रति हेक्टेयर अधिक होती है अत आजकल लावा प्रदेश की काली मिट्टी क्षेत्र में गन्ने का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर तथा तमिलनाड में गन्ने की खेती बढ़ रही है। वहाँ के गन्ने की किस्म भी उत्तम है तथा इसमें मिठास की मात्रा भी अधिक होती है।

तिलहन
(Oil seeds)

विभिन्न प्रकार के पौधों के फलों, गुठलियों, बीजों आदि से तेल प्राप्त किया जाता है। जिन फसलों के पौधों के बीज से वनस्पति तेल प्राप्त किया जाता है उनको तिलहन कहा जाता है। तिलहनों से प्राप्त वनस्पति तेल अनेक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है जैसे वार्निश बनाने वाली मशीन के पुर्जों को चिकना करने, दवा बनाने, मोमबत्ती, साबुन बनाने आदि। किन्तु मुख्य उपयोग मानव आहार में वसा (Fat) की पूर्ति करना होता है। वनस्पति तेल खाद्य (edible) तथा अखाद्य (inedible) दो प्रकार के होते हैं। सरसों, तिल, मूँगफली, अलसी खाद्य तेलों में आते हैं। नारियल एवं बिनौले का तेल भी अब खाने के काम में आने लगा है। अखाद्य तेलों में अरण्डी, महुआ, नीम आदि के तेल सम्मिलित किये जाते हैं।

तिलहनों में मूँगफली तिल, सरसों, नारियल, बिनौला, रेंडी आदि मुख्य हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

(१) मूँगफली (Groundnut)

भारत में संसार में सबसे अधिक मूँगफली का उत्पादन किया जाता है। यह गर्म जलवायु का पौधा है तथा इसके लिए ७० सेन्टीमीटर से १२५ सेन्टीमीटर तक वर्षा उपयुक्त समझी जाती है। इसको १५ सेन्टीग्रेड से ३० से० ग्रे० तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है।

सन् १९५०-५१ में भारत में मूँगफली का उत्पादन केवल ३४ लाख टन था जो कि सन् १९६७-६८ में बढ़कर ५७ लाख टन हो गया। सन् १९६८-६९ में उत्पादन गिर गया और केवल ४५ लाख टन मूँगफली ही देश में हुई। सन् १९६९-७० में उत्पादन ४६ लाख टन था। भारत में मूँगफली लगभग ७५ लाख हैक्टर भूमि में बोयी जाती है।

गुजरात म सबसे अधिक मूंगफली का उत्पादन होता है। गुजरात के पश्चात आन्ध्र प्रदेश तमिलनाड (मद्रास), महाराष्ट्र मसूर, मध्य प्रदेश उत्तर प्रदेश पंजाब
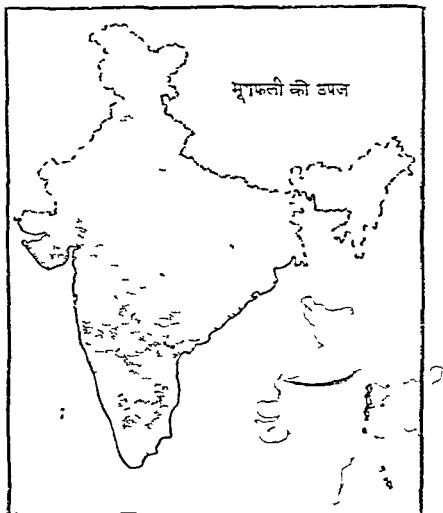
तथा राजस्थान राज्य प्रमुख हैं। भारत में मुख्यत मूंगफली का उपयोग वनस्पति तेल उद्योग म होता है।

(२) अलसी (Linseed)

अलसी के तल से वार्निश और रंग बनाया जाता है। इसके पौधे के लिए औसत तापक्रम १०° सन्टीग्रेड स २०° सेन्टीग्रेड तक चाहिए। इसको ७५ सन्टीमीटर से १२५ सन्टीमीटर तक की वर्षा पर्याप्त है। अलसी का उत्पादन उत्तर के मैदानी भाग म होता है। प्रमुख अलसी उत्पादक राज्य पंजाब उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र हैं। अलसी का उत्पादन वर्ष १९५०-५१

में ३ ६७ लाख टन, १६६० ६१ में ३ ६८ लाख टन तथा १६६५-६६ में २ ३५ लाख टन हुआ। वर्ष १६६६-६७ में २ ७४ लाख टन अलसी का ही उत्पादन हुआ किन्तु उसके बाद से इसमें वृद्धि हुई है। सन् १६६६ ७० में ३ ५ लाख टन अलसी की उपज हुई।

(३) तिल (Sesamum)

तिल की उपज भारत में खरीफ तथा रबी दोनों फसलों के साथ होती है। किन्तु उत्तर भारत में यह खरीफ की फसल में ही बोया जाता है। इसके लिए औसत

तापक्रम २०° सेन्टीग्रेड तथा ७५ सेन्टीमीटर औसत वर्षा चाहिए। इसकी फसल बलुही मिट्टी में अच्छी होती है। पौधों की जड़ों में पानी हानिकारक होता है।
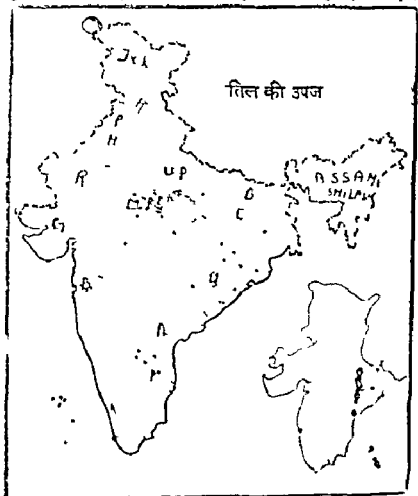
तिल की उपज उत्तर प्रदेश, राजस्थान मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, गुजरात महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, तथा कुछ अन्य राज्यों में होती है।

भारत में सन् १९५०-५१ में तिल का उत्पादन ४·४५ लाख टन था। प्रथम योजना काल में इसमें कुछ वृद्धि हुई किन्तु द्वितीय योजना और तीसरी योजना में इसमें गिरावट आयी। सन् १९६५-६६ में इसका उत्पादन केवल ३ लाख ही टन रह गया। इसके बाद इसमें कुछ सुधार हुआ है। सन् १९६९-७० में तिल की उपज ४·२० लाख टन की थी।

(४) सरसों (Mustard)

भारत में सरसों का उत्पादन उन भागों में होता है जहाँ ७५ सेन्टीमीटर से १२५ सेन्टीमीटर तक वर्षा होती है तथा औसत तापक्रम २०° से २५° सेन्टीग्रेड तक होता है। प्रमुख उत्पादन क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, पंजाब व हरियाणा, राजस्थान आदि हैं। सन् १९५०-५१ में सरसों का क्षेत्रफल २१ लाख हेक्टर था तथा इसका उत्पादन ८ लाख टन था, जबकि सन् १९६९-७० में सरसों ३० लाख हेक्टर भूमि में बोयी गयी और उत्पादन १६ लाख टन का हुआ।

(५) रेंडी (Castorseed)

भारत में रेंडी लगभग ५ लाख हेक्टेयर भूमि में पैदा की जाती है तथा वार्षिक उत्पादन लगभग १ लाख टन होता है। यहाँ आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा तथा मैसूर प्रमुख रेंडी उत्पादक क्षेत्र हैं। भारत से रेंडी के तेल का निर्यात होता है। विश्व के उत्पादन का एक चौथाई से भी अधिक भारत में होता है। रेंडी का उपयोग मुख्यतः तेल निकालने में किया जाता है। यह तेल औषधि उद्योग में प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त सभी प्रकार के तिलहनों का वनस्पति तेल उद्योग में विशेष महत्त्व है। भारत में तिलहन के उत्पादन की निम्न स्थिति रही है :

समस्त तिलहनों का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)
१९५०-५१	५१
१९५५-५६	५७
१९६०-६१	७०
१९६५-६६	६३
१९६९-७०	७१

चतुर्थ योजना में तिलहन उत्पादन का लक्ष्य १०५ लाख टन का रखा गया है। लक्ष्य की पूर्ति होने पर वनस्पति तेल का अधिक विकास हो सकेगा। पिछले वर्षों में उत्पादन में वृद्धि हुई है, फिर भी वनस्पति खाद्य तेलों का भारत में अभाव है। एक औसत भारतीय भोजन में वसा (Fat) प्राय वनस्पति तेलों से ही प्राप्त करता है, किन्तु प्रति-व्यक्ति तेल का औसत दैनिक उपलब्धि बहुत ही कम है। अभाव के कारण इनके भाव भी ऊँचे हैं। सरकार द्वारा यह प्रयास किया गया है कि साबुन

एवं प्रसाधन उद्योगों में यथासम्भव खाद्य तेलों का उपयोग न किया जाय। इसीलिए भारत अब विदेशों से भारी मात्रा में पशु चर्बी (Tallow) का आयात कर रहा है। खाद्य तेलों की कमी को पूरा करने के लिए भी अब देश में सोयाबीन के तेल का आयात होने लगा है जिसका उपयोग वनस्पति तेल उद्योग में किया जाता है।

पेय पदार्थ
(Beverages)

(१) चाय (Tea)

चाय पेय पदार्थ के रूप में काम में लिया जाता है। विश्व में उत्पादन तथा निर्यात में भारत का सर्व प्रथम स्थान है। चाय की चौड़ी पत्ती वाली सदाबहार झाड़ी माना जाता है। व्यापारिक चाय की दो किस्में हैं, भारतीय तथा चीनी चाय। भारतीय चाय का पौधा बड़ा होता है और अधिक पत्तियाँ देता है। इसके पौधे से तीन वर्ष के पश्चात पत्तियाँ चुनने योग्य होती हैं। चाय की वर्ष में दो-तीन फसलें आती हैं। पत्तियों को चुनकर फैक्टरियों में भेज दिया जाता है। वहाँ पर पत्तियों को सुखाकर विभिन्न भागों में भेजने लायक बनाया जाता है।

भौगोलिक परिस्थितियाँ

चाय का पौधा मानसूनी प्रदेश का पौधा माना जाता है। इसके लिए निम्न लिखित भौगोलिक परिस्थितियों का अनुकूल होना आवश्यक है

(१) तापक्रम—सामान्यतः चाय की उपज के लिए २५° सेन्टीग्रेड से ३०° सेन्टीग्रेड तक तापमान की आवश्यकता होती है। हल्की छाया में पौधा तेज गति से बढ़ता है। ओलों की वृष्टि तथा ठण्डी हवाएँ हानिकारक होती हैं मगर साधारण ठण्ड को यह पौधा सहन कर लेता है।

(२) वर्षा—वर्षा चाय के पौधे को वर्ष भर मिलती रहनी बहुत उपयुक्त रहती है। औसत वार्षिक वर्षा १५० सेन्टीमीटर उत्तम मानी जाती है। किन्तु चाय इससे भी अधिक वर्षा में उत्पन्न की जा सकती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि नमी निरन्तर बनी रहनी चाहिए किन्तु पानी का जमाव नहीं होना चाहिए। इसीलिए अधिक वर्षा वाले पहाड़ी ढालों पर इसकी खेती की जाती है। लम्बा शुष्क मौसम नुकसान पहुँचाता है, नम जलवायु पत्तियों की प्रचुरता के लिए श्रेष्ठ होता है।

(३) मिट्टी—मिट्टी इस प्रकार की हो जिसमें पानी को सोख लेने की शक्ति हो। पौधों की जड़ों में पानी ठहरना हानिकारक होता है। मिट्टी में वनस्पति अंश, लोहा, पोटाश, फास्फोरस आदि तत्व पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। पहाड़ी ढालों की मिट्टी में चाय का पौधा लगाया जाता है। पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए इसमें खली का खाद एवं अन्य उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। चाय की किस्म तथा सुगन्ध मिट्टी के पोषक तत्वों पर निर्भर होती है।

(४) श्रम—पौधों को उगाने से पत्तियाँ चुनने तक सभी कार्य मजदूरों द्वारा किये जाते हैं अतः श्रम का काफी महत्व है। प्रचुर तथा सस्ते मजदूरों की उपलब्धि

आवश्यक होती है। आसाम में चाय के बागानों में अनक राज्यों के श्रमिक कार्य करते हैं।

चाय का उत्पादन

चीन तथा भारत चाय के महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। चीन म चाय के उत्पादन के विश्वस्त आँकडे उपलब्ध नहीं होने के कारण भारत को प्रमुख उत्पादक तथा निर्यातक माना जाता है। भारत में चाय का उत्पादन निम्न प्रकार है :

चाय की उपज (करोड किलोग्राम)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात
१९५०	२७ ८	१८ १
१९५५	३० ७	१६ ७
१९६०	३२ १	१९·३
१९६५	३६ ६	१९ ९
१९७०	४० १	२० ८

भारत म चाय का उत्पादन, उत्पादन क्षेत्र की वृद्धि के साथ-साथ लगातार बढता गया है। इस समय लगभग ३ २ लाख हेक्टेयर भूमि में चाय की खेती होती है।

चाय के उत्पादन क्षेत्र

भारत के चाय के उत्पादन का आसाम, बगाल, उत्तर प्रदेश तथा पजाब से तीन चौथाई भाग प्राप्त होता है शेष दक्षिणी भारत में तमिलनाड, मैसूर, केरल, राज्यों में होता है।

'आसाम' चाय का प्रमुख उत्पादक है। इस राज्य की ब्रह्मपुत्र घाटी में चाय का प्रमुख उत्पादन होता है। उत्पादन का लगभग आधा असम क्षेत्र में होता है। यहाँ पहाडी ढालो म चाय के बागान हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में दराग, लखीमपुर, शिवसागर प्रमुख क्षेत्र हैं।

'पश्चिमी बगाल' का चाय के उत्पादन में द्वितीय स्थान है। इस राज्य के दार्जिलिंग तथा जलपाईगुडी जिले मे पहाडी ढालो पर अच्छी फसल होती है।

इनके अतिरिक्त बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पजाब राज्यों में भी चाय का उत्पादन किया जाता है। बिहार राज्य के पूर्णिया, राची तथा हजारीबाग में चाय के बागान हैं। उत्तर प्रदेश में देहरादून, गढवाल, अलमोडा जिले मुख्य हैं। पजाब में कुल्लू तथा कांगडा जिलो में चाय का उत्पादन होता है।

दक्षिणी भारत मे तमिलनाड (मद्रास) के नीलगिरि, कोयम्बटूर, अन्नामलाई क्षेत्रों में चाय उत्पन्न की जाती है। इनके अतिरिक्त केरल तथा मैसूर राज्यों में भी चाय की उपज होती है।

विदेशी व्यापार

भारत की कुल चाय का लगभग तीन-चौथाई निर्यात कर दिया जाता है ब्रिटेन, मिस्र, संयुक्तराज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस, सूडान, मिस्र, ईरान आदि हमारी चाय के प्रमुख ग्राहक हैं। हमारे निर्यात की सूची में जूट के पश्चात चाय का ही प्रमुख स्थान है। वैसे भारतीय चाय विश्व के अन्य देशों में भी बिकती है।

भारत इस समय लगभग इक्कीस करोड़ किलोग्राम चाय विदेशों को निर्यात कर रहा है जोकि देश के कुल चाय उत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत है। बीस वर्ष पूर्व हम अपने कुल चाय उत्पादन का दो तिहाई भाग विदेशों को निर्यात कर रहे थे। इसका अर्थ यह हुआ कि देश में चाय की खपत बढ़ रही है। भारत प्रतिवर्ष लगभग १५० करोड़ रुपये की चाय विदेशों को निर्यात करता है।

इन वर्षों में भारत की चाय के विदेशी व्यापार में प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा है। भारतीय चाय बोर्ड निर्यात की वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। चाय की खपत देश में भी लगातार बढ़ रही है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक चाय के निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हो सकेगी।

कहवा
(Coffee)

चाय की तरह कहवा भी पेय पदार्थ है। कहवा पौधों की फूलों के बीजों से प्राप्त किया जाता है। यह बीजों से चूर्ण के रूप में बनाया जाता है। इसका पौधा वर्ष में दो तीन बार फल देता है। फलों के बीजों का सुखाकर भूना जाता है और फिर चूर्ण बना लिया जाता है। यह चूर्ण पेय पदार्थ के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इस चूर्ण से चाकलेट भी बनाते हैं। भारतीय कहवे को मधुर कहवा कहा जाता है। कहवे की दो किस्में अधिक प्रचलित हैं—अरेबिका (Arabica) तथा रोबस्टा (Robusta)। भारत में अरेबिका किस्म अधिक बोयी जाती है।

भौगोलिक दशाएँ

(१) तापक्रम—कहवे के लिए २०° सेन्टीग्रेड से ३२° सेन्टीग्रेड तक तापमान उपयुक्त होता है। किन्तु तेज धूप हानिकारक है अतः इसके आस-पास छायादार वृक्ष लगाये जाते हैं। फल पकने के समय में तेज धूप अच्छी रहती है। ठण्ड और तेज हवा भी हानिकारक होती है।

(२) वर्षा—इसके पौधे के लिए वर्षा वर्ष भर होनी आवश्यक है। औसत रूप से १७५ सेंटीमीटर से २५० सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा उत्तम मानी जाती है। फल लगते समय वर्षा हानिकारक होती है।

(३) मिट्टी—इसके लिए उपजाऊ मिट्टी होनी चाहिए जिसमें लोहे और चूने की मात्रा पर्याप्त हो। दक्षिण की लाल मिट्टी तथा लावा प्रदेश की काली मिट्टी कहवे के लिए उपयुक्त है। वनस्पति अंश भी मिट्टी में मिला होना चाहिए।

(४) श्रम—इसके लिए चतुर श्रमिकों की आवश्यकता होती है, क्योंकि पौधे की काफी देखभाल करनी पड़ती है। अतः कुशल मजदूर मिलने आवश्यक हैं।
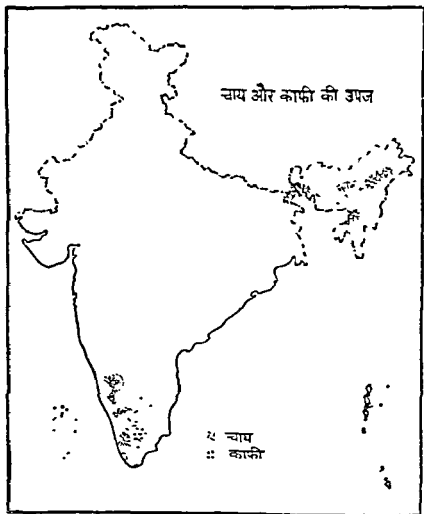
कहवे का उत्पादन

भारत में लगभग एक लाख हेक्टर भूमि में पैदा किया जाता है। पिछले बीस वर्षों में उत्पादन एवं निर्यात निम्न प्रकार रहा है :

कहवे का उत्पादन (हजार टनों में)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात
१९५०-५१	१९	—
१९५५-५६	३५	८
१९६०-६१	६८	३२
१९६५-६६	६४	२९
१९६९-७०	६१	२७

स्पष्ट है कि बीस वर्ष पूर्व देश में कहवे का उत्पादन आज की तुलना में एक तिहाई था, तथा निर्यात प्राय नगण्य था। सन् १९६१ के बाद उत्पादन एवं निर्यात में तीव्रता आयी जिसका श्रेय भारतीय कहवा बोर्ड (Indian Coffee Board) को है। चतुर्थ योजना में कहवे का उत्पादन लक्ष्य एक लाख टन रखा गया है।

कहवे के उत्पादन क्षेत्रों में मैसूर, तमिलनाड, महाराष्ट्र, केरल, आन्ध्र राज्य हैं। मैसूर में सबसे अधिक कहवा पैदा किया जाता है। यहाँ ५० प्रतिशत से भी अधिक कहवा होता है। कहवा अन्य राज्यों में भी होता है।

भारत से कहवे का निर्यात किया जाता है। वर्ष १९५०-५१ में ६०२ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ जबकि १९६९-७० में २० करोड़ रुपये के कहवे का निर्यात किया गया। कहवे की देश के भीतर भी माँग निरन्तर बढ़ रही है। भारतीय कहवा बोर्ड निरन्तर कहवे के उपयोग तथा व्यापार में वृद्धि करने का प्रयत्न कर रहा है।

तम्बाकू
(Tabacco)

भारत विश्व के तीन बड़े तम्बाकू उत्पादकों में से एक है। विश्व का लगभग २० प्रतिशत तम्बाकू यहाँ होता है। इसकी फसल तीन चार महीनों में तैयार हो जाती है। यह पौधे से तैयार होती है। पौधा तैयार होने पर गड्ढों में भरकर पसीजने दिया जाता है। फिर इसे निकाल कर तम्बाकू तैयार की जाती है। आजकल विद्युत ताप यन्त्रों से भी तम्बाकू सुखाने का कार्य होने लगा है।

भौगोलिक दशाएँ

(१) जलवायु—तम्बाकू के लिए उच्च तापक्रम चाहिए। यह उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों का पौधा है। सामान्यतः लगभग २१° सेंटी ग्रेड तापक्रम में उगाया जाता है। अधिकतम तापक्रम ४०° सेंटीग्रेड है। वर्षा लगभग १०० सेंटी मीटर वार्षिक से अधिक होनी चाहिए।

(२) मिट्टी—तम्बाकू के लिए बालू प्रधान दोमट मिट्टी अधिक उत्तम होती है। इसके पौध द्वारा मिट्टी की उपजाऊ शक्ति क्षीण हो जाती है अतः फासफोरिक, पोटाश तथा लोह के अश वाली खाद देनी आवश्यक होती है।

(३) श्रम—इसकी फसल के लिए काफी श्रम की आवश्यकता होती है। आजकल मशीनों का भी उपयोग होने लगा है परन्तु श्रम का महत्व काफी है।

तम्बाकू का उत्पादन

भारत में विश्व का लगभग २० प्रतिशत तम्बाकू पैदा किया जाता है। इस समय लगभग ३.६ लाख हेक्टेयर भूमि में तम्बाकू की खेती होती है। तम्बाकू का उत्पादन अग्र प्रकार है।

तम्बाकू का उत्पादन

वर्ष		उत्पादन
१९६०-६१		३ ०७ लाख टन
१९६५-६६		२ ९८ ,,
१९६९-७०		३ ५० ,,
१९७३-७४	(लक्ष्य)	४ ८० ,,
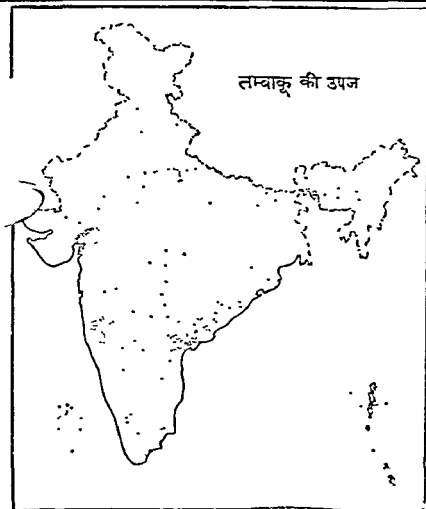
भारत में प्रति वर्ष तम्बाकू के क्षेत्र के घट-बढ के आधार पर उत्पादन में भी उतार-चढाव होते रहते हैं। वर्ष १९६५-६६ मे अन्य वर्षों की तुलना मे कम क्षेत्र फल मे इसकी खेती हुई परिणामस्वरूप कम तम्बाकू का उत्पादन हुआ। वर्ष १९६९-७० की तुलना में वर्ष १९७३-७४ में तम्बाकू के उत्पादन का लक्ष्य २६ प्रतिशत अधिक रखा गया है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में तम्बाकू के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र आन्ध्र मद्रास, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल हैं। केवल आन्ध्र प्रदेश में भारत का ४० प्रतिशत तम्बाकू पैदा किया जाता है। उत्तर प्रदेश में लगभग १५ प्रतिशत तम्बाकू का उत्पादन होता है।

तम्बाकू का व्यापार

तम्बाकू का निर्यात संयुक्त राज्य, रूस, ब्रिटेन तथा, मिस्र, जापान, सिंगापुर, नेपाल, तथा बेल्जियम को किया जाता है। अच्छी किस्म की वर्जीनिया तम्बाकू का आयात भी किया जाता है। देश के कुल उत्पादन का लगभग २० प्रतिशत तम्बाकू निर्यात कर दिया जाता है। दस वर्ष पूर्व भारत से लगभग १५ करोड़ रुपये की तम्बाकू विदेशों को भेजी जाती थी। अब इस निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हो गयी है। सन् १९६९-७० में हमारे देश से ३३ करोड़ रुपये का तम्बाकू विदेशों को निर्यात हुआ। यह निर्यात केवल तम्बाकू का है। तम्बाकू से बनी चीजों का निर्यात इसके *अतिरिक्त है।*

प्रश्न

१ जूट या गन्ने की उपज के लिए भारत में उपलब्ध भौगोलिक दशाओं के विवरण *पर प्रकाश डालिए। जूट या गन्ने का उत्पादन १९५० की तुलना में कितना* बढ़ा है। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी० १९६६)

२. चावल, गन्ना तथा चाय के लिए जलवायु तथा मिट्टी की दशाएँ कैसी होनी चाहिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६१)

३. भारत में जूट और कहवा अथवा गेहूँ और कपास के लिए किस प्रकार की भौगोलिक दशाएँ उत्तरदायी हैं? उत्पादन क्षेत्रों का विवरण देते हुए उनका सापेक्षिक महत्व भी बतलाइए। (बी० काम०, पूरक परीक्षा १९५४)

४ कपास, चावल और चाय का भारतीय जीवन में क्या आर्थिक महत्व है? उत्पादन क्षेत्र, उत्पादन तथा विदेशी व्यापार की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

अध्याय १२

खनिज सम्पदा

(MINERAL WEALTH)

भारत खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र है। यहाँ लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, ताँबा, कोयला तथा अन्य कई प्रकार के खनिज पदार्थ उपलब्ध हैं। इन खनिज पदार्थों का देश की आर्थिक उन्नति में महत्त्वपूर्ण योग है। किसी भी देश के उद्योग धन्धे, यातायात, व्यापार आदि खनिज पदार्थों की उपलब्धि पर निर्भर होते हैं। आधुनिक युग में खनिज पदार्थ राष्ट्रीय औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खनिज प्रकृति का एक ऐसा अनमोल उपहार है जो युद्धकाल एवं शान्तिकाल दोनों दशाओं में अपना विशेष महत्त्व रखता है। यदि किसी देश में मूलभूत खनिज पदार्थों का प्राकृतिक भण्डार नहीं है, अथवा बाहर से वह उनकी उपलब्धि की व्यवस्था नहीं कर सकता है तो ऐसी दशा में उस देश के लिए अपनी सामान्य आर्थिक गतिविधियों का सचालन करना भी प्रायः असम्भव हो जायगा। अतः खनिज पदार्थ आधुनिक युग की एक अनिवार्यता है।

भारत खनिज पदार्थों में सम्पन्न होते हुए भी अभी पूर्ण रूप से उनका विदोहन नहीं कर सका है। पिछले कुछ वर्षों के सर्वेक्षणों के आधार पर यह ज्ञात हो चुका है कि भारत में अनेक खनिजों के प्रचुर भण्डार संचित हैं। खनिज पदार्थों की ओर अधिक खोज के लिए सर्वेक्षण किये जा रहे हैं। देश में औद्योगीकरण की धीमी गति के कारण ही अब तक देश का पूर्ण खनिज विकास नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों की किस्म में भिन्नता के कारण भी, उत्तम कोटि के खनिजों का विकास पहले होता है तथा घटिया या सामान्य किस्म के खनिजों का विदोहन नहीं हो पाता है। अनेक दशाओं में खनिज भण्डार ऐसे स्थानों पर संचित हैं जो आवागमन के साधनों से दूर हैं। उदाहरण के लिए, कुमाऊँ प्रदेश एवं जम्मू-काश्मीर में ताँबे के भण्डार हैं, किन्तु स्थान की दुरूहता के कारण इन स्थानों पर इसका विकास नहीं हो सका है। खनिज उद्योग के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान के अभाव में भी खान उद्योग का विकास अवरुद्ध रहा। खनिज तेल के विकास के लिए भारत को सोवियत रूस तथा रूमानियाँ से तकनीक एवं मशीनों का सहयोग

मिलने पर ही प्रगति हो सकी। अन्य खनिजों की दृष्टि से भी पिछले पन्द्रह वर्षों में पर्याप्त प्रगति हुई है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत करोड़ों रुपये खनिज उद्योग के विकास के लिए व्यय किये गये हैं। खनिज उद्योगों में काम आने वाली मशीनों के निर्माण की दिशा में भी पिछले दस वर्षों में कुछ प्रगति हुई है। इस प्रकार देश के औद्योगीकरण की गति के साथ-साथ पिछली तीनों योजनाओं में खनिज उद्योग का भी पर्याप्त विकास हुआ है।

भारत में उत्तरी मैदानी भाग में खनिज सम्पदा का अभाव है परन्तु दक्षिण तथा प्रायद्वीपीय भाग, जिसमें अनेक प्राचीन चट्टानें पायी जाती हैं, खनिज सम्पदा का भण्डार है। छोटा नागपुर का पठार खनिज पदार्थों में बहुत धनी है जिसकी गणना विश्व के खनिज सम्पन्न क्षेत्रों में की जाती है। इस क्षेत्र में लोहा, कोयला, अभ्रक, ताँबा, बाक्साइट, मैंगनीज, क्रोमाइट, फॉस्फेट्स, आदि खनिजों के भण्डार हैं। एक अनुमान के आधार पर बिहार राज्य के दो जिले और उनसे मिले हुए उड़ीसा के कुछ भागों में अच्छी किस्म के लोहे के ८०० करोड़ टन के भण्डार हैं। इसी क्षेत्र में उत्तम किस्म के अभ्रक तथा मैंगनीज धातु काफी मात्रा में उपलब्ध है। भारत में प्राप्त लगभग सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य में मिलता है। मध्य प्रदेश में उत्तम किस्म का लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, मैंनेसाइट तथा चूना पाये जाते हैं। असम में तेल के विस्तृत भण्डार हैं। पश्चिमी बंगाल में लोहे तथा कोयले की अधिकता है। तमिलनाडु राज्य में कोयला, मैंगनीज, अभ्रक, चूना आदि उपलब्ध हैं। राजस्थान में भी अनेक खनिज पदार्थों का विकास किया जा रहा है जैसे अभ्रक, नमक, मैंगनीज, ताँबा, जस्ता, जिप्सम, चूना आदि।

भारत में खनिज उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् खनिज उत्पादन का मूल्य निम्न प्रकार है :

पंचवर्षीय योजनाओं में खनिज उत्पादनों में प्रगति (मूल्यानुसार)

वर्ष	मूल्य (करोड़ रुपये)
१९५०-५१	९५
१९५५-५६	१०९
१९६०-६१	१८१
१९६५-६६	२८४
१९६९-७०	४५०

उपरोक्त मूल्य उन कच्चे खनिज पदार्थों का है जिस रूप में वे खान से निकाले जाते हैं। परिष्करण एवं शोधन के पश्चात वे अधिक मूल्यवान हो जाते हैं।

भारत के प्रमुख खनिज पदार्थ

भारत में कुछ खनिज पदार्थ यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध हैं जिनको निर्यात किया जाता है और कुछ खनिज पदार्थ देश की माँग के लिए पर्याप्त मात्रा में पाये

जाते हैं परन्तु कुछ ऐसे भी खनिज हैं जिनका देश में आयात किया जाता है। डा० वाडिया ने भारत ने खनिज पदार्थों की पर्याप्तता के आधार पर इन्हें चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है :

(1) प्रथम श्रेणी म वे खनिज पदार्थ हैं जिनका निर्यात पर्याप्त मात्रा में किया जाता है और जो भारत के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते हैं। ये खनिज लोहा, टाइटेनियम, अभ्रक, थोरियम धातु आदि हैं।

(ii) द्वितीय श्रेणी मे वे खनिज पदार्थ हैं जिनका भारत से महत्त्वपूर्ण निर्यात है। ये खनिज मैंगनीज, मैंगनमाइट, तापनिरोधक खनिज, बाक्साइट, घीयापत्थर, मोनेनाइट, ग्रेनाइट, बैरीलियम, नमक, सिलीका, हरसौंट आदि हैं।

(iii) तृतीय श्रेणी मे वे खनिज पदार्थ हैं जिनके उत्पादन में भारत आत्म-निर्भर है। ये कोयला, कांच बनाने का बालू, सोना, बाक्साइट, फेलस्फर, इमारती पत्थर, सगमरमर, स्लेट, सुरमा, तांबा, सुहागा, जिरकन, केराइट्स, वैनेडियम, पाइराइट, घीरा, फास्फेट, क्रोमाइट, फिटकरी आदि हैं।

(iv) चतुर्थ श्रेणी मे ऐस खनिजो को रखा गया है जिनका उत्पादन भारत मे बहुत कम है अथवा जिनका पूर्णत: अभाव है और जिनके लिए भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पडता है। इसमे चाँदी, निकल, जस्ता, सीसा, टिन, पारा, टगस्टन, मैलीबिडनम, ग्रैफाइट, पोटाश, एसफाल्ट, प्लैटीनम, गन्धक तथा प्लूराइड सम्मिलित हैं। विशेष रूप से अलोह वर्ग की धातुओं मे भारत की स्थिति उत्तम नहीं है।

उपरोक्त खनिजो में से प्रमुख खनिजो का विवरण नीचे दिया गया है :

लोहा
(Iron Ore)

विश्व का एक चौथाई लोहा भारत मे सुरक्षित है। भारत मे कुल २१ अरब टन लोहे के भण्डार का अनुमान लगाया गया है जो कि विश्व के कुल भण्डार का लगभग एक चौथाई है। लोहा खान से निकाला जाता है जो कि कच्ची धातु के रूप में होता है और इसमे कई वस्तुएँ मिली होती हैं। जिस धातु मे जितनी अन्य वस्तुएँ कम मिली होंगी उनकी शुद्धता की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। शुद्धता एव बनावट की दृष्टि से लोहे को निम्न चार भागों मे विभक्त किया जा सकता है :

(१) मेगनेटाइट (Magnetite),
(२) हेमेटाइट (Hametite),
(३) लाइमोनाइट (Limonite),
(४) सिडेराइट (Siderite)।

भारत में इनमे से तीन प्रकार का लोहा मिलता है जिनका विस्तृत वर्णन पृष्ठ २४४ पर दिया गया है।

प्रमुख खनिजों का वर्गीकरण
धातु वर्ग
(Metallic)
अधातु वर्ग
(Non Metallic)
लोह
(Ferrous)
अलोह
(Non-Ferrous)
मूल्यवान
(Precious)
लोहा
मैंगनीज
सोना
चांदी
प्लेटीनम
तांबा
जस्ता
सीसा
टिन
निकल
बाक्साइट
ईंधन
(Fuel)
कोयला
तेल
पीट
अणुशक्ति
(Nuclear-Fuel)
यूरेनियम
थोरियम
बेरीलियम
अन्य
(Others)
१. अभ्रक
२. गन्धक
३. नमक
४. पारा
५ पोटाश
६ बहुमूल्य एवं
इमारती पत्थर
७ जिप्सम
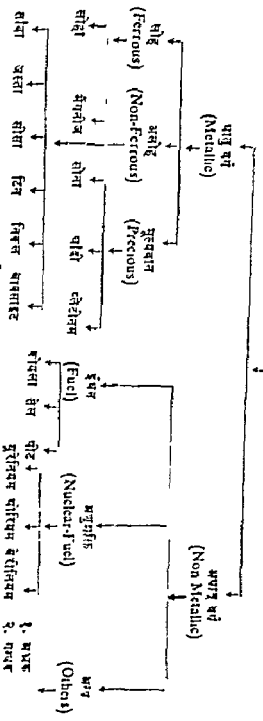
(१) मैगनेटाइट (Magnetite)

मैगनेटाइट लोहा सबसे श्रेष्ठ किस्म का लोहा होता है। इसमें शुद्धता की मात्रा ७२.४ प्रतिशत तक होती है। इस धातु का रंग गहरा भूरा अथवा काला होता है। इस लोहे में चुम्बकीय लक्षण होने के कारण ही इसे मैगनेटाइट नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह आग्नेय चट्टानों वाले प्रदेशों में विशेषकर सिंहभूमि, मद्रास, आन्ध्र, उड़ीसा और हिमाचल प्रदेश की खानों में मिलता है।

(२) हेमेटाइट (Hametite)

इस लोह में ५० से ७० प्रतिशत तक शुद्धता होती है। इसमें धातु ठोस कणों अथवा चूर्ण के रूप में उपलब्ध होती है। इस लोहे की विशेषता है कि इसकी खुदाई बहुत आसान है और इसको गलाने में कठिनाई नहीं आती। औद्योगिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। इस लोहे का रंग लाल होता है। यह अधिकतर प्राचीन युग की चट्टानों में पाया जाता है। भारत में अधिकांश लोहा इसी किस्म का पाया जाता है। यहाँ बिहार तथा उड़ीसा में सिंहभूमि, मयूरभंज, क्योंझर जिलों, मध्य प्रदेश में जबलपुर, रामघाट, डाली-राजहरा की पहाड़ियों, महाराष्ट्र में नीलगिरि, पीपलगाँव तथा लोहारा तथा मैसूर के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता है।

(३) लिमोनाइट (Limonite)

इस लोहे में सामान्यतः ४० से ६० प्रतिशत तक शुद्ध लोहा मिलता है। यह परतदार चट्टानों में उपलब्ध होता है। इस लोहे का रंग हल्का भूरा अथवा कुछ पीलापन लिए होता है। इसके मुख्य क्षेत्र महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मद्रास आदि हैं।

(४) सिडेराइट (Siderite)

इस लोहे में शुद्धता की मात्रा कम होती है। इसमें शुद्धता ३५ से ५० प्रतिशत तक सामान्यतः पायी जाती है। इस लोहे के साथ अन्य अनेक पदार्थ अधिक मिले होते हैं जैसे गन्धक, चूना आदि। इसका रंग हलका स्लेटी होता है।

लोह उत्पादन

भारत में इस समय २९३ लाख टन खनिज लोहा निकाला जाता है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक इसकी मात्रा ५३४ लाख टन हो जायेगी। पंचवर्षीय योजनाओं में भारत में लोहे का उत्पादन निम्न प्रकार हुआ :

भारत में लोहे का उत्पादन एवं निर्यात

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)
१९५१	३१	८
१९५६	५०	१८
१९६१	१२३*	३३*
१९६६	२६८*	१३३*
१९७१ (अनुमानित)	२९३*	१५०*

*गोवा में उत्पादित लोहे को सम्मिलित करते हुये।

पूर्व तालिका के आधार पर स्पष्ट है कि लोह के उत्पादन में पंचवर्षीय योजनाओं में काफी वृद्धि हुई है। १९५१ में जहाँ ३१ लाख टन का उत्पादन हुआ
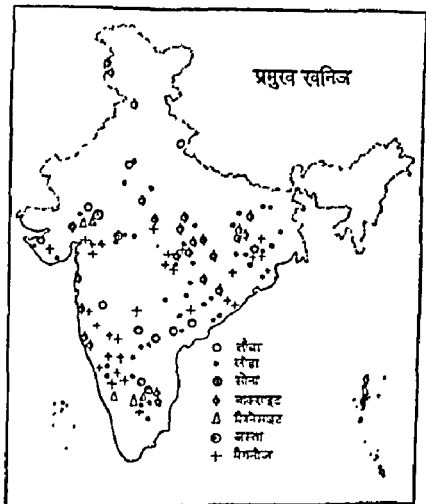
वहाँ तृतीय योजना के अन्त में २६८ लाख टन लोह का उत्पादन हुआ। इसमें गोआ में उत्पादित लोहे की मात्रा भी शामिल कर ली गयी है। सन् १९७४ तक भारत ५३४ लाख टन खनिज और उत्पादित कर सकेगा।

लोह उत्पादन क्षेत्र

भारत में लोहे के क्षेत्र उड़ीसा, बिहार, मैसूर तथा महाराष्ट्र राज्यों में हैं। मुख्य लोह-क्षेत्र बिहार तथा उड़ीसा में है। इस क्षेत्र में लोहा सतह के निकट मिल जाता है। विभिन्न राज्यों में लोह उत्पादन इस प्रकार है :

उड़ीसा—भारत मे उड़ीसा राज्य देश का ४५ प्रतिशत खनिज लोह प्रदान करता है। इस राज्य मे मयूरभज, क्योंझर तथा बोनाई क्षेत्रो से लोहा निकाला जाता है। मयूरभज क्षेत्र से भारत का लगभग २५ प्रतिशत लोहा मिलता है। इस भाग मे मुख्य खानें बादाम पहाड़ तथा गुरुमाहसानी हैं। गुरुमाहसानी मे लोहे की वहँ तीन भिन्न पेटियो मे मिलती हैं जिसमे लोह अश ६५ प्रतिशत से भी अधिक होता है। सुलेपात मे लोह-अश ७५ प्रतिशत से भी अधिक होता है।

क्योंझर क्षेत्र मे बगियाबुरु खान प्रसिद्ध है। इसमे टाटा इस्पात कारखाने (जमशेदपुर) को लोह-धातु भेजी जाती है। बोनाई क्षेत्र भी महत्त्वपूर्ण है, लोहे के नवीन भण्डार किरिबुरू, दंतारी और बरमुआ मे मिले हैं।

बिहार—बिहार मे सिंहभूमि जिला लोह क्षेत्र के लिए प्रसिद्ध है। इससे भारत को लगभग ४२ प्रतिशत लोहा मिलता है। इस क्षेत्र में बुदाबुरु, गुआ, नोआ-मण्डी, पसीरा बुरु आदि प्रमुख खानें हैं। अनुमान लगाया गया है कि बदाबुर में १५ करोड टन लोह भण्डार है तथा पसीरा बुरु में १ करोड टन लोहा भरा प ा है। इनके अतिरिक्त केन्दुर, झारगढ आदि मे भी लोहा मिलता है। बिहार की खानों से जमशेदपुर, हीरापुर, कुल्ती, दुर्गापुर आदि के कारखानो को खनिज लोहा प्रदान किया जाता है। कोयला क्षेत्र समीप होने के कारण यहाँ खनिज लोहे का उपयोग सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

मैसूर—इस राज्य के कदार जिले मे बाबाबूदन पहाड़ पर केमनगुण्डी खान से मैगनेराइट लोह मिलता है। बाबाबूदन पहाडियों मे कोयले का जमाव लगभग ३ करोड टन आंका गया है। मैसूर के भद्रावती लोह कारखाने मे इस क्षेत्र का लोह धातु काम मे लाया जाता है। इसके अतिरिक्त बेलारी के कुछ क्षेत्रों में भी लोहा निकाला जाता है।

मध्य प्रदेश—इस राज्य मे द्रुग जिले मे राजहारा पहाडियां और बालाघाट, रायगढ, रामघाट, बस्तर, सरगुजा, माडला, जबलपुर व विसालपुर जिलों में लोह खानें हैं। यहाँ के लोह मे ६५ प्रतिशत से अधिक शुद्धता है। यहाँ से भिलाई इस्पात कारखाने को लोहा प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र—इस राज्य मे चाँदा जिले मे उत्तम किस्म का लोहा पाया जाता है। यहाँ हेमेराइट लोहा मिलता है किन्तु यहाँ कोयले की कमी होने के कारण लोहे का उपयोग नही किया जा सका है। यहाँ के लोह मे ६० प्रतिशत से ६५ प्रतिशत तक शुद्धता है। अधिकाश लोहा लोहारा, रत्नागिरि और पीपल गाँव में निकाला जाता है।

आन्ध्र प्रदेश—आन्ध्र प्रदेश मे कृष्णा, कडुप्पा, गन्तूर, चित्तूर, वारंगल तथा कुर्नूल जिलो में लोहा प्राप्त होता है। यहाँ शुद्धता का प्रतिशत ३० से ३७ प्रतिशत है। आन्ध्र प्रदेश मे लगभग ४० करोड टन लोहे के भण्डार होने का अनुमान है।

पश्चिमी बगाल—इस राज्य मे वर्दवान जिले मे लोहा मिलता है। दार्जिलिंग में भी लोहे की खानों का पता लगाया गया है।

अन्य—अन्य क्षेत्रों में हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश हैं। हिमाचल प्रदेश में ६ करोड़ टन पंजाब में २० लाख टन, राजस्थान में २० लाख टन, उत्तर प्रदेश में लगभग १ करोड़ टन लोह के भण्डारों का अनुमान लगाया गया है।

व्यापार—खनिज लोह का भारत से निर्यात किया जाता है। भारत से सबसे अधिक लोहा जापान द्वारा आयात किया जाता है। इसके अतिरिक्त चैकोस्लोवेकिया, इटली, जर्मनी, युगोस्लाविया, रूमानिया आदि देशों को भी कच्चा लोहा निर्यात किया जाता है। भारत से लोहे के निर्यात में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

बीस वर्ष पहले भारत से खनिज लोह का निर्यात अत्यन्त सामान्य था+ इसके बाद इसमें क्रमशः निरन्तर वृद्धि हुई। दूसरी योजना के अन्त में निर्यात १२३ लाख टन हो गया जिसका मूल्य १७ करोड़ रुपये था। तीसरी योजना के अन्त में ४२ करोड़ रुपये का १३३ लाख टन लोहा निर्यात किया गया। इसके बाद इसमें और भी वृद्धि हुई और सन् १९७१ में १५५ लाख टन लोहे के निर्यात का अनुमान है जिसका मूल्य लगभग ६० करोड़ रुपये होगा। यदि कच्चे लोह के निर्यात में तरक्की का यह क्रम जारी रहा तो पाँचवीं योजना के अन्त तक खनिज लोहे का निर्यात हमारे विदेशी मुद्रा अर्जन के साधनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान ले लेगा। हाल ही में जापान से खनिज लोहे के निर्यात के लिए एक नया समझौता किया गया है।

मैंगनीज
(Manganese Ore)

मैंगनीज लोह-उद्योग में काम में आता है। लोह धातु को गलाने पर ऑक्सीजन का संयोग होता है जिससे लोहा भंगुर तथा छिद्रमय हो जाता है। लोह को इन दोषों से बचाने के लिए मैंगनीज का मिश्रण किया जाता है। लोहे की अन्य अशुद्धियों को दूर करने के लिए भी मैंगनीज काम में लिया जाता है। विश्व में मैंगनीज उत्पादन का लगभग ९५ प्रतिशत लोह पूरक के रूप में काम आता है। शेष भाग शुष्क बैटरी, ब्लीचिंग पाउडर, कीटाणु नाशक दवाएँ, टाइल, रंग-रोगन, चीनी के बर्तन, तथा काँच के बर्तन बनाने के काम आता है।

मैंगनीज विशुद्ध धातु के रूप में उपलब्ध नहीं होता। साधारणतः इसमें ऑक्सीजन का योग रहता है। यह परिवर्तित चट्टानों में मिलता है। विश्व में इसके प्रमुख उत्पादक देश रूस, भारत, ब्राजील और दक्षिणी अफ्रीका संघ हैं।

भारत में मैंगनीज का उत्पादन

मैंगनीज के उत्पादन में भारत का विश्व में द्वितीय स्थान है। इस समय भारत में लगभग १५ लाख टन से भी अधिक मैंगनीज का उत्पादन किया जा रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में मैंगनीज का उत्पादन इस प्रकार है।

मैंगनीज का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)
१९५१	१३·१६
१९५६	१४·३०
१९६१	१२·५४
१९६६	१७·०७
१९७१ (अनुमानित)	१५·६०

इस तालिका से स्पष्ट है कि भारत मे मैंगनीज का उत्पादन १५ लाख टन से अधिक होता है। सन् १९५१ में इसका उत्पादन १३·१६ लाख टन था जोकि बढ़कर १९६६ मे १७·०७ लाख टन हो गया।

उपर्युक्त आँकड़ों से यह प्रतीत होता है कि भारत में मैंगनीज के उत्पादन में अधिक उतार-चढाव नहीं हुआ है पिछले दस वर्ष में इसके उत्पादन में विशेष वृद्धि भी नहीं हुई है।

मैंगनीज उत्पादन क्षेत्र

भारत में मैंगनीज मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, आन्ध्र तथा बिहार राज्यों मे मिलता है। इसका प्रमुख क्षेत्र भारत के मध्य में स्थित है। यह क्षेत्र लगभग २०० किलोमीटर लम्बा तथा १० किलोमीटर चौडा है। विभिन्न राज्यों में मैंगनीज का उत्पादन निम्न प्रकार होता है:

मध्य प्रदेश—मध्य प्रदेश के बालाघाट तथा छिंदवाड़ा जिलों में मैंगनीज की खानें हैं। बालाघाट के कटेझारियाँ, उकवा, मावेली, नेचा-कौंटगझिरी; कोचेवाही, रामरामा, बोटेझरी, जाम, सेलवा, विकमारा, तिरोडी, मुन्ची, गर्रा, हटोड़ा, मिरगपुर, पोनिया, सीतापाथर आदि से मैंगनीज निकाला जाता है।

छिन्दवाडा मे कच्ची धाना, गोवरी, बर्धाना, बुदबुम, गोटी आदि से मैंगनीज निकाला जाता है।

इनके अतिरिक्त मांडला, बिलासपुर, बस्तर, धार, झाबुआ और इन्दौर जिलों में भी मैंगनीज उपलब्ध होता है।

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र का मैंगनीज उत्पादन में द्वितीय स्थान है। इस राज्य के पचमहल, धारवाड़ा, रत्नगिरि, भण्डारा आदि जिलों में मैंगनीज क्षेत्र हैं। मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र दोनों राज्य भारत का दो-तिहाई मैंगनीज उत्पादन करते हैं।

उड़ीसा—इस राज्य का तृतीय स्थान है। इस राज्य के क्योंझर, बोनाई, गंगापुर, मयूरभज, तालचीर, कालाहाडी, बोलगिर आदि स्थानों पर मैंगनीज की खानें हैं।

आन्ध्र प्रदेश—आन्ध्र प्रदेश मे देश के कुल उत्पादन का १० प्रतिशत मैंगनीज मिलता है। यहाँ विशाखापतनम, सिन्दूर आदि जिले मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं।

अन्य—बिहार, मैसूर तथा राजस्थान में भी मैंगनीज पाया जाता है। बिहार के सिंहभूमि जिले में, मैसूर के शाहूर, चितलद्रुग, शिमोगा आदि स्थानों में तथा राजस्थान में बांसवाड़ा तथा उदयपुर जिलों में मैंगनीज निकाला जाता है। गुजरात में पंचमहल और बड़ोदा में मैंगनीज प्राप्त होता है।

भारतीय मैंगनीज उत्तम किस्म का है। यहाँ के मैंगनीज खनिज में ४५ से ५५ प्रतिशत तक शुद्ध धातु का अंश पाया जाता है। रूस में शुद्धता का अंश ४५ प्रतिशत से अधिक नहीं है। भारत में मैंगनीज के सुरक्षित भण्डार का अनुमान १७ करोड़ टन से भी अधिक है।

व्यापार

भारत में लोह इस्पात उद्योग की अधिक प्रगति नहीं होने के कारण मैंगनीज की देश में माँग अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य उपयोग अधिक प्रच-लित नहीं हैं अतः इसकी खपत देश में कम है। धीरे-धीरे लोह इस्पात उद्योग की उन्नति के साथ-साथ मैंगनीज का उपभोग बढ़ रहा है। माँग से जो अधिक उत्पादन होता है उसे निर्यात कर दिया जाता है। भारत से संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, प० जर्मनी, बेल्जियम, जापान तथा चेकोस्लोवाकिया को खनिज निर्यात किया जाता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में लगभग १३ करोड़ रुपये का मैंगनीज निर्यात किया गया। सन् १९७० में लगभग २० करोड़ रुपये का मैंगनीज निर्यात किया गया।

तांबा
(Copper)

तांबा अलोह धातुओं के वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। यह सबसे प्राचीन धातु है। मानव ने जब धातुओं का प्रयोग करना प्रारम्भ किया उनमें तांबे का प्रयोग सबसे पहले किया। आजकल तांबे के अनेक उपयोग प्रचलित हैं। विद्युत का उत्तम संचालक होने के कारण विद्युत में काम आने वाली वस्तुओं में इसका उपयोग महत्वपूर्ण है। तांबे का प्रयोग तार, विद्युत यन्त्र, मोटर, रेल के इंजन, टेलीफोन, घड़ियों तथा वायुयान में होता है। इस धातु के सिक्के भी बनाये जाते हैं। तांबे की कुल उपयोग में लाये जाने वाली मात्रा का ४० प्रतिशत विद्युत यन्त्रों, १५ प्रतिशत तारों तथा ४५ प्रतिशत अन्य धातुओं को मिलाने के काम में लिया जाता है। तांबे के विविध उपयोगों के कारण इसकी माँग निरन्तर बढ़ रही है।

भारत में तांबे का उत्पादन

भारत में शुद्ध तांबे का उत्पादन इस समय लगभग ९.९ हजार टन है। इसके उत्पादन में पिछले दस वर्षों में भी कोई विशेष वृद्धि नहीं की जा सकी है जैसा कि अग्र तालिका से स्पष्ट है।

भारत मे ताँबे का उत्पादन (शुद्ध धातु)

वर्ष	उत्पादन (हजार टन)
१६५१	७ १
१६५६	७ ६
१६६१	८·५
१६६६	६ ४
१६७१	६ ६

विश्व म शुद्ध ताँबे का उत्पादन ५० लाख टन से भी अधिक होता है जिसकी तुलना में भारत का उत्पादन नगण्य है। यदि कुछ अन्य प्रमुख ताँबा उत्पादक देशों से तुलना करें तो हमे और भी अधिक निराशा होती है। उदाहरण के लिए, ताँबे का उत्पादन यू० एस० ए० मे १४ लाख टन, रूस मे ८ लाख टन, जाम्बिया में ७·५ लाख टन, चिली में ६ ६ लाख टन, जापान में ४ लाख टन, कैनाडा में ३ ६ टन, कांगो मे २ ५ लाख टन और पेरू मे २ लाख टन होता है। देश में इस समय ताँबे की माँग ८५ हजार टन की है अर्थात लगभग ७५ हजार टन ताँबे की कमी रहती है जो आयात से पूरी की जाती है। सन् १६७४ मे यह माँग बढ़कर १,२४,००० टन शुद्ध ताँबे की हो जायगी। इस समय बिहार में केवल एक कारखाना इण्डियन कापर कारपोरेशन ६ ६ टन ताँबा उत्पादित करता है। चौथी योजना में इसका उत्पादन १६,५०० टन प्रतिवर्ष हो जायगा, राजस्थान मे, खेतडी मे ताँबा गलाने का सयत्र भी उस समय तक ३१,००० टन ताँबा उत्पादित करने लगेगा। फिर भी देश में ताँबे की भारी कमी रहेगी जिसे विदेशो से आयात करके ही पूरा किया जायगा। इस समय लगभग ४७ करोड रुपये का ताँबा प्रतिवर्ष भारत आयात कर रहा है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत मे ताँबे के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बिहार में सिंहभूमि जिला तथा राजस्थान मे खेतडी और दरीबोखो हैं। बिहार मे ताँबे के अनुमानित भण्डार १ करोड टन के हैं। राजस्थान का ताँबा अधिक उत्तम किस्म का है। विभिन्न ताँबा उत्पादन क्षेत्रों का विवरण निम्न प्रकार है :

बिहार—बिहार का सिंहभूमि जिला ताँबे के सुरक्षित भण्डार मे महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्र की मुख्य खनिज सोनामाखी (Pyrites) है। इस खनिज के साथ निकल, लोहा तथा ताँबा के मिश्रण मिलते हैं। इस क्षेत्र में इण्डियन कॉपर कारपोरेशन ताँबा निकालने का कार्य कर रहा है जिसकी प्रमुख खान घाटशिला नामक स्थान के पास है। इस राज्य मे सिंहभूमि जिले के अतिरिक्त हजारी बाग, सथाल परगना और मानभूम में भी कुछ मात्रा में ताँबा निकाला जाता है। घाटशिला में ही कॉरपोरेशन का ताँबा गलाने का सयन्त्र (Copper Smelting Plant) कार्यशील है।

राजस्थान—तांबे का द्वितीय महत्वपूर्ण राज्य राजस्थान है। राजस्थान में खेतड़ी तथा दरीबाखो नामक स्थानों में तांबा पाया जाता है। इनके अतिरिक्त जयपुर के बबोई तथा सिंघाना की खानों में भी कुछ मात्रा में तांबा मिलता है। खेतड़ी क्षेत्र में कुछ स्थानों पर ६० मीटर की गहराई पर तांबा मिलता है। यहाँ का तांबा १.५ प्रतिशत शुद्ध है। दरीबा खान से उपलब्ध तांबे में शुद्धता २.५ प्रतिशत है।

अन्य—बिहार तथा राजस्थान के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, जम्मू कश्मीर, पंजाब, बंगाल, मध्यप्रदेश तथा मैसूर में भी तांबा मिलता है। उत्तर प्रदेश के गढ़वाल, देहरादून, अल्मोड़ा आदि जिलों में तांबे की खानें हैं। आन्ध्र प्रदेश में अग्नी गुंठल और गनी में तांबा उपलब्ध हुआ है। पंजाब में पटियाला जिले तथा मध्य प्रदेश में जबलपुर, बालाघाट, होशंगाबाद, बस्तर आदि जिलों में कुछ तांबा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त मैसूर में हसन और चितलदुर्ग में भी तांबा पाया जाता है।

व्यापार

भारत में तांबे का उत्पादन मांग से कम होता है अतः प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये हमें विदेशों को देकर इसका *आयात करना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में तांबे का* आयात निम्न प्रकार किया गया

तांबे का आयात (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	आयात
१९६१-६२	२३.४५
१९६२-६३	२५.२८
१९६३-६४	२६.०४
१९६४-६५	२४.४१
१९६५-६६	३३.३७
१९६९-७०	४०.५

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में आयात कम करने के प्रयत्न किये जायेंगे। राजस्थान के खेतड़ी नामक स्थान पर तांबा गलाने का संयन्त्र (Copper Smelter) *लगाया जा रहा है।* उसके द्वारा उत्पादन प्रारम्भ किये जाने के बाद भारत में तांबे के आयात की मात्रा कुछ कम होगी। किन्तु मांग में निरन्तर वृद्धि हो रही है और हमें अगले दस वर्षों में तांबे की कुछ अन्य खानों का विकास करना होगा।

बाक्साइट
(Bauxite)

बाक्साइट अल्यूमीनियम की कच्ची धातु होती है। यह धातु हल्की होती है और इसका रंग मिट्टी जैसा होता है। इस धातु के हल्केपन के कारण इसका प्रयोग

वायुयानो, कार, रेलवे, विद्युत यन्त्र, पतली चद्दर बनाने में होता है। इनके अतिरिक्त इसे वर्तन बनाने, वैज्ञानिक यन्त्र बनाने, मूल्यवान वस्तुओं के लिए डिब्बे बनाने तथा पेन्ट आदि बनाने के काम मे भी लेते हैं।

बाक्साइट के भण्डार पृथ्वी की ऊपरी सतह के पास ही पाये जाते हैं। कहीं-कहीं चट्टानो के मध्य भी इसके परत मिलते हैं। इसको गला कर अल्यूमीनियम हाइड्रोक्साइड बनाते हैं जिससे अलुमिना बनाया जाता है।

बाक्साइट का उत्पादन

भारत में ३५ करोड मी० टन बाक्साइट के सुरक्षित भण्डारों का अनुमान है। अनुमान है कि इस राशि मे से केवल २५ करोड मी० टन अच्छी धातु के भण्डार हैं। बाक्साइट का उत्पादन १९६६ में ७४६ हजार टन था। भारत मे पचवर्षीय योजनाओ में इसका उत्पादन निम्न प्रकार हुआ :

बाक्साइट का उत्पादन

वर्ष	इकाई	उत्पादन
१९५१	हजार मैट्रिक टन	६८
१९५६	,,	१०१
१९६१	,,	४७६
१९६६	,,	७४६
१९७१	,	१,०५० (अनुमानित)

बाक्साइट का उत्पादन लगातार बढ रहा है। सन् १९५१ मे ६८ हजार टन बाक्साइट का उत्पादन हुआ था जो कि बढकर १९६६ में ७४६ हजार टन हो गया। सन् १९७१ में लगभग १,०५० हजार टन का अनुमान लगाया गया है। जहाँ तक शुद्ध एल्यूमीनियम के उत्पादन का प्रश्न है यह विभिन्न वर्षों में निम्न प्रकार रहा है :

भारत में एल्यूमीनियम का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन क्षमता (हजार टन)	वास्तविक उत्पादन (हजार टन)
१९५१	४ ५	४ ०
१९५६	७ ६	७ ४
१९६१	१८ २	१८ ३
१९६६	८८ ५	६२ १
१९७१	१६३ ९	१३५ १
१९७४ (लक्ष्य)	२३० ०	२२० ०

(Source—*Economic Times*, April 4, 1971)

भारत मे एल्यूमीनियम का उत्पादन प्रथम योजना के आरम्भ मे ४,००० टन था जो कि तृतीय योजना के अन्त म ६२,१०० टन हो गया। तीसरी योजना में

उत्पादन वृद्धि वस्तुत रेनुकूट मे हिन्दुस्तान एल्यूमीनियम कारपोरेशन द्वारा उत्पादन प्रारम्भ करने से हुई। उसके बाद इसमे तेजी से वृद्धि हुई है। इधर कुछ वर्षों से विविध उपयोगो के लिए एल्यूमीनियम की माँग मे वृद्धि हो रही है। वायुयान निर्माण, विद्युत उद्योग आदि मे इसका उपयोग अधिक हो रहा है। ताँबे की कमी के कारण ताँबे के स्थान पर एल्यूमीनियम का प्रयोग किया जाने लगा है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत मे बाक्साइट की खानें बिहार, महाराष्ट्र, उडीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, तमिलनाड (मद्रास), आदि मे हैं। इन राज्यो मे निम्न प्रकार बाक्साइट का उत्पादन होता है :

बिहार—बिहार मे इसकी खानें राँची और पालामऊ जिलो में हैं। इस राज्य मे मुरी तथा लोहारडागा स्थान पर बाक्साइट साफ करने के कारखाने हैं। यहाँ इस खनिज का अनुमान १ करोड टन लगाया गया है।

उडीसा—यहाँ कालाहण्डी और सम्भलपुर जिलों मे खानें हैं। यहाँ के बाक्साइट मे शुद्धता का प्रतिशत ऊँचा है।

मध्य प्रदेश—मध्यप्रदेश मे सरगुजा, बालाघाट, रायगढ़, बिलासपुर, भोपाल, सिऊनी, मण्डला, कटनी, जबलपुर और रीवाँ क्षेत्रों मे खानें हैं। यहाँ अच्छे खनिज का अनुमान ७० लाख टन है।

गुजरात—इस राज्य में हालहार जिले मे घागरवाडी मे महत्वपूर्ण खानें हैं। यहाँ १ करोड टन बाक्साइट होने का अनुमान है। यहाँ के धातु म भी शुद्धता का प्रतिशत अधिक है। इस राज्य के खेरा, राजपीपला तथा कुछ अन्य क्षेत्रों मे भी बाक्साइट मिलता है।

महाराष्ट्र—इस राज्य के थाना, पूना, मेढा, कोल्हापुर इत्यादि क्षेत्रों में बाक्साइट मिलता है। यहाँ से उपलब्ध बाक्साइट मे धातु का अश लगभग ५० प्रतिशत है।

मद्रास—इस राज्य की शिवराय पहाडियो मे इसकी प्रमुख खानें हैं। इसमें धातु अश ४५ से ६० प्रतिशत तक है। यहाँ बाक्साइट का अनुमान ६०-७० लाख टन है।

अन्य—उपरोक्त राज्यों के अतिरिक्त मैसूर की बाबाबूदन पहाडियों में, काश्मीर के रियासी व पूँछ क्षेत्रों मे भी बाक्साइट की खानें हैं। मैसूर राज्य में ७ लाख टन और काश्मीर मे २० लाख टन बाक्साइट मिलने का अनुमान है।

भारत मे एल्यूमीनियम उत्पादन की भावी सम्भावनाएँ बहुत उत्तम हैं। बाक्साइट के प्रचुर भण्डारों के आधार पर यहाँ एल्यूमिनियम के अनेक कारखाने खोले जा सकते हैं तथा भारत इस धातु का कुछ वर्षों बाद निर्यात भी कर सकता है।

अभ्रक
(Mica)

अभ्रक अधातु खनिज में सम्मिलित किया जाता है। यह खनिज काफी हल्का होता है। इसकी पतली पतली परत बनायी जा सकती हैं। अभ्रक की परतें पारदर्शक होती हैं। यह खनिज विद्युत का कुचालक होता है अत इसका उपयोग अधिकतर विद्युत के कारखानों में किया जाता है। इसका प्रयोग रेडियो, बेतार का तार, मोटर आदि मे भी किया जाता है। इससे विद्युत का सामान, पारदर्शक चद्दरें तथा रग-रोगन आदि पदार्थ बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त अभ्रक को सजावट की वस्तुएँ बनाने, दवाइयाँ बनाने, लैम्प चिमनियों तथा भट्टियों के परदे बनाने आदि के कार्यों मे काम मे लाया जाता है।

भारत में अभ्रक सफेद, हरा तथा हल्के गुलाबी रग का पाया जाता है। सफेद अभ्रक को रूबी अभ्रक तथा गुलाबी को बायोटाइट अभ्रक कहा जाता है। यह प्राय दो स्वरूपों मे उपलब्ध होता है—बहुत बडे चट्टान खण्ड और खण्डित रूप में।

भारत में अभ्रक का उत्पादन—विश्व में अभ्रक के उत्पादकों में भारत का स्थान प्रथम है। विश्व का लगभग तीन चौथाई अभ्रक अकेला भारत उत्पन्न करता है। भारत म अभ्रक बिहार, राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश तथा मैसूर में प्राप्त होता है। इसका उत्पादन निम्न प्रकार रहा है :

अभ्रक का उत्पादन

वर्ष	इकाई	उत्पादन
१९५१	हजार मैट्रिक टन	१००
१९५६	,,	२६ ६
१९६१	,,	२८ ३
१९६६	,,	२१ ८
१९७१	,,	२२ ९ (अनुमानित)

इस तालिका के आधार पर १९५१ मे १० हजार टन तथा १९५६ में २६ ६ हजार टन अभ्रक निकाला गया। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त में २८ ३ हजार टन अभ्रक निकाला गया जबकि तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक उत्पादन में कमी हुई। १९६६ में अभ्रक का उत्पादन २१ ८ हजार टन ही हुआ। उसके बाद इसमें कुछ सुधार हुआ है। सन् १९७१ में २२ ९ हजार टन अभ्रक उत्पादन का अनुमान है जिसमें तीन चौथाई अभ्रक परतों के रूप में तथा शेष चूरा आदि के रूप मे था।

उत्पादन क्षेत्र

भारत मे सबसे अधिक अभ्रक बिहार राज्य में निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त प्रमुख क्षेत्र राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश में है। इन तीनो क्षेत्रों में अभ्रक का उत्पादन अग्र प्रकार होता है।

बिहार—बिहार राज्य में देश के ६० प्रतिशत अभ्रक का उत्पादन होता है। इस राज्य में हजारीबाग, गया, मुंगेर, भागलपुर, संथाल परगना क्षेत्रों में अभ्रक उपलब्ध होता है। यहाँ प्राप्त होने वाली अभ्रक बहुत उत्तम किस्म की है। विश्व बाजार में यहाँ की अभ्रक को 'बंगाली रूबी' (Bengal Ruby) कहा जाता है।

राजस्थान—राजस्थान में भारत के कुल उत्पादन का २५ प्रतिशत अभ्रक उत्पन्न होता है। यहाँ इसका विस्तार भीलवाड़ा, अजमेर तथा जयपुर जिलों में है। इस क्षेत्र के अभ्रक का रंग हल्का गुलाबी तथा हरा होता है। भीलवाड़ा क्षेत्र से सबसे अधिक अभ्रक निकाला जाता है।
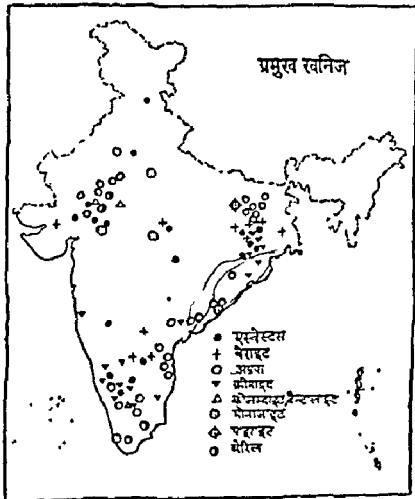
आन्ध्र प्रदेश—आन्ध्र प्रदेश भारत का तृतीय प्रमुख अभ्रक उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ लगभग १० प्रतिशत अभ्रक उपलब्ध होता है। इस राज्य के नेलोर जिले में प्रमुख खानें कालीचेड़ और तेलाबोड़ है। यहाँ के अभ्रक का रंग हरा होता है। इसे हरा अभ्रक अथवा विद्युत अभ्रक भी कहते हैं।

इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त ५ प्रतिशत अभ्रक उड़ीसा, केरल तथा पंजाब राज्यों में होती है।

व्यापार

अभ्रक का सबसे बड़ा उत्पादक होने के साथ-साथ भारत सबसे बड़ा निर्यातक भी है। देश में मांग कम होने के कारण निर्यात अधिक होता है। कुल उत्पादन का लगभग ५ प्रतिशत काम में लाया जाता है और शेष निर्यात किया जाता है। यहाँ से अभ्रक का निर्यात—ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, जापान, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया आदि देशों को किया जाता है। वर्ष १९७०-७१ में लगभग १५ करोड़ रुपये से भी कुछ अधिक मूल्य का अभ्रक निर्यात किया गया। विश्व के अभ्रक व्यापार में अब प्रतियोगिता चालू हो गयी है। ब्राजील से भी काफी मात्रा में अभ्रक निर्यात किया जाने लगा है। आजकल जर्मनी कृत्रिम अभ्रक भी तैयार करने लगा है।

अणु शक्ति के खनिज
(Atomic Minerals)

अणु-शक्ति के खनिज यूरेनियम, थोरियम, बेरीलियम, जिरकन एण्टीमनी तथा ग्रेफाइट आदि हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:

यूरेनियम (Uranium)

यूरेनियम कई प्रकार की चट्टानों से प्राप्त होता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भी यह धातु निकाली जाती थी, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दो नवीन क्षेत्रों को ज्ञात किया गया जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं। ये क्षेत्र बिहार तथा राजस्थान हैं। बिहार क्षेत्र में यूरेनियम की पट्टी ९७ कि० मीटर है। इसके अतिरिक्त मध्य राजस्थान में भी यह खनिज पाया जाता है। इन दोनों राज्यों में कुल मिला कर अनुमानित भण्डार १५,००० टन के हैं।

भारत में इस खनिज को चार स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। ये स्रोत निम्नलिखित हैं:

(१) आर्कियन और धारवाड़ चट्टानों से—इन चट्टानों से निम्न श्रेणी की धातु उपलब्ध होती है। इन चट्टानों से बिहार के सिंहभूमि जिला तथा मध्य राजस्थान में यूरेनियम मिलता है।

(२) मिश्रित यूरेनियम पैगमेटाइट्स चट्टानों से—इन चट्टानों से प्राप्त यूरेनियम की मात्रा अधिक होती है। ये चट्टानें बिहार, तमिलनाडु (मद्रास), मध्य राजस्थान तथा केरल के कुछ क्षेत्रों में मिलती हैं।

(३) मोनाजाइट बालू मिट्टी से—भारत में तमिलनाडु (मद्रास) तथा केरल राज्यों के समुद्रतटीय भागों में मोनाजाइट नामक बालू मिट्टी में भी कुछ यूरेनियम उपलब्ध होता है। इस मिट्टी का रंग पीला होता है। भारत की मोनाजाइट संसार की उत्तम श्रेणी की मोनोजाइट मानी जाती है। यह मिट्टी तटीय भागों में समुद्र की

लहरों से इकट्ठी होती रहती है। केरल राज्य में मोनाजाइट के २० लाख टन के अनुमानित भण्डार हैं।

(४) चेरालाइट—चेरालाइट खनिज भी केरल राज्य में मिलता है। जिसमें लगभग ५ प्रतिशत यूरेनियम मिलता है। यह केरल राज्य की बालू में उपलब्ध होता है।

थोरियम (Thorium)

अणु-शक्ति खनिजों में द्वितीय महत्त्वपूर्ण खनिज थोरियम है। यह मोनाजाइट बालू से प्राप्त किया जाता है। भारत में इसके भण्डार अनुमानतः २० लाख टन के हैं। विश्व में भारत थोरियम का प्रमुख उत्पादक है। केरल राज्य की बालू मिट्टी में ८ से ११ प्रतिशत तक थोरियम प्राप्त होता है। विहार राज्य की मिट्टी में लगभग १० प्रतिशत तक थोरियम उपलब्ध होता है।

थोरियम पश्चिमी तथा पूर्वी समुद्र तटों, नीलगिरि, हजारीबाग तथा उदयपुर में उपलब्ध होता है।

बेरीलियम (Bereyllium)

बेरीलियम बेरील खनिज से मिलता है। यह मैगमेटाइटस चट्टानों से प्राप्त होता है। यह बिहार, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाड राज्यों में मिलता है। इस खनिज का वार्षिक उत्पादन लगभग १,००० टन है। आजकल देश के अन्य राज्यों में भी इस खनिज की खोज की जा रही है। भारत विश्व में थोरियम का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। बेरील से जो बेरीलियम प्राप्त किया जाता है, वह अन्य देशों की तुलना में भारत में अधिक प्रतिशत में मिलता है।

अन्य खनिज—जिरकन का उपयोग शीशा बाहर बनाने, विद्युत के बोर्ड लगाने, रेडियो-ट्यूबों आदि में होता है। भारत में यह खनिज केरल राज्य की बालू मिट्टी से उपलब्ध होता है। ग्रेफाइट अधिकतर नीस शिलाओं में मिलता है। यह आन्ध्र प्रदेश, मैसूर मद्रास (तमिलनाड), राजस्थान तथा उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में उपलब्ध होता है। यह पेंसिल का सीसा, चिकनाई के तेल तथा रंग रोगन आदि बनाने के काम में भी लिया जाता है सुरमा सफेद और रवेदार खनिज होता है। इसका प्रयोग विद्युत की बेटरियों, गोला-बारूद, नल, तथा टाइप में प्रयोग की जाने वाली धातुओं के साथ किया जाता है। यह खनिज पंजाब तथा मध्य प्रदेश में प्राप्त होता है।

अणु शक्ति खनिज शक्ति उत्पादन क्षेत्र में काम में लाये जावे तो बहुत सस्ती शक्ति का निर्माण हो सकता है। भारत में अणु शक्ति खनिज पदार्थों का पता लगाया जा रहा है। इन खनिजों से बहुत बड़ी मात्रा में शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, १ पौण्ड यूरेनियम से इतनी विद्युत शक्ति प्राप्त की जा सकती है जितनी कि २५ लाख पौण्ड कोयले से। आशा है कि निकट भविष्य में इन खनिज पदार्थों के उचित विदोहन से शक्ति की प्राप्ति की समस्या हल हो सकेगी। इससे

औद्योगिक विकास में काफी मदद मिलेगी। महाराष्ट्र के तारापुर में भारत का प्रथम अणु बिजलीघर सन् १९६९ के प्रारम्भ से बनकर तैयार हो गया है, दूसरा अणु बिजलीघर राजस्थान में और तीसरा मद्रास में बन रहा है। इनके लिए अणु खनिजों की अधिकाधिक मात्रा में आवश्यकता है।
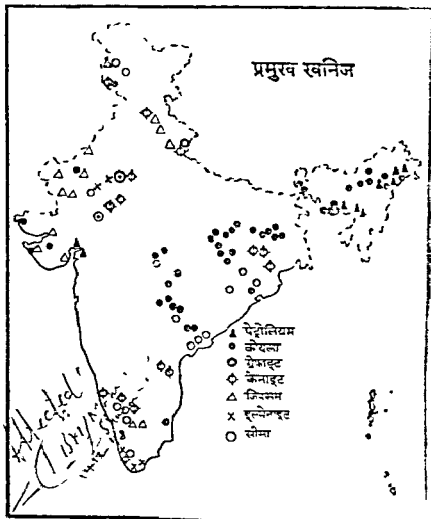
भारत सरकार की खनिज नीति

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में खनिज-उद्योग के विकास की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। उस समय आधारभूत वृहत् उद्योगों का अभाव था अतः खनिज पदार्थों की माँग भी अधिक नहीं थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् खनिज विकास का समन्वित तथा सगठित कार्यक्रम बनाना आवश्यक समझा गया था।

भारत सरकार ने १९४८ में खान और खनिज नियमन तथा विकास अधिनियम (Mines and Minerals Regulation and Development Act) पास

किया। इसी वर्ष भारतीय खनिज संस्थान (Indian Bureau of Mines) की स्थापना की गयी। इनके अतिरिक्त जियोलाजीकल सर्वे आफ इण्डिया (Geological Survey of India) का पुनर्गठन एवं विस्तार किया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में खनिज नीति

प्रथम पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय खनिज नीति का सर्वप्रथम स्पष्टीकरण किया गया जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) देश के विभिन्न खनिज पदार्थों का अनुमान लगाना और उनकी खोज करना।

(२) मैंगनीज, कच्चा लोहा, क्रोमाइट, बाक्साइट आदि महत्त्वपूर्ण खनिजों की खुदाई के पट्टे दिये जाने से पूर्व केन्द्रीय सरकार की अनुमति अनिवार्य बनाना।

(३) गंधक, टीन तथा टंगस्टन के भण्डारों की देश के विभिन्न भागों में खोज करना।

(४) निम्न श्रेणी के खनिज पदार्थों के भण्डारों की खोज करना और उनकी सफाई आदि कार्यों के सम्बन्ध में अनुसंधान व्यवस्था करना।

(५) खनिज उद्योग तथा खनिज व्यापार से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करना।

इन बातों को ध्यान में रख कर खनिज विकास किया गया। भारत सरकार की नवीन औद्योगिक नीति के अन्तर्गत हुई खनिजों के भावी विकास को सार्वजनिक क्षेत्रों में सम्मिलित कर लिया गया है।

द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं में खनिज नीति

द्वितीय योजना में १९५६ की औद्योगिक नीति को ध्यान में रखकर खनिज विकास किया गया। इस योजना में राष्ट्रीय कोयला विकास निगम और आयल इण्डिया लिमिटेड आदि की स्थापना की गयी। वर्ष १९५८ में राष्ट्रीय खनिज विकास निगम की स्थापना हुई। द्वितीय योजना तथा तृतीय योजना में प्रथम योजना की नीति के आधार पर ही कार्य किया गया। तीसरी योजना में खनिज व्यापार पर अधिक ध्यान दिया गया। सन् १९६३ में खनिज एवं धातु व्यापार निगम स्थापित किया गया।

चतुर्थ योजना में खनिज नीति

इस योजना में खनिज नीति की निम्न विशेषताएँ हैं।

(१) निर्यात बढ़ाने के लिए नयी खानों तथा खनिज भण्डारों का पता लगाना।

(२) बाक्साइट, लोहा, कोयला, चूना, जिप्सम आदि खनिज पदार्थों के अन्य भण्डारों की खोज करना।

(३) जिन खनिज पदार्थों का आयात किया जाता है उन खनिजों का देश के विभिन्न भागों में पता लगाना।

(४) भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण एवं भारतीय खनिज संस्थान का विकास एवं विस्तार करना आदि।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे खनिज विकास के लिए २ ५ करोड़ रुपये व्यय किये गये जबकि द्वितीय पचवर्षीय योजना में ७३ करोड़ रुपये का प्रावधान था। तृतीय योजना म वास्तविक व्यय ५२५ करोड रुपये हुये। चतुर्थ पचवर्षीय योजना १९६९-७४ मे ७१७ १४ करोड रुपये इस क्षेत्र मे व्यय किये जाएँगे।

भारत के भावी औद्योगिक विकास के लिए खनिज सम्पत्ति की बहुत बडी आवश्यकता है। कुछ उद्योगो के लिए खनिज पदार्थ कच्चे माल के रूप में होते हैं जैसे लोहा एव इस्पात उद्योग। यह उद्योग आधारभूत उद्योग है जिस पर अनेक उद्योग आधारित हैं। खनिज धातुओं से अनेक प्रकार की मशीनें बनायी जाती हैं जो विभिन्न उपयोगों मे काम आती हैं। रासायनिक उद्योग का विकास गन्धक, खनिज, तेल, जिप्सम, पोटास तया नाइट्रेट आदि पर आधारित है। अत भारत के औद्योगिक विकास में खनिज समस्या का महत्वपूर्ण योग है।

प्रश्न

१. "भारतवर्ष खनिज दृष्टिकोण से बहुत धनी है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? भारत में आणविक खनिज सम्पत्ति की वर्तमान स्थिति क्या है?
(टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६७)
२. भारत मे कोयले और लोहे का वितरण बताइए और पिछले पन्द्रह वर्षों में इनके विकास पर प्रकाश डालिए।
(टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, पूरक परीक्षा, १९६४)
३. भारत की खनिज सम्पत्ति के बारे में एक संक्षिप्त विवरण लिखिए तथा यह बतलाइए कि देश की भावी औद्योगिक प्रगति पर इसका क्या प्रभाव पडेगा?
४. भारत की खनिज सम्पत्ति का वर्णन कीजिए तथा इसके विकास के लिए भारत सरकार द्वारा अपनाई गयी नीति की व्याख्या कीजिए।
५. भारत में निम्नलिखित खनिजों के महत्त्व, उत्पादन, उत्पादन क्षेत्र, व्यापार आदि के बारे मे सक्षेप में लिखिए:
(अ) लोहा, (ब) मैंगनीज, (स) अभ्रक, (द) बाक्साइट आदि।
६. भारत में अणु-शक्ति खनिज कौन-कौन से पाये जाते हैं? इनका भारत के आर्थिक विकास मे क्या योगदान हो सकता है?
७. "भारत खनिज-सम्पदा मे समृद्ध है।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं? बहुत महत्त्वपूर्ण खनिजों के उत्पादन के आंकडे दीजिए। (राजस्थान, १९७०)

अध्याय १३

शक्ति के साधन
(POWER RESOURCES)

वर्तमान युग यन्त्रों का युग है। वृहत पैमाने पर उत्पादन के लिए मशीनों को काम में लाया जाता है। कारखानों की मशीनों को यान्त्रिक शक्ति के बिना गत्यात्मित नहीं किया जा सकता है। उत्पादित माल के व्यापार के लिए उत्तम परिवहन के साधन आवश्यक हो जाते हैं। इन साधनों के विकास के लिए भी शक्ति आवश्यक है। इस प्रकार आधुनिक युग में उद्योग, कृषि, परिवहन आदि शक्ति के साधनों के विकास पर आधारित होते हैं। अतः किसी देश के आर्थिक विकास की योजनाएँ बनाने से पहले उस देश के शक्ति के साधनों का पर्याप्त विकास किया जाना अनिवार्य हो जाता है।

शक्ति के साधनों का विकास प्राकृतिक साधनों के समुचित विदोहन को सम्भव बना देता है। सस्ती एवं पर्याप्त शक्ति के बिना प्राकृतिक सम्पदा का लाभ-पूर्ण उपभोग नहीं किया जा सकता है। औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरण में शक्ति के साधनों का उपभोग अत्यन्त सीमित रहा। उत्पादन एवं परिवहन के अधिकांश कार्य शक्ति के परम्परागत साधनों के सहारे ही होते रहे। इन परम्परागत साधनों में मानव शक्ति, वायु शक्ति एवं पशु शक्ति प्रमुख थे और भारत में आज भी मानव-शक्ति एवं पशु शक्ति कृषि एवं कुटीर उद्योगों में प्रमुख साधन है। औद्योगिक विकास के साथ-साथ बड़े पैमाने पर शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई। अब देश में कोयला, जलविद्युत एवं खनिज तेल से क्रमशः इसकी पूर्ति बढ़ती गयी। आज तो स्थिति यह है कि भारत में सर्वत्र अनेक परियोजनाएँ बन चुकी हैं, अथवा निर्माण की अवस्था में हैं। पिछले बीस वर्षों में कोयला, तेल एवं बिजली से प्राप्त होने वाली शक्ति की मात्रा में कई गुनी अधिक वृद्धि हो चुकी है। फिर भी भारत में प्रति व्यक्ति शक्ति की उपलब्धि अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। शक्ति के साधनों के विकास की दशा तथा प्रति व्यक्ति शक्ति की खपत की मात्रा से किसी देश के आर्थिक विकास के स्तर का भलीभाँति अनुमान लगाया जा सकता है। शक्ति के साधनों की सुलभता देश के आर्थिक विकास की सम्भावनाओं को बढ़ा देती है।

इसके विपरीत शक्ति के साधनों के अभाव में अनेक देशों का औद्योगिक विकास पिछड़ जाता है।

भारत में शक्ति के साधन

प्राचीन काल से ही भारत में मानव-शक्ति तथा पशु-शक्ति का उपयोग होता रहा है। आजकल भी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अधिकांश कार्य पशुओं के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। किन्तु अब इनके साथ साथ यान्त्रिक शक्ति के साधनों के विकास का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। स्वचालित मशीनों एवं यन्त्रों के अधिकाधिक उपयोग ने शक्ति के आधुनिक साधनों के विकास को अनिवार्य बना दिया। शक्ति के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं :

(१) कोयला,
(२) खनिज तेल अथवा पेट्रोलियम,
(३) जल विद्युत,
(४) अणु शक्ति।

भारत में उपर्युक्त चारों प्रकार की शक्ति काम में लायी जाती है। प्रत्येक साधन का अपना-अपना महत्त्व है। कुछ कार्य कोयले की शक्ति से किये जा सकते हैं तो कुछ खनिज तेल की शक्ति से। उदाहरणस्वरूप, इस्पात बनाने में खनिज तेल का उपयोग नहीं किया जा सकता। वायुयानों एवं मोटरकारों को बनाने के लिए कोयला काम में नहीं लाया जाता। अतः सभी साधनों की अपनी पृथक कार्य शक्ति एवं उपयोगिता है। भारत के आर्थिक विकास के सभी साधनों का उपयोग तथा विकास आवश्यक है।

कोयला
(Coal)

कोयला शक्ति का एक प्रमुख स्रोत है। औद्योगिक क्रान्ति का जन्म कोयले से हुआ। कोयला का उपयोग घरेलू ईंधन के रूप में, रेलों को चलाने तथा इस्पात बनाने में होता है। यद्यपि आजकल विद्युतीकरण के कारण रेलें जल विद्युत से भी चलाई जा सकती हैं, किन्तु भारत में अभी रेलवे लाइनों के विद्युतीकरण में समय लगेगा। इन परिस्थितियों में भाप को काम में लाया जाता है।

कोयले के प्रकार

कोयले को शुद्धता की दृष्टि से वर्गीकृत किया जाता है। यह जितना अधिक कठोर और अधिक कार्बन वाला होता है उतना ही अच्छा माना जाता है। शुद्धता की दृष्टि से कोयले को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) लिगनाइट,
(२) बिटूमिनस,
(३) एन्थ्रेसाइट।

बिटूमिनस तथा एन्थ्रेसाइट कोयले को पुन: तीन भागों में बाँटा जा सकता है जैसे सब-बिटूमिनस (Sub-Bituminous), बिटूमिनस (Bituminous) और सेमी-बिटूमिनस (Semi-Bituminous) और एन्थ्रेसाइट, सेमी-एन्थ्रेसाइट (Semi-Anthracite) तथा सुपर एन्थ्रेसाइट (Super Anthracite)।

(१) लिगनाइट अथवा भूरा कोयला (Lignite)—इस कोयले को कोयला निर्माण की प्रक्रिया से गुज़रने का सबसे कम समय मिला है। इसमें कार्बन का प्रतिशत कम पाया जाता है। इसमें साधारणत: ४५ से ५५ प्रतिशत कार्बन का अंश पाया जाता है। जलते समय इससे धुँआ निकलता है। भारत में भूरा कोयला राजस्थान, मद्रास तथा कश्मीर में मिलता है।

(२) बिटूमिनस (Bituminous)—यह मध्य श्रेणी का कोयला है। लिगनाइट की तुलना में यह अच्छा होता है। सामान्यत: इसमें कार्बन का प्रतिशत ६० से ८० तक होता है। यह काले रंग का होता है। विश्व में कुल कोयले के उत्पादन का लगभग आधा इस प्रकार का है। यह जलाने पर कम धुँआ देता है।

(३) एन्थ्रेसाइट (Anthracite)—यह कोयला सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह चमकीले काले रंग का तथा कठोर होता है। जलते समय धुँआ बहुत कम निकलता है। इसमें कार्बन का अंश ९० प्रतिशत या इससे भी अधिक पाया जाता है। यह कोयला मँहगा होता है।

भारत में अच्छी किस्म के कोयले के भण्डार अपर्याप्त हैं। यहाँ के कोयले में कार्बन का अंश कम होता है किन्तु राख, जल तथा वाष्प का अंश अधिक मात्रा में होता है। भारत की कोयले की खानों की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। कोयले के क्षेत्र का वितरण असमान है। अधिकांश कोयला गोंडवाना क्षेत्र में ही उपलब्ध होता है।

कोयले के सुरक्षित भण्डार तथा उत्पादन

भारत में कोयले का सुरक्षित भण्डार कम है। विश्व के कोयला भण्डार का भारत में लगभग १.३ प्रतिशत है। यहाँ लिगनाइट कोयले के भण्डार लगभग ८५० करोड़ टन होने का अनुमान लगाया गया है। भारत में घटिया किस्म का कोयला तो काफी है मगर उत्तम किस्म का कम है।

भारत का कोयले के उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है। प्रथम योजना के आरम्भ में कोयले का उत्पादन लगभग ३४९ लाख टन था। प्रथम योजना के अन्त में इससे लगभग ५२ लाख टन अधिक कोयले का उत्पादन हुआ। प्रथम तीन योजनाओं में कोयले का उत्पादन तथा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य इस प्रकार हैं।

स्पष्ट है कि पिछले बीस वर्षों में कोयले का उत्पादन दो गुने से कुछ अधिक हो गया है। सन् १९६० के बाद दो वर्ष में उत्पादन में प्रति वर्ष लगभग पाँच प्रतिशत की वृद्धि हुई और सन् १९६९ में ७५८ लाख टन कोयला निकाला गया, किन्तु

उसके बाद सन् १६७० एवं १६७१ में उत्पादन गिर गया; क्योंकि कोयला खानों में एवं रेलों में श्रमिकों की हड़ताल का इस पर विपरीत प्रभाव पड़ा। अब स्थिति में सुधार हो रहा है और आशा है कि चतुर्थ योजना के ६३५ लाख टन कोयला उत्पादन के लक्ष्य को पूरा किया जा सकेगा।
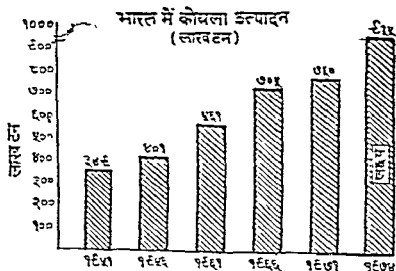
उत्पादन क्षेत्र

भारत में कोयला मुख्यतः गोंडवाना कोयला क्षेत्र में केन्द्रित है। गोंडवाना काल की चट्टानों से कुल उत्पादन का लगभग ६८ प्रतिशत से भी अधिक कोयला निकाल दिया जाता है। भारत के कुल कोयला उत्पादन का लगभग तीन चौथाई पश्चिमी बंगाल और बिहार राज्यों से मिलता है। मध्य प्रदेश से लगभग १५ प्रतिशत और आन्ध्र प्रदेश से ६ प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है। शेष १·५ प्रतिशत कोयला टरशियरी क्षेत्र से मिलता है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत में कोयले के दो प्रमुख क्षेत्र किये जा सकते हैं। ये निम्नलिखित हैं :

(१) गोंडवाना कोयला क्षेत्र,
(२) टरशियरी कोयला क्षेत्र।

(१) गोंडवाना कोयला क्षेत्र

यह क्षेत्र गोंडवाना युग की शिलाओं में है। ये अत्यन्त प्राचीन चट्टानें हैं जो दक्षिणी पठार के उत्तर पूरब में हैं। दामोदर नदी की घाटी में ये शिलाएँ अधिक विकसित हुई हैं। गोंडवाना क्षेत्र को अब चार उप-विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

(i) दामोदर घाटी कोयला क्षेत्र—दामोदर घाटी कोयला क्षेत्र के अन्तर्गत रानीगंज, झरिया, गिरडीह, बोकारो तथा करनपुरा क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। इनका विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है :

रानीगंज क्षेत्र—यह क्षेत्र दामोदर घाटी का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह क्षेत्र देश के कुल उत्पादन का लगभग एक तिहाई कोयला प्रदान करता है। इसका अधिकांश क्षेत्र बर्दवान जिले में फैला हुआ है। इस क्षेत्र के कोयले का अनुमानित भण्डार ६०० करोड़ टन है जो कि लगभग ६०० मीटर की गहराई तक प्राप्त हो सकेगा। यहाँ का कोयला जहाजों तथा रेलों के काम में लाया जाता है। इस क्षेत्र की खानें लगभग १,५०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत हैं।

झरिया क्षेत्र—झरिया क्षेत्र में 'बाराकर' श्रेणी का कोयला अधिक मिलता है। यह क्षेत्र देश का लगभग आधा कोयला प्रदान करता है तथा यहाँ के अनुमानित भण्डार ४५० करोड़ टन हैं। यह लगभग ४५५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है। यहाँ के कोयले का उपयोग, कुल्टी, कलकत्ता आसनसोल, जमशेदपुर आदि कारखानों में किया जाता है।

गिरडीह क्षेत्र—इस क्षेत्र का कोयला उत्तम कोटि का है। यह हजारी बाग जिले में फैला हुआ है जिसका क्षेत्रफल लगभग २८ वर्ग किलोमीटर है। यहाँ का कोयला भी 'बाराकर' श्रेणी का है। इनसे उत्तम प्रकार का स्टीम कोक तैयार किया जा सकता है।

बोकारो क्षेत्र—इस क्षेत्र में भी अच्छी किस्म का कोयला मिलता है जिसे कोक बनाने के काम में लिया जाता है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग ५६० वर्ग किलोमीटर है। इस कोयला क्षेत्र को पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

करनपुरा क्षेत्र—बोकारो क्षेत्र के पश्चिम में उससे सटा हुआ ही करनपुरा क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल लगभग १,२०० वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र से देश का लगभग २ प्रतिशत कोयला ही प्राप्त होता है क्योंकि सम्पूर्ण क्षेत्र में कोयला नहीं निकाला जाता है।

(ii) महानदी घाटी कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश राज्यों के क्षेत्र हैं। उड़ीसा में सम्बलपुर व तालचर और मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्र हैं।

(iii) सोन घाटी कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत भी मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा राज्य सम्मिलित हैं। उड़ीसा के कुटार, डाल्टनगंज तथा औरंगा क्षेत्र हैं और मध्य प्रदेश के उमरिया, सोहागपुर तथा सिंगरौली क्षेत्र हैं।

(iv) गोदावरी-वर्धा घाटी क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र के कोयला क्षेत्र सम्मिलित हैं। आन्ध्र प्रदेश के सिंगरेनी, तन्दूर, सस्ती

आदि कोयला मुख्य क्षेत्र हैं और महाराष्ट्र के चांदा, बलारपुर, नागपुर, वरोरा आदि क्षेत्र हैं।

(२) टरशियरी क्षेत्र

टरशियरी क्षेत्र में घटिया किस्म का कोयला पाया जाता है। कुल कोयला उत्पादन का लगभग १.५ प्रतिशत इस क्षेत्र से उपलब्ध होता है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान, असम, कश्मीर तथा मद्रास राज्यों में हैं।

(i) **राजस्थान क्षेत्र**—राजस्थान में पलाना (बीकानेर) में लिगनाइट कोयले की खान हैं। यहां के कोयले की परतें २ मीटर से १० मीटर तक के बीच में हैं किन्तु अधिकांश मोटाई ५ मीटर के आस-पास ही रहती है। यह घटिया किस्म का कोयला है और विशेष काम का नहीं है। अब इसके आधार पर एक ताप बिजली घर के निर्माण के प्रस्ताव पर विचार हो रहा है।

(ii) **जम्मू तथा काश्मीर क्षेत्र**—जम्मू राज्य के दक्षिणी पश्चिमी भाग में कोयले की खानें हैं। प्रमुख खानें कालाकोट, मेटका, महोगला चकर आदि हैं। इनके अतिरिक्त लड्डा तथा धनसाल सवान कोट क्षेत्र भी प्रमुख हैं।

(iii) **असम क्षेत्र**—असम राज्य के शिवसागर तथा लखीमपुर जिलों में कोयले की खानें हैं।

(iv) **मद्रास क्षेत्र**—यह मद्रास राज्य के दक्षिणी अर्काट में है। इस क्षेत्र का लिगनाइट कोयला काफी महत्वपूर्ण है। यहां २१५ मीटर मोटी परत पायी जाती है।

इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश राज्य में भी कोयले के क्षेत्र की जांच की जा रही है।

व्यापार

भारत में कोयले का उत्पादन बहुत अधिक नहीं होने के कारण कम मात्रा में निर्यात किया जाता है। यहां से लंका, जापान, ब्रह्मा, सिंगापुर, तथा कुछ अन्य देशों को कोयले का निर्यात किया जाता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में ४३ करोड़ रुपये के कोयले का निर्यात किया गया। किन्तु तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में २६ करोड़ रुपये का ही निर्यात हुआ। कोयले का निर्यात पड़ोसी देशों को किया जाता है जैसे नेपाल, ब्रह्मा, लंका आदि।

देश में कोयले की मांग उद्योग धन्धों में काफी है। कुल कोयले के उत्पादन का लगभग ४५ प्रतिशत उद्योगों में उपयोग में लाया जाता है, ३० प्रतिशत रेलों तथा शेष २५ प्रतिशत अन्य कार्यों में लाया जाता है। देश के औद्योगिक विकास के साथ कोयले की मांग भी निरन्तर बढ़ती जा रही है इसको ध्यान में रखकर नये कोयले के क्षेत्रों का पता लगाया जा रहा है। इस समय कोयले की ७७४ खानें कार्यशील हैं जिनमें चार लाख व्यक्ति काम पर लगे हुए हैं।

खोदे जा चुके हैं। यहाँ तेल अधिक गहराई पर प्राप्त होता है। तेल के प्रमुख क्षेत्र नहर कटिया, मोरन तथा हुगरीजन हैं। यहाँ से तेल साफ करने के लिए नूनमाटी तथा बरौनी तेल शोधन कारखानों तक नलों द्वारा ले जाया जाता है।

खम्भात क्षेत्र—गुजरात मे खम्भात स्थान पर १९५८ में रूमानियाँ के विशेषज्ञों की सहायता से तेल का पता लगाया गया। यहाँ तेल के वार्षिक उत्पादन का अनुमान १५ लाख टन है। इस क्षेत्र में १,५०० मीटर से भी अधिक गहराई पर तेल प्राप्त है। इस क्षेत्र मे रूमानिया सरकार के सहयोग से एक कारखाना स्थापित किया जा रहा है।

अकलेश्वर क्षेत्र—सन् १९६० में खम्भात से दक्षिण मे नये तेल क्षेत्र की खोज की गयी और एक वर्ष पश्चात् तेल निकालना आरम्भ किया गया। इस क्षेत्र के तेल की किस्म खम्भात के तल की किस्म स अच्छी है। इस क्षेत्र से तेल का वार्षिक उत्पादन २० लाख टन से भी अधिक होने की सम्भावना है। इस क्षेत्र को बम्बई के साथ जोडने के लिए रेलवे का विकास तेज गति से किया जा रहा है। अक्लेश्वर के निकट 'पनोली' के रेलवे स्टेशन का अधिक विकास हो रहा है। तेल उतारने तथा चढाने के लिए इस स्टेशन पर दो यार्ड स्थापित हो चुके हैं।

बादसर क्षेत्र—बादसर क्षेत्र गुजरात मे बडौदा से ६ किलोमीटर दूर है। सन् १९५८ मे यहाँ सर्वप्रथम तेल प्राप्त हुआ जो कि लगभग १७५ मीटर की गहराई पर प्राप्त हुआ। यहाँ के कच्चे खनिज तेल का रग कुछ पीला है। इस क्षेत्र में और अधिक तेल मिलने की निश्चित सम्भावना है।

पजाव क्षेत्र—पजाब में ज्वालामुखी क्षेत्र के अन्तर्गत तेल प्राप्त होने की सम्भावना है। होशियारपुर तथा मण्डी में इस प्रकार की बालू मिट्टी प्राप्त हुई है जिसमे तेल का मिश्रण है। इस क्षेत्र से भी गैस प्राप्त हुई है, भविष्य में तेल मिलने की काफी सम्भावनाएँ हैं।

अन्य क्षेत्र—अन्य क्षेत्रों के अन्तर्गत पश्चिमी बगाल, राजस्थान, जम्मू काश्मीर तथा उत्तर प्रदेश आते हैं जिनमे तेल प्राप्त होने की सम्भावना हैं। पश्चिमी बगाल के बर्दवान जिले म तथा राजस्थान के जैसलमेर जिले में तेल का अनुमान लगाया गया है। काश्मीर के 'मानसर', उत्तर प्रदेश के बदायूँ तथा मद्रास में कावेरी घाटी मे तेल निकालने के सम्बन्धित परीक्षण किये जा रहे हैं।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ तक असम के डिगबोई क्षेत्र में ही तेल प्राप्त होता था। इसके पश्चात् देश के कई क्षेत्रों में तेल के लिए सर्वेक्षण किया गया। 'तेल एव प्राकृतिक गैस कमीशन' (Oil and Natural Gas Commission) के द्वारा देश के अनेक भागों में खोज का कार्य किया गया है और पिछले दस पन्द्रह वर्षों के प्रयत्नों का फल यह हुआ है कि भारत अब महत्वपूर्ण तेल उत्पादक देश बनता जा रहा है।

भारत सरकार की नवीन औद्योगिक नीति के आधार पर खनिज तेल की खोज का उत्तरदायित्व सरकार का है।

खनिज तेल का उत्पादन तथा व्यापार

भारत में खनिज तेल का उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न द्वितीय पंचवर्षीय योजना से चालू किये गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में २६ करोड़ रुपये खनिज तेल विकास कार्यक्रम पर व्यय किये गये। तृतीय योजना में २०२ करोड़ रुपये व्यय किये गये। योजनाओं में उत्पादन निम्न प्रकार हुआ

कच्चे तेल (Petroleum Crude) का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन
१९६०-६१	४·०० लाख टन
१९६५-६६	३०·०० ,,
१९६९-७०	७२·०० ,,
१९७३-७४ (लक्ष्य)	९७·०० ,,

यह उत्पादन भारत में उत्पादित किये जाने वाले कच्चे तेल (crude oil) का है। भारत कच्चा तेल विदेशों से भी आयात करता है जिसे सम्मिलित करते हुए भारत में शुद्ध खनिज तेल उत्पादकों की मात्रा कहीं अधिक है। पेट्रोलियम उत्पादन की कुल मात्रा सन् १९५५ में ३० लाख टन, सन् १९६० में ५७ लाख टन, सन् १९६५ में ९१ लाख टन और सन् १९७० में १८० लाख टन हो चुकी थी जो देश में उत्पादित तथा विदेशों से आयातित क्रूड आयल पर आधारित थी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत में पैट्रोलियम उत्पादनों का लक्ष्य २६० लाख टन का निर्धारित किया गया है जबकि उत्पादन क्षमता २८० लाख टन की हो जायगी। चतुर्थ योजना में इस पर लगभग ३५० करोड़ रुपये व्यय होगा। प्राकृतिक तेल एवं गैस आयोग (ONGC) इसके लिए प्रयत्नशील है। यह आयोग अब तक ७८० तेल कूप खोद चुका है जिनकी कुल गहराई १६.३१ लाख मीटर है। इनमें से ४३९ तेल युक्त (oil bearing) हैं। ६३ कुँओं में प्राकृतिक गैस प्राप्त हुई है, १८२ कुँए तेल-रहित या शुष्क (dry) निकले हैं तथा शेष पर अभी प्रयोग और परीक्षण हो रहे हैं। सन् १९७० के प्रारम्भ में कम्बात की खाड़ी में अलिया बेट (Aliya bet) के निकट उथले 'समुद्रतल में भारत के प्रथम तेल-कूप' का श्रीगणेश किया गया तथा सन् १९७१ के मार्च माह में इससे सफलतापूर्वक तेल निकाला जाने लगा है। भविष्य में समुद्र-तल में और अधिक तेल-कूप खोदे जाने की योजना है।

भारत में तेल सर्वेक्षण, खुदाई तथा तेल शोधन आदि की दिशा में सोवियत रूस तथा रूमानिया का प्रमुख सहयोग मिला है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

भारत में तेलशोधक कारखाने

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक देश में एक तेल शोधक कारखाना था। यह कारखाना बर्मा शैल की सहायक कम्पनी आसाम आयल कम्पनी का था तथा यह डिगबोई

(असम) मे है और इसकी तेल शोधन क्षमता केवल ४ लाख टन है। यह कारखाना उस समय हमारी तेल आवश्यकता के केवल ६·५ प्रतिशत भाग की ही पूर्ति करता था तथा शेष मांग आयात करके पूरी होती थी। प्रथम योजना काल मे भारत मे तीन तेल शोधक कारखानो की स्थापना के समझौते तेल के क्षेत्र म प्रसिद्ध तीन अन्तर-राष्ट्रीय कम्पनियों से किये गये जिनमे से दो प्रथम योजना काल मे तथा तीसरा दूसरी योजना की अवधि मे चालू किय गये। इसके बाद सरकारी एव मिश्रित क्षेत्र मे अनेक तेल शोधक कारखानो की एक पूरी शृखला स्थापित की जा चुकी है। भारत के निजी एव सरकारी क्षेत्र के विभिन्न तल शोधक कारखानो का विवरण निम्न प्रकार है

निजी क्षेत्र (Private Sector)

(१) एस्सो कम्पनी (ESSO) का तेल शोधक कारखाना ट्राम्बे (बम्बई के निकट) मे सन् १९५४ म स्थापित किया गया इसकी उत्पादन क्षमता लगभग २४ लाख टन है।

(२) बर्मा शैल (Burma Shell) का तेल शोधन कारखाना भी ट्राम्बे में सन् १९५५ मे स्थापित हुआ और इसकी तेल शोधन क्षमता २२ लाख टन है।

(३) कैलटेक्स कम्पनी (Caltex) का तेल शोधक कारखाना विशाखा-पत्तनम मे सन् १९५६ मे स्थापित किया गया जिसकी तेल शोधन क्षमता लगभग ६ लाख टन है।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)

(१) नूनमाटी (Nunmati) का तेल शोधक कारखाना असम मे गोहाटी के निकट रूमानिया की तकनीकी सहायता से स्थापित किया गया है। इसकी तेल शोधन क्षमता ७·५ लाख टन है तथा इसमे उत्पादन १९६२ मे प्रारम्भ हुआ।

(२) बरौनी (Barruni) का तेल शोधक कारखाना बिहार मे सोवियत रूस की तकनीकी सहायता से खोला गया है। इसकी उत्पादन-क्षमता ३० लाख टन है। इसमे दस-दस लाख टन के तीन यूनिट हैं—प्रथम यूनिट १९६४ में, द्वितीय यूनिट १९६६ में तथा तृतीय यूनिट १९६९ मे चालू किया गया है।

(३) कोयली (Koyali) का तेल शोधक कारखाना गुजरात मे बडोदा के निकट स्थापित किया गया है। इसमे भी सोवियत रूस का तकनीकी सहयोग प्राप्त हुआ है। इसकी उत्पादन क्षमता ३० लाख टन है। इसमे भी दस दस लाख टन की यूनिट हैं—प्रथम यूनिट १९६५, द्वितीय १९६६ और तृतीय १९६७ मे चालू किया गया। इसकी उत्पादन क्षमता ४५ लाख टन तक बढाने का प्रश्न विचाराधीन है।

उपर्युक्त तीनो कारखाने भारतीय तेल निगम (Indian Oil Corporation) के द्वारा सचालित होते हैं। प्रथम दो कारखाने असम के कच्चे तेल का और तीसरा कारखाना खम्भात से कच्चे तेल का उपयोग करते हैं। नहर कटिया से नूनमाटी तक

और नहूमाटी से बरौनी तक तेल की पाइप लाइन बनायी गयी है। बरौनी से हल्दिया (कलकत्ता) तक और बरौनी से कानपुर तक भी पाइप लाइनों का निर्माण कर दिया गया है। गुजरात में भी पाइप लाइनों का निर्माण किया गया है। आगे इन पाइप लाइनों को दिल्ली तक बढ़ाया जा सकेगा। इससे तेल के परिवहन की समस्या हल होगी।

(४) कोचीन (Cochin) का तेल शोधक कारखाना भारत सरकार तथा अमरीका की फिलिप्स पेट्रोलियम कम्पनी का संयुक्त प्रयास है। इसकी उत्पादन क्षमता २५ लाख टन है। इसमें उत्पादन सन् १९६७ से प्रारम्भ किया गया। इसमें ईरान से कच्चा तेल मँगाकर साफ किया जाता है। इसकी क्षमता सन् १९७२ तक ३५ लाख टन तक बढ़ाने का प्रस्ताव है।

(५) मद्रास (Madras) का तेल शोधक कारखाना भारत सरकार ईरान की नेशनल आयल कम्पनी तथा अमरीका की एमोको (Emoco) का संयुक्त प्रयास है। यह मद्रास के निकट मनाली में स्थापित किया गया है और इसकी क्षमता २५ लाख टन की है। इसमें उत्पादन १९६९ से प्रारम्भ हुआ।

(६) हल्दिया (Haldia) का तेल शोधक कारखाना भारत सरकार, ईरान एवं रूमानिया तथा फ्रांस की कुछ तेल कम्पनियों का संयुक्त प्रयास है। इसका निर्माण भारतीय तेल निगम के अन्तर्गत हो रहा है। इसकी क्षमता २५ लाख टन की होगी और उत्पादन सन् १९७२ तक प्रारम्भ हो जायगा।

उपर्युक्त कारखानों के अतिरिक्त कानपुर एवं दिल्ली में भी तेल शोधक कारखानों की स्थापना पर विचार किया जा रहा है।

जल-विद्युत शक्ति
(Water Power)

अन्य साधनों की तुलना में जल विद्युत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जल-विद्युत शक्ति अन्य साधनों की अपेक्षा सस्ती होती है तथा इसको सुदूर स्थानों तक ले जाने में विशेष कठिनाई नहीं होती। आरम्भ में संयन्त्र को लगाने तथा तार लाइनें बिछाने के पश्चात् विशेष समस्या नहीं रहती है। इस शक्ति के साधन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह समाप्त नहीं होती। जब तक देश में नदियों में जल मिलता रहेगा तब तक इसका उत्पादन होता रहेगा। यह शक्ति का स्थायी स्रोत है। इसके विपरीत कोयले एवं खनिज तेल के भण्डार सीमित हैं और एक समय ऐसा आ सकता है जब ये इतने दुर्लभ हो जायँ कि उनकी उपयोगिता प्रायः समाप्त ही हो जाय और शक्ति के अन्य वैकल्पिक साधनों पर अधिक निर्भर रहा जाय। जल विद्युत शक्ति हमारे समक्ष इस समस्या का सर्वोत्तम विकल्प प्रस्तुत करती है।

तुलनात्मक लाभ

जल विद्युत के आविष्कार से औद्योगिक क्षेत्र में काफी उन्नति हुई है। कोयला

तथा पेट्रोल की सीमित मात्रा होने के कारण तथा अधिक खर्चा होने के कारण जल विद्युत का महत्व काफी बढ गया। जल विद्युत से कुछ विशेष लाभ प्राप्त हैं; जो निम्न प्रकार हैं :

(१) स्थायी स्रोत—जब तक पृथ्वी पर जल की धाराएँ बहती रहेंगी, जल विद्युत शक्ति उपलब्ध होती रहेगी। कोयला तथा पेट्रोलियम एक रोज समाप्त हो जायेंगे किन्तु जल विद्युत निरन्तर मिलती रहेगी। अतः इसे शक्ति का स्थायी स्रोत कहा जाता है।

(२) असीमित पूर्ति—नदियो के जल मे कमी आने की कोई सम्भावना नहीं है। भारत मे हिमालय से निकलने वाली नदियाँ वर्ष भर बहती हैं जिनसे असीमित मात्रा मे शक्ति उत्पादित की जा सकती है। वर्षा भी हमेशा होती रहेगी अतः वर्षा से बहने वाली नदियो से भी निरन्तर विद्युत उत्पन्न की जाती रहेगी। कोयला तथा खनिज तेल के एक बार उपयोग के पश्चात ये समाप्त हो जाते है।

(३) अधिक सस्ती—जल-विद्युत शक्ति कोयला तथा खनिज तेल से अधिक सस्ती है। अधिक सस्ती होने के कारण उत्पादन लागत मे कमी होती है और औद्योगिक विकास को सहायता मिलती है। एक बार विद्युत प्लांट लगाने तथा लाइनें बिछा देने के पश्चात् लम्बे समय तक सस्ती विद्युत प्राप्त की जा सकती है।

(४) स्वस्थ एवं स्वच्छता—विद्युत शक्ति धुएँ से मुक्त होती है अतः इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता जबकि कोयले तथा पेट्रोल से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। विद्युत को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में भी गन्दगी नहीं फैलती है। कोयले को अन्यत्र भेजने पर और उसे रखने पर गन्दगी फैल जाती है।

(५) वितरण में कम व्यय—विद्युत के वितरण मे कोयले तथा पेट्रोल की अपेक्षा कम व्यय होता है। विद्युत लाइनें एक बार डालने के पश्चात् काफी समय तक काम देती हैं और सुगमता से बहुत ही कम व्यय मे विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकती है। इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में समय भी कम लगता है।

(६) गति में वृद्धि—यातायात के साधनो की गति मे जल विद्युत के उपयोग से काफी वृद्धि की जा सकती है। रेल गाडियों की गति बढाने मे इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(७) औद्योगिक विकास—वृहत उद्योगों के विकास के लिए जल-विद्युत आजकल आवश्यक हो गयी है। जल विद्युत सस्ती होने के कारण तथा अधिक शक्ति प्राप्त होने के कारण औद्योगिक विकास की गति बढायी जा सकती है। जिन भागों मे कोयले के क्षेत्र नही हैं वहाँ पर भी औद्योगिक विकास किया जा सकता है।

(८) कृषि विकास—आजकल कृषि विकास मे भी जल विद्युत का महत्वपूर्ण योगदान है। कुँओ के द्वारा सिंचाई करने के लिए जल विद्युत सबसे उत्तम

शक्ति का साधन है । जल विद्युत सस्ती होने के कारण तथा काफी मात्रा में उपलब्ध होने के कारण अधिक क्षेत्र में सिंचाई की जा सकती है ।

(६) अन्य—आजकल जल विद्युत का उपयोग कुटीर उद्योगों में भी किया जाने लगा है । कोयले तथा पेट्रोल से शक्ति उत्पन्न करने पर आसपास का वातावरण गर्म हो जाता है । जल विद्युत से ऐसा नहीं होता ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था में जल-विद्युत का महत्वपूर्ण योगदान है । देश में कोयले तथा पेट्रोल के सीमित भण्डार हैं । इनका उपयोग अधिक खर्चीला है अतः जल विद्युत महत्वपूर्ण है । कृषि, उद्योग तथा यातायात में इसके द्वारा समस्त देश में विकास करना सरल हो गया है ।

जल-विद्युत के विकास के लिए अनुकूल दशाएँ

जल विद्युत के विकास के लिए भौतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का अनुकूल होना आवश्यक है । ये परिस्थितियाँ निम्न प्रकार हैं

(१) **अनुकूल जल प्रवाह**—जल-विद्युत के विकास के लिए जल-प्रवाह में वेग, निरन्तर प्रवाह तथा पर्याप्त जल, तीनों विशेषताएँ होनी चाहिए । वेग धरातल के ढाल पर आधारित होता है । तीव्र-प्रवाह वाला जल-प्रवाह विद्युत उत्पादन में अनुकूल होता है । जल का निरन्तर प्रवाह भी जल विद्युत विकास का आवश्यक तत्व है । भारत में उत्तरी भारत की नदियों में जल-प्रवाह निरन्तर रहता है । इसके अतिरिक्त जल-प्रवाह की मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिए ।

(२) **धरातल की बनावट**—जल-विद्युत का उत्पादन धरातल की बनावट पर काफी निर्भर होता है । जिन भागों में प्राकृतिक झरने या प्रपात होते हैं वहाँ आसानी से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है । किन्तु जिन क्षेत्रों में कृत्रिम झरने बनाकर विद्युत उत्पन्न की जाती है तो वहाँ अधिक व्यय करना पड़ता है । प्राकृतिक प्रपात एवं ऊँचा-नीचा ढाल नदी पर बाँध बनाने का अनुकूल स्थान माना जाता है ।

(३) **शक्ति के अन्य साधनों की कमी**—जिन भागों में शक्ति के अन्य साधनों की कमी पायी जाती है उन भागों में जल-विद्युत का अधिक विकास होता है । भारत में भी जिन क्षेत्रों में कोयला तथा पेट्रोल के क्षेत्र हैं वहाँ जल-विद्युत अधिक मात्रा में नहीं पैदा की जाती है क्योंकि शक्ति कोयले तथा पट्रोल से प्राप्त कर ली जाती है। किन्तु उत्तर-पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में जल-विद्युत का उपयोग अधिक किया जाता है ।

(४) **पर्याप्त पूँजी**—जल-विद्युत विकास के लिए आरम्भ में अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है । जल विद्युत शक्ति की बहुत योजनाओं में करोड़ों रुपये की पूँजी विनियोजित की गयी है । किन्तु एक बार पूँजी लगाने के बाद इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे भविष्य में अधिकाधिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है । पूँजी के अभाव में जल-विद्युत का विकास नहीं हो पाता है । यही कारण है कि भारत में अभी तक अपनी कुल जल-उत्पादन क्षमता के केवल दस प्रतिशत भाग का

ही उपयोग किया है। भविष्य में जैसे-जैसे विकास के साथ-साथ शक्ति की माँग मे वृद्धि होती जायगी और पर्याप्त पूँजी की सुविधा होती जायगी भारत अपनी अप्रयुक्त जल उत्पादन क्षमता का विकास करता जायगा।

(५) प्राविधिक ज्ञान—जल विद्युत के विकास के लिए प्राविधिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। जिन देशों मे इसका अभाव है तथा ज्ञान का विस्तार नहीं हो पाया है, वहाँ इसका विकास सम्भव नहीं है। विद्युत उत्पादन से लेकर वितरण तक का कार्य प्राविधिक ज्ञान के द्वारा किया जाता है।

उपरोक्त परिस्थितियो के अनुकूल होने पर जल-विद्युत का पर्याप्त विकास किया जा सकता है। भारत मे नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत जल-विद्युत उत्पादन कार्य किया जाता है। भारत में अनेक स्थानों पर भौतिक परिस्थितियाँ अनुकूल हैं अत इसका विकास किया जा रहा है जिससे देश की आर्थिक प्रगति में काफी वृद्धि हुई है।

भारत मे पंचवर्षीय योजनाओं में विद्युत का विकास

भारत में पचवर्षीय योजनाओं मे जल-विद्युत उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। यहाँ जल-विद्युत की सुरक्षित निधि का अनुमान ४११ करोड किलोवाट लगाया गया है जिसमे से विकास केवल ७७ लाख किलोवाट का हो पाया है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे कई वृहत जल विद्युत परियोजनाओं को हाथ में लिया गया जिनके परिणाम स्वरूप इस काल मे १० लाख किलोवाट की वृद्धि हुई। दूसरी पचवर्षीय योजना में जल विद्युत के विकास की तरफ अधिक ध्यान दिया गया। दूसरी तथा तीसरी योजना के अन्त तक कुल विद्युत उत्पादन क्षमता क्रमशः २० व ४० लाख किलोवाट हो गयी। वर्ष १९७०-७१ में जल-विद्युत उत्पादन क्षमता ७७ लाख किलोवाट होने का अनुमान लगाया गया है। चतुर्थ योजना के अन्तिम वर्ष (१९७३-७४) का लक्ष्य ९३ लाख किलोवाट जल विद्युत उत्पादन का है। उल्लेखनीय है कि यह लक्ष्य केवल जल-विद्युत का है। इसके अतिरिक्त देश में कोयला, डीजल एव अणुशक्ति से भी विद्युत उत्पादन होता है। चतुर्थ योजना मे इन सब प्रकार की विद्युत शक्ति का उत्पादन लक्ष्य २३० लाख किलोवाट का है।

पिछले बीस वर्षों मे विद्युत उत्पादन में प्रगति

(लाख किलोवाट)

शक्ति के प्रकार	१९५१	१९५६	१९६१	१९६६	१९७१
१. जल-विद्युत	५·६	९ ४	१९ २	४१·४	७६ ८
२. कोयला ताप-विद्युत	१५ ९	२२ ७	३४ ३	५६·१	१४ ७
३. डीजल ताप विद्युत	१ ५	२ १	३ ०	४ २	२ ७
४ परमाणु विद्युत	—	—	—	—	५·८
योग	२३ ०	३४ २	५६·५	१०१·७	२००·०

विद्युत विकास पर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय योजनाओं में क्रमशः २०२, ५२५ तथा १,२६२ करोड़ रुपये व्यय किये गये। तीन वार्षिक योजनाओं (१९६६ से ६९ तक) में लगभग १,१८२ करोड़ रुपये व्यय हुये। चतुर्थ योजना में लगभग २,४४७.५ करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान रखा गया है।

जलविद्युत योजनाएँ

भारत में प्रमुख जल विद्युत परियोजनाएँ निम्नलिखित हैं

(१) मचकुण्ड परियोजना (आन्ध्र प्रदेश)—*यह परियोजना आन्ध्र प्रदेश तथा* उड़ीसा राज्यों का संयुक्त साहस है। यहाँ जल विद्युत मचकुण्ड नदी पर बाँध बना कर पानी इकट्ठा करके उत्पन्न की जाती है। इस परियोजना के अन्तर्गत ३ विद्युत उत्पादन इकाइयाँ, जिनमें प्रत्येक की क्षमता १७,००० किलोवाट है, और तीन अन्य विद्युत इकाइयाँ, जिनमें प्रत्येक की क्षमता २१,२५० किलोवाट है, स्थापित की गयी हैं। वर्तमान समयमें इन ६ विद्युत उत्पादन इकाइयों की क्षमता १,४७,७५० किलोवाट है।

(२) मेंटूर जल-विद्युत परियोजना (मद्रास)—कावेरी नदी पर बाँध बनाकर इसको कार्यान्वित किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत चार विद्युत उत्पादन इकाइयाँ स्थापित की गयी हैं। प्रत्येक इकाई की उत्पादन क्षमता ५० मेगावाट है।

(३) पाइकारा योजना (मद्रास)—पाइकारा नदी पर १९३२ में बाँध बनाया गया है। जल को ९४५ मीटर की ऊँचाई से गिराकर विद्युत उत्पन्न की जा रही है। इसकी उत्पादन क्षमता इस समय ७० हजार किलोवाट है। इस परियोजना के पूर्ण हो जाने पर उत्पादन क्षमता १ लाख किलोवाट तक बढ़ायी जा सकेगी।

(४) पापानासम परियोजना (मद्रास)—यह योजना १९३८ में तैयार की गयी। तिरुनवेली जिले ताम्रपर्णी नदी के जल-प्रपात से विद्युत तैयार की जाती है। इस प्रपात के १० मीटर ऊपर एक बाँध का निर्माण किया गया है जिससे १,५४० घनमीटर पानी रोका जा सकता है। इसकी विद्युत उत्पादन क्षमता २८ हजार किलोवाट है।

(५) कोयना परियोजना (महाराष्ट्र)—कोयना नदी पर बाँध बना कर विद्युत उत्पादन की जाती है। *यह योजना बम्बई तथा पूना की विद्युत आवश्यकताओं* को पूर्ण करने के लिए चालू की गयी है। बाँध के नीचे विद्युत गृह की स्थापना की गयी है जिसमें चार विद्युत सयन्त्र हैं। प्रत्येक की विद्युत उत्पादन क्षमता ६० मेगावाट है। इस परियोजना को तीन चरणों में पूरा किया जायगा। तीन चरणों में चार-चार विद्युत सयन्त्र स्थापित किये जाने का प्रावधान है।

(६) शरावती जल-विद्युत योजना (मैसूर)—इस योजना को तीन चरणों में पूरा किया जायगा। प्रथम चरण में बाँध, जलाशय तथा दो विद्युत उत्पादन इकाइयों की स्थापना की जा चुकी है। प्रत्येक इकाई की उत्पादन क्षमता ८९.१ मेगावाट है। द्वितीय चरण में ६ विद्युत उत्पादन की इकाइयाँ तथा तृतीय चरण में २ विद्युत इकाइयाँ स्थापित की जायेंगी। प्रत्येक इकाई की क्षमता ८९.१ मेगावाट होगी।

(७) इडीकी जल-विद्युत योजना (केरल)—केरल राज्य में पेरियर नदी पर विद्युत उत्पन्न करने की योजना है। इस पर अनुमानित व्यय ६८ करोड रुपये होगा। इस योजना के अन्तर्गत तीन विद्युत उत्पादक की स्थापना की जायेगी। प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १३० मेगावाट होगी। इनके अतिरिक्त इतनी ही उत्पादन क्षमता की तीन अन्य इकाइयों की स्थापना भी की जायेगी। विद्युत उत्पादन की प्रथम इकाई १९७०-७१ में चालू की जायगी। यह परियोजना केनाडा की सहायता से पूर्ण की जायेगी।

(८) बाली मेला बांध जल विद्युत परियोजना (उडीसा)—यह परियोजना उडीसा तथा आन्ध्र प्रदेश की सयुक्त योजना है। योजना म ६ विद्युत उत्पादन इकाइयाँ (प्रत्येक ६० मेगावाट की) स्थापित की जायेंगी। चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त तक यह परियोजना पूर्ण हो जायेगी।

(९) यमुना जल-विद्युत योजना (उत्तर प्रदेश)—यह परियोजना दो चरणों मे पूरी की जायगी। प्रथम चरण म १६ ८३ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है तथा द्वितीय चरण में ५४ ५२ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। दोनों चरणों मे दो-दो विद्युत उत्पादन गृह बनाये जा रहे हैं।

(१०) रिहन्द बांध परियोजना (उत्तर प्रदेश)—रिहन्द बांध के नीचे एक विद्युत गृह का निर्माण किया गया है जिसम ५ इकाइयाँ स्थापित की जा रही हैं। प्रत्येक की उत्पादन क्षमता ५० मेगावाट है।

(११) श्री सैलम जल विद्युत परियोजना (आन्ध्र प्रदेश)—आन्ध्र प्रदेश मे कृष्णा नदी पर एक बांध बनाने की योजना तैयार की गयी है जिसके नीचे चार विद्युत उत्पादक इकाइयाँ स्थापित करने की योजना है। इनके पश्चात् तीन अन्य विद्युत उत्पादक इकाइयाँ स्थापित की जायेंगी। इस योजना पर अनुमानित व्यय ३८ ४८ करोड रुपये होगा।

(१२) दामोदर घाटी योजना—यह विहार तथा बगाल की योजना है। इसकी प्रथम चरण की जल विद्युत क्षमता १०४ हजार किलोवाट है। इस चरण मे तीन शक्ति गृहों का निर्माण किया गया है।

(१३) भाखरा नागल परियोजना—इस परियोजना से पजाब, हरियाना तथा राजस्थान को विद्युत शक्ति प्राप्त होनी है। नागल जल विद्युत नहर पर तीन विद्युत गृह बनाने की योजना है। दो विद्युत गृह लगाये जा चुके हैं जिनकी विद्युत उत्पादन क्षमता १ ५ लाख किलोवाट है। तृतीय विद्युत गृह रोपड के पास बाद मे लगाया जायेगा। भाखरा बांध के नीचे दो विद्युत गृह पूर्ण हो चुके हैं।

(१४) हीराकुण्ड योजना (उडीसा)—यह योजना तैयार हो चुकी है। इस योजना के अन्तर्गत बांध के निकट विद्युत शक्ति गृह बनाया गया है जिसकी क्षमता १२३ हजार किलोवाट है। इसमे ४ विद्युत उत्पादक सयन्त्र लगाये गये हैं।

(१५) कोसी योजना (बिहार)—इस योजना के अन्तर्गत ४ विद्युत इकाइयाँ स्थापित की जा रही हैं। इनसे २० हजार किलोवाट विद्युत का उत्पादन हो सकेगा।

(१६) तुंगभद्रा योजना—यह योजना मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश की है। इसम बाँध के दोनों तरफ एक-एक विद्युत गृह हैं जिनमें ८ विद्युत यन्त्र लगाये जायेंगे। कुल विद्युत उत्पादन क्षमता ७२ हजार किलोवाट होगी।

(१७) चम्बल योजना—यह मध्यप्रदेश तथा राजस्थान की योजना है। इस योजना में गांधी सागर बाँध, राणा प्रताप सागर बाँध तथा कोटा बाँध के साथ-साथ तीन जल विद्युत गृहों का निर्माण किया जा रहा है। सम्पूर्ण योजना से २१० मेगावाट विद्युत उत्पादित हो सकेगी।

भारत में जल विद्युत का विकास बड़े नगरों में अधिक हुआ है। धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में भी विकास किया जा रहा है। मार्च सन् १९७० तक देश के ८५,८५९ नगरों एवं गाँवों में विद्युतीकरण का कार्य पूरा हो चुका था जिनमें लगभग २,२०० नगर और शेष ग्राम थे। सन् १९६६ के बाद ग्रामीण विद्युतीकरण करने का कार्य तीव्रता से हुआ है ताकि सिंचाई के लिए नलकूप एवं पम्पसेट आदि लगाये जा सकें। चौथी योजना में यह कार्य और भी अधिक तीव्रता से होगा। इसके लिए १५० करोड़ रुपये की पूँजी से एक ग्रामीण विद्युतीकरण निगम (Rural Electrification Corporation) की स्थापना की गयी है।

अणु शक्ति
(Atomic Energy)

अणु शक्ति यान्त्रिक शक्ति का नवीनतम साधन है। अणु से कम भार से बहुत अधिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। अणु भट्टी (Nuclear Furnace) को गर्म करने के लिए थोड़ा सा यूरेनियम खर्च किया जाता है। एक पौण्ड यूरेनियम के विश्लेषण से इतनी शक्ति तैयार हो सकती है जितनी २५ लाख टन कोयले को जलाने से उत्पन्न हो सकती है। भविष्य में इस शक्ति का प्रयोग उद्योग तथा यातायात में किया जा सकेगा। अणु शक्ति के विकास के लिए यूरेनियम, थोरियम, बेरीलियम, जिरकोनियम आदि खनिजों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में ये खनिज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

प्राकृतिक ईंधन के अभाव में भारत में अणुशक्ति का विकास तेज गति से किया जायगा। भारत सरकार ने 'अणुशक्ति आयोग' (Atomic Energy Commission) की स्थापना की है।

भारत में महाराष्ट्र में तारापुर नामक स्थान पर भारत का प्रथम अणुशक्ति केन्द्र स्थापित किया गया है। इसमें दो रिएक्टर लगाये गये हैं। प्रत्येक रिएक्टर की क्षमता १९० मेगावाट शक्ति उत्पन्न करने की है। इसमें सन् १९६९ से विद्युत उत्पादन चालू किया गया। द्वितीय संयन्त्र राजस्थान में राणाप्रताप सागर बाँध के

निकट लगाया जा रहा है जिसकी शक्ति उत्पादन क्षमता २०० मेगावाट होगी। इसमे काम लगभग पूरा हो चुका है और १९७१ के अन्त तक यह चालू हो जायगा। आगे इस केन्द्र मे २०० मेगावाट का दूसरा यूनिट सन् १९७३ तक लग जायगा। तीसरा अणुशक्ति केन्द्र तमिलनाडु के कलपक्कम नामक स्थान पर बन रहा है। इसमे दो यूनिट होगी। पहला यूनिट (२०० मेगावाट का) सन् १९७३-७४ तक चालू होगा तथा इतनी ही क्षमता का दूसरा यूनिट पाँचवी योजना की अवधि मे प्रारम्भ किया जायगा।

इसके अतिरिक्त चौथे परमाणु बिजली घर के निर्माण का भी प्रस्ताव है। इसके लिए प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए चौथी योजना मे १५ करोड रुपये का प्रावधान रखा गया है। इसके स्थान का चुनाव अभी नही किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से भारत के विभिन्न शक्ति के स्रोतो की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। विभिन्न साधनो के सापेक्षिक महत्त्व को देखने से पता चलता है कि देश मे सभी साधनो का सन्तुलित विकास आवश्यक है। हाल ही में अणुशक्ति विकास का एक दस वर्षीय कार्यक्रम बनाया गया है जिस पर लगभग १,२५० करोड रुपये का व्यय होगा और यह कार्यक्रम सन् १९८० तक पूरा हो जायगा। इसके अन्तर्गत भारत मे चार अतिरिक्त आणविक विद्युतगृहो की स्थापना की जायगी। इसके पूरा होने पर भारत को लगभग २,७०० मेगावाट अणु बिजली उपलब्ध होने लगेगी।

प्रश्न

१. भारत मे किस सीमा तक खनिज तेल के साधनो की खोज की गयी है ? भविष्य की सम्भावनाओ पर विचार कीजिए। (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६०)

२. खनिज तेल का आर्थिक महत्त्व बताइए। भारत म खनिज तेल स्रोतो का वर्णन कीजिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कच्चे व शुद्ध तेल की कमी को पूरा करने के लिए क्या प्रयत्न किये गये हैं ? (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६६)

३. भारत मे जल विद्युत के विकास के तत्वो की विवेचना कीजिए। जल विद्युत शक्ति के आर्थिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए। (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६५)

४. भारत की आर्थिक सम्पन्नता के लिए कौनसा अधिक आवश्यक है, सिंचाई अथवा शक्ति ? देश के आर्थिक ढाँचे और प्राकृतिक साधनो को ध्यान में रखते हुए वैद्धिक उत्तर देने का प्रयास कीजिए। (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६४)

५ "राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिए पर्याप्त मात्रा म सस्ती तथा स्वचालित शक्ति का होना आवश्यक है।" इस सन्दर्भ मे भारत में प्राप्त शक्ति के साधनो की विवेचना कीजिए।

६. भारतवर्ष में शक्ति के कौन-कौन से साधन पाये जाते हैं ? इनमें से किसी एक साधन का पूर्ण रूप से वर्णन देते हुए उसकी समस्याओं को लिखिए और समस्याओ को दूर करने का सुझाव भी दीजिए।

(राजस्थान, टी० डी० सी०, १९७१)

अध्याय १४

धरातल एवं प्राकृतिक साधन

(SURFACE FEATURES & NATURAL RESOURCES)

राजस्थान की महानता का गौरवपूर्ण इतिहास सदियों पुराना है। अनेक छोटी-बड़ी रियासतों के विलीनीकरण के परिणामस्वरूप राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ है। १७ मार्च, १९४८ से १ नवम्बर, १९५६ तक राजपूताना की उन्नीस देशी रियासतों तथा तीन ठिकानों का विलय हुआ। १९५६ के राज्य पुनर्संगठन अधिनियम के अन्तर्गत सम्पूर्ण राजस्थान एक राज्य के रूप में भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग हो गया। अजमेर क्षेत्र को राजस्थान राज्य में विलीन कर दिया गया। इस प्रकार राजस्थान के एकीकरण की जो प्रक्रिया सन् १९४८ में प्रारम्भ हुई थी, वह सम्पूर्ण हो गयी। भूतपूर्व रियासतों में आर्थिक साधनों का अभाव था। ब्रिटिश शासन काल में भी इसका आर्थिक विकास नहीं हो पाया। एक धनी राज्य होते हुए भी यहाँ की अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई रही। प्राकृतिक साधनों का समुचित विकास नहीं हो पाया। इनके विकास के लिए आर्थिक नियोजन अत्यन्त आवश्यक समझा गया तथा सन् १९५१ के बाद इस दिशा में प्रयत्न किये गये। इस काल में राजस्थान के विकास की सम्भावनाएँ बढ़ी हैं। राजनैतिक दृष्टि से इस राज्य को एक स्थायी तथा अच्छा नेतृत्व मिला है। जिससे पिछली पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में कृषि उद्योग तथा व्यावसायिक गतिविधियों में उन्नति हुई है। शिक्षा तथा सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ है। औद्योगीकरण के लिए पिछले १५ वर्षों में एक अच्छा वातावरण बनाया गया है। औद्योगीकरण के मार्ग में आने वाले बाधक तत्वों पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त की जा रही है। राज्य में सड़क यातायात और विद्युत उत्पादन का पर्याप्त विकास हो चुका है। इससे राज्य के भावी औद्योगीकरण का मार्ग सरल होता जा रहा है।

स्थिति एवं विस्तार

राजस्थान उत्तरी भारत के पश्चिम में स्थित है। इसके पश्चिमोत्तर में पाकिस्तान, उत्तर में पंजाब, उत्तर-पूर्व में हरियाणा तथा दिल्ली, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में मध्य प्रदेश एवं दक्षिण-पश्चिम में गुजरात राज्य स्थित हैं। यह २३°३' तथा ३०°१२' उत्तरी अक्षांश रेखाओं (North Longitudes) तथा ६९°३०' और

७८°१७′ पूर्वी देशान्तर रेखाओं (*East Longtitudes*) के मध्य रेखागणित के विषम कोण चतुर्भुज आधार का है। इसका क्षेत्रफल ३,४२,२७४ वर्ग किलोमीटर है जो देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग १२ २% है। इस दृष्टि से भारत के राज्यों में इसका द्वितीय स्थान है। राजस्थान की सीमा पाकिस्तान की सीमा के लगभग १,१२० किलोमीटर तक मिली होने के कारण इसका अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व भी है।

प्रशासनिक विभाग

प्रशासन व्यवस्था के आधार पर राजस्थान को ५ डिवीजनों तथा २६ जिलों में बाँटा गया है। सन् १९६१ के पश्चात से प्रत्येक जिले का जिलाधीश ही शासन
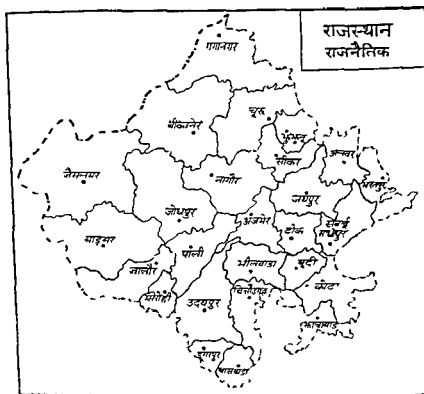
व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है। इससे पहले विभागों के लिए पृथक कमिश्नर होते थे। प्रशासनिक डिवीजन निम्न प्रकार हैं:

(१) अजमेर डिवीजन

इसमें अजमेर, जयपुर, अलवर, भरतपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, सीकर तथा झुंझुनूं हैं।

(२) बीकानेर डिवीजन

इसमें बीकानेर, गंगानगर तथा चूरू के तीन जिले हैं।

(३) जोधपुर डिवीजन

इसमें जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, जालौर, नागौर, पाली, सिरोही जिले हैं।

(४) कोटा डिवीजन

इसमें कोटा, बूँदी तथा झालावाड़ के जिले सम्मिलित हैं।

(५) उदयपुर डिवीजन

इसमें उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा चित्तौड़गढ़ तथा भीलवाड़ा के जिले सम्मिलित हैं।

(१) प्राकृतिक साधन

राजस्थान को अरावली पहाड़ दो भागों में बाँटता है। इसकी पर्वतमालाएँ राज्य को चीरती हुई दक्षिण-पश्चिम से उत्तर पूर्व तक फैलती चली गयी हैं।
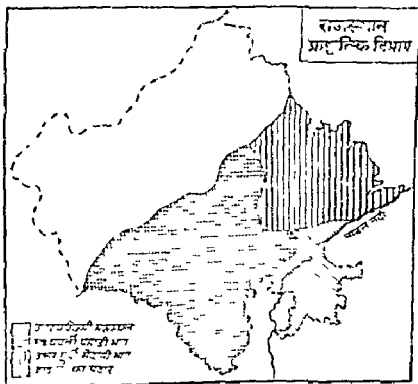
अरावली द्वारा बनाया गया उत्तरी पश्चिमी भाग 'थार का रेगिस्तान' है तथा दक्षिणी पूर्वी भाग उपजाऊ मैदान और पठार है। रेगिस्तान से दक्षिणी-पूर्वी भाग को बचाने के लिए ये पर्वतमालाएँ ढाल का काम करती है। 'थार के रेगिस्तान' में जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर आदि के रेतीले भाग है। वास्तव में, देखा जाय तो राजस्थान में

बहुत प्राकृतिक विभिन्नताएँ हैं। कहीं पर्वत-श्रेणियाँ हैं तो कहीं रेतीले टीले तथा कहीं प्राकृतिक झीलें हैं।

भूमि की बनावट के अनुसार राजस्थान को चार प्राकृतिक विभागों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) उत्तरी पश्चिमी मरुस्थल,
(२) मध्य की अरावली पहाड़ियाँ,
(३) उत्तर-पूर्वी मैदान, तथा
(४) दक्षिण-पूर्वी पठार।

इन विभागों का संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है :

(१) उत्तर पश्चिमी मरुस्थल

अरावली के उत्तर पश्चिमी भाग में पाकिस्तान की सीमा तक थार का रेगिस्तान है। इसमें बीकानेर, बाड़मेर, चूरू, गंगानगर, जोधपुर, जैसलमेर और नागौर जिले सम्मिलित हैं। इस भाग का क्षेत्रफल राजस्थान का करीबन ६०% है। बीकानेर, जैसलमेर तथा बाड़मेर आदि क्षेत्रों में बालू मिट्टी के टीले हैं। गर्मियों के दिनों में यहाँ आंधियाँ आती हैं, तथा बहुत गर्मी पड़ती है। इस क्षेत्र की एक विशेषता यह है कि यहाँ गर्मियों में रातें सुहावनी हो जाती हैं। दिन में अधिक गर्मी होते हुए भी रात ठण्डी हो जाती है। वर्षा का इस भाग में सर्वथा अभाव रहता है। सर्दियों के दिनों में सर्दी अधिक पड़ती है। जलवायु अधिक विषम है तथा गर्मी-सर्दी तथा दिन-रात का तापान्तर (Range of Temperature) बहुत अधिक है। उत्तर से पश्चिम की तरफ की वर्षा क्रमशः कम होती जाती है। औसत वर्षा १० से० मी० होती है। कई वर्षों में तो इन भागों में वर्षा होती ही नहीं है। सन् १९६८ में बीकानेर तथा बाड़मेर में वर्षा बहुत ही कम हुई। इस क्षेत्र में लूनी तथा इसकी सहायक जोंजरी, सूकड़ी, जवाई, बाड़ी, लिलरी तथा बूहीया नदियाँ हैं। इसके अलावा साभर, पचभद्रा, डीडवाना, आदि नमक की झीलें हैं। यहाँ की मुख्य फसलें बाजरा, मूंग, मोठ, दालें, तिल, ग्वार आदि हैं। पशु सम्पत्ति में, भेड़-बकरियाँ, नागौरी बैल, सांचोरी गाय, घोड़े तथा ऊँट पाये जाते हैं। पीने के पानी का अभाव रहता है। कई क्षेत्रों में खारा पानी पाया जाता है। कुएँ बहुत गहरे होते हैं जिनमें पानी २०० फीट से ५०० फीट पर मिलता है। यह क्षेत्र राजस्थान की ३०% आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। जीविकोपार्जन के लिए लोगों को कठिन मेहनत करनी पड़ती है।

(२) मध्यवर्ती पहाड़ी भाग

अरावली पहाड़ियाँ राजस्थान को दो हिस्सों में बाँटती हैं। इनकी लम्बाई करीब ६९० किलोमीटर है जो सिरोही से दिल्ली के नजदीक तक चली गयी है। अरावली पहाड़ प्राचीन पर्वत माना जाता है। भूगोलशास्त्रियों का मत है कि प्राचीन काल में ये बहुत ऊँचे थे पर धीरे धीरे प्राकृतिक शक्तियों द्वारा घिसकर नीचे हो गये

है। इनकी औसत ऊँचाई ६१४ मीटर है। ये पहाड़ियाँ सम्पूर्ण राजस्थान के ९ ३% भाग मे फैली हुई हैं। यहाँ की ऊँची चोटियाँ निम्नलिखित हैं .

चोटियाँ	ऊँचाई
(१) गुरु शिखर	१,७२२ मीटर
(२) कुम्भलगढ	१,२८४ ,,
(३) जरगा	१,३१० ,
(४) गोरम	६३६ ,,
(५) तारागढ	६१४ ,,
(६) साइमाता	६३० ,,

अरावली पहाड़ियों की पर्वतमालाएँ सिरोही, उदयपुर, डूंगरपुर बाँसवाड़ा, जयपुर, बूँदी, बाड़मेर तथा झालावाड़ा जिलों मे फैली हुई हैं। इन पहाड़ियों मे खनिज सम्पत्ति के प्रचुर भण्डार हैं। भीलवाड़ मे अभ्रक, खेतड़ी तथा उदयपुर म ताँबा, डूंगरपुर, उदयपुर, जयपुर, चित्तौड़गढ़ बाँसवाड़ा तथा डाबला आदि क्षेत्रों मे लोह की खानें हैं। इन पहाड़ियों से लूनी, बनास, माही, बाकनी तथा बाणगंगा आदि नदियाँ निकलती हैं। पर्वत शृंखलाओं के ढालों पर जगल तथा चरागाह हैं। जगलों मे शेर, चीते, तेंदुए आदि पाये जाते हैं।

आर्थिक स्थिति

(१) इन पहाड़ियों से जो नदियाँ निकलती हैं उनके द्वारा सिंचाई की जाती है। वर्षा ऋतु मे जब इनमे पानी बहता है तो बाँधों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की गयी है।

(२) ये पर्वतमालाएँ, राज्य को दो भागों मे बाँटती हैं। पश्चिमी क्षेत्र जहाँ थार का रेगिस्तान है उसको पूर्व की तरफ बढ़ने स रोकती हैं। इस प्रकार राजस्थान के पूर्वी मैदानी भाग की रक्षा करती हैं।

(३) इन *गिरि-शृंगों मे बेराइट्स, माइका, बेरियम,* डेप्टेलाइट तथा अन्य रेडियो सक्रिय खनिज मिलते हैं। लोहा तथा कोयला भी कहीं-कहीं मिलता है। चूना तथा बलुआ पत्थर काफी मात्रा म उपलब्ध है। खनिज सम्पत्ति से राज्य की प्रगति मे बहुत मदद मिली है।

(४) इन पर्वत शृंखलाओं मे वन पाये जाते हैं जिनसे गोंद, औषधियाँ, लकड़ी, चमड़ा, चमड़ा रगने की छाल आदि गौण उपज उपलब्ध होती हैं।

(५) राजस्थान के इस भाग मे कई दर्शनीय स्थान हैं जहाँ दर्शक आते हैं। पर्यटन से विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

(६) दक्षिण-पश्चिम की मानसून, जो अरब सागर से आती है, राजस्थान के कुछ भागों म वर्षा करती है।

इस प्रकार राजस्थान की अर्थव्यवस्था मे अरावली का बहुत महत्त्व है। मिट्टी के कटाव के कारण राजस्थान के रेतीले भाग म मिट्टी पूर्व की तरफ चलने लगती है। इस कटाव से अरावली पहाडियां रक्षा करती हैं।

(३) उत्तरी-पूर्वी मैदानी भाग

अरावली पर्वत के उत्तरी पूर्वी भाग म यह मैदान स्थित है तथा पूर्व मे गगा-यमुना नदी के मैदान तक इसका विस्तार है। राजस्थान क २०% भाग मे भी अधिक क्षेत्र मे यह फैला हुआ है। इस मैदानी भाग को दो भागो म बांटा जा सकता है। प्रथम भाग मे, जिसे बनास घाटी का मैदान कहते हैं, अलवर, जयपुर, भरतपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, झुंझुनूं तथा सीकर हैं। दूसरे भाग म, जिसे माही नदी का मैदान कहते हैं उदपुर, बांसवाडा तथा चित्तौडगढ का दक्षिणी भाग है।

यह क्षेत्र राजस्थान के उपजाऊ क्षेत्रो मे से एक है। बनास नदी का क्षेत्र अधिक उपजाऊ है। इसकी सहायक नदियाँ बजाई, गोलवां तथा मोशी हैं। इस भाग मे जलवायु अच्छा है। वर्षा, अन्य भागो की अपेक्षा अधिक होती है। यह ४० से० मी० से ८५ से० मी० तक होती है। बाजरा, गेहूँ, चना, जौ, मक्का, ज्वार, मोंठ, सरसों, राई, कपास तथा मूँगफली यहाँ की मुख्य फसलें हैं। मुख्य व्यवसाय खेती है पर पशुपालन भी होता है। सूती-वस्त्र, शक्कर तथा तेल के कारखाने भी विकसित हो रहे हैं। राजस्थान की ४०% से भी अधिक जनसंख्या इस भाग मे निवास करती है।

(४)—पठारी भाग

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग को हाड़ोती का पठार कहा जाता है। इसमे राजस्थान का ६ प्रतिशत क्षेत्र है। पठारी भागो के मध्य मे खुले भू-भाग भी हैं। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा गर्मी अधिक होती है। यहाँ की पठारी भूमि कृषि के लिए अनुपयुक्त है। इस भाग मे चम्बल, कालीसिंध, बानगगा तथा बनास नदियां हैं। पहाडो मे वन तथा चरागाह पाये जाते है। जिन क्षेत्रो मे खेती करने योग्य भूमि है वहाँ गन्ना, कपास तथा मूँगफली की फसल होती है। राज्य की १३ प्रतिशत जनसंख्या यहाँ निवास करती है।

भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के धरातल मे काफी विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। यहाँ पहाडी, पठारी, मैदानी तथा रेगिस्तानी भाग पाये जाते हैं। थार का रेगिस्तान जो कि भारत के प्राकृतिक विभागो मे गिना जाता है यही पर स्थित है। पश्चिमी भाग म रेतीले टीलो की शृंखलाएँ दिखायी पडती हैं।

जलवायु

आर्थिक प्रगति पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाला तत्व जलवायु है। राजस्थान मे अरावली पहाडियो के उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा उत्तर-पूर्व और दक्षिणी पूर्वी भागो म जलवायु मे भिन्नता पायी जाती है। उत्तर-पश्चिम के रेतीले भागों मे गर्मियों मे अधिक गर्मी तथा सर्दियो मे अधिक सर्दी पडती है। गर्मियो के दिनो मे

बढ़ाने की धूप पड़ती है, गरम हवाएँ चलती हैं तथा आँधियाँ आती हैं, किन्तु रात्रि को तापक्रम कम हो जाता है। अरब सागर से आने वाली जलयुक्त मानसूनी हवाएँ अरावली पर्वत के दक्षिण-पूर्व में तो वर्षा करती हैं किन्तु इस भाग के ऊपर बिना वर्षा, मानसूनी अथवा अत्यन्त कम वर्षा करके पश्चिमोत्तर दिशा में चली जाती हैं अतः वर्षा कम होती है। इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा का औसत २५ सें० मी० से ५० सें० मी० के बीच रहता है।

अरावली की पहाड़ियों के उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व भाग में कम सर्दी तथा कम गर्मी पड़ती है। दक्षिणी-पूर्वी भाग में ६० सें० मी० से १०० सें० मी० तक तथा उत्तरी पूर्वी भाग में ५० सें० मी० से ७५ सें० मी० तक वर्षा होती है।

राजस्थान की ९० प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर तक गर्मियों की मानसून से होती है तथा दिसम्बर से फरवरी तक सर्दियों में कुछ वर्षा हो जाती है।

राजस्थान में तीन ऋतुएँ होती हैं (१) ग्रीष्म ऋतु, (२) वर्षा ऋतु, तथा (३) शरद् ऋतु। ग्रीष्म ऋतु मार्च-अप्रैल से जून तक होती है। वर्षा ऋतु जून के तीसरे सप्ताह से सितम्बर तक होती है। शरद् ऋतु अक्टूबर से फरवरी तक होती है।

मिट्टियाँ

प्राकृतिक स्थिति के आधार पर निम्न प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं :

(१) कछारी मिट्टी

सवाई माधोपुर, भरतपुर, अलवर तथा टोंक जिलों में कछारी मिट्टी पायी जाती है। यह उपजाऊ मिट्टी है, किन्तु गंगा-यमुना के मैदान में जो तलछटी (alluvial) मिट्टी पायी जाती है उसकी अपेक्षा यह कम उपजाऊ है। राजस्थान में मिट्टी का ऊपरी भाग पीले रंग तथा भूरे रंग से मिलता है। इसका कारण यह है कि इस मिट्टी में रेत की मिलावट होती है।

(२) काली मिट्टी

यह मिट्टी काले रंग की होती है जो कोटा, बूँदी, झालावाड़, सवाई माधोपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा डूँगरपुर के कुछ भागों में पायी जाती है। यह नमी को अधिक देर तक रोक सकती है तथा उपजाऊ भी है।

(३) लाल मिट्टी

लोहे की मात्रा की अधिकता होने के कारण इसका रंग लाल होता है। यह डूँगरपुर, उदयपुर आदि क्षेत्रों में पायी जाती है। कुछ स्थानों पर इस मिट्टी में काली मिट्टी का अंश मिला हुआ पाया जाता है।

(४) लाल-पीली मिट्टी

यह उदयपुर, सिरोही, चित्तौड़, अजमेर, भीलवाड़ा तथा सवाई माधोपुर के क्षेत्रों में पायी जाती है। यह मिट्टी कम उपजाऊ होती है।

(५) पीली मिट्टी

यह सीकर, झुंझुनूँ, पाली, जोधपुर तथा नागौर जिलों में पायी जाती है।

यह रेगिस्तानी मिट्टी से मिलती-जुलती है। यह कम उपजाऊ होती है। सीकर तथा झुझुनूं जिलो मे इस मिट्टी मे अन्य उपजाऊ तत्व मिले हुए हैं। अत यह अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ है।

(६) नदी घाटी की भूरी-काली मिट्टी

यह गगानगर, अलवर, भरतपुर आदि जिलो मे पायी जाती है। इसमें नमक की मात्रा अधिक होती है। यह नदियों की तलहटी मे पायी जाती है।

(७) रेगिस्तानी मिट्टी

यह जैसलमेर, बीकानेर, चूरू, बाडमेर, पाली, गगानगर तथा नागौर मे पायी जाती है। यह बहुत कम उपजाऊ होती है। इस मिट्टी का रग पीला, भूरा तथा थोडा सा कालापन लिए हुए है।

इस प्रकार राजस्थान म भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं।

नदियां और झीलें

राजस्थान मे बरसाती नदियां अधिक हैं। लूनी, बनास तथा चम्बल को छोड कर, जिनमे गर्मियों मे थोडा पानी बहता दिखायी देता है, अन्य नदियां वर्षा की समाप्ति तक सूख जाती हैं। मुख्य नदियों मे चम्बल, बनास लूनी, पार्वती नदी, माही नदी, कालीसिघ, बाकनी, मासी, बालगगा तथा साबी नदी हैं। यहीं कहीं-कहीं झीलें भी पायी जाती हैं जो कि मीठे तथा खारे पानी दोनो प्रकार की पायी जाती हैं। मीठे पानी मे मुख्य जय समद झील, राज समद, पिछोला, फतेहसागर, बाल सागर, आना सागर तथा सीली सेढ आदि हैं। खारे पानी की झीलों म साभर झील, पच भद्रा झील, डीडवाना तथा लूनकरण सर झील हैं।

वन सम्पदा

राजस्थान के पूर्वी भागो मे अधिक वर्षा होने के कारण अधिक वन पाये जाते हैं। वनो का क्षेत्रफल २८ ६ लाख एकड है। लगभग ४% भाग मे वन पाये जाते हैं। उत्तर-पूर्व में घास के मैदान भी पाये जाते हैं। पश्चिमी भागो में वर्षा कम होने के कारण कॉंटेदार झाडियां पायी जाती हैं। इस भाग मे कैर, कीकर, खेजडी, बबूल आदि वृक्ष पाये जाते हैं। पूर्वी भागो मे शीशम, बड, पीपल, आम, जामुन, प्लास, बांस, नीम तथा इमली के वृक्ष पाये जाते हैं। राज्य के वनो के ६३% भाग सुरक्षित, १४% वनो को रक्षित तथा २१% वनों को खुले वनो के रूप मे रखा है।

वनो को बढाने की आजकल अधिक आवश्यकता है क्योंकि भूमि के कटाव को रोकने के लिए वृक्ष लगाना आवश्यक है। योजनाओं में इस तरफ काफी ध्यान दिया गया है।

पशुधन

भारत के अन्य राज्यों के मुकाबले मे राजस्थान की पशु सख्या काफी अधिक है। उन भागो मे जहां वर्षा का अभाव है पशु पालन जनता की आजीविका का प्रमुख साधन है। राज्य मे नागौरी, राठी, हरियाणा, मालवी, काकनेज, थारपाकर, गिर

आदि महत्त्वपूर्ण पशु हैं। ऊँट यहाँ का प्रमुख पशु है। राज्य में उन्नत नस्ल के सांड कम पाये जाते हैं। भेड व बकरियों का पालन भी महत्त्वपूर्ण है। मुर्गी पालने तथा मछली व्यवसाय भी राजस्थान में होता है। १९६९-७० में पशुपालन का राज्य की आय में १२% योगदान था। राज्य की ७५ लाख भेडो द्वारा सालाना लगभग ३ करोड पौण्ड ऊन का उत्पादन होता है। यह देश के कुल उत्पादन का ४५% है।

(२) मानवीय साधन

प्राकृतिक साधनों के विदोहन के लिए मानवीय साधनो की आवश्यकता पड़ती है अत आर्थिक विकास मे मानवीय साधनो का बहुत महत्व है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या दो करोड एक लाख थी।

सन १९७१ की जन गणना के अनुसार अब राजस्थान की जनसंख्या २,५७,२४,१४२ है अर्थात पिछले दस वर्षों मे राज्य की जनसंख्या में २७ ६३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसमे पुरुषो की संख्या १,३४,४२,०५६ तथा महिलाओ की १,२२८२,०८६ है। जनसंख्या का घनत्व जोकि दस वर्ष पहले ५९ प्रति वर्ग किलोमीटर था, अब बढकर ७५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। इसी प्रकार शहरी जनसंख्या का प्रतिशत भी १६ से बढ़कर अब १७ ६१ प्रतिशत हो गया है। जैसलमेर क्षेत्र मे जनसंख्या का घनत्व ४ तथा भरतपुर क्षेत्र म १८४ प्रति वर्ग किलोमीटर है।

जनसंख्या की दृष्टि से भारत म राजस्थान का दसवाँ स्थान है और राज्य मे देश की कुल जनसंख्या का ४ ७ प्रतिशत भाग है। भीलवाडा, कोटा, जयपुर, अजमेर, बीकानेर, अलवर, उदयपुर, जोधपुर आदि नगरों मे औद्योगीकरण के कारण जनसंख्या बढी है, विशेषत कोटा की जनसंख्या पिछले दस वर्षों म पौने दोगुनी हो गयी है।

राज्य मे शिक्षितों का प्रतिशत अब भी कम है। दस वर्ष पहले यह १५·२१ प्रतिशत था जो अब बढ़कर १८ ७६ हो गया है, किन्तु शिक्षितों म स्त्रियों का अनुपात कम है। शिक्षितों म पुरुषो का प्रतिशत २८ ४२ तथा स्त्रियों का ८ ९ है।

(३) आवागमन के साधन

कृषि तथा उद्योगो के विकास से व्यापार का विकास होता है। व्यापार के लिए आवागमन के साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। राजस्थान मे यातायात के साधनो का अभाव रहा है। बहुत सा भूभाग रेतीला होने के कारण सडकों का निर्माण नहीं हो पाया। राज्य में बहुत से ऐसे क्षेत्र अब भी हैं जहाँ सडकों की सुविधा उपलब्ध नहीं है। कृषि उपज को मण्डी तक लाने मे पर्याप्त कठिनाई होती है। रेल यातायात भी राज्य के अनेक मार्गों मे सुगम नहीं है।

औद्योगिक विकास मे इस अभाव के कारण अनेक कठिनाइयाँ सामने आ रही है। सन् १९५१ तक सडकों की कुल लम्बाई १९,३०० किलोमीटर थी। सन् १९६६ तक सडकों की कुल लम्बाई ३०,२८६ किलोमीटर हो गयी।

खनिज साधन

राजस्थान खनिज सम्पदा मे एक धनी राज्य माना जाता है। यहाँ छोटी-बडी लगभग २,२५० खानें हैं जिनम एक लाख से भी अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है। यहाँ के बहुमूल्य खनिजो म अभ्रक (Mica) प्रमुख है जिसके उत्पादन मे राजस्थान का देश म द्वितीय स्थान है। यह अधिकतर भीलवाडा जिले म निकाला जाता है। जिप्सम (Gypsum) म राजस्थान का प्रथम स्थान है। देश के कुल उत्पादन का ८० प्रतिशत यही निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त लिगनाइट, मैंगनीज, ताँबा, सीसा, जस्ता, घीया पत्थर, इमारती पत्थर, सगमरमर एव लोहा आदि भी यहाँ पाये जात हैं। नमक की दृष्टि स भी राजस्थान एक प्रमुख उत्पादक राज्य है। जस्ता, सीसा आदि खनिजो म राजस्थान का भारत मे एकाधिकार है। जिप्सम, चूना, सिलीका, अभ्रक एव ताँबे की दृष्टि से भी राजस्थान की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सन् १९६८ म राजस्थान सरकार द्वारा राज्य के खनिज विकास के लिए एक कारपोरेशन की स्थापना की गयी। हाल ही मे राजस्थान मे यूरेनियम की चट्टानो का भी पता लगाया जा चुका है। जैसलमेर क्षेत्र में खनिज तेल एव प्राकृतिक गैस का भण्डार होने के अनुमान हैं यद्यपि इस क्षेत्र म अभी खुदाई का कार्य प्रारम्भ नही किया गया है।

राजस्थान मे पाये जाने वाले कुछ प्रमुख खनिज पदार्थों का विवरण नीचे दिया गया है :

(१) अभ्रक (Mica)

राजस्थान के खनिजो मे अभ्रक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। देश मे बिहार के पश्चात राजस्थान का स्थान आता है। यहाँ प्रमुख अभ्रक उत्पादक क्षेत्र भीलवाडा, अजमेर, टोंक, जयपुर, सीकर, नाथद्वारा तथा किसनगढ हैं। राजस्थान का अभ्रक सफेद रग का होता है जिस पर लाल या हल्के गुलाबी छपके होत हैं। देश के कुल अभ्रक उत्पादन का २२ प्रतिशत राजस्थान मे होता है। प्रथम महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जयपुर एव टोंक जिलों में है जहाँ मानखण्ड, ढोली पालडी, बरला एव बजारी की खानें हैं। अन्य प्रमुख क्षेत्र उदयपुर भीलवाडा क्षेत्र है जहाँ आमली, भूणास तथा टूँका की खानें हैं।

(२) लिगनाइट (Lignite)

यह भूरे रग का घटिया किस्म का कोयला है। राजस्थान मे बीकानेर क्षेत्र लिगनाइट का प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है। इस क्षेत्र मे पलाना ग्राम मे इसकी खानें हैं। पलाना मे २३० लाख टन कोयले के भण्डार का अनुमान है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त खारी, छानेरी, गग सरोवर, नापासर, मुढ आदि स्थानों पर भी लिगनाइट की प्राप्ति हुई है। इस कोयले का औद्योगिक उपयोग अभी नही हो सका है। अब पलाना की खान के निकट एक ताप बिजलीघर के निर्माण का निश्चय किया गया है जिसमे इस कोयले का उपयोग हो सकेगा। इस बिजलीघर से बीकानेर एव आस-पास के

उद्योगों के लिए यान्त्रिक शक्ति उपलब्ध हो जायगी पर बीकानेर जिले में राजस्थान नहर द्वारा लिफ्ट-सिंचाई (Lift Irrigation) के लिए भी यह शक्ति प्रदान करेगा।

(३) जिप्सम (Gypsum)

जिप्सम में भारत में राजस्थान का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश का लगभग तीन चौथाई से भी अधिक जिप्सम राजस्थान में प्राप्त होता है। यहाँ बीकानेर तथा जोधपुर में इसके भण्डार दूर-दूर तक बिखरे हुए हैं। इसकी मुख्य खानें बीकानेर, जैसलमेर, गंगानगर, नागौर तथा जोधपुर में हैं। इस समय लगभग १२ लाख टन जिप्सम राज्य में निकाला जा रहा है। सिंदरी के खाद के कारखाने में यहीं से जिप्सम भेजा जाता है।

राज्य में दस करोड़ टन से भी अधिक जिप्सम भण्डारों का पता लगाया जा चुका है। अनुमान है कि इसके भण्डार इससे कहीं अधिक हैं। इसका उपयोग रासायनिक उर्वरक, सीमेंट तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस के निर्माण में होता है। बीकानेर की जामसर तथा लूणकरणसर शून्य की तारा नगर तथा नागौर, जोधपुर पासों में इसकी खानें हैं।

(४) *तांबा (Copper)*

राजस्थान में प्राचीन काल से ही तांबे की खुदाई की जा रही है। इस राज्य का महत्त्वपूर्ण तांबा क्षेत्र खेतड़ी है। अलवर जिले के दरीबा गाँव के निकट तांबा मिला है। उदयपुर क्षेत्र के देलवाड़ा तथा बीकानेर और कोटा के कुछ स्थानों में थोड़ी थोड़ी मात्रा में तांबा मिलता है। किन्तु खेतड़ी का तांबा क्षेत्र सबसे प्रसिद्ध है जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र में एक तांबा गलाने का संयंत्र (Copper Smelter) स्थापित किया जा रहा है जिसकी क्षमता प्रारम्भ में ३१ ००० टन शुद्ध तांबे की होगी जिसे बाद में बढ़ाकर ४५ हजार टन किया जा सकेगा। आशा है यह कारखाना सन् १६७२ के अन्त तक उत्पादन प्रारम्भ कर सकेगा। उत्पादन प्रारम्भ होने पर यह भारत का सबसे बड़ा तांबा उत्पादन केन्द्र बन जायगा। यहाँ पाँच करोड़ टन से भी अधिक तांबे के भण्डार हैं।

(५) लोहा (Iron)

राजस्थान में अच्छी किस्म का लोहा प्राप्त हुआ है। इस राज्य में लगभग २०० लाख टन लोहे के भण्डार का अनुमान लगाया गया है। यहाँ जयपुर की दौसा तथा नीमला, मोरर, सेवड़ी, बाँसवाड़ा, अलवर तथा डूंगरपुर में लोहा निकाला जाता है। जयपुर के निकट चौमू-मोरिजा तथा चौमू-सामोद में भी लोहा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भवसा के निकट भी लोहे की खानें हैं। चित्तौड़गढ़ में डूंगरपुर, नगरदार, पाटरपास स्थानों में लोहा मिला है। कोटा के लोहरपुरा तथा जोधपुर के पूनागढ़ में लोहा मिलने की सम्भावना है। इस प्रस्ताव पर अब विचार हो रहा है कि क्या राजस्थान में उपलब्ध खनिज लोहे का उपयोग किया जा सकता है। खनिज बहुत उत्तम कोटि का नहीं है। कहीं-कहीं इसमें शुद्धता का प्रतिशत कामीन

से भी कम है। फिर भी विशेषज्ञों की राय है कि एक लाख टन के लघु इस्पात कारखानों की स्थापना इनके आधार पर की जा सकती है।

(६) मैंगनीज (Manganese)

राजस्थान में मैंगनीज उदयपुर, बाँसवाड़ा, कुशलगढ़, जयपुर में पाया जाता है। जयपुर में अचरोल के निकट मैंगनीज प्राप्त हुआ है, बाँसवाड़ा क्षेत्र का महत्व भारी बढ़ता जा रहा है। बाँसवाड़ा में मैंगनीज, चूना एवं कच्चे लोहे के निकट प्राप्त है। यह मैंगनीज, फेरो-मैंगनीज के निर्माण के लिए उपयुक्त है। राज्य का अधिकांश उत्पादन देश के इस्पात कारखानों में भेजा जाता है, अथवा विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है।

(७) टंगस्टन (Tungsten)

इस राज्य के जोधपुर के डेगाना के निकट टंगस्टन की खानें हैं। भारत का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह युद्ध महत्व का खनिज है। यह कड़ी वस्तु को काटने के काम में लाया जाता है। चट्टान काटने के औजार इसी से बनते हैं। इससे मिश्रित इस्पात बनता है जो अस्त्र-शस्त्र निर्माण के काम आता है।

(८) इमारती पत्थर (Building Stone)

देश का इमारती पत्थर उत्पन्न करने वाला प्रमुख राज्य है। यहाँ कई प्रकार के पत्थर उपलब्ध हैं। राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, अलवर, चित्तौड़गढ़, बूँदी, करौली आदि क्षेत्रों में इमारती पत्थर पाये जाते हैं।

(९) घीया पत्थर (Soap Stone)

राजस्थान में देश का लगभग तीन-चौथाई घीया पत्थर प्राप्त होता है। इस राज्य के भीलवाड़ा, उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, कोटा तथा जयपुर आदि क्षेत्रों में घीया पत्थर उपलब्ध होता है। सन् १९७० में यहाँ १६२ हजार टन घीया पत्थर का उत्पादन हुआ। जयपुर के निकट दौसा में इसकी प्रमुख खान है। भीलवाड़ा और दौसा में सोप स्टोन पाउडर बनाने के कारखाने भी हैं।

(१०) सीसा व जस्ता तथा चाँदी (Lead-Zinc-Silver)

राजस्थान में इनकी अनेक खानें हैं। यहाँ उदयपुर, जयपुर, अजमेर, बाँसवाड़ा तथा भरतपुर क्षेत्रों में सीसा जस्ता निकाला जाता है। सबसे प्रमुख क्षेत्र उदयपुर के निकट जावर की खानें हैं जहाँ प्रतिदिन लगभग ढाई-तीन सौ टन कच्चा खनिज निकाला जाता है जिसमें पाँच प्रतिशत शुद्ध सीसा तथा ७ प्रतिशत शुद्ध जस्ता होता है। हिन्दुस्तान जिंक स्मेल्टर उदयपुर के पास देबारी में स्थापित किया गया है जिसकी क्षमता बीस हजार टन की है। इस समय लगभग १५,००० टन जस्ता एवं ४,००० टन सीसा का उत्पादन हो रहा है।

(११) बेराइट्स (Barytes)

राजस्थान में बेराइट्स का प्रमुख क्षेत्र अलवर है। इस क्षेत्र में आमरोली, ग्वारा, मीना व गूजर तथा अन्य ग्रामों की पहाड़ियों में यह खनिज पाया जाता है।

यह अलवर के अतिरिक्त भरतपुर में भी कुछ मात्रा में उपलब्ध होता है। इस समय ५ १०० टन का उत्पादन प्रति वर्ष होता है।
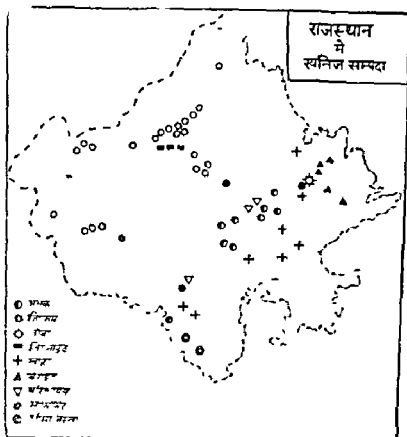
(१२) बेरिलियम (Beryllium)

राजस्थान देश के महत्वपूर्ण उत्पादकों में से एक है। यहाँ अच्छी किस्म का बेरिलियम उपलब्ध होता है। इस राज्य के जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, सीकर, टोंक तथा डूंगरपुर में यह खनिज उपलब्ध होता है। यह पदार्थ पीला, सफेद, हल्के हरे तथा हरे रंग का होता है। अणु शक्ति आयोग राजस्थान के बेरीलियम को खरीदता है तथा यह विदेशों में भी निर्यात किया जाता है।

(१३) अन्य

चूने का पत्थर सीमेन्ट उद्योग का आधार है। यह राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी भाग में स्थान-स्थान पर उपलब्ध है। संगमरमर (Marble) मकराना में मिलता है जिसके लिए राजस्थान भारत भर में प्रसिद्ध है। नमक सांभर, पचभद्रा एवं डीडवाना आदि खारे पानी की झीलों से प्राप्त होता है। खनिज-तेल के भण्डार जैसलमेर

क्षेत्र में हैं, किन्तु अभी निकाला नहीं जा रहा है। इसके अतिरिक्त पन्ना, काँच बनाने की रेत, टंगस्टन, फ्लोराइट, एसबेस्टस, फेल्डस्पार आदि खनिज भी राज्य में उपलब्ध हैं। राक फास्फेट के भी राज्य में बहुत अधिक भण्डार हैं। अभी एक हजार टन राकफास्फेट का उत्पादन राज्य में प्रतिदिन होता है किन्तु देश की माँग को पूरा करने के लिए इसे दस हजार टन प्रतिदिन करना होगा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान में प्राकृतिक साधनों की कोई कमी नहीं है, परन्तु उनके विदोहन के लिए प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है। इस राज्य में औद्योगीकरण देर से प्रारम्भ हुआ है, फिर भी राज्य में व्यावसायिक कुशलता का अभाव नहीं है। पिछले बीस वर्षों में आर्थिक योजनाओं के अन्तर्गत राज्य के प्राकृतिक साधनों के उपभोग की दिशा में निरन्तर प्रयत्न किये जाते रहे हैं।

प्रश्न

१. राजस्थान को कौन से प्राकृतिक विभागों में विभाजित किया जा सकता है? लिखिए और किसी एक विभाग का विस्तृत विवरण दीजिए।

२. राजस्थान के प्रमुख प्राकृतिक साधन क्या हैं? इन साधनों का पूर्ण उपयोग क्यों नहीं किया जा सका है? लिखिए।

३ राजस्थान की खनिज सम्पत्ति के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(राजस्थान, टी० डी० सी०, १९७१)

अध्याय १५

फसलें एवं कृषि विकास

(CROPS & AGRICULTURAL DEVELOPMENT)

राजस्थान कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ तीन चौथाई से भी अधिक जनसंख्या कृषि व्यवसाय से जीवन-यापन करती है। इस राज्य में पानी का अभाव है तथा अधिकतर भाग शुष्क प्रदेश है। जल साधनों के अभाव में कृषि उपज प्रति हेक्टेयर कम है। आजकल कृषि विकास के लिए सिंचाई व्यवस्था की जा रही है। आशा है भविष्य में थार के रेगिस्तान में हरे-भरे खेत लहलहाते नजर आयेंगे। राजस्थान नहर के निर्माण के बाद राज्य का उत्तर पश्चिमी भाग निश्चय ही हरा-भरा हो जायगा।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। राज्य की लगभग ४८ प्रतिशत आय कृषि व पशुपालन से प्राप्त होती है। इतना होते हुए भी कृषि की दशा दयनीय है। राज्य में प्रथम योजना के आरम्भ में ६,३१३ हजार हेक्टेयर भूमि में फसलें बोयी जाती थीं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं के अन्त में कृषि उपज का क्षेत्रफल ११,४५४ हजार हेक्टेयर, १३,११२ हजार हेक्टेयर तथा १४,१३२ हजार हेक्टेयर था। भविष्य में सिंचाई के साधनों के विकास तथा रासायनिक खाद के अधिक उपयोग से अधिक भूमि में सिंचाई की जा सकेगी।

फसलें
(Crops)

राजस्थान में खाद्य पदार्थों में बाजरा, ज्वार मक्का, चना गेहूँ आदि मुख्य फसलें हैं और व्यापारिक फसलों के अन्तर्गत, गन्ना, तिलहन, कपास आदि हैं। बाजरा यहाँ की सबसे प्रमुख फसल है। अधिकतर क्षेत्र में इसकी खेती होती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा कुछ अधिक होती है तथा सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं, वहाँ गेहूँ, गन्ना, कपास आदि की भी खेती होती है। विभिन्न फसलों का विवरण निम्नलिखित है :

बाजरा (Bajra)

बाजरे को ग्रामीण जनता प्रयोग करती है। अधिकतर गरीब किसान इसी पर निर्भर रहते हैं। पश्चिमी राजस्थान में तो वर्ष भर गरीब जनता इसी का उपयोग करती है। राजस्थान में इस समय ५० लाख हेक्टेयर से भी अधिक भूमि

मे बाजरे की खेती होती है। इसके पौधे के डण्ठल पशुओं के चारे के काम में लाये जाते हैं।

भौगोलिक दशाएँ—बाजरा शुष्क प्रदेशों की उपज है। इसके लिए कम से कम ५ सेण्टीमीटर तथा अधिकतम ५० सेण्टीमीटर तक वर्षा की आवश्यकता होती है। अधिक वर्षा से फसल नष्ट हो जाती है। वर्षा थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से होती रहे तो उत्तम मानी जाती है। इसके लिए अधिक तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है यह साधारण उपजाऊ मिट्टी मे उत्पन्न होता है। पश्चिमी राजस्थान मे लगभग सभी क्षेत्रों मे न्यूनाधिक बाजरे की खेती होती है।

बाजरे का उत्पादन—राजस्थान में बाजरे के उत्पादन मे यद्यपि प्रतिवर्ष उतार-चढाव होते रहते हैं क्योंकि इसकी खेती वर्षा पर निर्भर होती है। प्रथम योजना मे राज्य में सात-आठ लाख टन बाजरा प्रतिवर्ष उत्पन्न होता था, जो अब बढकर १२ ५० लाख टन हो गया है। सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध होने के बाद अनेक जिलो मे बाजरे की उपज मे पचास प्रतिशत तक वृद्धि हो चुकी है। सन् १९६६ मे सूखे की स्थिति ने इसकी उपज पर विपरीत प्रभाव डाला किन्तु १९६८ के बाद सकर बाजरे की खेती और हरित क्रान्ति के अन्तर्गत अन्य कृषि सुविधाओं के कारण इसमें पर्याप्त वृद्धि हुई।

राजस्थान के लगभग सभी भागो में थोडी बहुत मात्रा मे बाजरे की खेती होती है। किन्तु उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान में अधिक खेती होती है। बीकानेर, गगानगर, चुरू, झूंझनू, सीकर, अलवर, नागौर, जयपुर, जोधपुर आदि जिले प्रमुख हैं।

बाजरे की सघन खेती—राजस्थान में तृतीय पचवर्षीय योजना मे सघन खेती कार्यक्रम चालू किये गये। वर्ष १९६४-६५ में अलवर जिले के बहरोड, नीम का थाना, बान्सूर में यह कार्यक्रम चालू किया गया। वर्ष १९६५-६६ म किसनगढ, वास, कोट कासिम, उमरेन, रामगढ, भण्डावर, तिजारा मे और १९६७-६८ में लक्ष्मणगढ, राजगढ, थानागाजी, कठूमर तथा रेती मे सघन खेती कार्यक्रम अपनाया गया।

ज्वार (Jowar)

राजस्थान मे ज्वार की उपज भी मुख्य है। यह गरीब जनता के खाने के काम आता है। इसका चारा पशुओ के लिए अत्यन्त उपयोगी है। राजस्थान मे इस समय ज्वार की खेती लगभग ११ लाख हेक्टेयर भूमि मे होती है।

प्राकृतिक दशाएँ—ज्वार उत्पन्न करने के लिए कम वर्षा तथा अधिक तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए ५० सेण्टीमीटर से ७५ सेण्टीमीटर तक वार्षिक वर्षा आवश्यक है तथा उपजाऊ मिट्टी मे इसकी खेती अच्छी होती है। बहुत कम वर्षा वाले भागों म सिंचाई करके भी खेती की जाती है।

ज्वार का उत्पादन—पचवर्षीय योजनाओं की अवधि मे ज्वार के उत्पादन में प्राय निरन्तर वृद्धि हुई है तीसरी योजना के अन्त मे यद्यपि इसके उत्पादन में कुछ

कमी हुई क्योंकि दो वर्ष तक निरन्तर सूखे की स्थिति रही। इस समय राज्य में लगभग चार लाख टन ज्वार का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। इसका उत्पादन दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी भागों में अधिक होता है। उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, झालावाड़, कोटा, बूंदी, सवाई माधोपुर आदि क्षेत्रों में ज्वार का उत्पादन अधिक होता है।

ज्वार की सघन खेती—ज्वार की सघन खेती के लिए प्रथम प्रयास १९६४-६५ में झालावाड़ जिले के झालरापाटन पंचायत समिति, कोटा जिले की बारां पंचायत समिति को चुना गया। वर्ष १९६५-६६ में झालावाड़ जिले के खानपुर, पिड़ावा, डग पंचायत समितियाँ तथा कोटा जिले के बैंचट, सांगोद, छबड़ा, सुलतानपुर, छीपाबड़ौद आदि पंचायत समितियों को सघन खेती कार्यक्रम के अन्तर्गत चुना गया। वर्ष १९६७-६८ में लाडपुरा, अन्ता, अटरू, शाहाबाद पंचायत समितियों को चुना गया।

गेहूँ (Wheat)

गेहूँ का प्रयोग अत्यन्त सामान्य है किन्तु राज्य के नगरों में प्राय गेहूँ ही प्रयोग में लाया जाता है। यह पौष्टिक खाद्यान्न है। गेहूँ से आटा, सूजी, मैदा, दलिया, बिस्कुट, डबलरोटी तथा अन्य कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। इस समय राजस्थान में गेहूँ की फसल लगभग ७ लाख हेक्टेयर भूमि में होती है।

गेहूँ के लिए उपजाऊ मिट्टी तथा ज्वार बाजरे की अपेक्षा अधिक वर्षा की आवश्यकता पड़ती है।[1] राजस्थान में वर्षा के अभाव में सिंचाई की आवश्यकता होती है।

गेहूँ का उत्पादन—राजस्थान में जिस वर्ष वर्षा अच्छी हो जाती है, गेहूँ की फसल अच्छी होती है किन्तु अकाल के समय में उपज कम हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में सिंचाई वाले भागों में ही गेहूँ का उत्पादन होता है। विभिन्न वर्षों में यहाँ गेहूँ का उत्पादन निम्न प्रकार रहा है

गेहूँ का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन
१९५०-५१	३०१ ८ हजार टन
१९५५-५६	६२१ ७ ,,
१९६०-६१	१,०११ ६ ,,
१९६५-६६	७८४ ७ ,,
१९७०-७१	१,६०० ० ,,

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष १९५०-५१ की तुलना में गेहूँ का उत्पादन १९५५-५६ में तीन गुने से भी अधिक हो गया। वर्ष १९६०-६१ में

---

[1] गेहूँ के लिए भौगोलिक दशाएँ, अध्याय ११ (कृषि उपज) में देखिए।

उत्पादन में और भी वृद्धि हुई। किन्तु इसके पश्चात १९६४-६५ तथा १९६६-६७ में उत्पादन कम हुआ क्योंकि राज्य में वर्षा का अभाव था। उसके बाद से गेहूँ के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हुई है। सघन खेती कार्यक्रम के अन्तर्गत गेहूँ की अधिक उपज देने वाले बीजों की खेती में बढ़ोतरी हुई है। परिणामस्वरूप १९७०-७१ में सोलह लाख टन गेहूँ की उपज का अनुमान है।

राजस्थान में गेहूँ का उत्पादन गगानगर अलवर, भरतपुर, कोटा, बूंदी, जयपुर, पाली, सिरोही, झालावाड़ और अजमेर जिलों में होता है। भविष्य में पश्चिमी राजस्थान में लिफ्ट सिंचाई योजना के पूर्ण हो जाने पर गेहूँ के उत्पादन में काफी वृद्धि हो सकेगी।

जौ (Barley)

जौ गेहूँ से कम उपजाऊ भूमि में भी उत्पन्न किया जा सकता है। अन्य दशाएँ सामान्यतः गेहूँ के समान हैं। राजस्थान में ४.३८ लाख हेक्टेयर भूमि में इसकी खेती की जाती है। इस राज्य में जौ का उत्पादन निम्न प्रकार हुआ :

उत्पादन जौ

वर्ष	उत्पादन
१९५०-५१	१८४ हजार टन
१९५५-५६	५८९.५ ,,
१९६०-६१	५६८.४ ,,
१९६५-६६	६७४.४ ,,
१९७०-७१ (अनुमानित)	७४०.० ,,

तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम योजना के अन्त में १९५०-५१ की तुलना में जौ के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। वर्ष १९६०-६१ तथा १९६५-६६ में उत्पादन में कुछ कमी हुई किन्तु १९६७-६८ के पश्चात् अच्छी फसल होने के कारण उत्पादन सन्तोषजनक रहा है।

राजस्थान में जौ बीकानेर, गगानगर, भरतपुर, अलवर, जयपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, भीलवाड़ा, टोंक, बूंदी, कोटा, सिरोही, अजमेर और पाली जिलों में उत्पन्न किया जाता है।

मक्का (Maize)

राजस्थान में मक्का की भी खेती की जाती है। इसके लिए बालूदार दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। वार्षिक वर्षा ७५ से० मी० से १०० से० मी० तथा १५° से० ग्रे० से २५° से० ग्रे० तक के तापक्रम में उत्पन्न की जाती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई से भी फसल तैयार की जाती है।

मक्का के उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्र ४.३७ लाख हेक्टेयर है। मक्का का उत्पादन प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तिम वर्ष में क्रमशः

५३२ १, ६४७ ६, ६४१ ७ हजार टन का उत्पादन हुआ। वर्ष १६७०-७१ में उत्पादन १,१२३ ५ हजार टन था।

यहाँ मक्का गंगानगर, अलवर, भरतपुर, जयपुर, अजमेर, उदयपुर, भीलवाडा, चित्तौड, बाँसवाडा, सिरोही, पाली, बूँदी, कोटा आदि जिलों म पैदा किया जाता है।

चावल (Rice)

राजस्थान मे चावल के लिए अधिक उपयुक्त दशाएँ नहीं हैं। राजस्थान के गंगानगर, उदयपुर, भरतपुर, कोटा, झालावाड, बूँदी, बाँसवाडा आदि जिलो में थोड़ी मात्रा म चावल का उत्पादन होता है। वर्षा की यहाँ कमी रहने के कारण सिंचाई से फसल तैयार की जाती हैं। प्राय तालाबों या झीलो के निकट निचली भूमि मे यह फसल बो दी जाती है। हनुमानगढ के नहरी क्षेत्र म भी निचली जमीन में चावल बोया जाता है। कुल मिलाकर लगभग ६० हजार टन चावल राज्य में होता है।

गन्ना (Sugarcane)

राजस्थान मे गन्ने की उपज गंगानगर, भरतपुर, कोटा, बूँदी, उदयपुर, धौलपुर, अजमेर, डूंगरपुर, पाली तथा बाँसवाड़ा जिलों में होती है। इन क्षेत्रों की लगभग ३२ हजार हेक्टेयर भूमि म गन्ने की फसल होती है। गन्ना यहाँ मार्च मे बोया जाता है। इसकी फसल दो प्रकार की होती है। एक फसल ८-६ महीनो मे पकती है तथा दूसरी ११-१२ महीनों में तैयार होती है।

राजस्थान मे गन्ने के उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त दशाएँ नही हैं क्योंकि अधिकतर भागो मे वर्षा का अभाव रहता है और सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं हैं। अब जिन भागो म पर्याप्त सिंचाई के साधन उपलब्ध है, वहीं पर गन्ना उत्पन्न किया जाता है। चम्बल के नहरी क्षेत्रों म गन्ने की अधिक उपज की सम्भावनाएँ बढ़ गयी हैं। राज्य मे इस समय केवल तीन चीनी मिलें हैं। शेष गन्ने का उपयोग गुड बनाने में किया जाता है।

कपास (Cotton)

राजस्थान मे कपास की उपज गंगानगर, टोंक, भरतपुर, उदयपुर कोटा, बूँदी, झालावाड, पाली, अजमेर, भीलवाडा, बाँसवाडा आदि जिलो म होती है। राजस्थान मे चित्तौड तथा उदयपुर म अमरीकी कपास भी उत्पन्न की जाने लगी है।

कपास की खेती यहाँ काली मिट्टी वाले भागो म होती है। राज्य की कुल २५७ ३ हजार हेक्टेयर भूमि म कपास की खेती की जाती है। राजस्थान मे कपास का उत्पादन अग्र प्रकार हुआ।

कपास का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन
१९५५-५६	१८० ८ हजार गाँठे[1]
१९६० ६१	१४७ ३ ,,
१९६५-६६	१६५ १ ,,
१९७०-७१ (अनुमानित)	१८० ० ,,

राजस्थान मे भविष्य मे सिचाई के विकास के साथ साथ अधिक कपास का उत्पादन किया जा सकेगा। राजस्थान के विभिन्न भागो म कपास के लिए उत्तम मिट्टी उपलब्ध है किन्तु वर्षा तथा सिंचाई का अभाव है।

तिलहन (Oilseeds)

राजस्थान मे तिलहन की उपज का मुख्य स्थान है। यहाँ तिल, राई, सरसों, अलसी, मूँगफली, अरण्डी आदि तिलहन होते हैं। राजस्थान म सरसो की खेती गगा नगर, दक्षिणी राजस्थान तथा मध्य राजस्थान मे होती है। राई की खेती भी सरसों के उपज क्षेत्र म ही होती है। अलसी की उपज बाँसवाडा, उदयपुर, कोटा, बूँदी, झालावाड आदि जिलो मे होती है। राजस्थान से अलसी तथा उसका तेल देश के दूसरे राज्यों तथा विदेशो को भी भेजा जाता है। इस राज्य म तिल की खेती गगा-नगर, दक्षिणी राजस्थान के कुछ भाग तथा पूर्वी राजस्थान म होती है। यहाँ मूँगफली की उपज सीकर, गगानगर, जयपुर, अजमेर, टोंक पाली, चित्तौडगढ, भीलवाडा तथा जालौर जिलो मे होती है। राजस्थान मे अरण्डी लगभग सभी जिलों में हो सकती है। पश्चिमी राजस्थान मे इसकी खेती नहीं की जाती किन्तु शेष सभी भागों में थोडी-बहुत अरण्डी की खेती होती है।

तिलहन का उत्पादन

(मैट्रिक टन)

	फसलें	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१ (अनुमानित)
१	तिल	७४,९७२	२५,७११	५१,३८९	६०,१७५
२.	राई व सरसो	९८,२८२	७४,४७४	७२,०१५	७५,३५०
३	अलसी	४५,१३३	२१,०७४	१०,१८५	८,५४०
४	मूंगफली	३६,३९४	४९,९०९	६६,७८०	८०,५०३
५	अरण्डी	६२८	२७३	२७४	२७०

उक्त तालिका स स्पष्ट है कि सभी प्रकार के तिलहनों मे मूंगफली की उपज को छोडकर १९५५-५६ की तुलना म वर्ष १९६०-६१ म उत्पादन मे कमी हुई। वर्ष १९६६ ६७ म तिलहनों क उत्पादन मे पुन वृद्धि होनी चालू हुई। राजस्थान म

[1] एक गाँठ का वजन ३९२ पौण्ड है।

अकाल के वर्ष तिलहनों के उत्पादन में काफी कमी हो जाती है। सन् १९६९-७० तथा सन् १९७०-७१ में राजस्थान में तिलहन के उत्पादनों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यही कारण है कि राज्य में तीन वनस्पति तेल मिलों की स्थापना हो चुकी है और चार मिलों की स्थापना का निश्चय कर लिया गया है।

तम्बाकू (*Tobacco*)

राजस्थान में तम्बाकू की खेती जयपुर, भरतपुर, कोटा, टोंक, बूंदी, भीलवाड़ा आदि जिलों में होती है। राजस्थान में इस समय लगभग ४.६ हजार हेक्टेयर भूमि में निकोटियाना नामक तम्बाकू की उपज होती है। राज्य में लगभग पाँच हजार टन तम्बाकू प्रतिवर्ष उत्पादित होती है।

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास

राजस्थान में प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर अधिक ध्यान दिया गया। नियोजन से पूर्व राजस्थान में अनाज बाहर से मंगवाना पड़ता था। प्रतिवर्ष लगभग ५०,००० टन तक का अभाव रहता था। प्रथम योजना के अन्त तक अनाज की पैदावार ४२.७५ लाख टन हो गयी, जबकि पहले लगभग २९ लाख टन होती थी। इस योजना में ६६ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में कृषि होने लगी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्न उत्पादन ४४.६२ लाख टन हो गया। साथ-साथ व्यावसायिक उत्पादन में वृद्धि हुई। तीसरी योजना में द्वितीय योजना के उत्पादन लक्ष्यों से ३२ प्रतिशत अधिक उत्पादन लक्ष्य रखा गया। कृषि उत्पादन निम्न तालिका से स्पष्ट है

कृषि उत्पादन

(चार वर्षों के उत्पादन के औसत के आधार पर)

फसल	१९५२-५६	१९५७-६१	१९६२-६६
१ खाद्यान्न (लाख मेट्रिक टन)	३६ ८८	४६ ३७	४५ ४०
२ तिलहन "	२ ०६	२ १२	२ ११
३ कपास (लाख गाँठें)	१ ३२	१ ६४	१ ७४
४ गन्ना (लाख मेट्रिक टन)	० ४५	० ६६	०७०

(स्रोत—राजस्थान की महान उपलब्धियाँ—जन सम्पर्क विभाग निदेशालय, जयपुर)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि खाद्यान्न में प्रथम योजना के चार सालों के औसत से पर्याप्त वृद्धि हुई है, किन्तु तीसरी योजना में इसमें कमी हो गयी है। इस उत्पादन के गिरने का कारण अनावृष्टि तथा मौसम सम्बन्धी प्रतिकूल दशाएँ हैं। खाद्यान्न के अलावा अन्य सभी में निरन्तर वृद्धि हुई है।

नियोजित अर्थव्यवस्था में कृषि उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए भूमि की उत्पादन क्षमता बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। प्रथम योजना में ५८,३१० टन कम्पोस्ट वितरित किया गया जबकि दूसरी योजना में १२,१४,००० टन कम्पोस्ट

का वितरण हुआ। १९६२-६३ मे ५ हजार मैट्रिक टन कम्पोस्ट का वितरण हुआ तथा १७ हजार मैट्रिक टन नेत्रजन खाद का वितरण किया गया। प्रथम योजना म उन्नत बीज वितरण पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इस काल मे ८,९९८ टन उत्तम बीज का वितरण किया गया। दूसरी योजना मे ३८ बीज उत्पादन फार्म तथा १७४ गोदामो का निर्माण किया गया और तीसरी पचवर्षीय योजना म १५ कृषि फार्म तथा ५० बीज गोदाम स्थापित किये गय।

गहन कृषि-कार्यक्रम चालू किये गय जो कि पाली तथा सिरोही दोनो जिलो मे बडे पैमाने पर चालू किय गय। कोटा व झालावाड जिलो मे ज्वार के लिए, अलवर जिले म बाजरा, जयपुर, भरतपुर, गगानगर एव उदयपुर जिले मे कपास के लिए गहन कृषि कार्यक्रम अपनाय गये।

कृषि कार्यक्रमो मे एक महत्वपूर्ण कदम सूरतगढ कृषि फार्म है जो कि सोवियत सघ की सहायता से स्थापित किया गया है। यहाँ ३० हजार एकड भूमि को खेती के योग्य बनाया गया। इस फार्म म मशीनो से खेती होती है। यहाँ गर्म हवाओ से फसल को बचाने के लिए पडो की बाड लगायी गयी है। राजकीय क्षेत्र मे विशाल एव मशीनीकृत फार्मो की दिशा मे यह सर्वथा एक नवीन प्रयोग था।

खेती के विकास के लिए उपयोगी उपकरणो व मशीनो के निर्माण के लिए विभिन्न स्थानो पर कारखाने स्थापित किये गये हैं। कोटा, जयपुर, पाली, हनुमानगढ, चित्तौडगढ तथा नागौर आदि स्थानो पर यन्त्रालय स्थापित किये गय हैं। विभिन्न कीटो तथा रोगो से फसलो के बचाव के लिए १९६५-६६ मे १०० फसल सरक्षण दलो का गठन किया गया है। गगानगर जिले म फसल सरक्षण औषधियाँ वायुयानो द्वारा छिडकी गयी। तीसरी योजना म पौधा सरक्षण का कार्य ५१ ३० लाख हेक्टेयर मे किया गया।

द्वितीय योजना काल म ४ ०५ लाख टन हेक्टेयर भूमि मे दोहरी फसलो की खेती हुई तथा तीसरी योजना मे ४ २० लाख हेक्टेयर भूमि मे दोहरी फसल के लिए सुविधाएँ प्रदान की गयी। तीसरी योजना मे ११ ७२ लाख एकड भूमि चकबन्दी के अन्तर्गत ली गयी, जबकि दूसरी योजना में ७ ९ लाख हेक्टेयर भूमि की चकबन्दी की गयी। तीसरी योजना की अवधि मे १ ६६ लाख हेक्टेयर नयी भूमि कृषि के अन्तर्गत लायी गयी।

भूमि के कटाव को रोकने के प्रयत्न किये गये। प्रथम योजना मे भूमि सरक्षण कार्यक्रमो पर अधिक ध्यान दिया गया। चम्बल, पारवती तथा अन्य नदियो की घाटियों म सरक्षण कार्य किये गये। मरुस्थल के प्रसार को रोकने के भी प्रयत्न किये गये लगभग ६०७ हेक्टेयर पर्वतीय भूमि मे भी भूमि सरक्षण कार्य किये गये। तीसरी योजना मे दूसरी योजना के अधूरे कार्यक्रमो को पूरा किया गया तथा लवणीय व क्षारीय भूमि के सरक्षण का कार्य किया गया। तीसरी योजना के अन्त तक ४ २० लाख हेक्टेयर भूमि के सरक्षण कार्य १६ १९ लाख हेक्टेयर भूमि मे बाढ तथा मेडबन्दी करके किया गया।

वार्षिक योजनाएँ एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

कृषि कार्यक्रमों पर १९६६ ६७ तथा १९६७ ६८ में क्रमश ८ ७६ करोड़ रुपये (वास्तविक) तथा ६ १६ करोड़ रुपये (संशोधित व्यय का अनुमान) व्यय किये गये। तीन वार्षिक योजनाओं में कृषि विकास के आधार पर खाद्यान्न उत्पादन निम्न प्रकार है

वार्षिक योजनाएं एवं कृषि विकास

मदें	इकाई	१९६६ ६७	१९६७ ६८	१९६८ ६९
१ खाद्यान्न	लाख टन	४३ २५	६५ ७२	४२ ४८
२ तिलहन		३ २५	३ २५	२ ८१
३ कपास	लाख गाँठ	१ ८४	२ २६	१ ६६
४ गन्ना	लाख टन	० २६	० ३१	० ६०

प्रथम दो वार्षिक योजनाओं में कृषि उत्पादन के सभी मदों में वृद्धि हुई किन्तु तृतीय वार्षिक योजना (१९६८ ६९) में अकाल के कारण खाद्यान्न तिलहन तथा कपास में काफी कम उत्पादन हुआ। इस वर्ष अकाल राहत के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि कार्यक्रमों पर २४ ० करोड़ रुपये व्यय करने का प्रस्ताव है। इसके आधार पर खाद्यान्न में ६ से ७ प्रतिशत तक की वृद्धि तथा अन्य नकद फसलों में ८ से ९ प्रतिशत तक की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। इस योजना में खाद्यान्न उत्पादन में ६४ लाख टन का लक्ष्य रखा गया है।

इस योजना में खाद के वितरण का उत्तरदायित्व सहकारी संस्थाओं को वहन करना होगा। खाद की अधिक माँग की पूर्ति के प्रयत्न किये जायेंगे। एक कृषि औद्योगिक निगम (Agri Industrial Corporation) की स्थापना भी की जा रही है। इससे किसानों को अच्छे तथा नये औजार उपलब्ध हो सकेंगे। कृषि वित्त निगम (Agricultural Refinance Corporation) के द्वारा किसानों को ५ करोड़ रुपये सहायता प्रदान करने की योजना है। आशा है चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास तेज गति से हो सकेगा।

प्रश्न

१ राजस्थान में कृषि की क्या दशा है ? पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के क्या प्रयत्न किये गये हैं ?

२ राजस्थान में निम्नलिखित उपजों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
(i) बाजरा (ii) ज्वार (iii) गन्ना।

३ राजस्थान में पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर एक निबन्ध लिखिए।

अध्याय १६

सिंचाई तथा नदी घाटी योजनाएँ
(IRRIGATION AND RIVER VALLEY PROJECTS)

राजस्थान मे वर्षा का अभाव रहता है । कभी-कभी भयकर अकाल पडते हैं, जिससे जन-धन का विनाश होता है । राज्य की अर्थव्यवस्था डांवाडोल हो जाती है, वर्ष १९६८-६९ इसका ज्वलन्त उदाहरण है । सिंचाई से राज्य का काफी भू-भाग कृषि योग्य हो सकता है, अनेक प्रकार की कृषि उपजें पैदा हो सकती हैं, थार के रेगिस्तान को हरे-भरे खेतों मे परिणित किया जा सकता है । सरकार इस तरफ प्रयत्नशील है । राजस्थान नहर के पूर्ण हो जाने पर राज्य की अर्थव्यवस्था में काफी सुधार होने की सम्भावना है । इस परियोजना से पश्चिमी राजस्थान की बजर भूमि कृषि योग्य हो सकेगी ।

सिंचाई के विकास के लिए जल स्रोत उपलब्ध होन नितान्त आवश्यक हैं । राजस्थान मे जल साधनों का अभाव है । चम्बल नदी के अतिरिक्त यहाँ नदियों में बारह महीने पानी नहीं बहता है अत नहरों के विकास मे कठिनाई है । पानी बहुत गहरा होने के कारण कुँओं द्वारा भी सिंचाई कठिन है । तालाबो का भी विशेष महत्त्व नही है । अत. सिंचाई विकास के लिए दूसरे राज्यों के जल स्रोतों पर आश्रित रहना पडता है । सिंचाई के तीनों साधनो का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है :

सिंचाई के साधन

राजस्थान मे कुएँ, तालाब तथा नहरों से सिंचाई की जाती है । इस राज्य मे इनका विकास धीरे-धीरे हो रहा है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात कुँओं तथा नहरो के विकास पर विशेष जोर दिया जा रहा है । विभिन्न साधनो से सिंचाई निम्न प्रकार होती है .

(१) कुओं द्वारा सिंचाई

राजस्थान मे कुँओं का अधिक विकास नही हो पाया; क्योंकि अधिकतर भागों मे पानी बहुत गहरा है । अनेक स्थानो पर पानी खारा भी है अत. सिंचाई के लिए अनुपयुक्त है । किन्तु जिन भागो मे पानी अधिक गहरा नहीं है, और मिट्टी उपजाऊ है, वहाँ सिंचाई की जाती है ।

राजस्थान मे जयपुर, भरतपुर, टोंक, अलवर, अजमेर, उदयपुर, बूँदी आदि

जिलों में पानी कम गहराई पर उपलब्ध हो जाता है, अतः यहाँ सिंचाई की जाती है। पश्चिमी राजस्थान में कुँओं द्वारा सिंचाई नहीं हो सकती है।

कुँओं से सिंचित क्षेत्र

वर्ष	सिंचित क्षेत्र
१९५५-५६	८७२ हजार हेक्टेयर
१९६०-६१	१,०१४ ,,
१९६५-६६	१०२३ ,,
१९७०-७१	१,५७० ,,

कुँओं द्वारा सिंचाई के क्षेत्र में बहुत कम दर से वृद्धि हो रही है। अब धीरे-धीरे कुँओं का विकास हो रहा है। सरकार भी प्रयत्नशील है। ग्रामों में बिजली व्यवस्था का विकास किया जा रहा है जिससे सिंचित क्षेत्र में काफी वृद्धि होने की सम्भावना है। राज्य सरकार सिंचाई के लिए और सुविधाएँ प्रदान कर रही है। भूमि बन्धक बैंक कुँओं के विकास के लिए ऋण प्रदान कर रही है। आशा है चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक इस दिशा में काफी विकास किया जा सकेगा।

राजस्थान में धीरे-धीरे नल-कूपों का भी विकास किया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार की सहायता से राज्य सरकार ने जोधपुर में भूगर्भ स्थित जल भण्डार की जाँच करने के लिए भूगर्भ जल मण्डल (Underground Waters Board) की स्थापना की। इस मण्डल ने काफी प्रयोग किये किन्तु अधिक सफलता नहीं मिली है। अनेक कठिनाइयों के कारण नलकूपों का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया।

(२) तालाब

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग तथा मध्य पर्वतीय क्षेत्र में तालाबों द्वारा सिंचाई होती है। यहाँ की अधिकांश नदियाँ केवल वर्षा काल में बहती हैं अतः उनका पानी इकट्ठा करके सिंचाई के काम में लाया जा सकता है। इस राज्य में कुछ तालाब प्राचीन हैं जिनका सिंचाई में अधिक महत्त्व नहीं है।

राजस्थान में १९५१-५२ में ८२ हजार हेक्टेयर भूमि में तालाबों से सिंचाई की गयी, जबकि १९५५-५६ में १७८ हजार हेक्टेयर भूमि में इनसे सिंचाई की गयी। वर्ष १९६०-६१ में १९९ हजार हेक्टेयर और १९६५-६६ में २०१ हजार हेक्टेयर में तालाबों से सिंचाई की गयी है। १९७०-७१ में इससे भी अधिक क्षेत्रों में तालाबों से सिंचाई की गयी।

(३) नहरें

राजस्थान में अधिकांश नदियाँ बरसाती हैं। वर्षा काल में ये नदियाँ काफी तेज गति से बहती हैं और इनका पानी व्यर्थ ही बह जाता है। कुछ नदियों के पानी को रोककर नहरों की व्यवस्था की गयी है। चम्बल नदी राजस्थान की वर्ष भर बहने वाली नदी है। इसके पानी को सिंचाई के काम में लाया जाने लगा है। राजस्थान में कुछ नहरें दूसरे राज्यों से लायी गयी हैं।

राजस्थान मे १६५१-५२ मे नहरो से सिंचित क्षेत्रफल २२४ हजार हेक्टेयर था जो कि १६६०-६१ म ५३५ हजार हेक्टेयर हो गया। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष म नहरो से ४८७ हजार हेक्टेयर भूमि म सिंचाई की गयी। भविष्य मे राजस्थान नहर पूर्ण हो जाने पर अधिक क्षेत्र म सिंचाई की जा सकेगी। राज्य की विभिन्न नहरो का विवरण नीचे दिया जा रहा है

गग नहर (Ganga Canal)—इस नहर को महाराजा श्री गगा सिंह ने सन् १६२१ मे बनवाया। यह नहर पूर्वी पजाव म फिरोजपुर के निकट सतलज नदी से निकाली गयी है। बीकानेर डिवीजन के गगानगर, रायसिंहनगर, जारोवर, अनूपगढ, सरुपसर, आदि क्षेत्रो म सिंचाई की जाती है। इस नहर से सिंचाई के कारण गगानगर हरा-भरा क्षेत्र बन गया और गेहूँ, गन्ना, कपास आदि फसल उत्पन्न करने लग गया। इस नहर से ३ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है।

भरतपुर नहर शाखा—इस नहर से पूर्वी राजस्थान के भरतपुर जिले मे लगभग ४७ हजार हेक्टेयर भूमि म सिंचाई की जाती है। यह नहर आगरा नहर से निकाली गयी है जो १६६० तक बनकर तैयार हो गयी। इसके निर्माण मे लगभग १५ लाख रुपये व्यय किये गये। इस नहर की शाखाओ सहित लम्बाई ६४ किलोमीटर है। मुख्य नहर केवल २६ किलोमीटर लम्बी है।

राजस्थान नहर—राजस्थान नहर का कार्य सन् १६५८ मे आरम्भ किया गया था। इस परियोजना का कार्य दो चरणो मे पूरा किया जायेगा। इसके प्रथम चरण मे राजस्थान फीडर एव १६६ ०२ किलोमीटर नहर सम्मिलित की गयी है। द्वितीय चरण मे १६६ ३४ किलोमीटर से ४६६ ६१ किलोमीटर तक की नौशेरा शाखा से आगे की शाखाओ सहित मुख्य नहर का निर्माण किया जायेगा। वर्ष १६७७-७८ तक सम्पूर्ण होने की सम्भावना हैं। वर्ष १६६६-६७ मे इस नहर से ५२ ६ हजार हेक्टेयर मे सिंचाई की गयी। वर्ष १६६७-६८ मे लगभग ८० हजार हेक्टेयर भूमि मे सिंचाई की गयी।

चम्बल परियोजना की नहरें—इस परियोजना का निर्माण कार्य वर्ष १६५३-५४ मे शुरू किया गया। इससे सिंचाई कार्य नवम्बर १६६० से शुरू किया गया था। वर्ष १६६६-६७ मे चम्बल परियोजना की नहरो से ६६ ६७ हजार हेक्टेयर भूमि मे सिंचाई की गयी। ये नहरें नदी के दोनो किनारो से निकाली गयी हैं। इनसे कोटा, बूँदी, झालावाड, सवाईमाधोपुर, भरतपुर तथा टोंक जिलो मे सिंचाई हो सकेगी।

भाखरा की नहरें—यह बहुउद्देशीय परियोजना है जिसका कार्य १६४६ म आरम्भ किया गया। सिंचाई कार्य १६५४ से चालू किया गया है। राजस्थान, पजाब तथा हरियाणा राज्यों द्वारा इन नहरो का निर्माण किया जा रहा है। राजस्थान की लगभग ६० हजार हेक्टेयर भूमि मे इस प्रणाली से सिंचाई की जाती है।

इन नहरो के अतिरिक्त कुछ अन्य नहरें भी हैं जिनका विवरण आगे नदी,

घाटी योजनाओं के अन्तर्गत किया गया है। मुख्य नहरें जवाई बांध परियोजना, माही नदी परियोजना, मोराई नदी परियोजना की नहरें हैं।

पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सिंचाई

सिंचाई कार्यक्रमों पर प्रथम योजना में ३,०२४·४० लाख रुपये, द्वितीय योजना में २,३१८·६२ लाख रुपये तथा तृतीय योजना में ८,४२३·०१ लाख रुपये (संशोधित) व्यय किये गये। प्रथम योजना के पूर्व सिंचित क्षेत्रफल ११·७४ लाख हेक्टेयर था जो प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं के अन्त तक क्रमशः १४·७४ लाख हेक्टेयर १७·३२ लाख हेक्टेयर तथा २०·४४ लाख हेक्टेयर हो गया।

राजस्थान नहर योजना' का कार्य १९५८ में शुरू किया गया। द्वितीय योजना में इस परियोजना पर १३·०७ करोड़ रुपये व्यय किये गये। तीसरी योजना में २६·१३ करोड़ रुपये व्यय किये गये। १९६५-६६ तक राजस्थान फीडर का कार्य तथा मुख्य नहर के ४५ किलोमीटर मार्ग पर कार्य पूर्ण हो चुका था।

तीसरी योजना में पोंग बांध पर राज्य को २४·७५ करोड़ रुपये खर्च करने पड़े। इस योजना में भाखरा नांगल परियोजना में ५४·७६ लाख रुपये राजस्थान में चल रहे कार्यों पर तथा १३८·७६ लाख रुपये सम्मिलित कार्यों पर व्यय किये गये। 'चम्बल योजना' के अन्तर्गत १९६० से सिंचाई आरम्भ की गयी। माही परियोजना द्वितीय पंचवर्षीय योजना में चालू की गयी।

प्रथम योजना में २४४ लघु सिंचाई कार्य चालू करने थे। इनमें से १८७ लघु योजनाएं पूर्ण हो चुकी थीं जिन पर ५३·०५ लाख रुपये व्यय किया गया। इस योजना में लघु सिंचाई पर कुल व्यय १०६·६२ लाख रुपये था। इस मद में द्वितीय तथा तृतीय योजना में क्रमशः २२७·८६ लाख एवं १,१२३·६० लाख (संशोधित) व्यय किया गया।

वर्ष १९६६-६७ में सबसे अधिक धनराशि सिंचाई एवं विद्युत के लिए रखी गयी, जो कुल प्रावधान की लगभग ६१ प्रतिशत थी। इस वर्ष कुल सिंचित क्षेत्र २२·२१ लाख हेक्टेयर था जो कि वर्ष १९६५-६६ से अधिक था।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सिंचाई एवं विद्युत के क्षेत्रों में ११३ करोड़ रुपये व्यय करने का अनुमान है। राजस्थान सरकार ने सहकारी समितियों को छोटी सिंचाई योजनाओं के लिए किसानों को ऋण देने के लिए कोष दिये हैं। चतुर्थ योजना में चार मध्यम श्रेणी सिंचाई योजनाओं को भी सम्मिलित किया जायेगा। सात लाख हेक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करने का अनुमान है।

जल साधन स्रोत

राजस्थान में जल साधनों का अभाव है। यहां अधिकांश वर्षा काल में बहने वाली नदियां हैं। विभिन्न नदी घाटियां अग्र प्रकार हैं।

(१) लूनी घाटी,
(२) सूकली घाटी,
(३) पश्चिमी बनास घाटी,
(४) बनास घाटी,
(५) माही घाटी,
(६) साबरमती घाटी,
(७) गम्भीरी घाटी,
(८) बाण गगा घाटी,
(९) चम्बल घाटी,
(१०) विविध घाटियाँ।

उपरोक्त घाटियों के जल को काम मे लाने के लिए परियोजनाएँ चालू की गयी हैं जिनका विवरण आगे दिया गया है। भविष्य में इन घाटियों के जल को उचित विधि से काम मे लेने पर राज्य का काफी विकास हो सकेगा। कुछ परियोजनाएँ राज्य के बाहर के जल पर आधारित हैं जैसे राजस्थान नहर, भाखरा नागल की नहरें आदि।

नदी घाटी योजनाएँ

राजस्थान मे नदी घाटी योजनाओं का विकास किया जा रहा है। इन नदी घाटी योजनाओं के मुख्य उद्देश्य सिंचाई, विद्युत, मछली-पालन, मिट्टी के कटाव की रोक, परिवहन का विकास, पीने का पानी का विकास आदि है। इन बहुउद्देशीय परियोजनाओं से राजस्थान का काफी आर्थिक विकास हो सकेगा। थार का रेगिस्तान हरा-भरा हो जायेगा और राज्य की आर्थिक स्थिति भी अच्छी हो सकेगी। कृषि विकास कार्य इन परियोजनाओं पर आधारित हैं। इन परियोजना का विवरण नीचे विस्तार से किया गया है :

१. राजस्थान नहर

राजस्थान का उत्तर पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र राजस्थान नहर से सिंचित होकर लहलहाते खेतों मे परिणित किया जा रहा है। इससे बीकानेर, गगानगर तथा जैसलमेर जिलों मे सिचाई सुविधा प्राप्त हो सकेगी जिससे यह क्षेत्र काफी समृद्ध हो जायेगा। सन् १९५७ में इस योजना को प्रशासकीय स्वीकृति मिली तथा १९५८ में हरिके बांध (Harike Dam) से राजस्थान नहर निकाली गयी।

राजस्थान नहर परियोजना का कार्य दो चरणों में पूरा किया जायेगा। **'प्रथम चरण'** के अन्तर्गत राजस्थान फीडर का निर्माण तथा १९६०२ किलोमीटर मुख्य नहर (जिसमे सूरतगढ शाखा, निचली सतह वाली शाखा, नौरोरा शाखा एव सम्पूर्ण वितरण की नहरें हैं) सम्मिलित किये गये हैं। **'द्वितीय चरण'** के अन्तर्गत १९६·०२ किलोमीटर से ४६६ ८ किलोमीटर तक की सम्पूर्ण नहर वितरण प्रणाली सहित मुख्य नहर है।

परियोजना की प्रगति—राजस्थान नहर १९५८ में हरिके बांध से निकाली गयी। इस परियोजना का महत्त्वपूर्ण भाग राजस्थान फीडर है जिसकी पजाब तथा हरियाणा में लम्बाई १७९ ६ किलोमीटर है तथा राजस्थान मे ३५·२५ किलोमीटर है। राजस्थान फीडर का कार्य पूरा हो चुका है।

राजस्थान नहर ४६६·८ किलोमीटर लम्बी होगी जो कि सम्पूर्ण राजस्थान

से होगी। राजस्थान नहर को आरम्भ में रावी तथा व्यास नदियों से प्रभावित पानी प्राप्त हो सकेगा जो बाद में इन नदियों पर बनाये गये बाँधों से पानी इकट्ठा करके नहर को दिया जायेगा।

राजस्थान नहर परियोजना के प्रथम चरण के अन्तर्गत रखे गये राजस्थान फीडर तथा प्रथम १६६ ४२ किलोमीटर राजस्थान नहर के निर्माण का लक्ष्य चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में पूर्ण हो जायेगा। राजस्थान फीडर का निर्माण पूर्ण हो चुका है।

मार्च सन् १९७० तक राजस्थान फीडर के अतिरिक्त मुख्य राजस्थान नहर के ११२ किलोमीटर तक के भाग का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। अब मुख्य राजस्थान नहर के ११२वें किलोमीटर से १९६वें किलोमीटर तक के भाग पर निर्माण कार्य चल रहा है।

राजस्थान नहर परियोजना के पूर्ण हो जाने पर लगभग ११ ६३ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। परियोजना पर कुल व्यय १८४०६ करोड़ रुपये का होगा। प्रथम चरण के अन्तर्गत तृतीय योजना के अन्त तक ४२ ५ करोड़ रुपये व्यय हुए थे और १९६९-७० के अन्त तक इस परियोजना पर लगभग ६५ करोड़ रुपये व्यय किये जा चुके हैं। धन की कमी इसके निर्माण में सबसे बड़ी बाधा रही है। राजस्थान सरकार के साधन सीमित हैं।

३० मार्च, १९७१ को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने राजस्थान नहर परियोजना को राष्ट्रीय परियोजना स्वीकार कर लिया। इससे पहले राजस्थान नहर परियोजना पर राजस्थान सरकार कार्य कर रही थी, तथा धन के अभाव में योजना पर तेजी से काम नहीं चल रहा था। अब केन्द्रीय सरकार द्वारा इस योजना का व्यय भार वहन किया जायगा।

राजस्थान नहर परियोजना का बीकानेर, लूणकरणसर लिफ्ट सिंचाई योजना काफी महत्वपूर्ण है। लिफ्ट नहर की जलपूर्ति राजस्थान नहर से २०० फीट की ऊँचाई पर पम्प द्वारा ५४० क्यूसेक पानी लेकर किये जाने का प्रस्ताव है। लिफ्ट नहर के पूर्ण हो जाने पर लूणकरणसर, जामसर तथा बीकानेर के आसपास लगभग ४० हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई हो सकेगी। यह क्षेत्र जिप्सम, भूरा कोयला, बेन्टोनाइटिस, मिट्टी अथवा कंकर-चूना में बहुत धनी है। किन्तु पानी के अभाव में इस क्षेत्र का विकास नहीं हो पाया। बीकानेर लूणकरणसर लिफ्ट नहर पर अनुमानित व्यय ७ करोड़ रुपये है।

राजस्थान नहर की अन्य मुख्य शाखाएँ सूरतगढ़ शाखा, अनूपगढ़ शाखा, नोहेरा शाखा, दुलेर शाखा, बिरसलपुर शाखा आदि हैं। इनके अतिरिक्त कोलायतसर तथा रावतसर वितरक नहरें भी हैं।

राजस्थान नहर के सम्भावित लाभ—राजस्थान के उत्तर पश्चिमी निर्जन भू-भाग को हरा-भरा करने वाली राजस्थान नहर अपने ढंग की विश्व की सबसे बड़ी नहरों में होगी। यह मरुस्थल के लिए वरदान तथा गंगा के समान होगी। इससे

बहुत बडे क्षेत्र मे सिंचाई होगी। नहर के द्वारा समृद्धिशाली अर्थव्यवस्था का निर्माण होगा। इस परियोजना के अन्तर्गत कृषि उद्योग, व्यापार, वन-स्थापना, पशु-पालन, मछली पालन व्यवसाय, काफी लोगों को रोजगार प्रदान करना तथा उनका पुनर्वास आदि प्रमुख कार्यक्रम हैं। इससे मुख्य लाभ निम्न प्रकार होंगे :

(१) राजस्थान नहर से गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर आदि जिलों के लगभग ११.६३ लाख हेक्टेयर भूमि मे सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो सकेगी। सिंचाई व्यवस्था से इस क्षेत्र का कृषि विकास होगा। इस नहर से राजस्थान की खरीफ फसल से ३२% भाग, रबी फसल के ४५ प्रतिशत भाग को पानी सुविधा उपलब्ध हो सकेगी।

(२) राजस्थान नहर परियोजना से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में लगभग २० से २५ लाख टन की वृद्धि हो सकेगी। किसानो द्वारा वैज्ञानिक साधनों तथा सकर बीजो के उपयोग करने पर पैदावार और भी बढायी जा सकेगी।

(३) इस क्षेत्र में सदियों से चले आ रहे अकाल की स्थिति दूर होगी। अन्न की कमी पूरी होगी। पानी की उपलब्धि होगी तथा अनेक कष्टो का निवारण किया जायेगा।

(४) नहर के निकट क्षेत्रो मे पेयजल की व्यवस्था की जायेगी।

(५) इस परियोजना के अन्तर्गत भविष्य मे विद्युत उत्पन्न करने की भी योजना है। यद्यपि इस नहर के मार्ग मे कहीं भी प्रपात नहीं होंगे, फिर भी विभिन्न शाखाओं तथा वितरको पर कृत्रिम प्रपात बनाये जा सकेंगे और उनसे बिजली उत्पन्न की जा सकेगी।

(६) इस परियोजना मे लगभग १.५ लाख परिवारो को जीविका कमाने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

(७) इससे सघन कृषि कार्यक्रमो मे सहायता मिलेगी। भूमि कटाव को रोका जायेगा। वृक्षारोपण कार्यक्रम चालू किये जायेंगे। इस क्षेत्र मे नवीन ग्राम तथा शहर बसेंगे।

(८) राजस्थान नहर क्षेत्र मे कृषि तथा उद्योगो के विकास के लिए आवास बस्तियाँ बसाने की योजना है। इस योजना के अन्तर्गत भूमिहीन किसानो, सैनिकों तथा अन्य विस्थापितो को बसाने की व्यवस्था की जा रही है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पश्चिमी रेगिस्तान की प्यासी धरा को पानी दिया जायेगा। इस क्षेत्र को अकाल से बचाया जायेगा तथा मरुस्थल को हरे भरे खेतों मे परिणित किया जायेगा।

ब्यास परियोजना (Beas Project)

यह परियोजना पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान सरकारो की संयुक्त योजना है। इसकी दो इकाइयाँ हैं। प्रथम ब्यास-सतलज लिंक तथा द्वितीय पोंग स्थान पर पोंग बाँध। इस परियोजना से सिंचाई तथा विद्युत उत्पादन की जायेगी। सतलज नदी से जल भाखरा नंगल बाँध को और ब्यास व रावी नदियो का पानी राजस्थान

नहर को प्राप्त होगा। व्यास परियोजना से इन नदियों से नियमित रूप से पानी उपलब्ध हो सकेगा।

सम्पूर्ण व्यास परियोजना पर २०८ करोड़ रुपये व्यय किये जाने का अनुमान है। इसमें अमरीका तथा विश्व बैंक से भी निर्माण कार्य में सहायता प्राप्त हो रही है। पोंग बाँध की ऊँचाई लगभग ११६ मीटर होगी। इससे राजस्थान नहर को पानी मिल सकेगा। पोंग बाँध पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में २१ लाख हेक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिंचाई सुविधा प्रदान कर सकेगा। इस बाँध के निकट २४० मेगावाट का एक शक्ति गृह भी बनाया जायेगा।

व्यास सतलज लिंक पर पान्डो (Pandoh) नामक स्थान पर एक बाँध बनाया जायेगा। इसके अतिरिक्त दो सुरंगें तथा खुली चैनल होगी। देहर नामक स्थान पर एक विद्युत शक्ति संयन्त्र लगाया जायेगा जिसकी क्षमता ६६० मेगावाट होगी। पंजाब तथा हरियाणा के लगभग ५.३ लाख हेक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिंचाई भी हो सकेगी।

व्यास परियोजना से लगभग २६ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा सकेगी जिसमें से अधिकतर केवल पोंग बाँध से हो सकेगी। इस योजना से १,०१० मेगावाट विद्युत उत्पन्न की जा सकेगी। सन् १९६७ में व्यास निर्माण बोर्ड (Beas Construction Board) की स्थापना की गयी जो कि पंजाब पुनः गठन एक्ट, १९६६ के अधीन था। यह बोर्ड केन्द्रीय सरकार को व्यास परियोजना के निर्माण कार्यों में सलाह प्रदान करता है।

जवाई बाँध परियोजना

जवाई परियोजना पाली तथा जोधपुर जिले की महत्त्वपूर्ण परियोजना है। इसका कार्य १९४६ में आरम्भ किया गया। राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् इसका निर्माण कार्य राजस्थान सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। जवाई बाँध, जवाई नदी पर बनाया गया है। सन् १९५६ में यह बनकर तैयार हो गया। सन् १९५१ में बाँध से एक नहर निकाली गयी जिससे पाली जिले में सिंचाई होती है। दूसरी नहर सिरोही जिले में सिंचाई के लिए निकाली गयी है। इस परियोजना से जोधपुर जिले को पीने का पानी उपलब्ध कराया गया है। जोधपुर क्षेत्र के लिए एक पक्की नहर द्वारा पीने का पानी सुलभ कराया गया है।

इस परियोजना पर कुल व्यय लगभग ३ करोड़ रुपये हुआ। प्रतिवर्ष लगभग २२ *हजार हेक्टेयर* भूमि में सिंचाई होने लगी है। इसके अन्तर्गत ४० हजार किलोवाट विद्युत उत्पन्न करने की भी योजना थी मगर पानी के अभाव से कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी। इस योजना द्वारा २० हजार टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न होने का अनुमान लगाया गया है।

माही परियोजना

माही परियोजना द्वारा आदिवासी क्षेत्र (बांसवाड़ा के निकट) के लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये गये हैं। इस परियोजना की लागत २६ करोड़ रुपये है। माही नदी विन्ध्याचल पर्वत से निकल कर उत्तर पश्चिम में बहती है। बांसवाड़ा जिले में से दक्षिण-पश्चिम दिशा में घूमती हुई गुजरात में प्रवेश करती है। माही नदी के जल का उपयोग करने के लिए इस परियोजना को चालू किया गया।

बांसवाड़ा जिले की यह बहुउद्देशीय परियोजना है जिसका कार्य १९५९-६० में आरम्भ किया गया। इस परियोजना में सर्वेक्षण तथा अन्वेषण कार्य पूर्ण हो चुका है। सड़कों, मकानों तथा आवश्यक पुलों का निर्माण हो रहा है। बांसवाड़ा से लगभग १६ किलोमीटर दूर उत्तर पूर्व में बोरखेड़ा ग्राम के पास लगभग २·२ किलोमीटर लम्बा मुख्य बांध होगा। इस जगह से ६ किलोमीटर दूर १६ किलोमीटर लम्बा मिट्टी का बांध बनाया जा रहा है। माही परियोजना में राजस्थान एवं गुजरात राज्य के लगभग २·२ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होने की सम्भावना है।

इस परियोजना के अन्तर्गत दो बिजली घर बनाने की योजना है। प्रथम बिजलीघर माही जलाशय के निकट होगा जिसकी क्षमता २० मेगावाट होगी। द्वितीय बिजलीघर हेगपुरा ग्राम के निकट होगा जिसमें २५ मेगावाट के तीन सयन्त्र लगेंगे।

ओराई सिंचाई परियोजना

इस परियोजना के अन्तर्गत चित्तौड़गढ़ बूंदी सड़क पर भोपालपुर गाँव के निकट ओराई नदी पर बांध का निर्माण किया गया है। बांध चित्तौड़गढ़ से लगभग ३५ किलोमीटर दूर है। इसकी लागत लगभग ४५ लाख रुपये हैं। इससे चित्तौड़गढ़ तथा भीलवाड़ा जिलों की लगभग २५ हजार हेक्टेयर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

बांध का निर्माण कार्य १९६२ में आरम्भ किया गया और १९६३ में नींव की खुदाई का कार्य पूर्ण किया गया। बांध का निर्माण कार्य १९६७ में पूरा हुआ।

उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त भाखरा नांगल परियोजना तथा चम्बल परियोजना अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिनका विस्तृत विवरण अध्याय दस में नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत किया गया है।

राजस्थान की विभिन्न नदी घाटी योजनाओं से राज्य का काफी विकास हो सकेगा। राजस्थान नहर पूर्ण हो जाने पर थार का रेगिस्तान हरे-भरे खेतों में परिणित हो जावेगा। भाखरा नांगल, चम्बल, माही, ओराई आदि परियोजनाओं से राज्य का विकास किया जा रहा है। सिंचाई से राज्य का कृषि विकास किया जा रहा है जिसका प्रभाव उद्योग धन्धों पर भी पड़ रहा है। राज्य के विभिन्न भागों में उद्योगों का विकास किया जा रहा है। अतः सिंचाई विकास का इस राज्य के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रश्न

१ राजस्थान में सिंचाई के कौन-कौन से साधन हैं ? पंचवर्षीय योजनाओं में इसके विकास के लिए क्या प्रयत्न किये गये हैं ।

२ राजस्थान नहर परियोजना' पर संक्षिप्त लेख लिखिए ।

३ राजस्थान में कौन-कौन सी मुख्य नहरें हैं ? इससे राज्य के कृषि विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

४ राजस्थान की किसी एक नदी घाटी योजना का विवेचन कीजिए ।

(राजस्थान, टी० डी० सी०, १९७०)

अध्याय १७

औद्योगिक विकास एवं प्रमुख उद्योग

(INDUSTRIAL DEVELOPMENT AND MAJOR INDUSTRIES)

राजस्थान औद्योगिक स्वरूप में पिछड़ा हुआ है। इसका प्रमुख कारण यहाँ एकीकरण से पूर्व औद्योगिक विकास के साधनों का अभाव रहा है। यद्यपि इस राज्य में व्यवसाय कुशलता की कोई कमी नहीं है तथापि औद्योगिक क्षेत्र में प्रशिक्षित कर्मचारियों, विद्युत-शक्ति की सुलभता, राजकीय सुविधाओं, यातायात एवं सन्देश-वाहन के साधनों आदि की कमी रही है। राज्य के एकीकरण से पूर्व यहाँ सगठित उद्योगों की सख्या बहुत ही कम थी। इनका उपयुक्त आर्थिक पृष्ठ भूमि के अभाव में विकास नहीं हो पाया।

एकीकरण के पश्चात् सरकार का ध्यान औद्योगिक विकास की ओर आकर्षित हुआ। पचवर्षीय योजनाओं में यहाँ औद्योगिक विकास का सुनियोजित ढग से प्रयास किया गया है। कुछ क्षेत्रों में सन्तोषजनक परिणाम भी निकले हैं। औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ बहुउद्देशीय योजनाओं के कारण बढी हैं। भाखरा-नागल तथा चम्बल परियोजना स सस्ती विद्युत उपलब्ध होने से औद्योगिक विकास की गति तीव्र होती जा रही है।

पचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास

राजस्थान के एकीकरण स पूर्व राज्य में सगठित उद्योग बहुत कम थे। विशेषकर जयपुर क्षेत्र म उद्योगों का कुछ विकास हो पाया था। उद्योगों में मुख्य बालबियरिंग कम्पनी, जयपुर मेटल्स एव इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, मान इण्डस्ट्रियल कारपोरेशन आदि। जयपुर म तथा सवाईमाधोपुर और लखेरी म दो सीमेण्ट के कारखाने थे। इनके अतिरिक्त पाली, ब्यावर, भीलवाडा और गगानगर म सूती कपडे की मिलें थीं। प्रथम पचवर्षीय योजनाओं म शक्ति के साधनों के अभाव को अनुभव किया गया अत छोटे उद्योगों की तरफ अधिक ध्यान दिया गया। औद्योगिक प्रशिक्षण पर भी अधिक बल दिया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, राजगढ, चूरु में चालू किया गया। लघु उद्योगों के उत्पादों के विक्रय के विपणन की व्यवस्था की गयी। प्रथम योजना में ३५ ताड गुड केन्द्रों की स्थापना की गयी, १ भेड प्रजनन शोध केन्द्र, ३ भेड प्रजनन फार्म खोले गय।

'द्वितीय योजना', में औद्योगिक सर्वेक्षण पर अधिक जोर दिया गया। बड़े उद्योगों में भरतपुर में वैगन फैक्टरी चालू की गयी। गंगानगर चीनी मिल सरकारी क्षेत्र में आ गयी। भूपाल चीनी मिल ने भी अपनी क्षमता बढ़ायी। १ पायलेट प्लांट सोडियम सल्फेट का स्थापित किया गया। चित्तौड़गढ़, सिरोही, नागौर तथा सोजत में आधुनिक उपकरणों सहित औद्योगिक वर्कशाप स्थापित किये गये। द्वितीय योजना के अन्त तक पंजीकृत कारखानों की संख्या १,२६४ थी। इस योजना में १४ औद्योगिक बस्तियों के निर्माण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, किन्तु ११ औद्योगिक बस्तियों का निर्माण कार्य चालू किया गया। जयपुर, भरतपुर, मालपुरा की औद्योगिक बस्तियों में ८५ शेडों का निर्माण हुआ। कोटा, उदयपुर, भरतपुर, गंगा नगर में इन बस्तियों का निर्माण कार्य भी पूर्ण हो गया। बीकानेर, धौलपुर, अलवर, गंगापुर, पाली, सुमेरपुर आदि में कार्य आरम्भ किया गया। इस योजना में राजस्थान वित्त निगम के माध्यम से वित्तीय सहायता भी प्रदान की गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में लघु-उद्योगों के विकास कार्यक्रम में इनको आर्थिक सहायता, औद्योगिक शेड बनाना, प्रशिक्षण व्यवस्था आदि मुख्य कार्य थे। छोटे उद्योगों में हाथ करघा, ऊन उद्योग तथा हस्तकला उल्लेखनीय है। इस काल में हाथ करघा उद्योग के अन्तर्गत ३०० शक्ति चलित करघे स्थापित किये गये और ३,६०० बुनकरों को उन्नत करघे एवं अन्य नवीन उपकरण प्रदान किये गये। बुनकरों के लिए ५ आवास बस्तियाँ बनायी गयी। इसके अतिरिक्त १ हाथ करघा डिजायन घर, १६ रंगाई घर तथा ४८ विक्रय केन्द्र स्थापित किये गये।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' के अन्त तक पंजीकृत कारखानों की संख्या १,५६४ थी जबकि १९६२ में ६४८ थी। इस योजना में औद्योगिक उत्पादन निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है.

औद्योगिक उत्पादन

उद्योग	इकाई	१९५६	१९६१	१९६६	१९७०
१ सीमेण्ट	हजार मी० टन	५३५	१०८९	१,१२४	१२७०
२ काँच	मी० टन	८२३	८१७	२८८	३६६
३. सूती कपड़ा	लाख मीटर	५६६	५५३	६२५	६१०
४ शक्कर	हजार मी० टन	११६	१८२	१८३	८४
५ नमक	"	२६५	३३६४	४१०८	१,००१०
६ ऊन	लाख कि० ग्रा०	१५२	१५६	३८५	३०७

उपर्युक्त तालिका में काँच उद्योग को छोड़कर तीनों योजनाओं में विभिन्न उद्योगों में उत्पादन बढ़ा। सीमेंट का उत्पादन प्रथम योजना के अंतिम वर्ष में करीब ५३५ हजार मैट्रिक टन था जबकि दूसरी योजना के अंतिम वर्ष में इसका लगभग

दुगना हो गया । तीसरी योजना मे इसम और भी वृद्धि हुई । शक्कर का उत्पादन लगातार बढा किन्तु तृतीय योजना की अवधि मे इसमे वृद्धि नहीं हुई तथा सन् १९६० से इसम बहुत कमी हो गयी । सूती वस्त्र उत्पादन १९५६ की तुलना मे १९६१ म गिर गया । तृतीय योजना म सूती वस्त्र उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई इस प्रकार औद्योगिक प्रगति सन्तोषजनक रही ।

तीसरी योजना के अन्त तक वृहत उद्योगो के अन्तर्गत सूती वस्त्र की १७ मिलें थी जिनकी क्षमता ३,०६,४५६ तकुओ की थी । इस योजना मे चित्तौडगढ मे सीमेण्ट का कारखाना खोला गया । सन् १९६६ म १,१२४ हजार मैट्रिक टन सीमेण्ट का उत्पादन हुआ । तीसरी योजना के अन्त तक चीनी का उत्पादन प्रतिवर्ष १८ ३ हजार मैट्रिक टन था । उदयपुर के निकट जस्ता गलाने का सयन्त्र (zink smelter) की स्थापना की गयी । इसके अलावा खेतडी मे तांबे के विशाल भण्डारो का उपभोग करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र म एक बडे कारखाने की स्थापना की गयी है, जिसके अन्तर्गत तांबा गलाने का सयन्त्र (copper smelter) स्थापित किया जा रहा है ।

तीसरी योजना म लघु उद्योगो के विकास के लिए राज्य की योजना के अन्तर्गत १९० १५ लाख रुपये व्यय किये गये । इसके अतिरिक्त उद्योग विभाग द्वारा ३८ ६७ लाख रुपये और खर्च किये गय । इस काल म ११ औद्योगिक बस्तियों म ३७९ शेड बनकर तैयार हो गय तथा २२९ शेडो मे उत्पादन कार्य आरम्भ हो गया । राजस्थान लघु उद्योग निगम द्वारा नागौर और चुरू जिलो मे दो ऊनी कताई मिलो की स्थापना की गयी ।

पिछले पन्द्रह वर्षों म राज्य की कुल आय मे औद्योगिक उत्पादनो मे होने वाली आय का अनुपात क्रमश बढा है । सन् १९५५-५६ मे यह अनुपात राज्य की कुल आय की तुलना म केवल १६ प्रतिशत था जबकि सन् १९७० ७१ मे यह बढकर २२ प्रतिशत हो गया है । इमस राज्य की औद्योगिक प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है ।

'चतुर्थ पचवर्षीय योजना' म ऊनी मिल तथा टोंक मे चमडे का कारखाना खोलन का प्रस्ताव रखा गया है । चमडे का कारखाना १० लाख रुपये का होगा जो कि युगोस्लाविया की सहायता से स्थापित किया जायेगा । इसके अलावा दो कपड़ा मिलें, एक स्कूटर फैक्टरी तथा दो उर्वरक कारखाने खोलने का प्रस्ताव है । राज्य म एक ऊनी वस्त्र निगम की स्थापना का भी प्रस्ताव किया गया है । औद्योगिक विकास कार्यों म सोडियम सल्फेट प्लाट डीडवाना की उत्पादन क्षमता बढाने के प्रयत्न किये जायेंगे ।

राजस्थान म चल रहे विभिन्न उद्योगो म स्पष्ट होता है कि पचवर्षीय योजना म औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाया गया है । अधिक उद्योगो की स्थापना के लिए विद्युत, ऋण, अनुदान, भूमि आदि सुविधाएँ प्रदान की

गयी हैं। उद्योगपतियों को उद्योगों के विकास के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

राजस्थान के प्रमुख उद्योग

राजस्थान में प्रमुख उद्योगों में सूती वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, नमक उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, काँच उद्योग आदि हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य उद्योग कोटा, जयपुर, अजमेर आदि में स्थापित किये गये हैं। इन उद्योगों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

79 (१) सूती वस्त्र उद्योग

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग के प्रयास १८८६ में किये गये जब ब्यावर में एक सूती वस्त्र मिल की स्थापना की गयी। सन् १९०८ में ब्यावर में दूसरी मिल ने उत्पादन चालू किया। सन् १९२५ में तृतीय मिल की स्थापना इसी जगह हुई। इनके पश्चात् भीलवाड़ा में १९३८ में मेवाड़ टैक्सटाइल्स मिल्स की स्थापना की गयी। इन प्रयत्नों के बाद में पाली में मिल स्थापित हुई। धीरे-धीरे किशनगढ़, विजयनगर, उदयपुर, जयपुर, कोटा, बीकानेर, भवानी मण्डी आदि नगरों में सूती वस्त्र उद्योग पनपने लगा। सन् १९५६ में अजमेर के राजस्थान में विलय के समय ११ मिलें थीं। वर्तमान समय में इस राज्य में १३ मिलें कार्य कर रही हैं। इनमें से ७ कताई की तथा ६ कताई-बुनाई की हैं।

राजस्थान में विद्युत शक्ति तथा कपास क्षेत्रों का अभाव रहा है। इस समय भी इनकी पूर्ति कम है अतः कई मिलों में लगभग एक-चौथाई वर्ष, तथा तकुए बन्द रहते हैं। धीरे-धीरे विद्युत उत्पादन का विकास किया जा रहा है और राज्य के कृषि विकास के साथ-साथ कपास का भी उत्पादन बढ़ रहा है। आशा है शीघ्र ही ये दोनों कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी।

राजस्थान में सूती वस्त्र मिलों का उत्पादन

राजस्थान में सूती वस्त्र की विभिन्न मिलों में कपड़े का कुल उत्पादन १९५६ में ५९६ लाख मीटर था जबकि १९६१ में घटकर ५५३ लाख मीटर हो गया। वर्ष १९६६ में पुनः उत्पादन में वृद्धि हुई और उत्पादन ६२५ लाख मीटर हो गया। सन् १९७० में सूती कपड़ा ६५० लाख मीटर था। सूती कपड़े के उत्पादन में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में काफी वृद्धि हो सकेगी क्योंकि इस समय में विद्युत की कठिनाई दूर हो जायगी। सूती धागे का उत्पादन १९५६, १९६१ तथा १९६६ में क्रमशः १५२, १५६, ३४५ लाख किलो ग्राम था। वर्ष १९७० में सूती धागे के उत्पादन में कुछ कमी हुई।

राजस्थान की सूती वस्त्र मिलों में भारत के कुल सूती वस्त्र उत्पादन का लगभग १ प्रतिशत होता है। देश के लगभग १·५ प्रतिशत तकुए यहाँ हैं। इस दृष्टि से राजस्थान अन्य राज्यों की तुलना में बहुत पीछे है।

समस्याएँ

राजस्थान मे सूती वस्त्र उद्योग का सन्तोषजनक विकास नहीं हो पा रहा है। देश के कुल उत्पादन म इस राज्य का बहुत कम योगदान है। इसके विकास के सामने निम्नलिखित प्रमुख समस्याएँ हैं -

(१) **जलवायु की समस्या**—सूती वस्त्र व्यवसाय के लिए नम जलवायु की आवश्यकता होती है। राजस्थान का जलवायु शुष्क है। इस दशा म कृत्रिम विधियों से जलवायु को नम बनाया जाता है। इस पर अधिक खर्चा होता है जिसके कारण उत्पादन व्यय अधिक आता है।

(२) **विद्युत शक्ति का अभाव**—राजस्थान में विद्युत शक्ति का अभाव रहा है। सस्ती विद्युत शक्ति जल विद्युत है जो कि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। राजस्थान की अधिकतर मिलें पुराने तरीकों से शक्ति उत्पन्न करती हैं जो काफी मँहगी है। जब विद्युत शक्ति के अभाव म मिलो की क्षमता नहीं बढायी जा सकती है।

(३) **कच्चे माल की उपलब्धि**—राजस्थान मे कपास उत्पादन की अनुकूल दशाएँ नहीं हैं अत इसका उत्पादन कम होता है। कच्चे माल के अभाव में अन्य क्षेत्रों म कपास मगवा कर कार्य चलाया जाता है जिसमें व्यय अधिक होता है। राजस्थान मे सिचाई सुविधाओ के विकास के साथ साथ कपास का उत्पादन भी बढ़ने की सम्भावना है। आशा है राजस्थान नहर क्षेत्र मे अधिक मात्रा में अच्छी किस्म की कपास उत्पन्न की जा सकेगी।

(४) **नवीनीकरण की समस्या**—राजस्थान मे कुछ मिलें काफी पुरानी हैं जिनकी मशीनो की मरम्मत करना आवश्यक है। नवीनीकरण के अभाव मे मशीनों की उत्पादन क्षमता निम्न है। सरकार को इस प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए जिनस मशीनो की मरम्मत तथा नयी मशीनें लगायी जा सकें।

(५) **कुशल श्रम**—राजस्थान मे कुशल श्रमिकों का अभाव है। इस वजह से उनकी उत्पादकता निम्न है। निम्न उत्पादकता के कारण उत्पादन व्यय अधिक आता है। राजस्थान वस्त्र उद्योग जांच समिति के अनुसार सूती वस्त्र उद्योग की उत्पादन क्षमता भी बहुत कम है। प्राय अर्द्ध कुशल तथा अकुशल श्रमिक कार्य करते हैं अत. मिलो को अधिक नुकसान होता है।

उपर्युक्त समस्याओ के कारण राज्य मे सूती वस्त्र उद्योग का अधिक विकास नहीं हो पाया है। उत्पादन लागत अधिक होने के कारण पूंजीपति अपना धन यहाँ नहीं लगाना चाहते। यद्यपि यहाँ के काफी उद्योगपति इस बात से सहमत हैं कि राजस्थान में अधिक मिलें खोली जायें किन्तु विभिन्न सुविधाओं के अभाव में नुकसान की अधिक सम्भावनाएँ रहती हैं। सरकार को शक्ति उपलब्ध कराने के साथ-साथ उद्योगपतियों को आकर्षित करने के लिए अन्य प्रयत्न करने चाहिए। आशा है भविष्य मे यह उद्योग काफी विकास कर सकेगा।

(२) सीमेन्ट उद्योग

राजस्थान में सीमेन्ट उद्योग का आरम्भ १९१५ में हुआ। इस वर्ष लाखेरी में सीमेण्ट फैक्ट्री की स्थापना की गयी। द्वितीय महत्त्वपूर्ण सीमेण्ट फैक्ट्री सवाई माधोपुर में है और तृतीय फैक्ट्री चित्तौड़गढ़ में तीसरी योजना में स्थापित हुई है।

सीमेण्ट उद्योग में चूने का पत्थर, जिप्सम आदि खनिजों की आवश्यकता पड़ती है। राजस्थान में दोनों खनिज उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त शक्ति तथा ईंधन की भी आवश्यकता महत्त्वपूर्ण है। इनका राजस्थान में अधिक विकास नहीं हो पाया है अतः कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। चूने का पत्थर तथा जिप्सम *सवाईमाधोपुर, चित्तौड़गढ़ तथा बूँदी में उपलब्ध हो जाते हैं। लाखेरी तथा सवाई-*माधोपुर दोनों फैक्ट्रियाँ रेल यातायात तथा सड़क यातायात से जुड़ी हुई हैं। इस उद्योग में कोयला आवश्यक है जिसे बिहार से मँगवाया जाता है। श्रम शक्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु कुशल श्रम का अभाव है।

सीमेण्ट का उत्पादन

सीमेण्ट का उत्पादन राजस्थान में सवाईमाधोपुर तथा लाखेरी की फैक्ट्रियों से होता है। चित्तौड़गढ़ की फैक्ट्री उत्पादन चालू करने वाली है। सवाईमाधोपुर की सीमेण्ट फैक्ट्री की वार्षिक उत्पादन क्षमता ८.४९ लाख मैट्रिक टन है। लाखेरी सीमेण्ट फैक्ट्री का वार्षिक उत्पादन ३.४२ लाख मैट्रिक टन है।

राजस्थान में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में ५.३५ लाख टन सीमेण्ट का उत्पादन हुआ जब कि द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष में इसका उत्पादन इस वर्ष की तुलना में दुगने से भी अधिक हो गया। इस समय तीनों कारखाने कुल मिलाकर *लगभग पन्द्रह लाख टन सीमेण्ट का उत्पादन कर रहे हैं। चित्तौड़गढ़ की* सीमेण्ट फैक्ट्री ने सन् १९६९ में उत्पादन चालू किया।

समस्याएँ

सीमेण्ट उद्योग के विकास की निम्न समस्याएँ हैं :

(१) अधिक पूँजी—सीमेण्ट उद्योग के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता रहती है। इतनी पूँजी की पूर्ति साधारण बात नहीं है। राजस्थान में यद्यपि अधिक संख्या में पूँजीपति हैं किन्तु विभिन्न कठिनाइयों के कारण पूँजी नहीं लगाते। अतः राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग का इतना विकास नहीं हो पाया है जितना कि होना चाहिए था।

(२) कम लाभ की दर—राजस्थान में उत्पादन लागत अधिक होने के कारण पूँजी पर लाभ कम होता है। कम लाभ होने के कारण अधिक उद्योगपति आकर्षित नहीं हो पाते हैं।

(३) बाधक सरकारी नीति—सरकार की नीति दोषपूर्ण है। मूल्य नीति विरुद्ध होने के कारण कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयीं। सन् १९६६ में सीमेण्ट पर से नियन्त्रण हटाया गया मगर १९६८ में पुनः नियन्त्रण किया गया। १९६९ तक सीधी

कीमतें होने के कारण उद्योग विकसित नहीं हो पाया। इस बात को ध्यान मे रख कर सरकार ने कीमत बढा दी।

✓ (४) शक्ति एव ईंधन का अभाव—राजस्थान मे शक्ति तथा ईंधन का अभाव है। इस उद्योग के लिए बगाल तथा बिहार स कोयला मँगवाया जाता है जिस पर काफी धन व्यय हो जाता है। इसका प्रभाव उत्पादन लागत पर पडता है।

(५) कुशल श्रम का अभाव—राजस्थान म श्रमिकों की उत्पादन क्षमता कम है। अधिकतर श्रम अकुशल तथा अध कुशल है। राज्य म अधिक मिलें नहीं होने के कारण श्रमिकों की विशेष व्यवस्था नही है।

उपरोक्त समस्याओ के अतिरिक्त लाखेरी फैक्ट्री की मशीनें काफी पुरानी हैं अत उत्पादन क्षमता कम है। राज्य सरकार इस उद्योग के विकास के लिए काफी प्रयत्नशील है।

(३) चीनी उद्योग

राजस्थान मे चीनी की दो मिलें हैं। प्रथम मिल जो कि १६३२ मे भोपाल सागर मे स्थापित हुई थी मेवाड सुगर मिल्स के नाम से थी। द्वितीय चीनी मिल गगानगर चीनी मिल है। इसकी स्थापना १६३७ मे की गयी। १६४५-४६ मे बीकानेर इण्डस्ट्रियल कारपोरेशन लिमिटेड द्वारा गगानगर चीनी मिल को चालू किया गया। इसी के नियन्त्रण मे यह मिल १६५१-५२ तक चलती रही। १६५६ मे राजस्थान सरकार ने शेयर खरीद लिये। जन साधारण के शेयर इसमे २८ २ प्रतिशत हैं। सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत केशोरायपाटन मे एक चीनी मिल स्थापित ~~करने की कार्यवाही चल रही~~ है। ८५ ~~-5~~

चीनी का उत्पादन

राजस्थान मे देश की कुल चीनी उत्पादन का लगभग ०.४ प्रतिशत है। सन् १६५६ मे इस राज्य मे १३ ६ हजार टन चीनी का उत्पादन किया गया। सन् १६६१ मे उत्पादन बढ कर १८ ? हजार टन हो गया। १६६१ की तुलना मे चीनी के उत्पादन मे बहुत कम वृद्धि हुई। इस वर्ष १८.३ हजार टन चीनी का उत्पादन हुआ। इसके पश्चात् १६६७ म उत्पादन पुन गिर गया। १६६८ मे चीनी उत्पादन कुछ अधिक हुआ। सन् १६६८ के बाद राज्य मे चीनी उत्पादन मे वृद्धि हुई है और इस समय राज्य मे लगभग २५ हजार टन चीनी का उत्पादन हो रहा है जो कि देश के कुल उत्पादन के एक प्रतिशत से भी कम है।

समस्याएँ

राजस्थान में चीनी उद्योग की निम्न समस्याएँ हैं :

(१) अनिश्चित एव अपर्याप्त वर्षा—वर्षा के अनिश्चित एव अपर्याप्त होने के कारण गन्ने का उत्पादन भी अनिश्चित होता है। गन्ना इस उद्योग का कच्चा माल है। चित्तौडगढ जिला इससे अधिक प्रभावित होता है। इस जिले मे वर्षा के

अभाव में गन्ने की फसल नष्ट हो जाती है। गंगा नगर में यह समस्या नहीं है किन्तु बाढ़ से हानि अवश्य हो जाती है। अतः कच्चे माल की उपलब्धि अनिश्चित है।

(२) गन्ने की ऊँची कीमतें—राजस्थान में गन्ने की कीमतें ऊँची हैं। अतः मिलों को लाभ कम होता है अतः अधिक विकास नहीं हो पाता है। सरकार ने जो गन्ने की कीमत तय कर रखी है वह भी अधिक है। इस समस्या के सुधार के लिए सरकार को गन्ने की कीमत नीची तय करनी चाहिए और अधिक गन्ने का उत्पादन करने के लिए कदम उठाने चाहिए।

(३) अन्य आधारित उद्योगों का अभाव—गन्ने को काम में लेने के पश्चात् कुछ गौण पदार्थ शीरा तथा खोई बचते हैं जिनका उपयोग कागज बनाने, खाद बनाने, शराब बनाने तथा कुछ अन्य छोटे उद्योगों में किया जा सकता है। राजस्थान में इन उद्योगों का विकास बहुत कम हुआ है अतः गौण उत्पादन जो बचते हैं उनका समुचित उपयोग नहीं हो पाता।

(४) ऊँचे कर—चीनी उत्पादन पर कर अधिक लगाया गया है। उत्पादन कर अधिक होने के कारण लाभ की मात्रा कम हो जाती है जिसकी वजह से कम लोग उत्पादन कार्य में पूँजी लगाते हैं।

उपरोक्त समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार को प्रयत्न करने चाहिए। सरकार को गुड़, खण्डसारी तथा चीनी के क्षेत्र में पक्षपात पूर्ण रवैया नहीं अपनाना चाहिए। चीनी की कीमतों पर नियन्त्रण है जबकि गुड़ तथा खण्डसारी पर नहीं है। इसके कारण अधिक प्रतिस्पर्द्धा होती है जिसका चीनी उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। राज्य में चीनी उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ बढ़ गयी हैं क्योंकि नहरों के कारण गन्ने की उपज में वृद्धि हो रही है। अतः अगली योजनाओं में कुछ और चीनी मिलें राज्य में स्थापित की जा सकती हैं।

(४) नमक उद्योग

देश में राजस्थान का नमक उत्पादन में चतुर्थ स्थान है। पूरे देश के कुल उत्पादन का लगभग १० प्रतिशत नमक उत्पन्न होता है। यहाँ की नमक की मुख्य झीलें सांभर, डीडवाना तथा पचभद्रा हैं। इनमें सांभर झील अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिससे राज्य के कुल उत्पादन का लगभग ४५ प्रतिशत नमक प्राप्त होता है। इन तीनों में डीडवाना तथा सांभर में अच्छी किस्म का नमक मिलता है। सांभर झील के निकट सांभर नावा, गुढ़ा, कपोल आदि शहर हैं जिनमें नमक बनाया जाता है। इस झील से सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत नमक निकाला जाता है। कम्पनी का नाम सांभर साल्ट्स लिमिटेड है जो कि हिन्दुस्तान साल्ट्स लिमिटेड की सहायक है। पचभद्रा तथा डीडवाना की झीलों से राजस्थान सरकार नमक बनाती है। इसके अतिरिक्त सुजानगढ़, कुचामन तथा फलोदी में भी निजी क्षेत्र के अन्तर्गत थोड़ी मात्रा में नमक बनाया जाता है।

राजस्थान में नमक उत्पादन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सामर झील क्षेत्र से नमक सबसे अधिक प्राप्त होता है। सन् १९६१ म ३३६ ४ हजार टन नमक का उत्पादन हुआ जिसमें से १३१ हजार टन केवल सामर झील से हुआ। १९६६ म कुल ४१० ८ हजार टन का उत्पादन हुआ जिसम से १९३ हजार टन सामर झील म उत्पन्न हुआ। सन् १९६७ में नमक के उत्पादन म सन्तोषजनक वृद्धि हुई। इस वर्ष नमक का कुल उत्पादन १,००५ ० हजार टन नमक उत्पादित किया गया। सन् १९६८ म भी नमक उत्पादन सन्तोषजनक रहा। चतुर्थ पचवर्षीय योजना म इस तरह अधिक विकास हो सकेगा।

समस्याएँ

नमक उद्योग की निम्न समस्याएँ हैं

(१) वर्षा—नमक के उत्पादन पर वर्षा का प्रमुख प्रभाव पडता है। जिस वर्ष कम अथवा अधिक वर्षा होती है तो नमक उद्योग पर बुरा प्रभाव पडता है। राजस्थान म कभी कभी बहुत कम वर्षा होती है जिसम काफी हानि होती है। कुछ वर्षों म नमक उत्पादन क्षेत्रो म अधिक वर्षा हो जाती है जिससे भी नुकसान होता है।

(२) यातायात की असुविधा—राजस्थान से नमक उत्तरी भारत के अनेक क्षेत्रो म भेजा जाता है किन्तु पर्याप्त मात्रा मे रेलवे वैगन नहीं मिल पाते हैं। इसके अतिरिक्त नियमित रूप म नमक दूसरी जगह भेजने की व्यवस्था नही है अत काफी नुकसान होता है।

इन समस्याओ म सरकार यातायात की नियमित व्यवस्था कर सकती है। सरकार ने गौण पदार्थों क उचित उपयोग के लिए नमक उत्पादक क्षेत्रो में सोडियम सल्फेट तथा बरकाइट तैयार करने की व्यवस्था की है। यहाँ तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष म २०० टन सोडियम तथा ४८० टन बरकाइट तैयार किया गया। सरकार को इस तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए ताकि आय म वृद्धि हो सके।

(५) कांच उद्योग

राजस्थान म एक विशेष प्रकार की मिट्टी प्राप्त है जिसे सिलिका (Silica) मिट्टी कहा जाता है। यह मिटटी धौलपुर, सवाई माधोपुर तथा बीकानेर जिलों के कुछ क्षेत्रो म प्राप्त होती है। कांच उद्योग के राजस्थान म दो कारखाने धौलपुर में कार्य कर रहे हैं और एक कारखाना उदयपुर में लगाया गया है जिससे उत्पादन नहीं हो पाया है। धौलपुर के दोनो कारखानो का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

(१) धौलपुर ग्लास वर्क्स—धौलपुर ग्लास वर्क्स निजी क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित किया गया था। इस कारखाने म ९०० टन कांच का सामान उत्पन्न किया जाता था। इसमे ६०० से भी अधिक श्रमिको को रोजगार प्राप्त था। इसमे लगभग ९ लाख रुपये की पूँजी का विनियोजन किया गया था।

(२) हाईटेक प्रोसीजन ग्लास वर्क्स—हाईटेक प्रोसीजन ग्लास वर्क्स सार्वजनिक क्षेत्र का कारखाना है। इसकी अधिकृत पूंजी ५० लाख रुपये तथा अभिदत्त (subscribed) पूँजी १० लाख है। यह फैक्ट्री शिक्षण संस्थाओं के प्रयोगशालाओं के उपयोग के लिए, वैज्ञानिक केन्द्रों की प्रयोगशालाओं में काम में आने वाले बर्तन बनाने के उद्देश्य से स्थापित की गयी। इस फैक्ट्री में काँच की नलियाँ, तापमापक यन्त्र आदि का भी निर्माण किया जाता है। इसमें लगभग ६५० श्रमिक जीविका कमाते हैं।

राजस्थान में काँच का उत्पादन

राजस्थान में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में काँच का कुल उत्पादन ८२३ मैट्रिक टन था जो कि १९६१ में घटकर ८१७ मैट्रिक टन रह गया। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष में उत्पादन में भारी कमी हुई इसका कारण औद्योगिक संघर्ष था। इस संघर्ष के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के कारखाने से बहुत कम उत्पादन हुआ। इस वर्ष काँच का उत्पादन २८८ मैट्रिक टन था। सन् १९६७ में सन् १९६६ की तुलना में पुनः सुधार हुआ और उत्पादन बढ़ा जो कि ३६६ मैट्रिक टन था। सन् १९६८ में उत्पादन अधिक होने की सम्भावना है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र का कारखाना जो कि १९६७ में बन्द कर दिया गया था पुनः जुलाई १९६८ में चालू किया गया।

काँच उद्योग की समस्याओं में सार्वजनिक क्षेत्र की समस्या महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र की फैक्ट्री में वर्ष १९६४-६५ तथा १९६५-६६ में श्रमिक संघर्ष रहा जिसके कारण इन वर्षों में नुकसान हुआ। इसके परिणामस्वरूप इसको १९६७ में बन्द करना पड़ा था। इस समस्या के अतिरिक्त श्रमिकों की कुशलता तथा प्रशिक्षण की भी समस्या है।

राजस्थान में प्रमुख कारखाने

जयपुर में उद्योग

जयपुर के मुख्य कारखाने निम्न प्रकार हैं :

(१) बॉल एवं रोलर बियरिंग उद्योग—यह निजी क्षेत्र के अन्तर्गत है। यह कारखाना भारत में प्रसिद्ध है। इसमें पाँच करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है। इसमें प्रतिवर्ष लगभग ६० लाख बालबियरिंग निर्मित होते है। यह कारखाना बिरला उद्योग समूह के अधीन है और अब इसके विस्तार की योजनाएँ विचाराधीन है। इसमें निर्मित बालबियरिंगों का विदेशों में निर्यात भी किया जाता है।

(१) मान इण्डस्ट्रियल कोरपोरेशन—यह भी निजी क्षेत्र के अन्तर्गत है जिसकी स्थापना १९४८ में की गयी। इस निगम में लोहे के दरवाजे, खिड़कियाँ, फिटिंग का सामान तथा अन्य छोटे मोटे लोहे के सामान तैयार किये जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों

मे विद्युत के अभाव मे इस कोरपोरेशन की क्षमता से बहुत कम उत्पादन हो सका। इसमे स्टील रोलिंग कारखाना भी है।

(३) **जयपुर मेटल्स एण्ड इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड**—इसकी स्थापना १६४३ में की गयी। इसम कई प्रकार के अलौह पदार्थों का निर्माण किया जाता है। इस समय इसमे लगभग ३ करोड रुपय की पूँजी विनियोजित की गयी है। इसम अल्यूमिनियम के तार, ताँबे के तार आदि का भी निर्माण किया जाता है। तृतीय पचवर्षीय योजना, के अन्तिम वर्ष मे १,६६,६७१ मीटर एव २,१०० टन ताँबे के तार निर्मित हुए।

(४) **कैप्सटन मीटर लिमिटेड**—इसकी स्थापना १६६२ म की गयी। कम्पनी की अधिकृत पूँजी ४० लाख रुपय है। इस कम्पनी को इगलैंड की एक फम से सहायता मिल रही है। यह कम्पनी पानी तथा तेल नापन के मीटर बनाती है। इस उद्योग की प्रमुख समस्याएँ कच्चे माल की कमी तथा विद्युत शक्ति की पर्याप्त उपलब्धि का अभाव है। इसमे प्रतिवर्ष लगभग २०,००० मीटर निर्मित किये जाते हैं।

कोटा मे उद्योग

राजस्थान म कोटा म उद्योगो का केन्द्रीयकरण हो रहा है। इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास की अनक सुविधाएँ प्राप्त हैं। ये सुविधाएँ निम्नलिखित हैं:

(१) चम्बल परियोजना के कारण इस क्षेत्र को सस्ती विद्युत शक्ति उपलब्ध हो रही है। चम्बल परियोजना म विद्युतगृहो का निर्माण किया गया है जिसस पर्याप्त विद्युत प्राप्त हो रही है। इस परियोजना के पूर्ण हो जाने पर और भी अधिक विद्युत सुविधाएँ उपलब्ध होगी। अत: विद्युत शक्ति की उपलब्धि के कारण इस क्षेत्र का औद्योगिक विकास तेज गति से हो रहा है।

(२) राजस्थान के अन्य भागो म जल साधनो का अभाव है। इस राज्य में चम्बल अकेली नदी है जो बारह-महीने बहती है। इसमे पर्याप्त जल उपलब्ध हो जाता है।

(३) यातायात सुविधा भी इस क्षेत्र मे अधिक है। कोटा देश के अन्य भागों से बडी रेलवे लाइन से जुडा हुआ है। इस सुविधा के कारण माल दूसरे स्थानों तक पहुँचाने म अधिक कठिनाई नहीं होती। यह स्थान सडक यातायात से भी जुडा हुआ है।

(४) इस क्षेत्र की जनसख्या का घनत्व राजस्थान के अन्य क्षेत्रों से अधिक है अतः सस्ती श्रम शक्ति उपलब्ध हो जाती है। उद्योगो मे काम करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे श्रम प्राप्त होने के कारण उद्योगो का तेज गति मे विकास किया जा रहा है।

(५) सरकार की नीति भी उत्साह बढाने वाली है। राज्य सरकार उद्योगपतियो को आकर्षित करने के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान कर रही है। औद्योगीकरण को गति प्रदान करने के लिए सरकार विभिन्न विकास कार्य इस क्षेत्र मे कर रही है।

उपरोक्त सुविधाओं के कारण पूँजीपति उद्योग मे विनियोग करने के लिए

प्रयत्न कर रहे हैं। कोटा में इस समय उद्योगों की स्थिति का विवरण नीचे दिया गया है :

(१) इन्स्ट्रुमेन्टेशन लिमिटेड—यह कारखाना सार्वजनिक क्षेत्र में निर्मित किया गया है। यह कारखाना रूस की सहायता से स्थापित किया गया है इसमें विद्युत उपकरण बनाये जाते हैं।

(२) श्री राम वाइनिल एण्ड कैमीकल इण्डस्ट्रीज—यह निजी क्षेत्र के अन्तर्गत है। इसकी स्थापना १९६२ में की गयी है। यह डी० सी० एम० की एक इकाई है। इसमें ६ करोड की पूंजी विनियोजित की गयी है। इसमें जापान की दो फर्मों का सहयोग प्राप्त हो रहा है। इस उद्योग में कास्टिक सोडा, सल्फ्यूरिक एसिड, क्लोरीन, पी० वी० सी०, कैल्शियम कारबाइड आदि बनाये जाते हैं।

(३) श्री राम रेयोन (Sri Ram Rayons)—इसकी स्थापना १९६० में ६ करोड की लागत से की गयी। इसमें मोटरों के टायरों के लिए रेयोन टायर कोर्ड तथा रबड बनाने का कार्य किया जाता है। इस उद्योग को कास्टिक सोडा तथा मीठे पानी की आवश्यकता होती है, दोनों की उपलब्धि यहाँ आसानी से हो जाती है।

(४) ओरियण्टल पावर केबिल्स—इसमें ३ करोड से भी अधिक पूंजी लगी हुई है। यहाँ पेपर इन्सुलेटिड पावर केबिल्स (Paper Insulated Power Cables) बनाने का कार्य होता है। इस कारखाने में लगभग ३०० व्यक्ति जीविका कमाते हैं।

(५) जे० के० सिन्थेटिक्स (J K Synthetics)—यह निजी क्षेत्र के अन्तर्गत है जिसमें ४ करोड रुपये की पूंजी लगी हुई है। इस मिल में नाइलोन टेरेलीन धागा और एक्रीलिक रेशा उत्पन्न किया जाता है। यह मिल स्विट्जरलैण्ड की एक फर्म की सहायता से कार्य कर रही है। इसमें ७०० से अधिक व्यक्ति रोजी कमाते हैं।

अन्य क्षेत्रों के उद्योग

अन्य क्षेत्रों में उदयपुर में जिंक स्मेल्टर (Zink Smelter) कारखाना सार्वजनिक क्षेत्र में १९६७ में स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त खेतड़ी में ताँबा प्रोजेक्ट निर्माणाधीन है। अजमेर के निकट सार्वजनिक क्षेत्र में १९७० में मशीन टूल फैक्ट्री की स्थापना की गयी है। भरतपुर में रेल का वैगन बनाने का कारखाना है। डीडवाना में सोडियम सल्फेट का कारखाना है। कोटा में भी नाइट्रोजन खाद का एक कारखाना स्थापित किया जा रहा है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान में औद्योगिक विकास हो रहा है। कोटा में औद्योगीकरण की सबसे अधिक सम्भावनाएं हैं। इसके अतिरिक्त भीलवाड़ा, जयपुर, अजमेर, उदयपुर आदि क्षेत्रों में उद्योगों का निरन्तर विकास किया जा रहा है। सरकार पूंजीपतियों को अनेक सुविधाएं प्रदान करके आकर्षित कर रही है। आजकल राजस्थान के प्रवासी पूंजीपतियों का ध्यान राजस्थान में उद्योगों की स्थापना की तरफ जा रहा है। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति बढ़ रही है। आशा है निकट

भविष्य मे राज्य में उद्योगों का काफी विकास हो सकेगा। राजस्थान के औद्योगिक विकास में अनेक बाधाएँ रही हैं जैसे शक्ति के साधनों का अभाव, परिवहन की कठिनाइयां, कच्चे माल की कठिनाई, प्रशासन सम्बन्धी बाधाएँ, पूँजी एव माल की कमी, शिक्षा एव सामाजिक प्रगतिशील दृष्टिकोण का अभाव आदि। अब ये कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर हो रही हैं। राज्य सरकार प्रवासी राजस्थानियों को (जिनके पास अनुभव एव साधनों की प्रचुरता है) पुनः राजस्थान में बसने और यहाँ उद्योगों का विकास करने के लिए प्रेरित कर रही है तथा इसके लिए अनेक रियायतें दी गयी हैं जैसे भूमि की व्यवस्था, बिजली पानी की दरों में रियायतें, कच्चे माल की सुलभता, आयातित माल प्राप्त करने में सहायता, लम्बी अवधि के ऋणों की प्राप्ति में सहायता, बिक्री-करों म रियायत आदि। फरवरी १९७० में घोषित नीति के अनुसार मार्च १९७० से मार्च १९७४ के बीच राज्य में स्थापित उद्योगों को बिजली दर में १० से १५ प्रतिशत की छूट दी जायगी तथा इस अवधि में स्थापित उद्योगों द्वारा कच्चे माल की खरीद पर ३१ मार्च, १९७६ तक बिक्री कर मे छूट रहेगी। भारत सरकार से औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करके चौथी योजना में राज्य में स्थापित की जाने वाली औद्योगिक इकाइयों द्वारा निर्मित माल पर चुकाये जाने वाले बिक्री-कर की राशि को ब्याज-मुक्त ऋण के रूप मे वापस दिये जाने की सुविधा का निर्णय भी १५ अगस्त १९७० को घोषित किया गया। इन सुविधाओं से प्रेरित हो कर अनेक उद्योगपति अब राजस्थान के औद्योगीकरण में रुचि ले रहे हैं। भारत सरकार सवाई माधोपुर में एक बड़ा तेल शोधक कारखाना स्थापित करने पर विचार कर रही है। निजी क्षेत्र मे सीमेण्ट, चीनी, वनस्पति तेल, सूती वस्त्र, बैटरी, दुग्ध चूर्ण, स्कूटर, मिश्रित इस्पात के पाइप आदि के कारखानों को स्थापित किया जा रहा है।

प्रश्न

१. राजस्थान के प्रमुख उद्योगों पर प्रकाश डालिए। इनकी समस्याएँ बताते हुए सुझाव भी दीजिए।
२. राजस्थान मे औद्योगिक प्रगति के विषय में आप क्या जानते हैं? भविष्य में इसकी क्या सम्भावना है?
३. राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग अथवा सीमेन्ट उद्योग पर निबन्ध लिखिए।
४. राजस्थान मे औद्योगिक विकास के मार्ग में कठिनाइयों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (राजस्थान, टी० डी० सी०, १९७१)

वह इतना कम है कि उसके बल पर आर्थिक विकास की सन्तोषजनक गति प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं है। वस्तुत. विश्व इस समय विकसित तथा अल्प-विकसित राष्ट्रों के दो ऐसे समूहों मे विभाजित है जिनकी समस्याएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं और जिनके हित अलग-अलग हैं। अब राष्ट्रों के एक तीसरे वर्ग का उदय भी हो चुका है जिसे विकासशील या विकासमान राष्ट्रों का वर्ग कह सकते हैं। इस वर्ग मे ऐसे राष्ट्र हैं जिन्हे अल्प विकसित नहीं कहा जा सकता है। इनमे विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ हो चुका है, किन्तु पूर्ण विकास के स्तर तक पहुँचने मे ऐसे देशों को अभी लम्बा समय लगेगा। अत इन्हे विकसित राष्ट्र भी नहीं कहा जा सकता है और वस्तुत विकासशील राष्ट्र कहना ही इनके लिए उपयुक्त होगा। भारत की गणना विकासशील देशो की श्रेणी म ही की जाती है।

अल्प विकास का अर्थ

किसी देश के आर्थिक स्तर की कुछ अन्य राष्ट्रों के आर्थिक स्तर से तुलना करने पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि वह देश अल्प विकसित है अथवा विकसित। आर्थिक स्तर की तुलना करने के लिए विभिन्न माप दण्ड काम मे लाये जा सकते हैं जैसे **औद्योगीकरण का स्तर, राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय की मात्रा, निवासियों के रहन-सहन एव उपभोग का स्तर आदि**। प्राय: प्रति व्यक्ति वास्तविक आय द्वारा ऐसी तुलना अधिक की जाती है। सयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, पश्चिमी यूरोप के देश तथा जापान आदि विकसित राष्ट्रों मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बहुत अधिक है जिसके अनुपात मे अन्य देशो की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम है। इस तुलना के सन्दर्भ म किसी देश मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, उतना ही अधिक विकसित वह राष्ट्र माना जाएगा। इसके विपरीत यदि किसी देश म इस तुलना के सन्दर्भ में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की मात्रा जितनी कम होगी, वह राष्ट्र उतना ही अधिक अल्प-विकसित माना जायगा। सयुक्त राष्ट्र सघ के विशेषज्ञों के अनुसार अल्प विकसित राष्ट्र की परिभाषा निम्न प्रकार है -

"एक अल्प-विकसित राष्ट्र वह कहा जायगा जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय सयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा एव पश्चिमी यूरोप के देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय से कम है।"

किन्तु उल्लेखनीय है कि अल्प विकास की यह परिभाषा समस्त दशाओं में खरी नहीं उतरती है। मध्य पूर्व में कुछ ऐसे देश हैं जो खनिज तेल से अत्यन्त सम्पन्न हैं और जहाँ आबादी बहुत कम है। खनिज तेल के निर्यात से प्राप्त आय उनकी प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि कर देती है यद्यपि तेल उद्योग के विकास के अलावा आर्थिक विकास के अन्य लक्षण वहाँ दृष्टिगोचर नहीं होते। ऐसे देशो को विकसित राष्ट्र नहीं माना जा सकता है क्योंकि विकास की आर्थिक एव सामाजिक प्रक्रिया से वे देश अभी अछूते हैं। इस दृष्टि से भारत के योजना आयोग की व्याख्या अधिक

निम्न जीवन स्तर, कम उत्पादन आवागमन व उपयुक्त साधनों की कमी, तकनीकी ज्ञान एवं शिक्षा का अभाव बेरोजगारी अर्ध-बेरोजगारी आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं जो सभी देशों में समान रूप से दिखलायी देते हैं। जनसंख्या वृद्धि की ऊँची दर के कारण प्रति व्यक्ति आय अधिक तीव्र गति से नहीं बढ़ पाती है तथा पूंजी विनियोग की कमी के कारण और निम्न उत्पादकता के कारण राष्ट्रीय आय कम रहती है अथवा अधिक शीघ्रता से नहीं बढ़ती है। इन कारणों से एक सामान्य नागरिक के उपभोग का स्तर नीचा होता है जो कि उसकी उत्पादन कुशलता को बढ़ाने के मार्ग में बाधक होता है। पिछड़े हुए सामाजिक ढांचे और अप्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण विकास के लिए अनुकूल वातावरण के निर्माण में कठिनाई होती है।

अल्प-विकसित देशों में सामाजिक पूंजी की कमी होती है। सामाजिक पूंजी से आशय ऐसी मूलभूत सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाओं तथा सेवाओं से है जिनके आधार पर आर्थिक विकास किया जाता है, जैसे उच्च शिक्षा की व्यवस्था, खोज तथा अनुसन्धान के अवसर, तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि, स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाएँ, शक्ति और आवागमन के साधन, जल पूर्ति की योजनाएँ आदि। इन सुविधाओं का विकास निजी क्षेत्र के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि इसमें बहुत अधिक समय लग सकता है और फिर भी आशातीत सफलता नहीं मिल पाती है। अतः राज्य को ही इन सुविधाओं का विकास करना होता है किन्तु सरकार की आय इतनी कम होती है कि वह इन पर अधिक पूंजी नहीं लगा सकती। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा विश्व बैंक एवं ऐसी ही अन्य संस्थाओं से पूंजी प्राप्त करके कुछ अल्प-विकसित राष्ट्रों ने इन सेवाओं और सुविधाओं के निर्माण में प्रगति की है।

आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन होना अत्यन्त आवश्यक है ताकि अल्प विकसित राष्ट्र आधुनिक युग के अनुसार सामाजिक न्याय, आर्थिक कल्याण एवं सम्पन्नता के मार्ग पर बढ़ने के लिए आवश्यक दशाओं का निर्माण कर सकें। अल्प विकास के जिन दो मूलभूत कारणों पर प्रायः बल दिया जाता है वे हैं पूंजी की कमी और सामाजिक चेतना का अभाव। यह कहना सरल नहीं है कि इन दोनों में से कौन सा कारण अल्प विकास के लिए अधिक उत्तरदायी है। प्रोफेसर रेगनर नर्क्स (Ragnar Nurkse) पूंजी की अपेक्षा मानवीय या सामाजिक चेतना को अधिक महत्त्व देते हैं जैसा कि उनके इस कथन से स्पष्ट है, **"मानवीय भावनाओं, सामाजिक दृष्टिकोणों, राजनीतिक दशाओं एवं ऐतिहासिक घटनाओं का आर्थिक विकास से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। विकास के लिए पूंजी एक आवश्यक तत्त्व है, फिर भी पूंजी के बल पर ही आर्थिक विकास नहीं किया जा सकता है।"** इस प्रकार आर्थिक विकास के लिए एक ऐसे प्रगतिशील समाज की आवश्यकता होती है, जिसमें लोग उदारता से रह सकें, व्यापक दृष्टिकोण अपना सकें, एवं स्वतन्त्रता से सोच-विचार कर सकें। धार्मिक संकीर्णता, कट्टरता और भाग्यवादिता के स्थान पर कर्मठता और आत्मविश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है, ताकि इनके

नागरिकों में आर्थिक विकास के प्रति रुचि एवं विश्वास उत्पन्न हो सके और इस योग्य हो सके कि विकास के लिए आवश्यक पूंजी का निर्माण कर सके। सामाजिक चेतना से तात्पर्य उन भावनाओं से है जो किसी समाज के व्यक्तियों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। वास्तव में, यह प्रेरणा ही विकास के लिए बहुत बड़ा आधार होती है जिसके बल पर राष्ट्र आर्थिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता चला जाता है। जापान और सोवियत रूस के दो उत्तम उदाहरण हमारे समक्ष हैं। सन् १८६८ तक जापान पूर्णतः सामन्तवादी राष्ट्र था। वहाँ भूमि तथा सम्पत्ति पर कुछ इने-गिने सामन्तों का अधिकार था। जनता इनके शोषण से उत्पीड़ित थी। उसके बाद जापान में सामाजिक, आर्थिक एवं शिक्षा सम्बन्धी परिवर्तनों को लागू किया गया, तथा प्रथम विश्व युद्ध तक जापान में आर्थिक विकास के लिए उत्तम वातावरण बन चुका था। इस प्रकार अवरुद्ध अर्थव्यवस्था से निकल कर यह राष्ट्र स्वयं प्रेरित अर्थव्यवस्था के चरण में शीघ्रता से पहुँच गया और आज एशिया का सबसे विकसित राष्ट्र माना जाता है। पिछले दशक में जापानी अर्थव्यवस्था ने बड़ी तेजी से उन्नति की है। इस समय जापानी अर्थव्यवस्था के विकास की दर दस *प्रतिशत प्रतिवर्ष है, जो कि एशिया में ही नहीं, विश्व में आर्थिक विकास की सबसे* ऊँची दर है। यही कारण है कि अब जापान, इंग्लैण्ड और पश्चिमी जर्मनी को पीछे छोड़ कर संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस के बाद आर्थिक दृष्टि से विश्व का तीसरा सबसे बड़ा राष्ट्र बन चुका है। इसी प्रकार सोवियत रूस सन् १९१७ की क्रान्ति से पहले अत्यन्त पिछड़ा हुआ राष्ट्र था। क्रान्ति के बाद दस वर्ष तक वहाँ अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक प्रयोग होते रहे किन्तु विशेष आर्थिक प्रगति न हो सकी किन्तु सन् १९२८ के बाद आर्थिक नियोजन की प्रणाली के आधार पर सोवियत रूस ने इतनी शीघ्रता से विकास किया कि द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने तक सोवियत अर्थव्यवस्था स्फूर्तिमान स्थिति में प्रवेश कर चुकी थी। आज रूस विश्व में आर्थिक विकास की दृष्टि से द्वितीय स्थान रखता है।

विकसित एवं अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में अन्तर

पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्था तथा अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं के कुछ मूलभूत पहलुओं का मूल्यांकन किया जाय। विकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों एवं क्रियाओं का स्तर बहुत ऊँचा होता है क्योंकि ऐसी दशाओं में, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अधिक होती है। व्यक्तिगत आय की अधिकता के कारण बचत और विनियोग की दर अधिक होती है। उपभोग का उच्च स्तर होने पर भी आय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि प्रत्येक व्यक्ति बचत और पूँजी निर्माण में सहयोग दे सकता है। ऐसी दशाओं में विभिन्न परियोजनाओं में पूँजी लगाने के लाभदायक अवसर निरन्तर बने रहते हैं। इस विकास की गति में तीव्रता लाने के लिए जिन बातों की अपेक्षा होती है वे सब ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में दिखाई देती

है, जैसे कृषि और उद्योगों में उच्च कोटि की उत्पादन कुशलता, तकनीकी ज्ञान, शिक्षा चिकित्सा खोज, अनुसन्धान की व्यवस्था और सुव्यवस्थित परिवहन एव सचार प्रणाली आदि। निश्चय ही ऐसी व्यवस्था म सन्तुलित अथवा अनुकूल आयात निर्यात व्यापार हो सकता है और ऐसे देश अन्य अविकसित देशो के आर्थिक विकास मे सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

इसके विपरीत अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था म लोगो का जीवन स्तर निम्न होता है क्योकि उनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होती है। समाज के सब क्षेत्रो में पिछडेपन के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं तथा देश का आर्थिक ढाँचा कृषि प्रधान होता है। कृषि एव उद्योगो मे उत्पादन बहुत कम होता है और उपभोग का स्तर नीचा होते हुए भी बचत नही हो सकती है। अत पूँजी निर्माण की प्रक्रिया बहुत ही धीमी होती है तथा विकास कार्यों के लिए निरन्तर पूँजी का अभाव बना रहता है जिसे आन्तरिक साधनो से पूरा करना सम्भव नही होता। कम आय, निम्न जीवन स्तर और क्रय शक्ति की कमी के कारण वस्तुओ की माँग सीमित रहती है। अत पूँजी विनियोग के लाभदायक अवसर कम होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अल्प-विकसित राष्ट्र के पास तकनीकी पूँजी की भी कमी होती है। आर्थिक ढाँचे के विकास के लिए सामाजिक एव सार्वजनिक सेवाओ और सुविधाओ के विकास की आवश्यकता होती है जिन्हे अल्प-विकसित देश धन की कमी के कारण पूरा नही कर सकते हैं।

'विकसित अर्थव्यवस्था' मे प्राकृतिक साधनो का पूरा उपयोग होता है जबकि **'अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था'** म इनका पूरा उपयोग नही हो पाता है। प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा मे होते हुए भी देश निर्धन एव पिछडा हुआ ही रहता है। दोनो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे यह एक महत्वपूर्ण अन्तर है, जिसे कुछ देशों की तुलना करके स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अमरीका और इगलैण्ड के निवासियों का जीवन स्तर भारत के निवासियों से कही ऊँचा है और प्रति व्यक्ति आय भी अधिक है। पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्था मे जन शक्ति का पूरा उपयोग होता है जबकि अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था मे बेकारी की समस्याएँ बनी रहती हैं। सारांश यह है कि पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आत्म निर्भर व्यवस्था है जिसमे विकास अपने आप होता चला जाता है जबकि अन्य विकास की अवस्था मे अवरोध अथवा स्थिरता या जड़ता बनी रहती है। ऐसी दशा मे विकास उस समय तक नही हो सकता जब तक कि उसके लिए सम्मिलित एव पूर्ण नियोजित ढग से प्रयत्न न किया जाय।

आर्थिक विकास और उसकी अवस्थाए

आर्थिक विकास की समुचित एव सन्तोषजनक परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। कुछ लोग **'आर्थिक परिवर्तन'**, **'आर्थिक वृद्धि'** एव **'आर्थिक विकास'** शब्दों को समान अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। किन्तु वस्तुत इनके भावार्थ में पर्याप्त अन्तर है।

की ओर सन् १९३९ तक, जबकि द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ, वह स्फूर्तिमान अवस्था (take off stage) में पहुँच चुका था। इनका तात्पर्य यह हुआ कि केवल बारह वर्षों की अवधि में ही उसने इस अवस्था को प्राप्त कर लिया जबकि इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य जैसे देशों को इस अवस्था तक पहुँचने में बीस से तीस वर्ष तक लगे थे।

विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक विकास की अवस्थाओं को अलग-अलग प्रकार से निरूपण किया है। **सर कॉलिन क्लार्क** (Sir Colin Clark) के अनुसार किसी देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ उसके व्यावसायिक ढाँचे में परिवर्तन होता जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में **प्राथमिक व्यवसायों** (Primary occupations) की प्रधानता रहती है। विकास के साथ धीरे धीरे इस अवस्था में परिवर्तन होता है और देश उद्योग प्रधानता की ओर बढ़ने लगता है। कृषि आदि प्राथमिक व्यवसायों में आवश्यकता से अधिक मात्रा में संलग्न व्यक्ति धीरे धीरे **माध्यमिक व्यवसायों** (Secondary occupations) में काम प्राप्त करने लगते हैं। अन्तत विकास की अन्तिम अवस्था में **तृतीयक व्यवसायों** (Tertiary occupations) का पर्याप्त विकास हो जाता है जैसे बीमा, बैंकिंग, परिवहन तथा अन्य सार्वजनिक सेवाएँ आदि।

विकास की विभिन्न अवस्थाओं का निरूपण प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रोफेसर रोस्टोव**[1] (Prof W W Rostow) ने एक दूसरे ही आधार पर किया है। इनके अनुसार किसी भी देश के आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को पाँच विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक अवस्था क्रमश अपनी विशेषताओं के द्वारा विकास के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए स्तर की उद्बोधक होती है। इन पाँचों अवस्थाओं का वर्णन नीचे विस्तार से किया गया है -

(i) पारस्परिक अवस्था (Traditional Stage)

यह एक पिछड़ी हुई एवं अवरुद्ध अवस्था होती है जिसमें उत्पादक कार्यों के लिए पूँजी विनियोग की दर कुल राष्ट्रीय आय के **पाँच प्रतिशत से** कम रहती है। देश में प्रायमिक व्यवसायों की प्रधानता होती है तथा मूलभूत उद्योगों की और तकनीकी ज्ञान का कोई विकास नहीं हो पाता है। देश का सामाजिक ढाँचा परम्परावादी होता है और वह अनेक प्रकार के धार्मिक एवं सामाजिक बन्धनों में जकड़ा रहता है। अन्ध विश्वासों एवं रूढ़ियों से ग्रसित समाज आर्थिक प्रगति के विषय में प्रभावपूर्ण ढंग से विचार करने और उस पर अमल करने में असमर्थ होता है। फलत राष्ट्रीय आय बहुत ही कम गति से बढ़ती है अथवा स्थिर रहती है और न्यून प्रति व्यक्ति आय के कारण उपभोग का स्तर अत्यन्त निम्न रहता है। कम आय बचत एवं पूंजी निर्माण की दर को बढ़ने नहीं देती और प्रभावी माँग के अभाव में पूंजी विनियोग के लाभदायक अवसरों की कमी होती है। ऐसे देशों का आर्थिक एवं

[1] Prof W. W Rostow . *The Stages of Economic Growth.*

राजनीतिक ढाँचा प्रमुख रूप से सामन्तवादी होता है तथा अधिकांश उत्तम भूमि का स्वामित्व कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होता है। शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्य सार्वजनिक सेवाओं का ऐसी अवस्था में प्राय अभाव रहता है। सारांश यह है कि ऐसी परम्परावादी आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक गति प्राय अवरुद्ध (Stagnant) बनी रहती है और इसीलिए इसे कभी-कभी अवरुद्ध अर्थव्यवस्था (Stagnant Economy) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

(ii) पूर्व-स्फूतिमान अवस्था (Pre-take off Stage)

इस अवस्था में धीरे-धीरे राष्ट्रीय आय के कुछ अधिक भाग का विनियोग प्रति वर्ष *उत्पादन कार्यों के लिए प्रयुक्त होने लगता है। यह अनुपात राष्ट्रीय आय* के पाँच प्रतिशत से अधिक होने लगता है और कुछ वर्षों में दस प्रतिशत तक पहुँच जाता है। अवरुद्ध अर्थव्यवस्था से निकलकर आर्थिक विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए राष्ट्र सगठित प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देता है। इसके लिए आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही साधनों का उपयोग किया जाता है। नये उद्योगों में फिर आधारभूत उद्योगों में अधिक पूँजी लगायी जाती है और उत्पादन की विधियों में तकनीकी सुधार किये जाते हैं। प्रतिव्यक्ति आय में कुछ वृद्धि होने लगती है। खाद्य पदार्थों एवं औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन में शनै-शनै वृद्धि होती है किन्तु सामाजिक पिछड़ेपन के कारण बढ़ी हुई आय का उत्पादक पूँजी निर्माण में कम होता है और लोग उत्कृष्ट उपभोग (Conspicuous Consumption) में धन अधिक व्यय करने लगते हैं। फिर भी उद्योगों में पूँजी लगायी जाती है और राज्य अपने कोषों का उपयोग सार्वजनिक सेवाओं तथा सुविधाओं के निर्माण में उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में करने लगता है। शक्ति, सिंचाई एवं परिवहन के साधनों का विकास होता है जो आर्थिक विकास के लिए आवश्यक आधार प्रस्तुत करते हैं। आर्थिक गतिविधियों में सगठनात्मक तथा सरचनात्मक परिवर्तनों को साथ तथा समाज के दृष्टिकोणों, विश्वासों एवं उनकी प्राचीन मान्यताओं तथा रूढ़ियों को बदलने में लम्बा समय लग जाता है। इस अवस्था में कुछ प्रगति होती है किन्तु आर्थिक गत्यावरोध समाप्त नहीं होता।

(iii) स्फूतिमान अवस्था (Take off Stage)

आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में यह अवस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। यहाँ आर्थिक विकास के विभिन्न क्रमों की तुलना जहाजों उड़ान से की गयी है। एक वायुयान उड़ान भरने से पूर्व पहले पृथ्वी पर बने 'दौड़-पथ' (run way) पर तीव्र गति से दौड़ता है जिसे हम पूर्व स्फूतिमान अवस्था (pre take off stage) कह सकते हैं। कुछ दूर तक तीव्रता से दौड़ लगाने के बाद वायुयान पृथ्वी तल को छोड़कर एक निश्चित कोण में आकाश की ओर उड़ जाता है जिसे take off stage कहा जाता है। जिस प्रकार ऊपर आकाश में सीधी उड़ान के लिए वायुयान का take off stage से गुजरना अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार स्वयं प्रेरित

आर्थिक अवस्था तक पहुँचने के लिए किसी भी राष्ट्र को स्वर्तमान अवस्था (take off stage) से गुजरना अनिवार्य होता है। यह वह अवस्था है जो इस राष्ट्र को आर्थिक अवरोध की दशा से निकालकर स्वयं प्रेरित विकास की अवस्था में प्रवेश करने में सहायक होती है।

इस अवस्था में 'आर्थिक विकास की प्रक्रिया उस देश के समाज एवं उसकी अर्थव्यवस्था में दो या तीन दशकों की अवधि में इस प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न कर देती है कि भविष्य में उस राष्ट्र का आर्थिक विकास स्वयमेव होने लगता है।'[1] इस अवस्था में राष्ट्रीय आय के अनुपात में पूँजी विनियोग की दर दस प्रतिशत से अधिक हो जाती है। इस अवस्था को किसी देश में तभी माना जाना चाहिए जब वहाँ परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध निम्नलिखित तीन शर्तों की पूर्ति होती हो :

(अ) जब वहाँ राष्ट्रीय आय के अनुपात में उत्पादन विनियोग की दर १० प्रतिशत से अधिक हो जाय।

(ब) जब वहाँ निर्माणकारी गतिविधियों के द्वारा अर्थव्यवस्था के किसी एक अथवा अधिक क्षेत्रों का पर्याप्त विकास कर लिया गया हो, तथा

(स) जब वहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा संस्थागत ऐसे संगठनों का त्वरित विकास कर लिया गया है जिनके द्वारा उत्पादन के आधुनिक क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन मिले तथा जो अर्थव्यवस्था को ऐसा मोड़ दे सके कि भविष्य में स्वयमेव आर्थिक विकास को निरन्तर गति प्राप्त होती रहे।

इस प्रकार आर्थिक विकास की स्वयं प्रेरणा के लिए यह अवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नवीन उद्योगों एवं अन्य उत्पादनों में नवीन प्राविधिक एवं तकनीकी विधियों का प्रयोग इस अवस्था में अधिकाधिक होने लगता है। साहसिक पूँजी विनियोजकों तथा तकनीकी विशेषज्ञों की संख्या में वृद्धि होने लगती है तथा निर्माणकारी, व्यापारिक एवं वित्तीय संस्थाओं की प्रधानता बढ़ जाती है। इस प्रकार देश के आर्थिक और सामाजिक जीवन में ऐसी दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो विकास की गति को स्वयं प्रेरित तथा स्वयस्फूर्त बना देती हैं।

(iv) परिपक्वता की ओर अग्रसर अवस्था (Drive to Maturity)

इस अवस्था में राष्ट्रीय आय के अनुपात में पूँजी विनियोग की दर लगभग *बीस प्रतिशत के आस-पास हो जाती है। प्राविधिक एवं तकनीकी विधियों का उप*योग अब अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसे अधिक से अधिक क्षेत्रों में लागू किया जाता है। मशीनीकरण के कारण कृषि में संलग्न

---

1 "The process of economic growth centres on a relatively brief time-interval of two or three decades when the economy and the society of which it is a part transform themselves in such ways that economic growth is subsequently more or less automatic."

—*W. W. Rostow*

जनसंख्या धीरे-धीरे नगरों में स्थापित उद्योगों में लग जाती है। राष्ट्र उत्पादन की दृष्टि से अधिक आत्मनिर्भर हो जाता है। पूंजी विनियोग की मात्रा में वृद्धि के कारण काम के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है और बेकारी तथा अदृश्य बेकारी बहुत घट जाती है। आयात तथा निर्यात के ढांचे में परिवर्तन हो जाता है। संक्षेप में, परिपक्वता की दशा में देश आर्थिक सम्पन्नता एवं सुदृढ़ता प्राप्त कर लेता है।

(५) अपार उपभोग की अवस्था (Age of High Mass Consumption)

इस अवस्था में देश की उत्पादन गतिविधियों का दायरा इतना व्यापक हो जाता है और सामान्य नागरिकों की आय में इतनी वृद्धि हो जाती है कि सामान्य जनता द्वारा किये जाने वाले उपभोग का स्तर ऊँचा उठ जाता है और इसमें विविधता तथा प्रचुरता का समावेश हो जाता है। सर्वसाधारण के द्वारा दैनिक उपभोग की विविध आवश्यक वस्तुओं के साथ-साथ विज्ञान द्वारा प्रदत्त आरामदायक उपकरणों तथा साधनों का उपयोग व्यापक रूप से किया जाने लगता है। लोगों के आहार का स्तर बढ़ जाता है तथा प्रत्येक व्यक्ति रहन-सहन, आवास आदि का उच्च-से उच्च स्तर प्राप्त करने के प्रयास करने लगता है। सार्वजनिक रूप से ऐसी अवस्था में सरकार द्वारा सर्वसाधारण के लिए समाज कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। तकनीकी सुधारों का क्रम भी निरन्तर बना रहता है जिसके कारण वस्तुओं के नये-नये डिजाइन इस प्रकार बाजार में उपलब्ध होते रहते हैं। इस समय में अधिक उत्पादन की सुविधा सामान्य लोगों को भी उपभोग के उच्च स्तर के साथ-साथ अधिक अवकाश एवं मनोरंजन के अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरकर राष्ट्र अन्त में अपार उपभोग की अवस्था में आकर भौतिक सम्पन्नता और समृद्धि के एक नवीन युग का अनुभव करता है। यह कहना कठिन है कि प्रचुर उपभोग और भौतिक समृद्धि की चरम सीमा के आगे विकास क्रम की परिणति का स्वरूप क्या होगा?

विभिन्न देशों के आर्थिक विकास का अध्ययन करके प्रोफेसर रोस्टोव ने यह स्पष्ट किया है कि अमुक राष्ट्र ने आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में कब प्रवेश किया। उनके अनुसार भारत ने सन् १९५२ में स्फूर्तिमान अवस्था (take off stage) में प्रवेश कर लिया था। किन्तु भारतीय अर्थशास्त्री यह स्वीकार नहीं करते कि भारत अभी इस अवस्था में पहुँच चुका है। पहले यह विचार था कि तीसरी योजना के अन्त तक भारत इस अवस्था को प्राप्त कर लेगा किन्तु इस अवधि में राष्ट्रीय घटना चक्र ने इसे सम्भव न होने दिया। राजनीतिक, प्राकृतिक एवं आर्थिक कारणों से तीसरी योजना पूर्ण सफल न हो सकी तथा सन् १९६६ तक देश में विनियोग की दर तथा आर्थिक विकास की दर में शिथिलता आने लगी थी। युद्धों के कारण फसलें नष्ट हो जाने से भी भारतीय अर्थव्यवस्था को धक्का लगा किन्तु १९६८ के बाद इसमें फिर सुधार के लक्षण दृष्टिगोचर हुये। मार्च सन् १९७१ को समाप्त होने वाले द्वितीय वर्ष में भारत में विनियोग की दर कुछ पूर्वापेक्षा से अधिक हो गयी।

औद्योगीकरण, तकनीकी अभिनवीकरण एवं निर्यात व्यापार में भी अत्यन्त अनुकूल परिवर्तन हुये हैं। अतः अब यह कहा जा सकता है कि भारत स्फूर्तिमान अवस्था (take off stage) में प्रवेश कर चुका है।

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे अनेक प्रकार के तत्त्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन तत्त्वों को **आर्थिक एवं सामाजिक** दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। आर्थिक तत्त्वों में प्राकृतिक साधन, जनसंख्या, प्राविधिक ज्ञान, पूँजी निर्माण तथा पूँजी उत्पाद अनुपात आदि सम्मिलित किये जाते हैं। सामाजिक तत्त्वों में सांस्कृतिक, नैतिक एवं अन्य सामाजिक दशाएँ सम्मिलित होती हैं। किसी देश के आर्थिक विकास पर इन सब तत्त्वों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि विभिन्न देशों पर इन तत्त्वों का प्रभाव समान रूप से प्रतीत हो क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र में कार्यशील विभिन्न तत्त्वों का स्वरूप भिन्न हो सकता है।

आर्थिक तत्त्व

(१) **प्राकृतिक साधन**—प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था प्रकृति द्वारा प्रदत्त साधनों से प्रभावित होती है। देश का विस्तार उत्तम जलवायु, उर्वर मिट्टी, जल, खनिज एवं शक्ति के साधनों की प्रचुरता आदि प्रकृति की देन हैं और इनका बँटवारा विभिन्न राष्ट्रों को समान रूप से नहीं हुआ है। जिस देश के पास अधिक प्राकृतिक साधन हैं उसके आर्थिक विकास की सम्भावनाएँ निश्चय ही अधिक होंगी। इसके अपवाद भी हो सकते हैं। ऐसे उदाहरण हैं कि अपेक्षाकृत कम प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी प्राविधिक ज्ञान तथा सामाजिक कुशलता के बल पर कुछ देशों ने आशा से अधिक विकास किया। फिर भी आर्थिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक साधनों की सम्पन्नता निश्चय ही किसी भी राष्ट्र को लाभपूर्ण स्थिति में पहुँचा देती है।

(२) **जनसंख्या**—समस्त उत्पादनों के लिए मानव श्रम आवश्यक है जिसकी पूर्ति जनसंख्या के द्वारा होती है। यदि किसी देश की जनसंख्या बहुत कम है तो यह आर्थिक विकास के लिए एक प्रतिकूल तत्त्व होगा। इसी प्रकार सीमा से अधिक जनसंख्या भी आर्थिक प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है। इस सन्दर्भ में जनसंख्या का आकार ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप भी विकास को प्रभावित करता है। प्रशिक्षित, स्वस्थ, कार्यकुशल एवं जागरूक जनसंख्या विकास की प्रक्रिया में कम समय में वेग उत्पन्न कर सकती है। जनसंख्या का आकार, जनसंख्या वृद्धि की दर, आयु के अनुसार जनसंख्या का वर्गीकरण आदि सभी बातें आर्थिक प्रगति को प्रभावित करती हैं।

(३) **प्राविधिक ज्ञान**—उत्पादन के लिए देश के प्राकृतिक साधनों का विदोहन प्राविधिक ज्ञान के स्तर पर निर्भर होता है। प्राविधिक ज्ञान एवं नवीन

आविष्कारों के द्वारा उत्पादन की नवीन विधियों को अपनाना सम्भव होता है और ऐसा करना आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। प्राय सभी विकसित देशों ने अपनी प्रगति प्रभावी प्राविधिक एवं तकनीकी ज्ञान के विकास और अधिक उत्पादन के लिए उसके कुशल उपयोग के आधार पर की है। इंगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति का सबसे प्रमुख कारण अनेक क्षेत्रों मे एक के बाद एक अनेक आविष्कारों का होना था। ससार के सभी उन्नत देशों मे वैज्ञानिक शिक्षा, तकनीकी कुशलता अनुसन्धान आदि पर बहुत ध्यान दिया जाता है। अल्प विकसित देशों मे इसका अभाव है अत औद्योगीकरण के मार्ग मे यह एक बड़ी बाधा बनी हुई है। अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के बल पर इसे दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, भारत मे अनेक औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना इगलैण्ड, अमरीका, रूस, पश्चिमी जर्मनी एव ऐसे ही अन्य विकसित देशों के तकनीकी सहयोग के द्वारा की गयी है।

(४) पूँजी निर्माण—आर्थिक प्रगति के लिए पूँजी निर्माण एक अनिवार्य शर्त है। राष्ट्रीय आय के कुछ भाग को उपभोग से बचाकर उसका अधिक उत्पादन के लिए विनियोग आवश्यक होता है। ताकि राष्ट्रीय उत्पाद मे उत्तरोत्तर अधिक वृद्धि होती रहे। इसके लिए तीन बातें आवश्यक हो जाती हैं। प्रथम, देश मे बचत करने की पर्याप्त क्षमता हो। द्वितीय, इस बचत को प्रोत्साहित करने के लिए देश मे बचत एव साख संस्थाओं का व्यापक सगठन हो। तीसरे, इस प्रकार उपलब्ध पूँजी के लाभदायक विनियोग के लिए उचित अवसर देश मे हो। पूँजी विनियोग के पर्याप्त अवसर तभी होंगे जब देश मे विभिन्न वस्तुओं के लिए पर्याप्त मांग हो और दूसरी ओर कुशल प्राविधिक ज्ञान तथा साहस उपलब्ध हो।

(५) पूँजी उत्पाद अनुपात—उत्पादन मे पूँजी का विनियोग ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि पूँजी इस प्रकार से विनियोजित की जानी चाहिए कि जिससे उत्पादन अधिक से अधिक हो सके। पूँजी की उत्पादकता उस दशा मे अधिक मानी जायगी जबकि अपेक्षाकृत कम पूँजी लगाकर अधिक उत्पादन प्राप्त कर लिया जाय। पूँजी उत्पाद अनुपात से आशय उस अनुपात से है जो विनियोजित पूँजी की मात्रा और दूसरी ओर, उस पूँजी से उत्पादित माल की मात्रा मे होता है। यदि पूँजी की तीन इकाइयों का विनियोजन करके उससे उत्पादन की एक इकाई प्राप्त की जाती है, तो इस दशा मे पूँजी उत्पाद अनुपात ३ : १ हुआ, अल्प विकसित देशों मे पूँजी उत्पाद अनुपात अधिक है, जबकि विकसित देशों मे यह अनुपात कम है। दूसरे शब्दों मे, इसी कथन को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि अल्प-विकसित देशों मे विकसित देशों की अपेक्षा पूँजी की उत्पादिता कम होती है। अनुपात मे इस असमानता के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे प्राविधिक ज्ञान एव मशीनीकरण का स्तर, प्रबन्ध एव सगठन कुशलता, विकास की अवस्था आदि। यह अनुपात एक ही देश के विभिन्न उद्योगों मे न्यूनाधिक हो सकता है। आरम्भिक उद्योगों मे तथा प्रारम्भिक कृषि

मे पूँजी उत्पाद अनुपात मे बडी भिन्नता है। हमारा लक्ष्य सभी व्यवसायो मे पूँजी उत्पाद अनुपात को कम करने का है ताकि आर्थिक प्रगति की दर को बढाया जा सके। कुटीर और लघु उद्योगो मे पूँजी उत्पाद अनुपात कम है—अर्थात कम पूँजी लगाकर अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। चूँकि अल्प-विकसित देश मे पूँजी दुर्लभ होती है अत वहाँ लघु एव कुटीर उद्योगो का अधिक महत्व होता है। इन के अतिरिक्त एसे उद्योग अधिक रोजगार के अवसर भी प्रदान कर सकते हैं।

सामाजिक तत्व

इस वर्ग म अनक सांस्कृतिक नैतिक प्रशासनिक एव राजनीतिक तत्व आते है। आर्थिक विकास केवल मात्र प्राकृतिक साधनो और पूँजी के बल पर ही नही किया जा सकता है। इसके लिए एक सुसगठित एव प्रगतिशील सामाजिक ढाँचे की भी आवश्यकता होती है। इसके निर्माण मे पर्याप्त समय लगता है। प्राचीन प्रथाओ, मान्यताओ एव सस्थाओ को बदल कर उनके स्थान पर नवीन सस्थाओ एव प्रथाओ का निर्माण किया जाता है। लोगो के विचारो एव दृष्टिकोणो मे भी अनुकूल परिवर्तन लाना होता है और इसके लिए उचित शिक्षण की सुविधाओ का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है। निष्क्रियता, भाग्यवादिता एव रूढिवाद के स्थान पर कठोर आशावाद आत्मविश्वास एव प्रगतिवाद की स्थापना किया जाना आवश्यक हो जाता है ताकि एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सके जो आर्थिक एव भौतिक विकास का इच्छुक हो और उस दिशा म प्रयास करने के लिए तत्पर हो। **"आर्थिक विकास कोई यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है और न यह कुछ चुने हुए तत्वो का सरल योग मात्र है। अन्तत यह एक मानवीय उपक्रम है और समस्त मानवीय उपक्रमों की भाँति इसकी प्रगति भी इनमें सलग्न व्यक्तियो के चातुर्य, गुणो एव दृष्टिकोणो पर निर्भर होगी।"**[1]

केवल राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय मे वृद्धि हो जाने मात्र मे ही आर्थिक विकास नही हो जाता है। इसके साथ-साथ वास्तव मे उस समाज के सदस्यो मे ऐसी क्षमता, कुशलता एव योग्यता का होना भी अति आवश्यक है जिसके आधार पर वे इस बढी हुई आय का अधिक उत्पादन के लिए उचित उपयोग कर सकें तथा इस आय म आगे निरन्तर वृद्धि कर सकने म सफल हो सके। मानव क्षमता एव मानव प्रयत्न की सफलता ही आर्थिक विकास की सतत प्रक्रिया को निरन्तर बनाये रख सकती है और ऐसा करने के लिए **सामाजिक प्रथा एव सस्थाओं में आमूल परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है।** देश मे चाहे कितने प्रचुर प्राकृतिक साधन विद्यमान हो, जब तक सामाजिक वातावरण मे अनुकूल परिवर्तन नही होते हैं, आर्थिक प्रगति करना सम्भव नही होता। सभी अर्धविकसित देशो मे आर्थिक प्रगति

---

1 Gile, Richard T, *Economic Development*, p 19.

के मार्ग में सामाजिक वातावरण की प्रतिकूलता बाधक रही है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। सामाजिक दुर्बलताओं के अतिरिक्त राजनीतिक एवं प्रशासनिक दुर्बलताएँ भी यहाँ व्याप्त रही हैं। जातिवाद, क्षेत्रवाद, संकीर्ण मनोवृत्ति, अशिक्षा, अज्ञान एवं अन्धविश्वास, विवेकशील दृष्टिकोण का अभाव एवं नैतिक दुर्बलताओं के साथ-साथ ढीले-ढाले एवं भ्रष्ट प्रशासन तथा राजनीतिक दलबन्दी ने स्थिति को और विषम बना दिया है। जब तक दृढ़ता से इन सबमें सुधार नहीं किया जाता आर्थिक विकास के मार्ग में ये तत्त्व सदैव बाधक बने रहेंगे।

विकास के साधन एवं समस्या

विश्व के प्रायः सभी अल्प-विकसित देश इस बात के इच्छुक हैं कि वे कम से कम समय में विकसित देशों की सूची में सम्मिलित हो जाएँ। किन्तु यह कोई सरल कार्य नहीं है। लाखों-करोड़ों निर्धन, साधनहीन अशिक्षित व्यक्तियों को धनवान, साधन-सम्पन्न एवं शिक्षित नागरिकों में बदल देना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिसमें अन्तर्गत आवश्यक दशाओं योग्यताओं, क्षमताओं एवं प्रवृत्तियों का निर्माण करने में लम्बा समय लगता है। इसके साथ ही *आर्थिक विकास अपनी प्रारम्भिक अवस्था में राष्ट्र या समाज से कठोर परिश्रम,* त्याग एवं धैर्य की अपेक्षा करता है, जिसके लिए समाज को लम्बे समय तक पर्याप्त संयम का परिचय देना होता है। ऐसे राष्ट्र में पूँजी की कमी सबसे बड़ी कठिनाई होती है। इस साधन की पूर्ति ऐसे राष्ट्र अनेक उपायों से करते हैं जिनमें राष्ट्रीय बचत, सार्वजनिक ऋण, विदेशी सहायता, निर्यात में वृद्धि, करों में वृद्धि, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों द्वारा बचत एवं घाटे की अर्थव्यवस्था आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। किन्तु इन सब उपायों की भी अपनी सीमाएँ हैं। ऐसे देशों में बचत का स्तर बहुत नीचा होता है। विदेशी पूँजी को प्राप्त करने और उसका उचित उपयोग करने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए भी देश को पर्याप्त समय लग जाता है फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि विदेशी सहायता निरन्तर आवश्यक मात्रा में प्राप्त होती ही रहे। अतः देश को बाहरी साधनों की तुलना में आन्तरिक साधनों पर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है। इनमें बचत के अलावा सार्वजनिक ऋण एवं करों में वृद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण है। सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा बचत भी विकास का एक उत्तम साधन हो सकती है किन्तु विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इन उपक्रमों से अधिक बचत की आशा नहीं की जा सकती है। विकास योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था, हीनार्थ प्रबन्धन अथवा घाटे की व्यवस्था (Deficit financing) के द्वारा भी की जा सकती है। भारत अपनी प्रथम तीन योजनाओं में लगभग २,३१८ करोड़ रुपये की व्यवस्था हीनार्थ प्रबन्धन के आधार पर कर चुका है। इसके बाद में भी प्रतिवर्ष लगभग ३०० करोड़ रुपये की व्यवस्था हीनार्थ प्रबन्धन के आधार पर की जाती रही है। इस साधन के अन्तर्गत व्यय की आवश्यकताओं एवं साधनों की उपलब्धि के बीच की खाई को शासन के नोट छापकर पूरा किया जाता था। किन्तु

अध्याय १९

भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF INDIAN ECONOMY)

प्रत्येक देश की आर्थिक व्यवस्था में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। प्राय ये परिवर्तन इतने स्वाभाविक एवं क्रमिक होते हैं कि हमें उनका विशेष आभास नहीं होता। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तत्त्व देश के अन्दर सदैव सक्रिय रहते हैं और ये देश के आर्थिक ढाँचे को सदैव प्रभावित करते रहते हैं। भारत एक प्राचीन देश है और यहाँ की प्राचीन व्यवस्था वर्तमान व्यवस्था से बहुत सीमा में भिन्न थी। यह व्यवस्था मुख्यत ग्रामीण व्यवस्था पर आधारित थी। गाँव स्वयं शासित एवं आत्म-निर्भर इकाइयों के रूप में थे और उनका सम्बन्ध नगरों तथा बाह्य जगत से बहुत कम था। उद्योग नगरों और कस्बों में बिखरे हुए थे और उनका सञ्चालन कुटीर उद्योगों के रूप में होता था, कृषि व्यापार के लिए न होकर निर्वाह के लिए की जाती थी। परिवहन के साधनों का अभाव था तथा जो भी साधन थे वे अत्यन्त धीमे और कष्टसाध्य थे। यात्रा करना तथा माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना संकटपूर्ण था। व्यापार अधिकांशत स्थानीय बाजार तक सीमित रहता था, किन्तु कुछ वस्तुओं का निर्माण भी होता था। जिनमें प्राय कलात्मक एवं विलासिता की बहुमूल्य वस्तुएँ होती थीं। भारत सब प्रकार के मसाले, मलमल [illegible] वस्त्र एवं [illegible] का निर्यात भी करता था। इस प्रकार प्राचीन एवं मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें अनेक सदियों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए थे।

अंग्रेजों के अधिकार के बाद भारत की आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से ही भारत से सभी प्रकार के कच्चे माल एवं खाद्य पदार्थों का निर्यात होने लगा। बाद में ब्रिटिश शासन ने रेलों, सड़कों एवं सिंचाई के लिए नहर प्रणालियों का निर्माण भी किया। इन सबका मुख्य उद्देश्य यह था कि भारत को इंग्लैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चा माल प्रदान करने का एक साधन तथा इंग्लैण्ड से आयात किये गये निर्मित माल की खपत के लिए एक बाजार बनाया जाय। [illegible] और [illegible], भारत की अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन हुए उनके कारण यह एक ऐसी असन्तुलित व्यवस्था बन गयी, जिसमें कृषि, उपभोक्ता उद्योगों तथा परिवहन के साधनों का ही [illegible]

विकास किया गया, किन्तु आधारभूत उद्योगों एवं शक्ति के साधनों आदि की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

भारत की अर्थव्यवस्था में प्रथम विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में अनेक परिवर्तन हुए। स्वतन्त्रता के बाद से इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सुधार किए गए हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में भारी मात्रा में पूंजी का विनियोग किया गया है। इससे आर्थिक गतिविधियों का क्षेत्र व्यापक बना है और सभी प्रकार के उत्पादन में वृद्धि हुई है। योजनाओं का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके लोगों के जीवनयापन के स्तर में सुधार करना रहा है ताकि धनिकों एवं निर्धनों के बीच की खाई को भरा जा सके और आर्थिक असमानताओं को दूर करके सर्वसाधारण को आर्थिक एवं सामाजिक न्याय दिया जा सके। भारत अभी पूर्ण विकसित राष्ट्र नहीं है। अन्य देशों की तुलना में हमारी राष्ट्रीय वास्तविक आय और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बहुत कम है। भारत विकास की गति में तीव्रता लाने का प्रयास करता रहा है। धीरे-धीरे हमारी अर्थव्यवस्था में विकास के साथ आधुनिक युग की विशेषताओं का प्रादुर्भाव हो रहा है, किन्तु अर्थव्यवस्था की प्राचीन तथा परम्परागत विशेषताएँ अभी पूर्णतः लोप नहीं हुई हैं। यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में जहाँ एक ओर नगरों तथा कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में आधुनिकता के दर्शन होते हैं, वहाँ दूसरी ओर गाँवों तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों में प्राचीन विशेषताओं का प्रभाव बना हुआ है। फिर भी नियोजित आर्थिक विकास के साथ हमारी अर्थव्यवस्था की प्रकृति और उसके स्वरूप में मौलिक और आधारभूत परिवर्तन हो रहे हैं। नीचे भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया गया है :

१ कृषि प्रधानता

भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है। देश का सबसे प्रमुख व्यवसाय कृषि ही है। गाँवों में हमारी जनसंख्या का लगभग ८२.२ प्रतिशत भाग निवास करता है और इसमें से लगभग ७० प्रतिशत प्रत्यक्ष रूप से कृषि व्यवसाय में लगा हुआ है। स्वतन्त्रता के बाद से कृषि के विकास के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं जिनमें भूमिसुधार, जमींदारी उन्मूलन, सिंचाई की बड़ी योजनाओं का निर्माण प्रमुख है। भाखरा नांगल, चम्बल, दामोदर, हिरन्द, तुंगभद्रा, राजस्थान नहर आदि बड़ी नदी घाटी योजनाएँ सिंचाई और बिजली के लिए पूर्ण की गयी हैं। भूमि-सुधार के क्षेत्र में मध्यस्थों को समाप्त करके काश्तकारी कानूनों में सुधार किया गया है। कृषि विभागों, सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार सेवा केन्द्रों के द्वारा कृषि उत्पादन की नवीन विधियों को किसानों तक पहुँचाया जा रहा है। सुधरे हुए सकर बीजों और रासायनिक उर्वरकों की उपलब्धि की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। सिन्दरी, दुर्गापुर, नांगल, ट्राम्बे, गोरखपुर, नामरूप, कोटा आदि स्थानों पर रासाय-

निर उर्वरकों के उत्पादन के लिए कारखाने खोले गये हैं तथा अन्य कई स्थानों पर खोले जा रहे हैं।

उपर्युक्त परिवेचना से यह प्रकट होता है कि भारतीय कृषि की प्रगति के लिए एक सुदृढ़ आधार तैयार कर लिया गया है। इतना सब होते हुए भी भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत ही कम है। कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारतीय कृषि आत्मनिर्भर नहीं है। देश की आवश्यकताओं के लिए पूरी मात्रा में खाद्य पदार्थ तथा उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करने में हमारी कृषि पिछले कुछ वर्षों से असमर्थ रही है प्रतिवर्ष विदेशों से खाद्यान्नों एवं औद्योगिक कच्चे माल का आयात करना पड़ता है। कृषि की यह असमर्थता हमारी अर्थव्यवस्था की सबसे कष्टदायक विशेषता है। इसका मुख्य कारण वर्षा की अनिश्चित स्थिति है। जिसके कारण कृषि उत्पादन में बहुत अधिक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। जब वर्षा अच्छी होती है तो फसल उत्तम हो जाती है अन्यथा उत्पादन कम होता है। वर्षा एवं जलवायु पर कृषि की इस निर्भरता को कम करने के लिए ही सिंचाई के साधनों का विकास एवं कृषि के वैज्ञानिक तरीकों का अनुसरण आवश्यक हो गया है। जब फसल खराब होती है तो इससे विदेशी मुद्रा की स्थिति पर दुहरी मार पड़ती है एक ओर तो खाद्यान्न एवं कच्चे माल के आयात पर विदेशी मुद्रा व्यय होती है और दूसरी ओर निर्यात की मात्रा गिर जाती है (उल्लेखनीय है कि हमारे कुल निर्यात का लगभग आधा कृषि जन्य माल पर आधारित है) और विदेशी मुद्रा की आय कम होती है। इसलिए कृषि की उत्पादकता बढ़ाना देश के लिए अति आवश्यक है। भारत में गेहूँ का प्रति हैक्टेयर उत्पादन पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में एक तिहाई है। यही दशा चावल, कपास और गन्ने के उत्पादन के बारे में है। सुधरी हुई वैज्ञानिक रीतियों को प्रयोग करके भारत इतने ही क्षेत्र में दुगुना तिगुना उत्पादन प्राप्त कर सकता है।

२ राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय की न्यूनता

सन् १९६९-७० के अन्त में चालू मूल्यों के अनुसार भारत की 'राष्ट्रीय आय' ३०,५७० करोड़ रुपये थी किन्तु सन् १९६०-६१ के मूल्यों के अनुसार यह केवल १७,९६० करोड़ रुपये ही थी जो सन् १९७०-७१ में बढ़कर १८,६३८ करोड़ रुपए हो गयी। 'प्रतिव्यक्ति आय' चालू मूल्यों के अनुसार इस समय लगभग ५६० रुपए है, जबकि सन् १९६०-६१ के मूल्यों के अनुसार यह केवल ३३८ रुपए ही है। संयुक्त राज्य अमरीका की राष्ट्रीय आय भारत की तुलना में सोलह गुना अधिक है। यहाँ तक कि हालैण्ड जैसे छोटे देश की राष्ट्रीय आय भारत की तुलना में चार गुना अधिक है। आर्थिक नियोजन के काल में भी हमारी राष्ट्रीय आय में आशातीत वृद्धि नहीं हुई है। प्रथम योजना में १८.४ प्रतिशत तथा द्वितीय योजना में १९.६ प्रतिशत वृद्धि हमारी राष्ट्रीय आय में हुई जबकि तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष में

हमारी राष्ट्रीय आय कुछ गिर गयी। अब चतुर्थ योजना म राष्ट्रीय आय मे पाँच से छ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की दृष्टि म हमारी स्थिति और भी दयनीय है। सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रकाशनो के आधार पर भारत की गणना उन अल्प-विकसित राष्ट्रो मे की जाती है जिनकी प्रति व्यक्ति आय ६० डालर म कम है। जापान की प्रति व्यक्ति आय भारत म तीन गुना, इगलैण्ड की पन्द्रह गुना और सयुक्त राज्य अमरीका की तीस गुना अधिक है। राष्ट्रीय आय की न्यूनता और जनसख्या की अधिकता इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है। भारत की राष्ट्रीय आय का वितरण भी बडा ही असन्तुलित है और यह हमारी पिछडी हुई अर्थव्यवस्था का प्रतीक है। महलनवीस समिति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रथम और द्वितीय योजनाकाल म निजी क्षेत्र म आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण बहुत अधिक हुआ। इस समिति के अनुसार निम्न आय वाले १० प्रतिशत लोगो को जहाँ कटी हुई आय का १ ३ प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ, वहाँ दूसरी ओर सबसे उच्च आय वाले १० प्रतिशत लोगो को इसका ४० ४ प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ। इसी प्रकार एकाधिकार आयोग द्वारा दी गयी रिपोर्ट ने भी इस बात की पुष्टि होती है कि औद्योगिक क्षेत्रों मे पर्याप्त केन्द्रीयकरण हुआ है।

३ असन्तुलित औद्योगिक विकास

यह स्थिति सभी अल्प-विकसित राष्ट्रो मे विद्यमान है। ऐसे देशो मे जो भी औद्योगिक विकास दिखायी देता है वह प्राय उपभोक्ता उद्योगो तक ही सीमित होता है। आधारभूत उद्योगो की ओर कम ध्यान दिया गया है। आधारभूत उद्योगो के अभाव मे मशीनो एव औजारो के लिए अन्य देशो पर निर्भर रहना आवश्यक हो जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे असन्तुलन की यह स्थिति योजना काल मे कम अवश्य हुई है, किन्तु अभी पूरी तरह दूर नहीं हुई है। लोह एव इस्पात, अन्य धातु उद्योग, भारी मशीन निर्माण, भारी रसायन उद्योग, खनिज उद्योग एव विद्युत उपकरण आदि की ओर पिछली योजनाओ म पर्याप्त ध्यान दिया गया है।

४ जनसख्या वृद्धि की ऊँची दर

जनसख्या की दृष्टि से भारत का विश्व मे दूसरा स्थान है। सन् १९६१ मे देश की जनसख्या ४३ ९ करोड थी। सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार देश की जनसख्या अब ५४ ६६ करोड से कुछ अधिक हो चुकी है। सन् १९५१ के बाद के दशक मे जनसख्या वृद्धि की वार्षिक दर २ १५ प्रतिशत थी जो अब बढकर २ ५ प्रतिशत से भी कुछ अधिक हो चुकी है। इस प्रकार एक वर्ष मे हमारे देश मे लगभग सवा करोड व्यक्तियो की वृद्धि हो जाती है। जनसख्या वृद्धि की इस ऊँची दर का कारण मृत्यु-दर मे कमी हो जाना तथा जन्म-दर मे कमी न होना है। अत प्रति वर्ष इतने अधिक व्यक्तियो के लिए भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था हमारी अर्थ व्यवस्था पर भारी बोझ बन जाती है। चतुर्थ योजना मे परिवार नियोजन का

व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है जिससे यह आशा की जाती चाहिए कि अगले दस वर्षों में जन्म-दर ४० प्रति हजार से गिरकर २५ प्रति हजार हो जायगी और इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर २.५ प्रतिशत से गिर कर लगभग १.५ प्रतिशत हो सकेगी।

५. बेरोजगारी

यह भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा अभिशाप है। योजना आयोग ने द्वितीय योजना के आरम्भ में यह अनुमान लगाया था कि देश में ५३ लाख व्यक्ति बेरोजगार थे—२५ लाख शहरों में तथा २८ लाख गाँवों में। तृतीय योजना के प्रारम्भ में ९० लाख व्यक्तियों के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया। इस समय अनुमानतः एक करोड़ से भी अधिक व्यक्ति बेरोजगार हैं। इसके अतिरिक्त नेशनल सेम्पल सर्वेक्षण के अनुसार देश में लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति अदृश्य बेरोजगारी (Disguised unemployment) के शिकार हैं। जिस देश की अर्थव्यवस्था में इतनी अधिक जन-शक्ति लाभदायक उत्पादन कार्य के अवसर से वंचित हो, वहाँ अधिक प्रगति कैसे हो सकती है। मानव-शक्ति का यह विनाश बड़ा असह्य है। भारत की कार्यशील जनसंख्या भी कुल जनसंख्या के अनुपात में बहुत कम है। इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में अधिकांश जनसंख्या का योगदान देश को नहीं मिल पाता है। इधर कुछ वर्षों से शिक्षित व्यक्तियों में भी बेरोजगारी व्याप्त हो रही है।

६. निम्न जीवन स्तर

हमारी अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय इतनी कम है कि देश के अधिकांश निवासी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी कठिनाई से कर पाते हैं। आहार, वस्त्र, एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं के उपभोग का स्तर बहुत ही निम्न है। भोजन में पोषक तत्त्वों की मात्रा भी इतनी कम होती है कि उसके द्वारा सन्तोषजनक स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को बनाये रखना सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के लिए, भारत में एक औसत व्यक्ति को केवल १,८०० कैलोरीज आहार ही प्राप्त होता है जबकि सामान्यतः विकसित देशों में ३,००० कैलोरीज आहार प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ हो जाता है। एक औसत भारतीय को पन्द्रह मीटर वस्त्र प्रति वर्ष ही प्राप्त होता है जबकि विकसित देशों में यह औसत चालीस मीटर से ऊपर है। देश में लोगों को प्रति व्यक्ति १५.४ औंस खाद्यान्न, ०.३६ औंस दालें, ०.५२ औंस चिकनाई और २.८१ औंस दूध या दूध से बने पदार्थ ही उपलब्ध हो पाते हैं। गाँवों में मकानों के नाम पर झोंपड़ियाँ हैं तथा नगरों में मकानों के अभाव में लाखों व्यक्ति फुटपाथ पर दिन गुजारते हैं। जब जीवन की ये अनिवार्यताएँ ही उपलब्ध नहीं हैं, तो शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन एवं भविष्य के लिए बचत की कल्पना तो एक औसत नागरिक कर ही नहीं सकता है।

७. बचत एवं पूँजी निर्माण की निम्न दर

एक औसत भारतीय की आय इतनी कम है कि वह उसमें से कुछ बचा नहीं

सकता। सामाजिक अपव्यय के कारण भी बचत क्षमता कम हो जाती है। पूंजी निर्माण के लिए बचत का लाभदायक विनियोग करना आवश्यक होता है। अल्प विकास के कारण पूंजी विनियोग के लाभदायक अवसर भी कम होते हैं। जो कुछ भी बचत होती है उसका विनियोग प्राय व्यापार, साहूकारी अथवा सट्टे म किया जाता है, क्योंकि साहस एव प्रबन्ध क्षमता के अभाव मे उद्योगो म पूंजी लगाने के अवसरो की कमी होती है। इसके अतिरिक्त आम जनता की क्रय शक्ति कम होने के कारण बाजार की माँग भी कम होती है और इसलिए नव उद्योगो मे पूंजी लगाने का उतना उत्साह नही होता है। इन सब कारणो से पूंजी निर्माण की गति अत्यन्त धीमी होती है जिसम वृद्धि किय बिना अर्थव्यवस्था मे सुधार करना सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

८ तकनीकी ज्ञान का अभाव

औद्योगीकरण के लिए पूंजी निर्माण के साथ-साथ तकनीकी ज्ञान के निर्माण (Skill formation) की भी आवश्यकता होती है। उच्च तकनीकी ज्ञान के लिए भारत आज भी अन्य राष्ट्रो का मुखापेक्षी है। लोह एव इस्पात, धातु परिशोधन, मशीन निर्माण, पट्रोल एव रसायन, इन्जीनियरिंग, इलेक्ट्रानिक्स, वायुयान निर्माण आदि के लिए ऊँचे दर्जे के तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण, अन्वेषण एव अनुसन्धान की सुविधाओ के निर्माण एव प्रशिक्षित विशेषज्ञों के दल को तैयार करने मे पर्याप्त समय लगता है। भारत के साथ दुर्भाग्य यह है कि प्रति वर्ष हजारो प्रशिक्षित भारत वासी विदेशो म ही बस जाते हैं, क्योंकि उन्हें वहाँ अधिक आकर्षक शर्तें उपलब्ध हो जाती हैं।

पिछले दस वर्षो मे विदेशी तकनीकी एव आर्थिक सहयोग के आधार पर निजी क्षेत्र म अनेक कारखाने स्थापित किये गये हैं। सरकारी क्षेत्र म भी विदेशों से तकनीकी सहयोग कारखानो की स्थापना मे प्राप्त किया गया है। देश के इस्पात के कारखानो, तेल की खोज एव तेल शोधन, मशीन निर्माण एव विद्युत उपकरण क्षेत्रो मे सरकारी स्तर पर तकनीकी सहयोग अधिक महत्वपूर्ण रहा है।

भारत की वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के द्वारा देश भर मे विभिन्न स्थानो पर राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओं का सचालन किया जा रहा है। इस समय लगभग २८ राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाएँ कार्यशील हैं।

९ परिवहन एव सचार के साधनों की कमी

उत्पादन के विभिन्न तत्त्वो को गतिशील बनाने के लिए परिवहन एव सचार के साधनो का विकास करना आवश्यक होता है। भारत मे इन साधनो का पर्याप्त विकास नही हो सका है। भारत मे केवल ५६,००० किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइन है जो देश के आकार को देखते हुए बहुत कम है। सयुक्त राज्य अमरीका मे रेलो की लम्बाई चार लाख किलोमीटर है। जनसख्या की दृष्टि म भारत में प्रति एक लाख व्यक्तियो के लिए लगभग १०८ किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइन है,

जबकि इंगलैण्ड में यह लम्बाई ७४, संयुक्त राज्य अमरीका में ३५८ तथा कनाडा में ७४४ किलोमीटर है।

सड़कों की दशा और भी खराब है। भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़कों की लम्बाई केवल ०.३ किलोमीटर है, जबकि यह लम्बाई संयुक्त राज्य अमरीका में १.६, जर्मनी में २.०, फ्रान्स में २.६, इंगलैण्ड में ३ तथा जापान में ५ किलोमीटर है। भारत की जहाजी क्षमता भी केवल १५ लाख टन है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में यह क्षमता २५० लाख टन है। जहाज निर्माण तथा वायुयान निर्माण के क्षेत्र में भी भारत अभी बहुत अधिक विकास नहीं कर सका है।

अतः देश में खाद्यान्न, औद्योगिक कच्चे एवं निर्मित माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्रता से पहुँचाने और श्रमिकों को गतिशील बनाने के लिए परिवहन के साधनों का और अधिक विकास किया जाना चाहिए।

१० विदेशी व्यापार का असन्तुलन

आर्थिक नियोजन प्रारम्भ होने के बाद से निरन्तर भारत का आयात निर्यात से अधिक रहा है। यह असन्तुलन प्रति वर्ष प्रायः बढ़ता रहा है। प्रथम योजना काल में भारत ने ३,६१७ करोड़ रुपये का माल आयात किया, किन्तु निर्यात ३,०२६ करोड़ रुपये का ही हुआ—इस प्रकार ५८८ करोड़ रुपये से व्यापार शेष हमारे विपक्ष में रहा। द्वितीय योजना में कुल आयात ४,८८२ करोड़ और निर्यात ३,०४६ करोड़ रुपये का था, अर्थात् प्रतिकूल व्यापार शेष की मात्रा १,८३६ करोड़ रुपये हो गयी। तीसरी योजना में स्थिति और भी बिगड़ गयी। इस अवधि में कुल आयात ६,२०६ करोड़ रुपये था और निर्यात ३,८१२ करोड़ रुपये का रहा, अर्थात् प्रतिकूल व्यापार शेष बढ़कर २,३९४ करोड़ रुपये हो गया। यदि विदेशी व्यापार का असन्तुलन इसी प्रकार बढ़ता रहा तो एक सीमा ऐसी आ सकती है कि भारत विदेशी ऋणों से इतना दब जाय कि फिर इन ऋणों एवं उनके ब्याज का भुगतान करना उसके लिए कठिन हो जाय। अतः चतुर्थ योजना में अब निर्यात बढ़ाने तथा आयातों को कम करने के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। यह बहुत कुछ कृषि की उत्पादकता पर निर्भर होगा। यदि कृषि उत्पादन में निरन्तर वृद्धि कर ली जाय तो आयात की मात्रा कम की जा सकती है, तथा दूसरी ओर निर्यात की मात्रा को भी बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आयात की जाने वाली मशीनों आदि का देश में ही निर्माण करके भी इसमें कमी की जा सकती है तथा हमारे कारखानों द्वारा बने इन्जीनियरिंग के सामान का निर्यात बढ़ाया जा सकता है।

११ सुदृढ़ आधार एवं भावी सम्भावनाएँ

भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार आज से सुदृढ़ तथा इसके भावी विकास की सम्भावनाएँ अत्यन्त उज्ज्वल हैं। प्राकृतिक दृष्टि से भारत एक सम्पन्न राष्ट्र है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। सुन्दर नदियों के मैदान एवं उपजाऊ मिट्टी के आधार पर देश को अच्छी कृषि उपज प्राप्त हो सकती है।

खनिज की दृष्टि से भारत विश्व के चार बड़े देशों में गिना जाता है। लोहा, कोयला, तेल, मैंगनीज, अभ्रक, एल्युमीनियम, तांबा और अन्य प्रकार के अणु खनिज यहाँ उपलब्ध हैं। वन एवं पशु साधनों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति अच्छी है। कमी है तो केवल यह है कि भारत में अभी तक इन साधनों का पूरा विदोहन नहीं किया है। इसलिए भारत को निर्धनता का एवं धनी देश कहा जाता रहा है। हमारी अर्थव्यवस्था की यह विशेषता ही भविष्य में आर्थिक प्रगति की उज्जवल सम्भावनाओं की प्रतीक है। भारतवासी धीरे-धीरे अब इन साधनों के पूरा उपयोग करने की क्षमता में वृद्धि कर रहे हैं। यदि प्रगति का यही क्रम रहा तो अगली कुछ योजनाओं के बाद ही देश की अर्थव्यवस्था विकास के उच्च स्तर पर पहुँच जायगी।

१२ सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

पिछले बीस वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र का भी पर्याप्त विस्तार हुआ है, क्योंकि हमारी औद्योगिक एवं आर्थिक नीति एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) की परिचायक है। भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में उद्योग व्यापार एवं बीमा बैंकिंग का विस्तार हुआ है। प्रथम तीन योजनाओं में सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों पर लगभग २,५०० करोड़ रुपया व्यय किया गया। सन् १९५१ में सगठित उद्योगों में सरकारी क्षेत्र का प्रतिशत केवल ३ था जो तीसरी योजना के अन्त तक ३० हो गया। चौथी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत इस्पात, पैट्रोल, रासायनिक खाद, भारी मशीन उपकरण, विद्युत यन्त्र, जहाज एवं वायुयान निर्माण में विकास एवं विस्तार के विशाल कार्यक्रमों के लिए प्रावधान रखा गया है। इससे यह आशा की जा सकती है कि पाँचवीं योजना के प्रारम्भ में सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र के सगठित उद्योगों में विनियोजित पूँजी की मात्रा लगभग बराबर हो जायगी।

भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों के विस्तार को आवश्यक समझा गया क्योंकि महत्त्वपूर्ण एवं आधारभूत उद्योगों में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है जिसकी व्यवस्था निजी क्षेत्र कम समय में नहीं कर सकता। सरकारी पूँजी से ऐसे उद्योग भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनकी देश को तत्काल आवश्यकता है किन्तु जिनमें जोखिम अधिक तथा लाभ की सम्भावनाएँ कम हैं।

१३ अप्रगतिशील समाज

आर्थिक प्रगति के लिए एक प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय समाज में जो प्रथाएँ एवं संस्थाएँ अब तक प्रचलित रही हैं वे देश की प्राचीन अर्थव्यवस्था पर आधारित थीं जो आधुनिक औद्योगिक युग की मान्यताओं से मेल नहीं खातीं। संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति प्रथा, उत्तराधिकार के नियम, धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरता, छुआछूत आदि ऐसी विशेषताएँ रही हैं जिन्होंने समाज को समय के अनुकूल आगे बढ़ने से रोका है, देश के आर्थिक

विकास के लिए एक ऐसे समाज की आवश्यकता होती है जिसमें लोग उदारता से रह सकें, व्यापक दृष्टिकोण अपना सकें और स्वतन्त्रता से सोच विचार कर सकें। स्वतन्त्रता के बाद से इस स्थिति में सुधार करने का पर्याप्त प्रयास किया गया है। भारतीय समाज अब तेजी से बदल रहा है और आर्थिक क्रान्ति के साथ-साथ सामाजिक क्रान्ति धीरे-धीरे देश में हो रही है जिसके लक्षण सर्वत्र देखे जा सकते हैं। प्रगतिशील समाज का निर्माण आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु इसे इस ढंग से करना होगा जिससे कि उचित प्राचीन मान्यताओं तथा अर्वाचीन युग की आवश्यक अपेक्षाओं के बीच समुचित तालमेल बैठ सके।

उपर्युक्त विशेषताओं से यह प्रकट होता है कि हमारे देश की अर्थव्यवस्था अल्प-विकसित है। आर्थिक विकास की तीव्र गति प्राप्त करने के लिए इसमें मौलिक परिवर्तनों की अपेक्षा है। इन विशेषताओं के कारण ही हमारे देश की प्रगति रुकी रही है। आज भी देश की अर्थव्यवस्था दो स्पष्ट क्षेत्रों में विभाजित है। एक ओर उद्योग, व्यापार, वित्त आदि का संगठित क्षेत्र है जिसका उत्पादन एवं आय के साधनों पर एक बहुत बड़ी सीमा तक नियन्त्रण है। उद्योग, परिवहन, बैंकिंग, बीमा आदि क्षेत्रों में जो प्रगति हुई है वह प्रायः संगठित क्षेत्र में ही हुई है। किन्तु विडम्बना यह है कि यह संगठित क्षेत्र जनसंख्या के दसवें भाग का भी प्रतिनिधित्व नहीं करता है। दूसरी ओर भारतीय अर्थव्यवस्था का असंगठित क्षेत्र है जिसमें कुल जनसंख्या के ९० प्रतिशत लोग बिखरे पड़े हैं और जिन्हें आर्थिक प्रगति का पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। संगठित क्षेत्र असंगठित क्षेत्र का भरपूर शोषण करता रहा है जिससे कारण देश की अधिकांश जनता आर्थिक रूप से पिछड़ी रही और आर्थिक विकास में विशेष योग नहीं दे सकी।

पिछले बीस वर्षों से भारतीय अर्थतन्त्र को नये मोड़ देने और उसमें मौलिक परिवर्तन करने का प्रयास आर्थिक योजनाओं के आधार पर किया गया है। सामाजिक एवं आर्थिक अवरोध को समाप्त करने के लिए प्रशासन की नीतियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। उद्योगों के विषय में नवीन नीतियों को प्रतिपादित एवं क्रियान्वित किया गया है। मूलभूत उद्योगों का नियन्त्रण एवं स्वामित्व अधिकाधिक राज्य के हाथों में आता जा रहा है। व्यापार, परिवहन एवं बैंकिंग तथा बीमा के क्षेत्र में भी राजकीय उपक्रमों की संख्या बढ़ी है। निजी क्षेत्र के उद्योगों एवं वित्तीय संस्थाओं पर नियमन और नियन्त्रण बढ़ता जा रहा है। राज्य की वित्त एवं कर नीतियों में आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। पूंजी और तकनीकी ज्ञान के अभाव को अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के द्वारा दूर किया गया है और देश में भी बचत, पूंजी विनियोग और प्राविधिक ज्ञान एवं अनुसन्धान की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। वेतन एवं श्रम नीतियों में भी आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं। किन्तु इन सब प्रयत्नों के होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता है कि देश का आर्थिक विकास इतनी तेजी से हो रहा है जितना कि होना चाहिए था। लगभग दो दशकों के आर्थिक वातावरण

के बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था अल्प-विकसित कृषि प्रधान तथा पिछड़ी हुई है। सन् १९६२ और सन् १९६५ के बाहरी आक्रमणों के कारण देश की आर्थिक प्रगति को धक्का लगा। इसके साथ ही कृषि और उद्योगों में न्यून उत्पादकता, जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर, मुद्रा स्फीति एवं मूल्य वृद्धि, प्रशासन में शिथिलता एवं भ्रष्टाचार आदि कमजोरियों के कारण भी देश की आर्थिक प्रगति मन्द पड़ गयी। तृतीय योजना के अन्तिम वर्षों में लगातार दो वर्ष तक सूखे की स्थिति ने आग में घी का काम किया।

प्रथम तीन योजनाओं की समाप्ति के बाद भी आर्थिक नियोजन के प्रति जनसाधारण की उदासीनता का प्रमुख कारण केवल यह नहीं है कि आर्थिक नियोजन ने उनके जीवन यापन के स्तर में विशेष सुधार नहीं किया, बल्कि यह है कि नियोजकों ने उनकी आशाओं को जितना अधिक प्रोत्साहित किया, उसकी तुलना में आर्थिक विकास की दशा में जो वास्तविक उपलब्धियाँ प्राप्त की गयी वे बहुत ही कम रहीं। अतः राष्ट्र के कर्णधारों के द्वारा उभारी गयी उच्चाकांक्षाओं एवं वास्तविक उपलब्धियों के मध्य विद्यमान यह भारी अन्तर ही जन आक्रोश और असन्तोष का प्रमुख कारण माना जा सकता है। इसे दूर करने के लिए अगली योजनाओं के उद्देश्यों और लक्ष्यों के निर्धारण में यथासम्भव अधिक यथार्थता और वास्तविकता का समावेश किया जाना चाहिए।

यह सब होते हुए भी यह मानना अनुचित होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का स्वरूप आज भी वही है जो स्वतन्त्रता से पूर्व था अथवा उसके बाद के इन बाईस वर्षों में हमारी अर्थव्यवस्था ने कोई प्रगति नहीं की है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति केवल एक प्रतिशत प्रति वर्ष थी और जहाँ तक कृषि विकास का सम्बन्ध है उसके विकास की वार्षिक दर आधे प्रतिशत से भी कम थी। कृषि व्यवसाय का स्तर तथा कृषकों का निर्वाह स्तर आज की तुलना में कहीं अधिक गिरा हुआ था। औद्योगीकरण कुछ उपभोक्ता उद्योगों तक ही सीमित था और औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पर्याप्त सामाजिक पूँजी एवं सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में भारत की राष्ट्रीय आय में कुल मिलाकर लगभग ६९ प्रतिशत की वृद्धि हुई। अर्थात् हमारी राष्ट्रीय आय में औसतन ४.६ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि देश के आर्थिक विकास की दर में पहले की अपेक्षा वृद्धि हुई है। किन्तु जहाँ तक प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि का प्रश्न है, यह उसी अनुपात में नहीं बढ़ सकी है जिस अनुपात में हमारी राष्ट्रीय आय बढ़ी है। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में कुल मिलाकर केवल २६.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। दूसरे शब्दों में, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की औसत वार्षिक दर लगभग १.८ प्रतिशत से अधिक नहीं रही। इसका मुख्य कारण जनसंख्या में अधिक वृद्धि होना है। इसी अवधि में देश की जनसंख्या में १३ करोड़ ४० लाख व्यक्तियों

की वृद्धि हो गयी—अर्थात् जनसंख्या वृद्धि की औसत वार्षिक दर लगभग २.५ प्रतिशत रही। अतः प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का अनुपात राष्ट्रीय आय में वृद्धि के अनुपात से कम रहा। अतः अगली योजनाओं में भारत की प्रति व्यक्ति आय में आशातीत वृद्धि करने के लिए एक ओर तो विकास की दर को बढ़ाना होगा और दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि की दर को कुछ कम करना होगा। चतुर्थ योजना में राष्ट्रीय आय में पाँच से छह प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है और दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि की दर को कम करने के लिए परिवार नियोजन के विस्तृत कार्यक्रम निर्धारित किये गये हैं। यदि इन कार्यक्रमों को ठीक प्रकार से क्रियान्वित किया गया तो आशा की जानी चाहिए कि चौथी योजना में प्रति व्यक्ति आय में लगभग ३ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो सकेगी।

भारत में आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास

परतन्त्र भारत में देश को कभी यह अवसर न मिल सका कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के बारे में स्वतन्त्रतापूर्वक विचार कर सकता। स्वाधीनता के बाद ही हमें यह अवसर मिला कि इस बात पर भली-भाँति विचार किया जा सके कि देश की अर्थव्यवस्था का स्वरूप किस प्रकार का हो। तब स्वाधीन भारत के लिए यह एक कठिन प्रश्न था कि देश इंग्लैण्ड एवं अमरीका की तरह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपनाये अथवा रूस की भाँति साम्यवादी अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो। भारत ने दोनों ही उग्र मार्गों को छोड़कर मध्यम मार्ग अपनाया। प्रथम औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed economy) का उल्लेख किया गया जिसमें निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को भी महत्त्व दिया गया। भारतीय संविधान में भी एक ऐसे गणराज्य की स्थापना का उल्लेख किया गया जिसमें सब नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की सुरक्षा होगी। इसी प्रकार समस्त स्त्री पुरुषों के लिए जीविका के पर्याप्त साधन, शिक्षा, चिकित्सा आदि की व्यवस्था तथा सम्पत्ति एवं आय के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए प्रभावशाली उपायों की व्यवस्था आदि का उल्लेख भी भारतीय संविधान में किया गया। ये समस्त बातें समाजवाद के सिद्धान्तों के निकट हैं यद्यपि संविधान में समाजवाद शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी पिछले बीस वर्षों का इतिहास इस तथ्य को भली भाँति सिद्ध कर देता है कि शान्तिपूर्ण तरीके से भारत अपनी अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन कर रहा है उसका आधार समाजवाद है। इन उपायों के द्वारा लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है तथा धीरे-धीरे जन्म जाति धर्म अथवा सामाजिक या आर्थिक स्थिति पर आधारित विशेषाधिकारों की समाप्ति हो रही है।

अतः आज प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह भारत में चल रही नवीन आर्थिक व्यवस्था पर शुद्ध दिमाग से विचार करे। इस मार्ग में जो कठिनाइयाँ आ रही हैं उन्हें भारत अपने ही ढंग से हल करने का प्रयास कर रहा

है। देश का उद्देश्य समाज के प्रत्येक वर्ग एवं प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की व्यवस्था करना है। विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ भी कोई उत्तम गुण दिखलायी देता है, यदि वह हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल है, तो भारत उसे अपनाने में विश्वास करता है। भारत अपनी अर्थव्यवस्था में जो सुधार करना चाहता है वह सम्पन्न वर्गों को निधन बना कर नहीं बल्कि निर्धन वर्गों को सम्पन्न बना कर करना चाहता है और ऐसा करने में वह साधनों को उतना ही महत्त्व देता है जितना कि लक्ष्यों को, भले ही ऐसा करने में कितना ही विलम्ब क्यों न हो। उत्तम लक्ष्यों की प्राप्ति उत्तम साधनों से ही की जा सकती है, यह हमारा एक मौलिक सिद्धान्त है।

प्रश्न

१ भारत की अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

२ "भारत एक ऐसा देश है जहाँ की मिट्टी धनी है, किन्तु निवासी निर्धन हैं," इस कथन की व्याख्या कीजिए।

४ भारतीय अर्थव्यवस्था के अविकसित होने के कारणों पर प्रकाश डालिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। (राज०, १९७०)

१

अध्याय २०

जनसंख्या एवं उसकी समस्याएँ

(POPULATION AND ITS PROBLEMS)

क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व के कुल क्षेत्र के केवल ढाई प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु जनसंख्या की दृष्टि से विश्व की कुल जनसंख्या का पन्द्रह प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है। स्वतः ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या जनसंख्या की प्रचुरता किसी राष्ट्र के लिए निश्चित रूप से शक्ति का प्रतीक मानी जा सकती है ? यदि इसे स्वीकार कर लिया जाये तो शक्ति की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में बहुत ऊँचा हो जाना चाहिए था, किन्तु वस्तु स्थिति इसके ठीक विपरीत है। अनेक देश जिनकी जनसंख्या भारत से कहीं कम है, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भारत से अधिक शक्तिशाली हैं तथा उनमें प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास की दर भारत की तुलना में कहीं अधिक है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका एवं इंगलैण्ड जनसंख्या के आकार की दृष्टि से पीछे हैं, किन्तु आर्थिक दृष्टि से भारत से कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। भारत की जनसंख्या संयुक्त राज्य अमरीका की जनसंख्या से ढाई गुनी और इंगलैण्ड की जनसंख्या से दस गुनी अधिक है, किन्तु जहाँ तक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का प्रश्न है, भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में संयुक्त राज्य अमरीका में प्रति व्यक्ति आय ३० गुनी तथा इंगलैण्ड में प्रति व्यक्ति आय १६ गुनी अधिक है। रूस, जापान एवं पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों की तुलना करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि जनसंख्या की अधिकता स्वयमेव शक्ति का प्रतीक नहीं हो सकती और जनसंख्या के संख्यात्मक पहलू की अपेक्षा उसका गुणात्मक पहलू अधिक महत्व रखता है। संख्या में अधिकता के साथ-साथ यदि जनसंख्या दक्षता, योग्यता एवं उत्पादन-कुशलता की उच्चता से परिपूर्ण है तो निश्चय ही वह मानव शक्ति का परिचायक मानी जायगी।

समस्त उत्पादन का मूल साधन 'मानव' है। मानव ही अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक शक्ति के द्वारा भौतिक साधनों का उपयोग करके उत्पादन की प्रक्रिया को जन्म देता है। मानव ही नवीन रीतियों एवं प्रक्रियाओं की खोज करके उनका

उपयोग अधिक उत्पादन के लिए करता है तथा इस प्रकार निर्मित पूंजी का और अधिक उत्पादन के लिए विनियोग करता है और आर्थिक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। किन्तु मानव' उत्पादन का एक साधन' ही नहीं है, वल्कि 'साध्य' भी है। समस्त उत्पादन का एक मात्र उद्देश्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। विभिन्न राष्ट्रों द्वारा आर्थिक विकास के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों के पीछे मानव कल्याण' की भावना ही प्रेरणा का स्रोत होती है। आर्थिक विकास स्वयं मे उस समय तक कोई अर्थ नहीं रखता जब तक कि उसका उद्देश्य मानव के जीवन स्तर मे वृद्धि करना न हो। अत आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे एक 'साधन' तथा साध्य' दोनो के रूप मे 'मानव' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा इस भूमिका का स्वरूप समय, काल और स्थान के सन्दर्भ मे विभिन्न प्रकार का हो सकता है। यही कारण है कि ऐसे देशो में, जो विकास के लिए प्रयत्नशील हैं, मानव-शक्ति सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का समुचित विश्लेषण एव निराकरण का बहुत अधिक महत्त्व है।

मानव-शक्ति के समुचित उपयोग की समस्या आज भारत के समक्ष जितनी उग्र है इतनी शायद विश्व के अन्य किसी देश के समक्ष नहीं है। भारत सन् १९५१ के बाद से नियोजित ढग से आर्थिक विकास की ओर बढने का प्रयत्न करता रहा है और पिछले पन्द्रह वर्षो मे उसने अनेक क्षेत्रो मे पर्याप्त विकास किया भी है, किन्तु फिर भी तृतीय योजना के अन्त मे पिछले पन्द्रहवर्षीय योजनाकरण के परिणाम बहुत आशाजनक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि प्रति व्यक्ति आय मे हुई वास्तविक वृद्धि कुल राष्ट्रीय आय मे हुई वृद्धि की तुलना मे बहुत कम है। पिछले पन्द्रह वर्षों में भारत की राष्ट्रीय आय (National Income) मे स्थिर मूल्यो के आधार पर ७४ प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जब कि इसी अवधि मे प्रति व्यक्ति आय (Per-capita Income) मे केवल २६ प्रतिशत की ही वृद्धि हो सकी है। इसी प्रकार खाद्यान्नों के उत्पादन मे इसी अवधि मे लगभग ६० प्रतिशत की वृद्धि की गयी किन्तु खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि मे केवल २० प्रतिशत की ही वृद्धि हुई। जहाँ तक वस्त्रो का प्रश्न है, वस्त्र उत्पादन मे लगभग ८० प्रतिशत की वृद्धि हुई, किन्तु वस्त्रों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि ११ मीटर से बढ कर १५ मीटर ही हो सकी, अर्थात् पन्द्रह वर्षो मे केवल ३६.४ प्रतिशत की ही वृद्धि की जा सकी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि प्रति व्यक्ति उपभोग के स्तर मे होने वाली वृद्धि, उत्पादन मे होने वाली कुल वृद्धि के अनुपात मे बहुत कम है। मुद्रा के रूप में आय मे अवश्य वृद्धि हुई है, किन्तु मूल्य स्तर बढ जाने के कारण मुद्रा का वास्तविक मूल्य बहुत कम हो चुका है। केवल तृतीय योजना के पाँच वर्षो मे ही इसमे ३६ प्रतिशत की कमी हुई है और योजना के अन्तिम वर्ष में तो राष्ट्रीय आय एव प्रति व्यक्ति आय मे कुछ गिरावट भी आयी है। इस विषम परिस्थिति के यद्यपि अन्य कई कारण हो सकते हैं, किन्तु एक सबसे प्रमुख कारण जो आर्थिक नियोजन के काल मे निरन्तर सक्रिय रहा है वह

है मानव शक्ति का निम्न स्तर तथा जनसंख्या का संख्यात्मक पहलू। एक ओर तो जनसंख्या की अधिकता, अपनी समस्त प्रतिकूल विशेषताओं के साथ उत्पादन में आशातीत वृद्धि प्राप्त करने के मार्ग में बाधक है और दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि की दर २.१ प्रतिशत से बढ़कर २.५ प्रतिशत वार्षिक हो चुकी है जिसके कारण आर्थिक विकास के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं। जनसंख्या वृद्धि की दर, एक ओर मृत्यु दर कम हो जाने तथा दूसरी तरफ जन्म दर लगभग स्थिर रहने के कारण बढ़ रही है। अतः मृत्यु दर में कमी के साथ साथ जन्म दर में भी किस प्रकार कमी की जाय यह प्रश्न हमारे आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया है। भारत के सामने इस समय दुहरी समस्या है—एक ओर तो यह प्रश्न है कि जन्म दर को ४० प्रति हजार से घटाकर २५ प्रति हजार किस प्रकार लाया जाय ताकि जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी हो सके, तथा दूसरी ओर समस्या यह है कि वर्तमान में उपलब्ध मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग किस प्रकार किया जाय जिससे कि उत्पादन में आशातीत वृद्धि की जा सके। मानव शक्ति के पूर्ण उपयोग की समस्या का निराकरण करते समय हमें उसके गुणात्मक पहलू (Qualitative aspect) पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना होगा, अर्थात् उत्पादन के लिए सक्रिय मानव शक्ति में योग्यता, दक्षता एवं उत्पादन कुशलता का विकास करके उसे इस योग्य बनाना होगा कि वह आधुनिक वैज्ञानिक उत्पादन की रीतियों को अपना कर उपलब्ध सीमित भौतिक साधनों का पूर्ण उपयोग करके अधिकतम उत्पादन करने में सफल हो सके।

मानव-शक्ति की व्याख्या

किसी देश की समस्त जनसंख्या मानव शक्ति नहीं मानी जाती है। जनसंख्या का केवल वह भाग ही मानव शक्ति में सम्मिलित किया जा सकता है जो कि उत्पादन के लिए सक्रिय होता है। इसे सक्रिय जनशक्ति (active population) अथवा कार्यशील जनसंख्या (working population) की संज्ञा भी दी जा सकती है। कार्यशील जनसंख्या में वे समस्त व्यक्ति आते हैं जो सामान्यतः काम करने की इच्छा एवं योग्यता रखते हैं। ऐसे अनेक व्यक्ति हो सकते हैं जो काम करने की इच्छा तो रखते हैं किन्तु उन्हें काम करने का अवसर प्राप्त नहीं है, यद्यपि वे इसे प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को भी मानव शक्ति के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा मानव शक्ति नियोजन (Man power planning) के आधार पर ऐसे व्यक्तियों के लिए काम के अवसर उत्पन्न करना प्रशासन अथवा समाज का कर्तव्य हो जाता है। अविकसित देशों में मानव शक्ति का पूर्ण भाग उत्पादन कार्यों में सक्रिय नहीं होता। जो भाग आर्थिक दृष्टि से सक्रिय होता भी है, उसकी योग्यता एवं कुशलता का स्तर अत्यन्त निम्न होता है। अतः इन देशों में मानव शक्ति के उचित नियोजन का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

विभिन्न राष्ट्रों मे मानव शक्ति की उपयोगिता, उनकी जनसख्या के आयु वर्गों के अनुसार गठन, औसत आयु, सामाजिक दृष्टिकोण, विकास एव उपभोग के स्तर तथा शिक्षण और प्रशिक्षण के स्तर पर आधारित होती है। विभिन्न देशो मे मानव शक्ति की उपयोगिता मे असमानताएँ हो सकती हैं तथा एक ही देश मे विभिन्न समयो मे तथा विभिन्न स्थानो मे उपयोगिता समान नहीं होती। विकसित देशो मे प्राय यह माना जाता है कि आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करने की दृष्टि से १५ वर्ष से ६५ वर्ष तक की आयु वाले व्यक्ति उपयुक्त होते हैं। पन्द्रह वर्ष से कम तथा ६५ वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति उत्पादन कार्यों मे विशेष योग नहीं दे सकते और इसलिए उन्हे मानव शक्ति मे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। विभिन्न देशो मे आयु वर्ग के अनुसार जनसख्या के वितरण का ढांचा समान नहीं होता तथा औसत आयु (Life expectancy) मे भी असमानता दिखायी देती है। कुल जनसख्या के अनुपात मे कार्यशील जनसख्या (Working population) का अनुपात १५ से ६५ वर्ष के आयु वर्ग मे योग्य व्यक्तियों की सख्या पर निर्भर करेगा। जिन देशो मे औसत आयु कम है तथा जन्म दर अधिक है, उनमे कुल जनसख्या की तुलना मे कार्यशील जनसख्या का अनुपात स्वत ही कम होगा। इसके साथ ही आहार और स्वास्थ्य एव चिकित्सा के निम्न-स्तर के कारण कार्यशील व्यक्तियों की कार्य-क्षमता एव कुशलता भी कम होगी।

प्राकृतिक, सामाजिक एव आर्थिक विषमताओ के कारण भारत मे कुल जनसख्या के अनुपात मे कार्यशील जनसख्या (Working population) का आकार विकसित देशो की तुलना मे कम है। यहाँ सामान्यत लम्बी आयु वाले व्यक्ति बहुत कम हैं जो जीवित भी रहते हैं वे ५५ अथवा अधिक से अधिक ६० वर्ष तक ही आर्थिक दृष्टि से उपयोगी होते हैं। नीचे आयु-वर्गों के अनुसार भारत एव इगलैण्ड की जनसख्या का वितरण दिया गया है

आयु वर्गों (Age-Groups) में जनसख्या का वितरण

	आयु-वर्ग	भारत (कुल जनसख्या का प्रतिशत)	इगलैण्ड (कुल जनसख्या का प्रतिशत)
१	चौदह वर्ष तक	४१ ०	२३ २
२	पन्द्रह वर्ष से पैंसठ वर्ष	५६ ०	६५ ०
३	पैंसठ वर्ष से ऊपर	३ ०	११ ८
	योग	१०० ०	१०० ०

उपर्युक्त समक प्रो० किन्डिलबर्जर (Prof Kindleberger) के इस कथन की पुष्टि करते हैं कि "पन्द्रह से पैंसठ वर्ष के आयु-वर्ग की दृष्टि से विकसित राष्ट्रों मे कुल जनसख्या का ६५ प्रतिशत तथा अविकसित राष्ट्रो मे कुल जनसख्या का ५५

प्रतिशत भाग सम्मिलित होता है।" अतः कार्यशील जनसंख्या की दृष्टि से विकसित राष्ट्रों की स्थिति अविकसित राष्ट्रों की तुलना में अधिक उत्तम है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में निम्न आयु-वर्ग में व्यक्तियों की संख्या का अनुपात बहुत अधिक है जबकि अन्य विकसित देशों में यह एक चौथाई से अधिक नहीं होता। इंगलैण्ड के अतिरिक्त फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड एवं जापान जैसे देशों की जनसंख्या का आयु वितरण भी इसी कथन की पुष्टि करता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि ऊपर के आयु-वर्गों में व्यक्तियों का प्रतिशत भारत की अपेक्षा इंगलैण्ड में बहुत अधिक है। पैंसठ वर्ष से अधिक की उम्र के व्यक्तियों का प्रतिशत भारत में केवल ३ है जबकि यह इंगलैण्ड में ११ है, जिससे यह सिद्ध होता है कि इंगलैण्ड के लोग दीर्घायु होते हैं।

भारत की जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएँ

(१) जनाधिक्य—भारत की जनसंख्या सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार ४३.९ करोड़ थी जो कि १९७१ की जनगणना के आधार पर ५४.६९ करोड़ हो गयी। विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है। विश्व की लगभग १५ प्रतिशत जनसंख्या यहाँ निवास करती है। इस जनाधिक्य से अनेक प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। भारत में अन्य अल्प-विकसित राष्ट्रों की भाँति जनाधिक्य है जिसके कारण कई समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। यह स्थिति विकास के मार्ग में बाधक हो रही है।

(२) जनसंख्या का घनत्व—भारत में इस समय प्रतिवर्ग किलोमीटर जनसंख्या का घनत्व १८२ है। सन् १९६१ की जनगणना के आधार पर जनसंख्या का घनत्व १३४ प्रतिवर्ग किलोमीटर था। जनसंख्या के घनत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में घनत्व अधिक है। संयुक्त राज्य अमरीका, रूस तथा आस्ट्रेलिया की तुलना में भारत में घनत्व बहुत अधिक है। किन्तु जापान, इण्डोनेशिया तथा इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि की तुलना में भारत की जनसंख्या का घनत्व कम है। यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में घनत्व समान नहीं है। भारत में सबसे अधिक घनत्व दिल्ली प्रदेश का है जिसमें २,६८० व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर निवास करते हैं। इसके विपरीत जम्मू कश्मीर की आबादी का घनत्व २८ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है।

(३) जनसंख्या की दर—भारत की जनसंख्या तेज गति से बढ़ रही है। सन् १९६१ की जनसंख्या की तुलना में १९७१ में भारत की जनसंख्या में २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि की औसत दर २.५ प्रतिशत रही। विश्व के अन्य देशों, विशेषकर पश्चिमी देशों में जनसंख्या की वृद्धि की दर कम है। इन देशों में यह दर लगभग १ प्रतिशत है। अग्र तालिका में १९७१ की जनगणना के आधार पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्पष्ट हो जाती है।

वर्ष	आबादी	प्रतिशत वृद्धि की दशाब्दि
१९६१	४३,९०,७३,५८२	२१.६४
१९७१	५४,६६,५५,९४५	२४.५७

(४) औसत आयु—यहाँ की औसत आयु म निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन् १९३१ की जनगणना के आधार पर भारत म औसत आयु २७ थी जबकि १९५१ म यह लगभग ३२ वर्ष हो गयी। सन् १९६१ की जनगणना म औसत आयु लगभग ४२ वर्ष हो गयी। सन् १९७१ म जनगणना के प्रारम्भिक आँकडो के अनुसार भारत मे औसत आयु ५१ वर्ष के लगभग थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि निरन्तर इसमे वृद्धि हो रही है। किसी भी देश की औसत आयु म वृद्धि होना उस देश की समृद्धि का द्योतक है। भारत की औसत आयु अनेक विकसित राष्ट्रो मे कम है। कुछ देशो मे यह औसत ६० स ६५ वर्ष तक है।

(५) स्त्री-पुरुष अनुपात—भारत मे स्त्रियो की सख्या निरन्तर घट रही है। सन् १९०१ मे १,००० पुरुषो के पीछे ९७२ स्त्रियाँ थी। सन् १९३१ मे स्त्रियों की सख्या घट कर ९५० हो गयी। सन् १९७१ मे इनकी सख्या ९३२ हो गयी। इस प्रकार स्पष्ट है कि लगातार स्त्रियाँ पुरुषो की तुलना मे घट रही हैं। भारत के कुछ राज्य जैसे उडीसा तथा केरल ऐसे हैं जहाँ स्त्रियाँ पुरुषो से अधिक हैं। सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार केरल मे १,०१६ स्त्रियाँ प्रत्येक १,००० पुरुषो की सख्या के पीछे हैं। इस समय पुरुषो की सख्या स्त्रियो की सख्या मे २ करोड अधिक है। कुछ राज्यो मे स्त्रियो की सख्या पुरुषो से काफी कम हैं।

(६) आयु के आधार पर वर्गीकरण—भारत की जनसख्या मे बच्चों की सख्या अधिक है। यहाँ १५ वर्ष से कम आयु के बच्चे सम्पूर्ण जनसख्या का लगभग ३८ प्रतिशत हैं। १५ वर्ष के पश्चात् ३४ वर्ष तक के जवान लगभग ३३ प्रतिशत हैं। इसके आगे की आयु के वर्गो म क्रमश कम प्रतिशत होता जाता है। ६५ वर्ष से अधिक केवल ३.२ प्रतिशत ही है।

(७) ऊँची जन्म-मृत्यु दर—भारत की जन्म व मृत्यु दर दोनो ही अधिक हैं। सन् १९७१ की जनगणना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जन्म दर मे आशातीत कमी नहीं हो सकी है। सन् १९६१ मे जन्म दर ४२ तथा मृत्यु दर २३ प्रति हजार थी। हाल की जनगणना के प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार सन् १९७१ मे जन्म दर लगभग ३८ तथा मृत्यु दर १५ प्रति हजार थी। कुछ अन्य देशों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि भारत की जन्म तथा मृत्यु दोनो दरें अधिक हैं। उदाहरण के लिए, इगलैंड मे जन्म व मृत्यु दरें क्रमश १६ व १३ हैं।

(८) अधिक ग्रामीण जनसख्या—भारतीय जनसख्या की यह भी प्रमुख विशेषता है कि यहाँ ग्रामीण जनसख्या अधिक है। भारत की कुल आबादी का लगभग ८२ प्रतिशत भाग ग्रामो में निवास करता है शेष १८ प्रतिशत शहरी जनसख्या है।

सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार यह अनुपात क्रमश ८० और २० हो गया है। आजकल शहरी जनसंख्या धीरे-धीरे बढ रही है जो निम्न तालिका मे स्पष्ट हो जाती है

वर्ष	कुल जनसंख्या का ग्रामीण	प्रतिशत शहरी
१९२१	८८.६	११.४
१९४१	८६.१	१३.९
१९६१	८२.०	१८.०
१९७१	८०.०	२०.०

स्पष्ट है कि ग्रामीण जनता धीरे-धीरे शहरों की तरफ आकर्षित हो रही है इसका प्रमुख कारण ग्रामीण बेरोजगारी है। खेती योग्य भूमि कुछ परिवारो के अधिकार मे है। शेष भूमिहीन श्रमिक हैं जो रोजगार की खोज मे नगरो मे आ जाते हैं।

(९) पेशेवार भिन्नता—भारत मे सबसे अधिक व्यक्ति कृषि कार्यों मे लगे हुए हैं। सन् १९६१ की जनगणना के आधार पर ६९.५ प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यक्रमो तथा शेष ३०.५ प्रतिशत कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो मे संलग्न हैं। अन्य देशो की तुलना म भारत मे अधिकतर लोग खेती मे लगे हुए हैं। इगलैंड तथा *अमरीका मे क्रमश ४ व ९ प्रतिशत व्यक्ति खेती व्यवसाय मे लगे हुये है। स्पष्ट है* कि भारत की तुलना मे इनका प्रतिशत बहुत कम है।

(१०) *कार्यशील व्यक्ति—भारत की जनसंख्या का वर्गीकरण आश्रित तथा* कार्यशील व्यक्तियो मे करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ आश्रितो की संख्या अधिक है। सन् १९६१ की जनगणना के आधार पर कार्यशील व्यक्ति ४२.९८ प्रतिशत थे और शेष आश्रित थे।

(११) धर्मों मे विभाजन—भारत की जनसंख्या विभिन्न धर्मों मे विभाजित है। हिन्दू धर्म वाले ८३.५० प्रतिशत, मुस्लिम धर्म वाले १०.७० प्रतिशत, ईसाई धर्म वाले २.४४ प्रतिशत, सिक्ख १.७९ प्रतिशत तथा शेष अन्य धर्म वाले [illegible] है।

(१२) भाषाओं की विभिन्नता—सन् १९६१ की जनगणना के आधार पर भारत मे कुल ८२६ भाषाएँ तथा बोलियाँ है। यहाँ हिन्दी भाषा बोलने वालो की संख्या सबसे अधिक है। हिन्दी बोलने वालो की संख्या १३.३४ करोड है। हिन्दी के पश्चात् तेलगू का स्थान आता है। इस भाषा को बोलने वाले लगभग ३.७७ करोड़ व्यक्ति हैं। इनके अतिरिक्त मराठी, तामिल, बगाली, गुजराती, कन्नड तथा अन्य कई भाषाएँ बोली जाती है।

(१३) जनसंख्या का नीचा जीवन स्तर व पिछड़ापन—भारत की जनसंख्या का जीवन स्तर विकसित राष्ट्रो की तुलना मे निम्न है। अधिकतर जनता गरीब है।

प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण उपभोग स्तर नीचा है। शिक्षा का अभाव है जिससे जनसंख्या सामान्यतः पिछड़ी हुई है। अब धीरे-धीरे शिक्षा का विस्तार हो गया है।

(१४) साक्षरता—साक्षरता की दृष्टि से १९७१ की जनगणना के अनुसार चण्डीगढ़ का प्रथम स्थान है जिसका प्रतिशत ६१ २४ है। इसके पश्चात् केरल का स्थान है जिसमें ६० १६ प्रतिशत साक्षरता है। तृतीय स्थान दिल्ली का है जहाँ साक्षरता का प्रतिशत ५६ ६५ है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार दिल्ली का इस दृष्टि से प्रथम स्थान था। भारत में नेफा में सबसे कम साक्षरता है तथा वहाँ का प्रतिशत ९ ३४ है।

जनसंख्या की उपरोक्त विशेषताओं से ज्ञात होता है कि यहाँ की जनसंख्या अधिक है। जनसंख्या की वृद्धि तेज गति से हो रही है। जनसंख्या की समस्या ने अनेक अन्य समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं जिनका निराकरण आवश्यक है।

१९७१ जनगणना के अनुसार जनसंख्या
(१ अप्रैल, १९७१ तक)

राज्य	जनसंख्या
उत्तर प्रदेश	८,८३,६६,४५३
बिहार	५,६३,८७,२६६
महाराष्ट्र	५,०२,६५,०८१
प० बंगाल	४,४४,४०,०९५
आंध्र प्रदेश	४,३३,९४,९५१
मध्य प्रदेश	४,१४,४६,७८२
तमिलनाडु	४,११,०३,१२५
मैसूर	२,९२,२४,०४६
गुजरात	२,६६,६०,९२९
राजस्थान	२,५७,२४,१४२
उड़ीसा	२,१९,३४,८२७
केरल	२,१२,८०,३९७
असम	१,४८,५७,३१४
पंजाब	१,३४,७२,९७२
हरियाणा	९९,७१,१६५
जम्मू कश्मीर	४६,१५,१७६
दिल्ली	४०,४४,३३८
हिमाचल प्रदेश	३४,२४,३३२
त्रिपुरा	१५,५६,८२२

मणिपुर	१०,६३,७५७
मेघालय	९,८३,३३६
गोवा, दमन दीव	८,५७,१८०
नागालैंड	५,१५,५६१
पांडिचेरी	४,७१,३४७
नेफा	४४४ ७४४
चन्डीगढ़	२,५६,९७९
अण्डमान निकोबार	१,१५,०९०
दादरा नागर हवेली	७४,१६५
लक्कादीव, मिनिकोव, अमीनदीव	३१,७९८

इस प्रकार भारत की कुल संख्या १ अप्रैल, १९७१ को ५४,६६,७५,९४५ थी। इसमें पुरुषों तथा स्त्रियों की संख्या क्रमश २८ ३१ करोड़ तथा २६ ३६ करोड़ है।

जनसंख्या का घनत्व
(Density of Population)

जनसंख्या का वितरण विभिन्न क्षेत्रों में समान नहीं होता। कुछ क्षेत्रों में अधिक जनसंख्या होती है क्योंकि वहाँ जनसंख्या के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होती हैं। दूसरी तरफ कुछ भागों में जनसंख्या कम होती है। इस विभिन्नता को घनत्व की विभिन्नता से प्रदर्शित किया जाता है। घनत्व का तात्पर्य सघनता से होता है। जनसंख्या के घनत्व से आशय है कि एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में औसतन कितनी जनसंख्या निवास करती है। जनसंख्या का घनत्व निकालने के लिए किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या में उसके क्षेत्रफल का भाग दे दिया जाता है। देश के जिन भागों में घनी आबादी है वहाँ घनत्व अधिक है इसके विपरीत जिन भागों में आबादी कम घनी बसी हुई है वहाँ का घनत्व भी कम होता है।

भारत में १९६१ की जनगणना के आधार पर जनसंख्या का घनत्व १३४ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। यहाँ के घनत्व में निरन्तर वृद्धि होती रही है जो निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है

भारत में जनसंख्या का घनत्व

वर्ष	घनत्व (प्रति वर्ग किलोमीटर)
१९२१	७९
१९३१	८८
१९४१	१००
१९५१	११७
१९६१	१३८
१९७१ (अनुमानित)	१६३

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत की जनसंख्या का घनत्व निरन्तर बढ रहा है। सन् १९७१ मे जनसंख्या का घनत्व १६३ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। घनत्व की दृष्टि से भारत के सामने कोई विशेष समस्या नहीं है। विश्व के अनेक देशो म जनसंख्या का घनत्व यहाँ से अधिक है।

देश के विभिन्न राज्यो तथा केन्द्र शासित प्रदेशो का घनत्व असमान है। कुछ राज्यो की आबादी घनी है, कुछ म बहुत कम जनसंख्या है। निम्न तालिका से घनत्व की असमानता स्पष्ट हो जाती है

भारत में जनसख्या का घनत्व
(१९६९ के अनुमानो के आधार पर)

राज्य एव केन्द्र शासित प्रदेश	घनत्व (प्रति वर्ग कि० मी०)
राज्य शासित प्रदेश	
आन्ध्र प्रदेश	१५३
आसाम	१२३
बिहार	३२२
गुजरात	१३७
हरयाना	२२०
जम्मू एव कश्मीर	—
केरल	५३१
मध्य प्रदेश	८९
महाराष्ट्र	१५८
मैसूर	१४८
नागालैंड	२६
उडीसा	१३५
पजाब	२८२
राजस्थान	७४
तामिलनाडु	२९७
उत्तर प्रदेश	३००
पश्चिमी बगाल	४९५
केन्द्र शासित प्रदेश	
अण्डमान एव निकोबार द्वीप समूह	११
चण्डीगढ	१,३३०
दादरा नागर हवेली	१४३
दिल्ली	२,६८०

गोआ-दमन दिऊ	१८२
हिमाचल प्रदेश	६३
लोकदिव मिनिकोय अमीनदिव द्वीप	८६४
मनीपुर	४८
नेफा	५
पाण्डिचेरी	८२२
त्रिपुरा	१३६

(*Source—India*, 1970)

भारत में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक दिल्ली प्रदेश (केन्द्र शासित) में है। राज्यों में सबसे अधिक घनत्व केरल में है। इस तालिका से स्पष्ट है कि भारत के दक्षिण-पूर्वी राज्यों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। पश्चिम की ओर घनत्व कम होता जाता है। राज्यों में जनसंख्या का सबसे कम घनत्व नागालैण्ड का है।

जनसंख्या के घनत्व में असमानता के कारण

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि देश के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का घनत्व असमान है। घनत्व की इस असमानता के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :

(१) भूमि की बनावट—भूमि की बनावट तथा जनसंख्या में निकटता का सम्बन्ध है। मैदानी भूमि जनसंख्या के अनुकूल होती है। अतः इन भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। भारत में गंगा सतलज नदियों का मैदान अधिक आबाद है। इसके अतिरिक्त समुद्रतटीय मैदानी भागों में भी जनसंख्या घनी बसी हुई है। इसके विपरीत पहाड़ी भागों में कम जनसंख्या निवास करती है, क्योंकि इनमें कठिन जीवन होने के कारण कम लोग रहना पसन्द करते हैं।

(२) मिट्टी का उपजाऊपन—उपजाऊ मिट्टी वाले प्रदेशों में जनसंख्या घनी है। भारत के उत्तरी मैदान में कछारी (Alluvial) मिट्टी है जो कि बहुत उपजाऊ है। इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। देश के कुछ भागों में मिट्टी कम उपजाऊ है अतः जनसंख्या घनी नहीं है। इस उपजाऊ मिट्टी में कृषि विकास अधिक हो सकता है जिस पर औद्योगिक विकास तथा व्यापार की उन्नति आधारित है। इसके विकास के साथ-साथ जनसंख्या भी घनी होती जाती है।

(३) जलवायु—साधारणतः देखा जाता है कि नम तथा उष्ण जलवायु में जनसंख्या बढ़ने की गति तेज होती है। अधिक ठण्डे प्रदेशों में कम जनसंख्या है। अत्यधिक गर्म प्रदेशों तथा शुष्क भागों में भी कम जनसंख्या पायी जाती है। किन्तु नम तथा उष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में जनसंख्या अधिक घनी बसी होती है। भारत में केरल, बंगाल तथा मद्रास इसके उदाहरण हैं।

(४) वर्षा की मात्रा—जनसंख्या के घनत्व तथा वर्षा की मात्रा में कुछ

सम्बन्ध पाया जाता है। जिन भागो म पर्याप्त वर्षा होती है वहाँ मनुष्य के कम प्रयास से आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं। किन्तु वर्षा के अभाव वाले क्षेत्रो मे जीवन कठिन होता है अत जनसख्या का कम घनत्व पाया जाता है। राजस्थान इस बात का प्रमाण है।

(५) औद्योगिक उन्नति—देश के जिन भागो म औद्योगिक उन्नति अधिक हुई है वहाँ जनसख्या अधिक है। औद्योगिक विकास उन भागो म अधिक होता है जहाँ पर्याप्त शक्ति के साधन तथा खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। भारत मे कलकत्ता तथा बम्बई के क्षेत्रो म औद्योगिक विकास अधिक हुआ है, तथा जनसख्या भी घनी है।

(६) सिंचाई के पर्याप्त साधन—भारत म वर्षा अनिश्चित है तथा इसका वितरण असमान है। कुछ भागो म कम वर्षा होती है अत सिंचाई आवश्यक हो जाती है। देश के जिन भागो में पर्याप्त सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ कृषि विकास तेजी से होता है और जनसख्या भी बढ जाती है।

(७) यातायात के साधनों की सुविधा—कृषि, उद्योग तथा व्यापारिक उन्नति यातायात के साधनो पर निर्भर करती है। इनके विकास के लिए परिवहन की सुविधा होनी आवश्यक है। यातायात के साधन उपलब्ध होने पर अधिक लोग बसने लग जाते हैं क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने मे कठिनाई नहीं होती।

(८) शान्ति एव सुरक्षा—जनसख्या उन भागो में घनी होती है जहाँ सुरक्षा अधिक हो। साधारणत सीमावर्ती भागो म कम जनसख्या निवास करती है। सुरक्षित स्थानो पर शान्ति जीवन व्यतीत किया जा सकता है तथा आवश्यकताओ को आसानी से पूरा किया जा सकता है।

(९) शिक्षा केन्द्र—शिक्षा केन्द्रो का विकास भी जनसख्या के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। जिन नगरो म शिक्षा के बडे-बडे केन्द्र पाये जाते हैं वहाँ देश के अनेक भागो म विद्यार्थी पठन के लिए आते हैं जिससे घनत्व में वृद्धि हो जाती है। भारत म बनारस, इलाहाबाद तथा कुछ अन्य नगर इसी कारण से अधिक आबाद हैं। यद्यपि अन्य कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु शिक्षा केन्द्र होना भी प्रमुख कारण है।

(१०) अन्य—कुछ कारण राजनीतिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक भी हो सकते हैं। कुछ धार्मिक स्थानो पर अधिक लोग बस जाते है। राजनीतिक कारणों से भी जनसख्या का घनत्व बढ जाता है जैसे भारत के विभाजन के समय पूर्वी पजाब तथा पश्चिमी बगाल मे काफी व्यक्ति आकर बस गये।

क्या भारत मे जनाधिक्य है ?

भारत की भूमि का क्षेत्रफल विश्व का २ ५ प्रतिशत है जबकि जनसख्या विश्व की १५ प्रतिशत है। इस दृष्टि से भारत मे जनाधिक्य है। सयुक्त राज्य अमरीका क्षेत्रफल मे भारत के दुगुने से भी अधिक है किन्तु वहाँ जनसख्या भारत की तुलना म बहुत कम है। जनाधिक्य के मूल्याकन म यह विचार तो किया ही

जाता है किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान दिया जाता है। जनसंख्या की अधिकता का केवल यह आशय नहीं है कि अमुक देश में जनाधिक्य है। इसके लिए देश के प्राकृतिक साधनों तथा जनसंख्या को ध्यान में रखना आवश्यक है। यदि किसी देश में प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि एवं उनके उचित उपभोग की तुलना में अगर अधिक जनसंख्या है तब उसे जनाधिक्य कहा जा सकता है। भारत में जनाधिक्य है, इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रस्तुत की जाती हैं। प्रथम प्रकार के विचारकों का मत है कि भारत में जनाधिक्य है जब कि दूसरी विचारधारा के विद्वानों का कहना है कि भारत में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। दोनों विचारधाराओं के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये गये हैं। ये दोनों दृष्टिकोण निराशावादी तथा आशावादी दृष्टिकोण हैं। निराशावादी दृष्टिकोण माल्थस के सिद्धान्त पर आधारित है।

जनाधिक्य है

(१) माल्थस के सिद्धान्त का तर्क—माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या में जीवन निर्वाह के साधनों से अधिक वृद्धि होती है। खाद्य-सामग्री की तुलना में जनसंख्या में अधिक तेज गति से वृद्धि होती है। भारत में खाद्य सामग्री का अभाव रहता है और प्रतिवर्ष अनाज विदेशों से मंगवाया जाता है। अतः जनाधिक्य है। यद्यपि माल्थस के सिद्धान्त को पूर्ण मान्यता नहीं दी जा सकती, किन्तु भारत में निरन्तर खाद्यान्नों के अभाव से सिद्ध होता है कि यहाँ जनाधिक्य की समस्या है।

(२) आदर्शतम जनसंख्या का सिद्धान्त—भारत की जनसंख्या आदर्शतम जनसंख्या (Optimum population) से अधिक है। भारत में जनसंख्या की अतिरिक्त वृद्धि के अनुपात में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि नहीं हो पाती है। जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की अपेक्षा अधिक दर से बढ़ रही है। अतः प्रो० कैनन के इस सिद्धान्त के अनुसार भी भारत में जनाधिक्य है।

(३) मृत्यु दर ऊँची होना—भारत में मृत्यु दर विकसित राष्ट्रों से अधिक ऊँची है। जनाधिक्य होने के कारण विभिन्न सुविधाएं जनता को उपलब्ध नहीं हो पाती हैं जिससे मृत्यु दर अधिक ऊँची है। यद्यपि पंचवर्षीय योजना में मृत्यु दर को कम करने के काफी प्रयत्न किये गये हैं फिर भी अन्य देशों की तुलना में दर अधिक है।

(४) बेरोजगारी की समस्या—भारत में बेरोजगारी तथा अर्द्ध-रोजगारी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक डेढ़ करोड़ व्यक्ति बेरोजगार होने का अनुमान है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में ५५ लाख बेरोजगार व्यक्ति थे। बेरोजगारी की इस तीव्र वृद्धि से सिद्ध होता है कि भारत में जनाधिक्य है।

(५) खाद्य समस्या—भारत में खाद्य समस्या एक विकट समस्या है। बढ़ती हुई जनसंख्या को देश अन्न देने में असमर्थ हो रहा है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया का

अनाज आयात किया जाता है। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि भारत में जनाधिक्य है।

(६) निम्न जीवन स्तर—भारतवासियों का जीवन स्तर विकसित राष्ट्रों से काफी नीचा है। यहाँ की जनसंख्या का उपभोग का स्तर निम्न है। लोगों को सन्तुलित भोजन नहीं मिल पाता है। यह निम्न स्तर की स्थिति जनाधिक्य का प्रमाण है। *भारत में लगभग ८५ प्रतिशत जनता भूख की सीमा के निकट की* स्थिति में है।

(७) जनसंख्या का भूमि पर अधिक भार—भारत में भूमि पर प्रतिदिन जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है। यहाँ की जोत का औसत आकार अत्यन्त छोटा है। भारत की जोत के आकार से संयुक्त राज्य अमरीका की जोत का औसत आकार लगभग ३० गुना है। अतः भारत में जनाधिक्य है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में जनाधिक्य है। किन्तु कुछ आशावादी विचारधारा के विद्वान अपने तर्क जनाधिक्य के विपक्ष में दे रहे हैं। उन्होंने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि यदि देश के सम्पूर्ण साधनों का उचित उपयोग किया जाय तो *जनसंख्या का भार नजर नहीं आयेगा।* इन विचारकों के तर्क संक्षेप में नीचे दिये जा रहे हैं

जनाधिक्य नहीं

इस विचारधारा के विद्वानों ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं :

(१) जनसंख्या का कम घनत्व—भारत की जनसंख्या का घनत्व अनेक विकसित राष्ट्रों में कम है। इंगलैण्ड तथा जापान में भारत की अपेक्षा जनसंख्या का घनत्व काफी अधिक है अतः भारत की जनसंख्या अधिक नहीं कही जा सकती है। इस विचार के लोगों का मत है कि जब उपरोक्त देशों में जनाधिक्य नहीं है तो *भारत में कैसे हो सकता है।*

(२) *प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि*—भारत में राष्ट्रीय आय निरन्तर बढ़ रही है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय आय में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। यद्यपि यह वृद्धि बहुत कम दर से हो रही है फिर भी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में कमी नहीं हो रही है अतः जनाधिक्य नहीं कहा जा सकता। प्रति व्यक्ति आय में भी कुछ वृद्धि हुई ही है।

(३) पर्याप्त प्राकृतिक साधन—भारत प्राकृतिक साधनों में धनी देश है। यहाँ अनेक प्रकार के खनिजों के भण्डार सुरक्षित हैं। शक्ति के पर्याप्त साधन हैं। *अनेक प्रकार की प्राकृतिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं अतः भारत में जनाधिक्य नहीं* कहा जा सकता। यदि प्राकृतिक साधनों का उचित एवं अधिकतम उपयोग हो सके तो जनसंख्या से सम्बन्धित सभी समस्याएँ स्वतः ही सुलझ सकती हैं।

(४) औद्योगिक विकास की अधिक सम्भावना—भारत में अभी तक उद्योगों का विकास बहुत कम हो पाया है। इनके विकास की अभी काफी सम्भावनाएँ हैं।

यदि इनकी उन्नति की जाये तो बेरोजगारी की समस्या हल हो सकती है और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय भी तेजी से बढ़ सकती है। अतः भारत में जनाधिक्य नहीं है। जनसंख्या का उत्तम उपयोग न होने के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं।

(५) अर्थव्यवस्था का अधिक विकास—भारतीय अर्थव्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है। सभी प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों को काम में लाकर आर्थिक विकास तेज गति से किया जा सकता है। इससे अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकेगा तथा जीवन स्तर ऊँचा उठेगा।

(६) वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधनों के अधिक उपयोग की सम्भावना—भारत में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साधनों का अधिक उपयोग नहीं हो पाता है। इन साधनों में पर्याप्त विकास करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बढ़ायी जा सकती है। अभी तक इस तरफ काफी सम्भावनाएँ हैं।

दोनों विचारधाराओं को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पिछले दशक में भारत में जनाधिक्य की समस्या अधिक स्पष्ट दिखायी दी है। इसके कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं अतः जनाधिक्य की समस्या का समाधान अत्यन्त आवश्यक है।

भारत में जनाधिक्य के कारण

भारत में जनसंख्या की वृद्धि अधिक तेज गति से हो रही है। भारत में जनसंख्या की वृद्धि निम्न कारणों से हो रही है

(१) कम उम्र में विवाह—भारत में छोटी उम्र में लड़कियों की शादी करने की प्रथा है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में १५ से २० वर्ष की उम्र में अधिकांश लड़कियों की शादी हो जाती है। इस अवधि में शादी होने के कारण स्त्रियों की सन्तानोत्पत्ति की अवधि लम्बी हो जाती है। यद्यपि आजकल इस तरफ कुछ सुधार होने लगा है किन्तु फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष परिवर्तन नहीं हो पाता है।

(२) मृत्यु दर में कमी—भारत में मृत्यु दर में १९०१ के पश्चात् पर्याप्त कमी हुई है। जहाँ १९०१ में मृत्यु दर ४२.६ प्रति हजार थी जब कि १९६१ में २२.८ प्रति हजार रह गयी और अब सन् १९७१ में मृत्यु दर लगभग १५ प्रति हजार ही रह गयी है। मृत्यु दर में निरन्तर कमी होने के कारण भारत में जनसंख्या तेज गति से बढ़ रही है। देश में स्वास्थ्य तथा चिकित्सा व्यवस्था की प्रगति होने के कारण मृत्यु दर में कमी हुई है। इस दृष्टि से विकास हुआ है किन्तु इससे जनसंख्या बढ़ाने में मदद मिली है।

(३) जन्म दर में मृत्यु दर से कम कमी—भारत में जन्म दर मृत्यु दर के अनुपात में कम नहीं हो रही है। सन् १९४१ और १९५१ की जनगणनाओं के आधार पर भारत में औसत जन्म दर ४२ प्रति हजार व्यक्ति प्रति वर्ष थी तथा औसत मृत्यु दर २३ प्रति हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष थी। सन् १९७१ में मृत्यु दर तो घटकर १५ रह गयी किन्तु जन्म दर में विशेष कमी नहीं हो सकी। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि

दोनों प्रकार की दरों में कमी हुई है फिर भी मृत्यु दर अनुपात में अधिक तेज गति से गिरी है। यह स्थिति ही वस्तुतः जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) के लिए उत्तरदायी है।

(४) विवाह-धार्मिक आवश्यकता—हमारी यह धार्मिक मान्यता है कि विवाह अवश्य होना चाहिए। जिन व्यक्तियों की शादी नहीं होती है उनको हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार विवाह एक अनिवार्य कार्य माना जाता है जिससे जनसंख्या में वृद्धि होती है।

(५) सामाजिक कारण—भारत में बड़ा परिवार अच्छा माना जाता रहा है। संयुक्त परिवार प्रथा इसका प्रमुख उदाहरण है। इस दृष्टि से छोटी उम्र में लड़का-लड़कियों की शादी कर दी जाती है। जिन परिवारों में सन्तान नहीं होती तो उसे बुरा माना जाता है। यद्यपि आजकल यह भावना कमजोर होती जा रही है फिर भी सुधार होने में समय लगेगा।

(६) जलवायु का प्रभाव—नम तथा उष्ण जलवायु में लड़के व लड़कियाँ छोटी उम्र में परिपक्व अवस्था में आ जाते हैं। इसके कारण छोटी उम्र में शादी करनी पड़ती है। इससे भी जनसंख्या में अधिक तेज गति से वृद्धि हो जाती है।

(७) अशिक्षा—अशिक्षा के कारण भारत में जीवन स्तर के बारे में कम विचार किया जाता है। शिक्षित लोग जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की सोचते हैं किन्तु अशिक्षित व्यक्ति इस तरफ ध्यान नहीं देते। जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए परिवार में कम बच्चे होने चाहिए। इस तरफ आजकल अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। "छोटा परिवार सुखी परिवार" का नारा आजकल जोर पकड़ रहा है।

(८) नियोजन एवं गर्भ निरोधक साधनों का अभाव—भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम काफी देर से चालू किये गये हैं। नियोजन कार्यक्रम बहुत पहले चालू कर देने चाहिए थे। नियोजन के अतिरिक्त यहाँ निरोधक सुविधाओं का भी अभाव पाया जाता है। सस्ते उपकरण भी यहाँ कम उपलब्ध हैं।

(९) मनोरंजन के साधनों की कमी—भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों तथा शहरी क्षेत्रों के श्रमिकों के लिए मनोरंजन के वैकल्पिक साधनों की कमी है अतः बच्चे पैदा करना मनोरंजन का आम साधन बन गया है। इस वजह से जनसंख्या में वृद्धि होती है।

उपरोक्त कारणों से भारत में जनाधिक्य की स्थिति उत्पन्न हुई है। जनाधिक्य के कारण भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ गया है। बेरोजगारी तथा खाद्य समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। अधिकतर लोग गरीब हैं और राष्ट्रीय आय कम है।

जनसंख्या नियोजन
(Population Planning)

जनसंख्या नियोजन के अन्तर्गत मानव शक्ति के उत्तम उपयोग तथा परिवार नियोजन को सम्मिलित किया जा सकता है। जनाधिक्य की समस्या के निराकरण के

समस्याओं का अध्ययन कर रहा है। इस केन्द्र द्वारा किया जाने वाला शोध सम्बन्धी कार्य मानव शक्ति की माँग एवं पूर्ति में सम्भावित परिवर्तनों, जनशक्ति के व्यावसायिक ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों, प्रशिक्षण की सुविधाओं एवं रोजगार के प्रयत्नों में सरकार को उचित परामर्श देने आदि में सम्बन्ध रखता है ताकि योजनाओं में जनसंख्या तथा जनशक्ति सम्बन्धी प्रभावपूर्ण नीति का निर्धारण किया जा सके।

भारत में मानव शक्ति के उचित नियोजन बिना आर्थिक विकास का कोई कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। देश की लगभग ७० प्रतिशत जनसंख्या कृषि व्यवसाय में लगी हुई है उसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है। जनसंख्या का उत्तम उपयोग करने के लिए व्यावसायिक दृष्टि से वितरण में सन्तुलन लाना आवश्यक है। मानव शक्ति नियोजन का उद्देश्य प्रति व्यक्ति उत्पादकता में वृद्धि करना भी है। इसके लिए उचित प्रशिक्षण व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव शक्ति नियोजन के लिए जनसंख्या नियन्त्रण और विद्यमान जनसंख्या का प्रभावपूर्ण नियोजन करने की आवश्यकता है।

जनसंख्या समस्या के निराकरण के लिए किये गये उपाय

बढ़ती हुई जनसंख्या देश के लिए एक अभिशाप है। आर्थिक समृद्धि के लिए इस समस्या का निराकरण करना आवश्यक है। यह एक मूल समस्या है जिसके समाधान में अनेक समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेंगी। जनसंख्या समस्या के निराकरण के उपायों को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है

(अ) देश के प्राकृतिक साधनों का अधिकतम एवं उत्तम उपयोग

भारत में प्राकृतिक साधनों की कोई कमी नहीं है, किन्तु उनका उत्तम उपयोग नहीं हो पाया है। इनका अधिकतम उपयोग करना चाहिए जिसमें बेरोजगारी दूर होगी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सकेगी। कृषि उन्नति के लिए आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना चाहिए। औद्योगिक विकास तीव्र गति से करना चाहिए तथा खनिज सम्पदा का विकास करना चाहिए। भारत सरकार ने अपनी पचवर्षीय योजनाओं में काफी प्रयत्न किये हैं। बेरोजगारी तथा खाद्य समस्या के हल के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं। जीवन स्तर में वृद्धि करने के भी प्रयास हुए हैं।

(ब) जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण

जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण इस समस्या का स्थायी एवं दीर्घकालीन हल है। नियन्त्रण से जनसंख्या की वृद्धि की दर कम हो जायेगी जिससे कम जनसंख्या बढ़ेगी। भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था में निम्न कार्य किये गये हैं

(१) पचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या से सम्बन्धित समस्या के अध्ययन एवं विश्लेषण की उचित व्यवस्था की गयी है।

(२) परिवार नियोजन कार्यक्रम चालू किये गये हैं। नियोजन की आवश्यकता के प्रति लोगों की भावना उत्पन्न करने पर भी ध्यान दिया गया है।

(३) सरकार ने गर्भ निरोध के साधनों की खोज एवं अनुसन्धान की व्यवस्था भी की है।

(४) परिवार नियोजन के तरीकों के विषय में जानकारी दिलाने के लिए अनेक सुविधाएँ दी हैं।

(५) देश के विभिन्न भागों में अस्पतालों एवं परिवार नियोजन केन्द्रों की स्थापना की है जिनमें परिवार नियोजन कार्यक्रम चालू किये गये हैं।

(६) केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा परिवार नियोजन मण्डल स्थापित किये गये हैं।

इन प्रयत्नों से देश में परिवार नियोजन निरन्तर उन्नत हो रहा है। देश भर में इसके प्रति एक अच्छा दृष्टिकोण बना है। शहरी क्षेत्रों में इसको अधिक अपनाया गया किन्तु आजकल ग्रामीण क्षेत्रों में भी अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

परिवार नियोजन

भारत सरकार की जनसंख्या सम्बन्धी नीति परिवार नियोजन पर आधारित है। जन्म दर में शीघ्रतापूर्वक कमी लाने के लिए परिवार नियोजन का व्यापक प्रचार एवं प्रसार आवश्यक माना गया है। परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य १९७९ तक जन्म दर घटाकर २३ प्रति हजार करना है। इस कार्यक्रम से वर्ष १९८०-८१ तक जनसंख्या वृद्धि दर १.७ प्रतिशत प्रतिवर्ष ही रह जायेगी। सन् १९५६ के पश्चात् देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम ने तेज गति से प्रगति की है। कार्यक्रम को सरल बनाने के लिए देश के ५ लाख ६० हजार गाँवों और ३ हजार नगरों में रहने वाले १० करोड़ दम्पत्तियों को इसके बारे में जानकारी देने की दृष्टि से एक संगठन की स्थापना की गयी है। कार्यक्रम को चलाने के लिए केन्द्र, राज्य तथा विकास खण्डों में समितियाँ स्थापित की गयी हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना तथा परिवार नियोजन

परिवार नियोजन कार्यक्रम पर प्रथम योजना में ६५ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी थी। १९५३ में परिवार नियोजन कार्यक्रम सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए एक समिति की स्थापना की गयी। प्रथम योजनाकाल में १४७ परिवार नियोजन केन्द्र स्थापित किये गये। इस योजना में अनुसन्धान एवं खोज कार्य अधिक किये गये। निर्धारित धन राशि में से इस योजना में केवल १८.५ लाख रुपये ही व्यय किये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना तथा परिवार नियोजन

इस काल में व्यापक कार्यक्रम अपनाये गये। योजना में ४ करोड़ ९७ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी। प्रमुख कार्यक्रम जनसाधारण को शिक्षा एवं जानकारी देना, परामर्श, अधिक केन्द्रों की स्थापना तथा जनसंख्या से सम्बन्धित अन्य समस्याओं का अनुसन्धान कार्य करना आदि थे। सन् १९५६ में परिवार नियोजन मण्डल की केन्द्र में स्थापना की गयी। विभिन्न राज्यों में भी बोर्ड स्थापित किये

गये। परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या द्वितीय योजना के अन्त तक १,६४६ हो गयी।

तृतीय पचवर्षीय योजना एव परिवार नियोजन

तृतीय पचवर्षीय योजना मे इस कार्यक्रम पर २७ करोड रुपये की व्यवस्था की गयी। इस काल मे निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाए गये

(१) परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए अनुकूल वातवरण बनाना तथा शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार करना।

(२) परिवार नियोजन कार्यक्रमो सम्बन्धी सेवाओं का प्रसार करना। -

(३) इसस सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य करना।

(४) परिवार नियोजन के लिए प्रशिक्षण तथा विभिन्न उपकरणो की पूर्ति की व्यवस्था करना आदि।

इन कार्यक्रमो पर कुल २४.८६ करोड रुपये व्यय किये गये। योजना के अन्त तक जिला परिवार नियोजन ब्यूरो की सख्या १६६ हो गयी। ग्रामीण परिवार कल्याण नियोजन केन्द्रो की सख्या ३,६७६ तथा ग्रामीण सह-केन्द्रों की सख्या ७,०८१ हो गयी। शहर परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र योजना के अन्त तक १,३८१ हो गये। परिवार नियोजन प्रशिक्षण केन्द्रो की सख्या १६६६ मे ३० थी।

वार्षिक योजनाएँ तथा चतुर्थ पचवर्षीय योजना

तीन वार्षिक योजनाएँ (१६६६-६६) मे परिवार नियोजन कार्यक्रमो पर ७४ २३ करोड रुपय की व्यवस्था की गयी। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे ३१५ करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान है। वास्तव मे, चतुर्थ पचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। तीन वार्षिक योजनाओ की सफलता तथा चतुर्थ योजना के कार्यक्रम निम्न तालिका मे स्पष्ट हो जाते हैं -

कार्यक्रमों की सफलता तथा लक्ष्य

मदें	इकाई	१६६६-६६	चतुर्थ योजना (लक्ष्य)
१ व्यय राशि	करोड रु०	७४ २३	३१५
२ जिला परिवार नियोजन ब्यूरो	सख्या	३०३	३३५
३ ग्रामीण परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र (सचयी सख्या)	,,	४,८४०	५,२२५
४ ग्रामीण सह-केन्द्र (सचयी सख्या)	,	२१,७५२	३१,७५२
५ शहरी परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र (सचयी सख्या)	,	१,८५६	१,८५६
६ परिवार नियोजन प्रशिक्षण केन्द्र	,,	४८	५१

(*Source*—Fourth Five Year Plan, 1969-74, Draft and *India*, 1970)

इस तालिका से स्पष्ट है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम पर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में अधिक जोर दिया जायेगा। अब तक के अनुमानों के आधार पर गर्भ निरोध और नसबन्दी के ४५ लाख आपरेशन तथा २५ लाख लूप लगाये जा चुके हैं।

परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रम अपनाये गये हैं उनमें केवल शहरी शिक्षित जनता को ही लाभान्वित किया जा सका है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में भी काफी प्रयत्न किये जा रहे हैं किन्तु अशिक्षा के कारण अधिक सफलता नहीं मिली है। प्रचार कार्य ग्रामों तक नहीं पहुँच पाता है। अतः भविष्य में ग्रामीण जनता में अधिक प्रसार करने की आवश्यकता है। प्रचार व्यवस्था के साथ-साथ निरोध के लिए सस्ते उपकरणों की व्यवस्था करनी चाहिए। आशा है चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इस क्षेत्र में सन्तोषजनक प्रगति हो सकेगी।

प्रश्न

१ क्या आप समझते हैं कि भारत में परिवार नियोजन बुरी तरह असफल हुआ है? अपने नये सुझावों सहित समस्या का आलोचनात्मक विवेचन करिए।
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६९)

२ क्या आपके विचार में इस समय भारत में जनाधिक्य है? जनसंख्या की समस्या के समाधान करने के लिए उपयुक्त सुझाव दीजिए।
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६८)

३ "भारत में अत्यधिक आबादी है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? भारत में आबादी की क्या मुख्य समस्याएँ हैं? इन समस्याओं को हल करने के लिए सुझाव दीजिए। (टी० डी० सी०, पूरक परीक्षा (प्रथम वर्ष), १९६६)

४ जनसंख्या का घनत्व क्या है? भारत के विभिन्न भागों में जनसंख्या के घनत्व में विभिन्नता क्यों पायी जाती है?

५ तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या भारत की सबसे अधिक कठिन समस्या है। भारत सरकार ने इसे रोकने के लिए क्या उपाय किये हैं? उनकी विवेचना कीजिए।

६ भारत की जनसंख्या के वितरण व घनत्व पर प्रकाश डालिए। भारत में जनसंख्या नियोजन कहाँ तक सफल हुआ है? 74
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९७०)

७३

७ भारत में जनसंख्या आयोजन से आप क्या समझते हैं। कहाँ तक सफल हुआ है। अपने सुझावों सहित आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६६ पूरक परीक्षा)

८ जनसंख्या नियोजन पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

अध्याय २१

खाद्य स्थिति एवं हरित-क्रान्ति

(FOOD SITUATION AND GREEN REVOLUTION)

भारत की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है। कृषि उत्पादन का अधिकतर भाग खाद्यान्नों के रूप में प्राप्त होता है इसलिए खाद्य उत्पादन का अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इतना होते हुए भी भारतीय कृषि देश की आवश्यकता के अनुसार खाद्य उत्पादन करने में असमर्थ है। खाद्य समस्या भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक स्थायी व्याधि बन गयी है। पिछले २०-२५ वर्षों से निरन्तर देश में खाद्यान्नों की कमी रही है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का अनाज बाहर से मँगवाना पड़ता है। वास्तव में, यह देश का दुर्भाग्य है कि जहाँ दो तिहाई जनसंख्या कृषि में लगी हुई है फिर भी अनाज आयात किया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार ने खाद्य समस्या के निराकरण के प्रयत्न किये हैं, किन्तु फिर भी आशातीत सफलता नहीं मिल सकी है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में स्थिति में सब कुछ सुधार हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्षों में अनाज उत्पादन में विशेष वृद्धि नहीं हो पायी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में अकालों के कारण स्थिति अधिक गम्भीर हो गयी।

खाद्य समस्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जनसंख्या वृद्धि से रहा है। जनसंख्या निरन्तर तेज गति से बढ़ती जा रही है। जनसंख्या के अनुपात से खाद्यान्नों का उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। अतः निरन्तर खाद्यान्नों का अभाव बढ़ता जा रहा है। वर्ष १९६७-६८ में ५१८ करोड़ रुपये के खाद्यान्नों का आयात किया गया है। प्रतिवर्ष लगभग ७५ लाख टन खाद्यान्नों की देश में कमी पड़ती है। पिछले कुछ वर्षों में खाद्यान्नों के मूल्यों में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। इससे देश की निर्धन जनता बहुत परेशान है। अतः खाद्य समस्या देश के आर्थिक विकास में बाधक बनी हुई है। अप्राप्य विदेशी मुद्रा जो खाद्य पदार्थों के आयात में व्यय करनी पड़ती है, अन्य वस्तुओं के आयात में काम नहीं आ सकती जिससे काफी नुकसान उठाना पड़ता है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में खाद्य पदार्थों में आत्म निर्भर होने के लक्ष्य रखे गये हैं। इसके लिए कृषि विकास तेज गति से किया जायेगा। खाद्य समस्या का स्थायी हल आवश्यक है। प्रो० दन्तवाला के अनुसार, "हमें जिस रोग का उपचार करना है वह साधारण रोग न होकर एक जीर्ण रोग है।" अतः इसे मूल रूप से नष्ट करना होगा।

भारत में खाद्य समस्या के कारण

भारत में खाद्य समस्या अनेक कारणों से उत्पन्न हुई है। भारतीय कृषि वर्षा पर आधारित है अतः वर्षा की कमी होने से खाद्य पदार्थों का उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त कुछ कारण मनुष्य ने स्वयं उत्पन्न किये हैं। इन सबका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है

(१) **जनसंख्या में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि**—भारत में जनसंख्या खाद्यान्नों के अनुपात में अधिक तेज गति से बढ़ रही है। इसके कारण खाद्यान्नों की माँग निरन्तर बढ़ती रहती है। जनसंख्या तथा खाद्यान्नों की वृद्धि की दर में सन्तुलन के अभाव में खाद्य समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं में काफी प्रयत्नों के बाद भी यह सन्तुलन स्थापित नहीं किया जा सका।

(२) **भारत का विभाजन**—पहले बर्मा भारत का एक अंग था। उस समय देश में बर्मा से पर्याप्त चावल उपलब्ध हो जाता था। बर्मा के भारत से अलग हो जाने से यहाँ चावल की स्थायी कमी हो गयी। इसके पश्चात सन् १९४७ में भारत का विभाजन हुआ जिसमें पाकिस्तान अलग हो गया। भारत के गेहूँ तथा चावल उत्पन्न करने वाले पंजाब और बंगाल के क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये जिससे समस्या अधिक विकट हो गयी।

(३) **वर्षा पर निर्भरता**—भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है। जिस वर्ष अच्छी वर्षा हो जाती है, खाद्यान्न भी अच्छे उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु इसके अभाव में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारत में प्रतिवर्ष किसी न किसी भाग में अकाल की स्थिति पैदा हो जाती है। अकाल वर्षा की अनिश्चितता अथवा अनावृष्टि के कारण पड़ते हैं। इस स्थिति में खाद्यान्नों के उत्पादन में भारी कमी हो जाती है। वर्षा के अतिरिक्त आँधी, तूफान तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों का भी खाद्यान्न उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है।

(४) **कृषि के प्राचीन तरीके**—भारतीय किसान प्राचीन उपकरणों का प्रयोग करते हैं। अशिक्षा के कारण नवीन कृषि औजारों का उपयोग बहुत कम है। यद्यपि आजकल नवीन तरीकों का प्रचार बढ़ रहा है किन्तु अधिकतर किसान वही पुरानी विधियाँ काम में लाते हैं जिससे खाद्यान्न का कम उत्पादन हो पाता है। फसलों की रक्षा के लिए उचित व्यवस्था नहीं है। पौधों के रोगों की रोकथाम नहीं हो पाती जिससे उत्पादन कम होता है।

(५) **निम्न कृषि उत्पादकता**—भारत में प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादकता अनेक देशों से कम है। निम्न उत्पादकता के कारण उपज अधिक नहीं हो पाती है तथा कम उत्पादन होता है। इस कारण से भी खाद्य समस्या उत्पन्न होती है।

(६) **कृषि में खाद का कम उपयोग**—भारत में खाद का उपयोग बहुत कम किया जाता है। देश में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिक नहीं हो पाता है। पिछले कुछ वर्षों में इसका उपयोग बढ़ा है किन्तु फिर भी सन्तोषजनक नहीं है।

अन्य देशों की तुलना मे प्रति हैक्टेयर कम खाद का उपयोग किया जाता है। इटली, फ्रांस तथा जापान म भारत म कई गुनी खाद प्रति हैक्टयर भूमि म दी जाती है। इस कारण भारतीय कृषि की उत्पादकता निम्न है।

(७) व्यापारिक फसलें—भारत म कृषि क्षेत्र मे आजकल वाणिज्यीकरण हो रहा है। खाद्यान्न फसलो का स्थान अब व्यापारिक फसलें ले रही हैं। इनमे कपास, जूट, गन्ना, तिलहन, तम्बाकू आदि फसलें हैं। इन फसलो की प्रतियोगिता निरन्तर बढ रही है जिससे खाद्य उत्पादन घट रहा है। किसाना को खाद्यानो की अपेक्षा व्यापारिक फसलो मे अधिक आय होती है इसलिए व्यापारिक फसलो की तरफ रुख परिवर्तन स्वाभाविक है।

(८) सहायक खाद्य पदार्थों का अभाव—भारत म सहायक खाद्य पदार्थों का कम उपयोग होता है। यहाँ मछली, अण्डो तथा मांस का कम उपयोग किया जाता है अत इनका विकास नही हो पाया है। इनके अतिरिक्त घी, दूध, फल, सब्जी आदि का पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन नहीं होता जिससे खाद्य समस्या हल हो सके। इन पदार्थों के अभाव मे जनसख्या खाद्यानो पर निर्भर रहती है जिससे इनकी माँग अधिक है।

(९) भण्डारण व्यवस्था का अभाव—भारत मे कृषि उत्पादों की भण्डारण व्यवस्था दोषपूर्ण है। किसानो के पास अनाज को सुरक्षित रखने के पर्याप्त पक्के भण्डार नहीं हैं। इनके अभाव मे कीडे, मकोडे, दीमक तथा चूहे काफी अनाज को नष्ट कर देते हैं। वैज्ञानिक भण्डारो का पूर्णत अभाव है अत खाद्यान पूर्ति कम हो जाती है।

(१०) खाद्यान्नो का सग्रह—भारत मे व्यापारी लोग खाद्यान्न बाजार मे प्रस्तुत करते हैं। ये मूल्य बढाने के लिए अनाज का सग्रह कर लेते हैं जिससे मूल्य बढने लगता है। बाजार मे इस प्रकार की कृत्रिम अनाज की कमी उत्पन्न करने से भी खाद्यानो का अभाव ज्ञात होने लगता है। इस प्रकार दोष पूर्ण वितरण व्यवस्था से भी खाद्यान की कृत्रिम कमी उत्पन्न हो जाती है।

उपरोक्त कारणों से भारत मे आवश्यकता से कम खाद्यान्न उत्पन्न होते हैं जो कि जनता का पेट नहीं भर सकते। आजकल खाद्य समस्या के निराकरण के लिए अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। खाद्यान्न सम्बन्धी आत्म निर्भरता प्रमुख लक्ष्य रखकर कार्य करना आवश्यक है।

खाद्य समस्या के निराकरण के सुझाव

भारत मे खाद्य समस्या का स्थायी हल आवश्यक है। अस्थायी तौर पर अन्न अधिक उत्पादन करने से यह समस्या दूर नहीं होती है। स्थायी हल के लिए कृषि विकास अधिक किया जाना चाहिए। इस समस्या के निराकरण के मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं .

(१) जनसख्या वृद्धि पर नियन्त्रण—भारत मे जनसख्या निरन्तर बढती जा

रही है। इसकी वृद्धि की दर को कम करना आवश्यक है। जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी करके तथा खाद्यान्न उत्पादन की दर बढ़ाकर इसमें सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। इसके अभाव में खाद्य समस्या हल नहीं हो सकती। जनसंख्या पर नियन्त्रण परिवार नियोजन कार्यक्रमों से किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

(२) सिंचाई व्यवस्था—भारतीय कृषि जब तक वर्षा पर आधारित रहेगी देश में खाद्य संकट बना रहेगा। इसका स्थायी इलाज सिंचाई व्यवस्था करना है। वर्षा के अभाव में सिंचाई से खाद्यान्नों का उत्पादन हो सकता है। भारत सरकार ने इस तरफ काफी प्रयत्न किये हैं और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सिंचाई का पर्याप्त विकास किया जायेगा। इससे उत्पादन में वृद्धि होगी।

(३) अधिक खाद तथा नवीन तरीके—भारत में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि अधिक खाद तथा नवीन औजारों के उपयोग से किया जा सकता है। अधिक खाद देकर प्रति हैक्टेयर उपज में वृद्धि की जा सकती है। देश के जिन भागों में पर्याप्त वर्षा होती है तथा सिंचाई व्यवस्था है, रासायनिक खाद का पर्याप्त उपयोग करना चाहिए। नवीन औजारों तथा वैज्ञानिक विधियों से देश में अधिक उत्पादन किया जा सकता है।

(४) कृषि क्षेत्र में विस्तार—देश के अनेक भागों में भूमि बंजर पड़ी है। बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाकर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। देश के कुछ भागों में वर्षा के अभाव में भूमि का कम उपयोग होता है अतः उन भागों में कुएँ खुदवा करके अथवा सिंचाई व्यवस्था करके कृषि क्षेत्र में विस्तार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दलदली भागों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ कृषि उपज हो सकती है, खेती की व्यवस्था करनी चाहिए।

(५) भण्डार की सुविधा—कृषि उत्पादों के भण्डारण की उचित व्यवस्था आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डार गृहों का निर्माण करना चाहिए ताकि अनाज नष्ट न हो। किसानों को भण्डार निर्माण के लिए ऋण देना चाहिए अथवा सहकारिता का पर्याप्त विकास करना चाहिए ताकि सहकारी समितियाँ भण्डार गृहों का निर्माण कर सकें।

(६) मूल्य गारण्टी—किसानों को मूल्य गारण्टी देनी चाहिए। इससे किसान खाद्यान्न उत्पादन की तरफ अधिक प्रोत्साहित होंगे। इसके अभाव में व्यापारिक फसलों का अधिक उत्पादन होगा। सरकार मूल्य गारण्टी दे सकती है और उत्पादन बढ़ा सकती है।

(७) सामुदायिक विकास कार्यक्रम—इन कार्यक्रमों से खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। विकास खण्डों से किसानों को कृषि के नवीन औजारों के उपयोग का प्रशिक्षण, नवीन विधियों का उपयोग तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं जिससे उत्पादन बढ़ाया जा सके।

(८) अन्य—इनके अलावा खाद्य समस्या के हल के लिए उनम वितरण व्यवस्था अपनानी चाहिए। कृषि सहकारी समितियों का पर्याप्त विकास करना चाहिए। किसानों को ऋण ग्रस्तता से मुक्त करना सबसे महत्त्वपूर्ण है। इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के बिना खाद्य उत्पादन बढाना कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए ताकि कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार कम हो सके।

उपरोक्त सुझावों को ध्यान म रखकर खाद्य समस्या का स्थायी निराकरण करना चाहिए। इसके बिना हमारी समस्त आर्थिक योजनाओं के उद्देश्य निष्फल रहेंगे। राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पायेगी। आशा है चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस स्थिति पर नियन्त्रण हो सकेगा।

सरकार द्वारा किये गये उपाय

ब्रिटिश भारत मे द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होते ही खाद्यान्नों के सम्बन्ध मे एक प्रभावशाली नीति निर्धारण करने की आवश्यकता हुई। केन्द्र में १९४२ मे खाद्य विभाग खोला गया। एक वर्ष पश्चात् बगाल मे भयकर अकाल पडा जिसने खाद्य समस्या गम्भीर हो गयी। इस समय खाद्य पदार्थों के मूल्य निर्धारित कर दिये गये और फिर 'राशनिंग' कर दिया गया। एक राज्य से दूसरे राज्य मे अनाज ले जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये। इसी समय देश मे खाद्यान्न नीति की घोषणा की गयी।

अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन

खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए १९४३ मे लगभग सभी राज्यों मे अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन चलाया गया। सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार किया गया और कृषि भूमि के क्षेत्र का विस्तार किया गया। इन कार्यों के लिए ब्रिटिश सरकार ने १६ करोड रुपये की सहायता दी। किन्तु सगठित प्रयत्नों के अभाव मे आन्दोलन सफल नहीं हो पाया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् भारत की खाद्य स्थिति काफी बिगड गयी क्योंकि विभाजन के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण गेहूँ तथा चावल उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान मे चले गये। सन् १९४७ मे ठाकुरदास समिति नियुक्त की गयी। इसमे खाद्य पदार्थों के आयात तथा कृषि उत्पादन बढाने पर बल दिया। उत्पादन बढाने के लिए इस समिति ने कृषि योग्य बेकार भूमि को काम मे लाने पर बल दिया। किन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

प्रथम पंचवर्षीय योजना एव खाद्यान्न

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि विकास को प्राथमिकता दी गयी। कृषि उत्पादन मे सन्तोषजनक वृद्धि हुई। खाद्यान्न उत्पादन के लक्ष्यों को पूरा किया गया तथा आयात मे भी कमी की गयी जो कि अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट है।

वर्ष	खाद्यान्न उत्पादन (लाख टन)	खाद्यान्नों में आयात की मात्रा (लाख टन)
१९५१-५२	५३०	४७ ७
१९५२-५३	५८८	३८ ३
१९५३-५४	६९०	२० ०
१९५४-५५	६७०	८ ०
१९५५-५६	६४७	६ ०

इस तालिका से स्पष्ट है कि उत्पादन सन्तोषजनक रहा। वर्ष १९५३-५४ में खाद्यान्नों का उत्पादन बहुत अच्छा हुआ। खाद्यान्नों के अधिक उत्पादन से निरन्तर आयातों में कमी की गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना एवं खाद्यान्न

द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की गयी। द्वितीय योजना में खाद्यान्न उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पायी क्योंकि वर्षा ने साथ नहीं दिया। अतिरिक्त खाद्यान्नों के संशोधित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। इस योजना में खाद्यान्न उत्पादन तथा खाद्यान्नों के आयात की स्थिति निम्न प्रकार थी

वर्ष	खाद्यान्न उत्पादन (लाख टन)	खाद्यान्नों का आयात (लाख टन)
१९५५-५६	६८७	१४ ०
१९५७-५८	६२५	३२ ९
१९५८-५९	७३४	३१ ०
१९५९-६०	७१७	३८ १
१९६०-६१	७६७	३४ ८

इस योजना से स्पष्ट है कि खाद्यान्नों के आयात में वृद्धि हुई, कुछ वर्षों में आयात में कमी हुई किन्तु कोई विशेष कमी नहीं हो पायी। द्वितीय योजना में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक खाद्यान्न जाँच समिति की नियुक्ति की। इस योजना काल में सन् १९६० में संयुक्त राज्य अमरीका से पी० एल० ४८० के अन्तर्गत एक समझौता किया गया जिसके अन्तर्गत ४ वर्षों में १० लाख टन चावल और १६० लाख टन गेहूँ के आयात की व्यवस्था थी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना एवं खाद्यान्न

तृतीय पंचवर्षीय योजना में कृषि सुधार कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में भी खाद्यान्नों का सन्तोषजनक उत्पादन नहीं हुआ। इस योजना में खाद्यान्न उत्पादन तथा आयात की स्थिति अग्र प्रकार थी।

वर्ष	खाद्यान्न उत्पादन (लाख टन)	खाद्यान्नों का आयात (लाख टन)
१९६१-६२	८२०	३४.९
१९६२-६३	७८८	३६.४
१९६३-६४	७८५	४५.६
१९६४-६५	७८१	६२.७
१९६५-६६	७२०	७४.६

तृतीय पचवर्षीय योजना मे आयात मे निरन्तर वृद्धि हुई इसका कारण फसलो का खराब होना था। इस काल मे देश मे सकटकालीन स्थिति की तथा अकाल की स्थिति अधिक समय तक थी अत उत्पादन मे कमी हुई।

१ जनवरी, १९६५ को भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की गयी। इसके मुख्य कार्य खाद्यान्न खरीदना, इकट्ठा करना, भेजना तथा बेचना आदि है। तृतीय पचवर्षीय योजना मे सस्ते अनाज की दुकानो की व्यवस्था की गयी। खाद्यान्न बहुल (Food Surplus) राज्यो म खाद्य पदार्थों की वसूली आरम्भ कर दी गयी। पी० एल० ४८० के समझौते के अन्तर्गत सयुक्त राज्य अमरीका से गेहूँ तथा चावल का आयात किया गया। तीसरी योजना काल मे कोलम्बो कार्यक्रम के अन्तर्गत गेहूँ आयात करने का तथा बर्मा से चावल के आयात का समझौता भी हुआ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना एव खाद्यान्न

चतुर्थ पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि विकास तथा सिचाई व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कृषि विकास मे 'सघन कृषि कार्यक्रम' अपनाने पर विशेष जोर दिया गया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे १,२९० लाख टन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है जो कि वर्ष १९६५-६६ की तुलना मे काफी अधिक है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सिचाई व्यवस्था का विकास इस प्रकार किया जायेगा जिससे देश मे वर्षा के अभाव म अकाल की स्थिति उत्पन्न न हो। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे खाद्यान्न उत्पादन सन्तोषजनक हो सकेगा क्योंकि सिचाई की अधिक सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। नवीन विधियो, खादो तथा आधुनिक औजारो का अधिकतम उपयोग किया जायेगा। रासायनिक खाद की पूर्ति अधिक हो सकेगी जिससे उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सकेगी। नवीन कृषि नीति के अन्तर्गत खाद्यान्नो मे देश को आत्म निर्भर बनाया जायेगा।

हरित-क्रान्ति
(Green Revolution)

क्रान्ति शब्द का अभिप्राय मूलभूत परिवर्तन से है। भारत मे कृषि उत्पादन मे इस प्रकार की नवीन विधियो का प्रयोग किया गया है जिनके कारण चारो तरफ हरियाली ही हरियाली दिखायी दे रही है। आधुनिक प्रयत्नो के इस अभूतपूर्व परि-

वर्तन को कृषि-क्रान्ति कहा गया है। चतुर्थ योजना में कृषि उत्पादन में सफलता की प्राप्ति के लिए नवीन व्यूह रचना (Strategy) अपनायी गयी है। इसके अन्तर्गत कृषि साधनों में वृद्धि करने के लिए सर्वांगीण प्रयत्न किये जा रहे हैं। सघन कृषि के कार्यक्रमों के द्वारा कुछ चुने हुए क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में वृद्धि के प्रयत्न हो रहे हैं। इस नवीन नीति के अपनाने से पूर्व खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की दर बहुत कम थी किन्तु पिछले दो-तीन वर्षों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। प्रति हैक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि हुई है।

भारत में वर्ष १९५०-५१ तथा १९६०-६१ में खाद्यान्न का उत्पादन क्रमशः ५.०८ करोड़ टन तथा ८.२० करोड़ टन था। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में अकाल की स्थिति के कारण उत्पादन कम हुआ। वर्ष १९६६-६७ में नवीन कृषि नीति अपनायी गयी। अच्छे मानसून तथा नवीन कृषि नीति के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो रही है। वर्ष १९७०-७१ के अन्तिम अनुमानों के आधार पर खाद्यान्न का कुल उत्पादन १०.९० करोड़ टन था जबकि वर्ष १९६५-६६ में यह केवल ७.२० करोड़ टन था। चावल का उत्पादन वर्ष १९६६-६७ में ३ करोड़ टन से लगभग था जो कि वर्ष १९६८-६९ में ३.९७ करोड़ टन हो गया। गेहूँ के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९६०-६१ में गेहूँ का उत्पादन १.०९ करोड़ टन था जो कि वर्ष १९६८-६९ में बढ़कर १.८७ करोड़ टन हो गया। स्पष्ट है कि पिछले वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

वर्ष १९६६ से ऊँची उपज के बीजों का उपयोग किया जा रहा है। इसके क्षेत्र में इस वर्ष के पश्चात् पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष १९६६-६७ में १९ लाख हैक्टेयर भूमि थी जो कि वर्ष १९६७-६८ में ६० लाख हैक्टेयर तथा १९६८-६९ में १.०९ करोड़ हैक्टेयर हो गयी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष (१९७३-७४) का लक्ष्य २.५ करोड़ हैक्टेयर निर्धारित किया गया है। वर्ष १९६८-६९ में गेहूँ के कुल क्षेत्र ९२ लाख हैक्टेयर का ५०.२ प्रतिशत उच्च उपज किस्म (HYV) कार्यक्रम में लाया गया। द्वितीय स्थान चावल का था। चावल के कुल उत्पादन क्षेत्र का २८.३ प्रतिशत इस कार्यक्रम के अन्तर्गत है।

ऊँची उपज किस्म के बीजों के उपयोग से प्रति हैक्टेयर उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अधिक उपज की किस्म के प्रयोग से पहले चावल तथा गेहूँ का अधिकतम उत्पादन प्रति हैक्टेयर क्रमशः २,०७६ किलोग्राम तथा १,४०८ किलोग्राम था जो कि वर्ष १९६७-६८ (अधिक उपज देने वाली किस्म के प्रसार के समय) में क्रमशः १३,८९५ किलोग्राम तथा ११,८५० किलोग्राम हो गया। ज्वार, बाजरा तथा मक्का के प्रति हैक्टेयर उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। अधिक उत्पादन वाले बीजों के उपयोग में पानी तथा खाद की आवश्यकता पड़ती है। खाद का उपयोग

प्रति हेक्टेयर वर्ष १९६०-६१ की तुलना मे १९७०-७१ मे सात गुना हो गया है। अधिक खाद का उपयोग कृषि विकास का द्योतक है।

नवीन नीति के अन्तर्गत सिचाई व्यवस्था को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। लघु सिंचाई योजना के कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे प्रमुख, मध्य और छोटी सिचाई परियोजनाओं द्वारा २५ ४ मि० हेक्टेयर मीटर पानी का उपयोग हो सकेगा। इस योजना के अन्त तक लघु-सिंचाई योजना के अन्तर्गत ३२ लाख हेक्टेयर अतिरिक्त सिचाई व्यवस्था हो सकेगी। सार्वजनिक क्षेत्र मे इस योजना मे ५१४ ७ करोड रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गयी है।

हमारे देश मे मिट्टी के कटाव की समस्या जटिल है। इसे रोकने के लिए भी प्रयत्न किये गये हैं। वर्ष १९६८-६९ मे १ ३ मि० हेक्टेयर भूमि मे भू-सरक्षण कार्यक्रम अपनाये गये। वर्ष १९६९-७० मे ८ ७ लाख हेक्टेयर मे अतिरिक्त भूमि पर भू-सरक्षण कार्य किया गया।

पिछले वर्षों मे बहु-फसलो के क्षेत्र मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९६९-७० मे ८० लाख हेक्टेयर भूमि मे बहु-फसलें थी जबकि १९६७-६८ मे केवल ३० लाख हेक्टेयर मे थी। इसके अतिरिक्त उन्नत कृषि यन्त्रो के उपयोग की दशा मे भी सुधार हुआ है। ट्रैक्टर्स, पम्पिग सैट्स तथा अन्य उपकरणों के उत्पादन तथा उपयोग मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कृषि विकास के विभिन्न क्षेत्रों मे आधुनिक उपायो का प्रयोग बढ रहा है। साथ ही साथ कृषि उत्पादन भी बढ रहा है। कृषि क्रान्ति का प्रभाव कृषि, उद्योग, वाणिज्य, रोजगार तथा राष्ट्रीय आय पर पड रहा है। हरित-क्रान्ति देश के सभी क्षेत्रो मे नही विस्तृत हो पायी है। आशा है भविष्य मे देश के विकास मे इसका बडा योगदान रहेगा।

यद्यपि हरित-क्रान्ति ने भारत की खाद्य स्थिति मे पर्याप्त सुधार करके नयी आशा का सचार किया है किन्तु मई १९७१ के बाद से बगला देश के शरणार्थियो के भारत मे आ जाने के कारण स्थिति फिर अनिश्चित हो गयी है। जून १९७१ के प्रथम सप्ताह तक लगभग ५० लाख शरणार्थी भारत मे प्रवेश कर चुके थे और प्रति दिन औसतन ५० हजार से एक लाख तक शरणार्थियो का आना जारी था इससे देश की खाद्य स्थिति पर निश्चय ही विपरीत प्रभाव पडेगा।

प्रश्न

१ भारत की खाद्य समस्या को समझाइए। इस समस्या को सुलझाने के लिए कौन-कौन से उपाय किये गये हैं? इनमे कितनी सफलता मिली है?

२ भारत मे खाद्य समस्या के क्या कारण हैं? इस समस्या के निराकरण के लिए सुझाव दीजिए।

३ हरित-क्रान्ति पर सक्षिप्त नोट लिखिए।

अध्याय २२

बेरोजगारी की समस्या
(UNEMPLOYMENT PROBLEM)

बेरोजगारी आधुनिक औद्योगिक पूँजीवाद का एक भयंकर अभिशाप है। प्रायः सभी विकसित देशों में यह समस्या न्यूनाधिक रूप में दिखायी देती है। विकास एवं सम्पन्नता के बावजूद इन देशों में प्रशासन बेरोजगारी की सम्भावना से चिन्तित, और इस संकट से रक्षा करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। विनियोग उत्पादन एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में तेजी और मन्दी के चक्र समय-समय पर आते रहते हैं जिनके कारण बेरोजगारी की मात्रा घट-बढ़ होती रहती है। इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि यह समस्या केवल विकसित देशों में ही है और अन्य ऐसे देश जो आर्थिक दृष्टि से पीछे हैं, इस समस्या से मुक्त हैं। अविकसित एवं विकासशील देशों में बेरोजगारी की समस्या का स्वरूप कुछ भिन्न होता है, और उसका उपचार भी विकसित देशों की तुलना में एक अत्यन्त कठिन कार्य बन जाता है जिसके लिए एक लम्बी अवधि की आवश्यकता होती है। ऐसे देशों में बेरोज-गारी के साथ-साथ अदृश्य बेरोजगारी (Disguised unemployment) अथवा अर्द्ध-बेरोजगारी (Under-employment) इस समस्या को अधिक जटिल बना देती है।

समाज में कुछ व्यक्ति यदि काम करने योग्य न हों, अथवा योग्य होते हुए भी काम करने के इच्छुक न हों और इस वजह से बेकार रहें, यद्यपि समाज उन्हें उचित काम देने की स्थिति में हो तो इसके लिए वे व्यक्ति ही दोषी माने जायेंगे, किन्तु काम करने योग्य कुछ व्यक्ति यदि काम प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं किन्तु समाज उनके लिए उचित कार्य प्रदान करने में असमर्थ रहता है, तो ऐसी दशा में दोष उन व्यक्तियों का न होकर उस सामाजिक व्यवस्था का होगा। वस्तुतः दूसरी स्थिति को ही बेरोजगारी की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि ऐसी स्थिति में, कार्यशील एवं योग्य व्यक्ति, काम करने की अभिलाषा रखते हुए और उसके लिए प्रयत्नशील होते हुए भी प्रचलित वेतन-दरों पर काम प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। विकसित देशों में ऐसी परिस्थिति अल्पकालीन हो सकती है, क्योंकि पूँजी एवं उत्पादन के अन्य साधना

को जिनकी वहाँ प्रचुरता होती है, पुनर्जीवित करके गतिशील बना लिया जाता है और इस प्रकार कुछ समय में ही इस समस्या को हल कर लिया जाता है, यद्यपि कुछ काल के बाद यह वहाँ फिर उत्पन्न हो सकती है। किन्तु अविकसित देशों में यह समस्या स्थायी एवं दुहरी है—स्थायी इसलिए कि इन देशों में व्यापार चक्रों (trade cycles) का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है तथा आर्थिक गतिविधियों में निरन्तर मन्दता के कारण बेरोजगारी सदैव बनी रहती है, तथा दुहरी इसलिए कि बेरोजगारी के साथ-साथ अदृश्य बेरोजगार (Disguised unemployment) अथवा अर्द्ध-बेरोजगारी (Semi unemployment) अथवा अल्प रोजगारी (Under-empolyment) स्थिति में जनशक्ति का एक बहुत बड़ा भाग व्याप्त होता है जिसकी उत्पादकता इतनी न्यून होती है कि न तो राष्ट्रीय उत्पादन में उनका कोई विशेष योग होता है और न उनकी श्रमशक्ति का ही पूर्ण उपयोग हो पाता है। अतः वास्तव में देखा जाय तो अविकसित एवं विकासशील देशों में व्याप्त अदृश्य बेरोजगारी इस समस्या को अधिक व्यापक तथा दुरूह स्वरूप प्रदान करती है।

बेरोजगारी का स्वरूप
(The Nature of Unemployment)

सैद्धान्तिक दृष्टि से बेरोजगारी के अनेक स्वरूप हो सकते हैं जैसे ऐच्छिक अथवा अनैच्छिक, प्रकट या दृश्य अथवा अप्रकट या अदृश्य, नियमित अथवा मौसमी, स्थायी अथवा अस्थायी, पूर्ण या अपूर्ण आदि किन्तु भारतीय बेरोजगारी की समस्या के सन्दर्भ में इस समस्या के निम्नलिखित पहलू उल्लेखनीय हैं:

१ अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment)

यह वह अतिरिक्त जनशक्ति है जिसकी सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) बहुत ही कम होती है अथवा बिलकुल ही नहीं होती। किसी व्यवसाय में नियुक्त ऐसी जनशक्ति के कुछ भाग को यदि उस क्षेत्र से हटाकर किसी अन्य व्यवसाय में लगा दिया जाय तो इससे उस व्यवसाय के कुल उत्पादन अथवा उसकी उत्पादकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, अर्थात् अतिरिक्त जनशक्ति के अन्यत्र विनियोग के बाद भी उस व्यवसाय में उत्पादन और उत्पादकता का वही स्तर बना रहेगा जो पहले था। इस प्रकार की बेरोजगारी को अल्प-रोजगारी (Under-employment) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है तथा ऐसी दशा में सामान्यतः यह प्रतीत होता है कि समस्त जनशक्ति काम पर लगी हुई है किन्तु वास्तविक स्थिति यह होती है कि श्रम का पूरा उपयोग करने का अवसर उसे प्राप्त नहीं होता तथा इसलिए आय और उत्पादकता का स्तर अत्यन्त कम होता है।

दृश्य बेरोजगारी का तो अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु अदृश्य बेरोजगारी अथवा अल्प-रोजगारी को ज्ञात करना और उसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना भी कठिन होता है क्योंकि यह ऊपरी तौर से दिखायी नहीं देती और न इसे नापने का कोई उचित मापदण्ड ही हो सकता है। इसका माप करना कठिन है कि किसी व्यव-

साय में लगी हुई जनशक्ति का कितना भाग अतिरिक्त है, जिसे यदि उस व्यवसाय से हटा लिया जाय तो भी उस व्यवसाय में उत्पादन अथवा उत्पादकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। भारत में कृषि व्यवसाय में संलग्न जनशक्ति अदृश्य बेरोजगारी अथवा अल्प रोजगारी से पीड़ित है। देश की लगभग ७० प्रतिशत जनशक्ति इस एक व्यवसाय में ही लगी हुई है जबकि इतनी मात्रा में उसकी वहाँ आवश्यकता नहीं। अन्य देशों में जनशक्ति के बहुत कम प्रतिशत से ही कृषि-कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए कुल जनशक्ति के प्रतिशत के रूप में कृषि व्यवसाय में नियुक्त जनशक्ति रूस में ४० प्रतिशत, इटली में ३१ प्रतिशत, जापान में २६ प्रतिशत, फ्रांस में २६ प्रतिशत, पश्चिमी जर्मनी में १४ प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमरीका में ७ प्रतिशत और इंगलैण्ड में केवल ४ प्रतिशत है। भारत में इतने अधिक व्यक्ति कृषि व्यवसाय में इसलिए लगे हुए हैं कि उनके समक्ष अन्य कोई विकल्प नहीं है। ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग-धन्धों में इतना काम नहीं है। शहरों में औद्योगीकरण की गति भी इतनी तेज नहीं जो जनशक्ति की भारी माँग प्रस्तुत कर सके। अतः लाचारी में लोग कृषि व्यवसाय से चिपके हुए हैं और उससे जो कुछ मिल जाता है, उसी से सन्तोष कर लेते हैं।

२ दृश्य बेरोजगारी (Visible Unemployment)

इसे प्रकट बेरोजगारी भी कहते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी विकसित देशों में अधिक होती है। पूँजीवादी विकसित देशों में जीवन स्तर इतना ऊँचा होता है तथा जीवन-यापन का व्यय इतना अधिक होता है कि कोई भी व्यक्ति प्रचलित वेतनदरों से कम पर काम करना पसन्द नहीं करता। अतः ऐसे देशों में व्यक्ति या तो पूर्णरूप से बेकार रहता है अथवा पूर्णतः रोजगार में लगा रहता है। पहली दशा में पूर्ण बेरोजगारी (Full unemployment) और दूसरी में पूर्ण रोजगारी (Full employment) की स्थिति पायी जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विकसित देशों में व्यक्तिगत स्तर पर आंशिक रोजगारी अथवा अल्प रोजगारी नहीं पायी जाती जैसी कि विकासशील देशों में दिखायी देती है। विकसित देशों में प्रायः व्यक्ति अर्द्ध-बेरोजगार रहकर कष्ट उठाने के बजाय पूर्ण बेरोजगार रहकर सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत राज्य द्वारा प्रदान किये जाने वाले लाभों को उस समय तक प्राप्त करना अधिक उपयुक्त समझते हैं जब तक कि उनके लिए उचित भार पर काम की व्यवस्था नहीं की जाती है।

भारत में दृश्य अथवा प्रकट बेरोजगारी इतनी अधिक नहीं है जितनी कि अदृश्य अथवा अप्रकट बेकारी है, किन्तु फिर भी पूर्ण बेरोजगारी की मात्रा में पिछले कुछ वर्षों में निरन्तर वृद्धि होती रही है जिसे दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत रोजगार के नये अवसरों की व्यवस्था करने का प्रयास प्रारम्भ किया जाता रहा है किन्तु फिर भी बेरोजगारों की संख्या में कमी न होकर बढ़ोतरी ही हुई है। ऐसी बेरोजगारी भारत में शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में पायी जाती है।

३ मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment)

इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ महीनों में अधिक दिखायी देती है। श्रम की माग मे घट-बढ के साथ-साथ मौसमी बेरोजगारी मे भी परिवर्तन होता रहता है। व्यस्त मौसम मे श्रम की मांग मे वृद्धि हो जाती है तथा शिथिल मौसम मे व्यस्तता मे कमी के साथ-साथ रोजगार में भी कमी हो जाती है और बेकारी बढ जाती है भारतीय कृषि मे फसलो के बोने और काटने मे श्रम की मांग बढ जाती है, किन्तु अन्य मौसम म बेकारी की मात्रा म वृद्धि हो जाती है। कुछ उद्योगों मे भी मौसमी बेकारी पायी जाती है जैसे चीनी उद्योग, गुड उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग, शीतल पेय उद्योग आदि।

४. चक्राकार बेरोजगारी (Cyclical Unemployment)

इस प्रकार की बेकारी पूंजीवादी व्यवस्था से जुडी हुई है और व्यापार चक्रों (Trade cycles) के साथ-साथ परिवर्तन होते रहते हैं। तेजी के काल में पूंजी विनियोग मे तीव्रता के कारण उत्पादक गतिविधियो मे वृद्धि हो जाती है और श्रम की मांग एव कीमत बढ जाती है, किन्तु मन्दी के युग म सीमान्त उत्पादकों द्वारा उत्पादन समाप्त कर देने से श्रम की मांग में सकोच आ जाता है और इस प्रक्रिया की तीव्रता के साथ-साथ बेकारी फैलती जाती है। दोनो विश्वयुद्धो के बीच के काल मे विश्वव्यापी भयकर मन्दी का कटु अनुभव अनेक देशों को हो चुका है। अन्य अविकसित अथवा विकासशील देशो की भांति भारत में इस प्रकार की बेकारी की अधिक आशका नही है, यद्यपि विश्वव्यापी तेजी और मन्दी का थोडा बहुत असर भारत पर भी होता है।

५ शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment)

शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ इस प्रकार की बेकारी का इधर कुछ वर्षों मे अधिक प्रसार होने लगा है। विशेषकर शहरी क्षेत्रों के मध्यम वर्गो म यह अधिक व्याप्त है। इसका दोष शिक्षा को न देकर शिक्षितो के दोषपूर्ण दृष्टिकोण को दिया जाना चाहिए। थोडी-सी शिक्षा प्राप्त करते ही व्यक्ति मेहनत के काम से बचना चाहते हैं और शारीरिक श्रम से घृणा करने लगते हैं। शिक्षितो का एक मात्र ध्येय नौकरी करना होता है। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ यदि तकनीकी शिक्षण की व्यापक व्यवस्था की जाय तो इस बेकारी को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है।

६ तकनीकी बेरोजगारी (Technological Unemployment)

इस प्रकार की बेरोजगारी का मुख्य कारण उत्पादन की किसी नयी तकनीक अथवा प्रक्रिया का चलन होता है जोकि प्राचीन प्रक्रिया का स्थान ले लेती है और जिसमे कम सख्या मे श्रमिको की आवश्यकता होती है। यह समस्या विकसित एव विकासशील दोनों ही देशो मे पायी जाती है। कभी-कभी नयी प्रक्रिया अधिक कुशल एव उच्च प्रशिक्षित श्रमिक चाहती है। ऐसी दशा मे विद्यमान श्रमिकों को प्रशिक्षण लेना होता है और जो नही ले सकते उन्हें अन्यत्र काम की तलाश करनी होगी है।

भारत में पिछले दो वर्षों से आर्थिक शिथिलता (Economic Recession) के कारण तकनीकी बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। विशेषत: प्रशिक्षित इन्जीनियरों को काम मिलने में कठिनाई हुई है। किन्तु अक्तूबर १९६८ के बाद से इस स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं विवेकीकरण (Rationalisation) के कारण भी श्रम की माँग में कुछ समय के लिए कमी हो जाती है। उत्तम प्रबन्ध एवं अनुशासन के आधार पर कम श्रमिकों से ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। भारत में इधर कुछ वर्षों से इसकी आशंकाएँ व्याप्त हो रही हैं, किन्तु भारत सरकार की नीति इस विषय में स्पष्ट रह रही है कि विवेकीकरण के कारण श्रमिकों की छँटनी (retrenchment) नहीं की जानी चाहिए। यदि छँटनी आवश्यक ही हो जाय तो वह न्यायपूर्ण ढंग से होनी चाहिए तथा काम से अलग किये गये व्यक्तियों को उचित रोजगार देने की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। सर्वविदित है कि जीवन बीमा निगम द्वारा किये जाने वाले कम्प्यूटराइजेशन (Computerisation) का कर्मचारियों द्वारा विरोध किया जा रहा है यद्यपि निगम की ओर से सदैव यह आश्वासन दिया गया है कि इसके कारण छँटनी नहीं की जायगी और न भविष्य में कर्मचारियों की माँग में कमी होने दी जायगी।

बेरोजगारी के कारण
(Causes of Unemployment)

बेकारी के कारणों का विश्लेषण करते समय ध्यान रखना होगा कि सब देशों में बेकारी समान कारणों से उत्पन्न नहीं होती। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि पूँजीवादी देशों में चक्राकार बेकारी (Cyclical unemployment) अधिक होती है, जो कि मन्दी के चक्र के साथ-साथ बढ़ती जाती है। इसके विपरीत अविकसित अथवा विकासशील देशों में बेकारी के साथ-साथ अर्द्ध-बेकारी एक कठिन समस्या बन जाती है तथा उन देशों की अर्थव्यवस्था में यह समस्या और भी उग्र बनी रहती है। इसका प्रमुख कारण पूँजीगत साधनों का अभाव है जिससे आर्थिक शिथिलता बनी रहती है और श्रम की माँग पूर्णता को नहीं पहुँच पाती। पूर्ण समाजवादी अथवा साम्यवादी दशा में प्रत्येक नागरिक को काम प्रदान करने की गारन्टी राज्य द्वारा दी जाती है, अतः ऐसे देशों का दावा है कि उनके यहाँ बेकारी का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। पूर्ण रोजगार (Full employment) की उपलब्धि रूस की सातवीं आर्थिक योजना की उपलब्धियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। फिर भी यह कहना कठिन है कि इन देशों में उपलब्ध श्रम का पूर्ण उपयोग हो रहा है और सामाजिक दृष्टि से पूर्ण रोजगार की स्थिति में ये देश पहुँच चुके हैं। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, इस समस्या के प्रमुख कारण निम्न हैं :

(१) अल्प-विकास (Under-development)—वैसे तो समस्त आर्थिक समस्याओं का मुख्य कारण अल्प विकास है, किन्तु प्रच्छन्न बेकारी (Disguised

unemployment) के लिए यह प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। उत्पादकता में वृद्धि करने और जनशक्ति का पूर्ण उपयोग करने के लिए आवश्यक पूँजी, प्रबन्ध एवं तकनीकी साधनों का घोर अभाव इसका प्रमुख कारण है। भौतिक साधनों के होते हुए भी भारत में औद्योगीकरण की प्रगति अत्यन्त मन्द रही है। निम्न जीवन-स्तर, वस्तुओं की सीमित माँग एवं उत्पादन में शिथिलता स्वतन्त्रता से पूर्व बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार रहे। स्वतन्त्र भारत में आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत इस दिशा में कुछ प्रगति हुई और विकास के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि की गयी है, फिर भी समस्या में कोई कमी नहीं हुई है।

(२) कृषि की मौसमी प्रकृति (Seasonal Nature of Agriculture)—देश की सत्तर प्रतिशत जनशक्ति कृषि व्यवसाय में नियोजित है जिसकी प्रकृति मौसमी है। फसलों के समय जनशक्ति की माँग में अवश्य वृद्धि हो जाती है, किन्तु वर्ष के शेष भाग में उपलब्ध श्रम आंशिक रूप से बेकार रहता है। इस विषय में अनेक अनुमान लगाये गये हैं और निष्कर्ष निकाला गया है कि वर्ष में औसतन २०० दिन के लिए ही भारतीय किसान के पास काम होता है तथा शेष दिनों में कोई विशेष काम की व्यवस्था नहीं होती। इसके लिए कृषि के आधुनीकरण और पुनर्संगठन की आवश्यकता है।

(३) सहायक धन्धों का अभाव (Dearth of Subsidiary Occupations)—इसके अभाव में अधिकांश जनशक्ति केवल कृषि व्यवसाय में लगी हुई है। भूमि पर जनश्रम का बोझ अधिक है। इतनी जनशक्ति की वहाँ जरूरत नहीं है। यदि इसके अतिरिक्त भाग को वहाँ से हटाकर सहायक उद्योगों में लगा दिया जाय तब भी इससे कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू एवं कुटीर उद्योगों के लिए सुविधाएँ नहीं हैं। जापानी ढाँचे के आधार पर गाँवों में शक्ति परिवहन, तकनीकी सलाह एवं छोटे यन्त्रों आदि की व्यवस्था करके ही ऐसे सहायक धन्धों का विकास किया जा सकता है।

(४) श्रम की गतिहीनता (Immobility of Labour)—भारत में श्रम की व्यावसायिक अथवा भौगोलिक गतिशीलता अन्य देशों की तुलना में कम है। सामाजिक एवं पारिवारिक कारणों से कुछ क्षेत्रों में, जहाँ काम के अवसर अत्यन्त कम हैं, बेरोजगारी अधिक रहती है किन्तु फिर भी लोग निवासस्थान को छोड़कर अथवा परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर अन्यत्र काम खोजना पसन्द नहीं करते। आर्थिक संकट के समय अथवा बहुत अधिक आकर्षण प्राप्त होने पर ही श्रम की गतिशीलता में वृद्धि होती है।

(५) जनसंख्या की समस्याएँ (Problems of Population)—भारत में जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान दर २.५ प्रतिशत प्रतिवर्ष है और १५ वर्ष से कम आयु वर्ग में जनसंख्या का प्रतिशत ४१ है। इस कारण जनशक्ति में प्रति वर्ष बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। विद्यमान बेरोजगार लोगों के लिए काम की व्यवस्था के साथ-साथ

नये उत्पन्न होने वाले श्रमिकों के लिए काम के अवसरों का प्रबन्ध करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। यही कारण है कि पिछली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में प्रत्येक के अन्त में बेरोजगारी का अवशेष (Backlog) बढ़ता ही रहा है और अब चौथी योजना के आरम्भ में यह लगभग १०० लाख हो गया है।

(६) **तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण** (Techonology and Training)—भारत में अनेक व्यक्ति इसलिए भी बेरोजगार रहते हैं कि वे तकनीकी दृष्टि से इतने प्रशिक्षित नहीं हैं कि आधुनिक रिक्त स्थानों की पूर्ति कर सकें। साधारण शारीरिक श्रमिकों की कोई कमी नहीं है किन्तु टैक्नोलोजियनों की मांग अधिक और पूर्ति कम है। इस समस्या के हल के लिए तकनीकी शिक्षा संस्थाओं की व्यापक व्यवस्था आवश्यक है। सीमित पूंजी साधनों के कारण इनका विकास धीरे-धीरे ही किया जा सकता है।

(७) **शिक्षितों का दृष्टिकोण** (Attitude of Educated Persons)—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत में शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना होता है। शिक्षित युवक अपने पारिवारिक धन्धे को नहीं करना चाहते। कृषक परिवारों के सदस्य भी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कृषि में काम करने अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में ही कोई अन्य स्वतन्त्र व्यवसाय सचालित करने के स्थान पर शहरों में नौकरी करना अधिक पसन्द करते हैं। तकनीकी शिक्षा तथा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण के द्वारा शिक्षितों की बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है।

उपचार के उपाय
(Remedial Measures)

बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी भारत में कोई नयी समस्या नहीं है। भारतीय अर्थव्यवस्था में ये व्याधियाँ सदा से ही व्याप्त रही हैं। ग्रामीण उद्योगों के अन्त, विकास की शिथिल गति और जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ इनमें भी वृद्धि होती गयी है। किन्तु कभी भी बेरोजगार अथवा अर्द्ध-बेरोजगारों की सही संख्या ज्ञात करने की दिशा में उचित प्रयत्न नहीं किये गये। बेरोजगार और अर्द्ध-बेरोजगारों की मात्रा का मूल्यांकन केवल कुछ अनुमानों के आधार पर ही किया गया। शहरी क्षेत्रों में रोजगार दफ्तरों (Employment Exchanges) में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या को आधार मानकर शहरी क्षेत्रों के लिए बेरोजगारी की मात्रा का अनुमान लगाया गया, किन्तु यह अनुमान सही नहीं माना जा सकता क्योंकि सभी शहरों में ऐसे कार्यालय नहीं हैं और जहाँ हैं भी वहाँ के सब बेरोजगार व्यक्ति अपना नाम दर्ज नहीं कराते। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी का अनुमान लगाना और भी कठिन हो जाता है, क्योंकि जनसंख्या छोटे-छोटे गाँवों में बिखरी हुई है तथा बेरोजगार व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के बारे में सूचना एकत्रित करने की कोई उचित व्यवस्था नहीं है।

(क) ग्रामीण बेरोजगारी

कृषि तथा कुटीर और लघु उद्योगों में फैली हुई अर्द्ध-बेकारी की मात्रा के बारे में सही अनुमान लगाना बहुत ही कठिन होता है क्योंकि यह समस्या अत्यन्त अदृश्य, अमूर्त एवं जटिल होती है। कृषि में नियोजित अतिरिक्त जनशक्ति के विषय में लगाये गये अनुमान पूर्णतः सही नहीं होते और इन अनुमानों को तब तक विश्वस्त नहीं माना जा सकता जब तक कि अन्य रीतियों से उनकी पूरी जाँच न कर ली जाय। स्वयं नियोजित कृषक परिवारों के सदस्यों की संख्या को देखते हुए उनकी भूमि एवं पूँजी की मात्रा, काय-दिवसों अथवा काय-घण्टों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई परिवार पूर्ण रोजगारी की स्थिति में है अथवा अर्द्ध-रोजगारी की स्थिति में। कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों में लगे हुए व्यक्तियों के विषय में भी इसी आधार पर अनुमान लगाये जा सकते हैं। प्रचलित आय की तुलना में ऐसे परिवारों की आय के आधार पर भी अर्द्ध-बेकारी की व्यापकता एवं सीमा नापी जा सकती है। प्रथम योजना के अन्त तक देश में वैज्ञानिक आधार पर ऐसे अनुमानों को ज्ञात करने की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। द्वितीय कृषि-श्रम जाँच समिति (Second Agricultural Labour Committee) ने २८,५६० कृषक-परिवारों का सेम्पल सर्वेक्षण करके अन्य सूचनाओं के साथ-साथ गाँवों में बेकारी और अर्द्ध-बेकारी के विषय में अनुमान प्रस्तुत किये गये। सन् १९६० में प्रकाशित इसकी रिपोर्ट में समस्त भारत के बारे में कृषि बेकारी की मात्रा का परिमाप करने का प्रयास किया गया जिसके आधार पर योजना आयोग ने भी अपने कार्यक्रम निर्धारित किये। सन् १९६३ में ग्रामीण श्रम जाँच (Rural Labour Enquiry) के अन्तर्गत भी इस दिशा में कुछ प्रयास किये गये किन्तु आपत्कालीन स्थिति के कारण उचित प्रगति न हो सकी। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे (National Sample Survey) के बीसवें दौर (20th Round) में जुलाई १९६४ से जुलाई १९६५ की अवधि के लिए ग्रामीण श्रमिक परिवारों में व्याप्त बेकारी और अर्द्ध-बेकारी के विषय में सूचनाएँ एकत्रित की गयी हैं। जनगणना के समय भी ऐसी सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है और उनके आधार पर इनकी व्यापकता और मात्रा के बारे में अनुमान लगाये जाते हैं। हाल ही में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार सन् १९७० के अन्त में शिक्षित बेरोजगारी गाँवों में भी बढ़ रही है।

(ख) शहरी बेरोजगारी (Urban Unemployment)

नागरिक क्षेत्रों में व्याप्त बेकारी का अनुमान रोजगार दफ्तरों (Employment Exchanges) में पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या के आधार पर लगाया जाता है। शहरों में बेकार सभी व्यक्ति इन दफ्तरों में अपना नाम दर्ज नहीं करवाते और पंजीकृत नामों में बहुत से ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो काम पर तो लगे होते हैं किन्तु फिर भी अधिक अच्छे रोजगार को प्राप्त करने के उद्देश्य से अपना नाम दर्ज करवा देते हैं। अतः ऐसे बेकारों की रोजगार या कामदिलाऊ दफ्तरों में पंजीकृत संख्या

व्याप्त बेकारी या अर्द्ध-बेकारी की मात्रा की स्थिति का सही अनुमान नहीं प्रस्तुत करती बल्कि इस बारे में प्रचलित प्रवृत्तियों का द्योतक मात्र है। इन प्रवृत्तियों के आधार पर सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि शहरी क्षेत्रों में बेकार व्यक्तियों का केवल एक चौथाई भाग ही काम दिलाऊ दफ्तरों में अपना नाम दर्ज करवाता है। यदि इस सिद्धान्त में सत्यता है तो पंजीकृत संख्या में चार का गुणा करके अनुमानित बेकारी की मात्रा ज्ञात की जा सकती है।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा (National Employment Service) भारत में सन् १९४५ में आरम्भ की गयी। इस सेवा के अन्तर्गत भारत के नगरों में रोजगार दफ्तर स्थापित किये गये हैं और बेकार व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त करने में सहायता करने के लिए इन दफ्तरों में प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी है। भारत में इस समय ३७६ रोजगार दफ्तर कार्यशील हैं और इनके अतिरिक्त ३६ विश्वविद्यालयों में रोजगार ब्यूरो (Employment Bureau) कार्य कर रहे हैं। सन् १९५६ में इन दफ्तरों का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को सौंप दिया गया। केन्द्रीय सरकार अब इनके विषय में नीति निर्धारण एवं समन्वय का ही कार्य करती है जिससे बेकारी निवारण के लिए दी जाने वाली सहायता के स्तर और ढंग में समानता लायी जा सके।

पिछले दस वर्षों में रोजगार दफ्तरों की संख्या में २०१ प्रतिशत, बेकारों की पंजीकृत संख्या में २५० प्रतिशत, तथा रोजगार दफ्तरों के माध्यम से रोजगार प्राप्त करने वालों की संख्या में लगभग ३०० प्रतिशत की वृद्धि पिछले दस वर्षों में की गयी है। सन् १९६० में भारत सरकार द्वारा रोजगार विनिमय (रिक्त स्थानों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम[1] पास करके ऐसे मालिकों के लिए, जिनकी संख्या २५ या इससे अधिक व्यक्ति हो, रोजगार कार्यालयों को रिक्त स्थानों की सूचना देना अनिवार्य बना दिया गया। इसके बाद से रोजगार सेवा का उपयोग करने वाले मालिकों एवं रिक्त स्थानों की अधिसूचनाओं की संख्याओं में निरन्तर सन्तोषजनक प्रगति हुई है।

उपर्युक्त रोजगार सेवा के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाएँ आरम्भ की गयी हैं, जैसे रोजगार की माँग के बारे में सूचनाओं का एकत्रीकरण, व्यावसायिक अनुसन्धान एवं विश्लेषण, प्रशिक्षण सुविधाओं के विषय में प्रचार, पुस्तिकाओं का प्रकाशन, रोजगार के लिए व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन एवं परामर्श आदि। सन् १९५८ में केन्द्रीय रोजगार समिति (Central Committee on Employment) का गठन किया गया जो भारत सरकार को रोजगार सेवा, रोजगार के अवसरों के सृजन एवं इनसे सम्बद्ध समस्याओं के विषय में सलाह देती है। रोजगार सेवाओं के अन्तर्गत

1 *The Employment Exchanges* (Compulsory Notification of Vacancies) Act, 1960

समस्त नागरिकों के लिए पूर्ण रोजगार (full employment) की स्थिति प्राप्त करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। ऐसी स्थिति को एक आदर्श मानकर इसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि बेकारी और अर्द्ध-बेकारी से ग्रसित समाज एक ऐसे सुषुप्त ज्वालामुखी के समान है जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता है। प्रत्येक नागरिक को उचित जीवन प्रदान करना समाज का मूलभूत दायित्व होना चाहिए। इसी आदर्श को भारतीय संविधान में इन शब्दों में स्थापित किया गया है : "राज्य अपनी नीति को इस प्रकार निर्देशित करेगा जिससे कि समस्त पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए जीविका के पर्याप्त साधन, समान कार्य के लिए समान वेतन तथा आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमाओं के भीतर प्रत्येक के लिए कार्य करने और शिक्षा प्राप्त करने तथा बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी एवं अयोग्यता की दशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार की सुरक्षा की प्रभावपूर्ण व्यवस्था हो सके।"[1] यह आदर्श राज्य द्वारा पालन किये जाने वाले निर्देशक सिद्धान्तों के अधीन स्वीकार किया गया है, और यद्यपि यह किसी न्यायालय में निष्पादन योग्य नहीं है फिर भी यथासम्भव एवं यथाशक्ति राज्य इनका पालन कर रहा है। इसी भावना से प्रेरित होकर पंचवर्षीय योजनाओं के मूल उद्देश्यों में बेकारी को समाप्त करने और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

प्रथम एवं द्वितीय योजना

प्रथम योजना में भौतिक साधनों के साथ-साथ मानवीय साधनों के प्रभावपूर्ण उपयोग को योजना के उद्देश्यों में स्थान दिया गया। प्रथम योजना के आरम्भ में भारत में समस्त बेकारों की संख्या का अनुमान लगभग ४० लाख का था, किन्तु सन् १९५३ में यह अनुभव किया गया कि बेकारों की संख्या अधिक बढ़ रही है क्योंकि रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत बेकारों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इसे रोकने के लिए योजना-व्यय में वृद्धि करके १८० करोड़ रुपये की पृथक् व्यवस्था बेरोजगारी को रोकने के लिए की गयी। योजना-काल में लगभग पचास-पचपन लाख व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान किये गये, किन्तु योजना की अवधि में बेकारों की संख्या में इतनी तीव्र वृद्धि हुई कि योजना के अन्त में फिर भी बेकारों की संख्या ५३ लाख थी, जिसमें से ग्रामीण क्षेत्रों में २८ लाख और शहरी क्षेत्रों में २५ लाख बेकार थे। इस प्रकार द्वितीय योजना ५३ लाख बेकारों की अविशिष्ट संख्या (Backlog) से आरम्भ हुई। योजना की अवधि में रोजगार चाहने वाले नये लोगों की संख्या में २० लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से वृद्धि का अनुमान लगाया गया अर्थात् ५३ लाख की अविशिष्ट संख्या के अलावा १०० लाख नये व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था योजना काल में की जानी चाहिए थी। इस प्रकार कुल मिलाकर १५३

---

1 Directive Principles of State Policy as annunciated in the Constitution of India.

लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार की माँग की जायगी। इसमे द्वितीय योजना मे ८० लाख व्यक्तियो को रोजगार के अवसर प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया जो इस प्रकार था

द्वितीय योजना में अतिरिक्त रोजगार[1]

(संख्या लाखो मे)

१ निर्माण	२१ ००
२ सिंचाई एव शक्ति	० ५१
३ रेल यातायात	२ ५३
४ अन्य परिवहन एव सचार	१ ८०
५ उद्योग एव खनिज	७ ५०
६ कुटीर एव लघु उद्योग	४ ५०
७ वन, मत्स्य एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा	४ १३
८ शिक्षा	३ १०
९ स्वास्थ्य	१ १६
१० अन्य सामाजिक सेवाएँ	१ ४२
११ राजकीय सेवाएँ	४ ३४
१२ व्यापार, वाणिज्य एव अन्य (उपर्युक्त संख्या के ५२ प्रतिशत अनुमानित)	२८ ०१
योग	८० ००

इस प्रकार अस्सी लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने के लक्ष्य को पूरा करने के बाद भी यह निश्चित था कि द्वितीय योजना के अन्त मे ७३ लाख व्यक्तियो के लिए रोजगार का प्रबन्ध नहीं किया जा सकेगा, किन्तु वस्तुत योजना के अन्त मे बेकारो की संख्या इससे कही अधिक थी। जहाँ तक शिक्षित बेकारो का प्रश्न है, योजना मे केवल दस लाख एसे व्यक्तियो को ही काम पर लगाया जा सका जबकि इतने ही व्यक्ति काम न पा सके। इसी प्रकार अर्द्ध-बेकार (Under-employed) लोगो की संख्या भी डेढ करोड के लगभग अनुमानित की गयी। योजना की अवधि मे ६५ लाख व्यक्तियो को गैर कृषि क्षेत्रो मे तथा १५ लाख व्यक्तियो को कृषि-क्षेत्र मे अतिरिक्त रोजगार के अवसर प्रदान किये गये।

तृतीय योजना

तृतीय योजना के आरम्भ मे ९० लाख व्यक्तियो के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया। इनके अतिरिक्त १५० लाख से १८० लाख व्यक्ति अर्द्ध-रोजगारी

1 *Second Five Year Plan*, p 115

(Under-employment) की स्थिति में थे। इस प्रकार पूर्व योजनाओं की अपेक्षा तृतीय योजना के आरम्भ में रोजगार की दृष्टि से उत्तम स्थिति नहीं थी, क्योंकि पिछली दोनों योजनाओं में निरन्तर बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हुई थी।

रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि करना और उपलब्ध श्रम शक्ति का यथासम्भव अधिकतम उपयोग करना तीसरी योजना के अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रखा गया। योजना के आरम्भ में ९० लाख बेरोजगारों की अवशिष्ट संख्या (backlog) के अतिरिक्त यह अनुमान लगाया गया कि तीसरी योजना में ३४ लाख व्यक्तियों द्वारा प्रति वर्ष रोजगार की अतिरिक्त माँग प्रस्तुत की जायेगी अर्थात् पाँच वर्षों में १७० लाख नये श्रमिकों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार योजना में २६० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का प्रबन्ध किया जाना चाहिए था। इसके विपरीत, योजना में केवल १४० ३ लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार के अवसर प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। इसमें से ३५ लाख अवसर कृषि क्षेत्र में और शेष १०५ ३ लाख अवसर गैर-कृषि क्षेत्र में प्रदान किये जाने थे जो निम्न प्रकार थे

तृतीय योजना में गैर-कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार[1]

क्षेत्र	संख्या (लाखों में)
१ निर्माण	२३ ००
२ सिंचाई एवं शक्ति	१ ००
३ रेल परिवहन	१ ४०
४ अन्य परिवहन एवं संचार	८ ८०
५ उद्योग एवं खनिज	७ ५०
६ लघु उद्योग	९ ००
७ वन एवं मत्स्य उद्योग आदि	७ २०
८ शिक्षा	५ ९०
९ स्वास्थ्य	१ ४०
१० अन्य सेवाएँ	० ८०
११ राजकीय सेवा	१ ५०
	६७ ५०
१२ व्यापार, वाणिज्य एवं अन्य (उपर्युक्त संख्या के ५६ प्रतिशत के आधार पर अनुमानित)	३७ ८०
योग	१०५ ३०

हाल के अनुमानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि तृतीय

[1] *Third Five Year Plan*—Summary, p 50.

योजना की अवधि में उपर्युक्त लक्ष्य की तुलना में केवल ९५ लाख व्यक्तियों को ही गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार प्रदान किया जा सका। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तृतीय योजना के अन्त में बेरोजगारी की स्थिति और भी सकटपूर्ण बन गयी।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना एव रोजगार

इस योजना में विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत रोजगार प्रदान किया जायेगा। चतुर्थ योजनाओ में सडक, लघु सिंचाई, सरक्षण, सहकारिता, सिंचाई, बाढ नियन्त्रण, ग्रामीण विद्युतीकरण लघु उद्योग तथा अन्य विकास कार्यक्रमो में अतिरिक्त रोजगार की व्यवस्था की जायेगी। कृषि के तीव्र विकास से अधिक व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो सकेगा।

रोजगार के क्षेत्र में चतुर्थ योजना में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक विशेष कार्यक्रम रखा गया है। ग्रामीण योजना कार्यक्रम (Rural works programme) के अन्तर्गत ९५ करोड रुपये व्यय किये जाने की व्यवस्था की गयी है जिससे गाँवो के १५० लाख व्यक्तियों को शिथिल मौसम में वर्ष में कम से कम १०० दिन तक अतिरिक्त काम प्राप्त हो सके। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अर्द्ध-रोजगारी (Under-employment) की स्थिति म सुधार करना है। इसमें ऐसे क्षेत्रो को प्राथमिकता दी जायेगी जहाँ बेरोजगारी एव अर्द्ध-बेरोजगारी अधिक रहती है तथा इन्हे विभिन्न स्तरो पर विकास कार्यक्रमो से जोड दिया जायेगा। सिंचाई, सडक, भूमि सुधार आदि कार्यक्रमो के द्वारा श्रम सहकारिता को प्रोत्साहन दिया जायेगा। ग्रामीण युवक-युवतियों को नवीन व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए गाँवो में प्रशिक्षण केन्द्रो की भी स्थापना की जायेगी। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रो में बेरोजगारी को रोकने के लिए छोटे उद्योगो का पर्याप्त विकास किया जायेगा और नये श्रमिको को प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की सख्या में वृद्धि की जायेगी।

बेरोजगारी का बीमा
(Unemployment Insurance)

सयुक्त राज्य अमरीका, इगलैण्ड, जर्मनी एव जापान आदि विकसित देशो में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत बेकारी के बीमे की व्यवस्था एव सुविधा नागरिकों को प्राप्त है। क्या भारत ऐसी किसी योजना को मूर्तरूप देने की कल्पना कर सकता है। प्रश्न अत्यन्त रोचक है तथा समयानुकूल है। भारत में अब तक बेकारो को सुरक्षा प्रदान करने के लिए कोई योजना नहीं है। अब चौथी योजना में ऐसी एक योजना लागू करने के प्रस्ताव पर प्रारम्भिक विचार-विमर्श किया जा रहा है। अभी भारत में औद्योगिक सघर्ष (सशोधन) अधिनियम के अन्तर्गत कारखानों के मालिकों को काम से अलग किये हुए श्रमिको को कुछ सीमा तक 'ले ऑफ' (lay off) के लिए आशिक क्षतिपूर्ति मिलती है, किन्तु यह व्यवस्था अपने उद्देश्यों में इतनी सीमित है कि इससे बेरोजगारी से कोई विशेष सुरक्षा प्राप्त नहीं होती अत अब समय आ गया है कि भारत को बेरोजगारी के बीमे की कोई व्यावहारिक योजना

को क्रियान्वित करना ही होगा। यह स्पष्ट ही है कि आरम्भ में ऐसे बीमे की कोई भी योजना पूर्ण तथा व्यापक नहीं होगी क्योंकि भारत में बेकारों की संख्या अधिक है और साधन सीमित हैं।

अन्त में, यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि निश्चित रूप से बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी विषम सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ हैं और राष्ट्रीय हित में इन समस्याओं का निराकरण किया जाना अत्यन्त अनिवार्य है। साथ ही यह कहना भी उचित होगा कि बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था के सम्भावित भावी विकास की द्योतक हैं। हमारी अतिरिक्त जन-शक्ति भविष्य में अपार बचत एवं भारी पूँजी विनियोग की क्षमता रखती है और एक बार गतिशील होने पर यह देश के आर्थिक विकास के लिए सहायक भी हो सकती है।

प्रश्न

१ भारत में शिक्षित बेकारी (Educated Unemployment) के क्या कारण हैं? इसको दूर करने के उपाय बतलाइए।

२ भारत में बेकारी के क्या कारण हैं? सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में इस समस्या को सुलझाने के क्या-क्या प्रयत्न किये हैं।

३ "भारत में बेरोजगारी समस्या" विषय पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

४ बेकारी की समस्या के समाधान के लिए सरकार ने क्या प्रयत्न किये हैं? संक्षेप में लिखिए। (प्रथम वर्ष वाणिज्य-पूरक परीक्षा, १६६६)

अध्याय २३

उद्योगों का स्थानीयकरण
(LOCALISATION OF INDUSTRIES)

औद्योगिक विकास के लिए अनेक सुविधाएँ आवश्यक हैं। देश के जिन भागों में विकास की अनुकूल दशाएँ उपलब्ध होती हैं वहाँ उद्योगों की ओर इकाइयाँ स्थापित होने लगती हैं। इन अनुकूल दशाओं के अन्तर्गत कच्चे माल की प्राप्ति, शक्ति के साधनों की पर्याप्त उपलब्धि, यातायात की सुविधाएँ तथा कुछ अन्य दशाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इसके कारण किसी उद्योग विशेष की अनेक इकाइयाँ अनुकूलतम स्थान पर केन्द्रित होने लगती है। भारत में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हो गये हैं जैसे बम्बई तथा अहमदाबाद में सूती वस्त्र मिलें केन्द्रित हैं। इसी प्रकार कलकत्ता के आस-पास जूट मिलें केन्द्रित हैं। किसी स्थान विशेष पर एक ही प्रकार की ओर औद्योगिक इकाइयाँ केन्द्रित होने को उद्योगों का स्थानीयकरण कहा जाता है।

उद्योगों के स्थानीयकरण के सम्बन्ध में एलफ्रेड वेबर (Alfred Weber) का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। वेबर के अनुसार उद्योगों के स्थानीयकरण के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम, क्षेत्रीय कारण (Regional Factors) तथा द्वितीय, गौण कारण है। क्षेत्रीय कारणों के अन्तर्गत वेबर ने 'लागत' को महत्त्वपूर्ण बतलाया है। अपने सिद्धान्त में उन्होंने 'यातायात की लागत' तथा 'श्रम की लागत' को स्थानीयकरण का महत्त्वपूर्ण कारण माना है। उद्योगों को जिस कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है उस पर यदि कम परिवहन का व्यय होता है और निर्मित माल को विक्रय स्थान तक पहुँचाने पर कम लागत पड़ती है वहाँ उद्योगों का स्थानीयकरण होने लगता है। क्षेत्रीय कारणों में श्रम लागत भी महत्त्वपूर्ण है। जिन भागों में श्रम लागत कम है वहाँ पर उद्योग स्थापित हो सकते हैं क्योंकि परिवहन की लागत की पूर्ति कम लागत से हो जाती है। जिन क्षेत्रों में दोनों प्रकार की लागतें कम होती हैं वहाँ निःसन्देह अनेक इकाइयाँ स्थापित हो जाती हैं।

वेबर ने द्वितीय प्रकार के कारणों को गौण कारण बतलाया है। इनको पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम कारण उद्योगों के केन्द्रीयकरण से प्राप्त

होने वाले लाभ तथा द्वितीय विकेन्द्रीयकरण से प्राप्त लाभ हैं। इन लाभों से भी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित होने लगती हैं। उद्योगों के केन्द्रीयकरण होने से बाहर की मितव्ययताएँ (External Economies) उपलब्ध हो सकती हैं। इसके विपरीत उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण से भी लाभ प्राप्त हो सकते हैं। यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरकार अधिक सुविधायें प्रदान करती है तो उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण आरम्भ होने लगता है। वेबर के इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर स्थानीयकरण के कारणों को नीचे स्पष्ट किया गया है

स्थानीयकरण के कारण

उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए कुछ अनुकूल दशाएँ होती हैं जिनके आधार पर किसी उद्योग विशेष की अनेक इकाइयाँ एक स्थान विशेष पर केन्द्रित हो जाती हैं। ये दशाएँ औद्योगिक विकास को अधिक प्रभावित करती हैं। किसी एक कारण विशेष से स्थानीयकरण अधिक प्रभावित हो यह आवश्यक नहीं है। नीचे दिये गये सभी कारणों का सम्मिलित प्रभाव पड़ सकता है या कुछ कारणों का विशेष प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन के लंकाशायर क्षेत्र को मिश्र, संयुक्तराज्य, आर्मेनिया आदि से कपास मँगवानी पड़ती है फिर वहाँ भी स्थानीयकरण है क्योंकि अन्य दशाएँ उद्योग के अधिक अनुकूल हैं

(१) कच्चे माल की सुलभता—वस्तु निर्माण उद्योग में कच्चे माल की सुलभता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिन भागों में कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धि होती है वहाँ पर प्रायः उस उद्योग की अनेक इकाइयाँ स्थापित हो जाती हैं। उदाहरण स्वरूप, कलकत्ता के आस-पास जूट मिलों की स्थापना कच्चे माल की सुलभता के कारण हुई। यद्यपि आजकल यातायात के पर्याप्त साधनों से कच्चे माल को दूर से मँगवाया जा सकता है फिर भी अनेक उद्योग कच्चे माल की उपलब्धि के स्थान के निकट स्थापित होते हैं। कुछ उद्योग इस प्रकार के भी हैं जिनके कच्चे माल को काफी दूर ले जाने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं उनका विकास कच्चे माल के निकट होता है। उदाहरण के लिए, ऐसे उद्योग जिनमें वजन में भारी कच्चा माल उपयुक्त होता है प्रायः कच्चे माल के निकट ही स्थानीकृत होते हैं जैसे सीमेन्ट, लोहा और इस्पात, अन्य धातु उद्योग आदि।

(२) शक्ति के पर्याप्त साधन—औद्योगिक विकास में शक्ति के साधनों की पर्याप्तता उल्लेखनीय है। बड़े पैमाने पर उद्योगों को चलाने के लिए बड़ी मात्रा में चालक शक्ति की आवश्यकता होती है। कुछ उद्योगों में कोयला शक्ति आवश्यक है। इनके विकास के लिए यह आवश्यक है कि कोयला क्षेत्र के निकट ही इन उद्योगों की स्थापना की जाये। कोयला भारी पदार्थ होने के कारण दूर तक ले जाने में लागत अधिक पड़ती है। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश औद्योगिक क्षेत्र कोयला प्रदेशों के निकट स्थित हैं। आजकल जल-विद्युत का प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण है। इस शक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में यातायात के साधनों की आवश्यकता

नहीं पड़ती अतः दूर-दूर तक उद्योगों का विकास किया जा सकता है। किन्तु यह आवश्यक है कि जिस स्थान पर उद्योग स्थापित हों, वहाँ पर्याप्त मात्रा में निरन्तर जल विद्युत उपलब्ध होती रहे। आजकल पेट्रोल, डीजल तेल एवं अणु बिजली के सहारे भी उद्योग संचालित होते हैं। अतः इनकी उपलब्धि और सुविधा भी उद्योगों के स्थानीयकरण को प्रभावित करती है।

(३) यातायात की सुविधाएं—कच्चे माल को कारखाने तक पहुँचाने के लिए तथा निर्मित माल को बाजार तक पहुँचाने के लिए यातायात के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। आजकल उत्पादन की स्थानीय माँग न होकर राष्ट्रव्यापी और विश्वव्यापी है अतः यातायात की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। वृहत उद्योगों में कच्चे माल के अतिरिक्त मशीनों श्रमिकों तथा तैयार माल के लिए परिवहन व्यवस्था की महत्वपूर्ण समस्या है। अतः कारखानों की स्थापना से पूर्व यातायात की सुविधाएँ तथा उनके भावी विस्तार को ध्यान में रखा जाता है। भारी एवं आधारभूत उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए रेल परिवहन की सुविधा आवश्यक है। इसके साथ यदि जल परिवहन तथा अन्य वैकल्पिक साधन प्राप्त हों तो अति उत्तम होगा।

(४) श्रम शक्ति की उपलब्धि—श्रम उत्पादन का एक आवश्यक साधन है। उत्पादन कार्यों में कुशल श्रम की आवश्यकता है। यद्यपि आजकल मशीनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है फिर भी श्रम महत्वपूर्ण साधन है तथा रहेगा। श्रम शक्ति सस्ती तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए। आजकल कुशल श्रमिकों की विशेष आवश्यकता है। अतः जिन भागों में पर्याप्त मात्रा में कुशल व सस्ते श्रमिक उपलब्ध हों वहाँ उद्योगों की स्थापना हो जाती है। भारत में उद्योग प्रायः उन भागों में अधिक विकसित हुए हैं जहाँ स्थानीय रूप से अथवा अन्य राज्यों से आकर श्रम सुविधाएँ सुलभ हो गयी हैं, असम के चाय उद्योग तथा कलकत्ता के आस-पास बिहार और उत्तर प्रदेश से पर्याप्त संख्या में श्रमिक कारखानों में लगे हुए हैं। इन राज्यों की अधिक जनसंख्या के कारण सस्ती श्रम शक्ति उपलब्ध हो जाती है।

(५) पर्याप्त पूँजी व साख की उपलब्धि—वृहत उद्योगों की स्थापना के लिए पूँजी तथा साख अधिक मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि देश के जिन भागों में पूँजी उपलब्ध है वहीं पर उद्योगों की स्थापना हो। पूँजी उत्पादन का सबसे अधिक गतिशील साधन है अतः इसे एक भाग से दूसरे भाग तक पहुँचाया जा सकता है। किन्तु प्रश्न इसकी उपलब्धि का है। अगर देश में पर्याप्त पूँजी है तो औद्योगिक विकास बिना अधिक कठिनाई से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिन भागों में बैंकिंग व्यवस्था तथा विनियोग सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों वहाँ उद्योगों का स्थानीयकरण हो जाता है। भारत में बम्बई और कलकत्ता इसके उदाहरण हैं जहाँ स्टाक एक्सचेन्ज एवं बैंकिंग की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

(६) खपत के क्षेत्रों की निकटता—उद्योगो मे वृहत मात्रा मे वस्तु निर्माण होता है जो कि बाजारो मे प्रस्तुत किया जाता है। अत वस्तु के बाजार की निकटता अति आवश्यक है। कुछ निर्मित वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो अधिक दूर ले जाने पर टूट-फूट जाती हैं तथा कुछ वस्तुएँ अधिक भारी होती हैं अत बाजार का निकट होना परमावश्यक है। खपत के क्षेत्र अधिक जनसख्या वाले भागों मे पाये जाते हैं अत उपभोक्ताओ के निकट ही उद्योगो की स्थापना होती है। किन्तु यह सभी उद्योगो के लिए आवश्यक नहीं है कि अधिक इकाइयाँ वहीं स्थापित होंगी जहाँ खपत के क्षेत्र निकट होंगे। वस्तुत बाजार की निकटता के साथ-साथ कच्चे माल एव परिवहन की सुविधा भी स्थानीयकरण मे पर्याप्त महत्त्व रखती है अत उद्योग का स्थानीयकरण यथासम्भव उस बिन्दु पर होगा जिसकी स्थिति इन तीनों सुविधाओं के सन्दर्भ म अनुकूलतम हो।

(७) अनुकूल जलवायु—प्राकृतिक साधनो मे अनुकूल जलवायु महत्त्वपूर्ण है। कुछ विशिष्ट उद्योगो के लिए जलवायु का अनुकूल होना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप, सूती वस्त्र उद्योग क लिए नम जलवायु आवश्यक है। शुष्क प्रदेशों मे यह उद्योग नहीं पनप सकता। यद्यपि आजकल कृत्रिम तरीको से अनुकूल जलवायु बनाया जाता है किन्तु वह अधिक खर्चीला होता है। भारत म बम्बई तथा अहमदाबाद मे सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण का प्रमुख कारण वहाँ का नम जलवायु है। नम जलवायु महीन धागे की कताई और वस्त्र की बुनाई मे सहायक होता है। इसी प्रकार अति शीतल अथवा अति उष्ण जलवायु भी औद्योगिक कुशलता पर विपरीत प्रभाव डालता है।

(८) सहायक उद्योगों की स्थापना—उद्योगो के विकास के साथ-साथ सहायक उद्योगो का भी विकास होने लगता है। उद्योगो के लिए अन्य कई आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति के लिए अनेक छोटे-मोटे उद्योग स्थापित होने लगते हैं। इस प्रकार मुख्य उद्योगो के साथ-साथ सहायक उद्योगों का भी स्थानीयकरण हो जाता है। उदाहरण के लिए, इस्पात के कारखानो के निकट कोक निर्माण, ताप निरोधक ईंटो के निर्माण तथा मशीन औजार निर्माण के अनेक कारखाने खुल जाते हैं।

(९) अन्य—अन्य सुविधाओं मे सरकारी नीति विशेष महत्त्वपूर्ण है। सरकारें कुछ स्थानो पर औद्योगिक विकास की अनेक सुविधाएँ प्रदान कर रही हैं। इन सुविधाओं के कारण भी उद्योगो का स्थानीयकरण आरम्भ हो जाता है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त जल सुविधाएँ तथा सस्ती भूमि आवश्यक है। उद्योगो की स्थापना के लिए काफी भूमि भी चाहिए जिसमे बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किये जा सकें। कुछ उद्योगो के लिए पर्याप्त जल आवश्यक है जैसे जूट उद्योग। यह उद्योग साधारणत नदियों अथवा झीलों के किनारो पर स्थापित होते हैं।

उपर्युक्त कारणों से उद्योगों का स्थानीयकरण होता है। कुछ स्थान किसी उद्योग विशेष के लिए विख्यात हो जाते हैं अत वहाँ उत्तरोत्तर अधिक कारखाने

खोले जाते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उद्योगों की स्थापना की जाती है। आजकल सन्तुलित आर्थिक विकास की दृष्टि से उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है। इसके लिए राज्य सरकारें विशेष सुविधाएँ प्रदान कर रही हैं।

उद्योगों के स्थानीयकरण से लाभ

उद्योगों के स्थानीयकरण से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं :

(१) उद्योगों के स्थानीयकरण होने से अनेक प्रकार के अनुसन्धान कार्य इन क्षेत्रों में चालू हो जाते हैं। इन खोजों का लाभ सभी उद्योगों को होता है। देश का आर्थिक विकास अधिक तेज गति से होता है। सामूहिक प्रयत्नों से ये अनुसन्धान कार्य काफी सरल हो जाते हैं।

(२) स्थानीयकरण का द्वितीय लाभ बाह्य मितव्ययिता है। एक ही प्रकार के अनेक उद्योग होने से बाह्य मितव्ययिता के लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इनको सामूहिक तकनीकी सहायता सम्भव हो सकती है। सामूहिक रूप में प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था की जा सकती है जिससे श्रम की उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है तथा अच्छे प्रशिक्षित प्रबन्ध अधिकारी मिल जाते हैं।

(३) स्थानीयकरण के कारण वस्तु विशेष की ख्याति अपने आप हो जाती है। किसी विशेष औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादित वस्तु का बाजार उस क्षेत्र की प्रसिद्धि पर निर्भर करता है। प्रसिद्धि के कारण बाजार में अधिक वस्तुएँ बिकती हैं। उदाहरण के लिए, कानपुर के जूते स्थान की प्रसिद्धि के कारण प्रयोग में लाये जाते हैं।

(४) उद्योगों के स्थानीयकरण के कारण सम्बन्धित और पूरक तथा सहायक उद्योग स्थापित हो जाते हैं। चीनी उद्योग के निकट अन्य उद्योग पनप जाते हैं क्योंकि गन्ने का बचा हुआ भाग कुछ छोटे उद्योगों के लिए कच्चा माल होता है और चीनी मिलों के पास ये कारखाने स्थापित होने लगते हैं। कुछ सहायक उद्योग, किसी उद्योग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर स्थापित होने लगते हैं।

(५) उद्योगों के स्थानीयकरण से श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि हो जाती है। सामूहिक सहयोग तथा प्रशिक्षण कार्यों से श्रमिक कुशल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक मात्रा में श्रमिक लगातार एक ही प्रकार का कार्य करते हैं, अतः कुशल हो जाते हैं। कुशलता की वृद्धि से उत्पादकता में वृद्धि होती है जिससे आर्थिक विकास तेज गति से होता है।

(६) उद्योगों के स्थानीयकरण से देश में तेज गति से औद्योगीकरण होता है। औद्योगिक उत्पादन बढ़ता है तथा कम लागत में वस्तुएँ उत्पादित होती हैं। स्थानीयकरण के कारण प्रतिस्पर्द्धा होती है जिससे उत्पादन लागत कम करने के प्रयास किये जाते हैं। इससे कम लागत पर उत्पादन होता है। अतः उपभोक्ताओं को सस्ती दर पर वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

उद्योगों के केन्द्रीयकरण से हानियाँ

एक ही नगर अथवा प्रदेश में बहुत अधिक संख्या में औद्योगिक इकाइयों का स्थानीयकरण औद्योगिक केन्द्रीयकरण को जन्म देता है। ऐसा केन्द्रीयकरण एक निर्धारित सीमा तक ही हो सकता है जिसे हम अनुकूलतम सीमा (optimum point) कह सकते हैं। इस सीमा के बाद उद्योगों में विकेन्द्रीकरण (Dispersion) की प्रवृत्ति दिखलायी देती है क्योंकि अत्यधिक केन्द्रीयकरण उन लाभों को समाप्त अथवा कम कर देता है जो पहले उस स्थान को प्राप्त थे। उदाहरण के लिए, कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद में उद्योगों का अत्यधिक केन्द्रीयकरण है किन्तु अब भूमि श्रमिकों के संगठन आदि की कठिनाई के कारण वहाँ नये कारखानों की स्थापना कम हो गयी है। अब कारखाने इन स्थानों से दूर ऐसे स्थानों पर स्थापित हो रहे हैं जहाँ स्थानीयकरण की अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

उद्योगों के प्रति केन्द्रीयकरण से निम्नलिखित हानियाँ होती हैं

(१) उद्योगों के केन्द्रीयकरण से देश के विभिन्न भागों में सन्तुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाता। कुछ क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो जाते हैं, जबकि अन्य क्षेत्र काफी पिछड़े रह जाते हैं। भारत जैसे देश में सन्तुलित विकास का बहुत महत्व है। इस दृष्टि से आजकल देश में उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है।

(२) केन्द्रीयकरण के कारण औद्योगिक क्षेत्रों में वातावरण अशुद्ध हो जाता है। जिसका प्रभाव श्रमिकों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। चारों तरफ भीड़ होने के कारण गन्दगी अधिक हो जाती है। वातावरण में चारों तरफ धुंआ फैला रहता है। यह धुंआ अनेक प्रकार की बीमारियों को जन्म देता है जैसे फेफड़े और आँखों की बीमारियाँ।

(३) केन्द्रीयकरण से प्रतिस्पर्धा अधिक हो जाती है जिससे छोटे उद्योग तथा जिनकी उत्पादन लागत अधिक है उन्हें कारखाने बन्द करने पड़ते हैं। इससे सामाजिक अपव्यय बढ़ता है।

(४) केन्द्रीयकरण से कुछ औद्योगिक संगठन भी स्थापित हो जाते हैं और वस्तु विशेष की पूर्ति पर एकाधिकार कर लिया जाता है जिससे उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य देना पड़ता है।

(५) अनेक औद्योगिक इकाइयाँ एक जगह स्थापित होने के कारण श्रमिक संघ अधिक सक्रिय हो जाते हैं और हड़तालों की संख्या बढ़ जाती है जिससे उत्पादन घटता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्थानीयकरण एवं केन्द्रीयकरण औद्योगिक विकास का एक प्रमुख अंग है। आजकल यह एक समस्या के रूप में है। भारत में दुर्भाग्यवश उद्योगों का स्थानीयकरण कुछ स्थानों पर अधिक हो गया है जैसे बिहार, महाराष्ट्र, बंगाल आदि। इससे देश के औद्योगीकरण में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयी हैं। कुछ अन्य क्षेत्र हैं जहाँ पर जनसंख्या अधिक है किन्तु उद्योगों का

पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में आजकल औद्योगीकरण के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इन प्रयत्नों से क्षेत्रीय सन्तुलन स्थापित किया जा रहा है।

प्रश्न

१ उद्योगों के स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं। इसके क्या कारण हैं?

२ भारत में उद्योगों के स्थानीयकरण से लाभ तथा हानियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

३ भारत के वर्तमान औद्योगीकरण में स्थानीयकरण का क्या महत्त्व है? इसके लाभ तथा हानियों का वर्णन कीजिए।

४ उद्योगों के स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? स्थानीयकरण के क्या कारण होते हैं? भारत के किन्हीं दो बड़े उद्योगों के स्थानीयकरण का औचित्य सिद्ध कीजिए। (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९७१)

अध्याय २४

लोहा एवं इस्पात उद्योग

(IRON AND STEEL INDUSTRY)

लोहा एव इस्पात उद्योग आर्थिक विकास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योग है। यह आधारभूत उद्योग है जिस पर अन्य सभी उद्योग आधारित होते हैं। औद्योगिक विकास के लिए मशीनो तथा बड़े-बड़े यन्त्रो की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति इसी उद्योग द्वारा की जाती है। यातायान के साधनो मे लोहा प्रयोग किया जाता है। अत यह उद्योग औद्योगीकरण की आधारशिला है। भारत मे इस उद्योग का पर्याप्त विकास किया जा सकता है। इसके विकास के लिए अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इस उद्योग के लिए कच्चे लोहे, चूने, पत्थर, मैंगनीज तथा डोलोमाइट आदि की आवश्यकता होती है जो कि यहाँ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं। कोयले के काफी भण्डार है। लोहे तथा कार्बन के मिश्रण से इस्पात तैयार किया जाता है। मैंगनीज, क्रोमियम, सिलिकन, टगस्टन आदि धातुएँ इस्पात बनाने म इस्तेमाल की जाती हैं। कच्चे लोहे मे फासफोरस, गन्धक, मिट्टी तथा अन्य कई खनिजो का अश पाया जाता है। इन अशो को अलग करके तथा उसमे कार्बन का मिश्रण करके इस्पात तैयार किया जाता है।

ससार म सवप्रथम लोहा व इस्पात का निर्माण भारत म किया गया। विश्व के इतिहास मे, **'अशोक की लाट'** जो कि दिल्ली मे कुतुबमीनार के निकट है, एक आश्चर्य है। आज भी यह एक आश्चर्य का विषय बना हुआ है। किन्तु समय के परिवर्तन के साथ भारत का यह उद्योग उन्नति नही कर पाया और पिछड गया। आधुनिक विधियो से इस उद्योग का विकास यूरोप मे चालू हुआ। भारत मे सन् १८७१ मे झरिया के निकट **कुलटी** नामक स्थान पर लोहे का कारखाना स्थापित किया गया। यह कारखाना ब्रिटिश फर्म **मार्टिन बर्न एण्ड कम्पनी** द्वारा खोला गया। प्रथम महायुद्ध क आरम्भ तक यह ढलवाँ लोहे का उत्पादन करता रहा।

भारत म लोह एव इस्पात उद्योग का वास्तविक प्रारम्भ सन् १९०७ मे माना जाता है। विहार के सिंहभूमि जिले म **टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी** की स्थापना इस वर्ष **सर जमशेद जी नौशेर वान जी टाटा** द्वारा हुई। इसी नाम पर इस स्थान का नाम जमशेदपुर अथवा टाटानगर रखा गया। इस कम्पनी ने १९११ मे कच्चा लोहा तथा १९१३ मे इस्पात का प्रथम बार उत्पादन किया। इसके पश्चात्

सन् १९२३ में मैसूर में भद्रावती स्थान पर 'मैसूर आयरन वर्क्स' नामक कारखाने का निर्माण किया गया। सन् १९१८ में ही हीरापुर नामक स्थान पर 'इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' द्वारा एक कारखाना स्थापित किया गया। इस कम्पनी में १९३७ में बंगाल आइरन कम्पनी का विलय हुआ और इसके पश्चात् १९५३ में स्टील कार्पोरेशन ऑव बंगाल का भी इसमें विलय किया गया।

विश्व युद्धों में लोह एवं इस्पात उद्योग

प्रथम महायुद्ध काल में इस उद्योग ने अच्छी उन्नति की। युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोहे तथा इस्पात की माँग में पर्याप्त वृद्धि हुई। अतिरिक्त माँग के साथ साथ विदेशी माँग भी बढ़ी। परिणामस्वरूप कच्चे लोहे तथा इस्पात के उत्पादन में वृद्धि हुई। इस समय महत्त्वपूर्ण कम्पनी टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी थी जिसकी काफी उन्नति हुई। युद्ध के पश्चात् इस उद्योग के सामने प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं। इस समय मन्दी थी जिसके कारण प्रगति में बाधा आयी। सन् १९२४ में इस उद्योग को संरक्षण (Protection) प्रदान किया गया। आरम्भ में संरक्षण केवल ३ वर्ष का था जो कि बाद में ७ वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। इस अवधि के पश्चात् सन् १९४७ तक इसको संरक्षण प्रदान होता रहा।

द्वितीय विश्व युद्ध काल में पुन माँग में पर्याप्त वृद्धि हुई और इस उद्योग की सन्तोषजनक वृद्धि हुई। इस समय उद्योग पर सरकार ने नियन्त्रण किया। मूल्यों में पर्याप्त वृद्धि होने के कारण लाभ की मात्रा अच्छी थी अत उत्पादन तथा किस्म में सुधार किया गया। इस युद्ध के पश्चात् इस उद्योग के सामने पुन कठिनाइयाँ आयीं। और समस्याओं के कारण उत्पादन घटने लगा। इस समय मुख्य समस्याएँ माँग में कमी, मशीनों की पुनर्स्थापना, कच्चे माल का अभाव तथा अन्य समस्याएँ थीं। सन् १९४६ में सरकार ने एक स्टील पैनल (Steel Panel) की नियुक्ति की। इसने सुझाव दिया कि निजी उद्योग यदि लक्ष्य की प्राप्ति न कर सकें तो सरकार को कारखाने स्थापित करने चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में इस्पात के तीन कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता लगभग ९ लाख टन थी।

पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग की प्रगति

सन् १९४८ में देश में औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी। इस नीति में लोहे एवं इस्पात का विकास सार्वजनिक क्षेत्र में करने की व्यवस्था थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३० करोड़ रुपये इस उद्योग के विकास के लिए रखे गये थे। इस काल में स्टील के उत्पादन का लक्ष्य १५ लाख टन रखा गया। इस योजना में तीन बड़े कारखानों की स्थापना करने के कार्य को अन्तिम रूप दिया गया जिनमें प्रत्येक की क्षमता १० लाख टन थी। तीनों कारखानों की स्थापना विदेशी आर्थिक व तकनीकी सहायता से की गयी। प्रथम कारखाना राउरकेला (उड़ीसा) में स्थापित करने का प्रस्ताव था जो कि जर्मनी की सहायता से स्थापित करने का समझौता हुआ। द्वितीय कारखाना भिलाई (मध्य प्रदेश) में रूस की सहायता से स्थापित करना

तय हुआ। तृतीय कारखाना दुर्गापुर (प० बंगाल) में ब्रिटेन की सहायता से स्थापित करने का निश्चय किया गया। तीनों कारखाने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पूर्ण हो गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में जो कारखाने निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे थे उनका विकास किया गया। इस योजना में टाटा कम्पनी ने विस्तार तथा आधुनिकीकरण कार्यक्रम में लगभग ३४ करोड़ रुपये व्यय किये। इसके अतिरिक्त मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स के विस्तार एवं आधुनिकीकरण के कार्यक्रम पर लगभग १४ करोड़ रुपये व्यय किये गये। तृतीय कारखाने के लिए जो कि बर्नपुर में था, विकास कार्यक्रम अपनाये और लगभग १५ करोड़ व्यय तय किये गये। विभिन्न प्रयत्नों के फलस्वरूप कच्चे लोह एवं इस्पात का उत्पादन निम्न प्रकार था

लोहा व इस्पात का उत्पादन

विवरण	इकाई	१९५०-५१	१९५५-५६
१ इस्पात की सिल्लियां	लाख टन	१४७	१७७
२ तैयार इस्पात	,,	१०४	१३०
३ पिग आयरन	,,	१६६	१९५

इस तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम योजना के आरम्भ से अन्त तक ३ लाख टन अधिक इस्पात की सिल्लियां उत्पादित की गयी। तैयार इस्पात में लगभग २६ लाख टन की वृद्धि हुई और पिग आयरन में भी वृद्धि हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रगति

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग को प्राथमिकता दी गयी। इस योजना में लोह एवं इस्पात उद्योग के विकास के लिए ८३१ करोड़ रुपये रखे गये। उत्पादन लक्ष्य ४३ लाख टन स्टील का रखा गया। निजी क्षेत्र के तीनों कारखानों का विकास किया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र के तीनों कारखाने इस योजना में तैयार हो गये। सार्वजनिक क्षेत्र के तीनों कारखानों का प्रबन्ध 'हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड' के अन्तर्गत रखा गया। इस योजना में उत्पादन निम्न प्रकार हुआ :

लोहा एवं इस्पात का उत्पादन

विवरण	इकाई	१९६०-६१
१ इस्पात सिल्लियां	लाख टन	३४२
२ तैयार इस्पात	,,	२३९
३ पिग आयरन	,,	४३१

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के आरम्भ से अन्त तक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। १९५५-५६ की तुलना में १९६०-६१ में पिग आयरन का उत्पादन दूने से भी अधिक हुआ। इस्पात सिल्लियों में लगभग दूना उत्पादन हुआ। तैयार इस्पात में लगभग १०९ लाख टन की वृद्धि हुई। इस प्रकार इस योजना में प्रगति सन्तोषजनक रही।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में प्रगति

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के तीनों कारखानों की उत्पादन क्षमता दुगनी करने का निश्चय किया गया। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में ५२५ करोड़ रुपये का प्रावधान रखा था। इस योजना में कच्चे लोहे के उत्पादन का लक्ष्य १५ लाख टन रखा गया और इस्पात की सिल्लियों का उत्पादन लक्ष्य १०२ लाख टन निर्धारित किया गया। योजना में अन्तिम लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। इस योजना में अमरीकन सहायता से एक नया कारखाना बोकारो में स्थापित करने का प्रस्ताव था जिसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन निर्धारित की गयी। किन्तु अमरीकी सहायता के अभाव में इस योजना में यह सम्भव नहीं हो पाया। तृतीय योजना में विभिन्न प्रयत्नों के फलस्वरूप उत्पादन निम्न प्रकार हुआ

लोहे एवं इस्पात का उत्पादन

विवरण	इकाई	१९६१-६२	१९६५-६६
१ इस्पात सिल्लियाँ	लाख टन	४२ ७	६५ ३
२ तैयार इस्पात	"	२९ ६	४५ १
३ पिग आयरन		४९ ८	७० ६

इस तालिका से स्पष्ट है कि इस्पात सिल्लियों के उत्पादन में योजना के प्रथम वर्ष की तुलना में लगभग ५३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। तैयार इस्पात के उत्पादन में १९६१ ६२ की तुलना में १९६५-६६ में लगभग ५५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। पिग आयरन के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। किन्तु निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी।

वार्षिक योजनाएँ तथा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

तृतीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् तीन वार्षिक योजनाओं में विकास कार्यक्रम आगे बढ़ाये गये। प्रथम वार्षिक योजना (१९६६ ६७) में पिग आयरन का उत्पादन ७० १ लाख टन था। इसी वार्षिक योजना में तैयार इस्पात का उत्पादन ४४ ३ लाख टन और इस्पात सिल्लियों का उत्पादन ६६ १ लाख टन था। वार्षिक योजनाओं के तीन वर्षों में उत्पादन में विशेष प्रगति नहीं हो सकी। मार्च सन् १९६९ तक तैयार इस्पात का उत्पादन केवल ४८ ५ लाख टन ही हो सका। उसके बाद से इसमें कुछ वृद्धि अवश्य हुई है। सन् १९७० ७१ में ५४ ४ लाख टन तैयार इस्पात का उत्पादन हुआ किन्तु माँग को देखते हुए यह बहुत कम है। सरकारी क्षेत्र के सभी कारखाने क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं। उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग किस प्रकार किया जाय, यह स्वयं में इस उद्योग की एक बड़ी समस्या बन गयी है।

चतुर्थ योजना में इस्पात की सिल्लियों (Steel ingots) के उत्पादन का लक्ष्य १०८ लाख टन रखा गया है। इससे लगभग ८५ लाख टन तैयार इस्पात सन्

१९७३-७४ तक प्राप्त हो सकेगा। फिर भी इससे देश में इस्पात की बढ़ी हुई माँग को पूरा करना सम्भव नहीं होगा।

इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए इस्पात के नवीन कारखाने खोलने के साथ-साथ ही वर्तमान कारखानों का विस्तार भी करना होगा। विशाखापत्तनम तथा होस्पेट में इस्पात के दो कारखाने खोलने का निश्चय किया गया है तथा तामिलनाडु के सालेम क्षेत्र में भी एक कारखाना खोला जायगा। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भिलाई इस्पात के कारखाने का २५ लाख टन से ३२ लाख टन तक का विस्तार किया जायेगा। बोकारो के कारखाने का प्रथम चरण जिसकी इस्पात मिलियों की क्षमता १७.५ लाख टन होगी, पूर्ण किया जायेगा। इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की क्षमता १० लाख टन से १३ लाख टन तक की जायेगी।

इस्पात की भावी माँग के अनुमान

लोहा एवं इस्पात उद्योग एक आधारभूत उद्योग होने के कारण भविष्य में इस्पात की भावी माँग के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। चतुर्थ तथा पंचम पंचवर्षीय योजनाओं के अन्त में हमारे देश में तैयार इस्पात तथा कच्चे लोहे की माँग की पर्याप्त वृद्धि होने की सम्भावना है। माँग में वृद्धि के कारण घरेलू माँग तथा निर्यात दोनों में वृद्धि होना है। निम्नलिखित तालिका में भावी अनुमान स्पष्ट हो जाते हैं :

इस्पात तथा लोहे की माँग के अनुमान

(मिलियन टन)

	१९७३-७४		१९७८-७९	
	तैयार इस्पात	कच्चा लोहा	तैयार इस्पात	कच्चा लोहा
देश की भीतरी माँग	७ १२	१ ९५	१० ९७	२ ६१
निर्यात	१ ३०	१ ००	१ ८०	१ ५०
कुल	८ ४२	२ ९५	१२ ७७	४ ११

(*Source India*, 1979, p 334)

लोहा एवं इस्पात के प्रमुख कारखाने

भारत में लोहा एवं इस्पात के प्रमुख कारखाने निम्नलिखित हैं :

(१) टाटा का लोहे एवं इस्पात का कारखाना (TISCO)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस कारखाने की स्थापना १९०७ में की गयी। बिहार राज्य के सिंह्‌भूमि जिले में साकची (जमशेदपुर) नामक स्थान पर सर जमशेद जी नसरवान जी टाटा ने इसकी स्थापना की। इस उद्योग के यहाँ स्थापित होने के निम्नलिखित कारण हैं :

(१) इस कारखाने को लोहा गुरुमहिसानी व नोआमण्डी क्षेत्र में प्राप्त हो जाता है। लोहा प्राप्ति का क्षेत्र इस कारखाने से लगभग १०० किलोमीटर दूर है। नोआमण्डी क्षेत्र से इस उद्योग की ५० प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति की जाती है।

शेष गुरुमहिसानी, सुलेपात तथा बादाम पहाड़ से लोहा प्राप्त किया जाता है। लोहे की इस सुविधा के कारण यह कारखाना इस क्षेत्र में स्थापित किया गया।

(२) झरिया कोयला क्षेत्र इस कारखाने से लगभग १६० किलोमीटर दूर है। झरिया, करनपुरा तथा बोकारो से पर्याप्त कोयला उपलब्ध हो जाता है।

(३) इस कारखाने को चूना बराद्वार, हाथी बारी, तथा कुछ अन्य क्षेत्रों से प्राप्त हो जाता है। चूना प्राप्ति के स्थान यहाँ से लगभग ३०० किलोमीटर दूर हैं।

(४) मैंगनीज, डोलोमाइट, क्रोमाइट, टंगस्टन आदि विभिन्न क्षेत्रों से मँगवाये जाते हैं। मैंगनीज तो निकट ही उपलब्ध हो जाता है। क्रोमाइट भी सिंह भूमि जिले में प्राप्त हो जाता है किन्तु टाइटैनियम और टंगस्टन दूर से मँगवाये जाते हैं।

(५) यह कारखाना कलकत्ता तथा बम्बई से रेलवे लाइनों के द्वारा जुड़ा हुआ है।

(६) इस उद्योग के लिए पर्याप्त जल की आवश्यकता पड़ती है जिसे नदियों से प्राप्त किया जाता है। कारखाने के दो तरफ नदियाँ निकलती है जिनका पानी एकत्र कर लिया जाता है।

(७) बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश राज्यों के अनेक भागों से सस्ते श्रमिक उपलब्ध हो जाते है।

(८) इस कारखाने के निकट स्वर्ण रेखा नदी बहती है जिससे बालू मिट्टी उपलब्ध हो जाती है जो कि लोहा ढालने के लिए उपयुक्त है।

(९) इस कारखाने के निकट अनेक सहायक उद्योगों की स्थापना हो गयी है जिससे यह क्षेत्र महत्त्वपूर्ण हो गया है।

उपरोक्त विभिन्न सुविधाओं के कारण इस उद्योग का काफी विकास हो सका। प्रथम महायुद्ध काल में इस उद्योग ने अच्छी प्रगति की। सन् १९२४ में मन्दी के कारण इस उद्योग को सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ। सन् १९२७ में संरक्षण का समय पुनः बढ़ा दिया गया। पंचवर्षीय योजनाओं में विकास कार्यक्रम अपनाये गये जिससे इसकी पर्याप्त उन्नति हुई। पंचवर्षीय योजनाओं में इस कारखाने का उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न किये गये। इस कारखाने ने अपने विकास के कार्यक्रम को पूरा कर लिया है। अब यह पन्द्रह लाख टन तैयार इस्पात प्रतिवर्ष उत्पादित कर रहा है। चतुर्थ योजना में बीस लाख टन तैयार इस्पात उत्पादित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

(२) इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (IISCO)

यह कारखाना १९१८ में स्थापित किया गया। यह पश्चिमी बंगाल के हीरापुर में स्थापित हुआ। इसमें बंगाल आयरन कम्पनी और स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बंगाल का क्रमशः १९३६ व १९५३ में विलय हुआ। इस प्रकार इस कम्पनी

के पास तीन कारखाने हैं। भारत का इसमें सबसे अधिक लोह की टनांट का कार्य किया जाता है। इस कारखाने को निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं

(१) इस कारखाने को लोहा गुआ तथा कोल्हान की खानों में मिलता है। पहले लोहा बहुत निकट उपलब्ध था किन्तु बाद में मयूरभंज तथा सिंहभूमि जिलों में मँगवाया जाने लगा।

(२) इसको रानीगंज तथा झरिया दोनों में कोयला उपलब्ध हो जाता है।

(३) यहाँ चूना बिसरा (गंगापुर के निकट) और पाराघाट व बाराद्वार से मिल जाता है।

(४) मैगनीज आस-पास के क्षेत्र, विशेषकर बिहार तथा मध्य प्रदेश से प्राप्त हो जाता है।

(५) सस्ते श्रमिक बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अनेक भागों में उपलब्ध हो जाते हैं। इस कारखाने को आसनसोल से रेल यातायात की सुविधाएँ प्राप्त हैं।

इस कारखाने द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं में उत्पादन बढ़ाया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में द्वितीय योजना की तुलना में इसकी उत्पादन क्षमता ३ लाख टन बढ़ा दी। जब यह कारखाना दस लाख टन इस्पात की सिल्लियाँ अथवा आठ लाख टन तैयार इस्पात (finished steel) प्रतिवर्ष उत्पादित करता है। चतुर्थ योजना में इसे बढ़ाकर तेरह लाख टन इस्पात की सिल्लियाँ अथवा दस लाख टन तैयार इस्पात उत्पादित करने का प्रस्ताव है। इसके लिए इसे विश्व बैंक से ऋण प्राप्त हो चुका है।

(३) मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (MISW)

इस कारखाने की स्थापना १९२३ में की गयी। यह मैसूर राज्य के भद्रावती नामक स्थान पर और भद्रा नदी के किनारे पर स्थित है। इस कारखाने को लोहा बाबाबूदन और शिमोगा क्षेत्रों से प्राप्त हो जाता है। चूने का पत्थर यहाँ भांडीगुडा से प्राप्त किया जाता है। इस कारखाने के निकट जंगल हैं जिनकी लकड़ी का कोयला बनाकर पहले लोहा गलाने के काम में लाया जाता था, किन्तु अब इसमें विद्युत धमन भट्टियाँ (Electric Furnaces) कार्यशील हैं।

इस कारखाने को मिश्रित विशेष इस्पात कारखाने में बदला जा रहा है। इसकी उत्पादन क्षमता ७७ हजार टन होगी। अब इस कारखाने में यह विशेष किस्म का इस्पात तैयार किया जायेगा। इसको पश्चिमी जर्मनी से ऋण प्राप्त हो चुका है। इस समय इसकी उत्पादन क्षमता एक लाख टन तैयार इस्पात उत्पादन की है।

(४) राउरकेला स्टील प्लांट (उड़ीसा)

यह कारखाना उड़ीसा के राउरकेला नामक स्थान पर पश्चिमी जर्मनी के सहयोग से बनाया गया है। यह स्थान कलकत्ता बम्बई रेलवे लाइन पर स्थित है जो कि कलकत्ता से ४३१ किलोमीटर दूर है। इस कारखाने की आरम्भ की उत्पादन क्षमता

१० लाख टन थी जिसे अब १८ लाख टन तक बढ़ाया जा रहा है। इस कारखाने को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं

(१) राउरकेला से लगभग ८० किलोमीटर दूर लालडीह (बोनाई) म लोहे की खानें हैं। इसके अतिरिक्त बरसुआ नामक स्थान पर जो कि लगभग ७० किलोमीटर दूर है नयी खानों का विकास किया जा रहा है।

(२) इसको झरिया तथा बोकारो से कोयला प्राप्त हो जाता है। निम्न किस्म का कोयला कोरबा से प्राप्त हो जाता है।

(३) मैंगनीज तथा चूना भी निकट के क्षेत्रों से उपलब्ध हो जाता है।

(४) हीराकुण्ड योजना से विद्युत उपलब्ध हो जाती है।

(५) सांख तथा कोइल नदियों से जल प्राप्त हो जाता है।

बरसुआ क्षेत्र म जिस लोहे की प्राप्ति हुई है वह सन्तोषजनक नहीं होने के कारण नवम्बर १९६८ में एक प्लांट की स्थापना की गयी है जिससे कच्चा लोहा उपलब्ध हो सकेगा। तीन जर्मन विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया गया जिसका अध्ययन क्षेत्र कच्चा लोहा तथा चूना पत्थर से सम्बन्धित था। इस समिति की रिपोर्ट मिल चुकी है जिस पर हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड विचार कर रही है।

इस कारखाने म सन् १९६८-६९ में ११ ६१ लाख टन इस्पात की सिल्लियों का उत्पादन हुआ, किन्तु सन् १९६९-७० में यह गिर कर १० ७७ लाख टन ही रह गया वैसे इस कारखाने का विस्तार कार्यक्रम लगभग पूरा हो चुका है। अब इसकी उत्पादन क्षमता दस लाख टन से बढ़ाकर १८ लाख टन हो गयी है।

इस कारखाने म चपटे आकार की वस्तुएँ, प्लेटें, पत्तियाँ, चद्दरें, आदि तैयार किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त कई प्रकार के तेल भी बनाये जाते हैं। उर्वरक बनाने का सयन्त्र भी लगाया गया है।

(५) भिलाई स्टील प्लांट

यह कारखाना मध्य प्रदेश के भिलाई नामक स्थान पर स्थापित किया गया है। यह रूस की सहायता से खोला गया है जिसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन थी। इस कारखाने का निर्माण कार्य सन् १९५६ में आरम्भ हुआ और सन् १९६२ तक बनकर तैयार हो गया। इसमे बलुमिंग, तथा बेलेट मिल की पटरियाँ, मशीनों के ढाँचे, इमारती लोहे के ढाँचे तैयार किये जाते हैं। सन् १९६७ में 'वायर रोड मिल' के पूर्ण हो जाने के साथ-साथ इस कारखाने की उत्पादन क्षमता २५ लाख टन हो चुकी है। इस कारखाने का भविष्य म विस्तार दो चरणों में किया जायेगा।

इस कारखाने को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं

(१) भिलाई स्टील प्लांट को लोहा राजहरा की पहाड़ियों से प्राप्त हो जाता है जो कि यहाँ से लगभग ३० किलोमीटर दूर हैं।

(२) यहाँ से कोयला २२० किलोमीटर दूर से प्राप्त होता है। झरिया तथा कोरबा से भी कोयला प्राप्त किया जाता है।

(३) चूना रायपुर, दुर्ग तथा बिलासपुर जिलों से प्राप्त किया जाता है। डोलोमाइट भी आस-पास से प्राप्त हो जाता है।

(४) तदुला नहर से इस कारखाने को पानी प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त गोंदी योजना से भी पानी प्राप्त किया जाता है।

इस कारखाने में स्लीपर, रेलें, शहतीर, छड़ें, स्लैब्स आदि बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कारबोलिक एसिड, कई प्रकार के तेल, अमोनिया सल्फेट, बेंजोल आदि भी तैयार किये जाते हैं। आरम्भ में इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १० लाख टन थी जो कि अब २५ लाख टन हो गयी है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इसमें और भी वृद्धि की जायेगी। इस योजना के अन्त तक इसकी क्षमता ३५ लाख टन हो जायगी। इस कारखाने के द्वारा सन् १९६९-७० में १८.५ लाख टन इस्पात की सिल्लियों का उत्पादन किया गया। क्षमता से कम उत्पादन एक समस्या बन गयी है और अब उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया गया है।

(६) दुर्गापुर स्टील प्लांट (प० बंगाल)

यह कारखाना दुर्गापुर (प० बंगाल) में स्थापित किया गया है। इस कारखाने में पहिये, रेलवे की पटरियाँ, छड़ें, बल्लियाँ, टायर, धुरियाँ आदि बनाये जाते हैं।

इस कारखाने को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं :

(१) इस कारखाने को लोहा गुआ की खानों से उपलब्ध हो जाता है जो कि यहाँ से लगभग १४५ किलोमीटर दूर है।

(२) कोयला रानीगंज तथा बिहार की अन्य खानों से प्राप्त किया जाता है जलविद्युत दामोदर घाटी योजना से उपलब्ध हो जाती है।

(३) चूने का पत्थर भी निकट ही उपलब्ध हो जाता है।

इन सुविधाओं के अतिरिक्त नहरों से पानी उपलब्ध हो जाता है।

प्रारम्भ में इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १० लाख टन थी जिसे बढ़ाकर अब १६ लाख टन कर दिया गया है। इस कारखाने में भी उत्पादन क्षमता से कम उत्पादन हो रहा है जिसका प्रमुख कारण श्रमिकों द्वारा की जाने वाली हड़तालें तथा प्रबन्ध कुशलता में कमियाँ है। सन् १९६९-७० में इस कारखाने से दस लाख टन इस्पात की सिल्लियों का उत्पादन किया गया।

(७) बोकारो स्टील लिमिटेड

बोकारो स्टील प्लाण्ट आरम्भ में तृतीय पंचवर्षीय योजना की योजना थी किन्तु विदेशी सहायता की प्राप्ति के अभाव में यह चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पूर्ण हो सकेगी। यह कारखाना 'माराफरी' गाँव के निकट स्थित है जो कि बिहार के धनबाद जिले में है। इसके प्रथम चरण के निर्माण पर ७६० करोड़ रुपये व्यय होंगे।

इस प्लाण्ट का प्रथम चरण १७ लाख टन इस्पात की सिल्लियों के उत्पादन की क्षमता वाला होगा और ८.८ लाख टन फाउण्ड्री ग्रेड पिग आयरन (Foundry

Grade Pig Iron) भी तैयार किया जा सकेगा। इस प्लाण्ट में आधुनिक तकनीकी विधियों को काम में लिया जायेगा। द्वितीय चरण में इसकी उत्पादन क्षमता को ४० लाख टन तक बढ़ा दिया जायगा जिसे अन्ततः ५५ लाख टन तक बढ़ाया जा सकेगा।

इस कारखाने की स्थिति कोयला क्षेत्र के निकट है। रानीगंज तथा झरिया पास में पड़ते है अतः कम लागत पर कोयला प्राप्त हो सकेगा। यह कारखाना रूस के सहयोग से स्थापित किया जा रहा है। रूस ने १६६.६ करोड़ रुपये की सहायता दी है। रूस के विशेषज्ञों ने एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की है। इस कारखाने के तैयार हो जाने पर देश में आयात की मात्रा बहुत कम हो जायगी।

नये कारखाने

भारत सरकार ने अप्रेल १६७१ में तीन नये कारखाने स्थापित करने की घोषणा की। ये कारखाने सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये जायेंगे। तीनों कारखाने दक्षिणी भारत में आन्ध्र प्रदेश (विशाखापत्तनम), मैसूर (हास्पेट) तथा तामिलनाडु (सलेम) में स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया है। विशाखापत्तनम तथा हास्पेट के कारखानों में माइल्ड स्टील का उत्पादन होगा तथा सलेम के कारखाने में विशेष इस्पात तैयार किया जायगा। तीनों कारखानों का कार्य चतुर्थ योजना में प्रारम्भ किया जायेगा। इन कारखानों को भारतीय डिजायन तथा भारतीय इन्जीनियरों द्वारा स्थापित किया जायेगा।

लोहे एवं इस्पात का आयात-निर्यात व्यापार

भारत में लोहे एवं इस्पात का आयात तथा निर्यात दोनों प्रकार का व्यापार होता है। लोहे एवं इस्पात और मिश्रित इस्पात का आयात पिछले चार वर्षों में निम्न प्रकार हुआ

आयात व्यापार

वर्ष	मूल्य (करोड़ रुपये)
१६६६-६७	७७.७७
१६६७-६८	१०६.२६
१६६८-६६	८६.१५
१६६६-७०	८६.८३

विभिन्न प्रकार की टूल, एलोय तथा विशेष इस्पात की नवीन इकाइयों की स्थापना के कारण और अन्य इकाइयों द्वारा अधिक उत्पादन के कारण वर्ष १६६८-६६ में आयात में पर्याप्त कमी हुई है। इस समय जो इस्पात आयात किया जाता है उसमें टूल, एलोय तथा विशेष इस्पात की श्रेणी का है। वर्ष १६६६-७० में इस्पात का आयात और कम होने के अनुमान है।

लोहा एवं इस्पात का निर्यात

लोहा एवं इस्पात के निर्यात में सन्तोषजनक सफलता मिली है। नवीन निर्यातों में इसका हिस्सा महत्वपूर्ण है। वर्ष १६६६-६७ में लगभग २० करोड़ रुपये

का लोहा एवं इस्पात निर्यात किया गया। भारत ने सन् १९६३-६४ में इस्पात और पिग-आइरन के २३,००० टन का निर्यात किया जो सन् १९६८-६९ में १६ लाख टन हो गया। उत्पादन में कमी के कारण इसके बाद निर्यात गिर गया और सन् १९७०-७१ में केवल १३ लाख टन का ही निर्यात किया जा सका।

भारत से लोहे एवं इस्पात का निर्यात दक्षिण-पूर्वी एशिया पश्चिम एशिया (ईरान को सम्मिलित करते हुए) अमरीका रूस तुर्की आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को किया जाता है।

लोहा एवं इस्पात उद्योग की समस्याएँ

लोहा एवं इस्पात उद्योग को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इनमें से प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं

(१) तकनीकी ज्ञान का अभाव—भारत के लोहा एवं इस्पात उद्योग की सबसे मुख्य समस्या तकनीकी ज्ञान का अभाव है। यहाँ धातु विशेषज्ञों की कमी है। भारत के लगभग सभी कारखानों में विदेशी विशेषज्ञों का सहयोग लेना पड़ता है। अनेक भारतीय इन्जीनियर अमरीका, रूस, ब्रिटेन तथा पश्चिमी जर्मनी भेजे जाते हैं। इस समस्या के कारण कारखानों को बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

(२) मशीनों की कमी—बड़े-बड़े इस्पात के कारखानों के लिए मशीनों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में इनका अभाव है क्योंकि देश में मशीनों के निर्माण के कारखानों की कमी है। अधिकांश मशीनें विदेशों से मँगवानी पड़ती हैं अतः इस उद्योग के विकास में मुख्य बाधा मशीनों का अभाव है।

(३) उत्तम किस्म के कोयले का अभाव—लोहा एवं इस्पात उद्योग के लिए उत्तम किस्म के कोयले की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का कोयला कुछ ही स्थानों पर उपलब्ध है और वह भी कम मात्रा में। इस अभाव को दूर करने के लिए कई स्थानों पर कोयले धोने के संयन्त्र (coal washeries) लगाये गये हैं जिनसे घटिया किस्म के कोयले को इस्पात बनाने के उपयुक्त बनाया जाता है। अतः उत्तम किस्म के कोयले के अभाव में इस उद्योग का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता।

(४) परिवहन की समस्या—भारत में यातायात के साधनों का अनेक स्थानों पर अभाव है। यहाँ परिवहन के उत्तम, शीघ्र तथा सस्ते साधनों की कमी पायी जाती है। इस उद्योग में खनिज लोहा, कोयला, चूना मैंगनीज की आवश्यकता पड़ती है जिसे ढोने के लिए उत्तम रेल व्यवस्था अथवा जल यातायात की आवश्यकता होती है। भारत में आन्तरिक जल यातायात की सुविधा नहीं है। रेलवे की सुविधा को ध्यान में रखकर दक्षिण-पूर्वी रेल पथ का एक पृथक क्षेत्र बनाया गया है फिर भी उद्योगों के समक्ष विकट समस्या है।

(५) पूँजी एवं साख का अभाव—लोहा एवं इस्पात के कारखानों की स्थापना के लिए बहुत बड़ी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। इतनी अधिक पूँजी की व्यवस्था करना भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए कठिन है। इसके लिए विदेशी पूँजी

की आवश्यकता पड़ती है जिसका भी अभाव है। भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के तीनों कारखानों (राउरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर) में प्रत्येक में एक अरब रुपये से भी कहीं अधिक धनराशि व्यय की गयी है। इसके अतिरिक्त उनके विस्तार कार्यों पर करोड़ों रुपये अतिरिक्त व्यय किये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में अधिक कारखानों की स्थापना कठिन है।

(६) इस्पात के बढ़ते हुए मूल्य—भारत में इस्पात की माँग यहाँ के उत्पादन से अधिक है अतः आयात करना पड़ता है। इस आयात किये गये इस्पात की कीमत भारत में उत्पादित इस्पात से अधिक पड़ती है। भारत सरकार ने जो मूल्य निर्धारित कर रखा है वह आयात किये गये इस्पात के मूल्य के आधार पर होता है अतः उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य देना पड़ता है। उत्पादक वर्ग को जो मूल्य चुकाया जाता है वह निश्चित मूल्य होता है। इस प्रकार जो लाभ बचता है वह इस्पात समीकरण कोष में जमा हो जाता है।

(७) सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित कारखानों की समस्याएँ—सार्वजनिक क्षेत्र में हमारे देश में लोहा एवं इस्पात उद्योग के अधिक कारखाने हैं। इनके सामने घाटे की समस्या दिन प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड की कार्यशील पूँजी १,५०० करोड़ है किन्तु इसकी स्थापना से लेकर १९६७-६८ तक १२० करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। वर्ष १९६८-६९ तथा १९६९-७० में भी घाटा हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में नुकसान के मुख्य कारण श्रमिकों द्वारा की गयी हड़तालें, निम्न उत्पादकता, बढ़ती हुई कीमतें आदि हैं।

(८) ऊँची लागत की समस्या—आजकल औद्योगिक विकास में लागत का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। लागत उत्पादकता से सम्बन्धित होती है। निम्न उत्पादकता से लागत अधिक पड़ती है। भारतवर्ष में उत्पादन के सभी साधनों की उत्पादकता निम्न है। दूसरी तरफ भारतीय लोहा अधिकांशतया उच्च कोटि का नहीं है क्योंकि उसमें अलयूमिना का अंश मिला हुआ है। इससे लागत में वृद्धि हो जाती है। ऊँची लागत होने के कारण उत्पादित वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। हमारे लोहा एवं इस्पात उद्योग के सामने यह एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गयी है।

लोहा एवं इस्पात उद्योग एवं सरकारी नीति—भारत सरकार ने १९४८ में औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसमें लोहा एवं इस्पात उद्योग की स्थापना का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। यहाँ निजी कारखाने जो पहले से ही कार्य कर रहे हैं 'टाटा' तथा 'इण्डियन आयरन' के हैं, वर्तमान समय में भी कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त सभी कारखाने सरकारी क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं। वास्तव में औद्योगिक महत्व को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र में इस उद्योग का विकास आवश्यक है किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि निजी क्षेत्र असमर्थ है। कई विकसित राष्ट्रों में निजी क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई है। भारत में भी निजी क्षेत्र में उन्नति की जा सकती है। अतः सरकार को इस प्रकार की नीति

नही रखनी चाहिए जिससे निजी सहयोग न प्राप्त हो सके। इस क्षेत्र मे निजी क्षेत्र को आने दिया जाना चाहिए ताकि अधिक विकास सम्भव हो सके। जून १९७१ में भारत सरकार ने मिनी स्टील प्लाण्टों (Mini-steel Plants) की स्थापना की अनुमति देने का निर्णय किया है। ये कारखाने निजी क्षेत्र द्वारा स्थापित किये जा सकेंगे और इस कारखानों की उत्पादन क्षमता पचास हजार टन से लगाकर एक लाख टन तक होगी।

प्रश्न

१. भारत मे लोहा एवं इस्पात उद्योग की वर्तमान स्थिति का विवरण दीजिए तथा इस उद्योग की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

२. भारत मे लोहा एवं इस्पात उद्योग का संक्षिप्त इतिहास लिखिए तथा पंचवर्षीय योजनाओं मे इस उद्योग की प्रगति का विवरण दीजिए।

३. पंचवर्षीय योजना काल के सीमेण्ट या लोह-इस्पात उद्योग के विकास, समस्याओं और सुझावों पर प्रकाश डालिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६९)

४. भारत के लोह-इस्पात उद्योग अथवा चीनी उद्योग की स्थिति और विकास-समस्याओं का संक्षेप मे विवेचन कीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९७०)

अध्याय २५

सूती वस्त्र उद्योग

(COTTON TEXTILE INDUSTRY)

भारत में अति प्राचीन काल से सूती कपड़ा बनाया जाता रहा है। यहाँ से प्राचीन काल में स्थल मार्गों द्वारा यूरोप के देशों को यह कपड़ा भेजा जाता था। यूरोपीय भारतीय कपास के रेशे को सफेद ऊन कहकर पुकारते थे। इस उद्योग के प्राचीन समय में उन्नत होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। किन्तु इस उद्योग का सगठित विकास १९वीं शताब्दी के मध्य से हुआ है। आजकल भारत के विशाल उद्योगों में सूती वस्त्र उद्योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस उद्योग की यह विशेषता रही है कि आरम्भ से ही यह भारतीय प्रबन्ध तथा भारतीय उद्योगपतियों के हाथों में रहा है। देश के कुछ भागों में इस उद्योग के विकास की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं अत इस उद्योग में स्थानीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ती रही। परिणामस्वरूप गुजरात तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों में अधिकांश मिलों की स्थापना हो गयी। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ससार के कुल सूती वस्त्र उत्पादन का लगभग १४ प्रतिशत भारत में होता है। इस दृष्टि से विश्व में भारत का तृतीय स्थान है। यहाँ इस उद्योग का विकास कुटीर उद्योग तथा वृहत् उद्योग दोनों प्रकार से हुआ। कुटीर उद्योग प्राचीन काल से प्रसिद्ध है किन्तु वृहत् उद्योग १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में हुआ।

सूती वस्त्र उद्योग का प्रारम्भ

भारत में सर्वप्रथम १८१८ में सूती वस्त्र मिल की स्थापना की गयी जो कि कलकत्ता के निकट थी। अनेक कठिनाइयों के कारण यह मिल सफल नहीं हो सकी। इसके पश्चात् १८५४ में द्वितीय प्रयास किया गया और बम्बई में एक मिल की स्थापना हुई। बम्बई के आसपास इस उद्योग को अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं अत यहाँ धीरे-धीरे सूती मिलों की संख्या बढ़ने लगी। बम्बई के अतिरिक्त १८६१ में अहमदाबाद में भी मिल स्थापित होने लगी। धीरे-धीरे देश के अन्य भागों में रेलों के विकास के साथ-साथ मिलें स्थापित होने लगी हैं। देश में नागपुर, कानपुर, इन्दौर, शोलापुर आदि जगहों पर मिलें स्थापित हुईं। महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रदेशों में १९१४ तक अधिकांश मिलें स्थापित हो गयी।

विश्व-युद्ध एवं सूती वस्त्र उद्योग

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् भारत के अनेक क्षेत्रों में कई सुविधाएँ उपलब्ध होने लगीं जिससे अनेक प्रदेशों में मिलों का विकास चालू हुआ। दक्षिण में कावेरी नदी के डेल्टा प्रदेश में उत्तम किस्म की कपास उत्पन्न की जाने लगी। इस क्षेत्र में सिंचाई सुविधा भी प्राप्त होने लगी। इसके अतिरिक्त सस्ती जल विद्युत, सस्ता श्रम तथा बाजार की सुविधा से मद्रास प्रदेश में इस उद्योग का प्रसार होने लगा। धीरे-धीरे उत्तरी भारत में सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं जिससे फलस्वरूप मोदीनगर, दिल्ली, ग्वालियर, ब्यावर, पानी आदि स्थानों पर भी मिलें स्थापित हुईं। इन मिलों का उत्पादन स्थानीय माँग की पूर्ति करना था। इनका उत्पादन मध्यम किस्म का था।

विश्वव्यापी मन्दी का प्रभाव भारतीय सूती वस्त्र उद्योग पर प्रतिकूल पड़ा। इस समय तक जापान के साथ भारत की इस उद्योग में प्रतिस्पर्धा अधिक बढ़ गयी। १९२७ तक सूती वस्त्र उद्योग की स्थिति खराब हो गयी और मिल मालिक संरक्षण की माँग करने लगे। इस समय इस उद्योग को संरक्षण प्रदान किया गया। सन् १९३०, १९३१ तथा १९३२ में लगातार आयात कर में वृद्धि की गयी। सन् १९३४ में जापान के साथ समझौता हुआ है। इस समझौते में यह तय किया गया कि भारत जापान से एक निश्चित सीमा तक वस्त्रों का आयात करेगा और जापान भारत से एक निश्चित मात्रा तक छोटे रेशे वाली कपास का आयात करेगा। इस समझौते को ध्यान में रखकर संरक्षण कर में कुछ कमी की गयी।

द्वितीय महायुद्ध का इस उद्योग पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। सूती वस्त्र की विश्व के बाजार में माँग बढ़ी। सैनिकों के लिए युद्ध में लगे हुए राष्ट्रों को कपड़े की आवश्यकता हुई। माँग में पर्याप्त वृद्धि होने के कारण इस उद्योग की आर्थिक समस्याओं का अन्त हुआ। कपड़े की माँग का वृद्धि के साथ साथ मूल्यों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई जिससे लाभ अधिक कमाया जा सका। इन परिस्थितियों में सरकार ने इस उद्योग पर नियन्त्रण किया। युद्ध के अन्त तक यह उद्योग काफी विकसित हुआ। अंशधारियों को अधिक लाभों का वितरण किया गया। युद्ध के समय मशीनों का उपयोग अधिक किया गया जिससे ये घिसकर बेकार होने लगीं। इस प्रकार एक नयी समस्या का जन्म हुआ, यह समस्या मशीनों को बदलने की थी। मशीनों को बदलने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता हुई। युद्ध काल में मिलों द्वारा कमाया गया अतिरिक्त लाभ का अंशधारियों में वितरण कर दिया गया था अतः यह समस्या विकट हो गयी।

देश के विभाजन ने एक और समस्या को जन्म दिया। विभाजन के परिणाम स्वरूप कपास के उत्पादन का २२ प्रतिशत क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया। यह क्षेत्र उत्तम किस्म की कपास को उत्पन्न करने वाला क्षेत्र था। अतः इस उद्योग के समक्ष उत्तम किस्म की रुई की समस्या उत्पन्न हो गयी।

पंचवर्षीय योजनाओं में प्रगति

'प्रथम पंचवर्षीय योजना' के आरम्भ में कपड़े का उत्पादन माँग से बहुत कम था। वर्ष १९५०-५१ में यहाँ ५२ करोड़ किलोग्राम सूत तथा ३७८ करोड़ गज कपड़ा बनाया गया। उत्पादन बढ़ाने के अभिप्राय से योजना का लक्ष्य ४७० करोड़ गज रखा गया था जो कि सन् १९५३ में ही पूरा किया गया। योजना के अन्तिम वर्ष ५१० करोड़ गज कपड़े का उत्पादन हुआ। इस योजना में कपड़े की खपत भी प्रति व्यक्ति बढ़ी। योजना के आरम्भ में ११.५ गज प्रति व्यक्ति कपड़े की खपत थी जो कि योजना के अन्त तक १६.५ गज हो गयी। वर्ष १९५०-५१ में सूती वस्त्र मिलें ३८८ थीं जो कि १९५५-५६ में ४१२ हो गयीं। इस प्रकार इस योजना में सूती वस्त्र उद्योग की सन्तोषजनक वृद्धि हुई।

भारत में सूती वस्त्र उत्पादन की प्रगति (करोड़ मीटर)

वर्ष	मिलों द्वारा उत्पादन	हाथ करघों द्वारा एवं शक्ति चालित करघों द्वारा	कुल उत्पादन
१९५०-५१	३४०.१	८१.४	४२१.४
१९५५-५६	४६६.५	१४९.५	६१६.०
१९६०-६१	४६४.९	२०८.९	६७३.८
१९६५-६६	४४०.१	३०३.९	७४४.०

(Source—India, 1968)

'द्वितीय पंचवर्षीय योजना' में सूती वस्त्र उत्पादन क्षमता में २८ प्रतिशत वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। योजना के आरम्भ में मिलों द्वारा ४६६.५ करोड़ मीटर कपड़े का उत्पादन था जबकि योजना के अन्तिम वर्ष १९६०-६१ में उत्पादन में कुछ कमी हुई। इस अवधि में हाथ करघे का उत्पादन बढ़ा जिसके परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि हुई। इस योजना में मिलों द्वारा उत्पादन न बढ़ने का कारण इस योजना में अपनायी गयी नीति थी। द्वितीय योजना में यह निश्चय किया गया था कि मिलों में कपड़े का उत्पादन सीमित कर दिया जाए और शक्ति चालित करघा एवं हाथ करघा का अधिक विकास किया जाये ताकि अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सके। इस प्रकार की नीति कानूनगो समिति की १९५४ में दी गयी रिपोर्ट के आधार पर अपनायी गयी।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' में मिलों के कपड़े के कुल उत्पादन का लक्ष्य द्वितीय योजना के उत्पादन लक्ष्य से १[illegible] प्रतिशत अधिक निर्धारित किया गया। योजना के अन्त तक ४४०.१ करोड़ मीटर कपड़े का उत्पादन हुआ जो कि द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष से लगभग २४.८ करोड़ मीटर कम था। इस योजना में भी शक्ति चालित एवं हाथ करघों का उत्पादन अधिक हुआ जिसके कारण कुल उत्पादन द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष की तुलना में अधिक था। तृतीय पंचवर्षीय योजना में

१०५ करोड रुपये सूती वस्त्र उद्योग म आधुनिकीकरण तथा पुनर्स्थापन मे व्यय किय गय। इस योजना म कुल विस्तार २६०८ लाख तकुआ और १०,८२२ करघा का था। इस योजना मे प्रति वर्ष २० म ३० तक नयी मिलें स्थापित हुईं। भारत मे सन् १९६६ मे ५५६ मिलें थीं, जिनम ३१७ कताई और २८२ मिश्रित मिलें थीं। इन मिलो मे १६७ लाख तकुए तथा २ लाख करघे थे।

वार्षिक योजनाएँ एव चतुर्थ योजना मे प्रगति

इस समय भारत मे ६२८ सूती वस्त्र की मिलें हैं जिनम से ३४६ कताई तथा २८६ मिश्रित हैं। इनकी कुल स्थापित क्षमता १७०८ लाख तकुए तथा २०८ लाख करघे है। वार्षिक योजनाओ मे इस उद्योग की प्रगति तथा चतुर्थ पचवर्षीय योजना के लक्ष्य निम्न प्रकार हैं

वार्षिक योजनाओं में प्रगति एव चतुर्थ योजना के लक्ष्य

वर्ष	सूत (करोड किलो ग्राम)	सूती कपडा (मिल क्षेत्र) (करोड मीटर)
१९६६-६७	९० २	४२० ०
१९६७-६८	९२ ६	४२५ ८
१९६८ ६९	९५ ८	४२९ ८
१९७३-७४ (लक्ष्य)	१०५ ०	५४८ ६

उपरोक्त तालिका मे स्पष्ट है कि मिल क्षेत्र के सूती कपडे के उत्पादन में वर्ष १९६६-६७ की तुलना मे १९६७-६८ मे कुछ वृद्धि हुई। वर्ष १९६८-६९ म १९६७ ६८ की तुलना मे ४ करोड मीटर अधिक कपडे का उत्पादन हुआ। इस वर्ष की तुलना म १९७३ ७४ मे ११८ ८ करोड मीटर अधिक कपडे के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। सूत के उत्पादन म निरन्तर वृद्धि हुई है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे वर्ष १९६८-६९ की तुलना में १० करोड किलोग्राम अधिक सूत का उत्पादन करने का लक्ष्य रखा गया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सन्तोषजनक फल मिलने की आशा है। वर्तमान समय मे यह उद्योग केन्द्र समस्याओ मे ग्रसित है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इन समस्याओ का निराकरण किया जायेगा।

व्यापार

भारत मे सूती वस्त्र का निर्यात किया जाता है। वर्तमान समय मे सूती वस्त्र का निर्यात ७० करोड रुपय से भी अधिक हो रहा है। वर्ष १९६० ६१ म ५८ करोड रुपये का कपडा निर्यात किया गया। वर्ष १९६६-६७ म ६० करोड से भी अधिक कपडे का निर्यात हुआ। यहाँ से दक्षिण पूर्वी अफ्रीका, लका, बर्मा, ईरान, ईराक, थाइलैण्ड तथा अरब देशो को सूती कपडा निर्यात किया जाता है। भारत से अधिकाश कपडा मोटा तथा मध्यम श्रेणी का निर्यात किया जाता है।

सूती वस्त्र का निर्यात

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	मूल्य
१९५०-५१	११८ १
१९५५-५६	५६ ७
१९६०-६१	५७ ६
१९६५-६६	८७ ४
१९६८-६९	७० ४

(स्रोत—योजना, २८ फरवरी, १९७१)

सूती वस्त्र के निर्यात का भाग कुल निर्यात में निरन्तर कम होता जा रहा है। इसकी कमी का मुख्य कारण चीन एवं जापान से विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा का होना है। इसके अतिरिक्त भारत के निर्यात व्यापार में गैर परम्परावादी वस्तुओं का निर्यात निरन्तर बढ़ रहा है। अतः सूती वस्त्र का प्रतिशत घट रहा है।

सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र

सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीयकरण उन भागों में अधिक हुआ है जिन भागों में सस्ती और पर्याप्त श्रम शक्ति तथा विस्तृत बाजार की सुविधा उपलब्ध है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि इस उद्योग के विकास के लिए नम जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य में नम जलवायु होने के कारण इस उद्योग का काफी विकास हुआ। आजकल कृत्रिम रूप से नमी बनाकर भी काम चलाया जाता है। अतः धीरे धीरे उन भागों में भी सूती वस्त्र की मिलें स्थापित हो रही हैं जहाँ नम जलवायु नहीं है।

भारत में गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में देश के आधे से भी अधिक करघे एवं तकुए लगे हुए हैं और देश के कुल उत्पादन का लगभग आधा सूत इन राज्यों में उत्पादित होता है। यहीं सूती वस्त्र दो तिहाई तैयार किया जाता है। भारत में इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं

महाराष्ट्र राज्य

महाराष्ट्र राज्य इस उद्योग में सबसे आगे है। यह आरम्भ से ही सूती वस्त्रों का प्रमुख केन्द्र रहा है। सूती वस्त्र की मिलों की अधिकता तथा विभिन्न प्रकार के कपड़े के उत्पादन के कारण बम्बई को सूती वस्त्रों की राजधानी कहा जाता है। बम्बई नगर में लगभग ५९ मिलें हैं। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में ९६ से भी अधिक सूती वस्त्र मिलें हैं। देश के लगभग एक तिहाई तकुए इस राज्य में लगे हुए हैं तथा देश का लगभग ४८ प्रतिशत सूती वस्त्र यहाँ तैयार होता है। इस राज्य में सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण के निम्न कारण हैं

(१) इस क्षेत्र में कच्चे माल की उपलब्धि की पर्याप्त सुविधा है। कपास

के रूप में होते रहे हैं अतः कुशल श्रमिकों का अभाव नहीं है। श्रम की पूर्ति राजस्थान से भी होती है।

उपरोक्त सुविधाओं के कारण अहमदाबाद सूती वस्त्र उद्योग का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। यहाँ विशेषकर धोतियाँ, छोट स्मान, वायल, मलमल, कोटिंग, शर्टिंग आदि उत्तम एवं बारीक कपड़ा बनाया जाता है।

मद्रास राज्य

मद्रास राज्य में सूती कपड़े की मिलें बहुत पुरानी नहीं हैं। इस राज्य में कपड़ा मिलों का आधिक्य है। इस राज्य में इस समय २०२ सूती कपड़े की मिलें हैं। इसका प्रमुख कारण पायकारा (Pykara) योजना से सस्ती एवं पर्याप्त जल विद्युत की उपलब्धि है। इस राज्य में मद्रास, कोयम्बटूर, सलेम तथा मदूराई में मिलें स्थापित की गयी हैं। भारत का प्रसिद्ध विन्नी का कपड़ा इसी क्षेत्र का है। इस राज्य में अधिक कपड़ा मिलें होने के निम्नलिखित कारण हैं

(१) इस प्रदेश में कच्चा माल कावेरी की घाटी में उपलब्ध हो जाता है। इस घाटी में उत्तम किस्म की कपास उत्पन्न होती है। स्थानीय कच्चे माल से अधिकांश माँग की पूर्ति हो जाती है।

(२) मद्रास बन्दरगाह के कारण मशीनों के आयात निर्यात की सुविधा है। इसके अतिरिक्त माल के आयात निर्यात की सुविधा है।

(३) कोयला इस क्षेत्र में उपलब्ध नहीं अतः पहले इस उद्योग का अधिक विकास नहीं हो पाया। मैसूर तथा पायकारा परियोजनाओं से सस्ती जल विद्युत की उपलब्धि के साथ साथ इस उद्योग की पर्याप्त उन्नति हुई।

(४) मिलों के विकास से पूर्व यहाँ सूती वस्त्र उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में प्रचलित था अतः कुशल श्रम उपलब्ध हो जाता है।

(५) सूती वस्त्र की स्थानीय माँग होने के कारण बाजार की समस्या नहीं है। स्थानीय माँग के अतिरिक्त यहाँ का निर्मित कपड़ा उत्तरी भारत में भी काफी प्रचलित है।

मद्रास राज्य में सूती वस्त्र मिलों की स्थापना बाद में हुई, इसलिए यहाँ की मिलें आधुनिक तथा नवीन हैं।

उत्तर प्रदेश

उत्तरी भारत में यह राज्य कपड़े का महत्त्वपूर्ण उत्पादक है। यहाँ सूती वस्त्र मिलों की संख्या ३८ है। इस राज्य में १९वीं शताब्दी के अन्त में उद्योग का विकास चालू हुआ। उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, आगरा, रामपुर, मोदी नगर, बरेली, हाथरस इटावा, सहारनपुर, अलीगढ़, बनारस आदि स्थानों पर सूती मिलें स्थापित की गयी हैं। इस राज्य में कानपुर प्रमुख सूती वस्त्र का केन्द्र है।

इस राज्य में इस उद्योग के लिए अग्र सुविधाएँ हैं।

(१) इस राज्य में छोटे रेशे की कपास उपलब्ध है जिससे मोटा कपड़ा बनाया जाता है।

(२) कानपुर जो कि इस क्षेत्र का उत्पादन केन्द्र है उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में रेलों तथा सड़कों द्वारा जुड़ा हुआ है। अतः यातायात की पर्याप्त सुविधा है।

(३) कोयला इस राज्य में उपलब्ध नहीं है। अतः रानीगंज डाल्टनगंज, तथा झरिया की खानों से कोयला प्राप्त किया जाता है।

(४) यह राज्य अधिक जनसंख्या वाला है अतः कपड़े की स्थानीय माँग है।

(५) सस्ते मजदूर तथा पर्याप्त पानी की सुविधायें भी उपलब्ध हैं।

इन सुविधाओं के अतिरिक्त इस राज्य में इस उद्योग की प्रमुख कठिनाईयाँ जलवायु और उत्तम किस्म की कपास की है। यहाँ जलवायु नम नहीं है अतः कृत्रिम तरीकों से उत्पादन किया जाता है जिसमें लागत व्यय अधिक पड़ता है।

पश्चिमी बंगाल

पश्चिमी बंगाल में सूती वस्त्र उद्योग का विकास गत २२ वर्षों में अधिक हुआ है। यहाँ चौबीस परगना, हुगली तथा हुगली के क्षेत्र में ४१ मिल हैं। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र सोदपुर, रामनगर, पाल्टा, फुलेश्वर, सीरामपुर, घूसरी, सल्कीया, रिश्रा तथा लिलुआ हैं। इस राज्य में इस उद्योग को निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध हैं:

(१) पश्चिमी बंगाल भारत का सबसे प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। औद्योगिक विकास की अनेक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं।

(२) शक्ति के साधन इस राज्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। प्रसिद्ध कोयले की खानें (रानीगंज तथा झरिया) निकट हैं और दामोदर घाटी योजना से सस्ती जल विद्युत उपलब्ध हो जाती है।

(३) समुद्र की निकटता के कारण नम जलवायु पाया जाता है जो कि इस उद्योग के लिए उत्तम है।

(४) इस राज्य को कलकत्ता बन्दरगाह की सुविधाएँ प्राप्त हैं जिससे मशीनें तथा कच्चे माल के आयात और निर्मित वस्तुओं का निर्यात किया जा सकता है।

(५) पश्चिमी बंगाल की आबादी घनी है अतः यहाँ सस्ता श्रम तथा पर्याप्त बाजार उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त बिहार, आसाम, उड़ीसा आदि राज्यों में इस क्षेत्र का कपड़ा खप सकता है।

(६) इस राज्य में परिवहन के साधनों की प्रचुरता है।

उपरोक्त सुविधाओं के अतिरिक्त यहाँ कच्चे माल (कपास) की कमी पायी जाती है। पश्चिमी बंगाल में कपास उत्पन्न नहीं हो सकती अतः इसके लिए अन्य क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस उद्योग के इस राज्य में निर्मित होने की

काफी सम्भावनाएँ है क्योंकि निकटवर्ती भागो म कपडा उत्पादन क्षेत्रो का अभाव है जबकि माँग अधिक है।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश मे २२ मिल है। यहाँ उज्जैन, इन्दौर, भोपाल, रतलाम, ग्वालियर, निमाड, राजनन्द गाँव, जबलपुर देवास तथा बुरहानपुर मे कपडे की मिलें है। इस राज्य म मध्यम रेशे वाली कपास, सस्ते मजदूर, कोयला आदि पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध हो जाते है। इन कारणो से इस राज्य मे इन मिलो का विकास हुआ।

अन्य

अन्य राज्यो म आन्ध्र प्रदेश मे ३० मिले, केरल म २५ मिले, मैसूर मे २७ मिले, राजस्थान म १६ मिल, पजाब म ८ मिले, दिल्ली मे ८ मिलें, उडीसा मे ४ मिलें, बिहार म ५ मिले है। इस प्रकार धीरे-धीरे इस उद्योग का देश के अनेक भागो मे विकेन्द्रीयकरण हो रहा है।

भारत के सूती वस्त्र उद्योग की विशेषताएँ

इस उद्योग की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) भारत के प्रमुख सगठित उद्योगो म इस उद्योग का स्थान महत्वपूर्ण है। यह सबसे बड उद्योगो म है। इस उद्योग के वार्षिक उत्पादन का मूल्य ५१० करोड रुपये के लगभग होता है।

(२) भारत के सूती वस्त्र उद्योग मे काफी मात्रा मे लोगो को रोजगार प्राप्त है। इस उद्योग म लगभग १३ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल रहा है। इसके अतिरिक्त लगभग २७ लाख व्यक्ति हाथ करघे तथा शक्ति चालक करघों मे सलग्न हैं। अत देश के काफी लोगो को रोजगार प्राप्त है।

(३) इस उद्योग से निर्मित माल के निर्यात व्यापार मे देश को प्रतिवर्ष लगभग ५५ करोड रुपय से भी अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

(४) राष्ट्रीय आय मे इस उद्योग का प्रमुख स्थान है। प्रतिवर्ष लगभग १०० करोड रुपया से भी अधिक आय प्राप्त होती है।

(५) जैसे पहले कहा जा चुका है इस समय देश मे लगभग ६५० सूती वस्त्र मिलें हैं। इस उद्योग मे कुल स्थापित क्षमता १७५ २ लाख तकुओं तथा २०८ लाख करघो की है।

(६) इस समय देश म प्रतिवर्ष लगभग ४४० करोड मीटर कपडा मिल क्षेत्र मे बनता है और लगभग ६५ करोड किलोग्राम सूत का उत्पादन होता है।

(७) धीरे-धीरे इस उद्योग का विकेन्द्रीकरण हो रहा है। आरम्भ मे यह केवल महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य मे केन्द्रित था किन्तु आजकल देश के अनेक भागो मे सूती वस्त्र मिलें स्थापित हैं।

सूती वस्त्र उद्योग की समस्याएँ तथा निराकरण के उपाय

भारत में इस उद्योग के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं। यद्यपि सरकार का ध्यान इस तरफ है फिर भी इन समस्याओं का निराकरण नहीं हो पा रहा है। यह उद्योग सकट अवस्था में से गुजर रहा है। अनेक मिलों को नुकसान उठाना पड़ रहा है, लाभ की मात्रा बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी भारतीय सूती वस्त्र की माँग निरन्तर कम हो रही है। इस उद्योग की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं

(१) **कच्चे माल का अभाव**—भारत में उत्तम किस्म की कपास का अभाव रहता है। इस प्रकार की कपास का आयात करना पड़ता है जिसमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में प्रति हैक्टेयर कपास कम उत्पन्न होती है। यद्यपि पिछले वर्षों में लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन देश में बढ़ाने के प्रयत्न किये गये हैं किन्तु माँग की पूर्ति नहीं हो पा रही है। इस समस्या के समाधान के लिए लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन क्षेत्र बढ़ाना चाहिए ताकि मिलों को उचित मूल्य पर कच्चा माल प्राप्त हो सके। इस समय देश में पंजाब महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश तथा मैसूर राज्यों में लम्बे रेशे वाली रूई का उत्पादन हो रहा है। छोटे रेशे वाली कपास का उत्पादन क्षेत्र पिछले वर्षों में घट रहा है तथा लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन क्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा है। इतना होते हुए भी संयुक्त राज्य अमरीका, सूडान, संयुक्त अरब गणराज्य, आदि देशों से लम्बे रेशे वाली कपास का आयात किया जाता है।

देश में प्रति हैक्टेयर कपास के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्तम बीज, खाद तथा सिंचाई के साधनों का विकास करना चाहिए।

(२) **आधुनिकीकरण एवं नवीनीकरण की समस्या**—भारतीय सूती वस्त्र मिलों की यह विकट समस्या है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इन मिलों से अधिक काम लिया गया और इसके पश्चात् एक से अधिक पालियों में उत्पादन कार्य हुआ। इस कारण अधिकांश मशीनें घिस गयी हैं। इन घिसी हुई मशीनों की मरम्मत तथा नयी मशीनों की स्थापना की समस्या उत्पन्न हो गयी है। नयी मशीनों के लगाने पर अधिक व्यय करना पड़ता है। अनुमान है कि इस उद्योग में नवीनीकरण तथा आधुनिकीकरण के लिए २०० करोड़ से भी अधिक पूँजी की आवश्यकता है।

जोशी समिति (१९६३) ने अधिकांश मशीनों को ४० वर्ष से भी पुरानी बतलाया है। बम्बई की अधिकांश मशीनें २५ वर्ष से भी अधिक पुरानी हैं। इन मशीनों पर उत्पादन व्यय अधिक होता है और कपड़े की किस्म भी घटिया होती है। अतः नवीन मशीनों की स्थापना की आवश्यकता है। आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम सूती वस्त्र मिलों को आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा है किन्तु स्थिति में विशेष सुधार नहीं हो पाया है। देश में १९७२ में मशीनों के उत्पादन के सफल प्रयास हुए।

(३) **विवेकीकरण**—भारतीय मिलों में विवेकीकरण का अभाव है। देश में

अनेक अनार्थिक इकाइयाँ हैं। अनेक मिलों का आकार बहुत छोटा है जिससे कम लागत पर उत्पादन हो सके। इन मिलों में श्रमिकों की नियुक्ति प्रशिक्षण तथा कार्य कुशलता में वृद्धि करने के वैज्ञानिक ढंग काम में नहीं लाये जाते हैं। स्वायत्तता का अभाव है। भारत में विवेकीकरण अपनाने से बेरोजगारी की समस्या के अधिक बढ़ने का डर है अतः श्रम संघ इसका विरोध करते हैं। किन्तु इस समस्या के निराकरण के लिए छँटनी किये गये श्रमिकों को कहीं अन्यत्र नियुक्त किया जा सकता है। छोटी अनार्थिक इकाइयों का पुनर्गठन करना चाहिए।

(४) मिलों की निम्न उत्पादकता—उत्पादकता विकास की कसौटी है। अविकसित उद्योगों में उत्पादकता निम्न होती है। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग की उत्पादकता विश्व के अनेक देशों से कम है। निम्न उत्पादकता के कारण उत्पादन व्यय अधिक आता है जिससे लाभ की मात्रा कम होती है। इसका प्रभाव विदेशी व्यापार पर पड़ता है। निम्न उत्पादकता के कारण भारतीय कपड़े की कीमत अधिक रहती है जिससे विदेशी प्रतिस्पर्धा में भारतीय कपड़ा टिक नहीं पाता है। निम्न उत्पादकता के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, घिसी-पिटी मशीनें हैं तथा द्वितीय, श्रमिकों की निम्न उत्पादकता। प्रथम कारण का निराकरण आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण से हो सकता है किन्तु द्वितीय समस्या का समाधान कठिन है क्योंकि भारतीय श्रमिकों की यह सबसे बड़ी समस्या है। इसके समाधान के लिए श्रम शक्ति को उचित प्रशिक्षण तथा अनेक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए।

(५) घटते हुए निर्यात—भारत को आजकल विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। अधिक कीमत होने के कारण भारतीय कपड़े का निर्यात कम हो रहा है। सन् १९५६ से निरन्तर निर्यात में कमी हो रही है। वर्ष १९६७-६८ तथा १९६८-६९ में इसके निर्यात में भारी कमी हुई है।

(६) देशी माँग में कमी—गुजरात सरकार ने अपने राज्य की सूती कपड़े की मिलों की जाँच के लिए श्री मनुभाई शाह की अध्यक्षता में समिति का गठन किया था। इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि अब लोगों की रुचि सूती कपड़े के बजाय नायलोन, टेरीलीन, तथा अन्य नवीन प्रकार के कपड़ों की तरफ अधिक हो गयी है, इस कारण सूती कपड़े की माँग कम हो गयी है। इस समिति ने माँग कम होने का एक अन्य कारण भी बताया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि लोगों की क्रय शक्ति मँहगाई के कारण कम हो गयी है। गरीब जनता का अधिकांश पैसा खाद्य सामग्री पर व्यय हो जाता है। अतः अधिकांश लोग कम कपड़े से काम चलाते हैं।

(७) उत्पादन व्यय में निरन्तर वृद्धि—सूती वस्त्र मिलों की अन्य प्रमुख समस्या उत्पादन व्यय में निरन्तर वृद्धि है। कपास, रासायनिक सामग्री के मूल्यों में वृद्धि के अतिरिक्त मजदूरी में भी अधिक वृद्धि हो गयी है जिससे उत्पादन व्यय में भी वृद्धि हुई है। पिछले कुछ वर्षों में वेतन में लगभग ६५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। "वस्त्र उद्योग में कच्चे माल के निर्देशक मूल्य (index numbers) १९५०-५१ में

१२७६ (१९५२-५३=१००) थे, जबकि १९७०-७१ में यह मूल्य बढ़कर २०६.८ हो गये।"

(८) **रासायनिक पदार्थों का अभाव**—सूती वस्त्र उद्योग में कपड़ों की धुलाई, रंगाई तथा छपाई में रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। ये पदार्थ ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन, गन्धक का तेजाब तथा अनेक प्रकार के रंग हैं जिनकी भारत में कमी है। इस समस्या के निराकरण के लिए रासायनिक पदार्थों का प्रबन्ध करना चाहिए ताकि उचित मूल्य पर मिलों को पर्याप्त मात्रा में ये पदार्थ उपलब्ध हो सकें।

(९) **मिल एवं हाथ करघा समन्वय**—भारत में मिल तथा हाथ करघा एवं शक्ति चालित करघा क्षेत्र अलग-अलग विकास कर रहे हैं। सरकार ने खादी उद्योग को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं जिससे हाथ करघा तथा खादी के कपड़े का प्रचार अधिक बढ़ा है। इस प्रकार इन क्षेत्रों में कड़ी प्रतियोगिता हो रही है। इन दोनों में समन्वय स्थापित करना चाहिए ताकि प्रतियोगिता, जो कि विनाशक है, का अन्त हो सके।

(१०) **किस्म नियन्त्रण (Quality Control)**—'किस्म नियन्त्रण' का महत्व आजकल बहुत बढ़ गया है। कपड़े की किस्म का ऊँचा स्तर स्थापित करना और उसे बनाये रखना आवश्यक है। विदेशी व्यापार में इसका महत्व और भी अधिक है। भारत में किस्म नियन्त्रण की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। अतः भविष्य में किस्म नियन्त्रण की तरफ ध्यान देना चाहिए।

(११) **मिलों के बन्द होने की समस्या**—मनुभाई शाह समिति १९६८ के अनुसार दिसम्बर १९६८ में ६० मिलें बन्द पड़ी थीं। इसके कारण लगभग १ लाख श्रमिक बेकार थे। मिलों के बन्द होने का मुख्य कारण इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होना था। शाह समिति ने सुझाव दिया कि सरकार एक विलीनीकरण आयोग (Merger Commission) की नियुक्ति करे जो कि कमजोर मिलों को सुदृढ़ मिलों में विलीनीकरण कार्य में योगदान दे। भारत सरकार ने इस समिति के सुझावों को मान लिया और १९६९-७० में इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने प्रारम्भ किये।

उपरोक्त समस्याओं के कारण इस महत्वपूर्ण उद्योग को संकट का सामना करना पड़ रहा है। अनेक कारणों से देश में २० से भी अधिक मिलें बन्द हो गयी हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में कई मिलें बन्द हो गयी हैं। कुछ मिलों ने अपना दिवाला निकाल दिया है। यह स्थिति कम लाभ अथवा निरन्तर नुकसान से उत्पन्न हुई है। भारत में अनेक सूती वस्त्र मिलें हानि पर चल रही हैं अतः स्थिति को शीघ्र ही सम्भालना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि जो मिलें पूँजी की कमी के कारण बन्द हो रही हैं उन्हें बैंकों द्वारा सुविधाजनक शर्तों पर ऋण मिलना चाहिए। राज्य सरकारें इस ऋण की गारन्टी बैंकों को दें। कपड़े पर से मूल्य नियन्त्रण समाप्त कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्यों के बिक्री नियमों,

उद्योग विकास बैंको तथा व्यापारिक बैंकों से संगठित रूप से कपड़ा मिलो को धन की सहायता करनी चाहिए। आशा है भविष्य मे उद्योग का पर्याप्त विकास हो सकेगा।

सूती वस्त्र उद्योग एव सरकारी नीति

भारत सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात इस उद्योग की समस्याओं को सुलझाने के लिए समय समय पर अनेक प्रयत्न किये हैं। नियोजन काल में समस्याओं के अध्ययन एव सुझाव हेतु विभिन्न अध्ययन-दलो (समितियों) की नियुक्तियाँ की। समितियो के सुझावो के आधार पर कार्य भी हुआ किन्तु कोई विशद सफलता अभी तक नहीं मिली है। भारत सरकार ने निम्नलिखित समितियाँ इस उद्योग के विकास के सुझाव देने हेतु नियुक्त कीं

(१) **कानूनगो समिति**—कानूनगो समिति ने अपना प्रतिवेदन सितम्बर १९५४ में प्रस्तुत किया। इस समिति ने सुझाव दिया कि भविष्य म अतिरिक्त कपड़े के उत्पादन के लिए शक्ति चालित करघों और हाथ चालित करघों को अधिक विकसित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त साधारण करघों के स्थान पर स्वचालित करघों को अधिक काम म लाया जाए।

(२) **श्री डी० ए० रमन की अध्यक्षता में समिति**—सरकार ने सन् १९५८ में श्री डी० ए० रमन की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की जिसने कपड़े पर उत्पादन कर कम करने का अनुरोध किया। इस समिति ने आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण सुझाव दिया। समिति के अनुसार यह क्रिया धीरे-धीरे की जानी चाहिए ताकि श्रमिको मे बेरोजगारी न बढे। इसके अतिरिक्त स्वचालित करघों की स्थापना पर इस समिति ने भी जोर दिया। भारत सरकार ने इस समिति के सुझाव के आधार पर उत्पादन कर मे कुछ कमी की।

(३) **जोशी समिति**—जोशी समिति ने कपडे की किस्म सुधारने तथा उत्पादन लागत कम करने के लिए आधुनिकीकरण एव नवीनीकरण पर जोर दिया। समिति का यह भी सुझाव था कि निर्यात के लिए विशेष प्रकार के वस्त्रो के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाये। इस समिति ने निर्यात बढाने के लिए अन्य सुझाव भी दिये।

(४) **शाह समिति, १९६८**—भारत सरकार ने सूती वस्त्र उद्योग के पुनर्गठन समस्या के अध्ययन एवं सुझाव देने के लिए मनुभाई शाह की अध्यक्षता में समिति नियुक्त की। समिति ने अपना प्रतिवेदन फरवरी १९६९ मे प्रस्तुत किया। समिति के अनुसार दिसम्बर १९६८ मे ६० मिलें बन्द थी। इन मिलों के बन्द होने का प्रमुख कारण वित्तीय कठिनाइयाँ थीं। इस समिति का सुझाव था कि इन कमजोर मिलों को सुदृढ मिलो मे मिला दिया जाये। इस कार्य के लिए सरकार मे एक विलीनीकरण आयोग स्थापित करने की सिफारिश की। सरकार ने उस समिति की कुछ सिफारिशें स्वीकार की और उनके आधार पर कार्य भी किया है।

उपरोक्त समितियो के अतिरिक्त राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी मिलो की जांच के लिए एक अध्ययन दल की नियुक्ति की थी। इस दल का सुझाव था कि जिन

मिलों की मशीनों पर लाभप्रद उत्पादन नहीं हो सकता तथा जिनकी मशीनें बहुत घिस-पिट गयी हैं उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस दल ने अनेक सुझाव दिये हैं।

भारत सरकार ने कपास की कमी की समस्या को कम करने के लिए अनेक प्रयत्न किये हैं। सन् १९६६ में आयातित कपास के वितरण पर नियन्त्रण किया। कपास की प्राप्ति तथा वितरण का कार्य राज्य व्यापार निगम को दे दिया। वर्ष १९७०-७१ में भी कपास संकट को दूर करने के लिए आयात की गयी कपास के वितरण पर सरकार ने नियन्त्रण किया।

भारत सरकार ने कमजोर मिलों की समस्याओं को सुलझाने के भी अनेक प्रयत्न किये हैं। सरकार ने सन् १९६८ में 'राष्ट्रीय वस्त्र निगम' की स्थापना की। इस निगम ने इस वर्ष के अन्त तक ६ बन्द मिलों को अपने नियन्त्रण के अन्तर्गत लिया।

सरकार ने मध्यम तथा मोटे कपड़े पर वर्ष १९६९-७० के बजट में उत्पादन कर में छूट दी किन्तु अच्छी किस्म के कपड़े पर उत्पादन कर बढ़ा दिया। वर्ष १९७१-७२ के बजट में भी सुपरफाइन, फाइन एवं मध्यम दर्जे के वस्त्रों पर उत्पादन कर में वृद्धि की गयी है।

प्रश्न

१ भारत में सूती वस्त्र उद्योग की प्रगति का ब्यौरा दीजिए और उसके स्थानीयकरण के कारणों पर प्रकाश डालिए। (टी० डी० सी०, पूरक, १९६४)

२ भारत में सूती-वस्त्र उद्योग की वर्तमान स्थिति का विवरण दीजिए। इस उद्योग की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

३ सूती-वस्त्र उद्योग का विवरण निम्न बातों को ध्यान में रखकर दीजिए—(अ) कच्चे माल के स्रोत, (ब) उद्योग के स्थापित होने के अन्य कारण।

अध्याय २६

जूट उद्योग

(JUTE INDUSTRY)

विश्व में भारत जूट का सबसे बड़ा उत्पादक है। यह उद्योग विदेशी व्यापार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निर्यात व्यापार में जूट के बने माल का सर्वप्रथम स्थान रहता है। जूट के बोरे, टाट आदि बनाये जाते हैं। जूट को कपास तथा ऊन के साथ मिलाकर कई प्रकार का सामान बनाया जाता है जैसे रंग-बिरंगे पर्दे, दरियाँ, फर्श पर बिछाने का कारपेट आदि। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत को जूट उद्योग में एकाधिकार प्राप्त था, किन्तु विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान प्रतिस्पर्द्धि में आ गया। भारत में इस उद्योग का कच्चा माल गंगा नदी की निचली घाटी से मिलता है अतः बंगाल में इसका स्थानीयकरण हुआ है।

भारत में जूट उद्योग का आधुनिक विकास सन् १८५५ में प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष कलकत्ता के निकट रिशरा नामक स्थान पर जूट मिल की स्थापना हुई। यह मिल एक अंग्रेज और एक बंगाली व्यापारी की साझेदारी में स्थापित की गयी। इससे पूर्व यह उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में प्रचलित था। धीरे-धीरे कलकत्ता के निकट हुगली नदी के किनारों पर अनेक मिलें स्थापित हुईं। सन् १८५९ से शक्ति चालित करघों का उपयोग होने लगा। इसके पश्चात् १८८२ में देश में जूट मिलों की संख्या २२ हो गयी तथा लगभग २५ हजार व्यक्ति इनमें कार्य कर रहे थे। जूट मिलों का विकास प्रथम महायुद्ध में तेज गति से हुआ। सन् १९१४ में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस वर्ष के अन्त तक देश में ६४ मिलें थीं जिनमें लगभग १ लाख ७५ हजार व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त था। इस काल में जूट मिलों ने काफी लाभ कमाया और इनकी स्थिति अच्छी हो गयी। सन् १९२९ के पश्चात विश्वव्यापी मन्दी के कारण इस उद्योग को गहरा धक्का लगा। माँग में कमी हुई जिससे मिलों के सामने अधिक उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो गयी।

सन् १९२९ में भारत में जूट मिलें ९५ थीं और लगभग ३ लाख व्यक्ति इस उद्योग में संलग्न थे। इस समय करघों की संख्या ४०,४७७ हो गयी। सन् १९३७ तक विशेष सुधार नहीं हो पाया जिसके कारण इस वर्ष कार्य घण्टों का ४५ प्रति सप्ताह तक नियन्त्रण किया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ हो जाने से इस उद्योग की स्थिति पुनः सुधरने लगी। इस काल में जूट के सामान की माँग बढ़ी। युद्धोपरान्त मिलों की संख्या १०६ हो गयी। इस समय तक करघों की संख्या ६६ हजार हो गयी।

विभाजन का जूट उद्योग पर प्रभाव

देश के विभाजन का जूट उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस समय इस उद्योग के समक्ष सकट उपस्थित हो गया। विभाजन के कारण जूट उत्पादन क्षेत्र का दो-तिहाई भाग पाकिस्तान में चला गया जबकि अधिकाश जूट मिलें भारत में रह गयी। इससे कच्चे माल की उपलब्धि की समस्या भयकर हो गयी। इस समय पाकिस्तान से जूट प्राप्त करने मे कठिनाई थी। अत देश के अन्य भागो जैसे बिहार, उडीसा तथा आन्ध्र प्रदेश मे जूट के उत्पादन के प्रयत्न किये गये। इनमे पर्याप्त सफलता मिली। वर्ष १९५०-५१ मे ३२८ लाख गाँठो का उत्पादन हुआ जबकि १९४८ मे १७ लाख गाँठो का ही उत्पादन हुआ था।

जूट उद्योग का विकास निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है

जूट उद्योग का विकास

वर्ष	मिलों की सख्या	अधिकृत पूँजी (करोड रुपये)	करघो की सख्या (हजार मे)	तकुओं की सख्या (हजार मे)
१८७९-८० से १८८३-८४ (औसत)	२१	२७१	५५	८८
१८९९-१९०० से १९०३-०४ (औसत)	३६	६८०	१६२	३३५
१९०९-१० से १९१३-१४ (औसत)	६०	१२०९	३३५	६९२
१९२५-२६	९०	२१३५	५०५	१,०६४
१९३०-३१	१००	२३६१	६१८	१,२२५
१९३७-३८	१०५	२८८९	५७४	१,१०८
१९४६-४७	१०६	—	६६०	१,२६५

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जूट उद्योग के विकास के साथ मिलो की सख्या तथा अधिकृत पूँजी मे निरन्तर वृद्धि हुई है। करघो की सख्या तथा तकुओं की सख्या मे १९३७-३८ मे १९३०-३१ की तुलना मे कमी हुई। इसके पश्चात पुन वृद्धि हुई। सन् १९४७ मे देश मे १०५२ लाख टन जूट की वस्तुओ का निर्माण हुआ।

योजना काल मे उद्योग की प्रगति

प्रथम योजना

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कच्चे माल की प्राप्ति की समस्या के निराकरण के प्रयत्न किये गये। इस दृष्टि से आत्म-निर्भर होने के लिए जूट के उत्पादन मे वृद्धि की गयी। इस काल मे अधिक कारखाने नही खोले गये क्योंकि कच्चे माल का अभाव था। प्रथम योजना के आरम्भ (१९५०-५१) मे जूट के सामान का उत्पादन ८३७ लाख टन था जो कि वर्ष १९५५-५६ मे बढकर १०७१ लाख टन हो गया। कच्चे माल के उत्पादन को बढाने के अनेक प्रयत्नों से १९५५-५६ में ४१६८ लाख

गाँठों का उत्पादन हुआ जबकि योजना के आरम्भ मे ३३ ८३ लाख गाँठें था। इस योजना के अन्तिम वर्ष मे ८ ६० लाख टन जूट निर्मित माल का निर्यात किया गया। इस काल में कच्चे माल के लिए अधिकतम मूल्य निर्धारित कर दिया। जूट उद्योग की जाँच के लिए प्रथम योजना मे एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने कच्चे माल के उत्पादन के सुझाव दिये।

द्वितीय योजना

इस योजना के आरम्भ तक भारत जूट के कच्चे माल के उत्पादन में आत्म निर्भर नहीं हो पाया अत इसके लिए प्रयत्नों को प्राथमिकता प्रदान की गयी। प्रथम योजना की तरह इसमे भी मिलो की सख्या न बढाने पर जोर दिया गया और जूट के उत्पादन का बढाने पर विशेष जल दिया गया। इस योजना के अन्तिम वर्ष मे ४२ ७ लाख गाँठो का उत्पादन हुआ जबकि लक्ष्य ६५ लाख गाँठ रखा गया था। जूट निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में कुछ वृद्धि हुई। वर्ष १९६०-६१ में १० ९७ लाख टन का उत्पादन हुआ जो कि वर्ष १९५५ ५६ की तुलना मे २६ हजार टन अधिक था। जूट निर्मित वस्तुओं का निर्यात ७ ९६ लाख टन था जो कि २१० ६ करोड रुपये के मूल्य का था। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे आधुनिकीकरण पर भी ध्यान दिया गया।

तृतीय योजना

तृतीय पचवर्षीय योजना म जूट का उत्पादन लक्ष्य ७५ लाख गाँठें रखा गया। इस काल मे जूट के निर्मित माल का वास्तविक उत्पादन सन्तोषजनक रहा। योजना मे रखे गय लक्ष्य की पूर्ति की गयी। वर्ष १९६५-६६ मे जूट के निर्मित माल का उत्पादन १३ ०२ लाख टन था जबकि लक्ष्य १३ लाख टन का रखा गया था। इस वर्ष जूट के निर्मित माल का निर्यात ९ ०० लाख टन था जो कि २८८ करोड रुपये का था।

जूट उद्योग का उत्पादन

वर्ष	इकाई	उत्पादन
१९५० ५१	लाख टन	८ ३७
१९५५-५६	,,	१० ७१
१९६०-६१	,,	१० ९७
१९६५-६६	,,	१३ ०२
१९६६-६७	,,	११ १७
१९६७ ६८	,,	११ ५६
१९६८-६९	,,	९ १८
१९७०-७१ अनुमानित	,,	१३ ००
१९७३-७४ (लक्ष्य)	,,	१७ ००

(*Source—Economic Survey*, 1969-70, Govt of India, and *Fourth Five Year Plan*, 1969-74)

वार्षिक योजना एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

तीन वार्षिक योजनाओं (१९६६-६९) के काल में तीनों वर्षों में जूट के सामान का उत्पादन सन्तोषजनक नहीं रहा। वर्ष १९७३-७४ में १७ लाख टन जूट निर्मित माल का उत्पादन होने का लक्ष्य है। आशा है चतुर्थ योजना का यह लक्ष्य पूर्ण हो जायगा। चतुर्थ योजना के १७ लाख टन के लक्ष्य में ११ लाख टन निर्यात के लिए होगा और ६ लाख टन देश में उपयोग करने के लिए। इस पंचवर्षीय योजना में जूट मिलों की क्षमता के विस्तार करने का भी प्रस्ताव है। वर्ष १९७०-७१ में जूट तथा जूट के सामान के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथा वर्ष १९७१-७२ में जूट तथा जूट निर्मित सामान के मूल्य भी नीचे हो जाने की सम्भावना है। इस समय उद्योग की क्षमता बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस उद्योग की १२ मिलें बन्द पड़ी थीं जिनमें से अब तक ३ खुल चुकी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य दो मिलें खोलने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। शेष सात मिलें अनार्थिक आकार की हैं अतः उनका खोलना अनुपयुक्त है।

व्यापार

विभाजन से पूर्व भारत को जूट निर्मित माल के निर्यात व्यापार में एकाधिकार प्राप्त था। किन्तु विभाजन के पश्चात् कच्चे माल के अभाव में एकाधिकार समाप्त हो गया और प्रतिस्पर्धा चालू हो गयी। जूट के सामान के निर्यात की स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाती है

जूट निर्मित माल का निर्यात

वर्ष	निर्यात	
	मात्रा (लाख टन)	मूल्य (रु १० लाख)
१९६०-६१	७ ६६	२१२ ६
१९६५-६६	९ ००	२८८ ०
१९६६-६७	७ ३५	२४६ ५
१९६७-६८	७ ५३	२३४ १
१९६८-६९	६ ५३	२१८ ०
१९७०-७१ (अनुमानित)	—	२१४ ०

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष में सबसे अधिक निर्यात हुआ जबकि तीन वार्षिक योजनाओं (१९६६-६९) में इस तरफ विशेष प्रगति नहीं हुई। सन् १९७० में जूट निर्मित सामान के निर्यात से लगभग १५% आय थी जो कि वर्ष १९६९ की तुलना में कम थी। यह कमी अमरीका की माँग में कमी के कारण हुई। वर्ष १९७१-७२ में जूट के निर्मित सामान के अधिक निर्यात की सम्भावना है। भारत से जूट का तैयार माल संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अफ्रीका, इंग्लैण्ड, अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैण्ड तथा कुछ अन्य देशों को भेजा जाता है।

जूट उद्योग के क्षेत्र

भारत में पश्चिमी बगाल, आन्ध्र, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा आदि राज्यों में जूट मिलें हैं। इस उद्योग का सर्वाधिक विकास पश्चिमी बगाल में हुआ। पश्चिमी बगाल में सुन्दरवन हुगली क्षेत्र में इस उद्योग का स्थानीयकरण हुआ है। इस क्षेत्र में जूट उद्योग के अधिक विकास के निम्नलिखित कारण हैं :

(१) जूट उत्पादन क्षेत्र—जूट उत्पादन क्षेत्र गगा नदी की निचली घाटी है। इस घाटी में चिकनी दोमट मिट्टी पायी जाती है जो कि जूट उत्पादन के लिए उपयुक्त होती है। गगा ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में नदियाँ प्रतिवर्ष उपजाऊ मिट्टी बिछा देती हैं। इनके कारण जूट की खेती इस क्षेत्र में अच्छी होती है। कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्र होने के कारण यहाँ देश की अधिकाश मिलें स्थापित हो गयीं।

(२) बन्दरगाह की निकटता—कलकत्ता बन्दरगाह की निकटता के कारण यह उद्योग अधिक पनप पाया। विभाजन से पूर्व इस बन्दरगाह से कच्चा जूट भी निर्यात होता था जिससे कलकत्ता जूट की प्रमुख मण्डी बन गया। तैयार माल का अधिकाश भाग निर्यात किया जाता है जो कि कलकत्ता से होता है। इस सुविधा के कारण अधिकाश मिलें इसी क्षेत्र में स्थापित हुई।

(३) शक्ति के साधनों की उपलब्धि—जूट उद्योग के विकास के आरम्भ में जल विद्युत का प्रयोग नहीं होता था। उस समय कोयला शक्ति का प्रमुख साधन था। रानीगंज तथा झरिया की कोयले की खानें इस क्षेत्र के निकट हैं जिनसे पर्याप्त मात्रा में कोयला, उपलब्ध हो जाता था। रेलवे मार्ग भी कलकत्ता से जुड़ा हुआ होने के कारण कोयला लाने में कठिनाई नहीं होती।

(४) यातायात की सुविधा—इस क्षेत्र में गगा, ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों द्वारा सस्ते जल यातायात की सुविधा उपलब्ध है। कच्चे माल को मिलों तक पहुँचाया जा सकता है। तैयार माल को बाजार तक पहुँचाने के लिए यातायात की पर्याप्त सुविधाएँ हैं। देश के आन्तरिक भाग सड़क यातायात तथा रेलवे लाइनों द्वारा जुड़े हुए हैं। यातायात के साधनों के पर्याप्त विकास ने इस उद्योग के स्थानीयकरण में सहायता की।

(५) सस्ती श्रम शक्ति—यह क्षेत्र घना आबाद है। अत श्रम शक्ति का अभाव नहीं है। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, आदि राज्यों के मजदूर भी आकर जूट मिलों में काम करते हैं। औद्योगिक दृष्टि से अधिक उन्नत होने के कारण कुशल श्रमिकों की कमी नहीं रहती।

(६) अनुकूल जलवायु—इस उद्योग को भी सूती वस्त्र उद्योग की भाँति नम जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। समुद्र के निकट स्थित होने के कारण बगाल क्षेत्र इस उद्योग के लिए अधिक उपयुक्त रहा। इसके अतिरिक्त अधिकाश मिलें नदी के किनारे स्थापित की गयी हैं अत जलवायु में नमी रहती है।

(७) पर्याप्त जल—जूट उद्योग के लिए प्रचुर मात्रा में जल की आवश्यकता

होती है। जूट का रेशा धोने तथा गलाने के लिए स्वच्छ जल आवश्यक है। अतः जल की आवश्यकता के कारण ही यह उद्योग नदी के किनारे स्थापित हुआ है। हुगली नदी से जूट उद्योग को पर्याप्त जल उपलब्ध हो जाता है। अतः इस उद्योग के स्थानीयकरण में जल की प्रचुरता का महत्त्वपूर्ण हाथ है।

(८) पर्याप्त पूँजी का उपलब्ध होना—भारत का महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण कलकत्ता में पूँजी की पर्याप्त सुविधा है। इनके साथ-साथ बीमा कम्पनियों तथा बैंकों की सुविधा के कारण इस उद्योग का अधिक विकास हुआ।

उपर्युक्त अनेक सुविधाओं के कारण जूट उद्योग की मिलें हुगली नदी के दोनों किनारों पर स्थापित हुई हैं। इस क्षेत्र में देश के ९० प्रतिशत जूट के सामान का उत्पादन होता है। मुख्य केन्द्र टीटागढ़, श्रीरामपुर, शिवपुर, हावड़ा, श्यामनगर, काकनारा, होरी नगर, बारकपुर आदि हैं।

पश्चिमी बंगाल के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश में ४ मिलें, बिहार राज्य में ३ मिलें उत्तर प्रदेश में ३ मिलें तथा मध्य प्रदेश में १ मिल है। इन राज्यों में अनेक सुविधाओं के अभाव में इतनी उन्नति नहीं हो पायी जितनी बंगाल में। बंगाल के अतिरिक्त जिन राज्यों में ये मिलें हैं वे स्थानीय माँग की पूर्ति करती हैं।

भारत के जूट उद्योग की विशेषताएँ

भारत का जूट उद्योग वृहत् उद्योगों में महत्त्वपूर्ण है। निर्यात व्यापार में इसका प्रमुख योगदान है। इस उद्योग की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(१) यह उद्योग देश के थोड़े से भाग में केन्द्रित है। बहुत थोड़ी मिलें अन्य क्षेत्रों में स्थापित हुई हैं। ये मिलें हुगली नदी के दोनों किनारों पर लगभग ९० किलोमीटर लम्बी और ३ किलोमीटर चौड़ी पट्टी में स्थित हैं।

(२) भारत के निर्यात व्यापार में इस उद्योग का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रतिवर्ष लगभग २४० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में २८८ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा जूट निर्मित माल के निर्यात से प्राप्त हुई।

(३) भारतीय जूट उद्योग से निर्मित माल अधिक मजबूत होता है। यद्यपि आजकल विश्व के अनेक देशों ने अन्य रेशों से भी थैले और बोरे बनाये हैं किन्तु ये जूट की वस्तुओं की अपेक्षा कम टिकाऊ होते हैं। इनका उपयोग अनेक बार हो सकता है।

(४) जूट उद्योग में लगभग २.७६ लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध है। अतः इस उद्योग का देश की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(५) पश्चिमी बंगाल में इस उद्योग की मिलों का केन्द्रीयकरण विश्व में महत्त्वपूर्ण है। विश्व के लगभग ५४ प्रतिशत करघे इसी क्षेत्र में लगे हुए हैं।

(६) वर्तमान समय में इस उद्योग का वार्षिक उत्पादन लगभग १३ लाख टन

है। वर्ष १९६५-६६ के पश्चात दो वर्ष तक कम उत्पादन हुआ किन्तु १९७०-७१ म उत्पादन सन्तोषजनक रहा।

(७) इस उद्योग मे ९२ ३१ करोड रुपय की पूंजी लगी हुई है।

जूट उद्योग की समस्याएँ

जूट उद्योग की मांग विदेशो म निरन्तर गिर रही है क्योकि अनेक देशो मे नयी किस्म के रेशो का प्रयोग करके पैसे कमाय जान लग हैं। इसमे इस उद्योग को नुकसान पहुंचा है। इस उद्योग के समक्ष वर्तमान समस्याएं निम्नलिखित हैं :

(१) **कच्चे माल की कमी**—देश के विभाजन के पश्चात् भारतीय जूट उद्योग के सामन यह बहुत बडी समस्या है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे जूट का उत्पादन बढाने के अनेक प्रयत्न किय गय हैं जिनमे उत्पादन मे वृद्धि अवश्य हुई है किन्तु सम्पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग करने के लिए कच्चे माल का अब भी अभाव है। भारत म उत्तम किस्म का जूट जोकि चमकीला है, कम माना मे पैदा होता है। भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे जूट का उत्पादन लक्ष्य ५१ लाख गाँठ था किन्तु वास्तविक उत्पादन ४२ लाख गाँठें हो सका। द्वितीय योजना म भी मांग के आधार पर लक्ष्य ७२ लाख गाँठें था किन्तु वास्तविक उत्पादन ४० लाख गाँठें ही रहा। तृतीय योजना तथा एक वर्षीय योजनाओ (वर्ष १९६६-६७, १९६७ ६८, १९६८-६९) मे भी मांग से कम उत्पादन हुआ। द्वितीय पचवर्षीय योजना से जूट की कमी म सुधार करने का प्रयत्न चल रहा है। मेस्ता से लगभग ११ लाख गाँठो की कमी की पूर्ति की जा रही है किन्तु फिर भी कच्चा माल आयात करके काम चलाया जा रहा है।

उत्तम किस्म की जूट उत्पादन तथा प्रति हैक्टेयर उत्पादन मे वृद्धि करने के अधिक प्रयत्न करन चाहिए ताकि उत्पादन बढ सके।

(२) **आधुनीकरण**—भारत मे अधिकाश जूट मिलें पुरानी हैं। ये काफी घिस चुकी हैं अत इनका आधुनिकीकरण आवश्यक है। पचवर्षीय योजनाओ मे आधुनिकीकरण मे काफी प्रगति हुई है। कुल ५ ३२ लाख लगे हुए पुराने तकुओं मे से लगभग ४ ३० लाख का आधुनिकीकरण हो चुका है। योजना आयोग के अनुमानो के आधार पर चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे जूट वस्त्र मिलो के लिए मशीनों तथा पुर्जों की माँग की पूर्ति के लिए ६९ करोड रुपय की आवश्यकता पडेगी। माँग का अधिकाश भाग देशी मशीनो तथा पुर्जों म पूरा किया जायगा। शेष भाग लगभग १० करोड रुपये की मशीन तथा पुर्जे विदेशो से मँगवाये जायेंगे।

सभी घिसी हुई मशीनों का आधुनीकरण करने के प्रयत्न करने चाहिए ताकि उत्पादकता मे वृद्धि हो सके।

(३) **विदेशी प्रतिस्पर्द्धा की समस्या**—जूट के निर्यात व्यापार मे पाकिस्तान प्रतियोगिता मे सामन आ गया। पिछले वर्षों म वहाँ जूट उद्योग का पर्याप्त विकास हुआ है। पाकिस्तान के अलावा कुछ अन्य देश भी इस उद्योग का विकास कर

रहे है। पाकिस्तान मे उत्तम किस्म का जूट पैदा होता है तथा मशीनें नवीन हैं अत प्रतियोगिता मे आगे बढने के लिए अच्छी किस्म की जूट के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। मशीनों के अभिनवीकरण में अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। पाकिस्तान में जूट उद्योग की प्रगति पिछले वर्षों मे पर्याप्त हुई है किन्तु इस वर्ष पूर्वी बंगाल की सब व्यवस्था जहाँ यह उद्योग विकसित हुआ है, अस्त-व्यस्त हो चुकी है। पश्चिमी पाकिस्तान ने पूर्वी बंगाल की अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया है। संघर्ष इन दोनो मे भी जारी है। अपार जन धन की हानि हुई है। इसका प्रभाव जूट उद्योग पर भी पड रहा है। इस स्थिति मे भारतवर्ष अपने जूट निर्मित सामान का विदेशो मे अधिक निर्यात कर सकता है।

(४) जूट के मूल्यों में वृद्धि—कच्चे जूट के मूल्यों मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस वजह से उत्पादन लागत मे भी वृद्धि हुई है। ऊँचे मूल्यों के कारण भारतीय जूट के सामान की लोकप्रियता समाप्त होती जा रही है। इनके अतिरिक्त श्रमिकों का वेतन भी निरन्तर बढता जा रहा है जबकि उनकी उत्पादकता मे विशेष वृद्धि नही हो पा रही है। इस कारण ऊँची उत्पादन लागत पडती है जिससे विदेशी माँग घट रही है। कच्चे जूट के मूल्य मे होने वाली वृद्धि को रोकने का प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है। कीमतो मे उतार-चढाव मौसमी भी होते हैं। इस समस्या के *समाधान के लिए 'समीकरण भण्डार एजेन्सी' की स्थापना करना उचित रहेगा।*

(५) स्थानापन्न वस्तुओं का उपयोग—जिन देशों में काफी वर्षों से जूट का *सामान निर्यात करते आ रहे हैं उनमे आजकल स्थानापन्न वस्तुओं का उपयोग होने* लग गया है। भारत से टाट के बोरो का निर्यात किया जाता है जिनके स्थान पर अब अन्य प्रकार के बोरो का *प्रयोग किया जाने लगा है। अमरीका मे कागज के* बोरो का प्रयोग बढ रहा है। इन वर्षों मे सिन्थेटिक पैंकिंग का प्रयोग अधिक लोकप्रिय हुआ है। पोलीथलीन तथा पोली प्रॉपलीन का उपयोग पैंकिंग के स्थान पर अच्छी तरह से किया जा सकता है। अत जूट निर्मित सामान की माँग कम होने की सम्भावना है। इस समस्या के निराकरण के लिए लागत व्यय मे कमी लाकर नीचे मूल्यों पर बाजार मे माल प्रस्तुत करना आवश्यक है।

कृत्रिम पैंकिंग व्यवस्था की प्रतिस्पर्धा मे टिकने के लिए हमारे सामने दो विकल्प हो सकते हैं। प्रथम, जूट के नये-नये उपयोग के लिए अनुसन्धान किये जायें। द्वितीय, जूट निर्मित सामान पर्याप्त सस्ता उपलब्ध कराया जाये। भारतीय जूट उद्योग ने जूट के नये उपयोग के विषय मे प्रयत्न शुरू कर दिये हैं। भारतीय जूट संघ ने इसके लिए शोध संस्थान स्थापित की है।

(६) जूट मिलों की मशीनों का अभाव—भारत मे मिलो के लिए आधुनिक मशीनों का अभाव है। अनेक प्रकार की मशीनों तथा यन्त्रों पर विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि आजकल देश मे जूट मिल की मशीनरी तैयार की जा रही है किन्तु अभी बहुत कमी है। देश मे वर्ष १९६५-६६ मे ३.२१ करोड़ रुपये की

मशीनें तथा पुर्जे बनाये गये। वर्ष १९७०-७१ में ५.४२ करोड़ रुपये की मशीन तथा पुर्जे निर्मित किये गये। इस तरफ भविष्य में अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि विदेशों से मशीनें नहीं मँगवानी पड़े।

(७) अन्य—भारत में इस उद्योग से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्यों की अधिक सुविधा नहीं हुई। अनेक समस्याओं के अध्ययन के लिए अनुसन्धान कार्य अत्यन्त आवश्यक है। भारत में जूट उद्योग अनुसन्धान संस्थान (Jute Industry Research Institute) कलकत्ता में स्थित है और इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त कुशल श्रमिकों व तकनीकी विशेषज्ञों का अभाव, निम्न उत्पादकता आदि अन्य मुख्य समस्याएँ हैं।

उपर्युक्त समस्याओं के कारण निम्न उत्पादकता की समस्या उत्पन्न होती है। उत्पादकता में सुधार किये बिना इस उद्योग का विकास कठिन है क्योंकि विदेशी प्रतिस्पर्द्धा में कम कीमत पर माल बेचना होगा। जोकि निम्न उत्पादकता की स्थिति में कठिन है।

जूट उद्योग की समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार ने अनेक प्रयत्न किये हैं। सन् १९५४ में 'जूट जाँच आयोग' की नियुक्ति की गयी थी। इस आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये थे

(१) इस उद्योग के लिए विकास परिषद् बनाना चाहिए।

(२) अधिक नयी मिलें नहीं खोलनी चाहिए क्योंकि कच्चे माल की समस्या है।

(३) सरकार को करों में छूट देनी चाहिए।

(४) कच्चे माल के मूल्य पर नियन्त्रण एवं वितरण के लिए क्षेत्रीय व्यवस्था करनी चाहिए।

(५) मिलों में आधुनिकीकरण करना चाहिए।

उक्त सुझावों को सरकार ने स्वीकार किया तथा इनके आधार पर कुछ हद तक कार्य भी किया। उद्योग की स्थिति में कुछ सुधार भी हुआ। जूट का उत्पादन बढ़ा तथा जूट के सामान में भी वृद्धि हुई। आधुनिकीकरण के लिए भी धन की व्यवस्था की गयी।

भारत सरकार ने १९६२ में एक अन्य समिति की नियुक्ति की जिसने अपनी रिपोर्ट में निम्न सुझाव दिये

(१) प्रति हैक्टेयर उपज बढ़ाने के लिए उत्तम किस्म के बीज तथा रासायनिक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

(२) मिलों को शक्ति की सुविधा नियमित रूप से उपलब्ध होनी चाहिए।

(३) कच्चे माल (जूट) के आयात पर से नियन्त्रण समाप्त किया जाये।

(४) जूट निगम बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए।

(५) जूट की विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए बाजार के अध्ययन के लिए व्यवस्था करनी चाहिए।

इन सुझावों को आंशिक रूप में अपनाया गया। प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

सितम्बर १९६४ में एक 'जूट उद्योग सलाहकार मण्डल' (Jute Textile Consultative Board) का उद्घाटन किया गया। यह बोर्ड सरकार को जूट उद्योग के विकास के सम्बन्ध में सलाह देता रहेगा। आशा है भविष्य में इस उद्योग का अधिक विकास होगा तथा निर्यात व्यापार में यह महत्त्वपूर्ण बना रहेगा।

प्रश्न

१ भारत में जूट उद्योग के स्थानीयकरण के क्या कारण हैं ? विभाजन का इस उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ा ? (प्रथम वर्ष टी० डी० सी० १९६०)

२ जूट उद्योग का संक्षिप्त इतिहास लिखते हुए पंचवर्षीय योजना में विकास पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

अध्याय २७

चीनी उद्योग

(SUGAR INDUSTRY)

चीनी उद्योग संगठित उद्योगों में एक प्रमुख उद्योग है। यह उद्योग कृषि पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित है। गन्ना, जो कि व्यावसायिक फसल है, इस उद्योग का कच्चा माल है। गन्ने से चीनी तैयार की जाती है। गन्ने से शक्कर बनाने की प्रक्रिया सबसे पहले भारत में ज्ञात की गयी। भारत प्राचीन काल से ही गुड़ एवं खण्डसारी बनाता आ रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी तक यहाँ से देशी खांड निर्यात होती थी। आधुनिक ढंग से शक्कर बनाने की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी में उन्नत हो पायी है। भारतीय अर्थव्यवस्था में इस उद्योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें करोड़ों रुपये की पूँजी लगी हुई है और डेढ़ लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध है। सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त होती है। पिछले कुछ वर्षों से चीनी का निर्यात भी हो रहा है जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित की जा रही है।

चीनी उद्योग का संक्षिप्त इतिहास

भारत में यह उद्योग १९वीं शताब्दी में छोटे पैमाने पर घरेलू धन्धे के रूप में प्रचलित था। इस उद्योग का आधुनिक विकास २०वीं शताब्दी के आरम्भ से हुआ। सर्वप्रथम आधुनिक कारखानों की स्थापना आरम्भ हुई। इस उद्योग की १९३० तक कोई विशेष प्रगति नहीं हो पायी। इस समय तक देश में केवल ३२ चीनी के कारखाने थे। सन् १९३१ में एक प्रशुल्क बोर्ड की नियुक्ति की गयी। इस बोर्ड के सुझावों के आधार पर आयातित चीनी पर संरक्षण-कर लगा दिया गया। इस संरक्षण से भारत के चीनी कारखानों की संख्या बढ़ने लगी इसके फलस्वरूप सन् १९३८ में १३२ कारखाने हो गये। सन् १९३७ में मन्दी आयी जिसके परिणाम स्वरूप अधिक उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो गयी। इससे प्रतियोगिता बढ़ी। इसको रोकने के लिए शुगर सिण्डीकेट (Sugar Syndicate) की स्थापना हुई और उत्तर प्रदेश व बिहार में चीनी नियन्त्रण अधिनियम पास किये गये।

द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने के कारण १९३९ में चीनी की माँग पुनः बढ़ने लगी। माँग की वृद्धि के साथ-साथ मूल्यों में भी वृद्धि हुई। सन् १९४२ के पश्चात् चीनी मूल्य नियन्त्रण तथा राशनिंग लागू करना पड़ा। चीनी उद्योग पर विभाजन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि अधिकांश चीनी मिलें तथा गन्ना

उत्पादन क्षेत्र भारत में ही रहे। सन् १९४७ में चीनी पर से नियन्त्रण समाप्त कर दिया गया किन्तु १९४८ में पुनः नियन्त्रण किया गया।

चीनी उद्योग का विकास

वर्ष	चीनी मिलों की संख्या	उत्पादन (हजार टन)
१९३१-३८	३२	१६०
१९३८-३९	१३२	६४२
१९४५-४६	१३८	९२३

इस तालिका से स्पष्ट है कि मिलों की संख्या की वृद्धि से उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। संरक्षण प्रदान करने से उद्योग का पर्याप्त विकास हुआ। वर्ष १९४५-४६ में चीनी का उत्पादन सन्तोषजनक रहा। सन् १९५० में संरक्षण हटा लिया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं में चीनी उद्योग

'प्रथम पंचवर्षीय योजना' के आरम्भ में भारत में १३८ चीनी के कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता १५ लाख टन थी और इस वर्ष ११ ०१ लाख टन चीनी का उत्पादन भी हुआ। योजना के अन्त तक १४३ चीनी कारखाने हो गये और उत्पादन १८ ६० लाख टन हो गया। इस योजना में चीनी के उत्पादन लक्ष्यों की पूर्ति की गयी। आरम्भ में लक्ष्य १५ लाख टन चीनी उत्पादन का रखा गया था जो बाद में १८ लाख टन कर दिया गया था। वास्तविक उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। इस योजना के लक्ष्य माँग को ध्यान में रखकर निर्धारित किये थे किन्तु माँग आशा से अधिक तेजी से बढ़ी जिसकी पूर्ति नहीं हो पायी।

'द्वितीय पंचवर्षीय योजना' में चीनी विकास कार्यों पर ५१ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गयी। इस योजना में चीनी उत्पादन का लक्ष्य २२.५ लाख टन रखा गया था जिसे बाद में २५ लाख टन कर दिया गया। इस योजना में ५७ चीनी के नये कारखानों के लाइसेन्स दिये गये जिनमें २९ सहकारी क्षेत्र की मिलों के लिए थे। योजना के आरम्भ में चीनी की माँग बहुत बढ़ गयी जिसके कारण उत्पादन को बढ़ाने में प्रोत्साहन मिला। सन् १९६१ में कारखानों की संख्या बढ़ कर १७५ हो गयी। वर्ष १९६०-६१ में चीनी का कुल उत्पादन ३० २९ लाख टन था जो माँग से अधिक था। इस समय चीनी पर लगे हुए सभी नियन्त्रण समाप्त कर दिये गये।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' में चीनी के उत्पादन का लक्ष्य ३५ लाख टन निर्धारित किया गया। इस योजना के प्रथम तीन वर्षों में उत्पादन में काफी गिरावट आयी। वर्ष १९६१-६२ में वास्तविक उत्पादन २९ ८० लाख टन हुआ तथा वर्ष १९६२-६३ में २१ ५० लाख टन ही चीनी का उत्पादन हुआ। वर्ष १९६३-६४ में भी विशेष सुधार नहीं हुआ किन्तु वर्ष १९६४-६५ में उत्पादन पुनः बढ़ना चालू

हुआ। योजना के अन्तिम वर्ष उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई। इस योजना के प्रथम तीन वर्षों मे उत्पादन कम होने के कारण गन्ने के उत्पादन मे कमी थी। इस बार में गुड तथा खण्डसारी मे अधिक गन्ना काम में लाया गया क्योंकि इनके भाव अच्छे थे। इससे चीनी मिलों को गन्ना नहीं मिल पाया।

सन् १९६२ मे क्यूबा सकट के बाद मे भारत ने चीनी के अन्तरराष्ट्रीय बाजार मे प्रवेश किया। तब से प्रतिवर्ष भारत तीन साढे तीन लाख टन चीनी का निर्यात करता आ रहा है। निर्यात मे आगे और भी वृद्धि की जा सकती है।

भारत में चीनी उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)
१९५०-५१	११·०१
१९५५-५६	१८ ६०
१९६०-६१	३० २६
१९६५-६६	३५ १०
१९६६-६७	२१ ४७
१९६७-६८	२२ ४६
१९६८-६९	३५ ५६
१९६९-७०	४२ ७
१९७३-७४	४८ ६५

वार्षिक योजनाएँ एवं चतुर्थ पचवर्षीय योजना

तृतीय योजना के पश्चात् चीनी के उत्पादन में कमी हुई। बाद के तीन वर्षों मे भी उत्पादन में विशेष वृद्धि नही हुई। अब १९६८-६९ मे २९ लाख टन चीनी के उत्पादन का अनुमान लगाया गया है जो कि मांग से कम है। वर्ष १९६६-६७ में पूर्ण नियन्त्रण की जगह आंशिक नियन्त्रण कर दिया गया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे चीनी के उत्पादन का लक्ष्य ४७ लाख टन रखा गया है जो कि वर्तमान उत्पादन की तुलना मे बहुत अधिक है। वर्ष १९७०-७१ मे ३८ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ। हाल ही मे भारत में सरकार ने चीनी पर से नियन्त्रण हटा लिया है।[1] किन्तु मिलो मे चीनी के विकास पर सरकारी नियन्त्रण जारी रहेगा। २५ मई, १९७१ को खाद्य एव कृषि मन्त्री ने लोकसभा में नवीन चीनी नीति की घोषणा की है। इस नीति के अनुसार गन्ना उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए गन्ने के न्यूनतम मूल्य नियन्त्रित रहेंगे। इस नवीन नीति से चीनी उद्योग का विकास अधिक होने की सम्भावना है।

विदेशी व्यापार

देश मे चीनी का उत्पादन सन्तोषजनक है और सीमित मात्रा में चीनी

---

1 *The Economic Times*, May 26, 1971, p 1.

का निर्यात किया जाता है। निर्यात की वर्तमान स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है

चीनी का निर्यात

वर्ष	मात्रा (लाख टन)
१९६०-६१	० ५६
१९६५-६६	३ ११
१९६६-६७	३ ५४
१९६७-६८	२ २८
१९६८-६९	० ९९
१९६९-७०	२ ००

चीनी के निर्यात से भारत लगभग पन्द्रह करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित करता है। इस समय देश में चीनी का पर्याप्त उत्पादन हो रहा है। यदि प्रयत्न किया जाय तो भारत से विदेशों को चीनी का निर्यात बढ़ाया जा सकता है और इस प्रकार अर्जित की जाने वाली विदेशी मुद्रा की मात्रा पचास करोड़ रुपये तक हो सकती है।

चीनी उद्योग क्षेत्र

चीनी उद्योग के मुख्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, पंजाब तथा मैसूर राज्य हैं। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, केरल, असम तथा पाण्डीचेरी में भी चीनी मिलें हैं। देश के लगभग ६५ प्रतिशत कारखाने उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्यों में हैं। इन राज्यों से कुल उत्पादन का लगभग ६७ प्रतिशत होता है। गंगा नदी की मध्यवर्ती घाटी में अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण यहाँ इस उद्योग का स्थानीयकरण हुआ। गंगा की घाटी के मध्यवर्ती क्षेत्र में इस उद्योग के विकास के निम्न कारण हैं

(१) गंगा की मध्यवर्ती घाटी की मिट्टी गन्ने की फसल के लिए उत्तम है। अतः इस क्षेत्र में गन्ना पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो जाता है।

(२) गन्ना कटने के पश्चात् थोड़े से समय में चीनी मिल तक पहुँचना चाहिए, क्योंकि समय लगने से गन्ने से कम मात्रा में निकलती है। इसलिए अधिकांश कारखाने ऐसे स्थानों पर स्थित हुए हैं जहाँ गन्ना शीघ्र उपलब्ध हो सके।

(३) इस क्षेत्र में नहरों, नदियों तथा नलकूपों से सिंचाई की पर्याप्त जल उपलब्ध हो जाता है।

(४) इस क्षेत्र में घनी जनसंख्या होने के कारण श्रमिक पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। इस उद्योग को अधिक चतुर श्रमिकों की आवश्यकता नहीं पड़ती अतः सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं।

(५) गन्ने को काम मे लेने के पश्चात् जो भाग बच जाता है उसे जलाकर शक्ति उत्पादित की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों को पर्याप्त लकड़ी जलाने के लिए मिल जाती है जिससे शक्ति प्राप्त होती है।

(६) उद्योग के स्थानीयकरण में बाजार की निकटता का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। इस क्षेत्र में बाजार विस्तृत है।

उपरोक्त सुविधाओं के कारण यह उद्योग उत्तरी भारत में गंगा के मध्यवर्ती मैदान में केन्द्रित हुआ है। इस मैदान में गन्ने की अच्छी खेती होती है जिससे कच्चे माल की प्राप्ति की कठिनाई नहीं होती है।

उत्तर प्रदेश में चीनी उद्योग

चीनी के उत्पादन में इस राज्य का प्रथम स्थान है। इस राज्य में इस समय ७२ चीनी मिलें हैं जिनकी उत्पादन क्षमता लगभग ११ लाख टन से भी अधिक है। इस राज्य के पश्चिमी क्षेत्र में ३८ कारखाने हैं तथा ३४ पूर्वी भागों में है। इस राज्य के प्रमुख केन्द्र कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, मेरठ गोरखपुर, मुज्जफरनगर, देवरिया, बस्ती, गोंडा, सीतापुर, बिजनौर, सहारनपुर आदि हैं। इस राज्य में कारखानों का वितरण उचित नहीं हैं क्योंकि कुछ भागों में कारखानों की अधिकता है तथा कुछ भागों में कारखानों की संख्या कम है। इसका परिणाम यह होता है कि मिलों को कच्चा माल प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस क्षेत्र में अधिक मिलें स्थापित होने के अनेक कारण हैं। इस क्षेत्र के उद्योगपतियों ने सरकार की संरक्षण की नीति का लाभ उठाया। कच्चे माल तथा अन्य सुविधाओं की दृष्टि से यह राज्य महत्त्वपूर्ण है अतः यहां इस उद्योग का अधिक विकास हुआ।

बिहार राज्य में चीनी उद्योग

उत्तरी भारत में द्वितीय महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बिहार राज्य है। यहाँ २९ चीनी मिलें हैं। अधिकांश मिलें बिहार के उत्तरी भाग में हैं। आजकल दक्षिणी भागों में भी इस उद्योग का विकास हो रहा है। इस राज्य के प्रमुख चीनी उत्पादन केन्द्र सारन, चम्पारन, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, शाहाबाद, गया तथा पटना जिले हैं। इस राज्य में भी उत्तर प्रदेश की तरह अनेक सुविधाएं उपलब्ध हैं।

महाराष्ट्र राज्य में चीनी उद्योग

इस राज्य में ३३ चीनी के कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ५.५० लाख टन है। इस राज्य के प्रमुख उत्पादन केन्द्र पूना, मनमाड, अहमदनगर, नासिक, शोलापुर, मिराज तथा कोल्हापुर जिले हैं।

अन्य राज्य

उपरोक्त राज्यों के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल में ४ मिलें, मद्रास में १० मिलें, पंजाब में ८ मिलें, मैसूर में ८ मिलें, मध्य प्रदेश में ४ मिलें, गुजरात में ३ मिलें, राजस्थान में २ मिलें, केरल में २ मिलें, तथा असम व पाण्डीचेरी में १-१ मिलें हैं।

पिछले कुछ वर्षों से मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश राज्यों में इस उद्योग का अधिक विकास होने लगा है।

पश्चिमी बंगाल में चीनी उद्योग के विकास की काफी सम्भावनाएँ हैं। इस राज्य की जलवायु, गन्ने की प्रति हेक्टेयर उपज, शक्ति के साधनों की स्थिति उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्य से अधिक उपयुक्त है।

दक्षिणी भारत में चीनी उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ

दक्षिणी भारत में गन्ने के लिए उत्तम जलवायु होने के कारण इस उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ बढ़ गयी हैं। उत्तरी भारत में पतले डण्ठल का गन्ना उत्पन्न होता है जिसमें कम मिठास होता है। दक्षिणी भारत में मोटी किस्म का गन्ना पैदा किया जा सकता है। इस क्षेत्र के गन्ने से अधिक रस उपलब्ध होता है। इस क्षेत्र में उत्तरी भारत की अपेक्षा निम्न विशेष लाभ हैं

(१) दक्षिणी भारत उष्णकटिबन्धीय (Tropical Region) क्षेत्र में स्थित है जिसके कारण अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र की अपेक्षा उत्तम किस्म का गन्ना उत्पन्न होता है। यहाँ के गन्ने से अपेक्षाकृत अधिक शक्कर निकलती है।

(२) दक्षिणी भारत में प्रति हेक्टेयर गन्ने की उपज उत्तरी भारत की तुलना से अधिक है। इस क्षेत्र में आदर्श परिस्थितियों में गन्ना उत्पन्न किया जाता है।

(३) उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में गन्ने से शक्कर बनाने का मौसम लम्बा है। उत्तरी भारत में यह अवधि १२५ दिन से १४० दिन तक है जबकि दक्षिणी भारत में १३० दिन से १७५ दिन तक का मौसम होता है।

(४) दक्षिणी भारत में अनेक चीनी मिलें स्वयं गन्ने की उपज तैयार करती हैं अतः कच्चे माल की कठिनाई नहीं होती। अनेक सहकारी चीनी मिलों को भी यह सुविधा प्राप्त है।

उपरोक्त सुविधाओं के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कठिनाइयाँ भी हैं। इस भाग में सिंचाई की असुविधा है क्योंकि खेत छोटे-छोटे होते हैं। कुछ स्थानों पर मूँगफली, कपास, मिर्च, तथा तम्बाकू की खेती होती है अतः गन्ने के उत्पादन में कठिनाई होती है। फिर भी भविष्य में इस क्षेत्र में इस उद्योग के अधिक विकसित होने की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं। भविष्य में गन्ने के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ चीनी का उत्पादन भी बढ़ेगा।

चीनी उद्योग की समस्याएँ

भारतीय चीनी उद्योग की निम्नलिखित समस्याएँ हैं :

(१) उत्तम किस्म के गन्ने की कमी—गन्ने की मिलों को उत्तम किस्म के गन्ने की प्राप्ति नहीं हो पाती। मिलों को सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य गन्ने के लिए चुकाना पड़ता है जबकि गन्ने की किस्म अच्छी नहीं होती। उत्तरी भारत का गन्ना उत्तम किस्म का नहीं होता है। इसमें कम मिठास होती है। अतः चीनी का उत्पादन प्रतिशत कम होता है। अन्य देशों की तुलना में भारतीय गन्ना घटिया किस्म का

है। भारतीय गन्ने में ९.५ प्रतिशत मिठास होती है जबकि आस्ट्रेलिया में उत्पादित गन्ने में १४ प्रतिशत से भी अधिक मिठास होता है। यद्यपि आजकल दक्षिणी भारत में उत्तम किस्म का गन्ना उत्पन्न होने लगा है किन्तु उसकी मात्रा बहुत कम है।

इस समस्या के समाधान के लिए दक्षिणी भारत में जहाँ उत्तम किस्म का गन्ना उत्पन्न हो सकता है अधिक क्षेत्र में तथा प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए। इसके अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल में भी उत्तम किस्म का गन्ना उत्पन्न हो सकता है। अत वहाँ भी प्रयत्न करने चाहिए।

(२) आधुनीकरण की समस्या—उत्तरी भारत में अधिकांश मिलें पुरानी होने लगी हैं जिनकी मशीनें घिस चुकी हैं। इन मशीनों को बदलने की आवश्यकता है। इस उद्योग का स्थानीयकरण, आधार, सगठन उचित नहीं है अत विवेकीकरण को अपना कर इन कमियों को दूर करना चाहिए। इनका प्रभाव मिलों की उत्पादकता पर पड़ेगा जिससे उत्पादन लागत में कमी होगी।

(३) मूल्य वृद्धि एव कर-भार—चीनी का मूल्य निरन्तर बढ़ रहा है। सन् १९४७ में चीनी का भाव २०.५० रुपये प्रतिमन था। आजकल इसमें और भी वृद्धि हो गयी है। सन् १९६७-६८ के बाद से चीनी के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हुई है और इसलिए चीनी के भाव इधर गिर गये हैं। चीनी पर से नियन्त्रण को भी शिथिल कर दिया गया है। बाजार में चीनी के भाव बहुत ऊँचे हैं। इसका कारण श्रमिकों के वेतन में वृद्धि, बढ़ता कर भार, गन्ने के मूल्यों में वृद्धि आदि हैं। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा ऊँचे कर वसूल किये जाते हैं। इसका प्रभाव भी उत्पादन पर पड़ता है।

(४) ऊँची उत्पादन लागत—अन्य देशों की तुलना में भारत में चीनी उत्पादन की लागत अधिक है। गन्ने के दाम पिछले वर्षों में बढ़े हैं किन्तु गन्ने की किस्म एव मिठास में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। वेतन एव मजदूरी तथा महगाई भत्ता में भी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त मिलों में पुरानी मशीनों की उत्पादकता भी कम है।

इस समस्या के समाधान के लिए मशीनों में आधुनीकरण करना आवश्यक है। गन्ना पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करना चाहिए। इसके लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना चाहिए और प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ानी चाहिए।

(५) उप-पदार्थों के उपयोग का अभाव—गन्ने को काम में लेने के पश्चात् कई पदार्थ बच जाते हैं जिनको अन्य कामों में लिया जा सकता है। इन उप-पदार्थों में छिलका (Bagasse), शीरा (Molosses) तथा तलछट (Press Mud) प्रमुख हैं। इनका उपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। छिलके को कार्ड-बोर्ड, पैकिंग के गत्ते, ब्लाटिंग पेपर, कागज आदि बनाने के काम में लिया जा सकता है। शीरे को शराब, अलकोहल एव स्प्रिट बनाने के काम में लिया जाता है। तलछट को कार्बन पेपर, अखबारों के लिए स्याही, बूट पालिश बनाने में काम में लाया जा सकता है। चीनी मिलों के पास यदि इस प्रकार के छोटे कारखाने स्थापित हो जाएँ तो चीनी उत्पादन की लागत कम की जा सकती है। आजकल चीनी मिलों द्वारा अन्य उप-पदार्थों

से सम्बन्धित कार्य चालू किये हैं। कुछ स्थानों पर इन पदार्थों को काम में लेने के उद्योग चालू किये गये हैं किन्तु इस तरफ अधिक प्रयास किये जा सकते हैं।

(६) **कारखाना उद्योग एवं खण्डसारी उद्योग में समन्वय का अभाव**—दोनों उद्योग देश के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों उद्योगों में समन्वय की समस्या है। समन्वय के अभाव में मिलों को कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाता है। गन्ने के उपयोग में इन दोनों क्षेत्रों में प्रतियोगिता हो रही है। पिछले कुछ वर्षों में गुड़ तथा खण्डसारी के मूल्य बढ़ गये हैं जिससे किसानों ने गन्ने को इस क्षेत्र में काम में लेना चालू कर दिया है अतः चीनी मिलों को पर्याप्त गन्ना नहीं मिल रहा है। इस समस्या के समाधान की उचित व्यवस्था शीघ्र आवश्यक है। इसके लिए मिल क्षेत्रों को छोड़कर गुड़ तथा खाण्ड उद्योग को अन्य क्षेत्रों में प्रोत्साहन देना चाहिए।

(७) **चीनी मिलों का अनार्थिक आकार**—भारत में अधिकांश मिलें छोटे आकार की हैं। छोटे आकार के कारण उत्पादन लागत अधिक पड़ती है। भारतीय मिलों में अनेक मिलों की दैनिक गन्ना पेरने की क्षमता अन्य देशों की तुलना में एक चौथाई के लगभग है। इस समस्या के समाधान के लिए भारतीय चीनी उत्पादकता दल का सुझाव महत्वपूर्ण है। इस दल ने छोटी मिलों का आकार अनार्थिक बताया है। दल का सुझाव है कि इन छोटी मिलों का विलय करके बड़ी इकाइयाँ बनानी चाहिए ताकि उत्पादन लागत कम हो सके।

(८) **वितरण की समस्या**—चीनी के वितरण की समस्या महत्वपूर्ण है। आजकल आंशिक सरकारी नियन्त्रण है फिर भी बाजार भाव और नियन्त्रण दर में बहुत अन्तर है। उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य देकर बाजार से चीनी खरीदनी पड़ती है। कन्ट्रोल की चीनी बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण बाजार में मूल्य अधिक है। मूल्य नियन्त्रण की यह नीति सफल नहीं हो सकी। चीनी वितरण पर पूर्ण नियन्त्रण के समय भी ब्लैक की चीनी के भाव बहुत ऊँचे थे अतः यह समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। अतः वितरण की स्थायी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर चीनी उपलब्ध हो सके।

(९) **अनुसन्धान सुविधाओं का अभाव**—चीनी उद्योग के सम्बन्ध में अनुसन्धान सुविधाओं का अभाव है। इसके अतिरिक्त कारखानों को प्रशिक्षित विशेषज्ञ भी नहीं मिल पाते हैं। तकनीकी प्रशिक्षण के अभाव में नवीन मशीनों का उपयोग कठिन है। अतः उत्पादन लागत अधिक है। इस समस्या के समाधान के लिए अनुसन्धान तथा तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

(१०) **चीनी के निर्यात की समस्या**—भारत से चीनी का निर्यात किया जाता है। यह चीनी के उत्पादन पर आधारित रहता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् उत्पादन की कमी के कारण निर्यात भी कम हुए। इस प्रकार विदेशी मुद्रा कम प्राप्त हुई। चीनी के निर्यात में विदेशी प्रतियोगिता का भी प्रभाव पड़ रहा है। भारतीय चीनी का मूल्य अधिक होने के कारण विदेशी माँग भी कम हो

रही है। इस समस्या के समाधान के लिए उत्पादन लागत कम करना आवश्यक है।

(११) अन्य समस्याएँ—उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त यातायात की समस्या, आधुनिक मशीनों का अभाव, क्षमता का अपूर्ण उपयोग, स्थिति सम्बन्धी समस्याएँ महत्त्वपूर्ण हैं जिनका निराकरण आवश्यक है।

इस उद्योग की भावी सम्भावनाएँ आशाजनक हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे सहकारी चीनी मिलों को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इस समय से निरन्तर सहकारी चीनी मिलों की संख्या तथा उत्पादन मे योगदान बढता जा रहा है। महाराष्ट्र तथा आन्ध्र प्रदेश मे अधिकांश सहकारी मिलें स्थापित की गयी हैं। इन मिलों को तकनीकी सहायता तथा सहकारी चीनी मिलों के कार्य में समन्वय स्थापित करने के लिए चीनी मिलों की राष्ट्रीय परिषद् (National Federation) भी कार्य कर रही है।

भारत सरकार की वर्तमान चीनी नीति विनियन्त्रण की है। सितम्बर १९६८ में हुये मुख्य मन्त्रियों के सुझावों की दृष्टि से सरकार द्वारा १९६८-६९ में भी चीनी की आंशिक विनियन्त्रण की नीति जारी रखने का निर्णय लिया गया। मार्च सन् १९७१ मे भारत सरकार द्वारा चीनी से नियन्त्रण हटाने की घोषणा की गयी है। किन्तु मिलों से चीनी की निकासी पर अब भी सरकारी नियन्त्रण रहेगा। इसके अतिरिक्त गन्ना उत्पादकों को लाभ पहुँचाने के लिए निम्नतम गन्ना मूल्य भी सरकारी नियन्त्रण में रहेगा। भविष्य में दक्षिणी भारत मे अधिक मिलें स्थापित होने की सम्भावनाएँ हैं। चीनी की अतिरिक्त माँग निरन्तर बढ रही है। अत उद्योग अधिक विकसित हो सकेगा। निर्यात की वृद्धि करके विदेशी मुद्रा भी प्राप्त की जा सकती है। आशा है चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे चीनी उद्योग का पर्याप्त विकास हो सकेगा।

प्रश्न

१. १९५० मे अब तक भारतीय चीनी उद्योग की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६८)

२ भारत मे शक्कर उद्योग की वर्तमान स्थिति तथा आर्थिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए। भारत मे इस उद्योग ने स्वतन्त्रता के पश्चात क्या प्रगति की ?
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६७)

३ भारत मे चीनी उद्योग के स्थानीयकरण के कारण बताते हुये उसके भौगोलिक वितरण और वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।
(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६३)

४ भारत मे चीनी उद्योग के विकास तथा विशेष समस्याओं पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

५ भारत के लोह-इस्पात उद्योग अथवा चीनी उद्योग की स्थिति और विकास समस्याओं का संक्षेप में विवेचन कीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९७०)

अध्याय २८

सीमेण्ट उद्योग
(CEMENT INDUSTRY)

सीमेण्ट उद्योग एक आधारभूत उद्योग है। औद्योगिक विकास मे इस उद्योग का बहुत महत्त्व है। उद्योगो की स्थापना के लिए बड़े-बड़े भवनो की आवश्यकता पड़ती है। यातायात विकास मे सड़कें महत्त्वपूर्ण हैं जिनमे सीमेण्ट काम मे ली जा सकती है। नियोजित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक विकास के साथ-साथ भवन निर्माण भी तेज गति से बढ़ रहा है, इस कारण सीमेण्ट की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है। भवन निर्माण कार्यक्रम मे योजनाओ के काल मे प्रगति हुई है। सरकार भवन निर्माण के लिए ऋण दे रही है। ऐसी स्थिति मे सीमेण्ट उद्योग का तेज गति से विकास स्वाभाविक है। देश के ग्रामीण क्षेत्रो मे भवन निर्माण, कुआ तथा गोदामो के निर्माण मे सीमेण्ट काम मे ली जाती है। अतः इस क्षेत्र की मांग भी निरन्तर बढ़ रही है। देश मे अनेक नदी घाटी योजनाएँ चालू की जा रही है जिनमे सीमेण्ट की मांग बढ़ रही है। मांग की वृद्धि के कारण इस उद्योग का उत्पादन बढ़ रहा है। एशिया मे भारत का सीमेण्ट उत्पादन मे तृतीय स्थान है।

सीमेण्ट उद्योग का संक्षिप्त इतिहास

सीमेण्ट बनाने का सर्वप्रथम प्रयास मद्रास मे किया गया। सन् १९०४ मे सर्वप्रथम सीमेण्ट का कारखाना वहाँ स्थापित हुआ। यह कारखाना सफल नहीं हो सका। प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने तक इस उद्योग मे कोई प्रगति नहीं हुई और सीमेण्ट का उत्पादन नगण्य था। देश की आवश्यकता की पूर्ति आयात से की जाती थी। प्रतिवर्ष १८ लाख टन सीमेण्ट विदेशो से मँगवायी जाती थी। विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर सीमेण्ट का आयात करना कठिन था। अतः सीमेण्ट के कारखानो की स्थापना आरम्भ हो गयी। सन् १९१३ मे पोरबन्दर मे इण्डियन सीमेण्ट कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की गयी। सन् १९१३ से १९१६ तक दो अन्य कारखाने स्थापित हुए। इनका नाम कटनी सीमेण्ट इण्डस्ट्रियल कम्पनी (कटनी) और बूँदी पोर्टलैण्ड सीमेण्ट कम्पनी (बूँदी) था। प्रथम विश्वयुद्ध काल मे इन तीनो कारखानो से मांग की पूर्ति के प्रयास किये गये। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् सात अन्य कारखानो की स्थापना की गयी। आरम्भ मे सन् १९२४ मे सीमेण्ट उद्योग की उत्पादन क्षमता ४ लाख टन हो गयी। प्रथम तीन कारखानो की उत्पादन क्षमता दुगनी कर दी गयी। इस उद्योग के तीव्र विकास के कारण अधिक उत्पादन की

समस्या उत्पन्न हो गयी और उत्पादकों के बीच कड़ी प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गयी। इस समय उत्पादकों ने संरक्षण की माँग की थी किन्तु टैरिफ बोर्ड ने इसे स्वीकार नहीं किया इस स्थिति में उत्पादकों ने मिलकर समझौता किया। सन् १९२५ में इण्डियन सीमेण्ट मैन्यूफैक्चरिंग एसोसिएशन की स्थापना की गयी। इसके पश्चात् १९२७ में कंक्रीट एसोसिएशन ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने प्रतिस्पर्द्धा को कम करने तथा देश में सीमेण्ट की माँग को बढ़ाने के प्रयत्न किये।

इण्डियन सीमेण्ट मैन्यूफैक्चरिंग एसोसिएशन' के स्थान पर सन् १९३० में 'सीमेण्ट मार्केटिंग कम्पनी' की स्थापना की गयी। इसका प्रमुख उद्देश्य संयुक्त विक्रय व्यवस्था स्थापित करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के सामने कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ आयीं जिसके कारण संयुक्त विक्रय व्यवस्था असफल हो गयी। इस समय प्रत्येक कारखाने की उत्पादन मात्रा सीमित कर दी गयी। इसके कारण प्रतियोगिता कुछ कम हुई। इसके पश्चात् सन् १९३६ में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया। इस वर्ष एसोसियेटेड सीमेण्ट कम्पनी (A. C C) की स्थापना हुई। इसमें सोनवेली सीमेण्ट कम्पनी सम्मिलित नहीं हुई। सीमेण्ट की अन्य सभी कम्पनियाँ ए० सी० सी० की सदस्य बन गयी और सीमेण्ट की विक्रय व्यवस्था का अधिकार इसे प्राप्त हो गया। इस प्रयास से प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हुआ और उद्योग की रक्षा हो सकी। किन्तु सन् १९३८ में 'डालमियाँ ग्रुप' की सीमेण्ट कम्पनियों ने इस संगठन से प्रतिस्पर्द्धा शुरू कर दी। इस प्रतिस्पर्द्धा से पुनः संकट उपस्थित हो गया। इससे छुटकारा पाने के लिए सन् १९४० में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया। इस वर्ष दोनों दलों में समझौता हो गया और "सीमेण्ट मार्केटिंग कम्पनी ऑफ इण्डिया लि०" की स्थापना हुई। दोनों दलों ने इस कम्पनी को विक्रय-व्यवस्था का कार्य भार सौंप दिया और निरर्थक प्रतियोगिता समाप्त हुई।

सीमेण्ट की माँग द्वितीय विश्वयुद्ध में बहुत बढ़ गयी जिसकी पूर्ति कठिन हो गयी। ऐसी स्थिति में सरकार ने सन् १९४२ में मूल्य एवं वितरण पर नियन्त्रण लागू किया। इस समय सीमेण्ट के कारखानों की उत्पादन क्षमता २० लाख टन हो गयी। युद्ध के पश्चात् इस उद्योग को विकसित करने की योजना तैयार की गयी जिसके अन्तर्गत सन् १९५० तक उत्पादन क्षमता ३० लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया। सन् १९४७ में भारत में २३ कारखाने थे जिनमें से विभाजन के कारण ५ कारखाने पाकिस्तान में चले गये और शेष १८ कारखाने भारत में रह गये।

सीमेन्ट उद्योग का विकास

वर्ष	उत्पादन	मिलों की संख्या
१९२४	२ ६५ लाख टन	९
१९३०	५ ७७ ,,	९
१९४७	१४ ७० ,,	१८

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि इस उद्योग में उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहा है। सन् १९२४ की तुलना में १९३० में पर्याप्त वृद्धि हुई किन्तु १९४७ में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १९४७ में १४.७० लाख टन सीमेण्ट का उत्पादन भारत के हिस्से की कम्पनियों का है। इन कम्पनियों की उत्पादन क्षमता १९.५० लाख टन थी।

पंचवर्षीय योजनाओं में सीमेण्ट उद्योग का विकास

'प्रथम पंचवर्षीय योजना' में सीमेण्ट के उत्पादन को बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल में उत्पादन में सन्तोषजनक वृद्धि हुई। कारखानों की संख्या में वृद्धि हुई। सन् १९५१ में देश में २१ सीमेण्ट के कारखाने थे जो बढ़कर १९५६ में २७ हो गये। सीमेण्ट उत्पादन क्षमता १९५१ में ३२.८ लाख टन थी जो कि योजना के अन्त तक ४९.३ लाख टन हो गयी। सीमेण्ट के वास्तविक उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९५५-५६ में ४६.७ लाख टन सीमेण्ट का उत्पादन हुआ जब कि योजना के आरम्भ में २७.३ लाख टन था।

'द्वितीय पंचवर्षीय योजना' में भी इस उद्योग का विकास सन्तोषजनक रहा। देश में सीमेण्ट की माँग निरन्तर बढ़ती रही। योजना के अन्त तक कारखानों की संख्या ३४ हो गयी जिनकी कुल उत्पादन क्षमता ९२ लाख टन थी। इस योजना में वास्तविक उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९६०-६१ में सीमेण्ट उत्पादन ७९.७ लाख टन हो गया।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' में उत्पादन बढ़ाने के निरन्तर प्रयत्न किये गये। योजना के अन्त तक देश में ३८ कारखाने हो गये जिनकी उत्पादन क्षमता १२६ लाख टन थी। इस योजना में वास्तविक उत्पादन भी पर्याप्त बढ़ा। वर्ष १९६५-६६ में सीमेण्ट का वास्तविक उत्पादन १०८.८ लाख टन हुआ। माँग निरन्तर बढ़ रही है क्योंकि पंचवर्षीय योजनाओं में निर्माण कार्य बहुत तेज गति से बढ़े। उत्पादन में तेज गति से वृद्धि होते हुए भी पूर्ति कम रही।

सीमेण्ट उद्योग का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)
१९५०-५१	२७.३ ,,
१९५५-५६	४६.७ ,,
१९६०-६१	७९.७ ,,
१९६५-६६	१०८.८ ,,
१९६६-६७	११०.७ ,,
१९६७-६८	११५.० ,,
१९६८-६९	१२२.० ,,
१९६९-७०	१३६.२ ,,
१९७३-७४ (लक्ष्य)	२००.० ,,

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उत्पादन निरन्तर बढ़ रहा है। वर्ष १९६९-७० मे पिछले वर्ष की तुलना मे १४ लाख टन उत्पादन अधिक हुआ। इस वर्ष सीमेण्ट उद्योग की उत्पादन क्षमता १७७ लाख टन थी जबकि वास्तविक उत्पादन १३६.२ लाख टन हुआ। सीमेण्ट उद्योग की उत्पादन क्षमता तृतीय योजना के अन्त मे ११.६ मिलियन टन थी जो कि वर्ष १९७० के अन्त तक बढ़ कर १६.६६ मिलियन टन हो गयी। वर्ष १९७०-७१ मे लगभग १८.६ मिलियन टन सीमेण्ट के उत्पादन का अनुमान लगाया गया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे उत्पादन २०० लाख टन करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। योजना के अन्त तक माँग इसमे काफी अधिक होगी। आशा है चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेगी।

सन् १९६५ मे स्थापित भारतीय सीमेण्ट उद्योग निगम (Cement Corporation of India) अपने क्षेत्र मे सन्तोषजनक कार्य कर रहा है। हाल ही मे इस निगम ने तीन नवीन सीमेण्ट इकाइयाँ स्थापित करने के सम्बन्ध मे अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। ये कारखाने बोकाजन (आसाम), राजबन (हिमाचल प्रदेश) और बारवाला (देहरादून के निकट) स्थापित किये जायेंगे।[1] भारतीय सीमेण्ट निगम को चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे २२ करोड़ रुपये देने का प्रावधान है। यह धन राशि इन तीनों कारखानों की स्थापना के लिए पर्याप्त है।

द्वितीय योजना के अन्त तक सीमेण्ट का आयात किया जाता था किन्तु तृतीय योजना मे राजकीय व्यापार निगम द्वारा सीमेण्ट का निर्यात भी होने लगा। वर्ष १९६५-६६ मे आयात नहीं हुआ और निर्यात लगभग १ करोड़ रुपये मूल्य के सीमेण्ट का हुआ। भारत मे निर्यात पाकिस्तान, लंका, अफगानिस्तान, ईरान वियतनाम तथा कुछ अन्य देशो को किया जाता है।

सीमेण्ट की क्षमता उत्पादन तथा माँग के अनुमान

भारत मे, सीमेण्ट उद्योग की क्षमता निरन्तर बढ़ रही है। क्षमता के साथ-साथ उत्पादन मे भी वृद्धि होती जा रही है। किन्तु माँग मे अधिक तेज गति से वृद्धि होती जा रही है। क्षमता पूर्ति तथा माँग की स्थिति का अनुमान निम्न प्रकार से लगाया गया है

क्षमता, उपलब्धि तथा माँग के अनुमान

(मिलियन टन)

वर्ष	क्षमता	उपलब्धि	माँग	अधिक (+) कमी (—)
१९६९	१७ ६३	१३ ७७	१२ ५८	+ १ १९
१९७०	१८ ३८	१५ ०९	१३ ७३	+ १ ३७
१९७१	१९ ०८	१६ ५६	१५ १०	+ १ ४६

1 *The Economic Times* April 3, 1971,

१९७२	१९ ५८	१७ १९	१६ ३४	+ ० ८१
१९७३	२० ८३	१७ ९९	१७ ८०	+ ० १९
१९७४	२१ ०३	१८ ६४	१९ २९	— ० ६१

(*Source—The Times of India* Directory & Year Book, 1970)

उक्त तालिका में क्षमता तथा उपलब्धि का अनुमान नए कारखानों तथा वर्तमान कारखानों के विस्तार के आधार पर लगाया गया है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कुछ अन्य नवीन इकाइयों की स्थापना का अभी प्रस्ताव किया गया है। यदि इनमें भी उत्पादन होने लगा तो सन् १९७४ में माँग से उपलब्धि अधिक भी हो सकती है।

सीमेण्ट उद्योग के क्षेत्र

सीमेण्ट के कारखाने की स्थापना के पूर्व कच्चे माल की निकटता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस उद्योग को भारी सामान की आवश्यकता होती है जिनके निकट ही उद्योग स्थापित किया जाता है। सीमेण्ट बनाने के लिए चूने का पत्थर, जिप्सम तथा कोयला काम में आते हैं। ये पदार्थ भारी होते हैं अतः ढोने में अधिक व्यय पड़ता है। अतः अधिकांश कारखाने इनके निकट के क्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं। भारत में इस उद्योग को प्रकृति की तरफ से विशेष सुविधाएँ उपलब्ध हैं। देश में उत्तम किस्म का चूने का पत्थर अनेक भागों में उपलब्ध है। अधिकांश कारखाने चूने का पत्थर निकट से ही मँगवाते हैं। आजकल चूने के पत्थर के स्थान पर धमन भट्टी का बचा सामान (Blast Furnace Waste) और अन्य पदार्थों का प्रयोग किया जाने लगा है। धमन भट्टी का बचा हुआ सामान लोहा व इस्पात के कारखानों से उपलब्ध हो सकता है। बिहार, बंगाल, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में कुछ नवीन सीमेण्ट के कारखाने खोले गये हैं जिनमें यह पदार्थ काम में लिया जाता है। भारत में जिप्सम सभी भागों में उपलब्ध नहीं है। यह पदार्थ बीकानेर तथा जोधपुर जिलों से प्राप्त किया जाता है। उद्योग के लिए बाजार बहुत विस्तृत है। देश के आन्तरिक भागों को विभिन्न कारखानों से सीमेण्ट मिल जाता है जिस पर अधिक यातायात व्यय नहीं पड़ता है। इस समय भारत में सीमेण्ट के ५६ कारखाने कार्यशील हैं।

सीमेण्ट उद्योग के विकास की विभिन्न दशाओं को ध्यान में रखते हुए बिहार तथा मध्य प्रदेश अधिक उपयुक्त हैं। इन राज्यों में चूने का पत्थर तथा कोयला दोनों निकट के क्षेत्रों में उपलब्ध हैं। बाजार की दृष्टि से उत्तर प्रदेश, बंगाल तथा बिहार निकट पड़ते हैं। अतः इस उद्योग का अधिक विकास बिहार राज्य में हुआ।

सीमेण्ट के कारखानों का वितरण

राज्य	कारखानों की संख्या
१. बिहार	७
२. आन्ध्र प्रदेश	६
३. गुजरात	५

४ मद्रास	५
५ मध्य प्रदेश	३
६ मैसूर	३
७ राजस्थान	३
८ पंजाब एवं हरियाना	२
९ उत्तर प्रदेश	२
१० उड़ीसा	१
११ अन्य राज्य	८
कुल	४६

उपरोक्त तालिका के आधार पर प्रथम स्थान बिहार, इसके पश्चात आन्ध्र प्रदेश, गुजरात मद्रास मध्य प्रदेश मैसूर तथा राजस्थान का है। पंजाब, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा तथा अन्य राज्यों में भी सीमेण्ट के कारखाने हैं। भारत में सीमेण्ट के अतिरिक्त सीमेण्ट की चादरें भी बनायी जाने लगी हैं।

सीमेण्ट उद्योग की समस्याएँ

सीमेण्ट उद्योग की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं

(१) अधिक पूँजी की समस्या—सीमेण्ट के कारखाने की स्थापना के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इतनी पूँजी की व्यवस्था निजी क्षेत्र में बहुत कम व्यक्ति कर पाते हैं। इस समस्या के कारण इस उद्योग का अधिक विकास नहीं हो पाया।

(२) पूँजी पर लाभ का कम प्रतिशत—देश के विभिन्न उद्योग जिनमें अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, लाभ की मात्रा भी अधिक होती है। अधिक पूँजी वाले उद्योगों में लाभ का प्रतिशत सबसे कम सीमेण्ट उद्योग में हुआ है। लाभ की मात्रा कम होने के कारण इस क्षेत्र में कम विनियोग किया जाता है।

सन् १९६६ के बाद सीमेण्ट के वितरण पर नियन्त्रण में ढील दी गयी और धीरे-धीरे इस पर से नियन्त्रण हटा दिया गया। परिणामस्वरूप सीमेण्ट के मूल्यों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है और सीमेण्ट उद्योग में लाभ की मात्रा बढ़ गयी है। अतः इस उद्योग की ओर नयी पूँजी आकर्षित हुई है।

(३) कोयला क्षेत्रों से दूरी—भारत के अनेक सीमेण्ट के कारखाने कोयला क्षेत्रों से दूर हैं। राजस्थान, गुजरात तथा दक्षिणी भारत के सीमेण्ट के कारखाने कोयले की खानों के निकट नहीं हैं। राजस्थान तथा गुजरात के कारखानों को दूर से कोयला मँगवाना पड़ता है जिससे उत्पादन व्यय में वृद्धि होती है।

(४) निम्न उत्पादकता की समस्या—भारतीय कारखानों में निम्न उत्पादकता की समस्या के कारण लागत मूल्य अधिक पड़ता है। प्रति टन सीमेण्ट के उत्पादन में भारत में अन्य देशों की तुलना में अधिक मानवीय घण्टे (Man-

hours) लगते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में प्रति टन सीमेण्ट उत्पादन में १.४ मानवीय घण्टे लगते हैं जबकि भारत में १०.२ मानवीय घण्टे लगते हैं। अन्य देशों जैसे जापान, इंगलैण्ड तथा जर्मनी में भारत की तुलना में बहुत कम मानवीय घण्टे लगते हैं। देश के पुराने कारखानों में जिनमें पुरानी मशीनें हैं, उत्पादकता निम्न है। उदाहरण के लिए, राजस्थान की लाखेरी फैक्ट्री में उत्पादकता बहुत निम्न है जबकि राजस्थान के जयपुर उद्योग लिमिटेड की उत्पादकता अधिक है।

(५) आधुनिक मशीनों का अभाव—देश में आधुनिक मशीनों का अभाव रहा है। कई कारखानों में पुराने संयन्त्र लगे हुए हैं। अतः पुरानी मशीनों के स्थान पर नवीन मशीनों को लगाना आवश्यक है। आजकल देश में आधुनिक मशीनों का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। आशा है निकट भविष्य में आधुनिक मशीनें सभी कारखानों को उपलब्ध हो सकेंगी।

(६) सरकारी मूल्य नीति—सरकार की मूल्य नीति इस उद्योग के विकास में बाधक रही है। सन् १९६६ से पूर्व नियन्त्रण की अवस्था में उद्योग को लाभ की मात्रा कम मिली। सन् १९६६ में सीमेण्ट पर से नियन्त्रण फिर हटा लिया और मूल्य भी बढ़ाया गया किन्तु फिर भी उद्योग की विशेष उन्नति नहीं हो पायी। सन् १९६८ में पुनः सीमेण्ट के वितरण तथा मूल्य पर नियन्त्रण किया गया किन्तु अगले वर्ष फिर इस पर से नियन्त्रण हटा लिया गया। इससे मूल्यों में वृद्धि अवश्य हुई किन्तु उत्पादन को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

(७) पैकिंग पर अधिक व्यय—सीमेण्ट के वितरण के लिए पैकिंग पर अधिक व्यय करना पड़ता है। पैकिंग पर प्रति टन लगभग १४ रुपये व्यय करने पड़ते हैं जिससे मूल्य में वृद्धि हो जाती है। इस व्यय को कम करने के लिए कागज के विशेष प्रकार के थैलों का निर्माण करना चाहिए ताकि कम व्यय में सामान पैक किया जा सके।

उपरोक्त समस्याओं के कारण इस उद्योग में अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम पूँजी विनियोजित हुई है। विभिन्न समस्याओं के निम्नलिखित सुझाव हैं

(१) इस उद्योग में पूँजी पर लाभ के प्रतिशत को बढ़ाने के प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए उत्पादन लागत कम करने की आवश्यकता है। इसके साथ साथ सरकार की दोषपूर्ण मूल्य नीति में भी सुधार करना आवश्यक है। मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए ताकि उत्पादकों को लाभ का प्रतिशत अधिक मिल सके। इससे अधिक पूँजी आकर्षित हो सकेगी।

(२) देश में कुछ पुराने कारखाने भी हैं। इन कारखानों के विकास की व्यवस्था करनी चाहिए। पुरानी मशीनों के स्थान पर आधुनिक मशीनें लगानी चाहिए जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

(३) सीमेण्ट के वितरण के लिए सरकार को यातायात के साधनों की

व्यवस्था करनी चाहिए। चूने के पत्थर, कोयले तथा जिप्सम को कारखानों तक पहुँचाने के लिए भी सस्ते यातायात की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(४) अनेक सीमेण्ट के कारखानों को कोयला दूर से प्राप्त होता है जैसे राजस्थान व गुजरात के सीमेण्ट कारखाने। इनको समय पर कोयला उपलब्ध कराना चाहिए ताकि उत्पादन में रुकावट नहीं आये।

उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखकर इस उद्योग का विकास करना चाहिए। चतुर्थ योजना के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिक विकास करना पड़ेगा। इस योजना का उत्पादन लक्ष्य १८० लाख टन सीमेण्ट का उत्पादन रखा गया है जिसे प्राप्त करने के लिए उत्पादन क्षमता में अधिक वृद्धि करनी होगी।

भारत सरकार ने १९६५ में सार्वजनिक क्षेत्र में भारतीय सीमेण्ट उद्योग निगम (Cement Corporation of India) की स्थापना की है। इस निगम की स्थापना शोधकार्य, चूने के पत्थर के भण्डारों की खोज, सीमेण्ट वितरण व्यवस्था तथा उद्योग के विकास के अन्य प्रयत्नों के उद्देश्य से की गयी है। सीमेण्ट उद्योग के वितरण तथा मूल्यों पर से जो नियन्त्रण १९६६ में हटाया गया था वह १९६८ में पुनः लागू किया गया तथा इसके वितरण का कार्य इस निगम को सौंप दिया गया है। भारत सरकार ने १ जनवरी, १९७० से नियन्त्रण समाप्त करने की घोषणा की किन्तु अनेक कठिनाइयों के कारण नियन्त्रण हटाया नहीं जा सका। राज्य सरकारों ने कई स्थानों पर सरकारी क्षेत्र में कारखाने खोले हैं। यह निगम उनके विस्तार तथा विकास के लिए अनेक प्रकार की सलाह प्रदान करेगा। अतः इस उद्योग के विकास में इस निगम का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

प्रश्न

१. पंचवर्षीय योजना काल में भारत में सीमेण्ट या लौह इस्पात उद्योग के विकास, समस्याओं और सुझावों पर प्रकाश डालिए।

(टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९६९)

२. भारत में सीमेण्ट उद्योग की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए तथा इस उद्योग की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

३. भारतीय सीमेण्ट उद्योग की समस्याएँ, वर्तमान स्थिति तथा भविष्य का विवेचन कीजिए।

४. टिप्पणी लिखिए

(अ) सीमेण्ट उद्योग। (टी० डी० सी०, प्रथम वर्ष, १९७१)

अध्याय २९

भारत का विदेशी व्यापार

(FOREIGN TRADE OF INDIA)

'व्यापार' आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है। कृषि, उद्योग तथा परि-
वहन के साधनों के विकास के साथ साथ व्यापार की उन्नति होती है। व्यापार
को देशी तथा विदेशी दो भागों में बाँटा जा सकता है। देश के आर्थिक विकास में
दोनों का बहुत महत्त्व है। किसी भी देश के आयात निर्यात की स्थिति उस देश के
आर्थिक गठन की द्योतक होती है। देश में जिन वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन
होता है उन्हें निर्यात किया जाता है तथा जिन वस्तुओं का अभाव रहता है उन्हें
आयात से पूरा किया जाता है। आर्थिक विकास के लिए आयात तथा निर्यात
व्यापार में सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है। भारत का विदेशी व्यापार अनेक
विकसित देशों की तुलना में थोड़ा है। कृषि उद्योग तथा यातायात में हम पिछड़े
हुये हैं। अतः विदेशी व्यापार की स्थिति अधिक सन्तोषजनक नहीं है। पिछले बीस
साल में और विशेष रूप से सन् १९५१ के बाद से, जब भारत में आर्थिक नियोजन
का आरम्भ हुआ, भारत के विदेशी व्यापार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पिछले
अनेक वर्षों में भारत का विदेशी व्यापार आकार और प्रकार में एक पिछड़ी हुई अर्थ-
व्यवस्था का परिचायक रहा, क्योंकि ब्रिटिश शासन में देश अधिकांशतः कृषि पदार्थों
तथा कच्चे माल का निर्यात और अर्धनिर्मित माल का आयात करता रहा।
आयातों में मशीनों, कल पुर्जों एवं अन्य निर्मित वस्तुओं की प्रमुखता देश की अर्थ-
व्यवस्था के असन्तुलन एवं अल्प विकास की प्रतीक रही। किसी देश के निर्यात एवं
आयात की सूची देखकर यह बतलाया जा सकता है कि उस देश का आर्थिक गठन
और स्तर किस प्रकार का है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत को यह अवसर प्राप्त न हो
सका कि वह स्वतन्त्र रूप से देश की आयात निर्यात नीति को निर्धारित कर सकता।
भारत की आयात निर्यात नीति का प्रतिपादन ब्रिटेन के उद्योगों की आवश्यकताओं एवं
वहाँ के निवासियों के हितों को दृष्टिगत रखते हुए विदेशियों द्वारा किया जाता रहा।

भारत के विदेशी व्यापार का ऐतिहासिक परिचय

प्राचीनकाल में भारत का व्यापार अनेक देशों से होता था। यहाँ से दूर-दूर
के देशों को विभिन्न वस्तुएँ निर्यात की जाती थी। कुछ वस्तुओं के निर्यात व्यापार में
भारत बहुत आगे बढ़ा हुआ था, जैसे सूती वस्त्र, कलापूर्ण वस्तुएँ तथा मसाले आदि

मुगलकालीन भारत विदेशी व्यापार मे विश्वविख्यात था। भारत की प्रसिद्धि से आकर्षित होकर यूरोपीय देशों से व्यापारी यहाँ आये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इसका मुख्य उदाहरण है। इस कम्पनी के द्वारा भारतीय वस्त्र तथा अनेक कलापूर्ण वस्तुएँ पश्चिमी देशो को भेजी जाती थी। कुछ समय पश्चात ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। देश की आर्थिक गतिविधियाँ अग्रेजो के हाथ मे थी। इस काल मे भारत के व्यापार पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। भारत ने अपनी प्राचीन स्थिति को दी। ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीति के आधार पर भारत का निर्मित वस्तुओं का निर्यात व्यापार समाप्त हो गया। इस समय विदेशी व्यापार भारत के हितों को ध्यान मे रख कर नही होता था वरन अग्रेजो के हितों के आधार पर होता था। इगलैण्ड को कच्चे माल की आवश्यकता थी जो कि भारत मे निर्यात किया जाने लगा।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत के व्यापार मे कुछ परिवर्तन हुआ। सन् १८६६ मे स्वेज नहर खुली जिससे इगलैण्ड तथा भारत मे व्यापार की वृद्धि हुई। इससे पूर्व इगलैण्ड जाने के लिए जहाजो को अफ्रीका का चक्कर लगाकर जाना पडता था। किन्तु इस नहर के खुल जाने के कारण दूरी म पर्याप्त कमी हुई। इसका व्यापार पर अच्छा प्रभाव पडा। प्रथम विश्व युद्ध तक विदेशी व्यापार मे निरन्तर वृद्धि हुई। इस काल मे आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक थे। देश मे निर्मित माल का आयात होने लगा तथा कच्चे माल का निर्यात बढने लगा। इस समय में पश्चिम के अन्य देशो से भी सम्पर्क बढा।

सन् १९१४ के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार म कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगी। प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव विदेशी व्यापार पर अच्छा नही पडा। क्योकि इस काल मे निर्यात कर ऊँचे थे तथा जल यातायात के पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हो पाये। युद्ध के कारण कुछ देशो से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। सन् १९२२ तक विदेशी व्यापार मे कोई विशेष सुधार नही हुआ। किन्तु सन् १९२३ मे कुछ सुधार हुआ। सन् १९२९ की विश्व व्यापी मन्दी से पूर्व विदेशी व्यापार मे पर्याप्त सुधार हो चुका था। विश्व व्यापी मन्दी का इस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। निर्यात मे कमी होन लगी। सन् १९३३ तक स्थिति खराब रही किन्तु सन् १९३४ से पुन स्थिति मे सुधार होना चालू हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ तक व्यापार की स्थिति ठीक रही। सन् १९३२ मे 'ओटावा समझौता' तथा सन् १९३४ मे जापान के साथ समझौते से व्यापार मे वृद्धि हुई। दोनो विश्व युद्धों के बीच व्यापार सन्तुलन अनुकूल रहा। अन्य देशो से व्यापारिक सम्पर्क बढ़े किन्तु सबसे अधिक व्यापार ब्रिटेन से होता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर भारत को अपनी अर्थव्यवस्था के असन्तुलन के दुष्परिणामो का कटु अनुभव हुआ। युद्ध के कारण मशीनो, औजारो एव अन्य प्रकार की निर्मित वस्तुओं का आयात कम हो गया। कुछ वस्तुओं का

आयात बिल्कुल ही रुक गया। इससे भारतीय उद्योगों पर सामान्य उपभोक्ताओं को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा क्योंकि दुर्लभ पदार्थों के मूल्य में तेजी से वृद्धि हुई तथा सामान्यतया ऐसी वस्तुओं को प्राप्त करना उपभोक्ताओं के लिए कठिन समस्या बन गयी। किन्तु इसका देश की अर्थव्यवस्था पर एक उत्तम प्रभाव यह पड़ा कि देश में धीरे धीरे अनेक प्रकार के उद्योगों की स्थापना और उनके लिए आवश्यक पूँजी विनियोग के हेतु अनुकूल वातावरण बन गया। मित्र राष्ट्रों की सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत ने युद्ध काल में कच्चे माल तथा निर्मित माल का बहुत अधिक निर्यात किया इससे न केवल हमारे विदेशी व्यापार के आकार में वृद्धि हुई, बल्कि विदेशी व्यापार का सन्तुलन हमारे पक्ष में हो गया तथा भारत का निर्यात उसके आयात से काफी अधिक हो गया। आयातों में कमी विवश होकर करनी पड़ी क्योंकि विदेशों में माल उपलब्ध नहीं था माल के परिवहन की कठिनाइयाँ थीं तथा देश में विदेशी विनिमय पर कठोर नियन्त्रण लगा हुआ था। दूसरी तरफ युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत से अनेक वस्तुओं का निर्यात अधिक मात्रा में किया गया जिसका भुगतान ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण अथवा वस्तुओं के रूप में न करके पौण्ड पावना (Sterling Balances) के रूप में किया। इस प्रकार भारत ने लगभग १७३३ करोड़ रुपए के बराबर पौण्ड पावने विदेशी मुद्रा के रूप में अर्जित कर लिए जिसका उपयोग युद्ध समाप्त होने पर अनेक वर्षों तक ब्रिटेन से माल के आयात के भुगतान पर किया जाता रहा।

विभाजन का प्रभाव

स्वतन्त्रता के पश्चात जिस घटना चक्र ने भारत के विदेशी व्यापार को सबसे अधिक प्रभावित किया वह देश का विभाजन था। अगस्त सन् १९४७ में पाकिस्तान के निर्माण के फलस्वरूप देश का बहुत सा उपजाऊ क्षेत्र जो गेहूँ एवं कपास के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था, भारत से अलग हो गया और भारत में गेहूँ तथा कपास का अभाव महसूस होने लगा। इसके साथ तिलहन चमड़ा तथा खालों की भी कमी होने लगी। सबसे अधिक प्रभाव जूट पर पड़ा। प्रायः सभी जूट के कारखाने भारत में रह गये किन्तु जूट का ७५ प्रतिशत क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान में चला गया। इन सब कारणों से भारत को भारी मात्रा में गेहूँ कपास और जूट का आयात करना पड़ा। सन् १९४८ से पश्चात भारत निरन्तर इन वस्तुओं का आयात विदेशों से करता रहा है।

सन् १९४९ में भारत ने अपने रुपये का अवमूल्यन किया, जिसके परिणामस्वरूप आयातों में कमी हुई और निर्यातों में वृद्धि हुई। इसके पश्चात् कोरिया युद्ध के कारण भी जूट के निर्मित सामान, चमड़ा, चाय, रुई, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं के निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हुई।

पंचवर्षीय योजनाओं में विदेशी व्यापार की मात्रा

आर्थिक नियोजन के काल में यद्यपि भारत के विदेशी व्यापार के आकार

तथा स्वरूप में परिवर्तन हुए हैं, फिर भी आयातों तथा निर्यातों की परम्परागत प्रकृति में अभी तक कोई उल्लेखनीय मोड़ नहीं आ सका है। यह बात आयातों के बजाय निर्यातों पर अधिक लागू है। पिछले २० वर्षों के निर्यात के स्वरूप का विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होगा कि हमारे निर्यात की सूची में वर्ष प्रतिवर्ष लगभग उन्हीं वस्तुओं की प्रधानता रहती है जितनी कुछ वर्ष पहले थी। देश की विकास योजनाओं के लिए भारी मात्रा में अनेक पदार्थों का आयात किया जाने लगा। उपभोक्ता पदार्थों के आयात पर उत्तरोत्तर प्रतिबन्ध लागू किये जाने के बावजूद भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत आयातों का आकार बढ़ा है। भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति पंचवर्षीय योजनाओं में निम्न प्रकार है :

भारत का विदेशी व्यापार

(करोड़ रुपये)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार शेष
१९५०-५१	६५० ४४	६०० ६७	—४९ ७७
१९५५-५६	७७४ ३५	६०८ ९१	—१६५ ४४
१९६० ६१	११२२ ४८	६४२ ०७	—४८० ४१
१९६१-६२	१०९३ ०८	६६० ५८	—४३२ ५०
१९६२-६३	११३७ २८	७०१ ६१	—४३५ ६३
१९६३-६४	१२२३ ७५	७९३ २४	—४३० ५१
१९६४-६५	१३४९ ७२	८१६ ३०	—५३३ ४२
१९६५-६६	१४०८ ८९	८०५ ६४	—६०३ २५
१९६६-६७	२०४८ ९२	११५६ ५८	—८९२ ३४
१९६७-६८	२०५९	११९९ ००	—८६० ००
१९७०-७१	१६२८ १५	१५३० १५	—९७ ५०
१९७३-७४ (लक्ष्य)	२०३ ०	१९००	—१३० ००

(*Sources—India*, 1968 and *Fourth Five Year Plan*, 1969-74, and the *Hindustan Times* May 21, 1971)

आयात

प्रथम योजना काल में कुल आयात लगभग ३६१७ करोड़ रुपये का हुआ—अर्थात औसतन ७२३ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष। दूसरी योजना में भारी औद्योगीकरण की परियोजनाओं को पूरा करने के लिए तथा सन् १९४८ के बाद खाद्यान्नों के आयात के लिए आयात की राशि बढ़ गयी। अनेक वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद भी आयात की राशि बढ़ती रही। दूसरी योजनाओं के पाँच वर्षों में कुल मिलाकर लगभग ४८८२ करोड़ रुपये का आयात हुआ—अर्थात् औसतन प्रतिवर्ष ९७६

करोड रुपये। तीसरी योजना के प्रथम दो वर्षों मे आयात मे कुछ कमी हुई किन्तु तृतीय वर्ष मे आयात की राशि मे वृद्धि होने लगी। योजना के प्रथम वर्ष मे आयात १,१०० करोड रुपये का था जो योजना के अन्तिम वर्ष मे बढ़ते हुए लगभग १,४०० करोड रुपये हो गया। आयात मे इस अप्रत्याशित वृद्धि का प्रमुख कारण देश मे प्राकृतिक एव राजनीतिक सकटों का होना था। तीसरी योजना के पाँच वर्षों मे कुल मिला कर ६,२०६ करोड रुपये का आयात किया गया जिसमे पी० एल० ४८० सम झौते के अन्तर्गत ८४६ करोड रुपये का खाद्यान्नो का आयात भी सम्मिलित है। इस प्रकार तीसरी योजना मे औसत वार्षिक आयात खाद्यान्नो के आयात को शामिल करते हुए लगभग १,२४२ करोड रुपये का रहा।

तीसरी योजना के बाद के तीन वर्षों मे खाद्यान्नो एव तम्बाकू के आयात मे वृद्धि हुई, किन्तु जून १९६६ मे रुपये के अवमूल्यन के बाद आयातो के मूल्यो मे वृद्धि हो गयी। इस प्रकार आकार एव मूल्य दोनो ही दृष्टियो से आयात का परिमाण बढा। यह परिमाण और अधिक बढ़ता, यदि विदेशी सहायता और ऋणो की राशि सुविधापूर्वक देश को उपलब्ध होती रहती। कुछ विदेशी सरकारों द्वारा विदेशी सहायता उपलब्ध करने मे विलम्बकारी नीति बरती गयी। अत आयात की राशि का आकार बहुत अधिक नही बढ सका। आयात मे कमी मशीनो, कल पुर्जों आदि की खरीद की आवश्यकता घटने के कारण हुई। खाद्यान्नो का आयात भी अब कुछ घटने लगा है क्योंकि सन् १९६८-६९ मे कृषि उपज सन्तोषजनक रही है। सन् १९६६-६७ मे भारत का आयात लगभग २,०४८.९ करोड रुपये का था जबकि सन् १९६७-६८ मे हमारे आयात की राशि २,०२६ करोड रुपये थी। वर्ष १९६९-७० मे कुल आयात की राशि १,५८२.६७ करोड रुपये थी जो कि वर्ष १९७०-७१ मे बढकर १,६२८.१७ करोड रुपये हो गयी।

निर्यात

जहाँ तक निर्यात का प्रश्न है, हमारे निर्यातो मे सन्तोषजनक वृद्धि नही हो सकी है। प्रथम योजना की अवधि मे हमारा कुल निर्यात ३,०२९ करोड रुपये अथवा प्रतिवर्ष औसतन ६०६ करोड रुपये का रहा। दूसरी योजना मे भी इसमे बहुत ही कम वृद्धि हो सकी। दूसरी योजना मे यह कुल मिलाकर ३,०४६ करोड रुपये का था अर्थात् ६०९ करोड रुपये प्रतिवर्ष। तीसरी योजना मे निर्यात मे वृद्धि के कुछ प्रयत्न किये गये फिर भी यह उस अनुपात मे न बढ सका जिस अनुपात मे आयात मे वृद्धि हुई। वस्तुत इसी स्थिति ने विदेशी विनिमय सकट को उत्पन्न किया और देश को अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने के लिए विवश होना पड़ा। तृतीय योजना के पाँच वर्षों मे कुल आयात ३,८१२ करोड रुपये का हुआ—अर्थात् औसतन प्रतिवर्ष ७६२ करोड रुपये। तृतीय योजना के पश्चात् हमारे निर्यात निरन्तर बढ़ रहे हैं। वर्ष १९६९-७० मे निर्यात का मूल्य १,४१३.२ करोड रुपये था जो कि बढ कर १९७०-७१ मे १,५३०.६५ करोड रुपये हो गया। इस प्रकार ८.३ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् १९५० में विश्व निर्यात व्यापार में भारत का भाग २.१ प्रतिशत था जो सन् १९६० में गिर कर १.२ प्रतिशत तथा सन् १९६६ में गिरकर १ प्रतिशत रह गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य देशों के निर्यात व्यापार में जिस अनुपात में वृद्धि हुई है उस अनुपात में भारत अपने निर्यात में वृद्धि करने में असमर्थ रहा है।

दूसरी योजना के बाद इस विचार को अधिक बल मिला कि विदेशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं को यथासम्भव देश में ही उत्पादित करके उनके आयात की आवश्यकता को कम किया जाय अथवा समाप्त किया जाय। तीसरी योजना में अनेक ऐसी वस्तुओं का उत्पादन देश में किया गया जिनका पहले विदेशों से आयात होता था। इस्पात, तेल एवं तेल से बने हुये पदार्थ, अनेक प्रकार के सयन्त्र एवं औजार आदि के उत्पादन में वृद्धि ने आयातों के प्रतिस्थापन में बहुत अधिक सहायता की है। जिन महत्त्वपूर्ण उद्योगों का देश में ही विकास हुआ उनमें धातु उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग, रसायनिक उद्योग, मोटर, बिजली का सामान, ट्रक, ट्रैक्टर, वायुयान, जलयान, औषधियाँ, रेलवे इन्जिन एवं डिब्बों का निर्माण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देश में ही विभिन्न उद्योगों की मशीनें अब बनने लगी हैं जैसे सूती वस्त्र, जूट, चीनी एवं सीमेण्ट एवं कागज मिलों की मशीनें आदि। इसका एक प्रभाव तो यह है कि देश ने इधर कुछ वर्षों में इन वस्तुओं के आयात में कमी की है और दूसरी ओर औद्योगीकरण के कारण भारत अब कुछ सीमा तक इन्जीनियरिंग के विभिन्न सामानों एवं अन्य निर्मित माल का निर्यात भी करने लगा है।

सन् १९६५ में पाकिस्तान द्वारा किये गये आक्रमण एवं साधनों के आयात की अनिवार्यता ने हमारी आयात नीति में नया मोड़ उत्पन्न किया है। इसे हम सकट-कालीन आयात नीति कह सकते हैं। आयात पर यथासम्भव नियन्त्रण रखकर धीरे-धीरे बाहर से आयात के स्थान पर देश के अन्दर ही अनेक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना भी इस नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है। नियमित आयातकों को केवल ऐसी वस्तुओं के आयात की स्वीकृति दी जाती है जिनका या तो हमारी अर्थ-व्यवस्था में विशेष स्थान है अथवा जिनकी आवश्यकता हमें निर्यात बढ़ाने के लिए होती है। रक्षा सम्बन्धी उद्योगों के लिए भी आयात की सुविधाओं को प्राथमिकता दी गयी है। अनावश्यक एवं कम आवश्यक वस्तुओं के आयात पर विशेष प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं।

अलौह धातुओं की दृष्टि से तीसरी योजना में आयात की प्रवृत्ति लगातार ही वृद्धि ओर रही है। अब देश में ऐसी धातुओं के भण्डार का पता लगाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं ताकि कुछ समय बाद इनके आयात में कमी की जा सके। अनेक उद्योगों में ताँबे की कमी को पूरा करने के लिए एल्यूमीनियम धातु का उपयोग किया जा रहा है। परिवहन सामग्री, रसायनिक पदार्थों, औषधियों, शल्य चिकित्सा उपकरण,

बिजली उपकरण, रंग, और चमड़ा रंगने के पदार्थ, रबर, आर्ट सिल्क धागा, कपास, कच्चे जूट आदि पदार्थों के आयात में अब स्पष्ट रूप से कमी की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। इसका कारण आयात की जाने वाली वस्तुओं की जगह स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग रहा है जो कि पिछले वर्षों में उत्पादन वृद्धि एवं आयात नियन्त्रण नीति को लागू करके सम्भव बनाया गया है यदि हम अपने आयात की सूची का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि हमारे कुल आयात में ६१ प्रतिशत भाग केवल दो प्रकार की वस्तुओं का होता है। ये दो प्रकार की वस्तुएँ हैं—खाद्यान्न एवं तम्बाकू तथा मशीन यन्त्र आदि। कुल आयात में खाद्य सामग्रियों एवं तम्बाकू का भाग ३३ प्रतिशत तथा मशीन, यंत्रों का भाग लगभग २८ प्रतिशत रहता है। अतः यह स्पष्ट है कि हम 'आयात स्थानापन्न' अथवा 'आयात प्रतिस्थापन' के लिए एक ओर देश में कृषि उपज को बढ़ाना होगा और दूसरी ओर मशीनों एवं यंत्रों का उत्पादन बढ़ाना होगा।

व्यापार सन्तुलन एवं विदेशी मुद्रा संकट

आर्थिक नियोजन आरम्भ होने के बाद से लगातार भारत के आयात, निर्यात से अधिक रहे हैं। आयात एवं निर्यात का यह अन्तर निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर होता रहा है। *प्रथम योजना में विदेशी व्यापार का असन्तुलन सामान्य था किन्तु* द्वितीय योजना काल में इसमें क्रमशः वृद्धि होती गयी और योजना के अन्तिम वर्ष में यह लगभग ४८० करोड़ रुपये थी। तीसरी योजना में इस असन्तुलन की राशि में और अधिक वृद्धि हुई तथा योजना के अन्तिम वर्ष में विदेशी व्यापार का असन्तुलन लगभग ५८५ करोड़ रुपये हो गया। यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि विदेशी व्यापार का यह असन्तुलन इसी प्रकार बढ़ता रहा, तो एक सीमा ऐसी आ सकती है कि भारत विदेशी ऋणों के भार से इतना दब जाय कि फिर उसके लिए इन ऋणों का भुगतान कठिन हो जाय। वस्तुतः अब ऐसी ही स्थिति आती जा रही है। यही कारण है कि चौथी योजना में अब आर्थिक स्वावलम्बन पर विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। प्रथम योजना तक भारत के समक्ष ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में अधिक निर्यात के आधार पर उसने लगभग १,७३३ करोड़ रुपये मूल्य के पौण्ड पावने जमा कर लिए थे जिसका उपयोग वह स्टर्लिंग क्षेत्र और कुछ सीमा तक डालर क्षेत्र से माल आयात करने पर करता रहा। किन्तु द्वितीय योजना काल में आयात इतनी शीघ्रता से बढ़ा कि विदेशी मुद्रा के संचित कोष समाप्त होने गये और इसके बाद विदेशी ऋणों एवं सहायता के आधार पर निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता रहा। अग्रलिखित तालिका (पृष्ठ ४६८) से हमारे विदेशी व्यापार के असन्तुलन का अनुमान भली प्रकार से किया जा सकता है।

अग्रलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि योजना काल में व्यापार शेष उत्तरोत्तर हमारे प्रतिकूल होता चला गया। तीसरी योजना के प्रारम्भ में ही यह कहा जाने लगा कि भारत क्षमता से अधिक आयात कर रहा था और उसे आगे

निर्यात को बढ़ाने के लिए उस समय तक विशेष प्रयत्न नहीं किया था। नियोजित आर्थिक विकास के अन्तर्गत आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर किसी भी राष्ट्र के सम्मुख ऐसी परिस्थिति का आना स्वाभाविक होता है। ऐसे विकासशील राष्ट्र की निर्यात क्षमता को अल्पकाल में बढ़ाना अत्यन्त कठिन होता है जबकि दूसरी ओर विकास कार्यों के लिए अधिकाधिक पूँजीगत माल का आयात करना अनिवार्य हो जाता है। भारत में दुर्भाग्य से अधिक जनसंख्या और कृषि की अनिश्चित उपज इस परिस्थिति को और अधिक विषम बना देती है। इस असन्तुलन ने हमारे विदेशी मुद्रा कोषों को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया और भारत विदेशों का कर्जदार बनता चला गया। इन विदेशी ऋणों के ब्याज एवं मूलधन के भुगतान की किस्तें इतनी अधिक होती जा रही हैं कि उनका भुगतान नयी प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता में से करना होता है। इस प्रकार विदेशी सहायता की सुद्ध राशि (Net amount) में कमी होती चली जाती है।

पंचवर्षीय योजनाओं में भारत के विदेशी व्यापार में असन्तुलन

(करोड़ रुपये)[1]

योजना-काल	कुल आयात	कुल निर्यात	योजना काल में व्यापार शेष	वार्षिक औसत व्यापार शेष
प्रथम योजना-काल	३६१७	३०२९	—५८८	—११७ ६
द्वितीय योजना-काल	४८८२	३०४६	—१८३६	—३६७ २
तृतीय योजना-काल	६२०९[2]	२८१२	—३३९७	—४७९ ४
नियोजन काल के पन्द्रह वर्षों में	१४,७०८	८८८७	—४८२१	—३२१ ४

सन् १९६६ तक विदेशी भुगतान संकट अपनी चरमसीमा पर जा पहुँचा। विदेशी ऋणों एवं सहायता के प्रवाह में राजनीतिक कारणों से रुकावट आने लगी। विदेशों में रुपये की माँग घट गयी। जबकि भारत में विदेशी मुद्राओं की माँग में निरन्तर वृद्धि होती गयी। इससे रुपये की साख कम हो गयी और भारत को विवश होकर रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। आयात-नीति को और अधिक कठोर बना दिया गया तथा निर्यात को बढ़ाने के लिए हरसम्भव उपाय किये गये। यदि दो वर्षों तक निरन्तर सूखे की स्थिति का सामना न करना पड़ता तो निश्चय ही विदेशी व्यापार के असन्तुलन की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया होता। पिछले दो-तीन वर्षों से हमारे विदेशी व्यापार में असन्तुलन की राशि कम हुई है। वर्ष १९६७-६८

---

[1] अवमूल्यन से पहले की विनिमय-दर के आधार पर।

[2] पी० एल० ४८० समझौते के अन्तर्गत खाद्यान्नों के आयात की ८४६ करोड़ रुपये की राशि को सम्मिलित करते हुए।

में व्यापार असन्तुलन ८६० करोड़ रुपये में था जो कि १९७०-७१ में घटकर ९७ ५० करोड़ रुपये हो गया। आशा है निकट भविष्य में व्यापार हमारे पक्ष में हो जायगा।

भारत में विदेशी व्यापार की रचना
(Composition of Foreign Trade in India)

'विदेशी व्यापार की रचना' के अन्तर्गत आयातित तथा निर्यातित वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है। भारत के विदेशी व्यापार में रचना की दृष्टि से परिवर्तन हुए हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में विकास कार्यक्रमों के लिए मशीनों का भारी मात्रा में आयात किया गया है। इसके अतिरिक्त खाद्यान्नों का भी भारी मात्रा में आयात किया गया है। निर्यात व्यापार में भारत अधिकांश कृषि-वस्तुओं का निर्यात करता है। आजकल परम्परागत निर्यात जैसे चाय, जूट तथा सूती वस्त्र के अतिरिक्त उद्योगों में निर्मित वस्तुओं का निर्यात भी धीरे-धीरे बढ़ रहा है। नीचे विभिन्न वस्तुओं के आयात तथा निर्यात की स्थिति का विस्तृत विवरण किया गया है

भारत के प्रमुख आयात

भारत में मशीनों, कपास, धातुएँ व लोह-इस्पात का सामान, खाद्यान्न तथा रासायनिक पदार्थों का आयात किया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं में प्रमुख आयात निम्न प्रकार हैं

मुख्य वस्तुओं का आयात[1]

(करोड़ रुपये) (अवमूल्यन के पश्चात् के रुपये में)

वस्तुएँ	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६९-७०
१ खाद्यान्न	२८५ ७	४०७ २	२६० ६८
२ मशीनें एवं यातायात के उपकरण	१७४ ४	७७१ १	२९२·७०
३ कपास	१२८ ८	७२ ८	८२ ७८
४ धातु निर्मित पदार्थ	३६ १	२८ ६	७ २६
५ लोहा एवं इस्पात	१९३ ०	१५४ ३	८१ १४
६ खनिज तेल	१०६ १	१०७ ५	१३७ ८७
७ खादें तथा रासायनिक उत्पादन	१४० ९	१८३ ७	१८४ ४६
८ कागज तथा गत्ते	१९ १	२१ १	२३ ७१
९ अलौह धातुएँ	७४ ५	१०८ ३	७४ २४
१० वनस्पति तेल तथा अन्य	७ २	२४ २	२६ ५७

(१) मशीनें—नियोजित अर्थव्यवस्था में देश में औद्योगिक प्रगति की तेज गति

1 *Report on Currency and Finance*, 1969-70

प्रदान करने के कार्यक्रम अपनाये गये। इसके लिए मशीनों की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः इनका बड़ी मात्रा में आयात किया गया। बिजली की मशीनें, कपड़ा बुनने की मशीन, कृषि मशीन, कागज बनाने और सीमेण्ट उद्योग की मशीनें, चाय तथा शक्कर उद्योग की मशीनों का आयात किया गया। इनके अतिरिक्त खनिज उद्योग की मशीनें बुलडोजर, शीतभण्डार तथा अन्य मशीनों का आयात किया गया। वर्ष १९६७-६८ में ३२६ करोड़ रुपये की अविद्युत मशीनरी तथा ८४ करोड़ रुपये की विद्युत मशीनरी का आयात किया गया। इस वर्ष यातायात सम्बन्धी उपकरणों का आयात ७६ ८ करोड़ रुपये का हुआ। वर्ष १९६६-६७ की तुलना में अविद्युत मशीनों तथा विद्युत मशीनों का आयात कम हुआ किन्तु यातायात के उपकरणों का अधिक आयात किया गया। वर्ष १९६९-७० में मशीनों तथा यातायात उपकरणों का आयात २६२ करोड़ रुपये की धनराशि से भी अधिक हुआ। पहले की अपेक्षा इसमें पर्याप्त कमी होती जा रही है।

(२) खाद्यान्न—विभाजन के कारण भारत में खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया। लगातार कई वर्षों तक फसलें भी अच्छी नहीं हुईं अतः खाद्य पदार्थों को बड़ी मात्रा में आयात किया गया। वर्ष १९६६-६७ में ४३४ २६ करोड़ रुपये का गेहूँ आयात किया गया तथा ८२ ५३ करोड़ रुपये के चावल आयात किये गये। वर्ष १९६५-६६ में चावल का अपेक्षाकृत कम आयात हुआ, और गेहूँ का आयात अधिक हुआ। गेहूँ का आयात संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेंटाइना तथा रूस से किया जाता है। चावल का आयात बर्मा, थाइलैण्ड, मिस्र, इन्डोनेशिया तथा लंका आदि से होता है। इनके अतिरिक्त जौ, दालें तथा ज्वार-बाजरा अनेक देशों से आयात किये जाते हैं। वर्ष १९६९-७० में २६० ६८ करोड़ रुपये की धनराशि के खाद्यान्नों का आयात किया गया।

(३) कपास तथा रद्दी रुई (Raw and Waste Cotton)—भारत में लम्बे रेशे की रुई का उत्पादन कम होता है। यहाँ अधिकांश मध्यम और छोटे रेशे की रुई का उत्पादन होता है। अतः सूती वस्त्र उद्योग के सामने उत्तम रुई की समस्या है, अतः आयात किया जाता है। भारत में उत्तम किस्म की रुई का आयात संयुक्त राज्य अमरीका, सूडान, मिस्र, पाकिस्तान, पीरू, केनिया तथा तंजानिया से किया जाता है। कपास का आयात वर्ष १९६०-६१ में १२८ ८ करोड़ रुपये का हुआ जबकि १९६५-६६ में केवल ७२ ८ करोड़ रुपये की कपास का आयात हुआ। वर्ष १९६७-६८ में ८३ ८ करोड़ रुपये की रुई आयात की गयी। वर्ष १९६९-७० में ८२ ७८ करोड़ रुपये के मूल्य की कपास का आयात किया गया।

(४) धातुएँ तथा लौह-इस्पात का सामान—भारत के आयातों में धातुओं तथा लोहे व इस्पात के सामान का महत्वपूर्ण हाथ है। देश में ताँबा, पीतल, सीसा, टीन, जस्ता, अल्यूमीनियम तथा कांसा आयात होता है। इन वस्तुओं का आयात ब्रिटेन, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, स्वीडन, जापान, आस्ट्रेलिया, बर्मा,

मलाया, सिंगापुर, बेल्जियम, जापान आदि देशों से होता है। वर्ष १९६७-६८ में लगभग ८८.७ करोड़ रुपये के अलौह धातुओं का आयात हुआ तथा धातु निर्मित वस्तुओं का आयात १८.१ करोड़ रुपये का हुआ, लौह इस्पात का आयात वर्ष १९६७-६८ में १०६.२ करोड़ रुपये का हुआ। वर्ष १९६९-७० में यह घटकर ८१.१८ करोड़ रुपये हो गया।

(५) खनिज तेल (Mineral Oil)—भारत में खनिज तेलों का अभाव है। तेल की माँग अधिक होने के कारण आयात किया जाता है। मिट्टी के तेल, मोबिल आयल तथा पैट्रोल आदि की माग निरन्तर बढ़ रही है जिससे आयात भी बढ़े हैं। वर्ष १९६०-६१ में १०६.१ करोड़ रुपये का खनिज तेलों का आयात हुआ जबकि वर्ष १९६५-६६ में १०७.५ करोड़ रुपये का आयात हुआ। वर्ष १९६७-६८ में उनके आयात में पर्याप्त कमी हुई। वर्ष १९६९-७० में पुन वृद्धि हुई। इस वर्ष इसकी आयात की राशि १३७.५७ करोड़ रुपये थी। मिट्टी के तेल का आयात अरब, ईराक, बर्मा, ईरान, सयुक्त राज्य अमरीका तथा सिंगापुर से किया जाता है। पैट्रोल का आयात अरब, इटली, सिंगापुर, सयुक्त राज्य अमरीका, ईरान, फ्रांस आदि देशों से होता है। इनके अतिरिक्त जलाने का तेल ब्रिटेन, सिंगापुर, सयुक्त राज्य अमरीका आदि से किया जाता है।

(६) रासायनिक पदार्थ (Chemicals)—इन पदार्थों की माँग निरन्तर बढ़ रही है। माँग के साथ-साथ आयात में भी वृद्धि हुई है। भारत से रासायनिक तत्त्व तथा रासायनिक पदार्थों का निर्यात किया जाता है। देश में रासायनिक खादों की माँग की वृद्धि के कारण इनका भी आयात किया जाता है। वर्ष १९६०-६१ में देश में ६१.६ करोड़ रुपये के रासायनिक तत्त्व आयात किय गये। वर्ष १९६५-६६ में ५६.५ करोड़ रुपये के आयात हुए तथा वर्ष १९६७-६८ में ५४.१ करोड़ रुपये के रासायनिक पदार्थों का आयात किया गया। खादों तथा रासायनिक उत्पादनों का आयात वर्ष १९६७-६८ में ३१३.४ करोड़ रुपये था जो कि तुलना में पिछले वर्षों से अधिक था। इनके आयात में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष १९६९-७० में लगभग १८५ करोड़ रुपये के मूल्य के रासायनिक पदार्थ आयात किय गये।

(७) अन्य वस्तुएँ—उपरोक्त आयातों के अतिरिक्त भारत में कागज व गत्ता, वनस्पति तेल तथा अन्य अवर्गीकृत आयात किये जाते हैं। वर्ष १९६७-६८ में कागज तथा गत्ते का आयात १७.६ करोड़ रुपये का हुआ जो कि पहले के सभी वर्षों से कम था। इस वर्ष वनस्पति तेल, चर्बी आदि का आयात ३३.४ करोड़ रुपये का हुआ जो कि पिछले वर्षों की तुलना में अधिक था। अवर्गीकृत आयातों का मूल्य वर्ष १९६०-६१ में २१८.६ करोड़ रुपये था जो १९६५-६६ में १८३.१ करोड़ हो गया। वर्ष १९६७-६८ में इनके आयात का मूल्य १६३ करोड़ रुपये था।

उपरोक्त आयातों के अतिरिक्त बिजली का सामान (पंखे, तार, लैम्प), कांच का सामान, सूत तथा सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, मोटर गाड़ियाँ, जूट, रेशमी कपड़े तथा

रबड का सामान आयात किये जाते हैं। बिजली का सामान ब्रिटेन, चीन, सयुक्त राज्य अमरीका, जापान, पश्चिमी जर्मनी तथा स्विटजरलैण्ड से मँगवाया जाता है। रेशमी कपडा ब्रिटेन, इटली तथा जापान से आयात होता है। काँच का सामान जर्मनी, फ्रास, बेल्जियम, ब्रिटेन तथा हालैण्ड से मँगवाया जाता है।

भारत के मुख्य निर्यात

भारत मे जूट का तैयार माल, चाय, चमडा तम्बाकू, सूती वस्त्र, तिलहन, मसाले, लाख तथा अन्य वस्तुओं का निर्यात किया जाता है। आजकल इन्जीनियरिंग वस्तुओं का निर्यात भी किया जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है निर्यातों मे परम्परागत वस्तुओं के निर्यातों का महत्वपूर्ण भाग रहता है। विभिन्न वस्तुओं के निर्यातों का विवरण नीचे दिया गया है :

भारत के निर्यात

(करोड रुपयों मे)

वस्तुएँ	१९६८-६९	१९६९-७०
१ जूट निमित वस्तुएं	२१८ ०	२०६ ७
२ चाय	१५६ ५	१२४ ५
३. सूती कपडा (मिलो मे बना हुआ)	६७ ५	११२ ५
४ कच्चा लोहा	८८ ४	९४ ६
५. मैंगनीज ओर	१३·५	११ १
६. खली	४९ ५	४१ ०
७ तम्बाकू	३३ २	३२ ७
८. कॉफी	१८ ०	१९ ६
९ कपास	११ १	१४ ७
१०. अभ्रक	१३ ५	१५ २
११ इन्जिनियरिंग का सामान	८५ ०	१०६ ५
१२ लोहा एव इस्पात	६९ ६	७२ ०
१३ मछली एव मछली की वस्तुएँ	२२ २	३१ ५
१४ काजू	६० ९	५७ ४
१५ चीनी	१०·५	८ ८
१६ चमडा तथा चमडे की वस्तुएँ	७० ७	८१ ५
१७ मसाले, लाख, परिष्कृत, खनिज	३६ ७	५६ ७

(*Source—Report on Currenc) and Finance*, 1969-70 p. S 142)

(१) जूट निमित सामान—भारत के निर्यात व्यापार मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जूट का तैयार सामान है। भारत को एक-तिहाई से भी अधिक विदेशी मुद्रा जूट निर्मित सामान से प्राप्त होती है। आजकल विदेशों मे भारतीय जूट के सामान की माँग कुछ कम होती जा रही है क्योंकि विदेशों में इस सामान के स्थान पर सस्ते थैलो का निर्माण किया जाने लगा है। भारतीय जूट का मूल्य अधिक है अत

प्रतिस्थापन अधिक बढ़ रहा है। भारत से जूट के सामान में बोरे, पण पाग, गनीच, टाट, रस्से आदि निर्यात होते हैं। जूट के सामान के मुख्य ग्राहक संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, इंगलैण्ड, अर्जेन्टाइना, रूस तथा मिस्र देश हैं। वर्ष १९६७-६८ में भारत से ७५३ हजार टन जूट निर्मित सामान का निर्यात हुआ जिसका मूल्य २३४ १ करोड़ है। वर्ष १९६५-६६ में ९०० हजार टन निर्यात हुआ जिसका मूल्य २८८ करोड़ रुपय था। वर्ष १९६९-७० में २०६ ७ करोड़ रुपये की जूट निर्मित वस्तुओं का निर्यात हुआ जबकि १९६८-६९ में २१८ करोड़ रुपये की वस्तुओं का निर्यात हुआ।

(२) चाय—निर्यात व्यापार में चाय भी महत्त्वपूर्ण है। इंगलैण्ड भारत से चाय के निर्यात का ५६ प्रतिशत आयात करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, कनाडा, अरब, आयरलैण्ड, नीदरलैण्ड, ईरान, पश्चिमी जर्मनी तथा सूडान हैं। वर्ष १९६७ ६८ में २०३ मिलियन किलोग्राम चाय का निर्यात किया गया जिसका मूल्य १८० ७ करोड़ रुपये था। तृतीय पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में १९४ ७ करोड़ रुपये की चाय का निर्यात हुआ था, किन्तु योजना के अन्त में घटकर १८० ६ करोड़ रुपये का रह गया। आजकल चाय के निर्यात व्यापार में भारत को विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय चाय मण्डल हमारी चाय के निर्यात को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है। वर्ष १९६८-६९ में १५६ ५ करोड़ रुपये की चाय का निर्यात हुआ जो वर्ष १९६९-७० में घट कर १२८ ५ करोड़ रुपय हो गया।

(३) सूती कपड़ा—भारत से उत्तम किस्म तथा मोटे किस्म दोनों ही प्रकार का कपड़ा निर्यात होता है। यहाँ से इंगलैण्ड, मलाया, लंका सूडान, बर्मा, अफगानिस्तान तथा आस्ट्रेलिया को कपड़ा निर्यात किया जाता है। वर्ष १९६०-६१ में ६० ६ करोड़ रुपये के कपड़े का निर्यात हुआ था। आजकल इसमें कमी होती जा रही है। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष में इसका निर्यात घट कर ८७ ४ करोड़ रुपय रह गया। इसमें पुन कमी हुई और १९६७ ६८ में केवल ६५ ४ करोड़ रुपय का कपड़ा निर्यात हुआ। वर्ष १९६८-६९ में ९७ ५ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ जो वर्ष १९६९-७० में बढ़कर ११२ ८ करोड़ रुपये हो गया। इस स्थान के लिए अनेक दशाएँ उत्तरदायी हैं जिनमें विदेशी प्रतियोगिता और हमारी ऊँची उत्पादन लागत प्रमुख हैं।

(४) कच्चा व कमाया हुआ चमड़ा—भारत से चमड़ा इंगलैण्ड, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस इटली, युगोस्लाविया, बेल्जियम तथा जापान को निर्यात किया जाता है। सबसे अधिक चमड़ा इंगलैण्ड को भेजा जाता है। इसके पश्चात् जर्मनी का स्थान आता है। तृतीय योजना के आरम्भ में २६ ३ करोड़ रुपय के चमड़े का निर्यात हुआ जबकि योजना के अन्त तक यह बढ़कर ४६ ८ करोड़ रुपये हो गया। इसके निर्यात में पुन वृद्धि हुई और १९६७-६८ में ५३ ५ करो-

रुपये के चमड़े का निर्यात हुआ। वर्ष १९६९-७० में चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुओं का निर्यात ८१.५ करोड़ रुपये था जबकि वर्ष १९६८-६९ में ७२.७ करोड़ रुपये का ही निर्यात हुआ।

(५) तम्बाकू—यहाँ से इंगलैण्ड, जापान, चीन, पाकिस्तान, अदन, आस्ट्रेलिया देशों को तम्बाकू निर्यात किया जाता है। लंका, मलाया, सिंगापुर तथा पाकिस्तान को चुरुट, सिगरेट तथा बीड़ी का भी निर्यात किया जाता है। भारत में १९६०-६१ में २४.८ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ जबकि वर्ष १९६५-६६ में ३३.३ करोड़ रुपए की तम्बाकू का निर्यात हुआ। वर्ष १९६७-६८ में ४५.५ करोड़ रुपये की तम्बाकू निर्यात की गयी। वर्ष १९६८-६९ में ३३.२ करोड़ रुपये की तम्बाकू का निर्यात हुआ, वर्ष १९६९-७० में घट कर ३२.७ करोड़ रुपये हो गया।

(६) खली (Oil Cakes)—भारत से ब्रिटेन, रूस, जापान तथा पोलैण्ड को खली का निर्यात किया जाता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में २५.५ करोड़ रुपये की खली का निर्यात हुआ जिसकी मात्रा ४३३ हजार टन थी। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष में ८२६ हजार टन खली का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ५४.६ करोड़ रुपये था। इस प्रकार इस योजना में खली के निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हुई। किन्तु वर्ष १९६७-६८ में निर्यात में कुछ कमी हुई और ७४६ हजार टन खली का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ४५.५ करोड़ रुपये था। वर्ष १९६८-६९ में ४६ करोड़ रुपये से भी अधिक खली का निर्यात किया गया किन्तु वर्ष १९६९-७० में इसका निर्यात घट कर ४१ करोड़ रुपये हो गया।

(७) मसाले—भारत से मसालों का निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, स्वीडन, इंगलैण्ड, पाकिस्तान, रूस, लंका, इटली, कनाडा तथा डेनमार्क को किया जाता है। वर्ष १९६६-६७ में लगभग २८ करोड़ रुपये के मसाले निर्यात हुए।

(८) इन्जीनियरिंग का सामान—आजकल इन्जीनियरिंग के निर्यात में निरन्तर वृद्धि हो रही है। तृतीय योजना के आरम्भ में १३.४ करोड़ रुपये का इन्जीनियरिंग का सामान निर्यात किया गया। योजना के अन्त तक निर्यात लगभग दुगने हो गये। वर्ष १९६७-६८ में इनके निर्यात का मूल्य ३२.७ करोड़ रुपये था। पिछले वर्षों में इन्जीनियरिंग के सामान के निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९६८-६९ में ८५ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ जबकि १९६९-७० में इसकी राशि बढ़कर १०६.५ करोड़ रुपये हो गयी। वर्ष १९७०-७१ में इसका निर्यात लगभग ११७ करोड़ रुपये था।

(९) कच्चा लोहा—भारतीय कच्चे लोहे के जापान तथा इंगलैण्ड प्रमुख ग्राहक हैं। जापान को निर्यात निरन्तर बढ़ रहे हैं। वर्ष १९६०-६१ में ३० लाख टन कच्चे लोहे का निर्यात हुआ जिसका मूल्य २६.८ करोड़ रुपये है। वर्ष १९६५-६६ में इसमें बहुत वृद्धि हुई और १२० लाख टन लोहा विदेशों को भेजा गया जिसका मूल्य ६६.३ करोड़ रुपये था। वर्ष १९६७-६८ में वर्ष १९६५-६६ की तुलना

में २० लाख टन कच्चे लोहे का अधिक निर्यात हुआ । वर्ष १९६८-६९ तथा १९६९-७० में इसका निर्यात क्रमशः ८८.४ तथा ९४.९ करोड़ रुपए हो गया । इस प्रकार इसके निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हो रही है ।

(१०) मैंगनीज—भारत से इसका निर्यात इंगलैण्ड, जर्मनी, जापान, इटली, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका तथा स्वीडन को होता है । इसका निर्यात निरन्तर घट रहा है । वर्ष १९६०-६१ में २२.१ करोड़ रुपये का मैंगनीज ओर का निर्यात हुआ जबकि १९६५-६६ में १७.४ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ । वर्ष १९६७-६८ में निर्यात में पुनः कमी हुई । वर्ष १९६८-६९ में १३.५ करोड़ की धनराशि का मैंगनीज ओर का निर्यात हुआ जबकि १९६९-७० में केवल ११.१ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ ।

(११) अन्य वस्तुएँ—उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त अभ्रक, कोयला, रासायनिक पदार्थ, सूती वस्त्र, लाख, चीनी तथा अन्य वस्तुओं का निर्यात किया गया है । अभ्रक का निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैण्ड, जापान तथा फ्रांस को होता है । कोयला, पाकिस्तान, चीन, लंका, बर्मा, जापान तथा सिंगापुर को भेजा जाता है । रासायनिक पदार्थ जापान, इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका आदि देशों को भेजे जाते हैं । सूती वस्त्र संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, कनाडा तथा इंगलैण्ड को निर्यात होते हैं । इनमें काजू के निर्यात का स्थान महत्वपूर्ण बन चुका है ।

पिछले वर्षों में हमारे निर्यातों की बजाय आयातों में अधिक वृद्धि हुई है किन्तु वर्ष १९६९ में निर्यातों में आयातों की अपेक्षा अधिक तेज गति से वृद्धि हुई है ।

विदेशी व्यापार की दशा
(Direction of Foreign Trade)

व्यापार की दिशा का तात्पर्य उन क्षेत्रों से है जिनसे अथवा जिनको भारत आयात निर्यात करता है । द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व भारत का दो तिहाई विदेशी व्यापार केवल ब्रिटेन से ही होता था । उस समय अमरीका, लैटिन अमरीका और पूर्वी यूरोप के देशों से हमारा आयात निर्यात बहुत ही कम था । स्वतन्त्रता के बाद हमारे विदेशी व्यापार की दिशा कुछ विशेष राष्ट्रों तक ही सीमित न होकर विश्वव्यापी हुई है । स्वतन्त्रता के बाद डालर क्षेत्रों से एवं सन् १९५५ के बाद पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों से व्यापार सम्बन्ध बढ़ाने में भारत सफल हुआ है । विभिन्न क्षेत्रों में भारत के विदेशी व्यापार का प्रतिशत इस प्रकार है

क्षेत्र	प्रतिशत
१ पश्चिमी यूरोप (ब्रिटेन सहित)	३०
२ डालर क्षेत्र	२५
३ पूर्वी यूरोप (रूस सहित)	१५
४ एशिया एवं अफ्रीका के देश	३०
	१००

भारत के निर्यात व्यापार में इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमरीका का महत्त्व-पूर्ण भाग है। वर्ष १९६३-६४ तक जापान का तृतीय स्थान था किन्तु इसके पश्चात रूस का तृतीय स्थान हो गया। भारत से मुख्य देशों को निर्यात तथा आयात निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाते हैं

प्रमुख देशों को आयात तथा निर्यात (१९६९-७०)

(करोड़ रुपये)

देश	आयात	निर्यात
१ ब्रिटेन	१०० ३८	१९५ ०३
२ संयुक्त राज्य अमरीका	८५६ ६६	२३७ ६७
३ पश्चिमी जर्मनी	८३ ७३	२९ ८६
४ रूस	१७० ४०	१३६ ३७
५ जापान	६६ ८२	१७९ ३६
६ आस्ट्रेलिया	३१ २८	२८ ४४
७ कनाडा	७३ ८६	२६ ३३
८ संयुक्त अरब गणराज्य	२३·७६	३४ ६४
९ चैकोस्लोवाकिया	२२ ९८	३०·०८
१० मलेशिया	८·२७	८·२६

(*Source—Report on Currency and Finance* 1969-70, p. S 148)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमरीका से सबसे अधिक आयात किया जाता है। इसके पश्चात ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, रूस तथा जापान का स्थान आता है। आजकल रूस से आयात निरन्तर बढ़ रहे हैं। ब्रिटेन का भारत के व्यापार में एकाधिकार समाप्त हो रहा है। हमारा व्यापार पूर्वी देशों से बढ़ रहा है।

यदि प्रथक दृष्टि से देखा जाय तो भारत के निर्यात में सबसे अधिक भाग संयुक्त राज्य अमरीका का १८ ८ प्रतिशत है। इसके बाद ब्रिटेन, रूस और जापान का स्थान आता है जिनका प्रतिशत क्रमश. १७·४, १० ७ तथा ९ २ है। इस प्रकार ये चार देश मिलकर हमारे निर्यात का ५६ १ भाग खरीदते हैं। इसके बाद अनेक देश आते हैं जिनका अनुपात हमारे निर्यात में २ से ३ प्रतिशत के बीच में है। इनमें कनाडा, आस्ट्रेलिया, संयुक्त अरब गणराज्य, पश्चिमी जर्मनी, चैकोस्लोवाकिया, फ्रांस, इटली, हालैण्ड, डेनमार्क, यूगोस्लोविया, ईरान, सूडान, कीनिया, नेपाल, बर्मा, लंका आदि हैं।

जहाँ तक हमारे आयात की दिशा का प्रश्न है, इसमें संयुक्त राज्य अमरीका का स्थान सर्वोपरि है। हमारे कुल आयातों में संयुक्त राज्य अमरीका का अनुपात ३६ ९ प्रतिशत है। इसके बाद ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, रूस और जापान का स्थान

है, जिनका अनुपात क्रमश ८ १, ७ ६, ५ ५ और ५ ३ है। इस प्रकार हमारे आयात का ६३ ७ प्रतिशत इन पाँच देशो से आता है। शेष ३६ ३ प्रतिशत आयात विश्व के अन्य अनेक देशो से लिया जाता है।

हमारे विदेशी व्यापार मे व्यापार समझौते अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। द्विपक्षीय समझौतो (Bilateral Agreements) के द्वारा दोनो देश परस्पर आयात निर्यात की एक सूची तैयार करके यह तय कर लेते हैं कि प्रत्येक वस्तु का आयात किस सीमा तक हो सकेगा। इन समझौतो की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि आयात एव निर्यात मे सन्तुलन रखा जा सकता है और इस प्रकार विदेशी मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई से बचा जा सकता है। व्यापार समझौते के साथ ही भुगतान सम्बन्धी सौदे भी हो जाते हैं। इस समय भारत ३१ देशो से व्यापार समझौते किये हुए है। पिछले दो वर्षों मे सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशो से भारत ने ओर व्यापार समझौते किये हैं। भारत के विदेशी व्यापार मे सोवियत रूस का भाग अब १० प्रतिशत से अधिक हो रहा है। यूरोप की साझामण्डी (ECM) के छह देशो का हमारे विदेशी व्यापार मे लगभग ८ प्रतिशत भाग हो चुका है और उसके और बढने की सम्भावनाएँ हैं। सयुक्तराज्य अमरीका, पश्चिमी और पूर्वी यूरोप तथा जापान के अतिरिक्त लेटिन अमरीका तथा एशिया के देशो के साथ भारत को अपने व्यापार सम्बन्धो को बढाकर अधिक निर्यात की सम्भावनाओ पर विचार करना चाहिए। पिछले दस बारह वर्षों मे भारत ने सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशों से अपने आयात निर्यात मे दस गुनी वृद्धि करली है। इसी प्रकार यदि प्रयत्न किया जाय तो दक्षिणी अमरीका के बाजारो म भारत अपने उत्पादनो के निर्यात के लिए माँग उत्पन्न कर सकता है। भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा सन् १९६८ के अन्त में दक्षिणी अमरीका के देशो मे सद्भावना यात्रा किये जाने के बाद से उन देशो के साथ भारत के व्यापार सम्बन्धो मे वृद्धि की सम्भावनाएँ अधिक तीव्र हो गयी हैं। हाल ही मे भारतीय उद्योग व्यापार मण्डल (FICCI) के अध्यक्ष श्री रामनाथ पोद्दार के नेतृत्व मे व्यापार तथा उद्योग प्रतिनिधियों का एक दल लेटिन अमरीका का दौरा करके लौटा है। उस दल के अनुसार लेटिन अमरीका के देशो मे भारतीय माल के अधिक निर्यात की उत्तम सम्भावनाएँ हैं।

भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताएँ

भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(१) समुद्री मार्गों से अधिकाश व्यापार—भारत का अधिकाश व्यापार समुद्री मार्गों से होता है। स्थल यातायात की अधिक सुविधाएँ नही हैं क्योंकि हिमालय पर्वत उत्तर मे पश्चिम मे पूर्व तक फैला हुआ है अत व्यापारिक मार्ग नही हैं। इसके अतिरिक्त भारत के निकटवर्ती देश निर्धन हैं। इन देशो से अधिक व्यापार नही हो पाता। भारत का विदेशी व्यापार अधिकाश अमरीका तथा यूरोपीय देशो से होता

है जिनके लिए समुद्री मार्गों पर आधारित रहना आवश्यक है। समुद्री मार्गों से भारत का लगभग ६० प्रतिशत व्यापार होता है।

(२) व्यापार की दिशा में परिवर्तन—आजकल भारत के विदेशी व्यापार में इंगलैण्ड का स्थान संयुक्त राज्य अमरीका ले रहा है। आयात व्यापार में संयुक्त राज्य अमरीका का भाग इंगलैण्ड से अधिक है। हमारा व्यापार आजकल संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान, कनाडा, इटली आदि देशों के साथ निरन्तर बढ़ रहा है। यद्यपि भारत का निर्यात व्यापार इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस तथा जापान से अधिक होता है किन्तु आर्थिक नियन्त्रणों तथा भुगतान के दर्शों पर निर्यात व्यापार, स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area), यूरोपीय साझा बाजार (E. C. M.), इकाफे प्रदेश (ECAFE), अफ्रीका क्षेत्र, रुपयों में भुगतान पाने वाले आदि से बढ़ रहा है।

(३) विश्व व्यापार में स्थिति तथा व्यापार की मात्रा—विश्व के व्यापार में भारत का भाग बहुत कम है। विश्व के कुल निर्यातों का भारत का १ प्रतिशत से भी कम है। दीर्घकालीन निर्यात वृद्धि कार्यक्रम में वर्ष १९८०-८१ तक भारत का यह भाग लगभग २ प्रतिशत हो जायेगा। इतना होने पर भी यह प्रतिशत बहुत कम होगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये विभिन्न प्रयत्नों से आयात तथा निर्यात दोनों में वृद्धि हुई है किन्तु आयातों में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष तक भारत के आयात तथा निर्यात क्रमश: २,०३० करोड़ तथा १,९०० करोड़ रुपये हो जाने का लक्ष्य रखा गया है।

(४) आयात एवं निर्यात के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन—भारत के निर्यात व्यापार की परम्परागत वस्तुओं के अन्तर्गत जूट का सामान, चाय, सूती वस्त्र, चमड़ा व उसकी वस्तुएँ, मसाले, तम्बाकू, नारियल के रेशे की वस्तुएँ आदि हैं। इन वस्तुओं के निर्यात में प्रतिशत की दृष्टि से कमी हुई है। पहले इनका प्रतिशत बहुत ऊँचा था किन्तु आजकल इसमें गिरावट आ रही है। वर्ष १९८०-८१ तक चाय तथा जूट के सामान का प्रतिशत कुल निर्यात का १७ प्रतिशत रहेगा जबकि वर्ष १९७०-७१ में इनका भाग २८ प्रतिशत है। नवीन वस्तुओं का निर्यात निरन्तर बढ़ रहा है। किन्तु अभी तक कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो पाया है।

(५) व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल—देश के विभाजन के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार का सन्तुलन प्रतिकूल रहा है। खाद्यान्नों तथा कच्चे माल के उत्पादन में देश में कमी रही है अत: निर्यात करके इनकी पूर्ति की गयी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि विभाजन के कारण जूट तथा गेहूँ उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। इससे देश में कच्चे माल तथा खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो गयी। पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार सन्तुलन निरन्तर प्रतिकूल होता गया है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में भी व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल रहेगा किन्तु अपेक्षाकृत कम रहने

का अनुमान है। वर्ष १९६७-६८ में व्यापार सन्तुलन ८६० करोड़ रुपये विपक्ष में रहा जबकि वर्ष १९७३-७४ में यह घटकर १३० करोड़ रुपये हो जायेगा। आशा है वर्ष १९८०-८१ तक व्यापार सन्तुलन ४७० करोड़ रुपये के पक्ष में हो जायेगा। भारत सरकार ने व्यापार सन्तुलन को पक्ष में लाने के लिए जून सन् १९६६ में रुपये का अवमूल्यन किया था। इसका प्रभाव निर्यात पर अच्छा नहीं पड़ा। इसके पश्चात १ वर्ष की अवधि में निर्यातों में कमी हुई। किन्तु सन् १९६८ के बाद निर्यातों में वृद्धि होने लगी। सन् १९७०-७१ में निर्यातों में पर्याप्त वृद्धि हुई और आयातों पर कठोर नियन्त्रण किया गया। अतः आयात निर्यात का अन्तर घटकर केवल ९७.५ करोड़ रुपये ही रह गया।

(६) **आयात की मुख्य वस्तुएँ**—भारत की मुख्य आयात की वस्तुएँ खाद्यान्न, मशीनें एवं उपकरण, लोहा एवं इस्पात, खनिज तेल, रसायन, रासायनिक पदार्थ, यातायात उपकरण, ताँबा आदि वस्तुओं का आयात किया जाता है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्नों में हम आत्म निर्भर हो जायेंगे। वर्ष १९७३-७४ में २,०३० करोड़ रुपये के आयात होंगे जिनमें खाद्यान्नों का आयात बिलकुल नहीं होगा। वर्ष १९६७-६८ में ५१८ करोड़ रुपये के खाद्यान्न तथा १,५६१ करोड़ रुपये की अन्य वस्तुओं का आयात किया गया।

(७) **नवीन वस्तुओं का निर्यात**—जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारत के निर्यात व्यापार में नयी-नयी वस्तुओं का निर्यात निरन्तर बढ़ रहा है। आजकल इन्जीनियरिंग का सामान निर्यात किया जाने लगा है जिसका मूल्य १९६७-६८ में ३२७ करोड़ रुपये था। इन्जीनियरिंग के सामान के अन्तर्गत मुख्य वस्तुएँ, मशीनों के उपकरण, जूता सीने व चाय बनाने की मशीनें, डीजल इंजिन, सिलाई की मशीनें, कागज बनाने की मशीनें, खेती के औजार, बिजली के पंखे, बैटरियाँ, अल्मारियाँ, साइकिलें, रेजर ब्लेड, लोहे की चादरों के बर्तन, लोहे व ताँबे के तार आदि हैं।

(८) **सरकारी नियन्त्रण**—भारत के विदेशी व्यापार पर सरकार का नियन्त्रण है। आयात की नीति के अन्तर्गत उन वस्तुओं का आयात किया जाता है जो कि बहुत आवश्यक हों तथा जिनका देश में उत्पादन बहुत कठिन हो। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की आयात नीति अर्थात संवर्धन में सहायता प्रदान करेगी।

भारत का विदेशी व्यापार अधिक उन्नत नहीं है। विश्व के अनेक देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति व्यापार की मात्रा बहुत कम है। भारत के विदेशी व्यापार का मूल्य प्रति व्यक्ति ८ डालर है जबकि कनाडा का ४४४ डालर है। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, डेनमार्क, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमरीका का विदेशी व्यापार प्रति व्यक्ति भारत से कहीं अधिक है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में व्यापार सन्तुलन की तरफ विशेष ध्यान दिया जायेगा। सरकार ने इसके लिए दीर्घकालीन कार्यक्रम निर्धारित किया है। वर्ष

१९८०-८१ तक हमारे निर्यात आयातों से अधिक होंगे। इस अवधि में जहाँ तक हो सके आयात प्रतिस्थापन किया जायेगा तथा निर्यात बढ़ाया जायेगा। व्यापार शेष की स्थिति भविष्य में निम्न प्रकार होगी

चतुर्थ योजना एवं इसके पश्चात व्यापार शेष (करोड़ रुपये)

वर्ष	आयात (—)	निर्यात (+)	व्यापार शेष
१९६७-६८	२०५९	११९९	—८६०
१९७३-७४	२०३०	१९००	—१३०
१९७८-७९	२४५०	२६५०	+१००
१९८०-८१	२८००	३०२०	+२२०

(*Source—Fourth Five Year Plan* 1969-74, Draft)

चौथी योजना में धातु-उद्योग, इन्जीनियरिंग, रसायन तथा अन्य निर्मित माल के भारी मात्रा में निर्यात का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए भारतीय माल की किस्म तथा कीमतों को विदेशी उत्पादकों के माल की किस्म एवं कीमतों के समकक्ष लाना होगा। उत्पादन विधियों के विकास, उत्पादन एवं प्रबन्ध कुशलता में सुधार तथा उद्योगों एवं निर्यात संस्थाओं में, संघटनात्मक परिष्कार के द्वारा हम निकट भविष्य में अपने निर्यात की राशि को इतना अधिक बढ़ा सकते हैं कि आयात निर्यात का सन्तुलन शीघ्र हो जाये। आशा है चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य पूर्ण हो सकेगा। वर्ष १९६८-६९ के अन्तिम तीन माह की स्थिति को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शीघ्र ही हम आयातों से निर्यात अधिक कर लेंगे।

प्रश्न

१ सन् १९५० से भिन्न-भिन्न देशों के साथ और भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भारत का विदेशी व्यापार गिर रहा है? कारणों पर प्रकाश डालिए और समाधान के सुझाव दीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६८)

२ भारत के पिछले बीस वर्षों में विदेशी व्यापार सम्बन्धी प्रमुख परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६७)

३ भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न वस्तुओं का आयात तथा निर्यात किया जाता है।

४ भारत के निर्यात व्यापार की क्या स्थिति है? निर्यात बढ़ाने के लिए सरकार ने क्या प्रयत्न किये हैं। संक्षेप में लिखिए।

५ भारत के आयात एवं निर्यात की प्रमुख वस्तुओं का उल्लेख कीजिए। इन किस प्रकार अपने व्यापार के स्वरूप को औद्योगिक विकास की अपेक्षाओं के अनुरूप बना सकते हैं।

६ सन् १९५० से भारतीय विदेशी व्यापार की क्या दशा रही है? निर्यात वृद्धि के लिए सुझाव दीजिए। (प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९७०)

अध्याय ३०

निर्यात संवर्द्धन
(EXPORT PROMOTION)

एक विकासशील राष्ट्र के आर्थिक विकास में निर्यात की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत बीस वर्षों के आयोजित विकास के पश्चात् भी 'विदेशी व्यापार का सन्तुलन' पक्ष में नहीं कर पाया है, क्योंकि निर्यात व्यापार में यथोचित विकास नहीं हो सका। भारतीय निर्यात व्यापार की प्रगति बहुत धीमी है जिसके कारण इसका भाग विश्व निर्यात में क्रमशः घटता जा रहा है। वर्ष १९५० में विश्व के कुल निर्यात में भारत का भाग २ प्रतिशत था जो सन् १९५५ में घट कर १.४ प्रतिशत ही रह गया। इसके पश्चात् पुनः कमी हुई और सन् १९६० में १ प्रतिशत भाग ही रह गया। सन् १९७० में भारत का विश्व निर्यात में ०.६ प्रतिशत भाग था। भारत वर्ष के निर्यात में १९५१-६० के दशक में मूल रूप से कोई वृद्धि नहीं हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना के औसत निर्यात का मूल्य ६०९ करोड़ रुपये था, जबकि दूसरी योजना के निर्यात का औसत ६१४ करोड़ रुपये ही हो सका। इस प्रकार केवल औसत निर्यात में ५ करोड़ रुपये की वृद्धि हो सकी जो कि वास्तव में बहुत कम थी। तीसरी योजना के निर्यात में औसतन ४.८ प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। उसके पश्चात् वर्ष १९६८-६९, १९६९-७० तथा १९७०-७१ में निर्यात में वृद्धि की दर सन्तोषजनक रही है, किन्तु हमारे देश की आवश्यकताओं के आधार पर यह दर भी कम है। आयात की तुलना में हमारे निर्यात कम हैं जिससे व्यापार सन्तुलन विपक्ष में है। अतः व्यापार सन्तुलन पक्ष में करने के लिए निर्यात संवर्द्धन अत्यन्त आवश्यक है।

आवश्यकता

भारत एक विकासशील राष्ट्र है और ऐसे राष्ट्र के लिए निर्यात बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। विकासशील राष्ट्रों को प्रारम्भिक विकास के वर्षों में अधिक आयात की आवश्यकता होती है। कृषि उद्योग तथा वाणिज्य के विकास के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनें, प्राविधिक ज्ञान तथा कच्चा माल बाहर से मँगवाना पड़ता है। किन्तु आयात की धनराशि विदेशों को चुकानी पड़ती है। इसके लिए, निर्यात का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। विदेशों के कर्ज को चुकाने के लिए निर्यात संवर्द्धन ही एकमात्र प्रभावशाली उपचार है।

(१) भारत ने पंचवर्षीय योजनाओं में विकास के लिए विश्व के अनेक देशों से मशीनों, प्राविधिक ज्ञान आदि का आयात किया गया है। विदेशी पूंजी भी ऋण में ली है। इससे हमारे कर्ज भार में बहुत वृद्धि हो गयी है। विदेशी ऋण इतना बढ़ गया है कि उसका ब्याज चुकाने में भी कठिनाई आ रही है। इस समस्या का एक-मात्र हल निर्यात में पर्याप्त वृद्धि करना है। निर्यात में वृद्धि होने से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित हो सकेगी जिससे कर्ज चुकाया जा सकेगा।

(२) जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है भारत का व्यापार शेष प्रतिकूल है। हमारे आयात निर्यातों की तुलना में अधिक हैं। यह स्थिति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निरन्तर बन रही है। वर्ष १९५१-५२ में व्यापार शेष ८४६.३६ करोड़ रुपये से विपक्ष में था। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में व्यापार शेष ६०२.८८ करोड़ रुपये प्रतिकूल था। किन्तु वर्ष १९६९-७० तथा १९७०-७१ में व्यापार शेष कम प्रतिकूल रहा। वर्ष १९७०-७१ में व्यापार शेष केवल ९० करोड़ रुपये ही विपक्ष में था। इसका मुख्य कारण पिछले वर्षों में निर्यात संवर्द्धन की नीति अपनाना है। यदि भविष्य में निर्यात अधिक तेज गति से बढ़ाये जायें तो व्यापार शेष पक्ष में किया जा सकता है।

(३) निर्यात संवर्द्धन देश की आर्थिक प्रगति में अधिक योग दे सकता है। कृषि तथा उद्योगों की अधिक प्रगति होने से उत्पादन बढ़ता है। वस्तुओं की पूर्ति अधिक हो जाने से उनकी खपत भी आवश्यक है। यदि देशी माँग से अधिक उत्पादन होता है तो विदेशों में निर्यात किया जा सकता है जिससे उत्पादन क्रिया को निरन्तर प्रोत्साहन मिल सकता है।

(४) भारतवर्ष में निर्यात संवर्द्धन की अधिक आवश्यकता का मुख्य कारण चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य प्राप्त करना भी है। चतुर्थ योजना के अन्तिम वर्ष में निर्यात का मूल्य १,९०० करोड़ रुपये करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके पश्चात् वर्ष १९७८-७९ तक २,६५० करोड़ रुपये तथा १९८०-८१ तक ३,०२० करोड़ रुपये तक निर्यात बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। अन्य शब्दों में निर्यात वृद्धि की दर ७ प्रतिशत वार्षिक का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसे प्राप्त करने के लिए निर्यात संवर्द्धन को आधार मानना आवश्यक हो गया है।

(५) भारत का निर्यात व्यापार राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में गिरता जा रहा है। इसका प्रतिशत १९५५-५६ में ६.१ था जो कि वर्ष १९६५-६६ में घटकर ४.० प्रतिशत हो गया। अतः निर्यात संवर्द्धन के माध्यम से इसका भाग राष्ट्रीय आय में बढ़ाया जा सकता है।

निर्यात बढ़ाने की दिशा में सरकार द्वारा किये गये प्रयत्न

(१) निर्यात संवर्द्धन परिषदें (Export Promotion Councils)—इन परिषदों का प्रमुख कार्य सम्बन्धित वस्तु के उत्पादन एवं निर्यात उद्योग के विषय में

अन्वेषण या खोज करना तथा उस वस्तु के निर्माण में वृद्धि करने की दृष्टि से विदेशी बाजारों का सर्वेक्षण करना है। अलग-अलग वस्तुओं के लिए पृथक् परिषदें स्थापित की गयी हैं। अब देश में १८ ऐसी परिषदें कार्यशील हैं जोकि विभिन्न वस्तुओं के लिए हैं, जैसे सूती वस्त्र, रेशम एवं रेयन, प्लॉस्टिक, काजू, तम्बाकू, खेलकूद का सामान, रासायनिक पदार्थ, लाख, चमड़ा, इन्जीनियरिंग का सामान, अभ्रक, मसाले, समुद्री-पदार्थ, परिष्कृत माल, मूल रसायन एवं औषधि, खादी, चमड़े की वस्तुएँ तथा हाथ करघे के उत्पादन आदि।

(२) व्यापार मन्त्रालय एवं निर्यात संवर्द्धन निदेशालय—सन् १९६० में भारत सरकार द्वारा एक पृथक मन्त्रालय की स्थापना केन्द्र में की गयी जिसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मन्त्रालय कहा गया। आरम्भ में इसके मन्त्री श्री मनुभाई शाह रहे। अब इसके मन्त्री श्री दिनेशसिंह हैं, और इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मन्त्रालय के स्थान पर अब केवल व्यापार मन्त्रालय ही कहा जाता है। इसके अन्तर्गत ही निर्यात संवर्द्धन निर्देशालय कार्य कर रहा है। यह निर्देशालय सन् १९५७ की गोरवाला समिति के सुझाव पर स्थापित किया गया।

(३) प्रदर्शनी निदेशालय (The Directorate of Exhibition)—प्रचार एवं विज्ञापन का कार्य इसका दायित्व है। विश्व के अन्तरराष्ट्रीय मेलों एवं प्रदर्शनियों में भारत निरन्तर भाग लेता रहा है, जहाँ भारतीय मण्डप स्थापित किये गये। इस प्रकार भारतीय उत्पादकों को माल प्रदर्शित करने का और माल का निर्यात बढ़ाने का अवसर मिला है। सन् १९६४ में भारत ने न्यूयार्क के विश्व मेले में भाग लिया और इसके दूसरे वर्ष मास्को में भारतीय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

(४) व्यापार मण्डल (Board of Trade)—इसकी स्थापना मई सन् १९६२ में की गयी। इसका मुख्य कार्य निर्यात संवर्द्धन नीति का निरन्तर अध्ययन करना और सरकार को उचित परामर्श देना है। व्यापार मन्त्री इसके अध्यक्ष होते हैं, और इसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों पर अनेक समितियाँ कार्य करती हैं, जिनमें व्यापार एवं उद्योग क्षेत्रों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होता है।

(५) नियन्त्रणों, प्रतिबन्धों एवं करों में रियायतें—निर्यात संवर्द्धन समिति (गोरवाला समिति) ने इस विषय में अनेक उपयोगी सुझाव दिये थे—जैसे निर्यात करों में उत्तरोत्तर कमी, निर्यात के उद्देश्य से आयात किये जाने वाले माल पर आयात करों की वापिसी तथा निर्यात किये जाने वाले माल पर उत्पादन-करों में रियायत आदि।[1] सरकार द्वारा इन सुझावों को सिद्धान्ततः स्वीकार करके तृतीय योजना की अवधि में इन्हें क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया। कुछ विशेष उद्योगों

1 Import Entitlement Schemes and Tax Credit Certificates have been abolished since June 6 1966, following the Devaluation of the Rupee Now assistance is given in the shape of import liberalisation schemes in case of Priorities Industries

में आयकर के विषय में पाँच साल करावकाश (Tax Holiday) दिया गया और कई उद्योगों के लिए विकास छूट (Development Rebate) को २५ से ३५ प्रतिशत तक कर दिया गया। इन सब रियायतों एवं सुविधाओं का मुख्य उद्देश्य निर्यात में वृद्धि करने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना है।

(६) राजकीय व्यापार (State Trading)—मई सन् १९५६ से व्यापार के क्षेत्र में राज्य द्वारा सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया गया और इस दृष्टि से राज्य-व्यापार निगम (State Trading Corporation) की स्थापना की गयी। इस निगम की अधिकृत पूंजी पाँच करोड़ रुपये है और यह पूर्णतः राज्य के नियन्त्रण एवं स्वामित्व में है। पिछले वर्षों में राज्य व्यापार निगम ने निर्यात व्यापार को बढ़ाने में पर्याप्त योग दिया है। निगम द्वारा पूर्वी यूरोप के देशों को सूती-ऊनी वस्त्र, नमक, जूते एवं चमड़े का सामान, तम्बाकू चीनी आदि का निर्यात किया गया है और इनके बदले में धातुओं एवं अन्य औद्योगिक माल का आयात किया गया है। तृतीय योजना के अन्त तक राज्य व्यापार निगम द्वारा प्रतिवर्ष किया जाने वाला आयात निर्यात व्यापार १०० करोड़ रुपये से भी अधिक हो गया। इस निगम के अतिरिक्त **'खनिज तथा धातु व्यापार निगम'** धातु एवं खनिज पदार्थों के आयात तथा निर्यात का व्यापार करता है। सन् १९५७ में 'निर्यात साख तथा गारन्टी निगम' (The Export Credit and Guarantee Corporation) और सन् १९६८ में **'राष्ट्रीय टैक्सटाइल निगम'** (The National Textile Corporation) की स्थापना की गयी है।

(७) लागत मूल्यों में कमी और किस्म में सुधार—हमारे निर्यात की कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनमें हमें विश्व बाजार में कठोर प्रतियोगिता का सामना करना होता है। सूती वस्त्र का उदाहरण हम ले सकते हैं जिसका निर्यात पिछले पाँच वर्षों से गिरता जा रहा है। चाय के निर्यात में भी भारत को श्रीलंका के साथ कड़ी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है। ऐसी स्थिति जूट के सामान के निर्यात के लिए उत्पन्न हो सकती है। अतः निर्यात बढ़ाने के लिए हमें अपने लागत मूल्यों को उचित सीमा में रखना होगा और साथ ही तकनीकी सुधारों एवं नवीन प्रयोगों द्वारा अपने उत्पादन की किस्म में निरन्तर सुधार करना होगा। विकासशील अर्थव्यवस्था में लागत मूल्यों को स्थिर रखना तो असम्भव होता है किन्तु यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि अन्य देशों की तुलना में भारत के निर्यात की वस्तुओं के मूल्य उचित हों।

(८) अन्य प्रयत्न—(i) **क्रैश निर्यात कार्यक्रम** (Crash Export Programme)—भारत सरकार ने दिसम्बर १९६९ में क्रैश निर्यात कार्यक्रम (Crash Export Programme) की घोषणा की। इस कार्यक्रम की मुख्य बातें थीं—(१) निर्यात के सामने आने वाली कठिनाइयों को शीघ्र दूर करना, (२) पुराने स्टॉक तथा अनुसूचित उत्पादन से निर्यात को बढ़ावा देना, (३) विशेषकर निर्यात के लिए पूर्ण क्षमता

का उपयोग करना, (८) सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र द्वारा विशेष विभाजन के प्रयत्न करना।

(ii) निर्यात गृहों के माध्यम से आयात (Imports Through Export Houses)—भारत सरकार की वर्ष १९६९-७० की आयात नीति में निर्यात गृहों के माध्यम से आयात करने की व्यवस्था पर जोर दिया गया है। इस कार्यक्रम में इन गृहों को प्रत्यक्ष आयात लाइसेन्स देने की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ दी हैं।

(iii) विशेष योग्यता निर्यात पुरस्कार—निर्यात संवर्द्धन के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय पुरस्कार योजना चलायी है। इसके अन्तर्गत विशेष योग्यता दिखाने वाले निर्यातकों को पुरस्कार दिया जाता है।

(iv) व्यापार विकास संस्थान (Trade Development Authority)—भारत सरकार ने अगस्त १९७० में एक व्यापार विकास अथोरिटी स्थापित करने की घोषणा की। यह संस्था निर्यात विकास के लिए व्यापार सूचनाओं, अनुसन्धान एवं विश्लेषण आदि के माध्यम से सहायता प्रदान करेगी।

(v) जूट टेक्सटाइल कन्सल्टेटिव कौंसिल (Jute Textile Consultative Council)—जुलाई १९६९ में भारत सरकार ने इस परिषद् की स्थापना की। यह परिषद् समय-समय पर भारत सरकार को जूट उद्योग के महत्वपूर्ण विषयों (विशेषकर निर्यात बढ़ाने से सम्बन्धित) पर सलाह देता है।

निर्यात का विविधीकरण
(Diversification of Exports)

यदि हम देश के निर्यात की सूची का अध्ययन करें, तो हम ज्ञात होगा कि निर्यात की वस्तुओं में कुछ वस्तुओं की ही प्रधानता है जैसे जूट एवं चाय। सन् १९६६-६७ में भारत के निर्यात व्यापार में जूट के माल का प्रतिशत २१.५ और चाय का प्रतिशत १३.८ था। सूती वस्त्रों के निर्यात का अनुपात ६.६ प्रतिशत था। यदि इन तीन निर्यात वस्तुओं को मिलाकर देखा जाय, तो हमें ज्ञात होगा कि कुल निर्यात में इन तीन वस्तुओं का अनुपात ४१.९ प्रतिशत था। शेष वस्तुओं में खनिज लोहा, चमड़ा एवं चमड़े के बने सामान, खली, काजू, मसाले, तम्बाकू, एवं इसके पदार्थ, इन्जीनियरिंग के सामान आदि थे जिनका अनुपात कुल निर्यात व्यापार में ३ से ६ प्रतिशत के बीच में था। निर्यात व्यापार की कुछ थोड़ी वस्तुओं पर निर्भरता हमारी स्थिति को कई बार अत्यन्त दयनीय बना देती है, क्योंकि यदि किसी वर्ष कुछ कारणों से उस माल का उत्पादन कम होता है अथवा उस माल की माँग विश्व बाजारों में कम होती है, तो उस वर्ष हमारे निर्यात के आकार को उससे बड़ी हानि पहुँचती है। अत भारत को अपने निर्यात व्यापार के इस परम्परागत ढाँचे को

बदलना होगा। देश के निर्यात व्यापार का प्रमुख आधार अब तक कृषि रहा है। अब हमें कृषि के साथ साथ भारी उद्योगों को भी इसका आधार बनाना होगा।

इस दृष्टि से इन्जीनियरिंग उद्योग हमारी आशाओं को पूरा कर सकता है। सन् १९७०-७१ में भारत द्वारा लगभग ११६ करोड़ रुपय मूल्य का इन्जीनियरिंग का सामान विभिन्न देशों को निर्यात किया गया। इस सामान में स्टील के पाइप, ट्यूब, बिजली के पंखे सिलाई की मशीनें, अन्य मशीनें तथा कल पुर्जे थे। अब भारत से इस्पात का निर्यात भी अन्य देशों को किया जा रहा है। इधर सोवियत रूस से रेल के डिब्बों के निर्यात के लिए एक समझौता हुआ है। आशा है वास्तविक निर्यात इस लक्ष्य से अधिक हो सकेगा। इस विषय में विभिन्न देशों से पारस्परिक समझौते किये जा रहे हैं। इसके लिए परिषद को नये बाजारों, नयी आवश्यकताओं तथा नयी दिशाओं को खोजना होगा तथा प्रचार, विज्ञापन एवं प्रदर्शन के द्वारा विदेशों में भारत की बनी नयी वस्तुओं की खपत को बढ़ाना होगा।

वर्तमान समय में निर्यात की वृद्धि का श्रेय गैर परम्परावादी वस्तुओं को है। वर्ष १९६९-७० तथा १९७०-७१ में इन्जीनियरी के सामान, कच्चा लोहा, लोहा एवं इस्पात, रसायनिक पदार्थों के निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हुई। इनके अतिरिक्त चमड़ा तथा चमड़े का निर्मित सामान, फल-सब्जियाँ, खली, हस्तकला का सामान आदि के निर्यात में भी वृद्धि हो रही है। किन्तु परम्परागत वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि नहीं हो रही है। परम्परागत वस्तुओं (जूट एवं जूट निर्मित सामान, चाय तथा सूती वस्त्र) के निर्यात व्यापार को ध्यान में देखने से पता चलता है कि कुल निर्यातों में इनका भाग धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। उक्त तीन पदार्थों के निर्यात का भाग वर्ष १९५०-५१ में लगभग ५२ प्रतिशत था जो कि वर्ष १९६८-६९ में घट कर ३२.७ प्रतिशत हो गया। वर्ष १९६०-६१ की तुलना में वर्तमान समय में भारतीय इन्जीनियरिंग के सामान के निर्यात में दस गुनी वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्यात व्यापार में वृद्धि करना भारत के लिए एक अनिवार्यता बन चुकी है। इसके बिना हमारा आर्थिक विकास आगे नहीं बढ़ सकेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो मूलभूत उपाय हमें करना चाहिए वह है देश में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादनों को बढ़ाना ताकि आन्तरिक उपभोग के बाद निर्यात के लिए पर्याप्त मात्रा बच सके। निर्यात के लिए माल का बच रहना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उसे बेचने के लिए हमें अपनी निर्यात-योग्यता में भी वृद्धि करनी होगी—अर्थात् यदि हमारे माल की किस्म उत्तम है और उसका मूल्य उचित सीमाओं के अन्दर है तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि विदेशों में भारतीय माल की मांग बढ़ेगी। पिछले वर्षों में हाथ करघों एवं हस्तकला उद्योगों द्वारा निर्मित भिन्न कलात्मक वस्त्रों एवं अन्य वस्तुओं की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है और उसकी मांग विदेशों में बढ़ रही है।

चौथी योजना में निर्यात के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निर्धारित अपेक्षाएँ

चतुर्थ योजना का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अगले दस वर्षों में भारत बहुत कुछ आत्मनिर्भरता अथवा स्वावलम्बन की स्थिति प्राप्त करे। इस उद्देश्य की पूर्ति निर्यात को बढ़ाये बिना नहीं की जा सकेगी। इसके लिए निम्नलिखित अपेक्षाएँ निर्धारित की गयी हैं

१ कृषि पदार्थों, औद्योगिक उत्पादनों एवं खनिज पदार्थों के विषय में निर्धारित लक्ष्यों की वास्तविक उपलब्धि अवश्य की जानी चाहिए।

२ निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का आन्तरिक उपभोग यथासम्भव सीमाओं के अन्दर रखा जाना चाहिए।

३ निर्यात के उद्देश्य से माल का समुचित भण्डार रखा जाना चाहिए, ताकि निर्यात नियमित रूप से होता रहे।

४ यह प्रयत्न किये जाने चाहिए कि विश्व बाजार में भारतीय माल के मूल्य प्रतियोगितात्मक हों।

५ ऐसे संस्थानों की स्थापना पर विचार किया जाना चाहिए जिनका उद्देश्य कुछ विशेष पदार्थों का निर्यात करना हो।

६ निर्यात बढ़ाने में सार्वजनिक-उपक्रमों का सक्रिय एवं रचनात्मक योग प्राप्त होना चाहिए।

७ आवश्यक कच्चे माल के अभाव के कारण निर्यात कार्यक्रमों में बाधा नहीं आने देना चाहिए।

प्राय यह कहा जाता है कि आन्तरिक उपभोग में कमी करके भी निर्यात को बढ़ाया जाना चाहिए। नागरिकों से यह आशा की जानी चाहिए कि वे देश के भावी विकास के लिए अपनी वर्तमान आवश्यकताओं का त्याग करें। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह विचार बहुत अधिक सफल नहीं हो सकता। आन्तरिक उपभोग को एक सीमा तक ही नियन्त्रित किया जा सकता है। दूसरे, जब यदि आन्तरिक उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, तो फिर उन उद्देश्यों की प्राप्ति न हो सकेगी जिनके लिए हम अपने निर्यात को बढ़ाना चाहते हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में निर्यात में ७ प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए हमें परम्परागत अथवा अन्य वस्तुओं के निर्यात का विस्तार, किस्म-स्तर में वृद्धि तथा मूल्यों में कमी करनी चाहिए। निर्यात की तरफ कृषि तथा व्यवसाय की तरह विशेष ध्यान देना चाहिए। भारत को विदेशों में भी कारखाने स्थापित करना चाहिए। इससे भारतीय तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा तथा विदेशी मुद्रा अधिक प्राप्त हो सकेगी। भारत अभी रूस के सहयोग से निर्यात बढ़ाने के प्रयत्न कर रहा है। भारत में रूस की सहायता से चल रही परियोजनाओं में निर्मित मशीनों को विदेशों में काम में लेने का प्रस्ताव है। रूस भारत को तीसरे देशों में परियोजनाएं चालू करने में भी सहायता करेगा जिनमें

अन्तर्गत रूस की सहायता से भारत में निर्मित मशीनों को काम में लाया जा सकेगा।

निर्यात संवर्द्धन के लिए निर्यातकों को अधिक सुविधाएँ देकर उत्साहित करना चाहिए। विदेशों में बाजारों की खोज तथा प्रचार पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। विदेशी प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखकर मूल्यों का स्तर इसके आधार पर निश्चित करना चाहिए। इन्जीनियरिंग के सामान के अधिक बाजार खोलने चाहिए।

विदेशी व्यापार की दृष्टि से भारत की स्थिति विश्व में अत्यन्त साधारण है। विश्व के कुल निर्यात व्यापार में भारत का हिस्सा केवल १ प्रतिशत है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में धातु तथा धातु निर्मित वस्तुओं के निर्यात (मशीनें, उपकरण तथा इन्जीनियरिंग के सामान सहित) पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। चतुर्थ योजना में निर्यात निम्न प्रकार होंगे

भविष्य में निर्यातों का अनुमान

(करोड़ रुपये)

विवरण	१९६८-६९	१९७३-७४	१९८०-८१
१ कृषि एवं अन्य उत्पादन	४७५	६६७	१०२४
२ चाय	१८०	२०५	२६०
३. सभी अन्य उत्पादन (Products)	२९५	४६२	७८४
४ खनिज	१३०	१९३	३१५
५. आयरन ओर	८६	१४५	२५२
६ निर्मित वस्तुएँ	६७५	९५९	१५६६
७ सूती कपड़ा तथा जूट का सामान	२७६	३३६	३८४
८ सभी अन्य निर्मित वस्तुएँ	३९९	६२३	११८२
९ अन्य निर्यात—अवर्गीकृत	६०	८१	११५
१० कुल निर्यात	१३४०	१९००	३०२०

(*Source—Fourth Five Year Plan*, (1969 74)

उपरोक्त सारिणी में दीर्घकालीन निर्यातों का प्रस्ताव रखा गया है। १९८०-८१ तक ७ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का प्रस्ताव रखा गया है। इस अवधि में निर्मित माल के निर्यात पर विशेष ध्यान देने का प्रस्ताव है। सूती वस्त्र तथा जूट के निर्मित सामान को छोड़कर १९६८-६९ की तुलना में १९८०-८१ में ९.५ प्रतिशत की वृद्धि की जायेगी। आयरन ओर का निर्यात १९६८-६९ की तुलना में १९८०-८१ तक ९ प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ाया जायेगा।

चाय तथा जूट के परम्परागत निर्यात का प्रतिशत कम किया जायेगा। वर्ष १९६८-६९ में इनका प्रतिशत २९ प्रतिशत है जबकि १९८०-८१ में केवल १७ प्रतिशत रह जायेगा। इस प्रतिशत में कमी अन्य वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि करने की

जायेगी। विश्व के बाजार में खलों (oil cakes) मछली तथा इनसे निर्मित वस्तुओं की मांग निरन्तर बढ़ रही है। भविष्य में इनके निर्यात में पर्याप्त वृद्धि की जायेगी। आशा है भारत शीघ्र ही अपने निर्यातों को आयातों से अधिक कर लेगा।

निर्यात बढ़ाने के लिए सुझाव

भारतीय निर्यात वृद्धि की समस्या देश में पर्याप्त उत्पादन वृद्धि की समस्या का एक अंग है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ देश की आन्तरिक आवश्यकताएँ भी बढ़ती जा रही हैं। अतः प्रतिवर्ष उत्पादन में भारी वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त लागत नीचा करने के प्रयत्न भी अपेक्षित हैं। मूल्य स्फीति, उत्पादन तकनीक का पिछड़ापन, अनुसन्धान तथा किस्म सुधार योजनाओं के अभाव के कारण भारतीय वस्तुएँ विदेशी उपभोक्ताओं को आकर्षित करने में असमर्थ हैं। भारतीय वस्तुओं के लिए विदेशों में बाजार का विस्तार किया जा सकता है। निर्यात बढ़ाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं

(१) **नीचे मूल्यों पर वस्तु उपलब्ध कराना**—हमारी निर्यात वस्तुओं को प्रतिस्पर्धा के स्तर पर लाना अत्यन्त आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन दल ने हाल ही में सुझाव दिया था कि निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन मूल्य घटाने के लिए यथोचित प्रयत्न किये जायें। आज हमें विभिन्न वस्तुओं के विक्रय में अनेक देशों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है और हमारी वस्तुओं के मूल्य ऊँचे होने के कारण प्रतिस्पर्धा में टिकना कठिन हो रहा है। यही कारण है कि कुछ वस्तुओं के हमारे विदेशी बाजार हाथ से निकलते जा रहे हैं।

(२) **किस्म नियन्त्रण एवं उत्तम एवं आकर्षक पैकिंग की व्यवस्था**—विदेशी बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए यह भी आवश्यक है कि वस्तु अच्छी किस्म की हो। इसके लिए किस्म नियन्त्रण विधि अपनानी चाहिए। आज प्रायः यह शिकायत सुनने को मिलती है कि भारतीय विक्रेता केवल आकस्मिक बिक्री पर अधिक ध्यान देते हैं बाद में वस्तुओं की किस्म में कमी आने लगती है। बाजार की पकड़ तथा विस्तार के लिए किस्म को बनाये रखना आवश्यक है।

विदेशों में भेजे जाने वाला माल अच्छी पैकिंग के बिना खराब हो जाता है। कभी-कभी तो माल नष्ट भी हो जाता है। अतः पर्याप्त पैकिंग व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है।

(३) **बाजार विस्तार तथा विपणन की उचित व्यवस्था**—भारत का विदेशी व्यापार कुछ ही देशों जैसे इगलैण्ड तथा अमरीका से अधिक होता रहा है। यद्यपि पिछले वर्षों में सोवियत रूस, जापान, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में भी हमारा व्यापार बढ़ रहा है किन्तु अभी और सम्भावनाएँ भी हैं। अनेक विकासशील राष्ट्रों में हमारी वस्तुओं के बाजार स्थापित किये जा सकते हैं। इसके लिए भिन्न भिन्न देशों में बाजार खोजने के प्रयत्न करने चाहिए। पर्याप्त विज्ञापन के माध्यम से उपभोक्ताओं को अवगत कराने की आवश्यकता है। बाजार के विस्तार के

अतिरिक्त विपणन की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। विपणन की वैज्ञानिक विधियों को अपनाना चाहिए ताकि वस्तुओं की माँग अधिक हो सके।

(४) **वित्तीय एवं साख व्यवस्था**—निर्यात बढ़ाने के लिए पर्याप्त, सस्ती तथा उदार निर्यात साख-सुविधाओं का विस्तार करना चाहिए। सस्ती निर्यात साख सुविधा से निर्यातक प्रतिस्पर्धा में टिक सकता है। निर्यात साख की लागत भी कम होनी चाहिए। भारतवर्ष में निर्यात साख के लिए सन् १९६४ में निर्यात साख एवं गारन्टी निगम की स्थापना की गयी है। हाल ही में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने निर्यात साख के लिए उदारवादी नीति अपनाई है। इस बैंक ने विभिन्न बैंकों से अनुरोध किया है कि इन्जीनियरिंग सामान और रासायनिक सामान के निर्यातकों से ६ प्रतिशत और अन्य वस्तुओं के निर्यातकों से ८ प्रतिशत से अधिक ब्याज नहीं लिया जाये।

(५) **निर्मित माल के निर्यात पर अधिक बल**—इसके लिए हमें निर्यात नीति में संशोधन करना होगा। हमारे देश से निर्मित माल और कच्चे माल दोनों ही प्रकार की वस्तुओं का निर्यात होता है। भारत से कच्चा लोहा बड़ी मात्रा में निर्यात होने लगा है। किन्तु यदि इस कच्चे लोहे को अर्ध निर्मित सामान के रूप में निर्यात किया जाय तो हमें दो तरह का लाभ हो सकता है। एक तरफ तो अर्ध निर्मित माल को तैयार करने के लिए उद्योगों का विकास करना होगा जिससे व्यापार अधिक मिल सकेगा और दूसरी तरफ अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित हो सकेगी।

(६) **उपभोक्ताओं से निरन्तर सम्पर्क**—भविष्य में बाजार में माँग बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि विदेशी ग्राहकों से निरन्तर सम्पर्क रखा जाये। व्यापारी विदेशों में अपने प्रशिक्षित कर्मचारी भेजें जो यह देखें कि उनके द्वारा प्रदान की गयी वस्तुएँ अच्छी तरह कार्य कर रही हैं या नहीं। कुछ वस्तुओं के निर्यात की दशा में विक्रय के पश्चात् सेवा (After Sale Service) की बहुत आवश्यकता पड़ती है। अतः इस दिशा में पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(७) **अन्य**—विदेशी व्यापार में यातायात की पर्याप्त एवं सस्ती सेवा उपलब्ध कराना नितान्त आवश्यक है। शिपिंग कम्पनियाँ निर्यात बढ़ाने में किराया भाड़ा कम करके मदद कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त निर्यातकों को पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करके भी प्रोत्साहित कर सकती हैं। आजकल सम्पन्न राष्ट्र अपने-अपने आर्थिक संगठन बना चुके हैं। ये देश विकासशील राष्ट्रों की समस्याओं की तरफ अधिक ध्यान नहीं देते अतः एशिया के विकासशील राष्ट्र संगठित होकर सहकारी रूप से आपकी कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं।

हमारी वर्तमान निर्यात नीति में निर्यात बढ़ाने के अनेक वायदे किये गये हैं। संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास अधिवेशन द्वितीय के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की नीति से सम्बन्धित प्रस्ताव को मान लिया है। हमारी निर्यात नीति में अफ्रीका एवं लैटिन

अमरीका ने विकासशील देशों के माल आयात सम्बन्ध में अधिक सुविधाएँ देने का भी प्रस्ताव है। आशा है भविष्य में हमारा निर्यात व्यापार नवीन मार्गों में बढ़ सकेगा।

प्रश्न

१ भारतीय विदेशी व्यापार में निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता समझाइए। इस सम्बन्ध में सरकार ने जो भी प्रयत्न किये हैं उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए और अपने भी सुझाव दीजिए। (प्रथम वर्ष वाणिज्य टी० डी० सी०, १९७१)

२ भारत सरकार ने निर्यात संवर्द्धन के प्रयत्न किये हैं? क्या ये सफल पाए जाते हैं।

३ भारतीय निर्यात बढ़ाने के समक्ष कौन कौन सी बाधाएँ हैं? इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

४ निर्यात संवर्द्धन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

५ १९५० से भारतीय विदेशी व्यापार की क्या दशा रही है? निर्यात वृद्धि के लिए सुझाव दीजिए। (प्रथम वर्ष वाणिज्य टी० डी० सी०, १९७०)

अध्याय ३१

रेल परिवहन

(RAIL TRANSPORT)

देश के आर्थिक विकास के लिए यातायात की उत्तम व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। यातायात के सभी आधुनिक साधनों का विकास किया जाना आवश्यक है किन्तु इनमें रेल यातायात का अपना अलग महत्त्व है। भारतीय रेल देश का सबसे बडा तथा संगठित सरकारी उपक्रम है। एशिया में भारतीय रेलों का संगठन की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान है। विश्व में भी भारतीय रेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यातायात से सम्बन्धित अधिकांश आवश्यकताएँ रेलों से पूरी की जाती हैं। इसमें १४ लाख से भी अधिक व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त है। देश में प्रथम रेल मार्ग अप्रैल सन् १८५३ में बम्बई से थाना तक आरम्भ किया गया। रेल यातायात के विकास का इतिहास एक सदी से भी अधिक का है। भारत में आज ६१ ६७७ किलोमीटर रेल पथ हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का यह सबसे बडा उपक्रम है जिसमें लगभग ३,५०० करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है। इस उपक्रम से रेलवे को ६०० करोड रुपये से कुछ अधिक आय होती है तथा उसमें से ३० करोड रुपया प्रतिवर्ष रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व में दिया जाता है।

रेलों के आर्थिक लाभ

भारत की आर्थिक व्यवस्था में रेलों का बहुत अधिक महत्त्व है। देश के व्यापार की उन्नति में इनका विशेष योगदान है। कृषि तथा औद्योगिक विकास में रेलों ने पर्याप्त सहयोग दिया है। रेलों के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं :

(१) देश के आन्तरिक व्यापार में सहायता

आन्तरिक व्यापार में रेलें अधिक उपयोगी हैं। माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य रेलें सम्पन्न करती हैं। इनमें अधिक मात्रा में माल ढोया जाता है। कम समय तथा उचित मूल्य पर रेलें परिवहन सेवाएँ उपलब्ध करती हैं। वर्ष १९६६-६७ में इनमें २० करोड टन से भी अधिक माल ढोया गया। इनसे खाद्यान्न एक जगह से दूसरी जगह ले जाये जाते हैं। उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध होता है, तथा निर्मित माल उपभोक्ताओं तक पहुँचता है। अतः आन्तरिक व्यापार में इनका विशेष हाथ है।

(६) डाक सुविधाएँ

भारतीय रेलों द्वारा ये सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं। पत्र शीघ्र तथा सुरक्षित रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाते हैं। देश में आर० एम० एस० (Railway Mail Service) द्वारा कुशल सेवा प्रदान की जाती है। डाक सुविधाओं से उद्योग तथा व्यापार की उन्नति तेज गति से होती है।

(७) अन्य

रेल यातायात के विकास से देश के विभिन्न भागों के मूल्यों में अधिक समानता पायी जाती है। इस सुविधा से पूर्व मूल्यों में बहुत असमानता थी। इसके अतिरिक्त अकाल निवारण में रेलें विशेष योगदान करती हैं। अकाल के कारण खाद्यान्नों का अभाव हो जाता है जिससे अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। इनका सामना रेल यातायात से किया जाता है। पशुओं के लिए चारा रेलों से अभाव के क्षेत्रों में भेजा जाता है। अतः दुर्भिक्ष के समय इससे जन धन की रक्षा होती है। देश की सुरक्षा में भी सैनिक दृष्टि से रेल परिवहन महत्त्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त आर्थिक प्रभावों के अतिरिक्त सामाजिक प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण हैं। छुआछूत तथा जाति भेद को कम करने में रेलों का प्रमुख योग है। देश में सांस्कृतिक तथा सामाजिक विषमताओं को कम करने तथा राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में रेलों ने बहुत बड़ी सहायता की है। अतः देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास में रेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रेलों का विकास

भारत में रेल यातायात का प्रारम्भ सन् १८५३ में हुआ जबकि बम्बई से थाना तक रेल चलाई गयी। इस समय ३४ किलोमीटर रेलवे लाइन थी। इसके पश्चात् १८५४ में कलकत्ता क्षेत्र में रेल का विकास किया गया। इस वर्ष हावड़ा से रानीगज तक १९२ किलोमीटर लम्बा रेल पथ बनाया गया। सन् १८५६ में मद्रास से अरकोनम रेल मार्ग बनाया गया जो ६३ किलोमीटर लम्बा था। १८७० तक रेलवे का विकास तेज गति से हुआ। इस काल में ८ रेलवे कम्पनियां इसमें संलग्न थी। इन प्रयत्नों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार तथा राज्यों ने भी रेलवे मार्ग बनाने के प्रयत्न किये। सन् १८६९ तक देश में पुरानी गारन्टी पद्धति के अन्तर्गत रेलों का विकास किया गया। इस गारन्टी पद्धति से सरकार को अधिक नुकसान हुआ अतः इस प्रणाली का त्याग किया गया। इस काल में ६ हजार किलोमीटर से अधिक रेलवे मार्गों का निर्माण किया गया।

सन् १८६९ में सरकार ने लार्ड लारेन्स के सुझाव पर रेलों का निर्माण प्रारम्भ किया। सरकारी निर्माण तथा प्रबन्ध की अवधि १८६९ से १८७९ तक की मानी जाती है। इस अवधि में मुख्य मार्गों में चौड़ी लाइनें बनायी गयी और सहायक मार्गों के लिए कम चौड़ी लाइनें निर्मित की गयी। इस काल में रेलवे मार्गों की लम्बाई में वृद्धि भी की गयी। सन् १८८३ में रेलवे मार्गों की लम्बाई ७,१५७ किलोमीटर हो

गयी। सरकार इतना व्यय वहन करने में असमर्थ थी, अतः निजी कम्पनियों की सहायता लेना आरम्भ किया गया। सन् १८७६ से १६०० तक का काल नवीन गारन्टी की पद्धति का काल माना जाता है। सरकार ने रेलवे मार्गों को दो प्रमुख भागों में बाँटा। प्रथम भाग रक्षात्मक कार्यों के लिए था जो सरकारी क्षेत्र में था। द्वितीय भाग की रेलवे लाइनों का विकास निजी कम्पनियों के क्षेत्र में रखा गया। इस काल में सरकार तथा निजी कम्पनियों में समझौता हुआ नवीन गारन्टी पद्धति को अपनाया गया। इस अवधि में रेलवे मार्गों की कुल लम्बाई ४० हजार किलोमीटर से भी अधिक हो गयी। सन् १६०० से प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ तक रेलवे की तीव्र गति से उन्नति हुई। सन् १६१३ तक रेलवे मार्गों की लम्बाई ५५ हजार किलोमीटर से भी अधिक थी। सन् १६०५ में रेलवे बोर्ड की स्थापना की गयी थी और १६०७ में एक समिति की नियुक्ति भी की गयी। इस समिति ने रेलवे मार्गों को बढ़ाने का सुझाव दिया।

प्रथम विश्व युद्ध और इसके पश्चात्

प्रथम विश्व युद्ध काल में रेलों का विकास नहीं हो पाया। रेलवे कार्यक्षमता में कमी हुई और रेल भाड़े में वृद्धि भी की गयी। सन् १६२० में विलियम आकवर्थ की अध्यक्षता में एक समिति बनायी गयी जिसने १६२१ में रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट में रेलवे बोर्ड के संगठन में सुधार, रेलवे ह्रास कोष तथा रेट ट्रिब्यूनल स्थापित करने पर बल दिया गया। सरकार ने रेल भाड़ा सलाहकार कमेटी बनायी, सन् १६२४ में रेलवे वित्त को सामान्य राजस्व से अलग किया। सन् १६२३ में रेलवे के राष्ट्रीयकरण की नीति अपनायी गयी। रेलवे बोर्ड का पुनर्गठन किया गया। सन् १६२३-२४ में रेल मार्गों की लम्बाई ६१ हजार किलोमीटर से भी अधिक हो गयी।

सन् १६२६ की विश्व व्यापी मन्दी में रेलवे की आय में कमी हुई। व्यय निरन्तर बढ़ने लगा जिससे घाटा होने लगा। इसके लिए सन् १६३२ में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने व्यय कम करने का सुझाव दिया। सन् १६३६ में वैजवुड समिति नियुक्त हुई। इस समिति ने केन्द्रीय वचत अनुसन्धान समिति की स्थापना का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त रेलों को ८ वर्गों में विभक्त करने, रेलवे ह्रास कोष व संचित कोष की व्यवस्था तथा रेल सड़क प्रतियोगिता को कम करने के सुझाव दिये।

द्वितीय विश्व युद्ध एवं इसके पश्चात्

द्वितीय विश्व युद्ध काल में रेल यातायात की आय में वृद्धि हुई क्योंकि इस समय यातायात की माँग में वृद्धि हो गयी। युद्ध के कारण विकास कार्य अधिक नहीं किये गये। कुछ रेलवे मार्गों को उखाड़ा गया। वर्ष १६३३-३४ में रेलवे मार्गों की लम्बाई ६६ हजार किलोमीटर थी जबकि १६४२-४४ में ६५ हजार हो गयी। युद्ध काल में युद्ध परिवहन बोर्ड स्थापित किया गया। सन् १६४४ में सुधार कोष स्थापित किया गया। इस अवधि में रेलवे की आर्थिक स्थिति अच्छी हुई, क्योंकि आय में पर्याप्त वृद्धि हुई।

१	२	३	४	५	
४ उत्तरी	अप्रैल १४, १९५२	पूर्वी पंजाब, जोधपुर, बीकानेर ई आई आर के तीन ऊपरी विभाग	दिल्ली	ब्रॉड गज	६८९९
				मीटर ,,	३४३२
				नैरो ,,	२६०
५ उत्तरी-पूर्वी	अप्रैल १४, १९५२	ओ टी रेलवे बम्बई, बड़ौदा और केन्द्रीय भारत रेलवे का फतेहगढ़ जिले का विभाग	गोरखपुर	ब्राड ,,	५२
				मीटर ,,	४९१३
६ पूर्वी	अगस्त १, १९५५	ई आई आर रेलवे (ऊपरी तीन विभागों को छोड़कर)	कलकत्ता	ब्रॉड ,,	४०१३
				मीटर ,,	१३१
७ दक्षिणी पूर्वी	अगस्त १, १९५५	बंगाल-नागपुर रेलवे	कलकत्ता	ब्रॉड ,,	५३२३
				मीटर ,,	१४७९
८ उत्तरी पूर्वी सीमान्त	जनवरी १५, १९५८	आसाम रेलवे	मालीगांव (गोहाटी)	ब्रॉड ,,	६४५
				मीटर ,,	२८९९
				नैरो ,,	८७
९ दक्षिण केन्द्रीय	अक्तूबर २, १९६६	दक्षिणी और केन्द्रीय रेलवे के भाग	सिकन्दराबाद	ब्रॉड ,,	२६०६
				मीटर ,,	३१८३
				नैरो ,,	३७०

(*Source—India*, 1970, p 395)

(१) उत्तरी रेलवे मार्ग (Northern Railway)

उत्तरी रेल मार्ग पश्चिम में पाकिस्तान की सीमा से पूर्व में मुगल सराय तक है। यह राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश में विस्तृत है। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। इसमें जोधपुर रेलवे, बीकानेर रेलवे, पूर्वी पंजाब रेलवे और ईस्ट इण्डियन रेलवे का पश्चिमी भाग सम्मिलित है। मार्गों की लम्बाई में ब्रॉडगेज ६८६६ किलोमीटर, मीटर गेज ३८३२ तथा नैरो गेज २६० किलोमीटर है। इसकी आठ मुख्य शाखाएँ हैं जो निम्न प्रकार हैं

(१) दिल्ली से मेरठ, सहारनपुर, अम्बाला, लुधियाना, जलन्धर और अमृतसर होकर अटारी तक की शाखा।

(२) दिल्ली से रोहतक, भटिंडा होती हुई फिरोजपुर तक।

(३) दिल्ली से अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद होती हुई मुगल सराय तक।

(४) दिल्ली से रेवाड़ी, हिसार, रतनगढ़ से जोधपुर पाकिस्तान की सीमा तक।

(५) जोधपुर बीकानेर—भटिंडा।

(६) मुगलसराय से देहरादून तक।

(७) सहारनपुर से बनारस तक।

(८) दिल्ली से कालका तक।

(२) उत्तरी पूर्वी रेलवे मार्ग (Northern-Eastern Railway)

इसकी शाखाएँ आसाम, पश्चिमी बंगाल तक, उत्तरी बिहार तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग में है। इसका प्रधान कार्यालय गोरखपुर में है। इसके मार्गों की लम्बाई ब्रॉडगेज ४२ किलोमीटर तथा मीटर गेज ४६१३ किलोमीटर है। इसकी मुख्य शाखाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) गोरखपुर—बनारस।

(२) गोरखपुर—अमीनगाँव (आसाम)।

(३) गोरखपुर—धामपुर।

(४) मनीपुर रोड होती हुई तिनसुकिया तक।

(५) इलाहाबाद—गोरखपुर।

(६) बरेली से कटिहार तक।

(३) पूर्वी रेलवे मार्ग (Eastern Railway)

इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में है। इसकी ब्रॉडगेज की लम्बाई ४०१३ तथा मीटर गेज की १३१ किलोमीटर है। इसकी शाखाएँ उत्तरप्रदेश के कुछ भाग, बिहार के अधिकांश भाग तथा पश्चिमी बंगाल में हैं। प्रमुख रेल मार्ग निम्नलिखित हैं :

(१) कलकत्ता से मुगलसराय।

(२) कलकत्ता से लाल गोलाघाट।

(३) बर्दवान से विऊल।
(४) आसनसोल से मुगलसराय।

(४) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त रेलवे (North East Frontier Railway)

इसका प्रधान कार्यालय माली गाँव (गोहाटी) में है। इसकी ब्रॉडगेज की लम्बाई ६४५ किलोमीटर, मीटर गेज की लम्बाई २८९९ तथा नैरो गेज की लम्बाई ८७ किलोमीटर है। इस रेल मार्ग के अन्तर्गत असम, पश्चिमी बंगाल तथा बिहार के कुछ भाग हैं।

(५) दक्षिणी-पूर्वी रेल मार्ग (South Eastern Railway)

इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में है। इसके ब्रॉड गेज और नैरो गेज की लम्बाई क्रमश ४३२३ तथा १४७९ किलोमीटर है। यह रेल मार्ग मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल राज्यों में हैं। इसकी मुख्य शाखाएँ निम्न हैं

(१) हावड़ा से नागपुर तक।
(२) हावड़ा से वाल्टेयर तक।
(३) उपशाखा रायपुर और वाल्टेयर को मिलाती है।

(६) मध्य रेलवे (Central Railway)

इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। इसके ब्रॉडगेज, मीटर गेज तथा नैरोगेज की लम्बाई क्रमश. ४,९९३, ३९३ तथा ७९६ किलोमीटर है। इसमे महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इसकी प्रमुख शाखाएँ निम्न हैं.

(१) बम्बई से नागपुर तक।
(२) बम्बई से ओखला (दिल्ली) तक।
(३) बम्बई से इलाहाबाद।
(४) बम्बई से रायपुर।
(५) झाँसी से इटारसी।
(६) ओखला से विजयवाडा।

(७) पश्चिमी रेल मार्ग (Western Railway)

इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। इसके ब्रॉड गेज, मीटर गेज तथा नैरो गेज की लम्बाई क्रमश २७६१, ६०७९ तथा १२०२ किलोमीटर है। यह मार्ग राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र राज्यों में है। इसकी मुख्य शाखाएँ निम्न हैं.

(१) बम्बई से दिल्ली तक (सूरत, बड़ौदा तथा रतलाम होती हुई)।
(२) बम्बई से अहमदाबाद तक।
(३) अहमदाबाद से आबूरोड, अजमेर, रेवाड़ी होती हुई दिल्ली तक।
(४) पोरबन्दर से ओखा तक अन्य शाखाएँ।

१९६०-६१ में मार्गों की लम्बाई ५६,६६७ किलोमीटर हो गयी, इस काल में विस्तार कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया। इंजिन, सवारी के डिब्बे, माल के डिब्बे आदि में पर्याप्त वृद्धि की गयी। इस योजना में रेलवे विस्तार पर अधिक ध्यान दिया गया। इस काल में ८०५ मील लम्बी ब्राड गेज तथा ३८० मील लम्बी मीटर गेज लाइनें डलवायी गयीं। लगभग ६ हजार मील में भी अधिक लम्बे मार्गों पर नवीनीकरण का कार्य किया गया। वर्ष १९६०-६१ में सवारी यातायात में पर्याप्त वृद्धि हुई। यह १९५०-५१ में ६६,५१७ मिलियन यात्री किलोमीटर था जो कि वर्ष १९६०-६१ में बढ़कर ७७,६६५ मिलियन यात्री किलोमीटर हो गया। माल यातायात में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' में कुल १,३२३ करोड़ रुपये व्यय किये गये। वर्ष १९६५-६६ में रेलवे मार्गों की कुल लम्बाई ५६ ०६१ किलोमीटर हो गयी। रेल के इन्जिन, सवारी के डिब्बे तथा माल के डिब्बों में भी वृद्धि हुई। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में वर्ष १९५०-५१ की तुलना में १२० प्रतिशत की वृद्धि हुई। पंचवर्षीय योजनाओं में ८२१६ किलोमीटर लम्बी नयी रेलवे लाइनें बिछायी गयीं और ५१०० किलोमीटर रेलवे लाइनों को दोहरा किया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं में ६००० किलोमीटर बड़ी लाइनों और २००० किलोमीटर छोटी लाइनों पर डीजल इन्जिन काम में लाये गये। वाराणसी में डीजल लोकोमोटिव वर्क्स तथा चित्तरंजन में लोकोमोटिव वर्क्स स्थापित हुए। रेलों की कार्य-कुशलता तथा समय पर गाड़ियों को चलाने की व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न किये गये। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में ५ हजार से भी अधिक नये इन्जिनों का निर्माण किया गया। गाड़ियों की गति बढ़ाने के प्रयत्न किये गये।

वार्षिक योजनाएँ एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

वार्षिक योजनाओं (१९६६-६९) में रेलवे पर ४२६ करोड़ रुपये व्यय हुये। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में रेलवे विकास पर १,००० करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त ह्रास सुरक्षित कोष (Depreciation Reserve Fund) से ५२५ करोड़ रुपये व्यय करने का प्रस्ताव है। इस प्रकार चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में रेलवे पर कुल व्यय १,५२५ करोड़ रुपये किया जायेगा। इस योजना में नयी रेलवे लाइन बनाने, दोहरा करने, मीटर गेज को ब्रॉड गेज में परिवर्तित करने तथा डीजल व विद्युत के प्रयोग में वृद्धि करने के कार्यक्रम रखे गये हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष (१९६९-७०) में २५५ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी किन्तु वास्तविक व्यय केवल १९७ ४३ करोड़ रुपये ही किया जा सका। वर्ष १९७०-७१ में २८० करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया और वास्तविक व्यय २४० ६७ करोड़ रुपये ही हो सका। वर्ष १९७१-७२ के लिए २८० करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

माल यातायात विकास के लिए भी चतुर्थ योजना में प्रयत्न किये जा रहे हैं। वर्तमान समय में इसकी स्थिति निम्न प्रकार है

भारतीय रेलों द्वारा माल यातायात

(मिलियन टन)

वर्ष	लक्ष्य	प्राप्तियाँ
१९६८-६९	१९९.४	१७०.८
१९६९-७०	१७६.८	१७३.८
१९७०-७१	१८३.६	१९८.७
१९७१-७२	१७७.६	—

यात्री यातायात की दृष्टि से एक वर्षीय योजनाएँ (१९६६-६९) में भी वृद्धि हुई। वर्तमान समय में भी इसके विकास की तरफ पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। वर्ष १९६८-६९ में १,०६,९४० मिलियन यात्री किलोमीटर यात्री यातायात था जो कि वर्ष १९६९-७० में बढ़ कर १,१३,३८२ मिलियन यात्री किलोमीटर हो गया। वर्ष १९६९-७० के अन्त में कुल ५९,९८४ किलोमीटर लम्बे रेल मार्ग थे।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्षों में १८६ किलोमीटर नयी लाइनें यातायात के लिए खोली गयी। इसके अतिरिक्त ४७० किलोमीटर रेल पथ पर दोहरी लाइन बिछायी गयी और ३२६ किलोमीटर रेलवे लाइन को बड़ी लाइन में बदला गया। इस अवधि में ६१ नयी गाड़ियाँ चलाई गयीं। यात्रियों को सुविधा देने के लिए हर साल ४ करोड़ रुपये खर्च किया जा रहा है। गाड़ियों में पंखे, रोशनी, पानी की उचित व्यवस्था आदि में पर्याप्त सुधार हुआ है। वर्ष १९७१-७२ के बजट वर्ष में निर्माण कार्यो, चल स्टाफ और मशीन के कार्यक्रमों के लिए २८० करोड़ रुपये की धन राशि का प्रावधान किया गया है। यह धन राशि मूल चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस वर्ष के लिए निर्धारित धनराशि से २८ करोड़ रुपये कम है।

रेल यातायात की समस्याएँ व सुझाव

भारत में रेल यातायात को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये समस्याएँ निम्नलिखित हैं :

(१) दुर्घटनाओं की समस्या—भारतीय रेलों की दुर्घटना की समस्या महत्त्वपूर्ण है। रेलगाड़ियों के टकरा जाने, आग लग जाने तथा पटरियों पर से नीचे उतर जाने के कारण अपार जन तथा धन की हानि होती है। रेल दुर्घटनाएँ कर्मचारियों तथा यात्रियों दोनों की असावधानियों से होती हैं। आजकल हड़तालों आदि में डिब्बे जला दिये जाते हैं, स्टेशन जला दिये जाते हैं, तथा अन्य प्रकार की हानियाँ पहुँचायी जाती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए कर्मचारियों तथा आम जनता दोनों ही

पक्षा म सुधार करना आवश्यक है। गाडी चालकों को सावधानी से काम लेना चाहिए। अनुशासनहीनता को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

(२) **बिना टिकट के यात्रा की समस्या**—भारतीय रेलो की दूसरी समस्या बिना टिकट यात्रा से हानि है। यात्री बिना टिकट यात्रा करते हैं जिसम रेलवे को प्रति वर्ष २० करोड रुपयों से भी अधिक हानि होती है। साधारणत देखा जाता है कि बहुत से रेलवे कर्मचारी, अधिकाश पुलिस कर्मचारी, कुछ विद्यार्थी तथा भिखारी लोग बिना टिकट यात्रा करते हैं। कुछ यात्री रेलवे के छोटे अधिकारियो को कम पैसे देकर और बिना टिकट यात्रा करते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए दो प्रकार के सुझाव हो सकते हैं। प्रथम सुझाव म मानसिक परिवर्तन आवश्यक है। विद्यार्थियो तथा विभिन्न कर्मचारियों को टिकट लेकर यात्रा करनी चाहिए। द्वितीय सुझाव मे जाँच अधिक की जानी चाहिए।

(३) **यात्रियों को कम सुविधा**—रेल यातायात मे बहुत भीड रहती है। इसके कारण यात्रियो को बहुत कष्ट होता है। यह कठिनाई अधिकतर तृतीय श्रेणी के यात्रियो के सामने है। गाडी के डिब्बो मे प्रकाश तथा पखो की व्यवस्था का अभाव पाया जाता है। स्टेशनो पर सुविधाओं का अभाव है। अनेक स्टेशनो पर पीने के पानी की व्यवस्था, विश्राम गृह, केन्टीन तथा अन्य सुविधाओं का अभाव है। छोटे रेलवे स्टेशनो पर अनेक कठिनाइयाँ हैं। इस समस्या के निराकरण के लिए भीड़ को कम करने के प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए अधिक गाडियो की व्यवस्था करनी पडेगी। इसके अतिरिक्त रेल के डिब्बो तथा रेलवे स्टेशनो पर अनेक सुविधाएँ उपलब्ध कराने के प्रयत्न करने चाहिए। छोटे स्टेशनो पर पानी की व्यवस्था तथा विश्राम गृह आवश्यक रूप मे बनाने चाहिए।

(४) **रेलवे लाइनो को बदलना**—भारत मे ब्रॉडगेज, मीटरगेज तथा नैरोगेज तीनों प्रकार की रेलवे लाइने है किन्तु इनमे मीटरगेज तथा नैरोगेज आधे से अधिक लम्बाई मे हैं। इन लाइनों पर चलने वाली गाडियो की कार्यक्षमता कम है। अत इनकी जगह ब्राडगेज लाइनें लगायी जानी आवश्यक हैं। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ म इस तरफ प्रयत्न किये गये हैं किन्तु बहुत धीमी गति से कार्य हो रहा है। शीघ्र ही इस तरफ ध्यान देना चाहिए।

(५) **कम कार्यक्षमता**—विदेशो की तुलना मे भारतीय रेलवे की कार्यक्षमता बहुत कम है। गाडियों की चलने की गति कम है। अनेक समस्याओं के कारण अनेक बार गाडियाँ समय पर नहीं आ पाती हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि गाडियो के समय पर आने तथा जाने पर विशेष ध्यान दिया जाये। गाडियो की गति का विकास किया जाना चाहिए। रेलों के विद्युतीकरण तथा स्वचालित सिगनल की व्यवस्था करनी चाहिए। अब इस दिशा म प्रयत्न किये जा रहे हैं। हाल ही मे दिल्ली से हावडा तक 'राजधानी एक्सप्रेस' आरम्भ की गयी जो यह दूरी केवल सत्रह घण्टो मे तय करती है।

अध्याय ३२

सड़क परिवहन
(ROAD TRANSPORT)

आर्थिक विकास में सड़कों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सड़कों का प्रयोग देशी व विदेशी व्यापार, प्रशासन, शान्ति व सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व रखता है। प्राचीन काल से ही, जबकि आधुनिक सड़क परिवहन के साधनों का विकास नहीं हुआ था, राष्ट्रीय महत्त्व की सड़कों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था और यातायात पुराने परम्परागत साधनों बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी इत्यादि—द्वारा किया जाता था। आधुनिक युग में शक्ति चालित वाहनों के विकास से सड़कों का महत्त्व एवं उनका उपयोग बहुत बढ़ गया है। सड़कों के महत्त्व की तुलना मानव शरीर के स्नायुमण्डल से की जा सकती है जिस प्रकार हमारी शिराओं एवं धमनियों में रक्त का आवागमन होता है इसी प्रकार सड़कों के माध्यम से यात्रियों तथा वस्तुओं का देश के समस्त भागों में आवागमन होता है।

महत्त्व

(१) सड़क यातायात का महत्त्व, भारत जैसे देश में, जहाँ गाँवों की संख्या बहुत अधिक है, जिन्हें रेलों से सम्बद्ध करना असम्भव है और भी अधिक है। गाँवों का देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक जीवन में विशेष योग है। अतः राष्ट्र के विकास का अर्थ है यहाँ के गाँवों का बहुमुखी विकास, क्योंकि गाँव राष्ट्रीय जीवन की विकेन्द्रित इकाई हैं।

(२) गाँवों के विकास के साथ ही कृषि विकास में भी सड़कों का विशेष महत्त्व है। खेती में प्रयुक्त यन्त्र व उपकरण, बीज, खाद व अन्य सामान को सड़कों के माध्यम से गाँवों तक पहुँचाया जाता है। फसल तैयार होने पर अनाज को मण्डियों व रेल स्टेशनों तक लाने में सड़कों का प्रयोग किया जाता है। सड़क यातायात के विकास से दुर्गम व निर्जन प्रदेशों की बंजर व ऊबड़-खाबड़ जमीन को कृषि योग्य बना लिया गया है। ऐसे स्थानों को ट्रैक्टर, बुलडोजर इत्यादि द्वारा समतल बना दिया जाता है और फिर सिंचाई के साधनों का विकास कर खेती की जाती है।

सड़क यातायात के विकास से कृषि-जन्य वस्तुओं को बाजार तक भेजने में अपेक्षाकृत पहले से कम समय व कम व्यय होता है। पहले बैलगाड़ियों व पशुओं द्वारा अनाज को मण्डियों तक लाया जाता था जिसमें अधिक समय व अधिक परिवहन व्यय

लगता था। आजकल कृषि उपज को अधिक मात्रा में ट्रक इत्यादि के माध्यम से दूर-दूर तक कम समय व कम व्यय में ले जाया जाता है।

(३) सड़क यातायात के विकास और कृषि में हुए विकास के फलस्वरूप कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आजकल कृषि केवल जीवनयापन का साधन नहीं, बल्कि एक लाभप्रद व्यवसाय है। कृषक उन फसलों को बोना अधिक पसन्द करते हैं जिन्हें बेचकर अधिक लाभ पैदा किया जा सके। व्यापारिक फसलों—गन्ना, कपास, तम्बाकू, तिलहन, फल-सब्जी से कृषकों की आर्थिक स्थिति सुधरी है। इसके अतिरिक्त तुरन्त नष्ट होने वाले पदार्थों, जैसे तरकारी, फल, दूध, दही, इत्यादि—का क्रय-विक्रय केवल गाँवों तक सीमित न रहकर शहरों तक होने लगा है। बड़े शहरों में डेयरियों का विकास हो रहा है जहाँ पर लाखों मन दूध प्रतिदिन गाँवों से शहरों में लाया जाता है।

(४) सड़कें ग्रामीण क्षेत्र के औद्योगीकरण में भी विशेष महत्त्व रखती हैं। कारखानों के लिए कच्चा माल सड़कों द्वारा गाँवों से लाया जाता है और इसी प्रकार कारखानों द्वारा उत्पादित माल गाँवों में भेजा जा सकता है। सड़कों के विकास के कारण अब बड़े कारखानों को भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित करना सम्भव हो गया है। इसके अतिरिक्त छोटे ग्रामीण उद्योग धन्धों का तो सड़कें ही आधार हैं। सूत, हाथ से बना कपड़ा, चटाई, रस्सी, बेंत, बाँस, टोकरियाँ इत्यादि वस्तुएँ गाँवों में बनाई जाती हैं व सड़कों की सहायता से शहरों में बेची जाती हैं।

(५) युद्धकाल में सुरक्षा की दृष्टि से भी सड़कों का महत्त्व काफी बढ़ गया है। सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के समय लद्दाख व नेफा में सड़कों के अभाव ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था और तभी से इन प्रदेशों में भी सड़क विकास के लिए तेजी से प्रयास किये जा रहे हैं। राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी रेतीले भागों में भी अब सड़कों का विकास किया जा रहा है।

(६) सड़क यातायात की सहायता से लोगों की गतिशीलता में वृद्धि हुई है। गाँवों के अर्द्ध बेकार व बेरोजगार व्यक्तियों को सहायक धन्धों में काम करने के अवसर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गाँवों में बेरोजगारी की समस्या का समाधान हुआ है। गाँवों में डाक व समाचार पत्र सड़कों द्वारा सुगमता से पहुँचाए जाते हैं। विदेशी यात्री देश के भीतरी भागों व दर्शनीय स्थलों तक कारों में सुगमता से पहुँचाए जाते हैं। इस प्रकार पर्यटन के क्षेत्र में भी सड़कों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। राजनैतिक दृष्टि से चुनाव अभियानों में सड़कों की सहायता से सफलता प्राप्त कर चुनाव जीता जाता है। जहाँ सड़कें नहीं हैं वहाँ चुनाव व्यवस्था करने में अधिक व्यय व विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(७) सड़कों के अनेक महत्त्व हो सकते हैं। सड़कों पर बैलगाड़ियाँ, ऊँट गाड़ियाँ, मोटरें, पद यात्री तथा पशुओं का आवागमन हो सकता है। किन्तु दूसरे

तरफ रेल मार्गों पर केवल रेल गाड़ियाँ ही चल सकती हैं। इसी तरह से जल मार्गों तथा वायु मार्गों का उपयोग भी सीमित है।

(८) सड़कों का निर्माण रेलों के निर्माण से कम लागत पर हो सकता है। भारत में धन का अभाव होने के कारण सड़क यातायात अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। रेलों के निर्माण में तो बहुत बड़ी धन राशि व्यय करनी पड़ती है।

(९) सड़क यातायात का महत्त्व इसके लोच के गुण से और अधिक बढ़ जाता है। माल उत्पादकों से सीधे बाजारों तथा मण्डियों तक सड़क परिवहन द्वारा ही भेजा जा सकता है। रेलगाड़ियों से माल भेजने पर रेलवे स्टेशन तक ही सेवा उपलब्ध हो सकती है। इसके पश्चात् व्यापारियों को स्वयं व्यवस्था करनी पड़ती है। इससे धन तथा व्यय दोनों का अपव्यय होता है।

(१०) मोटर यातायात से सामान लाने ले जाने में रेलों की अपेक्षा कम समय लगता है। मोटरें साधारणतया रेलों से कम समय लेती हैं। इसीलिए उत्पादन-कर्ता तथा व्यापारी मोटर यातायात को अधिक महत्त्व देते हैं। श्री भट्टार (भूतपूर्व रेलवे कमिश्नर) के अनुसार मोटरें अच्छी सड़कों पर उतने ही समय में रेलों की अपेक्षा साढ़े तीन गुना माल ढो सकती हैं।

(११) औद्योगीकरण में भी सड़कों का पर्याप्त योगदान है। कारखानों तक कच्चा माल पहुँचाने में इनका बड़ा महत्त्व है। इसके अतिरिक्त सड़क यातायात में लगभग ५८ लाख व्यक्ति लगे हुये हैं जबकि रेल यातायात में १४ लाख व्यक्ति संलग्न हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश की समृद्धि के लिए सड़क यातायात का बहुत अधिक महत्त्व है। यह यातायात के अन्य साधनों के पूरक रूप में भी लाभ-कारी है। व्यापारिक उन्नति में रेल यातायात की भाँति इसकी भी बहुत आवश्यकता है। जिन भागों में रेल यातायात तथा जल यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं वहाँ के विकास में सड़कों द्वारा विकास किया गया है। इससे सरकार को करों के रूप में पर्याप्त आय प्राप्त होती है।

भारत में सड़क यातायात का विकास

यद्यपि भारत में प्राचीन काल से ही सड़कों का महत्त्व समझा गया, किन्तु ब्रिटिश शासन काल में इनके विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। सड़क विकास के लिए सन् १८५५ में केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग स्थापित किया गया। देश में अनेक प्रान्तों में सार्वजनिक निर्माण विभाग खोले गये। इसके पश्चात सन् १९२९ में 'केन्द्रीय सड़क कोष' की स्थापना की गयी। इसके पूर्व प्रथम महा-युद्ध के पश्चात सड़कों के विकास की गति धीमी रही। केन्द्रीय सड़क कोष की स्थापना जयकर समिति के सुझाव पर की गयी। इस कोष की स्थापना से सड़क निर्माण तथा सुधार कार्य पर अधिक व्यय किया जाने लगा। वर्ष १९२७-२८ में

पक्की सड़कों की लम्बाई ९७,६०० किलोमीटर थी जो कि सन् १९५०-५१ में बढ़कर १,५६,८०० किलोमीटर हो गयी। कुल सड़कों की लम्बाई जो कि वर्ष १९२७-२८ में ३,२८,००० किलोमीटर थी जो कि वर्ष १९५०-५१ में ८,९८,४०० किलोमीटर हो गयी। सड़क निर्माण के विकास का अनुमान निम्न तालिका में लगाया जा सकता है

सड़क निर्माण की प्रगति

(लम्बाई—किलोमीटर में)

वर्ष	पक्की सड़कें	अन्य सड़कें	कुल सड़कें
१९४७	१,४५,८५५	२,४२,८३१	२,८८,८२६
१९५१	१,५७,०१६	२,४२,९२३	३,९९,९४२
१९५६	१,८३,०२३	३,१५,३२१	४,९८,३४४
१९६१	२,३०,८८८	४,८७,९२९	६,७८,८१२
१९६७	२,८९,५००	६,३८,७००	९,२८,२००
१९६९	३,२४,९४०	६,४७,३९०	९,७२,३३०

(*Source—India*, 1970)

नागपुर योजना

सन् १९४३ में सभी राज्यों के इन्जीनियरों का नागपुर में एक सम्मेलन हुआ जिसमें सड़कों को राष्ट्रीय मार्गों, राज्य मार्गों, जिला मार्गों ग्राम्य मार्गों, आदि में विभक्त किया गया। इस योजना में भारत (विभाजन से पूर्व) में ६,४४,००० किलोमीटर लम्बी सड़कें आवश्यक बतायी गयी। विभाजन के पश्चात नागपुर योजना का लक्ष्य ५,२२,५६० किलोमीटर था। नागपुर योजना के आधार पर ही प्रथम पंचवर्षीय योजना में विकास किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी विकास इसी आधार पर होता रहा।

सन् १९४७ से सन् १९५१ तक सड़कों के विकास की गति धीमी रही। सन् १९५१ में सड़कों की कुल लम्बाई ३,९९,९४२ किलोमीटर हो गयी जिसमें १,५७,०१९ किलोमीटर लम्बी सड़कें थीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सड़क विकास

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सड़क विकास के लिए १५६ करोड़ रुपया का प्रावधान रखा गया था जबकि वास्तविक व्यय १४७ करोड़ रुपये ही किया गया। पक्की सड़कों में २६ हजार किलोमीटर वृद्धि की गयी तथा कुल सड़कों में ९८ हजार कि० मी० से भी अधिक वृद्धि की गयी। इस योजना में २२,००० किलोमीटर सड़कों की मरम्मत भी की गयी।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में सड़क विकास

द्वितीय पचवर्षीय योजना में सड़क विकास पर २२४ करोड़ रुपय व्यय किये गये। वर्ष १९६१ म पक्की सड़को की लम्बाई २,३५,७६० किलोमीटर हो गयी और कुल सड़को की लम्बाई ७,०६,१२० किलोमीटर हो गयी। इस योजना में सड़क विकास में अच्छी प्रगति हुई। इस काल मे पिछड़े हुए भागो म सड़क निर्माण कार्य पर विशेष ध्यान दिया गया।

बीस वर्षीय सड़क विकास योजना

सन् १९६१ मे सड़क विकास की बीस वर्षीय योजना बनायी। तृतीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ से वर्ष १९८०-८१ तक इस योजना के लक्ष्यो के आधार पर विकास किये जाने का निर्णय हुआ। इस योजना मे राष्ट्रीय सड़को मे १३० प्रतिशत, प्रान्तीय सड़को मे १०० प्रतिशत, जिला सड़को मे ८० प्रतिशत और ग्राम्य सड़को मे ४२ प्रतिशत की वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये। इस २० वर्षीय योजना से निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये

(i) विकसित कृषि क्षेत्र मे ग्राम पक्की सड़क से ६ किलोमीटर तथा अन्य सड़क से २५ किलोमीटर से अधिक दूर न रहे।

(ii) अर्धविकसित क्षेत्र मे कोई ग्राम पक्की सड़क मे १३ किलोमीटर तथा अन्य सड़क से ५ किलोमीटर से अधिक दूर न रहे।

(iii) अविकसित और गैर कृषि क्षेत्र मे कोई ग्राम १९ किलोमीटर और अन्य सड़क से ८ किलोमीटर से अधिक दूर न रहे।

उपरोक्त विकास योजना मे ५,२०० करोड रुपय व्यय होने का अनुमान लगाया गया है।

तृतीय पचवर्षीय योजना में सड़क विकास

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सड़क विकास कार्यक्रमो मे ४४५ करोड रुपये की धनराशि व्यय की गयी। इस योजना मे २० वर्षीय सड़क विकास योजना के आधार पर विकास कार्यक्रम अपनाये गये। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष तक पक्की सड़को की लम्बाई २८५ लाख किलोमीटर हो गयी। सड़को की कुल लम्बाई ८५ लाख किलोमीटर हो गयी। वर्ष १९६५-६६ के अन्त में ७० हजार बसें तथा २५ लाख ट्रक सेवाएँ प्रदान कर रहे थे। ग्रामीण क्षेत्रो मे कच्ची सड़को के विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया गया। तृतीय पचवर्षीय योजना म सड़क अनुसन्धान कार्यक्रम पर २ करोड रुपये व्यय किये गये।

वार्षिक योजनाओं एव चतुर्थ पचवर्षीय योजना में सड़क विकास

सन् १९६७ तथा १९६८ मे कुल सड़को की लम्बाई क्रमश ९ २८ लाख तथा ९ ६५ लाख किलोमीटर थी। इनमे पक्की सड़कें क्रमश २ ६० और २ ६६ लाख किलोमीटर थी। वार्षिक योजनाओ (१९६६-६९) मे सड़क विकास पर ३०८

करोड रुपये तीन वर्षों मे व्यय किये गये। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सडक विकास कार्यक्रमों मे कुल व्यय ८२६ करोड रुपये किया जायगा जिसमे से ४१८ करोड रुपये केन्द्र व्यय करेगा। केन्द्र के व्यय मे से ६० करोड रुपये पुरानी परियोजनाओं पर व्यय किये जायेंगे तथा ३५८ करोड रुपये नयी परियोजनाओं मे व्यय किये जायेंगे। चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त तक पक्की सडको की लम्बाई ३,६७,००० किलोमीटर हो जायगी जबकि वर्ष १९६८-६९ मे इनकी लम्बाई लगभग ३,१७,००० किलोमीटर है। इस प्रकार ५० हजार किलोमीटर नयी सडको का निर्माण किया जायेगा। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे ग्रामीण सडकों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा ७६० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। जो कार्य चालू हैं उनको पूरा किया जायेगा इसके अतिरिक्त वर्तमान सडकों की कमियों को दूर किया जायेगा। कमजोर बाँधो को मजबूत बनाया जायेगा और सडकें चौडी की जायेंगी। टूटी हुई सडकों को पूरा किया जायेगा। इस प्रकार सडक विकास कार्यक्रम मे इनकी स्थिति सुधारने के अनेक प्रयत्न किये जायेंगे। सडक विकास मे सम्बन्धित कार्यकर दल ने अपने प्रतिवेदन मे चतुर्थ योजना मे १,१५० करोड रुपये व्यय करने का सुझाव दिया है। यह धन राशि केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा क्रमश ५०० करोड तथा ६५० करोड रुपये व्यय की जाये। इस दल के अतिरिक्त भारतीय सडक यातायात विकास सघ ने इस योजना मे १,७०० करोड रुपये व्यय करने का सुझाव दिया है।

भारत विश्व के अन्य राष्ट्रों मे सडकों की दृष्टि मे पिछडा हुआ है। आस्ट्रेलिया मे प्रति लाख जनसख्या पर सडकों की लम्बाई साढ़े छ हजार मील से भी अधिक है। अमरीका, जापान तथा ब्रिटेन मे यह लम्बाई क्रमश २२००, ७३६ तथा ३६१ है। भारत मे प्रति लाख जनसख्या पर सडकों की लम्बाई लगभग १०६ मील है। अत भारत अन्तरराष्ट्रीय तुलना मे बहुत पीछे है।

सडक व्यवस्था मे कमियाँ

भारतीय सडक व्यवस्था मे अनेक कमियाँ हैं। सडकें अधिकाश टूटी-फूटी, ऊँची-नीची हैं। गाडियों को चलने म कठिनाई होती है। नगरो मे सडको की चौडाई कम है। पुरानी सडको को बनाये रखने तथा उनमे सुधार का अभाव पाया जाता है। सडक व्यवस्था की कमियाँ निम्न प्रकार हैं ·

(१) भारतीय सडकें अन्य देशो की तुलना मे कम लम्बी हैं। प्रति वर्ग मील क्षेत्र मे हमारे देश मे सडकों की लम्बाई कम है। जापान मे एक वर्गमील क्षेत्र मे ४ मील लम्बी सडकें हैं। फ्रास मे ३०४ मील, सयुक्त राज्य अमरीका मे १ १ मील और इगलैण्ड मे २ ० मील की लम्बाई है। किन्तु भारत मे प्रति वर्ग मील क्षेत्र मे ० ४७ मील लम्बी सडकें हैं। देश के आर्थिक विकास मे गति प्रदान करने के लिए सडकों की लम्बाई बढानी आवश्यक है।

(२) देश के अनेक भागों में पुलों का अभाव है। वर्षा काल में पानी के निकास की उचित व्यवस्था न होने के कारण पानी जमा हो जाता है जिससे सड़क यातायात ठप्प हो जाता है।

(३) देश की कुल सड़कों में कच्ची सड़कों की लम्बाई अधिक है। सन् १९६६ के अन्त में ९,७२,३३० किलोमीटर लम्बी सड़कें थीं जिनमें ६,४७,३९० किलोमीटर लम्बी कच्ची सड़कें थीं। कच्ची सड़कों में लगभग १० प्रतिशत सड़कें ऐसी थीं जिन पर केवल बैलगाड़ियाँ ही चल सकती थीं।

(४) भारत में पुरानी सड़कों को बनाये रखने के कम प्रयत्न किये गये हैं। अनेक कारणों से प्रतिवर्ष सड़कें टूटती रहती हैं। समय पर देख-रेख के अभाव में इन सड़कों की स्थिति बहुत खराब हो जाती है। पंचवर्षीय योजनाओं में सड़कों के निर्माण पर तो पर्याप्त व्यय हुआ है किन्तु बनाये रखने (maintenance) पर कम व्यय हुआ है।

(५) भारत में अनेक स्थानों पर सड़कों का निर्माण रेलवे लाइनों के समान्तर किया गया है। यह अनेक दृष्टियों से अनुचित है। इसके कारण रेल सड़क प्रतिस्पर्धा होती है और इससे आय में कमी होती है।

(६) अनेक बड़े-बड़े नगरों में सड़कों की व्यवस्था ठीक नहीं है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय सड़कों की व्यवस्था ठीक नहीं है। सड़क यातायात के तीव्र विकास के लिए सड़कों की स्थिति सुधारना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का विस्तार आवश्यक है।

सड़क यातायात

भारत में प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व बहुत कम मोटरें थीं जोकि केवल व्यक्तिगत काम में ली जाती थीं। यातायात की दृष्टि से प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात ही विकास प्रारम्भ हुआ। मोटर यातायात के लिए सन् १९१४ में 'मोटर वाहन अधिनियम' (Moter Vehicles Act) पास हुआ। इसके अन्तर्गत मोटरों के पंजीयन तथा मोटर चालकों को लाइसेंस देने के सम्बन्ध में नियम बनाये गये। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात मोटरों की संख्या में वृद्धि होने लगी। विश्व व्यापी मन्दी के काल में रेल तथा मोटर यातायात में प्रतियोगिता चालू हो गयी। सन् १९३९ में मोटर वाहन अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम के द्वारा मोटरों के लिए आज्ञा लेना अनिवार्य कर दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध काल में मोटर यातायात का कम विकास हुआ, क्योंकि इस समय पेट्रोल का अभाव था और मोटरों का आयात भी हो गया। १९५६ में मोटर परिवहन अधिनियम में संशोधन किये गये।

भारत में वर्ष १९६५ में मोटर वाहनों की संख्या (जो कि सड़कों पर प्रयुक्त थी), १०,०९,४४७ थी जबकि मार्च १९४७ में २,११,६४९ थी। मार्च १९६७ तक

देश मे १२ लाख वाहन सडक पर थे। इस प्रकार पिछले १५ वर्षों मे सडक परिवहन मे पर्याप्त विकास किया गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे ट्रको की सख्या ६,७०,००० हो जायेगी जबकि वर्ष १९६८-६९ मे ३,००,००० ट्रक सडक पर हैं। बसो की सख्या ८०,००० मे १,१५,००० हो जायेगी। इस योजना के अन्त मे माल वाहन ८४ हजार मिलियन टन किलोमीटर हो जायेगा जबकि वर्ष १९६८-६९ मे ४० हजार मिलियन टन किलोमीटर ही था। चतुर्थ पचवर्षीय योजना म यात्री किलोमीटरो मे भी पर्याप्त वृद्धि की जायेगी।

भारत मे अनेक राज्यो म यात्री परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया है। सडक परिवहन निगम अधिनियम, १९५० के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश, बिहार, हरियाना, मैसूर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, राजस्थान, पश्चिमी बगाल और केरल मे वैधानिक सडक परिवहन निगमो की स्थापना की गयी है।

रेल-सडक प्रतिस्पर्धा

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात भारत मे सडक यातायात का विकास तेज गति से होने लगा। इधर रेलो का पर्याप्त विकास हो चुका था। देश के आन्तरिक भागो मे ये दोनो ही यातायात के महत्त्वपूर्ण साधन हो गये। अत इन दोनो में प्रतिस्पर्द्धा का जन्म हुआ। विश्व व्यापी मन्दी के समय इनमें प्रतिस्पर्द्धा बढने लगी। इस काल म रलवे को काफी नुकसान होने लगा। ऐसी स्थिति में सरकार ने रेलवे का पक्ष लेना आरम्भ किया और सडक यातायात की उपेक्षा की जाने लगी। आर्थिक विकास मे दोनो का महत्त्वपूर्ण योगदान था अत इन दोनो की प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने के प्रयास किये जाने लगे। रेल और सडक यातायात तो एक दूसरे के पूरक है। इतना होते हुए भी दोनो मे प्रतिस्पर्द्धा होने लगी। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

(१) मोटर यातायात रेलवे की अपेक्षा अधिक सस्ता होने के कारण लोग मोटर यातायात की तरफ आकर्षित होने लग गये जिससे रेलवे की आय कम होने लगी।

(२) मोटर यातायात घर-घर तक सेवाएँ प्रदान कर सकता है। इसमें उपभोक्ता के निवास स्थान तक बिना कठिनाई से माल पहुँचाया जा सकता है।

(३) सडक यातायात में सामान कहीं भी चढा सकते हैं और कहीं भी उतार सकते हैं। इसके अतिरिक्त मार्ग परिवर्तन में विशेष कठिनाई नही होती।

(४) मोटर यातायात में अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है।

(५) माल भेजने में अधिक सुरक्षा होती है क्योंकि यह व्यक्तिगत दायित्व पर भेजा जाता है।

उपरोक्त सुविधाओ के कारण सडक यातायात अधिक लोकप्रिय होने लगा। सरकार ने रेल तथा सडक यातायात में समन्वय स्थापित करने के लिए समितिया

की नियुक्ति की। सन् १६३२ में मिचेल किर्कनेस समिति नियुक्त की गयी। इस समिति ने मोटर यातायात पर पूर्ण नियन्त्रण रखने का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त रेलवे को सड़कों पर अपनी मोटरें चलाने के अधिकार प्रदान किये जायें। शिमला रेल-सड़क सम्मेलन (१६३३) में सड़क यातायात को ग्रामीण क्षेत्रों में एकाधिकार देने और केन्द्र तथा राज्यों में नयोजन के लिए विभाग खोलने पर जोर दिया गया।

रेल-सड़क समन्वय के लिए १६३३ में एक रेलवे अधिनियम पास हुआ। वर्ष १६३७-३८ में केन्द्र में यातायात विभाग स्थापित किया गया। रेल, सड़क, जल तथा वायु यातायात और डाक व तार विभाग इसके अन्तर्गत किये गये जिससे समन्वय कार्य सरलता से किया जा सके। सन् १६३६ में नियुक्त वेजवुड समिति ने भी रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा के प्रश्न पर विचार व्यक्त किया। इस समिति ने निम्न सुझाव दिये

(i) मोटर यातायात में मोटर द्वारा ले जाये जाने वाले यात्रियों अथवा माल की सीमा निश्चित कर देनी चाहिए।

(ii) समय सारिणी (Time-Table) तथा किराया निर्धारित किया जाना चाहिए।

(iii) जनता की जरूरतों के आधार पर मोटर-लाइसेंस देना चाहिए।

(iv) सामान ले जाने वाली मोटरों के लिए रीजनल लाइसेंस पद्धति अपनानी चाहिए।

सन् १६३६ में मोटर गाड़ी अधिनियम पास हुआ इसके अन्तर्गत मोटर यातायात को नियन्त्रित करने की व्यवस्था की गयी। इसका उद्देश्य समन्वय स्थापित करना भी था। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थी

(१) मोटर यातायात में प्रत्येक मोटर मालिक के पास आज्ञापत्र (Permit) होना आवश्यक किया गया।

(२) मोटर मालिक को गाड़ी चलाने से पूर्व गाड़ी के उचित स्थिति में होने का प्रमाण देना आवश्यक कर दिया गया। गाड़ी चलाने की गति को नियन्त्रित किया गया।

(३) मोटर चालकों के काम के घंटे निर्धारित किये गये। इस अधिनियम में इन चालकों के काम के घन्टे ६ प्रतिदिन तय किये गये।

(४) गाड़ियों के लिए लाइसेंस देने के लिए प्रत्येक प्रान्त में क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। प्रान्त में समन्वय कार्य के लिए प्रान्तीय परिवहन अधिकारी आवश्यक कर दिया गया।

वास्तव में इस अधिनियम से सरकारी नियन्त्रण प्रभावशाली हो गया। इसके पश्चात सन् १६५० में एक जाँच समिति नियुक्त की गयी। इसने रेल-सड़क समन्वय तथा अन्य समस्याओं का अध्ययन किया और सुधार के सुझाव दिये।

इसके पश्चात् १९५३ में एक यातायात नियोजन के लिए अध्ययन दल नियुक्त हुआ। इस समिति ने भी समन्वय की समस्या को निपटाने पर बल दिया।

सन् १९५९ में नियुक्त समिति ने सन् १९६६ में रिपोर्ट पेश की जिसमें यातायात के साधनों के मध्य ट्रेफिक का, मापदण्ड के आधार पर उचित बँटवारा करना चाहिए। इस समिति ने इस बात पर भी जोर दिया कि यातायात के साधनों का विकास एक दूसरे के पूरक के रूप में किया जाना चाहिए। समिति द्वारा परिवहन समन्वय परिषद स्थापित करने का सुझाव दिया गया।

इस समिति के सुझाव निम्नलिखित थे

(१) समन्वय नीति देश के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में बनानी चाहिए। जिसमें लागत के दृष्टिकोण को पर्याप्त ध्यान में देखा जाय।

(२) समिति का विचार था कि विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रत्येक साधन से प्राप्त हानि, सामाजिक लाभ तथा सामाजिक लागत के आधार को ध्यान में रखना चाहिए।

(३) समन्वय इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे विभिन्न परिवहन के साधनों का उत्तम उपयोग हो सके तथा निम्नतम लागत पर अधिकतम सेवा प्राप्त हो सके। इसके लिए विभिन्न साधनों के एक दूसरे के पूरक के रूप में काम करना चाहिए। इस सुझाव को कार्य रूप में परिणित करने के लिए तुलनात्मक लागत सम्बन्धी अनुमान लगाने आवश्यक होंगे।

(४) समन्वय कार्य के लिए समिति ने एक परिवहन समन्वय परिषद स्थापित करने का सुझाव दिया।

(५) विभिन्न यातायात के साधनों की दीर्घकालीन समस्याओं के अध्ययन के लिए शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने का सुझाव भी महत्त्वपूर्ण है।

(६) सड़क यातायात पर पर्याप्त एवं प्रभावपूर्ण नियन्त्रण एवं नियमन रखने का भी इस समिति ने सुझाव दिया।

उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि सरकार ने अनेक प्रयत्न समन्वय कार्य के लिए किये हैं। भविष्य में सड़कों के निर्माण पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इनका निर्माण रेलवे मार्गों के समानान्तर नहीं करना चाहिए। क्योंकि समानान्तर होने से प्रतियोगिता में वृद्धि होती है। सड़कों का विकास इस प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि सड़क यातायात रेल यातायात का पूरक हो सके। जिन मार्गों में रेलवे का विकास सम्भव नहीं है वहाँ सड़कें विकसित की जानी चाहिए। रेल यातायात के अभाव वाले क्षेत्रों को सड़क यातायात से रेलवे मार्गों से जोड़ना चाहिए ताकि मोटर परिवहन तथा रेल यातायात दोनों का उचित विकास हो सके। इससे प्रतिस्पर्धा में कमी होगी और सहयोग बढ़ेगा। धीरे-धीरे सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण हो रहा है। अनेक राज्यों में आंशिक या पूर्ण रूप से यात्री परिवहन

का राष्ट्रीयकरण किया गया है। आशा है भविष्य में राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ समन्वय में भी वृद्धि हो सकेगी।

मोटर परिवहन का राष्ट्रीयकरण

मोटर परिवहन के राष्ट्रीयकरण की समस्या बहुत जटिल है। देश के अनेक राज्यों में पूर्ण अथवा आंशिक राष्ट्रीयकरण किया गया है। राष्ट्रीयकरण करने के लिए तथा इसके पश्चात् अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सार्वजनिक उपक्रमों के सामने आज निम्न उत्पादकता की समस्या, वित्तीय समस्या, श्रम सम्बन्ध का अच्छा न होना, हड़तालें आदि अनेक समस्याएँ हैं। किन्तु समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना के लिए राष्ट्रीयकरण आवश्यक भी हो गया। नीचे राष्ट्रीयकरण के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दिये जा रहे हैं

पक्ष में तर्क

(१) हमने समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ाना आवश्यक है। निजी क्षेत्र में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अधिक लक्षण होते हैं अतः राष्ट्रीयकरण की नीति पर बल दिया जा रहा है।

(२) सवारियों को पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीयकरण अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। निश्चित समय पर बसें चलाना, गाड़ी में बैठने की पर्याप्त सुविधा, गाड़ी में भीड़ न होना, बस स्टेण्ड पर ठहरने की व्यवस्था, शुद्ध पीने के पानी की व्यवस्था, उचित भाड़ा आदि सुविधाएँ निजी क्षेत्र की बसों में मिलना कठिन है। ये सुविधाएँ राष्ट्रीयकृत मोटर यातायात में मिल सकती हैं।

(३) मोटर यातायात में कार्य करने वाले कर्मचारियों के हितों की रक्षा राज्य मोटर परिवहन में अधिक हो सकती है। निजी क्षेत्र में उनसे अधिक कार्य लिया जाता है। पर्याप्त वेतन, छुट्टी व्यवस्था तथा अन्य कार्य करने की उपयुक्त दशाओं का अभाव पाया जाता है। ये सभी दशाएँ कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा करने के लिए आवश्यक हैं। राष्ट्रीयकरण के माध्यम से श्रम कल्याण किया जा सकता है।

(४) निजी क्षेत्र के मोटर मालिकों में गलाकाट प्रतियोगिता चलती है। राष्ट्रीयकरण के माध्यम से अनावश्यक प्रतियोगिता समाप्त की जा सकती है। अनेक बार निजी क्षेत्र में प्रतियोगिता से छोटे मोटर मालिक बहुत नुकसान उठाते हैं।

(५) मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण से सड़कों के निर्माण तथा सुधार कार्य अधिक होंगे। सरकार सड़क विकास तथा मोटर परिवहन विकास की समन्वित योजनाएँ बनाने में समर्थ हो सकेगी।

विपक्ष में तर्क

(१) सामान्यतया देखा गया है कि राष्ट्रीयकृत मोटर यातायात अच्छी सेवाएँ प्रदान करने में असफल रहा है। अनेक बार श्रमिकों तथा कर्मचारियों द्वारा

हड़ताल कर दी जाती है। मोटर चालक बसों में कमी बताकर सेवाएँ रोक देते हैं। इससे सेवाएँ नियमित नहीं रहती।

(२) सार्वजनिक क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या यह है कि कर्मचारी सोचते हैं कि किया जाने वाला कार्य किसी का भी नहीं है और सभी का है। इस विचार धारा के विकास के कारण उनमें उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाता है। फलतः श्रम उत्पादकता निम्न रहती है।

(३) निजी क्षेत्र में मोटर मालिकों तथा यात्रियों का व्यक्तिगत सम्पर्क रहता है अतः शिकायत करने आदि की पर्याप्त व्यवस्था होती है किन्तु राष्ट्रीयकृत बसों में मोटर चालक तथा कण्डक्टर मनमानी करते हैं।

(४) राष्ट्रीयकरण करने के लिए बड़ी मात्रा में धन राशि की आवश्यकता होती है। इसके लिए वर्तमान मोटर मालिकों को प्रतिफल देना पड़ेगा। इसके लिए बड़ी धनराशि की आवश्यकता है। सरकार के पास धन का अभाव है।

(५) राष्ट्रीयकृत मोटर परिवहन के उपक्रमों को निरन्तर नुकसान की समस्या बनी रहती है। इसके अनेक कारण हैं। राज्य परिवहन के अन्तर्गत पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता। उदाहरण स्वरूप राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम (Rajasthan State Road Transport Corporation) में पिछले वर्षों में १०० से भी अधिक गाड़ियाँ केन्द्रीय डिपो में खड़ी रहीं। उन पर पूँजी तो लग चुकी किन्तु उपयोग हुआ नहीं। इसके अतिरिक्त राज्य परिवहन में कर्मचारी हड़तालें कर देते हैं। जिससे आय बन्द हो जाती है। राज्य निगमों में कुशल तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों का भी अभाव पाया जाता है।

(६) राष्ट्रीयकरण में कर्मचारियों में भ्रष्टाचार, लालफीताशाही आदि प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं। पर्याप्त देख रेख के अभाव में मोटर कण्डक्टर बेईमानी करते हैं। प्रबन्धक भी भ्रष्टाचार करते हैं। इस प्रकार जनता के धन का अधिक दुरुपयोग होने लगता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयकृत मोटर परिवहन के अनेक दोष हैं। किन्तु फिर भी आजकल राष्ट्रीयकरण की अधिक माँग की जा रही है। यदि राष्ट्रीयकरण के दोषों को दूर करने की व्यवस्था हो सके तो यह एक उत्तम मार्ग हो सकता है।

प्रश्न

१ भारत में सड़क यातायात के महत्त्व का वर्णन कीजिए। इन वर्षों में सरकार ने सड़क यातायात के विकास के लिए क्या कदम उठाए हैं?

२ भारत में सड़क यातायात के महत्त्व तथा विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए। मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण से क्या लाभ हैं।

(राजस्थान, टी० डी० सी०, १९७१)

अध्याय ३३

वायु परिवहन
(AIR TRANSPORT)

आज का युग विज्ञान का युग है। इस युग में यातायात के क्षेत्र में भी अत्यन्त प्रगति हुई है। वायुयान के आविष्कार ने तो विश्व के विभिन्न भागों को एक दूसरे के निकट ला दिया है। आज वायु यातायात की तीव्र गति के कारण दूरी का माप घण्टों एवं मिनटों में होने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप आज मानव का अन्तरिक्ष भ्रमण का स्वप्न साकार हो गया है। अन्तरिक्ष यानों के माध्यम से मानव बाह्य अन्तरिक्ष में जाकर चन्द्रमा की परिक्रमा कर चुका है तथा शीघ्र ही चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर उतरने वाला है। आज हम 'पहिया युग' से 'राकेट युग' में प्रवेश कर चुके हैं तथा ७०० मील प्रति घण्टा की गति आज सामान्य गति मानी जाने लगी है। भारत भी इसमें पीछे नहीं है। एयर इण्डिया द्वारा मई सन् १९७१ में 'जम्बो जेट वायु सेवा' प्रारम्भ करके इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि वायु परिवहन के क्षेत्र में भारत विश्व के किसी भी देश से पीछे नहीं है। इस वायु-सेवा के लिए जम्बो-जेट 'सम्राट अशोक' बोइंग ७४७ नामक विमान चार ऐसे ही अन्य विमानों की प्रथम खेप के रूप में १८ अप्रैल, १९७१ को बम्बई के सान्ताक्रूज हवाई अड्डे पर उतरा। अभी तीन ऐसे ही विमान और आने हैं। प्रत्येक विमान की कीमत पच्चीस करोड़ रुपये है, इसकी यात्री क्षमता ३४६ एवं गति ५८० मील प्रति घण्टा है। इसकी पहली उड़ान बम्बई से लन्दन को २१ मई, १९७१ को प्रारम्भ हुई। अन्य विमानों के आने पर लन्दन से न्यूयार्क तक एयर इण्डिया की जम्बो-जेट सेवा प्रारम्भ हो जायगी।

विज्ञान की इस आश्चर्यजनक प्रगति का विश्व के समस्त देशों पर प्रभाव पड़ा है। भारत भी आज वायु यातायात के दृष्टिकोण से एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्र बन गया है। सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के समय वायुयानों ने नेफा और लद्दाख में शत्रुओं से घिरे हमारे जवानों की रक्षा की। हमारे वायुयानों के बल पर ही हमने पाकिस्तान के आक्रमण को असफल करके शत्रु को सबक सिखाया। हमारी वायु सेना ने स्थल सेना की रक्षा करने के साथ ही साथ शत्रु के अनेक वायुयानों तथा हवाई अड्डों को भी नष्ट कर दिया था। लम्बी दूरी तक हमारी सीमा शत्रु देशों से लगी होने के कारण युद्ध एवं सैनिक कार्यों के लिए भारत में वायुयानों का महत्त्व

निर्विवाद है। वायुसेना के विकास के लिए वायुयानों के निर्माण में प्रगति आवश्यक है। इस समय देश में बैंगलोर एवं कानपुर में वायुयान का निर्माण हो रहा है।

आर्थिक दृष्टिकोण से भी वायु यातायात का अधिक महत्त्व है। वायुयानों के प्रयोग से समय तथा श्रम की बचत होती है। वायु सेवा के द्वारा एक व्यापारी विश्व के किसी भी कोने में स्थित व्यापार केन्द्रों पर अल्प समय में ही माल भेज सकता है। वायु सेवाओं के मार्ग में भौगोलिक बाधाएँ भी महत्त्व नहीं रखती हैं तथा इनके लिए सड़क, लौहपथ एवं पुल आदि बनाने की भी आवश्यकता नहीं होती है। बहुमूल्य एवं हल्की वस्तुओं के प्रेषण में वायु यातायात ही अधिक पूर्ण होता है। नाशवान वस्तुओं के लिए भी वायु सेवा अति अनुकूल होती है। भारत भी आमों तथा अन्य फलों का निर्यात वायुयानों के माध्यम से ही करता है। मरुस्थलों एवं पहाड़ी प्रदेशों में भी हेलीकोप्टरों के द्वारा यातायात सम्भव है।

भारत में वायु यातायात स्थल यातायात की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है। हमारी वायु सेवा इतनी मँहगी है कि वह सामान्य व्यक्ति की पहुँच से बाहर है। वायु सेवाओं में दुर्घटनाओं की सम्भावना भी बनी ही रहती है। इसके अलावा वायुयान प्रत्येक जगह पर उतारे नहीं जा सकते हैं। हवाई अड्डों का निर्माण भी अत्यन्त आवश्यक होता है। इस प्रकार हमारी वायु सेवाएँ मँहगी होने के कारण केवल उच्च-वर्ग के लोग ही वायु सेवाओं का उपयोग कर सकते हैं।

वायु परिवहन का महत्त्व

वायु परिवहन नागरिक उड्डयन की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यातायात के अन्य साधनों की अपेक्षा इस परिवहन के विशेष महत्त्व भी हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है -

(१) रेल तथा मोटर यातायात के विकास के लिए रेलवे लाइनों तथा सड़कों का निर्माण आवश्यक होता है। इन पर बड़ी धन राशि व्यय हो जाती है। किन्तु वायु परिवहन में मार्ग निर्माण में धन व्यय नहीं करना पड़ता। इसके अतिरिक्त धरातल की बनावट का प्रभाव भी वायु परिवहन पर नहीं पड़ता।

(२) बहुमूल्य सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर अल्प अवधि में तथा सुरक्षित पहुँचाया जा सकता है। अन्य यातायात के साधनों से बहुमूल्य सामान भेजने में कठिनाई आती है। सुरक्षा की दृष्टि से भी अन्य साधन अनुपयुक्त हैं।

(३) आधुनिक जीवन में समय का महत्त्व सर्वोपरि है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिए रेल, सड़क तथा जल यातायात से अधिक समय लग जाता है किन्तु वायु परिवहन में सबसे कम अवधि लगती है। वायुयानों की चलन गति रेल तथा सड़क यातायात से कई गुनी होती है।

(४) आपत्ति काल में विशेषकर युद्धकालीन परिस्थितियों में वायु यातायात का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। युद्ध से सुरक्षा समाप्त हो जाती है जिसका प्रभाव

आर्थिक क्रियाओं पर भी प्रतिकूल पड़ता है। इस समय में वायु परिवहन सर्वाधिक महत्व का होता है।

(५) आपत्ति के समय जैसे बाढ़, भूकम्प आदि से पीड़ित जन धन को भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकता की चीजें पहुँचाने के लिए विमानों का सहारा लिया जाता है।

(६) अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में भी वायु परिवहन का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। व्यापारिक गतिविधियों के लिए तीव्र गामी डाक व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। वायुयान डाक सेवा प्रदान करके विदेशी व्यापार में पर्याप्त सहायता देते है।

आज कल वायु यातायात का महत्व अनेक दृष्टियों से बढ़ता जा रहा है। कृषि क्षेत्र में टिड्डियों, कीड़ो मकोड़ो आदि को नष्ट करने के लिए कीट नाशक दवाएँ हवाई जहाजो से छिड़की जा सकती है। अमरीका में तो दूध मछलियाँ, अण्डे तथा अन्य हल्के खाद्य पदार्थ भी वायुयानो द्वारा लाये ले-जाये जाते हैं। भारत की अर्थव्यवस्था में वायु परिवहन का महत्वपूर्ण हाथ होता जा रहा है।

भारत में वायु यातायात का विकास

यद्यपि भारत में वायु यातायात का प्रारम्भ सन् १९११ में ही बम्बई और करांची के मध्य वायु सेवा चालू होने से हो गया था तथापि सन् १९२७ तक इसकी कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। सन् १९२७ में नागरिक उड्डयन बन्दरों का निर्माण किया जाने लगा। सन् १९२९ में इम्पीरियल एयरवेज कम्पनी के वायुयान आने लगे तथा सन् १९३२ से टाटा एयरवेज व इण्डियन नेशनल एयरवेज ने करांची से मद्रास तथा लाहौर से करांची तक वायु सेवाएँ आरम्भ की तथा डाक ले जाना भी प्रारम्भ किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व तक बम्बई, काठियावाड़, कलकत्ता, ढाका एवं रंगून के मध्य वायु सेवाएँ चालू की गयी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वायुयानों का युद्ध में प्रयोग होने के कारण भारत में महत्वपूर्ण स्थानों पर हवाई अड्डो के निर्माण में पर्याप्त प्रगति हुई। सन् १९४६ में वायु यातायात मण्डल की स्थापना की गयी जिसका कार्य नागरिक उड्डयन संस्थाओं को अनुज्ञापत्र प्रदान करना था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में सेवा प्रदान करने वाली कम्पनियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। वायुयानों की संख्या अधिक थी पर उनका उपयोग नहीं किया जा रहा था। कम्पनियों में प्रतिस्पर्द्धा होने तथा परिचालन व्यय की अधिकता के कारण प्रायः सभी कम्पनियाँ घाटे में चल रही थीं। प्रति वर्ष वायु कम्पनियों को होने वाली हानि एक करोड़ रुपयों से भी अधिक थी। ऐसी स्थिति में भारत में वायु यातायात के विकास हेतु एक सुदृढ़ आधार का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक था।

भारत में वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण

सन् १९५० में भारत सरकार द्वारा नियुक्त वायु यातायात जाँच समिति ने वायु यातायात कम्पनियों की आर्थिक स्थिति एवं समस्याओं पर विचार करने के

पश्चात् अपना मत व्यक्त किया कि वायु कम्पनियों की आर्थिक स्थिति यद्यपि शोचनीय है तथापि उनका तत्काल राष्ट्रीयकरण न करके वर्तमान कम्पनियों का एकीकरण करके चार संगठन बनाये जावें। समिति ने ये संगठन उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी एवं दक्षिणी क्षेत्रों के लिए करने का सुझाव दिया तथा इनके मुख्य कार्यालय क्रमशः दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई एवं हैदराबाद में रखना उचित बताया। समिति के इस सुझाव से बड़ी इकाइयों का निर्माण तथा परिचालन व्यय में कमी होने से उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार की सम्भावना थी। समिति ने पांच साल बाद तक स्थिति में सुधार की न होने की दशा में राष्ट्रीयकरण का भी मत व्यक्त किया था।

वायु यातायात जांच समिति के विचारानुसार राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत निर्मित एक इकाई से वायुयानों का अधिकतम उपयोग सम्भव था जो कि प्रतिरक्षा एवं सैनिक आवश्यकता की दृष्टि से देश के लिए आवश्यक था। निजी क्षेत्र में जन सेवा की अपेक्षा निजी लाभ का अधिक ध्यान रखा जाता है। अतः एक इकाई का निर्माण उचित समझा गया था, जिससे कि स्थायी व्ययों में ८½ प्रतिशत की कमी का अनुमान था। परन्तु समिति के अनुसार ग्राहकों से निकट सम्पर्क स्थापित करना तथा तत्काल निर्णय करना राष्ट्रीयकरण की दशा में सम्भव नहीं था। इसके अलावा योग्य प्रबन्धकों का मिलना भी कठिन था। अनुज्ञापत्र प्राप्त कम्पनियों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता और जिसके कारण पूंजी निर्माण में व औद्योगिक विकास में भी बाधा उपस्थित होने की सम्भावना थी। सन् १९४८ में घोषित भारत की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत भी वायु यातायात को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया था। इस प्रकार दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए समिति ने इस विचार को पांच वर्ष के लिए स्थगित करना उचित समझा था।

सन् १९५१ में नागरिक उड्डयन विभाग के महा निदेशक ने विमान चालकों का एक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में विदेशी स्पर्धा से बचने के लिए आधुनिक यानों का प्रयोग तथा उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसके लिए सात करोड़ रुपयों का ऋण सस्ती ब्याज दर पर सरकार द्वारा दिये जाने की मांग की गयी। योजना आयोग ने भी इस पर विचार किया और उसने राष्ट्रीयकरण को ही इस समस्या का एकमात्र हल माना। अतः भारत सरकार ने वायु यातायात के राष्ट्रीयकरण का निश्चय करके सन् १९५३ में वायु यातायात निगम अधिनियम पास किया जिसके अनुसार जून सन् १९५३ में निम्नलिखित दो निगम सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये गये :

(अ) इण्डियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन—इसे देश के आन्तरिक भागों में वायु सेवा प्रदान करने का कार्य सौंपा गया। इसने तात्कालिक कार्यरत आठ निजी वायु कम्पनियों को अपने अधिकार में लिया।

(ब) एयर इण्डिया इन्टरनेशनल कारपोरेशन—इसको अन्तरराष्ट्रीय वायु सेवा

का कार्य प्रदान किया गया। इसका गठन सन् १९४८ में संगठित एयर इण्डिया इण्टरनेशनल लिमिटेड का राष्ट्रीयकरण करके किया गया।

निजी वायुयान कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर लेने पर उन्हें लगभग ६ करोड़ ११ लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में दिये गये, तथा कम्पनियों के कर्मचारियों को नव निर्मित निगमों की सेवा में लिया जाना भी तय किया गया। इस समय प्रत्येक निगम में एक जनरल मैनेजर तथा एक मुख्य अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है। प्रत्येक निगम में ९ सदस्य हैं। इसका कार्य केन्द्रीय सरकार की देख-रेख में चलता है।

इण्डियन एयरलाइन्स कॉरपोरेशन देश के सभी प्रमुख नगरों में वायु सेवा प्रदान कर रहा है। इसके अतिरिक्त लंका, बर्मा, नेपाल तथा अफगानिस्तान आदि पड़ोसी देशों को भी सेवायें प्रदान करता है। इस निगम के पास वर्तमान समय में ७ कारवेले (Carvelle) जेट विमान, १८ वाइकाउन्ट (Viscounts), ६ स्काईमास्टर, १४ फोकर फ्रेन्ड शिप्स, २३ डाकोटा, और १४ HS-748 हैं।

'एयर इण्डिया' २४ देशों को सेवाएं प्रदान कर रहा है। इसके पास १० बोइंग (Boeing) जेट विमान हैं। वर्ष १९६८-६९ में इस निगम के विमानों द्वारा २४२०७ लाख किलोमीटर की उड़ानें भरी गयी जिसमें ३,२१,०५१ यात्रियों ने सेवाएं प्राप्त की। यह निगम एशिया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमरीका, यूरोप महाद्वीप के २४ देशों से सम्बन्ध स्थापित किये हुए है।

पंचवर्षीय योजनाओं में वायु यातायात का विकास

'प्रथम पंचवर्षीय योजना' में वायु यातायात विकास पर ७.२ करोड़ रुपये व्यय किया गया। इस काल में ९ हवाई अड्डों का निर्माण किया गया और पुराने अड्डों में सुधार किये गये। योजना में संचार सुविधाओं तथा उपकरणों की पूर्ति पर अधिक ध्यान दिया गया। १९५१ में अनुसूचित सेवाओं के अन्तर्गत २१३.८ लाख किलोमीटर उड़ानें हुईं जबकि १९५६ में ३७७.९ लाख किलोमीटर उड़ानें हो गयी। प्रति वर्ष यात्रियों की संख्या तथा ले जाये गये सामान की मात्रा में भी वृद्धि हुई।

'द्वितीय पंचवर्षीय योजना' में दोनों निगमों पर ३०.५ करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान रखा गया। इस काल में ८ नये हवाई अड्डों के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया। लक्ष्य पूरे किये गये। कुछ हवाई अड्डों का विकास किया गया। वर्ष १९६१ में अनुसूचित सेवाओं के अन्तर्गत ४८३.८ लाख किलोमीटर उड़ानें हुईं और ९.७ लाख यात्रियों को सेवाएं प्रदान की गयी। अनियमित सेवाओं के अन्तर्गत सन् १९६१ में ९५.७ लाख किलोमीटर की उड़ानें हुईं।

'तृतीय पंचवर्षीय योजना' में इस क्षेत्र में ४९ करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस योजना के अन्तिम वर्ष में अनुसूचित सेवाओं के अन्तर्गत ४९७.८ लाख किलोमीटर उड़ानें हुईं और यात्रियों की संख्या ९.७ लाख से १५.४ लाख हो गयी। पंचवर्षीय योजनाओं में वायु यातायात की सेवाओं की स्थिति इस प्रकार थी।

अनुसूचित सेवाएँ और अनियमित सेवाएँ

वर्ष	अनुसूचित सेवाएँ			अनियमित सेवाएँ		
	उड़ानें (लाख किलो मी०)	यात्री (लाख)	माल (लाख किलो मी०)	उड़ानें (लाख किलो मी०)	यात्री (लाख)	माल (लाख किलो मी०)
१९५१	८१३६	४५	३६७६	१०६४	०७	४६७०
१९५६	३७७६	४६	८३५८	६२३	११	८८०३
१९६१	४८२८	६७	८००७	६४७	११	३६१३
१९६६	८६७८	१४८	८१२४	६००	०८२	२७४६
१९६९	६६४६	२४०	८०७६	४१८	१४०	११३५

(*Source—India* 1970)

'तीन वार्षिक योजनाओं' (१९६६-६९) में वायु परिवहन पर ३० करोड़ रुपये व्यय किये जाने की सम्भावना है। 'चतुर्थ पंचवर्षीय योजना' में ११८ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। वर्तमान समय में वायु यातायात में तकनीकी परिवर्तन किये जा रहे हैं। वर्ष १९६८-६९ में इण्डियन एयर लाइन्स की क्षमता २२८ मिलियन टन किलो मीटर है जो कि वर्ष १९७३-७४ तक ८६२ मिलियन टन किलोमीटर हो जायेगी। एयर इण्डिया की क्षमता १९६८-६९ में ४३७ मिलियन टन किलोमीटर है जो कि १९७३-७४ तक ९६० मिलियन टन किलोमीटर हो जायगी। भारत में वर्तमान समय में ८५ हवाई अड्डे हैं जिनमें से बम्बई (सान्ताक्रुज), कलकत्ता (दमदम), दिल्ली (पालम) अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं।

उड्डयन क्लब (Flying Clubs)

भारतवर्ष में इस समय २५ स्थानों पर उड्डयन क्लब हैं। इनके अतिरिक्त ३ स्थानों पर (पूना, बंगलौर और लखनऊ) सरकारी क्षेत्र में ग्लाइडिंग केन्द्र हैं और १३ स्थानों पर सरकारी सहायता मिले हुए ग्लाइडिंग क्लब हैं।

भारत में वायु यातायात की समस्याएँ व सुझाव

भारत में वायु यातायात के विकास में निम्नलिखित समस्याएँ हैं:

(१) **विमानों का अभाव**—भारत में विमानों का अभाव है। अब भी देश में विमानों के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके कारण वायु परिवहन का अधिक विकास नहीं हो पाया। इस समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि देश में अधिक मात्रा में विमानों का निर्माण किया जाये। बंगलौर तथा कानपुर के वायुयान निर्माण कारखानों में अब अधिक संख्या में वायुयान बनाने का विचार है।

(२) **प्रबन्ध व्यवस्था**—भारत में वायु परिवहन का प्रबन्ध दो निगमों में किया जाता है। इन दोनों निगमों के बजाय अगर एक निगम ही हो तब भी कार्य चल सकता है। दो निगमों के कारण प्रबन्ध व्यय में अधिक व्यय करना पड़ता है। अतः भारतीय वायु यातायात का प्रबन्ध एक ही निगम द्वारा किया जाना चाहिए।

(३) **विदेशी कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा**—भारत में वायु यातायात को विदेशी कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। विदेशी कम्पनियाँ भाडे की कमी करके अथवा अन्य सुविधाएँ देकर यात्रियो को अपनी तरफ आकर्षित करती हैं अत भारतीय वायु यातायात को कम लाभ होते है। इसके लिए वायु यातायात म विशेष सुविधाएँ तथा उचित भाडे की दर की व्यवस्था करनी चाहिए।

(४) **वायु दुर्घटनाएँ**—वायु दुर्घटनाओ के कारण जन तथा धन की हानि होती है। दुर्घटनाओ को जहाँ तक हो सके कम करना चाहिए ताकि वायु यातायात का अधिक विकास हो सके।

(५) **सेवाओ का अभाव**—देश के अब शहर ऐसे हैं जोकि वायु यातायात की सेवाओ से वचित हैं। इन भागो में नियमित सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त नियमित सेवाओ में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

(६) **हवाई अड्डे पर आधुनिक सुविधाओं का अभाव**—भारत म हवाई अड्डों पर आधुनिक सुविधाओ का अभाव है। विमान यात्रियो को सुविधाओ के अभाव से अनेक कठिनाइयाँ होती हैं अत सुविधाओ में वृद्धि करने के प्रयत्न करने चाहिए।

(७) **प्रशिक्षण का अभाव**—भारत म प्रशिक्षण व्यवस्था का अभाव है। इसके कारण अपेक्षाकृत कम प्रशिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए नये प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाने चाहिए। वर्तमान प्रशिक्षण केन्द्र का जो इलाहाबाद म है विकास किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण के अतिरिक्त अन्वेषण कार्य की तरफ भी उचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

(८) **तेल की समस्या**—भारतवर्ष में तेल महगा है जिसका प्रभाव सेवा की लागत पर पडता है। परिणाम स्वरूप वायु यातायात अन्य साधनों की अपेक्षा महगा पडता है। देश के भीतरी भागो में जनता वायु सेवा की अपेक्षा मोटरों तथा रेलों को अधिक महत्त्व देती है।

उपरोक्त समस्याओ के अतिरिक्त योग्य विमान चालको तथा कर्मचारियो का अभाव है। देश मे भार वाहक विमानों की कमी है। उडान क्लब तथा ग्लाइडिंग केन्द्रो का भी अभाव है अत इन समस्याओं का सुधार करना चाहिए।

भारत मे वायु यातायात की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। भारत की स्थिति पूर्वी गोलार्द्ध मे मध्यवर्ती है। योरोप से आस्ट्रेलिया तथा पूर्व के देशो को जाने वाले हवाई मार्गों के बीच भारत आता है। अत भारत की स्थिति उत्तम है। यहाँ के अधिकांश समय म आकाश साफ रहता है। आजकल देश मे वायुयान निर्माण भी होने लगा है अत वायु यातायात के लिए अनेक सुविधाएँ हैं।

प्रश्न

१ 'भारत म वायु परिवहन के महत्त्व तथा विकास' विषय पर सक्षिप्त नोट लिखिए।

२ वायु परिवहन की विभिन्न समस्याओ को बताते हुए उनके निराकरण के उपाय भी बताइए।

३ पचवर्षीय योजना म वायु परिवहन के विकास के सम्बन्ध म क्या प्रयत्न किये गये हैं? इस परिवहन की समस्याएँ तथा सुझाव दीजिए।

अध्याय ३८

जल परिवहन
(WATER TRANSPORT)

विदेशी व्यापार में जलयानों का अत्यन्त अधिक महत्त्व है। विभिन्न देशों के मध्य होने वाले व्यापार का तीन चौथाई जल मार्ग द्वारा ही होता है। योरोप के कुछ प्रमुख देशों का आर्थिक विकास जल यातायात के विकास के कारण ही हो पाया है। जल मार्ग ने ही अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया है। उद्योगों के लिए कच्चा माल लाने एवं निर्मित माल को विश्व के विभिन्न स्थानों तक पहुँचाने में तथा सैनिक दृष्टिकोण से जलयानों का बड़ा महत्त्व रहा है। देश की जहाजी शक्ति के आधार पर ही वहाँ की राजनैतिक एवं आर्थिक शक्ति का मापन किया जाता है।

महत्त्व

(१) आज कल अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्र से व्यापार करते हैं। विदेशी व्यापार का आधार जल परिवहन है। माल एक देश से दूसरे देश को जल मार्गों द्वारा भेजा जाता है। भारत का विदेशी व्यापार अधिकांशत जल यातायात द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। प्राचीन काल से ही भारत के व्यापारी विदेशों से व्यापार करते आ रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के पूर्व भारत का सामुद्रिक यातायात पर महत्त्वपूर्ण अधिकार था किन्तु इस शताब्दी में इस्पात के जहाजों का प्रचलन बढ़ गया जिससे भारतीय लकड़ी के जहाजों का महत्त्व घट गया। आज कल हमारे आयात निर्यात व्यापार में पर्याप्त उन्नति हो रही है अत जल यातायात का महत्त्व और अधिक बढ़ता जा रहा है।

(२) औद्योगिक प्रगति में भी जल यातायात का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वृहत् उद्योगों को चालू करने के लिए बड़ी बड़ी मशीनें तथा कच्चा माल विदेशों से आयात किया जाता है। इसके लिए जल यातायात के बिना कार्य नहीं चल सकता। दूसरी तरफ देश में औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ उत्पादन बढ़ता है जिसे खपाने के लिए विदेशों को माल भेजना पड़ता है। अत. जल यातायात आवश्यक है।

(३) जल यातायात में अनेक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होता है। एक तरफ तो प्रत्यक्ष रूप से जहाज चलाने तथा प्रबन्धन व्यवस्था के लिए व्यक्तियों की

आवश्यकता पड़ती है और दूसरी तरफ बन्दरगाहों का विकास होता है जिन पर अनेक आर्थिक गतिविधियाँ होती हैं तथा अनेक व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

(४) जहाजरानी का महत्व सुरक्षा की दृष्टि से भी पर्याप्त है। बाहर आक्रमण की स्थिति में जहाजों के माध्यम से सैनिक तथा लड़ाई का सामान एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता है।

भारत तीन तरफ से जल से घिरा हुआ है। भारत का समुद्रतट लगभग ५६५६ किलोमीटर लम्बा है। भारत अत्यन्त प्राचीन काल से ही जलमार्ग द्वारा व्यापार करता रहा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में भारतीय जहाज निर्माण उद्योग अत्यन्त उन्नत था। भारत में निर्मित जहाज टिकाऊ होते थे तथा बहुत दूर तक यात्रा करने की क्षमता रखते थे। किन्तु वाष्प से संचालित इस्पात के जहाजों के आविष्कार के पश्चात् ब्रिटिश संसद द्वारा विरोध करने के कारण भारतीय जहाज निर्माण उद्योग मन्द पड़ गया।

यद्यपि जल यातायात की दृष्टि से भारत का विश्व में कोई विशेष स्थान नहीं है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का १.५ प्रतिशत व्यापार ही भारत द्वारा जल मार्ग से किया जाता है परन्तु हमारे विदेशी व्यापार में इसकी प्रमुखता है। हमारे यहाँ का जहाज निर्माण उद्योग पिछड़ा होने के कारण यहाँ का जहाजी बेड़ा विश्व के जहाजी बेड़े का केवल ०.६५ प्रतिशत है जबकि ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा विश्व के जहाजी बेड़े का १५ प्रतिशत है। विदेशी जहाजों द्वारा हमारे माल की ढुलाई से हम करोड़ों रुपये विदेशी मुद्रा के रूप में देने पड़ते हैं। हमारे जहाजी बेड़े का पर्याप्त विकास होने पर ही विदेशी मुद्रा की बचत सम्भव है।

भारतीय जहाजरानी उद्योग की इस दयनीय दशा का कारण भारत का पराधीन होना रहा है। अंग्रेजों ने स्वयं के स्वार्थ के लिए कभी भी भारतीय कम्पनियों को प्रोत्साहन नहीं दिया। इसके विपरीत उन्होंने विदेशी जहाजी कम्पनियों को संरक्षण प्रदान किया। भारतीय जहाजी कम्पनियाँ प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकीं तथा देश का विदेशी तटवर्ती व्यापार विदेशी कम्पनियों द्वारा हथिया लिया गया। यद्यपि सन् १९१९ में सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी की स्थापना से जल यातायात के विकास में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारतीय कम्पनियों के साथ भेदभाव रखने के कारण भारतीय जहाजरानी उद्योग प्रगति नहीं कर पाया।

भारतीय जहाजरानी उद्योग के अविकसित होने के निम्नलिखित कारण हैं

(१) **राजकीय संरक्षण का अभाव**—भारतीय जहाजी कम्पनियों की सरकार द्वारा उपेक्षा की जाती थी जब कि ब्रिटिश कम्पनियों को सरकारी संरक्षण इतना अधिक था कि इसके होते हुए भी भारतीय जहाजी कम्पनियों के लिए कार्य करना असम्भव था। सरकारी एवं अर्ध-सरकारी संस्थानों का माल ले जाने हेतु भारतीय

(४) ब्रिटिश कम्पनियों द्वारा प्रलोभन—ब्रिटिश कम्पनियाँ ग्राहकों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए इन्हें विभिन्न प्रलोभन देती थीं। यदि कोई ग्राहक किसी निश्चित अवधि के मध्य अपना माल समझौते में सम्मिलित जहाजी कम्पनियों के माध्यम से भेजता था तो उस अवधि में ग्राहक द्वारा कम्पनियों को दिये गये भाड़े का एक निश्चित भाग ग्राहक के खाते में जमा कर दिया जाता। यदि वह ग्राहक उस निर्धारित अवधि में अन्य जहाजी कम्पनियों से व्यवहार नहीं करता तो उसे वह जमा राशि लौटा दी जाती। ग्राहकों को हाथ से न जाने देने के इस समझौते के कारण बड़ी-बड़ी जहाजी कम्पनियाँ एकाधिकार स्थापित कर लेतीं।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐसी दशाओं में किसी भी भारतीय जहाजी कम्पनी के लिए टिकना अत्यन्त दुस्साहसपूर्ण कार्य था। पक्षपातपूर्ण राजकीय नीति एवं ब्रिटिश कम्पनियों की एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के कारण भारतीय जहाजी कम्पनियों को बड़ा आघात लगा। परन्तु युद्धकाल में सरकार को इस नीति के दुष्परिणामों का अनुभव हुआ। अतः राजकीय नीति में परिवर्तन होने लगा तथा सरकार ने भारतीय नौ सेना एवं व्यापारिक जहाजी बेड़े के विकास हेतु एक स्पष्ट नीति अपनाये जाने की आवश्यकता महसूस की।

वर्तमान स्थिति एवं विकास

भारत ने स्वतन्त्रता के बाद से जल यातायात में स्वावलम्बन की नीति अपनायी। सन् १९४७ में जहाज यातायात सम्मेलन हुआ। इसमें मूलभूत समस्याओं पर विचार व्यक्त किये गये। प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव तथा जहाजों की कमी आदि पर विचार किया गया। आर्थिक नियोजन में इस नीति के आधार पर विकास किया गया है।

दी शिपिंग कोरपोरेशन ऑफ इण्डिया

'ईस्टर्न शिपिंग कोरपोरेशन तथा वेस्टर्न शिपिंग कोरपोरेशन' की स्थापना क्रमशः १९५० और १९५६ में की गयी। दोनों निगमों में प्रत्येक की अधिकृत पूँजी १० करोड़ रुपये थी। सन् १९६१ में इन दोनों निगमों को एकीकृत किया गया और नये निगम का नाम 'दी शिपिंग कोरपोरेशन ऑफ इण्डिया' रखा गया। इस निगम की अधिकृत तथा प्रदत्त पूँजी ३५ करोड़ तथा २३ करोड़ रुपये है। इस निगम के पास ५२ माल वाहक जहाज (जिनकी क्षमता, ६,५२,२६१ GRT है) हैं। माल वाहक जहाज समुद्रतटीय भागों, आस्ट्रेलिया, जापान, काला सागर, इंग्लैण्ड, पोलैण्ड, अरब, संयुक्त राज्य अमरीका आदि में माल का परिवहन करते हैं। निगम के पास दो यात्री जहाज हैं जो बम्बई से पूर्वी अफ्रीका और मद्रास से सिंगापुर मार्गों पर चलते हैं। निगम की सहायक कम्पनी 'दी मुगल लाइन लिमिटेड' हज के लिए जाने वाले यात्रियों की सेवा करती है।

इस निगम के अतिरिक्त अन्य कम्पनियों की स्थिति निम्न प्रकार है :

नाम	जहाजी क्षमता
१ सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन क०	३ ४७ लाख GRT
२ जयन्ती शिपिंग कम्पनी	३ १४ ,, ,,
३ इण्डियन स्टीमशिप कम्पनी	१ ४१ ,, ,,
४ ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कम्पनी	१ ६५ ,, ,,
५ रत्नाकर शिपिंग क०	० ६५ ,, ,,

पचवर्षीय योजनाओं में जहाजरानी

सन् १९५१ में भारत में ३ ७२ लाख टन भार के जहाज थे। इस योजना में जहाज रानी की टन क्षमता में वृद्धि करने के लिए २६ ३ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी जबकि इसमें वास्तविक व्यय १८ करोड़ रुपये किये गये। प्रथम योजना में जहाजों की टन क्षमता को बढ़ाकर ६ लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया। वर्ष १९५६ में ४ ८० लाख टन की क्षमता हो गयी और १ ०० लाख टन के जहाज निर्मित हो रहे थे।

'द्वितीय पचवर्षीय योजना' में टन क्षमता बढ़ाने के लिए ४६·२५ करोड़ रुपये की धन राशि रखी गयी। इस काल में ३ लाख टन अतिरिक्त वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। योजना के अन्त में ८ ५७ लाख टन भार के जहाज चलने की स्थिति में थे। इस योजना में **नेशनल शिपिंग बोर्ड** की स्थापना की गयी। यह सरकार को सामुद्रिक यातायात के सम्बन्ध में सलाह प्रदान करता है। इस काल में जहाजी विकास कोष की भी स्थापना की गयी। जिसमें जहाजी कम्पनियों को ऋण की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। **मर्चेण्ट नेवी ट्रेनिंग बोर्ड** की स्थापना १९५९ में की गयी।

द्वितीय योजना के प्रारम्भ में तटीय जहाजों की कार्यभारिता २ ४० लाख जी० आर० टन थी जो कि वर्ष १९६०-६१ में बढ़कर २ ६२ लाख जी० आर० टन हो गयी। वर्ष १९५५-५६ में समुद्र पार जहाजों की कार्यभारिता २ ४० लाख जी० आर० टन थी जो कि वर्ष १९६०-६१ तक बढ़कर ६ १२ जी० आर० टन हो गयी। इस प्रकार समुद्रपार जहाज क्षमता में पर्याप्त वृद्धि हुई। भारत वर्ष में प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ में बन्दरगाहों की क्षमता २ करोड़ टन थी जो कि वर्ष १९६०-६१ तक बढ़ कर ३ ७ करोड़ टन हो गयी।

'तृतीय पचवर्षीय योजना' में जहाजरानी के विकास के लिए ६६ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी थी। योजना लक्ष्य १० ८१ लाख टन भार के जहाजों का था। नेशनल शिपिंग बोर्ड ने १४ ० लाख टन के जहाजों का लक्ष्य रखने का सुझाव दिया था। किन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण इस सुझाव को नहीं माना गया। सन् १९६२ में जहाजों की क्षमता के लक्ष्य में वृद्धि की गयी। इस समय १३ लाख टन की

क्षमता का लक्ष्य रखा गया जो कि १९६५ में ही पूरा कर लिया गया। इस प्रकार इस योजना में उन्नति सन्तोषजनक रही। योजना के अन्त तक १४ ३० लाख टन की जहाजी क्षमता थी। जिसमें तटीय जहाजों की क्षमता ३ ६३ लाख टन और समुद्र पार यातायात के जहाजों की क्षमता १० ३७ लाख टन थी। इस पचवर्षीय योजना में बन्दरगाहों की सम्पन्न क्षमता बढ़ाने के प्रयत्न भी किये गये। फलत क्षमता ३७ करोड़ टन से बढ़ाकर ६ करोड़ टन हो गयी। इसके विकास के लिए बन्दरगाहों पर १७ करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस योजना में केवल ४० करोड़ रुपये व्यय हुए।

वार्षिक योजनाओं (१९६६ ६९) में जहाजरानी विकास पर २५ करोड़ रुपये व्यय किये गये हैं। चतुर्थ पचवर्षीय योजना में शिपिंग पर १४० करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। वर्ष १९६८-६९ के अन्त तक शिपिंग टनेज २१ ४ लाख टन हो गया जिसमें से १८ १ लाख टन समुद्री यातायात और ३ ३ लाख टन समुद्रतटीय यातायात में सम्मिलित है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना का लक्ष्य ३५ लाख टन क्षमता का रखा गया है।

भारत का जहाजी कार्यभारित्व विश्व की तुलना में बहुत कम है। भारत के विदेशी व्यापार में भारतीय जहाजी कम्पनियों का योगदान २० प्रतिशत से भी कम है। इस प्रतिशत को बढ़ाने की नितान्त आवश्यकता है। आशा है वर्ष १९७८-७९ तक ५० प्रतिशत भारतीय विदेशी व्यापार हमारे जहाजों द्वारा किया जावेगा।

जहाजरानी की समस्याएँ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जहाजरानी ने पर्याप्त उन्नति की है किन्तु फिर भी कुछ समस्याएँ हैं जो निम्न प्रकार है

(१) विदेशी प्रतिस्पर्धा—भारतीय जहाजों को ब्रिटेन, अमरीका तथा जापान के जहाजों से प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। इससे जहाजरानी को हानि उठानी पड़ती है। पिछले वर्षों में जर्मनी तथा इटली से भी प्रतिस्पर्धा होने लगी है। भारत का विदेशी व्यापार भारतीय जहाजों से कम होता है अत लगभग ५० प्रतिशत विदेशी व्यापार भारतीय जहाजों से होना चाहिए। इसके अतिरिक्त तटीय व्यापार सम्पूर्ण भारत के जहाजों से होना चाहिए।

(२) माल वाहक जहाजों का अभाव—भारत में अभी तक माल वाहक जहाजों का अभाव है। जहाज निर्माण के उद्योग के कम विकास के कारण यह समस्या बनी हुई है। जहाज निर्माण का अभी तक एक शिपयार्ड है जिसमें प्रतिवर्ष ४ जहाजों का निर्माण किया जा रहा है। दूसरा शिपयार्ड कोचीन में जापान की सहायता से स्थापित किया जा रहा है।

(३) तेल वाहक तथा यात्री जहाजों का अभाव—भारत में तेल वाहक तथा यात्री जहाजों का अभाव है। इनके अभाव के कारण विदेशी जहाजों पर निर्भर रहना पड़ता है। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत में केवल ४ तेलवाहक जहाज

थे। इसके अतिरिक्त यहाँ प्रशिक्षित लोगों का भी अभाव है। इन जहाजों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(४) अनिश्चितता का भय—भारत में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों द्वारा समुद्री यातायात की सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं। निजी कम्पनियों को राष्ट्रीयकरण का भय है। इसके कारण अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। अतः ये कम्पनियाँ विकास कार्यों पर अधिक ध्यान नहीं देती हैं।

(५) संचालन व्यय और जहाजों के मूल्यों में वृद्धि—भारत में कम्पनियों के संचालन व्यय में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। जहाजों के मूल्यों में भी वृद्धि हो रही है। किन्तु भाड़े की दर नहीं बढ़ायी जा सकती। अतः लाभ की मात्रा कम रह पाती है।। इस कारण विकास कार्यों में आर्थिक कठिनाइयाँ आती हैं।

(६) रेलों से प्रतिस्पर्धा—समुद्र तटीय व्यापार में जहाजों तथा रेलों में प्रतिस्पर्धा होती है। रेलों द्वारा सस्ते मूल्यों पर माल पहुँचाया जाता है जिसके कारण जहाजरानी को नुकसान होता है। इन दोनों में समन्वय स्थापित करने के लिए १९५५ में एक समिति की नियुक्ति हुई थी जिसने समन्वय के सम्बन्ध में सुझाव दिये। किन्तु इनमें अब भी प्रतियोगिता है।

(७) पूँजी का अभाव—देशी कम्पनियों के पास जहाजरानी के विकास के लिए पूँजी का अभाव है। विदेशों से जहाज खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा का भी अभाव है इसके कारण इसका अधिक विकास नहीं हो पाया है।

(८) प्रतिस्थापन की समस्या—भारतीय वर्तमान जहाजी क्षमता का १६ प्रतिशत भाग पुराने जहाजों का है जिसका प्रतिस्थापन तुरन्त होना चाहिए। जहाजों के प्रतिस्थापन पर बड़ी धन राशि व्यय करनी पड़ती है। अतः यह समस्या जटिल हो गयी है।

(९) जहाजों की मरम्मत व्यवस्था का अभाव—भारत में जहाजों की मरम्मत व्यवस्था का पूर्णतः अभाव है। मरम्मत के लिए कोई भी विशेष व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी है। यद्यपि पिछले वर्षों बम्बई तथा कलकत्ता में मरम्मत की व्यवस्था की तरफ प्रयत्न किये गये हैं किन्तु विशेष सफलता नहीं मिल सकी।

भारत में जहाज-निर्माण उद्योग अधिक विकसित नहीं है अतः आवश्यकतानुसार जहाज नहीं मिल पाते हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में पर्याप्त धन राशि की व्यवस्था की गयी है जिससे जहाजरानी का पर्याप्त विकास हो सकेगा। बन्दरगाहों के विकास पर भी इस योजना में पर्याप्त ध्यान दिया जायेगा जिससे क्षमता में पर्याप्त वृद्धि हो सकेगी।

भारत में आन्तरिक जल परिवहन
(Inland Transport in India)

आन्तरिक जल यातायात का महत्त्व उत्तरी पूर्वी भारत में सबसे अधिक है। पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा आसाम में कोयला, लोहा तथा अन्य भारी सामान ढोने

का काम जल यातायात से होता है। जल यातायात अपेक्षाकृत अधिक सस्ता है। देश के आन्तरिक भागों में कुल मिलाकर लगभग १३ हजार किलोमीटर लम्बे मार्ग हैं। असम और कलकत्ता के मध्य जल यातायात से होने वाले व्यापार के लगभग ५० प्रतिशत नदियों द्वारा होता है। दक्षिण में केरल, मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश में भी इसका महत्व है। उड़ीसा राज्य के समुद्र तटीय भागों में भी जल यातायात का पर्याप्त महत्त्व है। भारत में नदियों तथा नहरों दोनों में जल यातायात होता है। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है

(१) नदी परिवहन (River Transport)

नदी परिवहन का महत्त्व असम पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा मद्रास में अधिक है। नदियों में प्रमुख गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों में जल यातायात होता है। दक्षिण में गोदावरी, कृष्णा नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में नावें चलाई जाती हैं। वर्तमान समय में २५०० किलोमीटर में स्टीमर्स और ५७०० किलोमीटर में देशी बड़ी नावें चलायी जाती हैं। यद्यपि भारत में नदियों की कोई कमी नहीं है किन्तु यातायात में इनका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। धरातल की बनावट इसमें महत्त्वपूर्ण अड़चन है। भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा ऋतु में बाढ़ आ जाती है। वर्षा कालीन नदियाँ गर्मियों में सूख भी जाती हैं। अधिकांश नदियाँ पिछले डेल्टाओं में पहुँचती हैं जिसके कारण समुद्री किनारों तक आना-जाना कठिन है। दक्षिणी भारत के पठारी भागों में नावें चलाना बहुत कठिन है।

(२) नहर परिवहन

भारत में अनेक नहरें निकाली गयी हैं जिनमें नावें भी चलाई जाती हैं। पूर्वी पंजाब में सरहिन्द नगर महत्त्वपूर्ण है जिसमें उत्तरी पर्वतीय प्रदेश से इमारती लकड़ी ढोयी जाती है। गंगा नदी से निकाली गयी नहरों में ५०० किलोमीटर से भी अधिक मार्गों में नावें चलती हैं। इसके अतिरिक्त बिहार व उड़ीसा राज्य की नहरों में ८०० किलोमीटर से भी अधिक मार्गों पर नावें चलती हैं। पश्चिमी बंगाल के पश्चिमी भागों से नहरों से इन भागों से सामान कलकत्ता में पहुँचाया जाता है। इसके अतिरिक्त गोवा, केरल, आन्ध्र तथा मद्रास राज्य की नहरों में भी नावें चलायी जाती हैं।

भारत में केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई और नौका सञ्चालन आयोग आन्तरिक जल यातायात के विकास में प्रयत्न कर रहा है। सन् १९४९ को यातायात सर्वेक्षण समिति ने इन जल मार्गों की उन्नति करने के लिए सुझाव दिये थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना के आन्तरिक जल परिवहन पर ४ करोड़ रुपये और वार्षिक योजनाओं (१९६६-६९) में इन पर ६ करोड़ रुपये व्यय किये गये। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ६ करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान है।

एक समिति, जो कि विभिन्न मन्त्रालयों (यातायात एवं जहाजरानी, रेलवे और सिंचाई) तथा योजना आयोग के प्रतिनिधियों की है, नियुक्त की गयी है। इस समिति

का अध्ययन क्षेत्र आन्तरिक जल यातायात की विभिन्न सुविधाओं का पता लगाना है। केन्द्रीय जल शक्ति सिंचाई तथा नौका सचालन आयोग द्वारा देश में अनेक योजनाएँ बनायी गयी है। आशा है भविष्य मे आन्तरिक जल यातायात का पर्याप्त विकास हो सकेगा।

प्रश्न

१ भारत मे सामुद्रिक यातायात के विकास का वर्णन कीजिए तथा इनकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।

२ पचवर्षीय योजनाओ मे जहाजरानी के विकास के क्या प्रयत्न किये गये हैं। इसके विकास मे कौन-कौन सी समस्याएँ हैं ?

३. भारत की अर्थव्यवस्था मे जल यातायात का क्या महत्त्व है ? इसके विकास मे सरकार ने क्या प्रयत्न किये हैं ?

अध्याय २७

व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र
(COMMERCIAL AND INDUSTRIAL CENTERS)

भारत एक गाँवों का देश है और देश की जनसंख्या का लगभग ८२ प्रतिशत भाग गाँवों में ही निवास करता है। इन गाँवों की संख्या कुल मिलाकर पाँच लाख सड़सठ हजार से भी कुछ अधिक है। किन्तु इन गाँवों के बीच-बीच में अनेक बड़ी बस्तियों का विकास भी हो गया है जहाँ एक ही स्थान पर रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही है। चारों ओर फैले हुए अनेक गाँवों की उपज की बिक्री और ग्रामीण लोगों की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रारम्भ में ये केन्द्र छोटे कस्बों के रूप में बनाये गये। इनमें से कुछ कस्बों का क्रमशः अधिकाधिक विकास होता चला गया और वे विशालकाय नगर बन गये। पिछली जनगणना के आधार पर भारत में एक लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या ११३ थी। इनमें से कुछ नगरों का आकार तो बहुत बड़ा हो गया है और वे विश्व के बड़े नगरों की श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद, बंगलौर और कानपुर ऐसे नगर हैं जिनकी जनसंख्या दस लाख या इससे अधिक है। इनके अतिरिक्त पूना, नागपुर, जयपुर, लखनऊ, आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद, मदुराई, जबलपुर, इन्दौर एवं पटना ऐसे नगर हैं जिनकी जनसंख्या तीन लाख से लगाकर दस लाख के बीच में है। पिछले बीस वर्षों में नगरीकरण (urbanisation) की प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि हुई है। पहले की अपेक्षा अधिक व्यक्ति गाँवों से शहरों की ओर आकर्षित हुए हैं। सन् १९४१ में एक लाख या इससे अधिक १ ल. वाले शहरों की संख्या केवल ४० थी जो अब बढ़कर ११३ हो गयी है। ऐसा अनुमान है कि सन् १९७१ की जनगणना में ऐसे नगरों की संख्या १३० से कुछ अधिक हो जायगी। नगरीकरण की इस प्रवृत्ति के बढ़ने के अनेक कारण हैं—जैसे जमींदारी उन्मूलन, खेती योग्य भूमि की कमी, भूमिहीन व्यक्तियों का रोजगार की तलाश में शहरों की ओर आगमन, गाँवों में शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं का अभाव आदि।

इससे पूर्व कि भारत के कुछ बड़े नगरों का वर्णन किया जाय, यह उचित होगा कि उन दशाओं पर विचार कर लिया जाय जिनके कारण व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों का विकास होता है। एक ओर प्राकृतिक, आर्थिक, राजनीतिक

एवं धार्मिक कारण होते हैं जो धीरे-धीरे नगरों के विकास में सहायक बन जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक होगा कि नगरों के विकास पर अनेक परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है किन्तु कभी-कभी एक ही बहुत बड़ा कारण किसी स्थान पर एक बड़े नगर का विकास कर देने के लिए पर्याप्त होता है और बाद में क्रमशः अन्य सुविधाएँ ऐसे केन्द्र की ओर आकर्षित हो जाती हैं। निम्न पंक्तियों में नगरों के विकास के कारणों का विश्लेषण किया गया है

व्यापारिक नगरों के विकास के कारण

(क) प्राकृतिक कारण

कुछ नगरों का विकास विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक अनुकूलताओं के कारण हो जाता है। ये अनुकूलताएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं

(i) **उत्तम स्थिति**—इसमें नदियों अथवा झीलों के किनारे पर स्थित नगर आ जाते हैं। इसी प्रकार नदियों के मैदानों में स्थित नगरों का भी क्रमशः विकास होता चला जाता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली, एक ओर सतलज और दूसरी ओर गंगा के उपजाऊ मैदान के बीच यमुना नदी पर स्थित होने के कारण विकास कर गया।

(ii) **प्राकृतिक सौन्दर्य**—प्रायः पर्वतीय शिखरों एवं नदियों की सुन्दर उपत्यकाओं में स्थित नगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। श्रीनगर, शिमला, मसूरी, नैनीताल दार्जिलिंग आदि केन्द्रों का विकास इसीलिए हुआ है। स्वास्थ्यवर्धक जलवायु की दृष्टि से भी इन नगरों की स्थिति उत्तम मानी जाती है।

(iii) **प्राकृतिक सम्पदा**—किसी प्रकार की प्राकृतिक सम्पदा की समीपता भी नगरों के विकास का कारण बन जाती है। उदाहरण के लिए, किसी प्रकार की वन-सम्पत्ति अथवा खनिज सम्पत्ति के निकट स्थित नगर के विकास के लिए अनुकूल दशा बन जाती है। रानीगंज, झरिया कोयले के कारण और डिब्रूगढ़ खनिज तेल के कारण नगरों के रूप में विकसित हो गये।

(iv) **समुद्र-तट**—समुद्र-तट पर स्थित केन्द्र उत्तम पोताश्रय होने पर बड़े बन्दरगाहों के रूप में विकसित हो जाते हैं। बम्बई इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। प्रमुख बन्दरगाहों का वर्णन आगे के अध्याय में विस्तार से किया गया है।

(ख) ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारण

(i) **प्राचीन ऐतिहासिक प्रसिद्धि**—आगरा, ग्वालियर, पूना, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ आदि केन्द्र प्राचीन प्रसिद्धि के कारण बड़े केन्द्र बन गये। इन केन्द्रों के प्राचीन भवनों एवं ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए यहाँ दर्शनार्थी व्यक्तियों का आवागमन निरन्तर बना रहता है।

(ii) **राजधानियाँ**—राज्यों की राजधानियाँ स्वतः ही बड़े नगरों के रूप में विकसित हो जाती हैं, क्योंकि प्रशासनिक कार्यालयों के मुख्यालय प्राय इन्हीं स्थानों पर स्थित होते हैं। इन दफ्तरों में हजारों व्यक्ति कार्यरत रहते हैं और राज्य के हर कोने से नागरिक विभिन्न आवश्यक कार्यों से निरन्तर राजधानी में आते रहते हैं। जयपुर, चण्डीगढ़, भोपाल, लखनऊ, पटना, हैदराबाद आदि नगरों के विकास में यह कारण अत्यन्त सहायक रहा है।

(iii) **सैनिक महत्व**—कभी कभी सैनिक कारणों से भी कुछ नगरों का विकास बड़े नगरों के रूप में हो जाता है। ऐसे स्थान जहाँ बड़ी बड़ी सैनिक छावनियाँ स्थित होती हैं, बड़े केन्द्र बन सकते हैं।

(ग) धार्मिक कारण

विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक स्थल नगर बन जाते हैं क्योंकि इन नगरों में प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में तीर्थ यात्रियों का आवागमन होता रहता है। इस वर्ग में मथुरा, वाराणसी, हरिद्वार, नाथद्वारा, अजमेर, द्वारिका, पुरी, प्रयाग, अमृतसर, गया आदि नगर सम्मिलित किये जा सकते हैं। दक्षिण भारत में भी, तिरुपति, नासिक, रामेश्वरम् आदि धार्मिक केन्द्र बन गये हैं।

(घ) आर्थिक कारण

(i) **आवागमन के मार्गों का संगम**—सड़कों, रेलों, नहरों अथवा नदियों के संगम स्थान धीरे-धीरे बड़े केन्द्र बन जाते हैं। ऐसे नगर जहाँ दो या अधिक दिशाओं से सड़कें या रेलें आकर मिलती हैं, यात्रियों अथवा माल के परिवहन का केन्द्र बन जाते हैं। भारत में मुगलसराय, अजमेर, दिल्ली आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(ii) **उत्पादन-केन्द्र**—यदि किसी स्थान पर बड़े कारखानों की स्थापना हो जाती है, तो इसके सहारे अन्य अनेक सहायक उद्योग धन्धों की स्थापना हो जाती है। प्राय प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र कुछ सीमा तक व्यापारिक केन्द्र भी होता है। टाटा नगर, सिन्दरी, चितरंजन, दुर्गापुर, मोदी नगर, कोटा, कानपुर, इन्दौर, अहमदाबाद आसनसोल, बंगलौर आदि नगर बड़े-बड़े उत्पादन केन्द्र हैं।

(iii) **मण्डी**—यदि किसी केन्द्र के आस पास की भूमि उपजाऊ है और यहाँ विभिन्न प्रकार की व्यापारिक फसलें उत्पन्न की जाती हैं तो वह केन्द्र धीरे-धीरे एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन जायगा। हापुड़, श्री गंगानगर, लुधियाना, वर्धा, कानपुर आदि बड़ी-बड़ी व्यापारिक मण्डियाँ इसी आधार पर बस गयी।

(iv) **कला-कौशल**—अनेक नगर अपनी उत्कृष्ट कारीगरी अथवा शिल्पकारिता के लिए प्रसिद्ध हो जाते हैं। अनेक कुटीर उद्योगों के आधार पर उन्हीं सम्बन्धित नगर प्रमुख उत्पादन के केन्द्र बन गये हैं। बड़े हुए शाल-दुशाले,

संग-मरमर की मूर्तियाँ, चन्दन की लकड़ी पर कलात्मक कारीगरी, पीतल के नक्काशीदार बर्तन, लकड़ी एवं धातु के खिलौने, चित्र एवं किमखाब के वस्त्र आदि की प्रसिद्धि की पृष्ठभूमि में अनेक व्यापारिक केन्द्रों के नाम जुड़े हुए हैं।

औद्योगिक नगरों के विकास के कारण

कुछ व्यापारिक नगरों में विशेष सुविधाओं के कारण कतिपय उद्योग धन्धे स्थापित हो जाते हैं, किन्तु अनेक नगर प्रमुख रूप से औद्योगिक केन्द्रों के रूप में ही स्थापित होते हैं, यद्यपि इन कारखानों की स्थापना के बाद वहाँ सम्बन्धित कच्चे माल तथा निर्मित माल के व्यापार संगठन भी स्थापित हो जाते हैं। यदि किसी स्थान पर एक इस्पात का कारखाना स्थापित किया जाता है, तो धीरे-धीरे विकास के साथ-साथ उस स्थान का नक्शा ही बदल जाता है। करोड़ों रुपये की पूँजी उस कारखाने में लगी होती है तथा हजारों व्यक्ति उसमें काम करने लगते हैं। कारखाने के सहारे वहाँ अच्छा-खासा नगर आबाद हो जाता है, और इस नगर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वहाँ अनेक प्रकार की व्यापारिक एवं वित्तीय गति-विधियाँ आरम्भ हो जाती हैं। सिन्दरी, दुर्गापुर, चितरंजन, टाटानगर एवं अन्य ऐसे अनेक औद्योगिक केन्द्र इसी प्रकार विकसित हुए हैं। इन कारखानों के किसी स्थान विशेष पर केन्द्रीकरण के यही आधारभूत कारण हैं जिनका विवेचन उद्योगों के स्थानीयकरण के अन्तर्गत किया जा चुका है। संक्षेप में, इनका विश्लेषण इस प्रकार है -

(१) कच्चे माल की सुलभता—यदि किसी स्थान के आसपास किसी उद्योग के लिए आवश्यक अथवा कच्चा माल सरलता से उपलब्ध है तो यह तथ्य वहाँ उद्योगों की स्थापना में सहायक होगा। सूती मिलों एवं जूट के कारखानों की स्थापना इसी आधार पर हुई है। अनेक धातु उद्योग केन्द्रों की दशा में भी यह तथ्य लागू होता है।

(२) ईंधन की सुविधा—कोयला क्षेत्रों में अनेक औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो जाते हैं। इसी प्रकार खनिज तेल के क्षेत्रों में भी कल कारखानों की स्थापना सुविधा-जनक रहती है। इसके अतिरिक्त नदी घाटी योजनाओं के क्षेत्रों में जल विद्युत की सुलभता भी अनेक औद्योगिक केन्द्रों का विकास करती है जैसे राजस्थान में चम्बल योजना क्षेत्र में कोटा नगर एक औद्योगिक केन्द्र बन चुका है।

(३) आवागमन के साधनों की सुविधा—बड़े कारखानों की स्थापना उस स्थान पर हो सकती है जहाँ आवागमन एवं माल के परिवहन के उत्तम साधन विद्यमान हों क्योंकि इनके अभाव में कच्चे माल तथा कारखानों में बने हुए माल को लाना-ले-जाना असम्भव होगा। बड़े रेलों के जंक्शन अथवा बन्दरगाह यह सुविधा प्रदान करते हैं।

(४) **श्रम**—कारखानों में काम करने के लिए भारी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अतः औद्योगिक नगरों के आसपास पर्याप्त संख्या में सस्ते श्रम की उपलब्धि होनी चाहिए। तकनीकी श्रम के लिए विशेषज्ञ अन्य स्थानों से लाये जा सकते हैं।

(५) **स्थानीय माँग**—अनेक कारखाने मुख्य रूप में स्थानीय बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। कारखाने में तैयार माल की आसपास के क्षेत्रों में ही खपत हो जाती है। इससे ढुलाई भाड़े में बचत हो जाती है।

(६) **आवश्यक पूँजी**—कारखानों की स्थापना के लिए यह एक आवश्यक तत्त्व है। यदि पूँजी की व्यवस्था स्थानीय रूप में हो सकती है तो यह केन्द्र के विकास में सहायक होती है। अन्यथा पूँजी का प्रबन्ध अन्य स्थानों से किया जा सकता है।

(७) **अन्य दशाएँ**—उपर्युक्त अतिरिक्त उद्योगों की स्थापना के लिए अन्य अनेक दशाएँ भी सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, उत्तम जलवायु, सरकारी संरक्षण, जलपूर्ति की व्यवस्था आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

अगले अध्याय में भारत के प्रमुख बन्दरगाहों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रमुख बन्दरगाह न्यूनाधिक सीमा में एक औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्र भी बन जाता है। किन्तु बन्दरगाहों के अतिरिक्त भी देश में अनेक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र हैं जिनमें से कुछ बड़े केन्द्रों का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है

दिल्ली (Delhi)

इस नगर को देश की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त है। इस नगर की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके एक ओर सतलज, व्यास, रावी आदि का मैदान है तथा दूसरी ओर गंगा, यमुना आदि नदियों का मैदान है। ये दोनों ही मैदान अत्यन्त उपजाऊ और घने आबाद हैं। दिल्ली यमुना नदी के किनारे पर स्थित है। इसके साथ ही यह केन्द्र चारों ओर से आने वाले प्रमुख सड़क एवं रेल मार्गों का संगम है। उत्तरी-रेलवे क्षेत्र का यहाँ मुख्यालय है तथा पश्चिमी और मध्य रेलवे की मुख्य लाइनें दिल्ली को बम्बई और

अहमदाबाद से जोड़ती हैं। यह केन्द्र वायु मार्गों का भी एक प्रमुख केन्द्र बन गया है। यहाँ का पालम हवाई अड्डा एक उत्तम अन्तरराष्ट्रीय वायु सेवा केन्द्र है।
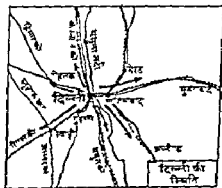
उपर्युक्त सुविधाओं के कारण दिल्ली एक बड़ा नगर ही नहीं, बल्कि एक प्रमुख व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र बन गया है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार दिल्ली नगर की जनसंख्या २३,५९,४०८ थी, किन्तु अब इसकी जनसंख्या इससे कहीं अधिक हो चुकी है। इस दृष्टि से यह देश का तीसरा बड़ा नगर बन गया है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाना, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू काश्मीर के व्यापारी किराना, कपड़ा एवं विविध वस्तुएँ दिल्ली में ही खरीदते हैं। फलों एवं सूखे मेवों का भी यह एक बड़ा बाजार बन गया है। नगर में अनेक कारखाने भी स्थापित हैं जिनमें सूती कपड़ा मिलें, जूते बनाने के कारखाने, रासायनिक उद्योग, साइकिल, घड़ियों, पंखों, बिजली के उपकरणों, रेडियो एवं ट्रांजिस्टर, इन्जीनियरिंग उद्योग, अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

अनेक प्राचीन तथा आधुनिक दर्शनीय स्थलों के कारण दिल्ली पर्यटकों के लिए एक आकर्षक केन्द्र बन गया है। जामा मस्जिद, लाल किला, कुतुब मीनार, चिड़ियाघर, राज घाट, राष्ट्रपति भवन, केन्द्रीय सचिवालय आदि प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। नगर शिक्षा का भी एक प्रमुख केन्द्र है।

कानपुर (Kanpur)

यह उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है। सन् १९६१ में इसकी जनसंख्या दस लाख थी। यह केवल एक बड़ा व्यापारिक नगर ही नहीं है बल्कि एक प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र भी है। गंगा नदी के किनारे बसा होने तथा दिल्ली हावड़ा प्रमुख रेल पथ पर स्थित होने के कारण अन्य प्रमुख नगरों तथा कस्बों से यह जुड़ा हुआ है। कानपुर के आसपास का क्षेत्र अत्यन्त उपजाऊ भाग है और वहाँ नहरों से सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में कपास, तिलहन, गन्ना, दालें एवं गेहूँ आदि की पर्याप्त उपज होती है। अतः यह बड़ी मण्डी बन गया है। सड़कों द्वारा भी यह नगर लखनऊ, आगरा, दिल्ली, इलाहाबाद, आदि प्रमुख केन्द्रों से सम्बद्ध है।

कानपुर की स्थिति
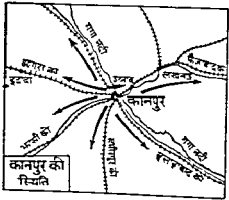
यहाँ स्थापित उद्योगों में सूती वस्त्र मिलें, चीनी के कारखाने, हौजरी एवं ऊनी वस्त्र उद्योग, रासायनिक उद्योग, आटा पीसने के कारखाने, सम्मिलित हैं। यह शहर चमड़ा उद्योग के लिए भी प्रसिद्ध है। उत्तर भारत में कानपुर शक्कर की सबसे बड़ी मण्डी है। हाल ही में यहाँ हवाई जहाज और टेलीविजन निर्माण के उद्योग भी प्रारम्भ किए गए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में एक विश्वविद्यालय, मेडीकल और इन्जीनियरिंग कालेज प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

अहमदाबाद (Ahmedabad)

यह गुजरात की राजधानी है और साबरमती नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ है। यहाँ की जनसंख्या १५ लाख से ऊपर है। इसकी प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण सूती वस्त्र उद्योग का विकास है। यहाँ सूती मिलों की स्थापना सन १८६७ के बाद प्रारम्भ हुई और कुछ ही वर्षों में यह सूती वस्त्र उद्योग एक प्रमुख केन्द्र बन गया। इसीलिए इसे भारत के मैनचेस्टर के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यहाँ कार्यशील सूती वस्त्र कारखानों की संख्या ६५ से कुछ अधिक है। इनमें से कुछ

कारखानों में उच्च कोटि का सुपर फाइन कपड़ा तैयार किया जाता है जिसका निर्यात व्यापार में विशेष महत्त्व है। इसके आसपास का क्षेत्र कपास उत्पादक क्षेत्र है। रुई एवं सूती वस्त्र निर्माण के लिए प्रावधिक रासायनिक पदार्थों तथा निर्मित वस्त्रों की यह एक बड़ी मण्डी है। पश्चिम रेलवे अहमदाबाद को बम्बई, बड़ौदा, अजमेर, जयपुर, दिल्ली, राजकोट आदि प्रमुख नगरों से जोड़ती है। इसके निकट एक बड़ा तेल शोधक कारखाना भी स्थापित किया गया है तथा पेट्रो केमीकल उत्पादनों का एक बड़ा केन्द्र भी बन गया है।
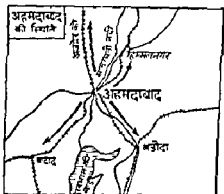
बंगलौर (Bangalore)

यह मैसूर राज्य की राजधानी है तथा दक्षिणी भारत का एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। पिछली जनगणना के आधार पर इसकी जनसंख्या बारह लाख से कुछ अधिक थी। यह नगर बम्बई, पूना, मद्रास, हैदराबाद एवं त्रिवेन्द्रम से रेल मार्ग द्वारा सम्बद्ध है तथा वायु सेवाओं का लाभ भी इसे प्राप्त है। सरकारी क्षेत्र के दो प्रसिद्ध कारखाने यहाँ स्थित हैं। प्रथम हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड का कारखाना है जिसमें वायुयान बनाये जाते हैं। द्वितीय कारखाना हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का है जिसमें 'खराद की मशीनें' तथा 'घड़ियाँ' बनायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त टेलीफोन उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, चमड़ा उद्योग, साबुन एवं तेल उद्योग आदि भी यहाँ स्थापित हैं।

नगर एक सुन्दर और दर्शनीय केन्द्र है जहाँ वृन्दावन उद्यानों को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं।

हैदराबाद (Hyderabad)

यह आन्ध्र प्रदेश की राजधानी है। जनसंख्या की दृष्टि से यह अहमदाबाद और बंगलौर से कुछ बड़ा है। पुराने हैदराबाद राज्य की राजधानी भी यही नगर रहा है। अतः इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। यहां का सालारजंग अजायबघर पर्यटकों के आकर्षण का एक प्रमुख स्थान बन गया है। शिक्षा की दृष्टि से उस्मानिया विश्वविद्यालय दक्षिण का एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र है। यह नगर एक व्यापारिक मण्डी तथा औद्योगिक केन्द्र भी है। यहाँ सूती वस्त्र बनाने के कारखाने तथा दियासलाई तथा सिगरेट बनाने के कारखाने स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योगों द्वारा अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ भी यहाँ बनायी जाती हैं। नगर रेलों तथा सड़कों द्वारा दक्षिण एवं उत्तर भारत के प्रमुख नगरों से जुड़ा हुआ है।

जयपुर (Jaipur)

यह राजस्थान की राजधानी है तथा राज्य का सबसे बड़ा नगर है। पिछली जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या चार लाख से कुछ अधिक थी किन्तु पिछले वर्षों में नगर का इतना विकास हुआ है कि अब इसकी जनसंख्या पहले से लगभग दुगनी हो गयी है। पश्चिम रेलवे की दिल्ली, अहमदाबाद लाइन पर यह स्थित है तथा राजस्थान के सभी प्रमुख नगरों से रेलों एवं सड़कों द्वारा जुड़ा हुआ है।

प्राचीन एवं सुन्दर नगर होने के कारण यह पर्यटकों का आकर्षक स्थान है। अजायबघर, चिड़ियाघर, हवामहल, आमेर का किला गल्ता आदि उल्लेखनीय स्थान हैं। इसके अतिरिक्त नगर की बसावट की योजना राजा जयसिंह द्वारा बहुत ही उत्तम ढंग से बनायी गयी थी जिसे देखकर बड़े-बड़े नगर निर्माण विशेषज्ञ आज भी आश्चर्य करते हैं। नगर गेहूँ, दालों तथा मसालों आदि की मण्डी है तथा उनके कुटीर उद्योगों द्वारा कई प्रकार की कलात्मक वस्तुओं का निर्माण यहाँ किया जाता है जिनमें वस्त्रों की रंगाई, छपाई, पीतल पर नक्काशी का काम, चमड़े के कलात्मक जूते, हाथी दांत का काम तथा संगमरमर की मूर्तियाँ बनाने का काम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

जयपुर में कुछ बड़े उद्योगों की भी स्थापना हो चुकी है। बाल बीयरिंग, सूती वस्त्र, बिजली एवं पानी के मीटरों का निर्माण, शीतल पेय बनाने के कारखाने, बिजली के खम्भे एवं लोहे के तार आदि के कारखाने यहाँ कार्यशील हैं। राजस्थान में शिक्षा का भी सबसे बड़ा केन्द्र जयपुर ही है जिसमें विश्वविद्यालय के अतिरिक्त मेडिकल एवं इन्जीनियरिंग कालेज यहाँ स्थापित हैं।

आगरा (Agra)

उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा के निकट दिल्ली से २०० किलोमीटर दक्षिण में यमुना नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। इसकी प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण सम्राट शाहजहाँ का बनवाया हुआ 'ताजमहल' है। इसके अतिरिक्त मुगल कालीन अन्य ऐतिहासिक स्थल भी यहाँ दर्शनीय हैं जैसे लाल किला एतमाउद्दौला एवं अकबर के मकबरे फतहपुर सीकरी आदि।

आगरा उत्तर, मध्य एवं पश्चिम रेल मार्गों द्वारा अन्य बड़े नगरों से जुड़ा हुआ है। दिल्ली कलकत्ता, बम्बई, मद्रास एवं अहमदाबाद के लिए यहाँ से रेल परिवहन की सुविधायें उपलब्ध हैं। सड़क एवं वायु यातायात की दृष्टि से भी इसकी स्थिति अनुकूल है। नगर अनाज, दालें, तिलहन एवं मसाले आदि की व्यापारिक मण्डी है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के औद्योगिक नगरों में इसका दूसरा स्थान है। यहाँ अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ, कुटीर उद्योगों द्वारा बनायी जाती हैं जैसे दरी एवं कालीन, संगमरमर की वस्तुएँ गोटे एवं जरी की वस्तुएँ। इसके अतिरिक्त यह नगर चमड़ा उद्योग का एक प्रमुख केन्द्र बन गया है। यहाँ के चमड़े के कारखानों में जूते, हैंडबेग, सूटकेस तथा ऐसी ही अन्य वस्तुएँ बनायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त सूती वस्त्र एवं तेल उद्योग के कारखाने भी यहाँ हैं। नगर के समीप ही दयालबाग एक औद्योगिक तथा दर्शनीय स्थल बन गया है। नगर की जनसंख्या पाँच लाख से अधिक थी, किन्तु अब इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। अनुमान है कि आगामी जनगणना तक यह दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में गिना जाने लगेगा।

लखनऊ (Lucknow)

गोमती नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है और उत्तर प्रदेश की राजधानी है। पुराने समय में भी यह नवाबों की राजधानी रहा है। अतः यहाँ अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं जिनमें इमाम बाड़ा और छतर मंजिल प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त राजभवन, सचिवालय, विधान सभा भवन एवं राज्य के अनेक सरकारी मुख्य कार्यालय यहाँ स्थित हैं।

नगर उत्तर तथा उत्तर पूर्वी रेल मार्गों का प्रमुख केन्द्र है तथा उत्तर भारत के सभी बड़े शहरों से रेल और सड़क मार्गों से सम्बद्ध है। यहाँ अनेक कुटीर उद्योग संचालित होते हैं जिनमें बारीक वस्त्रों पर चिकन का काम अत्यन्त प्रसिद्ध है। कागज बनाने का एक बड़ा कारखाना भी यहाँ स्थापित है। नगर की जनसंख्या पिछली जनगणना के अनुसार साढ़े सात लाख से कुछ अधिक थी किन्तु अब इसमें वृद्धि हो गयी है।

हापुड़ (Hapur) –

यह उत्तर भारत की एक अत्यन्त प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है। उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर से लगभग बीस मील की दूरी पर हापुड़ रेल जंक्शन है। दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, बरेली आदि से सड़क मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। इस मण्डी की सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि यह गंगा जमुना दोआब के ऐसे क्षेत्र में स्थित है जहाँ नहरों एवं नलकूपों द्वारा सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं एवं जिसकी मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है। अतः इस मण्डी के आस-पास के क्षेत्र में अनेक प्रकार की कृषि फसलें उत्पन्न होती हैं जैसे गेहूँ, दालें, तिलहन, गन्ना कपास आदि। यह उपज इस मण्डी में विक्रय हेतु लायी जाती हैं। विशेषकर गन्ने की यह सबसे प्रसिद्ध मण्डी है और थोक व्यापारियों, दलालों, आढ़तियों कमीशन एजेन्टों आदि की यहाँ भरमार है। यहाँ फसलों के बाद भारत के अनेक राज्यों के व्यापारी गन्ने एवं दालों तथा तिलहन की खरीद के लिए आते हैं।

इसकी प्रगति को देखते हुए ही हाल ही में अमरीकी सहायता से यहाँ बीस हजार टन गेहूँ की क्षमता वाली सिलो (Silo) निर्मित किया गया है। सिलो सीमेन्ट एवं कंक्रीट और इस्पात की छड़ों से निर्मित आधुनिक गोदाम होता है जिसमें अनाज अनेक वर्षों तक सुरक्षित रह सकता है। भविष्य में आशा है इस केन्द्र में ऐसे ही और गोदामों का निर्माण किया जायगा।

भोपाल (Bhopal)

यह नगर मध्य प्रदेश की राजधानी है। इससे पहले भोपाल राज्य के नवाबों की राजधानी रहा है। मध्य प्रदेश की राजधानी के रूप में इस नगर का चुनाव इसलिए किया गया कि भारत के इस सबसे बड़े राज्य में इसकी स्थिति मध्यवर्ती है। मध्य प्रदेश की राजधानी बनने के बाद से नगर का तेजी से विकास हुआ है। नगर के आस पास अनेक राजकीय कार्यालयों, आवास भवनों, उद्यानों आदि का निर्माण किया गया। मध्य रेलवे की दिल्ली बम्बई प्रमुख लाइन पर स्थित होने तथा सड़कों द्वारा आसपास के प्रमुख नगरों से जुड़ा होने के कारण मध्य प्रदेश में भोपाल की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गयी है। नगर के समीप ही सार्वजनिक क्षेत्र का एक बहुत बड़ा कारखाना है जिसमें बिजली के यन्त्रों का निर्माण किया जाता है।

जमशेदपुर (Jamshedpur)

इसे टाटा नगर भी कहा जाता है क्योंकि इसकी स्थापना प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेद जी नौशिरवान जी टाटा के द्वारा हुई। यह बिहार के दक्षिणी भाग में खनिज प्रधान क्षेत्रों के बीच स्थित है। इसके आसपास लोहे, मैंगनीज, चूना आदि के प्रचुर भण्डार हैं तथा कोयले की खानें भी यहाँ से लगभग १४० किलोमीटर से अधिक दूर नहीं हैं। कलकत्ता का व्यापारिक केन्द्र एवं बन्दरगाह भी यहाँ से केवल २५० किलो-मीटर की दूरी पर स्थित है। इन्हीं सुविधाओं को देखते हुए श्री टाटा ने यहाँ इस्पात का कारखाना स्थापित करने का विचार किया। कारखाने के निर्माण के बाद से नगर की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। यहाँ का कारखाना भारत में निजी क्षेत्र कारखानों में सबसे बड़ा है। यह नगर कलकत्ता से बम्बई जाने वाले रेल मार्ग पर स्थित है। इस्पात के अतिरिक्त यहाँ अनेक प्रकार के सहायक उद्योग धन्धे स्थापित हो गये हैं जिनमें मोटर ट्रक, रेलों के इंजिन, उर्वरक तथा अन्य रसायनिक उद्योग आदि प्रमुख हैं।

कोटा (Kotah)

कोटा राजस्थान का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार इस नगर की जनसंख्या २१३००५ थी। यह चम्बल नदी के निकट बसा हुआ है। बम्बई तथा दिल्ली से रेलवे लाइन से सम्बद्ध है। जयपुर से सड़क तथा रेल मार्ग से जुड़ा हुआ है। जयपुर से कोटा राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम की बसें चलती हैं। देश के विभिन्न भागों से सड़क तथा रेल परिवहन से जुड़ा होने के कारण इस नगर का महत्त्व बढ़ गया है।

चम्बल नदी घाटी परियोजना कोटा क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण विकास कार्यक्रम है। इस परियोजना से यहाँ पानी तथा बिजली सुविधाएँ पूरी की जा रही हैं। कोटा में आणविक विद्युत केन्द्र का निर्माण किया जा रहा है। इससे इस क्षेत्र की बढ़ती हुई बिजली की माँग पूरी हो सकेगी। राजस्थान में कोटा में औद्योगीकरण की सबसे अधिक सुविधाएँ हैं। प्राकृतिक वातावरण भी विकास के अनुकूल है। इन सब सुविधाओं के परिणामस्वरूप पिछले वर्षों में यहाँ अनेक उद्योग स्थापित हुए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में यहाँ इन्स्ट्रूमेन्टेशन लिमिटेड की स्थापना की गयी है। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में जे० के० सिन्थेटिक्स, श्री राम रेयन्स, श्री राम विनाइल केमिकल्स, श्री राम फर्टिलाइजर्स आदि उद्योग पिछले वर्षों में विकसित हुए हैं। यहाँ औद्योगिक बस्ती का भी विकास किया गया है।
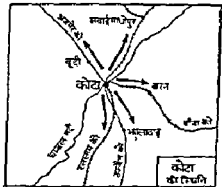
कोटा के आस पास के क्षेत्र में मिट्टी उपजाऊ है। वर्षा यहाँ वार्षिक ७५ से मी० हो जाती है। सिंचाई की भी पर्याप्त सुविधाएँ हैं। अतः अच्छी फसलें होती हैं। मुख्य फसलें चावल, गेहूँ, गन्ना, तिलहन, रुई आदि हैं।

राजस्थान में औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टि से विकास की सबसे अधिक सम्भावनाएँ कोटा में हैं। राजस्थान के प्रवासी उद्योगपति इस क्षेत्र में उद्योग लगाने के लिए प्रयत्नशील हैं। राजस्थान सरकार ने भी इस क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना के लिए अनेक सुविधाएँ देने की घोषणा की है।

प्रश्न

१. प्रमुख व्यापारिक एवं औद्योगिक नगरों के विकास के लिए किन दशाओं की आवश्यकता होती है? संक्षेप में लिखते हुए उत्तर भारत के दो बड़े नगरों के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

२. निम्नलिखित नगरों की स्थिति एवं उनके महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
बंगलौर, अहमदाबाद, कोटा, दिल्ली, कानपुर तथा हापुड़।

अध्याय २६

वन्दरगाह एवं पोताश्रय
(PORTS AND HARBOURS)

आर्थिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्रों की प्रगति का सिंहावलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि उनके आर्थिक विकास में बन्दरगाहों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विकास के साथ-साथ राष्ट्र के आयात और निर्यात के आकार में क्रमशः वृद्धि होती है। अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का अधिकांश माल समुद्री मार्गों से होकर गुजरता है। यही कारण है कि विकसित देशों का विदेशी व्यापार उत्तम बन्दरगाहों के बिना सचालित नहीं किया जा सकता है। किन्तु उत्तम बन्दरगाहों की सुविधा सब देशों के पास समान रूप में नहीं होती है। इस दृष्टि से कुछ देशों की स्थिति उन्नत होती है जैसे इंगलैण्ड, जापान, संयुक्त राज्य अमरीका आदि। वैसे बन्दरगाह सभी ऐसे देशों में होते हैं जो समुद्रतट पर स्थित हैं, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे सभी बन्दरगाह उत्तम एवं व्यापार के लिए अनुकूल हों। इसके लिए अनेक ऐसी भौगोलिक और आर्थिक दशाओं की अनुकूलता भी उपलब्ध होनी चाहिए जिनका वर्णन आगे इसी अध्याय में किया गया है।

उत्तम बन्दरगाहों की संख्या प्राय. उन देशों में अधिक होती है जहां समुद्र-तट रेखा में पर्याप्त कटाव एवं मोड़ होते हैं। कटी-फटी और घुमावदार तट-रेखा बन्दरगाहों में जहाजों के ठहरने और माल तथा यात्रियों के चढ़ाने उतारने के लिए आवश्यक सुविधा एवं सुरक्षा प्रदान करती है। यही कारण है कि इंगलैण्ड और जापान जैसे छोटे देशों में भी प्राकृतिक बन्दरगाहों की बहुलता है जिस कारण उन देशों का आर्थिक विकास बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। इसके विपरीत भारत जैसे विशाल देश की तट रेखा प्राय सीधी और सपाट है और उनमें सुरक्षित खाड़ियों, मोड़ों, घुमावों आदि का अभाव है। अत हमारे देश में प्राकृतिक और उत्तम बन्दरगाहों की संख्या अत्यन्त सीमित है। भारत की तट-रेखा में कटावों एवं घुमावों की कितनी कमी है यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि भारत की तट-रेखा की लम्बाई इंगलैण्ड और जापान में से प्रत्येक की तट-रेखा की लम्बाई की तुलना में एक चौथाई से भी कम है, जबकि भारत का क्षेत्र उन देशों की तुलना में कई गुना अधिक है और दक्षिण में तीन ओर भारत समुद्र से घिरा हुआ है। यह स्थिति हमारे आर्थिक विकास के मार्ग में आगे चलकर बाधक बन सकती है और इसके लिए देश

को धीरे धीरे कुछ छोटे बन्दरगाहों का कृत्रिम रूप मे विकास करके उन्हें बड़े बन्दरगाहों के रूप म विकसित करना होगा।

बन्दरगाह एवं पोताश्रय
(Ports and Harbours)

इससे पूर्व कि बन्दरगाहों के विकास के लिए आवश्यक अनुकूल परिस्थितियों का विवेचन किया जाय यह उचित होगा कि यह जान लिया जाय कि बन्दरगाह और पोताश्रय म क्या अन्तर है। बन्दरगाह (Port) समुद्र मे भूमि की ओर और भूमि से समुद्र की ओर आगमन-द्वार तथा निर्गम द्वार है। पोताश्रय की तुलना मे यह एक व्यापक शब्द है, क्योंकि बन्दरगाह पोताश्रय के अतिरिक्त अनेक ऐसे अंगों एवं सगठनों को स्वय मे समाविष्ट करता है जिनका सम्बन्ध माल के आयात और निर्यात अथवा यात्रियों के गमनागमन से होता है। इन कार्यों को भली भाँति सम्पन्न करने के लिए आवश्यक व्यवस्थाओं, सुविधाओं और सेवाओं से सम्बद्ध विभिन्न सगठनों को बन्दरगाह का ही अंग माना जाता है—जैसे जलयानों के ठहरने के लिए और उनकी मरम्मत के लिए उत्तम सुविधाएँ सुसज्जित यार्ड एवं वर्कशाप, ईंधन प्रदान करने की सुविधाएँ, भण्डारगृह, प्रतीक्षालय, जल विद्युत, चिकित्सा, बीमा, बैंकिंग एवं व्यापार-गृहों की सुविधाएँ आदि। इस प्रकार बन्दरगाह वस्तुत देश के आन्तरिक भागों और बाह्य ससार के मध्य एक कड़ी का कार्य करता है।

पोताश्रय (Harbours)—बन्दरगाह के व्यापक सगठन का ही एक आवश्यक अंग होता है। प्रत्येक बन्दरगाह मे पोताश्रय वह स्थान होता है जहाँ जहाज आकर ठहरते है। वस्तुत यह वह स्थान होता है जो पोतों (Ships) को आश्रय प्रदान करता है—इसीलिए इसे पोताश्रय के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसमे जहाजों के ठहरने के लिए डॉक (Docks) बने होते हैं जो खुले समुद्र की वेगपूर्ण लहरों और आँधियों से सुरक्षित होते हैं तथा जहाँ जहाज शान्ति और सुरक्षापूर्वक माल और यात्रियों को उतार और चढ़ा सकते हैं। पोताश्रय दो तरह के हो सकते हैं—प्राकृतिक और कृत्रिम।

(क) प्राकृतिक पोताश्रय (Natural Harbour)

इसमें तट-रेखा कटी फटी होती है और स्थानीय चट्टानों से होकर समुद्री जल ऐसी सुरक्षित खाड़ियों का निर्माण कर लेता है जहाँ जहाज शान्त जल म ठहर सकते हैं। ऐसे स्थान खुले समुद्री सकटों से मुक्त होते हैं। प्राकृतिक पोताश्रयों में जहाजों के ठहरने के लिए डॉक (Docks) कम व्यय और सरलता से बनाये जा सकते हैं। भारत मे बम्बई प्राकृतिक पोताश्रय का एक उत्तम उदाहरण है। विदेशों में सेनफ्रान्सिस्को, न्यूयार्क, याकोहामा, आदि प्राकृतिक पोताश्रय माने जाते हैं।

(ख) कृत्रिम पोताश्रय (Artificial Harbour)

जहाँ समुद्र तट पर सीधी तट-रेखा होती है और प्राकृतिक चट्टानों और खाड़ियों का अभाव होता है, वहाँ कृत्रिम रूप से पत्थरों और कंक्रीट की सहायता से

बाँध बनाकर एक कृत्रिम खाड़ी बना ली जाती है। स्पष्ट है कि यह कार्य अत्यन्त कठिन एवं खर्चीला होता है। यह बाँध तट और खुले समुद्र के बीच एक अवरोध (Barrier) का काम करता है, और इस प्रकार निर्मित कृत्रिम झील या खाड़ी में जहाजों के प्रवेश करने और उनके ठहरने के लिए डॉक बना दिये जाते हैं। हमारे देश में मद्रास इसी श्रेणी का पोताश्रय है।

उत्तम पोताश्रय के लिए आवश्यक दशाएं

प्रायः यह प्रश्न किया जाता है कि एक उत्तम पोताश्रय के लिए कौन-सी दशाओं की आवश्यकता होती है। इसके लिए बड़ी-बड़ी तट-रेखा के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों की भी अपेक्षा होती है जिनका वर्णन निम्न प्रकार है

(i) सुरक्षित स्थल—पोताश्रय ऐसे स्थान पर स्थित होना चाहिए जो खुले समुद्री लहरों से मुक्त हो। इसके लिए ऐसी प्राकृतिक खाड़ियाँ, जिनमें पानी स्थल को काटकर भीतर तक चला गया हो, अत्यन्त अनुकूल मानी जाती हैं, क्योंकि वे समुद्री तूफानों और लहरों से सुरक्षित होती हैं और उनमें जहाज शान्तिपूर्वक ठहर सकते हैं।

(ii) पर्याप्त गहराई—पोताश्रय के निकट समुद्र न तो बहुत उथला होना चाहिए और न बहुत अधिक गहरा। पोताश्रय में जहाजों के आने-जाने के लिए पैंतीस से चालीस फीट की गहराई पर्याप्त मानी जाती है। उदाहरण के लिए, बम्बई के निकट समुद्र तल की औसत गहराई पैंतीस फीट के आस-पास है, किन्तु न्यूयार्क के पोताश्रय में औसत गहराई ४५ फीट है।

(iii) पर्याप्त चौड़ाई—पोताश्रय की खाड़ी का मुहाना इतना चौड़ा अवश्य होना चाहिए कि जिससे बड़े से बड़े जहाज दोनों ओर से एक साथ आ-जा सकें। खाड़ी के अन्दर भी पर्याप्त स्थान होना चाहिए ताकि बड़े जहाज सरलता से मोड़ ले सकें। इसके लिए एक से दो किलोमीटर की चौड़ाई उत्तम मानी जाती है।

(iv) वर्ष-पर्यन्त खुला—पोताश्रय सब ऋतुओं में खुला रहना चाहिए, अर्थात् वहाँ ऐसी कोई प्राकृतिक बाधाएँ नहीं रहनी चाहिए जिनके कारण जहाजों के आवागमन में कठिनाई उत्पन्न हो जाय। साइबेरिया के पूर्वी तट पर स्थित ब्लाडीवोस्टक का बन्दरगाह वर्ष के पाँच महीने बन्द रहता है, क्योंकि शीत ऋतु में वहाँ समुद्र जम जाता है। भारत में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है, क्योंकि यहाँ जलवायु उष्ण है और बर्फ जमने का प्रश्न नहीं उठता।

(v) जहाज ठहरने के लिए पर्याप्त स्थान—पोताश्रय में इतना स्थान होना चाहिए जहाँ जहाज ठहरने के लिए पर्याप्त संख्या में डॉक (Docks) निर्मित किये जा सकें और भविष्य में और अधिक निर्माण की सम्भावनाएँ स्पष्ट हों।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पोताश्रय और बन्दरगाह कोई ऐसे पृथक स्थान नहीं हैं जिनका परस्पर कोई सम्बन्ध न हो। पोताश्रय वास्तव में बन्दरगाह के अन्दर ही वह स्थान होता है जहाँ जहाज ठहरते हैं। अतः ये दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध तथा परस्पर पूरक होते हैं। प्रत्येक बन्दरगाह में पोताश्रय अवश्य

होगा—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि प्रत्येक स्टेशन पर प्लेटफार्म होता है। यह दूसरी बात है कि पोताश्रय प्राकृतिक अथवा कृत्रिम हो किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक पोताश्रय एक बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित हो ही जाय। उत्तम पोताश्रय होते हुये भी यदि अन्य दशाएँ अनुकूल नहीं हैं तो पोताश्रय एक बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित न हो सकेगा। इसके विपरीत अनेक बन्दरगाहों के पोताश्रय साधारण अथवा कृत्रिम हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी बड़े बन्दरगाह के पास प्राकृतिक और उत्तम पोताश्रय भी है तो यह सोने में सुहागे के समान है। किन्तु यदि किसी तटीय प्रदेश में कोई उत्तम पोताश्रय नहीं है, फिर भी वहाँ बड़े बन्दरगाह के विकास के लिए अन्य आवश्यक दशाएँ मौजूद हैं, तो उस तट पर स्थित कोई भी साधारण अथवा कृत्रिम रूप से बनाया गया पोताश्रय धीरे धीरे एक बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित होकर उस प्रदेश की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। बम्बई की स्थिति सर्वोत्तम है क्योंकि यह एक बड़ा बन्दरगाह होने के साथ-साथ एक प्राकृतिक पोताश्रय भी है। इसके विपरीत कलकत्ता और मद्रास बड़े बन्दरगाह तो हैं, किन्तु उनके पोताश्रय उत्तम नहीं हैं। साधारण और कृत्रिम पोताश्रय होते हुये भी ये दोनों बन्दरगाह परिस्थितियों के कारण बड़े बन्दरगाहों के रूप में विकसित हो गये, क्योंकि इन प्रदेशों में इनके आस-पास अन्य कोई ऐसा तटवर्ती स्थान न था जिसे उत्तम पोताश्रय मानकर बड़े बन्दरगाह का रूप दिया जा सकता और जो इनके साथ प्रतियोगिता करके इनसे अधिक विकसित हो सकता।

बन्दरगाह के विकास के लिए अनुकूल दशाएँ

उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी बन्दरगाह के विकास के लिए केवल पोताश्रय ही एक आवश्यक शर्त नहीं है। पोताश्रय चाहे प्राकृतिक हो अथवा कृत्रिम, उसके साथ-साथ जब तक कुछ अन्य दशाएँ भी अनुकूल नहीं होंगी, तब तक बन्दरगाह का विकास नहीं हो सकेगा। कुल मिलाकर किसी बड़े बन्दरगाह के विकास के लिए उत्तम पोताश्रय के अतिरिक्त निम्नलिखित दशाओं का अनुकूल होना भी आवश्यक होता है:

(क) सम्पन्न पृष्ठप्रदेश (*Rich Hinterland*)

प्रत्येक बन्दरगाह समीपवर्ती क्षेत्र को अपनी सेवाएँ उपलब्ध करता है। इस क्षेत्र को उस बन्दरगाह का पृष्ठप्रदेश (Hinterland) कहा जाता है। यह पृष्ठप्रदेश कितना विस्तृत होगा, यह बन्दरगाह द्वारा उपलब्ध सुविधाओं एवं अन्य कई दशाओं पर निर्भर होता है। इसी प्रकार दूसरी ओर पृष्ठप्रदेश की विशालता और सम्पन्नता पर उसके बन्दरगाह के विकास की सम्भावनाएँ निर्भर होती हैं। यदि किसी बन्दरगाह के आस-पास दूर तक अन्य कोई उत्तम बन्दरगाह नहीं है, तो ऐसे बन्दरगाह का पृष्ठप्रदेश निश्चय ही अत्यन्त विस्तृत होगा। उदाहरण के लिए, कलकत्ता बन्दरगाह को ले सकते हैं जिसका पृष्ठप्रदेश अत्यन्त विस्तृत है और इसमें पंजाब से लगाकर असम तक का उत्तरी क्षेत्र और नेपाल, भूटान तक सम्मिलित हैं।

बन्दरगाह के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसका पृष्ठप्रदेश सम्पन्न हो, अर्थात् वहाँ किसी न किसी प्रकार की प्राकृतिक सम्पदा हो और आर्थिक दृष्टि से वह प्रदेश विकसित हो। वन, पशु, खनिज सम्पत्ति अथवा उन्नत कृषि व्यवसाय या विकसित औद्योगिक स्थिति होने पर उस पृष्ठप्रदेश को सम्पन्न कहा जा सकता है। साथ ही ऐसा प्रदेश पर्याप्त रूप से आबाद होना चाहिए क्योंकि तभी वहाँ की जनसंख्या को आयात-निर्यात की आवश्यकता होगी और उन प्रदेश के बन्दरगाह का विकास हो सकेगा। यदि उस प्रदेश की जनसंख्या पिछड़ी हुई दशा में है, तो ऐसे प्रदेश से प्राथमिक एवं कृषि उत्पादनों का निर्यात अधिक होगा। इसके विपरीत यदि पृष्ठप्रदेश घना आबाद और आर्थिक दृष्टि से विकसित है, तो वह उसके बन्दरगाह से आयात और निर्यात दोनों ही पर्याप्त मात्रा में कर सकेगा। जिन पृष्ठप्रदेशों में आयात की तुलना में निर्यात अधिक होता है उन्हें अंशदायी (Contributory) पृष्ठप्रदेश और जिनमें निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है, उन्हें वितरक (Distributory) पृष्ठप्रदेश कहा जाता है। वैसे व्यवहार में सभी पृष्ठप्रदेशों में आयात और निर्यात थोड़ी-बहुत सीमा तक होता ही है। केवल निर्जन एवं बीरान पृष्ठप्रदेश इसके अपवाद हो सकते हैं।

विभिन्न बन्दरगाहों के पृष्ठप्रदेश की स्पष्ट एवं प्रथक सीमा रेखाएँ खींचना सम्भव नहीं है। कोई पृष्ठप्रदेश एक से अधिक बन्दरगाहों का पृष्ठप्रदेश हो सकता है। उदाहरण के लिए, पंजाब, हरियाना, राजस्थान और उत्तर प्रदेश, बम्बई और कलकत्ता से लगभग समान दूरी पर स्थित है। अत वे दोनों बन्दरगाहों के पृष्ठ-प्रदेश के रूप में कार्य करते हैं। इन प्रदेशों से पूर्वी देशों को जाने वाला माल कलकत्ता तथा पश्चिमी देशों को जाने वाला माल बम्बई बन्दरगाहों को भेजा जायगा। आयातों की दशा में भी यही स्थिति लागू होगी। अत जहाँ तक इन प्रदेशों का सम्बन्ध है ये समान रूप से बम्बई और कलकत्ता दोनों ही बन्दरगाहों के पृष्ठप्रदेश हैं।

(ख) परिवहन एवं संचार की सुविधाएँ (Means of Transportation and Communication)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि बन्दरगाह पृष्ठप्रदेश और बाहरी देशों के मध्य प्रवेश-द्वार (Gate-way) है। अत यह आवश्यक है कि पृष्ठप्रदेश बन्दरगाह से परिवहन के विभिन्न साधनों के माध्यम से सुसम्बद्ध हो तभी पृष्ठप्रदेश के विभिन्न नगरों और बन्दरगाह में निकट एवं शीघ्र सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। जिसके बिना माल का आयात-निर्यात सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। आवागमन और संचार के साधनों की जितनी अधिक और उत्तम सुविधाएँ प्राप्त होंगी उतनी ही उत्तम सेवा वह बन्दरगाह अपने पृष्ठप्रदेश की कर सकेगा।

परिवहन के साधन शीघ्रगामी, नियमित और सस्ते होने चाहिए। भारत के सभी बड़े बन्दरगाह, रेल, सड़क एवं वायु परिवहन की नियमित सेवाओं द्वारा

पृष्ठप्रदेश से जुड़े हुए हैं। कुछ देशों में बन्दरगाह और पृष्ठप्रदेश को नहरों द्वारा भी जोड़ा गया है और इस प्रकार वहाँ उपर्युक्त साधनों के अलावा 'आन्तरिक जल-परिवहन' की सुविधा भी प्राप्त है। भारत में आन्तरिक जल परिवहन की सुविधा का अभाव है। केवल पूर्वी भागों में कुछ नदियों द्वारा बन्दरगाह तक स्टीमरों और नावों से कलकत्ता तक माल चला जाता है। संचार के साधनों में तार, टेलीफोन और बेतार के तार की सेवाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार माल एवं यात्रियों के निरन्तर प्रवाह को बनाये रखने के लिए बन्दरगाह से पृष्ठप्रदेश के विभिन्न भागों तक आवागमन और संचार के साधनों का एक जाल सा बिछा होना चाहिए।

विकास के साथ-साथ बन्दरगाह और पृष्ठप्रदेश के बीच रेल और सड़क मार्गों की दुहरी और वैकल्पिक व्यवस्था करना भी आवश्यक हो जाता है। इसी लिए दिल्ली से बम्बई तथा दिल्ली से कलकत्ता के मध्य दुहरे रेल-पथ के निर्माण की सुविधा दी गयी है, ताकि दोनों ओर से रेल गाड़ियाँ निर्बाध गति से आ-जा सकें। रेलों की गति को बढ़ाने के लिए इन प्रमुख लाइनों पर रेलों के विद्युतीकरण का कार्य भी तेज गति से पूरा किया जा रहा है और रेल के डीजल इंजनों के द्वारा गाड़ियों की गति बढ़ायी गयी है।

(ग) पर्याप्त स्थान (Spacious Accommodation)

बन्दरगाह के चारों ओर विकास एवं निर्माण के लिए पर्याप्त स्थान की गुंजाइश होनी चाहिए ताकि बन्दरगाह में आवश्यक सेवाओं और सुविधाओं के संगठनों का जाल स्थापित किया जा सके। बड़े-बड़े गोदामों, यार्डों, प्रतीक्षालयों, वर्कशापों, आयात-निर्यात गृहों, बैंकिंग, बीमा संगठनों, सीमा शुल्क संस्थानों आदि के लिए पर्याप्त स्थान होना आवश्यक है। इन सुविधाओं के बिना बन्दरगाह की आयात-निर्यात क्षमता और जहाजों को सुविधापूर्वक ठहराने और उनकी मरम्मत करने की क्षमता अत्यन्त सीमित रह जायगी।

(घ) अन्तरराष्ट्रीय जलमार्ग पर अथवा उसके निकट स्थिति

यदि कोई बन्दरगाह किसी प्रसिद्ध अन्तरराष्ट्रीय जलमार्ग पर स्थित है, तो वह स्थिति निश्चय ही उस बन्दरगाह के महत्त्व में चार चाँद लगा देगी। जिब्राल्टर, काहिरा, अदन, कोलम्बो, सिंगापुर को इस स्थिति का लाभ प्राप्त है क्योंकि वे प्रसिद्ध स्वेज मार्ग पर स्थित हैं। स्वेज नहर के निर्माण के बाद इन बन्दरगाहों का विकास अत्यन्त तेजी से हुआ। अरब और इजराइल संघर्ष के बाद से स्वेज नहर बन्द हो जाने के कारण काहिरा और अदन के बन्दरगाहों को हानि हो रही है। यदि कोई बन्दरगाह अन्तरराष्ट्रीय जल मार्गों से दूर स्थित होगा, तो वहाँ जहाजों का आवागमन अपेक्षाकृत कम होगा। भारत का बम्बई का बन्दरगाह स्वेजमार्ग के अत्यन्त निकट स्थित है और अदन से कोलम्बो आने जाने वाले जहाज प्रायः माल या यात्री उतारने चढ़ाने के लिए बम्दई बन्दरगाह से होकर अवश्य गुजरते हैं।

उपर्युक्त सभी सुविधाएँ समान रूप से सभी बन्दरगाहों को प्राप्त नहीं होती हैं, किन्तु इनमें से जितनी भी अधिक सुविधाएँ किसी बन्दरगाह को उपलब्ध होंगी विकास की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ उसे प्राप्त हो जायेंगी। एक बन्दरगाह के निर्माण पर करोड़ों रुपए व्यय होता है और आरम्भ होने के बाद उसे पूर्ण रूप से विकसित होने के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है। किन्तु विकसित हो जाने के बाद भविष्य में सदैव के लिए वह बन्दरगाह देश की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। भारत में कान्दला बन्दरगाह भारत के विभाजन के बाद कराँची बन्दरगाह की कमी को पूरा करने के लिए आरम्भ किया गया। अभी तक वहाँ निर्माण कार्य चल रहा है और बीस वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी अभी उसे पूर्ण विकसित रूप देने में अनेक वर्ष और लगेंगे। अतः किसी नवीन बन्दरगाह के विकास का निर्णय करने से पहले उस स्थान पर उपलब्ध सभी दशाओं का विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा करते समय उसके पोताश्रय की स्थिति पृष्ठप्रदेश की दशा, परिवहन की सम्भावनाएँ और अन्य सभी दशाओं पर भलीभाँति विचार कर लेना होता है जिससे कि बन्दरगाह के विकास पर लगाया गया धन और श्रम निरर्थक न जावे। भारत ने पश्चिमी तट पर मंगलौर और पूर्वी तट पर पारादीप तथा तूतीकोरन को बड़े बन्दरगाहों के रूप में विकसित करने का निश्चय किया है।

बन्दरगाहों के प्रकार (Kinds of Ports)

बन्दरगाह अनेक प्रकार के हो सकते हैं। महासागरीय बन्दरगाह (Oceanic Ports) वे होते हैं जो किसी महासागर के तट पर स्थित होते हैं जैसे कोलम्बो। सागरीय बन्दरगाह (Sea Ports) किसी सागर के तट पर स्थित होते हैं जैसे बम्बई अरब सागर के तट पर स्थित है। किसी खाड़ी के पृष्ठ में स्थित बन्दरगाहों को खाड़ी बन्दरगाह (Bay Ports) कहा जाता है। कान्दला बन्दरगाह इस वर्ग में आता है क्योंकि वह कच्छ की खाड़ी पर स्थित है। नदी बन्दरगाह (River Ports) समुद्र तट से कुछ दूर नदी के किनारे स्थित होते हैं—जैसे कलकत्ता हुगली नदी के बायें किनारे पर समुद्र से लगभग १२८ कि० मी० दूर स्थित है। ऐसे बन्दरगाहों में प्रायः नदी द्वारा लायी गयी रेत जमा हो जाती है जिसे समुद्र में जहाजों (Dredgers) की सहायता से निरन्तर धकेला जाता है। नहर-बन्दरगाह (Canal Ports) नहरों के किनारे पर बनाये जाते हैं। मैनचेस्टर इसी प्रकार का बन्दरगाह है। इसी प्रकार एक अन्य प्रकार झील-बन्दरगाहों (Lake Ports) का भी हो सकता है। मुक्त-बन्दरगाह (Free Ports) ऐसे बन्दरगाह को कहा जाता है जहाँ आयात होने वाले माल पर आयात-कर नहीं लगता है। भारत में कान्दला बन्दरगाह को शीघ्रता से विकसित होने का अवसर देने के लिए भारत सरकार ने इस बन्दरगाह को मुक्त बन्दरगाह घोषित किया हुआ है।

भारत के प्रमुख बन्दरगाह

भारतीय बन्दरगाहों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग

म प्रमुख बन्दरगाह (Major Ports) सम्मिलित किये जाते हैं और द्वितीय वर्ग मे छोटे-बन्दरगाह (Minor Ports) आते हैं। नीचे इन दोनों का पृथक् वर्णन किया गया है

प्रमुख बन्दरगाह (Major Ports)

भारत मे इस समय सात प्रमुख बन्दरगाह हैं जिनके नाम हैं—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापत्तनम, मार्मुगाव, कोचीन और कान्दला। इनमे से चार बन्दरगाह पश्चिमी तट पर और शेष तीन पूर्वी तट पर स्थित है। समुद्र तटवर्ती राज्यों मे मैसूर और उड़ीसा को छोड़कर प्रत्येक राज्य को एक प्रमुख बन्दरगाह की सुविधा प्राप्त है—गुजरात मे कान्दला, महाराष्ट्र मे बम्बई, केरल मे कोचीन, तमिलनाड मे मद्रास, आन्ध्र मे विशाखापत्तनम और पश्चिमी बगाल मे कलकत्ता स्थित है। इसके अतिरिक्त मार्मुगाव केन्द्र शासित प्रदेश गोआ का बन्दरगाह है। मैसूर राज्य के यह सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से मगलौर को एक बड़े बन्दरगाह के रूप मे विकसित किया जा रहा है। इसी प्रकार उड़ीसा राज्य मे भी पारादीप नाम के एक बन्दरगाह का विकास करके उसे प्रमुख बन्दरगाह का रूप दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त तमिलनाड मे तूतीकोरिन बन्दरगाह को भी प्रमुख बन्दरगाह बनाने का विचार है। इन तीनों बन्दरगाहों का निर्माण कार्य पूरा हो जाने पर भारत मे दस प्रमुख बन्दरगाह हो जायेंगे जिनमे से पाँच पश्चिमी तट पर और शेष पाँच पूर्वी तट पर स्थित होंगे। इसके साथ ही भारत के प्रत्येक तटवर्ती राज्य को कम से कम एक प्रमुख बन्दरगाह की सुविधा प्राप्त होगी—केवल तमिलनाड मे दो बन्दरगाह हो जायेंगे।

कलकत्ता बन्दरगाह के समीप हुगली नदी पर हल्दिया नामक एक उप-बन्दरगाह (Sattelite Port) का निर्माण किया जा रहा है। यह बन्दरगाह कलकत्ता के एक बन्दरगाह के रूप मे कार्य करेगा ताकि कलकत्ता पर आयात निर्यात व भारी बोझ को कुछ हल्का किया जा सके। तृतीय योजना मे लगभग ३५ करोड़ रुपए बन्दरगाहों के विकास पर व्यय किये गये। बम्बई बन्दरगाह के आधुनिकीकरण और विशाखापत्तनम, कोचीन एव मद्रास मे अतिरिक्त गोदियो (Berths) के निर्माण का कार्य भी लगभग पूर्ण होने को है। विशाखापत्तनम मे चार अतिरिक्त गोदियों मे से दो खनिज लोहे के निर्यात के लिए सुरक्षित रहेंगी और जहाजों मे खनिज लोहे को लदान मशीनों की सहायता से की जायेगी, ताकि इस बन्दरगाह की खनिज लोह निर्यात की क्षमता को ८० लाख टन तक बढ़ाया जा सके। कान्दला और मार्मुगाव बन्दरगाहों मे भी निर्माण कार्य चल रहा है।

चतुर्थ योजना मे बन्दरगाहों के विकास के लिए लगभग १६२ करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। इसमे से १६३ करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार द्वारा तथा शेष धनराशि राज्य सरकारों द्वारा व्यय की जायगी। चौथी योजना के अन्त तक भारत के प्रमुख बन्दरगाहों की क्षमता ६८ करोड़ टन की हो जायगी। बड़े

बन्दरगाहों के विकास पर १८५ करोड रुपय व्यय किये जायगे तथा शेष राशि का उपयोग छोटे बन्दरगाहों के सुधार के लिए होगा। बडे बन्दरगाहों के विकास के लिए वर्ष १९७१-७२ के लिए एक विकास कार्यक्रम तैयार किया गया है। हल्दिया परियोजना अच्छी तरह विकास कर रही है। डॉक १९७१ के अन्त तक प्रारम्भ कर दी जायेगी। सन् १९७२ तक कच्चा लोहा तथा कोयले के लिए प्लान्ट्स तैयार हो जायेंगे। बम्बई बन्दरगाह के डांक के विस्तार का कार्यक्रम चल रहा है। कुछ अन्य विस्तार कार्यक्रम भी दिसम्बर १९७२ तक पूर्ण हो जाने की सम्भावना है। मद्रास बन्दरगाह पर आयल जेट्टी (Oil jetty) का कार्यारम्भ हो चुका है। यह १९७१ के अन्त तक पूर्ण हो जायेगा। अन्य बडे बन्दरगाहों के विकास के कार्यक्रम भी प्रगति पर हैं।

बडे बन्दरगाहों का नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के हाथों में है किन्तु प्रत्येक बन्दरगाह के प्रशासन के लिए वैधानिक मण्डलों का गठन किया गया है जिन्हें "पोर्ट-ट्रस्ट्स" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। देश के बडे बन्दरगाहों में प्रतिवर्ष प्रवेश करने वाले जहाजों की सख्या लगभग दस हजार होती है। प्रवेश करने वाले ये जहाज विभिन्न आकार और क्षमता वाले होते हैं। इनकी जहाजी क्षमता कुल मिलाकर लगभग ६ ५ करोड टन होती है। इन प्रमुख बन्दरगाहों के द्वारा लगभग पाँच करोड टन माल का आयात और निर्यात प्रतिवर्ष किया जाता है, जिनमें आयातों का वजन ६० प्रतिशत और निर्यातों का वजन ४० प्रतिशत के करीब होता है। आयातित मशीनों, खनिज तेल एव खाद्यान्नों को उतारने एव ढोने की विशेष अवस्थाएँ उपलब्ध हैं। निर्यात किये जाने वाले माल की लदान के लिए भी अब मशीनीकरण का सहयोग किया जा रहा है।

छोटे बन्दरगाह (Minor Ports)

भारत के पश्चिमी और पूर्वी समुद्र तट पर अनेक छोटे-छोटे बन्दरगाह बिखरे पडे हैं। इनका उपयोग प्राय मछली पकडने और तटवर्ती स्थानीय व्यापार के लिए ही होता है। इनमें बडे आकार के जहाजों के आने, ठहरने और मरम्मत आदि की सुविधाएँ नहीं होती हैं। केवल छोटे स्टीमर और नावें ही इनमें ठहर सकते हैं। छोटे बन्दरगाहों की सख्या कुल मिलाकर २२५ है, किन्तु ७५ बन्दरगाह निष्क्रिय हैं और वे केवल नाममात्र के ही बन्दरगाह हैं। शेष १५० बन्दरगाह कार्यरत हैं। छोटे बन्दरगाहों का प्रशासन राज्य सरकारों का दायित्व है। तीसरी योजना में इनके विकास पर लगभग १७ करोड रुपये व्यय किये गये। फिर भी इन बन्दरगाहों की क्षमता बहुत ही कम है। प्रति वर्ष लगभग ९१ लाख टन माल इन बन्दरगाहों में उतारा अथवा चढाया जाता है।

बन्दरगाहों के विषय में केन्द्र एव राज्य सरकारों को उचित परामर्श देने के उद्देश्य से 'नेशनल हारबर बोर्ड' का गठन किया गया है। इसमें केन्द्र तटवर्ती राज्यों,

उद्योग, व्यापार एवं श्रमिकों के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये हैं। नीचे भारत के कुछ प्रमुख बन्दरगाहों का वर्णन विस्तार से किया गया है

बम्बई

यह भारत का सबसे बड़ा बन्दरगाह है और इसमें एक उत्तम प्राकृतिक पोताश्रय की सुविधा भी प्राप्त है। यहाँ धरातल की बनावट कुछ इस प्रकार की है कि बन्दरगाह तीन ओर चट्टानी भूमि से घिरा हुआ है और इस प्रकार निर्मित खाड़ी की एक भुजा इसे अरब सागर से मिलाती है जिसमें होकर जहाज बन्दरगाह में आ-जा सकते हैं और खुले समुद्री झकोरों से मुक्त होकर सुरक्षापूर्वक ठहर सकते हैं। यहाँ समुद्र की औसत गहराई लगभग ३५ फीट है और इस खाड़ी की तथा उसके मुहाने की चौड़ाई भी पर्याप्त है। अतः बड़े से बड़े जहाज भी इसमें प्रवेश कर सकते हैं और सरलता से मुड़ सकते हैं।
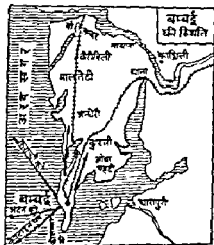
बम्बई बन्दरगाह का क्षेत्र १८८० एकड़ है और डॉक्स का क्षेत्र ७०० एकड़ है। इस बन्दरगाह पर दो सूखे डॉक हैं जो कि जहाजों के लिए मरम्मत की सुविधा प्रदान करते हैं। बन्दरगाह की अपनी स्वयं की रेलवे व्यवस्था है जिसमें द्वारा इस स्थानीय स्टेशनों तथा विभिन्न स्थानों को सेवाएँ प्रदान की जाती हैं।

(i) पृष्ठ प्रदेश—इस बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश भी अत्यन्त विस्तृत और सम्पन्न है। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाना, जम्मू काश्मीर, मध्य प्रदेश, मैसूर के अनेक भाग इसके पृष्ठप्रदेश में सम्मिलित हैं। पृष्ठप्रदेश कृषि उद्योग, खनिज एवं व्यापार की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। बन्दरगाह और पृष्ठ-प्रदेश के विभिन्न भागों को रेल, सड़क और वायु परिवहन की सुविधाएँ प्राप्त हैं। बन्दरगाह पश्चिमी और मध्य-रेलवे के द्वारा पृष्ठप्रदेश के प्रायः सभी बड़े नगरों से सम्बद्ध है। बम्बई से वायु सेवाएँ भी देश के सभी प्रमुख नगरों को सचालित होती हैं।

बन्दरगाह में रुई, खाद्यान्न आदि के लिए विशाल गोदाम बने हुए हैं। इस समय इसमें चार नये डॉक (docks) बनाये जा रहे हैं जिनका कार्य लगभग पूरा हो रहा है।

(ii) आयात निर्यात—इस बन्दरगाह में प्रतिवर्ष विभिन्न आकार और वजन के लगभग ३००० जहाज प्रवेश करते हैं। भारत में प्रमुख बन्दरगाहों द्वारा किये जाने वाले कुल आयात का लगभग ४५ प्रतिशत और कुल निर्यात का लगभग २५

प्रतिशत बम्बई बन्दरगाह के द्वारा किया जाता है। इस बन्दरगाह द्वारा निर्यात किये जाने वाले पदार्थों में रुई, ऊन, सूती वस्त्र, वनस्पति तेल, मसाले, तम्बाकू एवं चमड़े के पदार्थ, मैंगनीज आदि प्रमुख हैं। आयातों में लम्बे रेशे वाली रुई, खनिज, तेल, मशीनें, खाद्यान्न, रासायनिक पदार्थ, रंग आदि प्रमुख हैं।

आयात निर्यात व्यापार

(लाख टनों में)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६५-६६	१३००	५१०
१९६८-६९	१२०६	४३१

तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष की तुलना में वर्ष १९६८-६९ में बम्बई बन्दरगाह से आयात तथा निर्यात दोनों में कमी हुई है। किन्तु इस बन्दरगाह पर जो विकास कार्यक्रम चल रहे हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भविष्य में इससे विदेशी व्यापार अधिक हो सकेगा।

(iii) औद्योगिक एवं व्यापारिक महत्त्व—बन्दरगाह के कारण बम्बई एक विशाल औद्योगिक एवं व्यापारिक नगर बन गया है। सूती वस्त्र उद्योग, तेल शोधन उद्योग, औषधि निर्माण, रंगाई, छपाई, रासायनिक एवं इन्जीनियरिंग उद्योग आदि का वहाँ पर्याप्त विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त वनस्पति तेल, साबुन एवं प्रसाधन उद्योग भी यहाँ स्थापित हैं। उद्योगों के लिए बाहर से माल मँगाने और तैयार माल को बाहर भेजने में बन्दरगाह अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है। बम्बई नगर शिक्षा की दृष्टि से भी एक प्रमुख केन्द्र बन गया है। ट्राम्बे में अणु शक्ति आयोग का अनुसन्धान केन्द्र भी एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठान बन चुका है। नगर में अनेक प्रसिद्ध बैंकों के मुख्य कार्यालय स्थित हैं। रिजर्व बैंक का मुख्य कार्यालय भी यहीं है। बीमा एवं स्टॉक एक्सचेन्ज के क्षेत्र में भी यहाँ आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

पिछले दो तीन वर्षों से बम्बई बन्दरगाह के नवीनीकरण के प्रयत्न किये गये हैं। इसकी डॉक विस्तार स्कीम, बैलार्ड पायर विस्तार स्कीम (Ballard Pier Extension Scheme) जो कि ८ नयी गोदियों की वृद्धि कर देगी, दिसम्बर १९७२ तक पूर्ण हो जायेंगी। सहायक बन्दरगाह नावाशिवा का दो चरणों में पूर्ण होगा। इसमें ६ गोदियाँ तैयार की जायेंगी। बम्बई बन्दरगाह के विकास की मास्टर प्लान शीघ्र चलेगी।

कलकत्ता

कलकत्ता भारत का दूसरा बड़ा बन्दरगाह है, किन्तु एक प्राकृतिक पोताश्रय का अभाव इसके भावी विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। यह नदी पर स्थित बन्दरगाह (River Port) है और हुगली नदी के बायें किनारे पर बंगाल की खाड़ी के तट से लगभग १३८ किलोमीटर दूर स्थित है। मैदानी भाग और डेल्टा प्रदेश

से नदी द्वारा बहाकर लायी गयी रेत निरन्तर इस बन्दरगाह म जमा होती रहती है जिसे यदि दूर न हटाया जाय तो इसके जल का तल इतना उथला हो जायगा कि फिर जहाजो का आना-जाना असम्भव हो जायगा। इसलिए यहाँ रेत को समुद्र की ओर धकेलने के लिए निरन्तर दो जहाज (Dredgers) कार्यशील रहते हैं।

पृष्ठप्रदेश

कलकत्ता का पृष्ठप्रदेश अत्यन्त विस्तृत, घना आबाद तथा साधन सम्पन्न है। इसके पृष्ठप्रदेश मे पश्चिम बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश पजाब, हरियाणा जम्मू काश्मीर, असम तथा मध्य प्रदेश और उड़ीसा के कुछ भाग सम्मिलित हैं। यही नही नेपाल भूटान तथा सिक्किम भी इसके पृष्ठप्रदेश मे आते हैं, क्योंकि इन प्रदेशो को अन्य किसी बन्दरगाह की सुविधा प्राप्त नही है। सतलज गगा का अत्यन्त उपजाऊ मैदान इस प्रदेश को सम्पन्नता प्रदान करता है जहाँ अनेक प्रकार की कृषि उपज होती है, तथा बड़े-बड़े व्यापारिक और औद्योगिक नगर इसमें स्थित हैं। इस प्रदेश मे रेलो और सड़को का जाल सा बिछा हुआ है। पूर्वी भागो म आन्तरिक जल परिवहन की सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। कलकत्ता वायुपरिवहन की दृष्टि से भी एक प्रमुख केन्द्र है। यहाँ के डमडम हवाई अड्डे पर देश विदेश के अनेक वायुयान उतरते है।

आयात निर्यात

कलकत्ता बन्दरगाह मे प्रतिवर्ष प्रवेश करने वाले जहाजो की सख्या दो हजार से कुछ अधिक होती है जिनमे छोटे बड़े सभी आकार और वजन के जहाज होते हैं। भारत मे प्रमुख बन्दरगाहो के द्वारा होने वाले कुल आयात का लगभग २३ प्रतिशत तथा कुल निर्यात का २५ प्रतिशत माल कलकत्ता बन्दरगाह के द्वारा आता जाता है।

आयात तथा निर्यात

(लाख टन)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६१-६२	४६	४४
१९६७-६८	४६	४१

इस बन्दरगाह मे वर्ष १९६८-६९ मे आयातो मे लगभग ६ लाख टन की कमी हुई और निर्यात व्यापार मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ।

इस बन्दरगाह के द्वारा किये जाने वाले आयात में मशीनें, खाद्यान्न धातुएँ, रासायनिक पदार्थ, उपकरण, खनिज तेल, उर्वरक, औषधियाँ आदि सम्मिलित हैं। यहाँ से निर्यात किये जाने वाले पदार्थों म जूट का माल चाय, कच्चा लोहा, इस्पात, मैंगनीज, अभ्रक, लाख, चमड़ा और खालें, चमड़े का सामान, चीनी, इन्जीनियरिंग एव बिजली के सामान आदि प्रमुख हैं। यहाँ स थोड़ा बहुत कोयला भी बर्मा, पाक

आदि देशों को निर्यात किया जाता है। कलकत्ता बन्दरगाह की स्थिति, कृषि उपज, खनिज एवं औद्योगिक माल, तीनों प्रकार से उत्तम है। भारत के लगभग सभी प्रमुख इस्पात के कारखाने और छोटा नागपुर के खनिज क्षेत्र कलकत्ता बन्दरगाह की सेवाएँ प्राप्त करते हैं।

व्यापारिक एवं औद्योगिक महत्त्व

एक बड़े बन्दरगाह के साथ-साथ कलकत्ता एक प्रमुख व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र बन गया है। हावड़ा को मिलाकर भारत का सबसे बड़ा नगर कलकत्ता ही है जिसकी जनसंख्या अब आध करोड़ से भी ऊपर पहुँच चुकी है। जूट उद्योग यहाँ का सबसे बड़ा और पुराना उद्योग है। ये कारखाने जिनकी संख्या सौ से भी अधिक है हुगली नदी के दोनों किनारों पर कलकत्ता से लगभग साठ किलोमीटर उत्तर और पचास किलोमीटर दक्षिण के क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनके लिए कच्चा जूट विभिन्न क्षेत्रों से आता है और कलकत्ता कच्चा जूट की एक प्रमुख मण्डी है। निर्मित जूट के माल में भी यह विश्व में सबसे बड़ी मण्डी है। नगर में बैंकिंग, बीमा, स्टॉक एक्सचेन्ज के व्यापक संगठनों का विकास हो चुका है। असम एवं दार्जिलिंग क्षेत्रों से चाय भी कलकत्ता लाई जाती है और यहीं से वह पेटियों में भरकर विदेशों को भेजी जाती है। नगर में रसायन वस्तुएँ, औषधियाँ, बिजली के पंखों, सिलाई की मशीनों एवं अन्य इन्जीनियरिंग के कारखाने स्थित हैं। विश्वविद्यालय, मेडिकल कालेज, इन्जीनियरिंग और अन्य प्राविधिक संस्थाओं की स्थिति के कारण कलकत्ता एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र बन गया है। यह पश्चिमी बंगाल की राजधानी भी है।
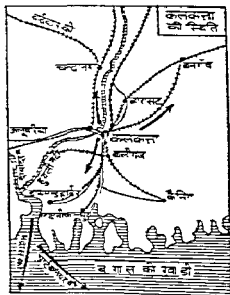
जैसा कि पहले कहा जा चुका है कलकत्ता बन्दरगाह की क्षमता सीमित है जबकि आयात निर्यात का बोझ निरन्तर बढ़ रहा है। अतः इसे कुछ हल्का करने के उद्देश्य से यहाँ से कुछ दूरी पर हल्दिया नाम से एक उप-बन्दरगाह का निर्माण किया जा रहा है जो कि कलकत्ता के एक पूरक बन्दरगाह के रूप में कार्य करेगा।

'हल्दिया बन्दरगाह' के विकास पर लगभग ५४ करोड़ रुपये की धनराशि व्यय होगी। इस बन्दरगाह पर अगस्त १९६८ में एक तेलवाहक जहाज ठहराने के लिए तेल घाट का निर्माण हो चुका है। इस घाट पर २०,००० dwt टैंकर्स के लिए व्यवस्था है। जून १९७१ के

अन्त तक पूर्ण हो जाने का अनुमान है। कच्चा लोहा तथा कोयला के लिए १९७२ के अन्त तक प्लान्टस् तैयार हो जाने की सम्भावना है।

पंचवर्षीय योजनाओं में कलकत्ता बन्दरगाह के विकास के लिए पर्याप्त प्रयास किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गोदियों का सुधार करने, विद्युत चलित क्रेन लगाने, मिट्टी निकालने के नवीन यंत्र लगाने तथा सर्वेक्षण के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। द्वितीय तथा तृतीय योजना में मरम्मत कार्य, चाय गोदाम तथा अन्य नवीनीकरण कार्य किये गये। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में हल्दिया बन्दरगाह विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है।

मद्रास

महत्त्व की दृष्टि से मद्रास भारत का तीसरा बड़ा बन्दरगाह तथा नगर है। यह तामिलनाडु की राजधानी तथा पूर्वी समुद्र तट के दक्षिणी भाग का सबसे बड़ा बन्दरगाह है। यह एक कृत्रिम बन्दरगाह है क्योंकि यहाँ कोई सुरक्षित एवं प्राकृतिक खाड़ी नहीं है। अतः तट से कुछ दूर कृत्रिम रूप में सुदृढ़ दीवारें और गेट बना कर एक खाड़ी का निर्माण किया गया है जिसमें जहाजों के ठहरने के लिए डाक (docks) बने हुए हैं। समुद्र तल उथला है और औसत गहराई ३० फीट के लगभग है। जहाज उत्तर के प्रवेश द्वार से इस कृत्रिम पोताश्रय में प्रवेश करते हैं। फिर भी यहाँ तेज चक्रवातों एवं प्रचण्ड लहरों के कारण जहाजों को ठहरने में असुविधा रहती है।

मद्रास के पृष्ठ प्रदेश में दक्षिणी प्रायद्वीप का दक्षिणी पूर्वी भाग सम्मिलित किया जाता है जिसमें तमिलनाडु तथा आन्ध्र और मैसूर और केरल के कुछ भाग सम्मिलित हैं। ये प्रदेश कुछ व्यापारिक फसलों, खनिज पदार्थों एवं औद्योगिक कच्चे माल के लिए प्रसिद्ध हैं। मद्रास दक्षिण एवं उत्तर भारत के सभी प्रमुख नगरों से रेल द्वारा जुड़ा हुआ है। यहाँ से कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, त्रिवेन्द्रम एवं बंगलौर आदि को रेल गाड़ियाँ आती जाती हैं।

यहाँ से निर्यात किये जाने वाले माल में मुख्य रूप से मूँगफली और अरण्डी का तेल, तम्बाकू से बनी हुई वस्तुएँ, चमड़ा और खालें, मसाले, नारियल, रबड़, चाय, कहवा, सूती वस्त्र सम्मिलित हैं। आयात किये जाने वाले माल में खाद्यान्न, सब प्रकार की मशीनें और औजार, उर्वरक, रासायनिक पदार्थ, कपास, आदि हैं।

आयात निर्यात व्यापार

(लाख टन)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६०-६१	२१	९
१९६५-६६	३३	१६
१९६८-६९	३०	२१

मद्रास बन्दरगाह के आयात व्यापार में वर्ष १९६०-६१ की तुलना में वर्ष १९६५-६६ में लगभग ८ लाख टन की वृद्धि हुई है किन्तु वर्ष १९६५-६६ की तुलना में वर्ष १९६८-६९ में ३ लाख टन की कमी हुई। दूसरी तरफ निर्यात व्यापार में सन्तोषजनक वृद्धि होती जा रही है।

मद्रास बन्दरगाह यद्यपि एक प्राकृतिक बन्दरगाह नहीं है और इसका पृष्ठ प्रदेश भी इतना घना आबाद और उपजाऊ नहीं है जितना कि बम्बई और कलकत्ता के पृष्ठप्रदेश हैं, फिर भी दक्षिणी भारत में यह बन्दरगाह एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करता है। पूर्वी समुद्र तट और कावेरी नदी के डेल्टा में मिट्टी उपजाऊ है और यहाँ अनेक प्रकार की अच्छी उपज होती है तथा यह हिस्सा घना आबाद भी है। मद्रास बन्दरगाह में प्रतिवर्ष प्रवेश करने वाले जहाजों की संख्या कुल मिला कर डेढ़ हजार से अधिक नहीं होती है। इन जहाजों की
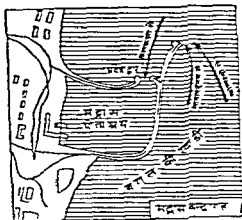
मद्रास बन्दरगाह

सम्मिलित भार क्षमता लगभग एक एक करोड़ टन होती है। आयात निर्यात के अन्तर की दृष्टि से भी मद्रास का स्थान तीसरा है। बड़े बन्दरगाहों द्वारा किये जाने वाले कुल आयात का लगभग ११ प्रतिशत और कुल निर्यात का लगभग ८ प्रतिशत माल मद्रास बन्दरगाह के द्वारा आता जाता है। हाल ही में यहाँ एक गीले डॉक (wet dock) का निर्माण पूरा किया गया है जिसमें ६ गोदियाँ (berths) हैं। मद्रास बन्दरगाह के विकास कार्यों में तेल गोदी का कार्य वर्ष १९७१ के अन्त तक पूर्ण होने की सम्भावना है। इससे बन्दरगाह की क्षमता ८०,००० टन तेल टैंकर हो जायगी। कच्चा लोहा के लिए एक प्लाण्ट १९७३ के मध्य तक पूर्ण हो जायेगी।

विशाखापत्तनम

यह आन्ध्र प्रदेश में स्थित बन्दरगाह है जिसका निर्माण सन् १९३३ में किया गया। इसे एक प्राकृतिक पोताश्रय का लाभ प्राप्त है। पिछले पैंतीस वर्षों में इसका पर्याप्त विकास हुआ है और माल के आयात निर्यात में इसने एक ओर कलकत्ता और दूसरी ओर मद्रास के बन्दरगाहों से प्रतियोगिता की है। इसके पृष्ठप्रदेश में आन्ध्र प्रदेश, दक्षिण पूर्वी मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा सम्मिलित हैं। इन प्रदेशों में खनिज उद्योग ने विशेष प्रगति की है। दक्षिण पूर्वी रेलवे लाइन के द्वारा यह पृष्ठप्रदेश के विभिन्न नगरों से जुड़ा हुआ है। तटवर्ती व्यापार की दृष्टि से भी इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

विशाखापत्तनम में हिन्दुस्तान शिपयार्ड का जहाज बनाने का एक सरकारी कारखाना है। इसमें प्रतिवर्ष तीन जहाज बनाने की क्षमता है जिसे बढ़ाकर चार और

अन्त में छह जहाज तक कर देने का विचार है। अब तक कुल मिलाकर लगभग ४२ व्यापारिक जहाज विशाखापत्तनम के इस कारखाने में बन कर निकल चुके हैं।

इस बन्दरगाह में प्रतिवर्ष प्रवेश करने वाले जहाजों की संख्या ७०० से कुछ ऊपर होती है जिनकी जहाजी क्षमता लगभग ५५ लाख टन की होती है। इस बन्दरगाह में प्रतिवर्ष लगभग २० लाख टन माल आयात होता है पर लगभग इतना ही माल निर्यात किया जाता है। किन्तु धीरे-धीरे खनिज लोहे के निर्यात में वृद्धि हो रही है और कुछ ही वर्षों में यहाँ से निर्यात किये जाने वाले माल का वजन काफी अधिक हो जायगा। जापान द्वारा दिये गये ऋण की सहायता से यहाँ खनिज लोह के लदान के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की जा रही हैं ताकि इस बन्दरगाह की खनिज लोह निर्यात क्षमता ८० लाख टन तक बढ़ाई जा सके। इस बन्दरगाह से किये जाने वाले निर्यात में मैंगनीज, चमड़ा एवं खालें, मूंगफली एवं लकड़ी, प्रमुख हैं। आयात किये जाने वाले सामान में कच्चा खनिज तेल (crude oil), खाद्यान्न, मशीन औजार, इमारती लकड़ी आदि प्रमुख हैं। यहाँ कालटेक्स कम्पनी का एक तेल शोधक कारखाना भी कार्यशील है।

आयात निर्यात व्यापार

(लाख टन)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६५-६६	१९	२६
१९६७-६८	२४	४०
१९६८-६९	७७	५४

इस बन्दरगाह से आयात तथा निर्यात दोनों में वृद्धि होती जा रही है। किन्तु आयात की तुलना में निर्यात व्यापार की मात्रा पर्याप्त अधिक है।

कोचीन

यह मलाबार तट का प्रमुख बन्दरगाह है और केरल राज्य में स्थित है। इसका पोताश्रय प्राकृतिक है और यहाँ जहाज समुद्री मकरों से मुक्त होकर सुरक्षापूर्वक ठहर सकते हैं। इसीलिये भारत का दूसरा जहाज निर्माण कारखाना (shipyard) यहाँ खोला जा रहा है। इसके पृष्ठप्रदेश में केरल, मैसूर और तामिलनाड राज्यों के कुछ भाग सम्मिलित हैं। ये प्रदेश रेलों द्वारा कोचीन से जुड़े हुये हैं और अनेक व्यापारिक फसलों की दृष्टि से सम्पन्न हैं।

इस बन्दरगाह में प्रवेश करने वाले जहाजों की संख्या प्रतिवर्ष लगभग १४०० होती है किन्तु उसमें मध्यम आकार के और छोटे जहाज अधिक होते हैं। कुल मिलाकर इन जहाजों की भार-क्षमता ४५ लाख टन से अधिक नहीं होती है। इस बन्दरगाह में प्रतिवर्ष लगभग २८ लाख टन माल आयात और लगभग १४ लाख टन माल निर्यात किया जाता है। आयात किये जाने वाले माल में खाद्यान्न, बिना भुने हुए काजू,

खनिज तेल, मशीन औजार, रासायनिक पदार्थ आदि प्रमुख हैं। निर्यात होने वाली वस्तुओं में रबड, चाय, कहवा, भुने हुए काजू, नारियल की जटा की रस्सियाँ और अन्य वस्तुएँ, नारियल का चूरा और तेल अनेक प्रकार के मसाले और फल उल्लेखनीय हैं। वर्ष १९६८-६९ में आयात की मात्रा ३७८३ लाख टन और निर्यात की मात्रा १४०७ लाख टन थी। हाल ही में यहाँ तेल साफ करने का एक कारखाना खोला गया है जिसके लिए कच्चा तेल मध्य यूरोप के देशों से मँगाया जाता है। हाल ही में एक तेल टॉक बनाने की ६ करोड रुपय की परियोजना का निर्णय लिया गया है। वर्तमान समय में २८००० dwt के तेल टैंकर की क्षमता है जो कि इस कार्यक्रम के पूर्ण हो जाने से ८०,००० dwt हो जायेगा। यह नवीन परियोजना १९७२ के अन्त तक पूर्ण हो जायेगी।

कान्दला

विभाजन से पूर्व करांची उत्तर पश्चिमी भारत का एक बडा बन्दरगाह था, किन्तु उसके पाकिस्तान में चले जाने के बाद इन प्रदेशों की आयात निर्यात की आवश्यकताओं की पूर्ति का भार बम्बई बन्दरगाह पर पडा। अत करांची के अभाव की पूर्ति करने के लिए पश्चिमी समुद्र तट के उत्तरी भाग में एक बडे बन्दरगाह का निर्माण करना आवश्यक हो गया। कान्दला बन्दरगाह का निर्माण इसी सन्दर्भ में प्रारम्भ किया गया। इसका विधिवत उद्घाटन सन् १९५१ में प० नेहरू द्वारा किया गया इससे पूर्व यह कच्छ राज्य के एक छोटे बन्दरगाह के रूप में कार्य करता था। यह बन्दरगाह प्राकृतिक एव सुरक्षित होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। निकट के क्षेत्र में पर्याप्त जगह उपलब्ध है अत विकास कार्यों में कोई कठिनाई नहीं आयेगी।

कान्दला का पोताश्रय अत्यन्त सुरक्षित और प्राकृतिक है। यह कच्छ की खाडी की समुद्री कट्टान के पूर्व सिरे पर स्थित है। जल की गहराई औसत ३० फीट है, अत बडे-बडे जहाज भी सरलता से इस पोताश्रय में आकर ठहर सकते हैं। इसके पृष्ठ प्रदेश में गुजरात, राजस्थान, हरियाना दिल्ली, पजाब और काश्मीर सम्मिलित किये जाते हैं। फिर भी इन प्रदेशों का बहुत सा व्यापार बम्बई बन्दरगाह के द्वारा होता है क्योंकि कान्दला अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाया है। इसलिये भारत सरकार ने इसे जनवरी १९६६ में एक मुक्त बन्दरगाह (Free Port) का दर्जा प्रदान किया है। जैसे-जैसे इसका विकास होता जायेगा, इसके पृष्ठप्रदेशों का अधिकाधिक व्यापार इस बन्दरगाह के माध्यम से होगा।

इस बन्दरगाह में बडे-बडे तेल वाहक जहाजों के ठहरने के स्थान, बडे माल वाहक जहाजों के ठहरने के स्थान, दो तैरते हुये डॉक (floating docks), चार बडे गोदाम, मरम्मत के लिए आवश्यक मशीनों से सुसज्जित वर्कशाप तथा जहाजों एव यात्रियों के लिए अन्य समस्त आवश्यक सेवाएँ व सुविधाएँ उपलब्ध हैं। गान्धी धाम-दीसा रेल मार्ग द्वारा यह राजस्थान, सौराष्ट्र और गुजरात के प्रमुख नगरों से जुडा

हुआ है। इस बन्दरगाह में प्रतिवर्ष प्रवेश करने वाले जहाजों की संख्या लगभग ३७० रहती है जिनकी भार क्षमता लगभग २० लाख टन होती है। इस बन्दरगाह में लगभग २४ लाख टन माल का आयात और ४ लाख टन माल का निर्यात किया जाता है। आयात में खनिज तेल, कपास, सूखे मेवे, मशीन औजार, खाद्यान्न, उर्वरक, आदि प्रमुख हैं। निर्यात की वस्तुओं में नमदा व गाचे, ऊन, नमक, हड्डी सूती वस्त्र, तिलहन आदि उल्लेखनीय हैं।

आयात निर्यात व्यापार

(लाख टन)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६०-६१	१२०	३४
१९६८-६९	१७१	३३

इस बन्दरगाह के आयात व्यापार में क्रमशः वृद्धि हुई है किन्तु निर्यात व्यापार में कमी हुई है।

कान्दला बन्दरगाह से दूसरे भागों को जोड़ने के लिए मीटर गेज तथा बड़ी लाइनें डाली गयी हैं। इस बन्दरगाह में चतुर्थ योजना के अन्त तक लगभग ३१ लाख टन माल वार्षिक उठाने की क्षमता हो सकेगी। चतुर्थ योजना के अन्त तक पाँचवी गोदी पूर्ण हो जायगी।
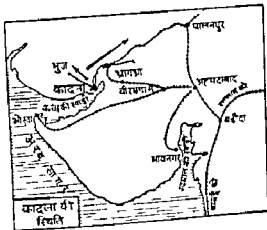
मार्मुगाँव (Mormugao)

भारत में गोआ के विलय के बाद भारत के बड़े बन्दरगाहों की सूची में एक बन्दरगाह की वृद्धि और हो गयी। मार्मुगाँव कोंकण तट पर एक अत्यन्त सुरक्षित और प्राकृतिक बन्दरगाह है। खनिज लोहे के निर्यात की दृष्टि से इस बन्दरगाह का विशेष महत्त्व है। इस बन्दरगाह में प्रवेश करने वाले जहाजों की वार्षिक संख्या ७७० से कुछ ऊपर रहती है और उनकी भार क्षमता लगभग ६० लाख टन होती है। इस बन्दरगाह की विशेषता यह है कि इसके द्वारा आयात बहुत कम और निर्यात बहुत अधिक होता है। इसके द्वारा आयात किये जाने वाले माल का वजन केवल १.७ लाख टन होता है जबकि यह बन्दरगाह प्रतिवर्ष ८४ लाख टन माल का निर्यात करता है। इसका कारण यह रहा है कि कुछ वर्ष पूर्व तक पुर्तगाली गोवा प्रदेश की आवश्यकताएँ

बहुत कम थी और इस बन्दरगाह से प्रमुख रूप से पुर्तगाल को अनेक वस्तुएँ निर्यात करने के लिए उपयोग में लाया जाता था। भारत में विलय के बाद इस बन्दरगाह से खनिज पदार्थों का निर्यात बढ़ा है जिसमें लोहा, मैंगनीज प्रमुख हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि दक्षिणी महाराष्ट्र और उत्तरी मैसूर तथा गोवा के नगरों के आयात की आवश्यकता को यह बन्दरगाह धीरे धीरे अधिक मात्रा में पूरा करे। इसके लिए रेल और सड़क परिवहन के उपलब्ध साधनों का विकास और सुधार करना आवश्यक होगा।

प्रश्न

१. भारत के कृत्रिम बन्दरगाहों पर टिप्पणी लिखिए। रेखाचित्र दीजिए।

(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६६)

२ एक उत्तम पोताश्रय के गुण बतलाइए। कान्दला तथा विशाखापत्तनम बन्दरगाहों के महत्त्व की विवेचना कीजिए। भारत सरकार द्वारा इन बन्दरगाहों की प्रगति के लिए क्या कदम उठाये गये हैं?

(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९६७)

३ एक अच्छे बन्दरगाह के विकास के लिए कैसी परिस्थितियों की आवश्यकता होती है? भारत के प्रमुख बन्दरगाहों के सन्दर्भ में विवेचना कीजिए।

४. एक बन्दरगाह के विकास में पृष्ठभूमि का क्या महत्त्व है? निम्नलिखित बन्दरगाह क्यों महत्त्वपूर्ण हैं

(अ) कान्दला, (ब) बम्बई, (स) मद्रास।

(प्रथम वर्ष, टी० डी० सी०, १९७१)